विशाल भारत

सचित्र मासिक पत्र

सम्पादक :—बनारसीदास चतुर्वेदी

संचालक :—रामानन्द चट्टोपाध्याय

भाग १०

जुलाई—दिसम्बर १९३२

सहकारी सम्पादक

ब्रजमोहन वर्मा और धन्यकुमार जैन

लेख-सूची

लेखक-सूची

प्रतीक्षा

"विशाल-भारत"] [श्री विभूतिभूषण बोस

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

श्रावण १९८९ :: जुलाई १९३२

भाग १०, अंक १.

पूर्ण-अंक ५५.

मेरी आग

श्री भगवतीचरण वर्मा

निज उरकी वेदीपर मैंने महायज्ञका किया विधान,
समिधि बनाकर ला रक्खे हैं चुन-चुनकर अपने अरमान,
अभिलाषाओंकी आहुतियाँ ले आया हूँ आज महान,
और चढ़ानेको आया हूँ अपनी आशाका बलिदान,
अभिमन्त्रित करता है इसको इन आहोंका भैरव राग—
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

(२)

आमन्त्रित हैं यहाँ कसकसे क्रीड़ाएँ करनेवाले,
हृदय-रक्तसे निज वैभवके प्यालोंको भरनेवाले,
जीवनकी अतृप्त तृष्णासे तड़प-तड़प मरनेवाले,
अन्धकारके महाउदधिमें अन्धोंसे तरनेवाले,
फूल चढ़ाने वे आये हैं जिनमें मिलता नहीं पराग
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

(३)

इस उत्सवमें आन जुड़े हैं हँस-हँस बलि होनेवाले,
निज अस्तित्व मिटाकर पलमें तन, मन, धन खोनेवाले,
उरकी लालीसे इस जगकी कालिखको धोनेवाले,
हँसनेवालोंके विषादपर जी भरकर रोनेवाले,

आज आँसुओंका घृत लेकर आया है मेरा अनुराग—
जल उठ ! जल उठ ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग !

(४)

यहाँ हृदयवालोंका जमघट, पीड़ाओंका मेला है,
अर्घ्य-दान है अपनेपनका, यह पूजाकी बेला है,
आज विस्मरणके प्रांगणमें जीवनकी अवहेला है,
जो आया है यहाँ प्राणपर वह अपने ही खेला है,

फिर न मिलेंगे ये दीवाने, फिर न मिलेगा इनका त्याग—
जल उठ ! जल उठ ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग !

(५)

लपटें हो विनाशकी जिनमें जलता हो ममत्वका ज्ञान,
अभिशापोंके अंगारोंमें झुलस रहा हो विभव-विधान,
अरे क्रान्तिकी चिनगारीसे तड़प उठे वासना महान,
उच्छ्वासोंके धूम्र-पुंजसे ढक जावे जगका अभिमान,

आज प्रलयकी वह्नि उठ पड़े, जिसमें शोला बने विराग—
जल उठ ! जल उठ ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग !

कलकत्तेकी बाज़ारी हिन्दुस्तानी

डा० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, एम० ए०, डी० लिट्०

मैं पेनांगसे आ रहा था। जहाज़पर दो चीनी थे—एक शंघाईकी भाषा बोलनेवाला, दूसरा केन्टनकी भाषा बोलनेवाला। वे एक दूसरेकी बात नहीं समझते थे, इसलिए मुझे उनके दुभाषियेका काम करना पड़ा। शंघाईवाला थोड़ीसी बाज़ारी हिन्दी जानता था, और केन्टोनी थोड़ीसी अंग्रेज़ी। लन्दनकी सड़कोंपर घूमते हुए एक बार मलायाके एक मल्लाहने और एक बार एक गोरे सैनिकने मुझे भारतीय समझकर हिन्दुस्तानी भाषामें सम्बोधन किया था। स्काटलैंडकी पहाड़ियोंपर एक स्काच इंजीनियरिंग-ओवरसियरने और ग्रीसमें कई ग्रीकोंने—जो रैली ब्रदर्सकी कोठीमें काम कर चुके थे—मुझसे हिन्दुस्तानी बोली ही में बात की थी। विदेशोंमें जब मैं किसी भी भारतीयको देखता था, तो हिन्दुस्तानीमें ही पूछता था—"क्या भाई, हिन्दुस्तानी हो?" मेरे इस प्रश्नका उत्तर हमेशा हिन्दुस्तानी ही में मिला करता है, यदि उत्तरदाता लंका-निवासी या दक्षिणी न हुआ। कभी-कभी दक्षिणी भाई भी, कम-से-कम इस प्रश्नका जवाब हिन्दुस्तानीमें ही देते थे। हाँ, बादमें वे आमतौरसे हिन्दुस्तानीमें बातचीत न कर सकनेके लिए माफी मांगते थे।

मगर ये सब लोग जिस हिन्दुस्तानी भाषामें अपने भाव प्रकट किया करते हैं, क्या वह विशुद्ध हिन्दी या उर्दू है? कदापि नहीं। पढ़ने-लिखनेकी साहित्यिक भाषामें और इसमें काफ़ी अन्तर है। हिन्दी-उर्दूकी उत्पत्ति कैसे हुई, इस लेखमें यह विवेचना न करके मैं कलकत्तेकी बाज़ारी हिन्दुस्तानीके सम्बन्ध ही में कुछ कहूँगा। जब रेख़ता—उर्दू—दिल्लीके भद्र समाजकी भाषा हो गई, तब मुग़ल-साम्राज्यके जो उच्च अधिकारी दूरके प्रान्तोंमें तैनात हुए, वे और उनके अनुगामी, नौकर-चाकर और बाल-बच्चे अपने साथ अपनी भाषा भी ले गये। इस प्रकार प्रान्तीय केन्द्रोंमें सरकारी नौकरों और उनके साथ मिलने-जुलनेवाले भद्र समाजकी भाषा भी दिल्लीकी ज़बान ही हो गई। इस तरह लाहौर, लखनऊ, बनारस, पटना, अहमदाबाद, ढाका, मक़सूदाबाद (मुर्शिदाबाद), दौलताबाद और गोलकुंडाके फैशनेबिल समाजमें दिल्लीकी भाषाकी प्रधानता हो गई। दिल्लीसे एकके बाद दूसरे अफसरोंके आते रहनेसे धीरे-धीरे इन स्थानोंमें दिल्लीकी भाषा स्थायी रूपसे स्थापित हो गई। फल-स्वरूप अठारहवीं शताब्दीमें और उसके बाद जब मुग़ल-साम्राज्यका पतन हुआ, और एकके बाद एक करके सब प्रान्त दिल्लीकी अधीनतासे स्वतन्त्र हो गये, उस समय भी उन स्थानोंमें दिल्लीकी बोलीकी प्रधानता बनी रही। राज-दरबार और अधिकारियोंसे यह बोली जनसाधारणमें—जिनका सम्पर्क सरकारसे रहता था—फैली। इस प्रकार बंगालमें हिन्दुस्तानी भाषाका प्रचार हुआ। उस समय तक अदालतोंकी भाषा फारसी थी, इसलिए जो बंगाली सरकारी नौकरी करना चाहते थे, उन्हें पहले तो फारसी सीखनी पड़ती थी, मगर बादमें, विशेषकर अठारहवीं शताब्दीमें, उन्हें हिन्दुस्तानी सीखना भी आवश्यक हो गया। जब अंग्रेज़ोंने बंगालके शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली, तब उन्हें अपने रोज़मर्राके कामोंमें न केवल फारसी और बंगलासे ही काम लेना पड़ा, बल्कि हिन्दुस्तानी सीखना भी आवश्यक हो गया, क्योंकि यहांके मुसलमान अधिकारी इसी भाषाको बोलते थे। इसके अलावा मुर्शिदाबादकी बड़ी कोठियोंके व्यापारी, जिनके हाथमें प्रान्तकी हुंडीवाली और रोज़गार था, प्रायः पंजाब, राजपूताना, अथवा उत्तरभारतके निवासी थे। वे सब हिन्दुस्तानी भाषा ही इस्तेमाल करते थे। इन सब बातोंसे बंगालमें हिन्दुस्तानीका प्रचार हुआ। उत्तर-भारतके निवासियोंने भी, जो अपने-अपने घरोंमें लहँडी, पंजाबी, राजस्थानी, ब्रजभाषा, कनौजी

बुन्देली, अवधी, भोजपुरी और मगही आदि बोलियां बोलते थे, प्रसन्नतासे हिन्दुस्तानीको भाव-विनिमयका माध्यम स्वीकार कर लिया। अंग्रेज़ोंकी अमलदारीके बादसे बंगालमें उत्तरी भारतसे जीविकाकी तलाशमें आनेवालोंका--न केवल समाजकी उच्च-श्रेणीके लोगोंका ही, बल्कि निम्न-श्रेणीके लोग भी, जैसे फेरीवाले, दूकानदार, सिपाही, घरेलू नौकर, साधु आदिका—तांताला बँध गया, जिससे यहां हिन्दुस्तानी बराबर ज़ोर पकड़ती रही। सन् १८०० में जब कलकत्तेके फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना हुई, तब उसमें हिन्दुस्तानी पढ़ानेकी व्यवस्था भी हुई। जर्मन Ketelaer ने लैटिन भाषामें सन् १७१५ में एक हिन्दुस्तानी व्याकरण भी लिखा था जो सन् १७४३ में हालैंडके लेडेन नगरसे प्रकाशित हुआ था। उसमें जिस भाषाका वर्णन था, वह बाज़ारी हिन्दुस्तानी थी, जो अठारहवीं शताब्दीके आरम्भिक भागमें सूरत और मुगल-साम्राज्यके केन्द्रीय ज़िलोंमें बोली जाती थी। बादमें जार्ज हेडले नामी एक अंग्रेज़ने १७७२ में हिन्दुस्तानीपर एक पुस्तक प्रकाशित की थी। सन् १७७६ में लन्दनसे जे० फर्ग्यूसनने एक हिन्दुस्तानी 'डिक्शनरी' और 'ग्रामर' प्रकाशित की।

रेलोंके प्रचारसे उत्तर-भारतके लोगोंकी आमद-रफ्त बंगालमें बढ़ती गई, और दूकानदारी, रोज़गार और मेहनतके कामोंमें इन लोगोंका महत्त्वपूर्ण हाथ होनेसे इनके सम्पर्कमें आनेवाली बंगाली जनताको—विशेषकर कलकत्ते और अन्य बड़े शहरोंमें—इनकी बोलीसे परिचित होना पड़ा। एक तो मारवाड़ी, बिहारी और पूर्बियोंकी बोली वैसे ही विशुद्ध हिन्दुस्तानी नहीं थी, उसपर बंगालियोंके व्यवहारसे उसपर किसी क़दर बंगलाका रंग भी चढ़ गया। बंगालियोंको अपनी बात बोधगम्य बनानेके लिए इन उत्तर-भारतके हिन्दुस्तानियोंको भी अपनी बोलीमें—अज्ञातरूपसे—कुछ रद्दोबदल करना पड़ा। इस प्रकार कलकत्तेकी मौजूदा बाज़ारी हिन्दुस्तानी बंगालियोंमें अन्य प्रान्तवालोंकी बात समझनेकी [illegible] और अन्य प्रान्तवालोंमें बंगालियोंको अपनी बात समझानेकी कोशिशसे स्थापित हुई, फलतः इसमें एक विचित्र खिचड़ी होना स्वाभाविक ही है।

बंगालकी पौने पाँच करोड़की आबादीमें बीस लाख लोगोंकी भाषा हिन्दी या उर्दू है। इसके अतिरिक्त पैंतीस हज़ार राजस्थानी, गुजराती, मराठी और पंजाबी आदि बोलनेवाले हैं, जो प्रायः हिन्दुस्तानीका व्यवहार करते हैं। शहरों और देहातोंमें इन लोगोंकी उपस्थिति ही हिन्दुस्तानीके प्रचारका साधन है।

बंगाली मुसलमानोंके भद्रसमाजमें भी उर्दू सुसंस्कृत भाषा शुमार की जाती है। ढाका-यूनिवर्सिटीमें तो उसे एक Classic भाषाका पद प्रदान किया गया है। मुसलमानोंके मकतब और मदरसे सदासे उर्दू-अध्ययनके केन्द्र रहे हैं, और उनके द्वारा आसपासमें हिन्दुस्तानीका प्रचार होता रहता है। बंगाली मुसलमानोंमें उर्दू जानना तहज़ीबयाफ्ता होनेकी निशानी समझा जाता है। अर्ध-शिक्षित बंगाली मुसलमान यह दिखलानेके लिए कि वह बिलकुल गँवार नहीं है, बाज़ारी हिन्दुस्तानी, या उससे कुछ अच्छी हिन्दुस्तानी सीखते और बोलते हैं। यूरोपियन लोग जिनका काम-काज शहरोंमें होता है, थोड़ीसी बाज़ारी हिन्दुस्तानी बोलना सीखकर बंगालके किसी भी भागमें अपना काम चला सकते हैं। उनके नौकर चाहे वे बंगाली मुसलमान हों, या चटगांवके बुद्ध हों, या आराकानी हों, या उड़िया हों अथवा उत्तर-भारतके हों—सभी—इस बाज़ारी हिन्दुस्तानीको बोल और समझ लेते हैं। हां, मदरासी नौकर अपने मालिकोंसे अंग्रेज़ी बोलते हैं, मगर वे भी आसानीसे हिन्दुस्तानी सीख लेते हैं।

कलकत्ता सार्वदेशिक नगर है, जहां संसारके सभी देशोंके आदमी बसते हैं। कलकत्ते और हावड़ेकी तेरह लाखकी आबादीमें बंगाली-भाषा-भाषी आधेसे कुछ अधिक—५३ प्रतिशत--हैं। बिहार और युक्तप्रदेशके हिन्दुस्तानी बोलनेवाले ३७·२ प्रतिशत हैं। इसके अतिरिक्त ७,००० राजस्थानी बोलनेवाले, ३००० पंजाबी बोलनेवाले, ६००० गुजराती

बोलनेवाले और १५०० नेपाली बोलनेवाले हैं, मगर ये सब हिन्दुस्तानी जानते हैं। इस प्रकार कलकत्तेकी दो भाषाएँ हैं—बंगला और हिन्दुस्तानी। नगरके कई भागोंमें—विशेषकर व्यापारिक हिस्सोंमें बंगलाकी अपेक्षा हिन्दुस्तानीकी प्रधानता है। कलकत्तेमें रहनेवाले उत्तरी भारतके लोगोंमें बहुतसे लोग बंगला नहीं बोल सकते, यद्यपि उनमें से बहुतेरे बंगला समझ लेते हैं। मगर कलकत्ते नगरमें रहनेवाले प्रायः सभी बंगाली टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं। कोई बंगाली सज्जन जब अपने उड़िया नौकरसे बात करेगा, तब बंगला भाषामें बोलेगा, मगर जब वह अपने मगही या मैथिल नौकरसे बात करेगा, तो हिन्दुस्तानी भाषा काममें लायेगा। यद्यपि बंगला और बिहारी बोलियोंमें बहुत कुछ समानता है, वे एक ही परिवारकी हैं, मगर इन दोनों भाषा-भाषियोंके पारस्परिक भाव-परिवर्तनका माध्यम दिल्लीकी ज़बान—विकृत रूपमें—बनती है। कलकत्तेके किसी धनी बंगाली परिवारको ले लीजिए। उसके घरमें कम-से-कम आधी दर्जन विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं। घरके मालिक सम्भवतः कलकत्तेकी बोलचालकी बंगला बोलते होंगे। उनका मैनेजर पूर्वीय बंगालका—पूर्वीय बंगला बोलनेवाला—व्यक्ति होगा। नौकरानियाँ प्रायः पश्चिमी बंगालकी—विशेषकर मिदनापुर या बांकुड़ा ज़िलेकी—होंगी। नौकर प्रायः बंगाली नहीं होते। यदि बंगाली हुए, तो वे भी मिदनापुर या बांकुड़ा ज़िलेके होंगे, अन्यथा वे बिहारी या उड़िया होंगे। रसोइया पश्चिमी बंगालका या उड़िया अथवा कभी-कभी मैथिल ब्राह्मण होगा। माली उड़िया या बिहारी होगा। साईस नीच जातिके बिहारी या युक्त-प्रदेशके पूर्वीय ज़िलोंके होंगे। कोचवान पूर्वीय हिन्दी बोलनेवाला मुसलमान होगा। मोटर-ड्राइवर बंगाली हिन्दू या पंजाबी सिख होगा। दरबान आम तौरसे भोजपुरी ब्राह्मण, या कभी-कभी सिख, अथवा गुरखा होता है। ये सब लोग—केवल बंगाली और उड़ियोंको छोड़कर—आपसमें बाज़ारी हिन्दुस्तानी ही में बात करते हैं। नया आया हुआ देहाती कुछ दिन तक अपनी बोली बोलता है, मगर अन्य लोग उसकी बोली नहीं समझ पाते, इसलिए उसे मजबूर होकर शीघ्र ही हिन्दुस्तानी सीख लेनी पड़ती है।

कलकत्तेकी भीड़में—रेसके मैदानमें, फुटबालके खेलमें, ट्रामों और बसोंपर—बंगाली, गुजराती, सिख, अफ़ग़ानी, चीनी, तामिल, बग़दादी यहूदी, आर्मीनियन और ऐंग्लो-इंडियन आदि सभी मिले-जुले दिखाई देते हैं। ये सब एक दूसरेसे बातें, हँसी-दिल्लगी और कहा-सुनी आदिमें बाज़ारी हिन्दुस्तानी ही व्यवहार करते हैं। इनमें से कोई भी—यहां तक दिल्लीका रहनेवाला भी जो इस भीड़में आ फँसता है—व्याकरणकी शुद्धताका खयाल नहीं रखता। यही बाज़ारी हिन्दुस्तानी भारतके जनतन्त्रकी (Democratic) भाषा है। यह एक जीती-जागती और ज़ोरदार ज़बान है।

जब कोई बोली वास्तवमें सर्वसाधारण जनतान्त्रिक बोली और हाट-बाज़ारकी बोली बनती है, तब वह किसी एक संस्कृतिविशेषके बन्धनसे बँधी नहीं रहती। वह उच्चारण, शब्द-विन्यास और मुहाविरोंमें भी किसी विशेष स्टैंडर्डपर स्थिर नहीं रखी जा सकती। हां, जिस आदि भाषासे यह बोली निकलती है, उसकी इस सजीव बोलीमें कुछ विशेषताएँ ज़रूर होती हैं, वे ही उसे आदि भाषासे सम्बन्धित रखनेवाली कड़ी हैं। कलकत्तेकी बाज़ारी हिन्दुस्तानी एक प्रकारसे विशुद्ध हिन्दी और बंगलाका समझौता है। यहांकी हिन्दुस्तानी असलमें पूर्वीय युक्त-प्रदेश और बिहारके निरक्षर जनसाधारणकी व्याकरणहीन हिन्दी है, जिसपर बंगलाके उच्चारण, शब्दों और मुहाविरोंका रंग चढ़ा है।

शुद्ध हिन्दी-भाषासे बाज़ारी हिन्दुस्तानीका अन्तर बोलनेवालेकी मातृ-भाषा और उसके हिन्दी-ज्ञानके परिमाणके अनुसार घटा-बढ़ा करता है। बंगाली, अंग्रेज़, उड़िया, तामिल, चीनी आदि हरएक व्यक्ति इस भाषाको व्यवहार करते समय स्वभावतः उसपर अपना विशेष रंग चढ़ा देता है।

मगर इतना होते हुए भी इन सबकी बोलियोंकी तहमें एक साधारण आधार है, जो उन्हें बोधगम्य बनाता है। यह आधार इस बातमें है कि व्याकरणके रूपोंका कम-से-कम व्यवहार किया जाय, और रूढ़ि शब्दोंका व्यवहार न करके साधारण शब्दों और साधारण मुहाविरोंके द्वारा कम-से-कम शब्दोंमें बात कही जाय।

यह मानना पड़ेगा कि शुद्ध, बामुहाविरा हिन्दुस्तानी सीखना आसान बात नहीं है। हिन्दुस्तानीके व्याकरणकी जटिलता, उसके शब्दोंकी विभिन्नता और मुहाविरोंकी बाहुल्यता आदिके कारण, हिन्दुस्तानी सीखना, फारसी सीखनेसे कहीं अधिक कठिन है। पुराने समयमें बंगालके मुसलमान आपसके पत्र-व्यवहारमें उर्दूका व्यवहार न करके फारसीका व्यवहार ही करते थे। जिनकी मातृ-भाषा हिन्दुस्तानी नहीं है, उन्हें काफ़ी सावधानी और परिश्रमके बाद शुद्ध हिन्दुस्तानी बोलना आता है। कवि मीर तक़ी तो यहाँ तक कहते थे कि दिल्लीवालोंके अतिरिक्त किसीको उर्दू-भाषा नहीं आ सकती। एक अन्य उर्दू कविने भी कहा था :—

''बाज़ोंका गुमाँ है कि हम अहले-जबाँ हैं,
दिल्ली नहीं देखी, ज़बाँ-दाँ ये कहाँ है ?''

जिस भाषामें केवल दो ही लिंग हैं, जिसके शब्दोंके विभक्ति-रूप कठिन हैं, जिसकी क्रिया-रचना जटिल है तथा जिसमें संस्कृत, अरबी, फारसी, आदिके शब्द मिले हैं, उसका भारतके समान महादेशकी राष्ट्र-भाषा या कौमी ज़बान बनना कठिन है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उसमें सरलता उत्पन्न की जाय। बेपढ़े-लिखे, जनसाधारणने अपनी आवश्यकताके अनुसार—व्याकरण और विद्वानोंकी परवा किये बिना—उसमें सरलता पैदा कर दी है। और वह सरल भाषा ही बाज़ारी हिन्दुस्तानी है। हिन्दुस्तानीको राष्ट्र-भाषाका पद प्राप्त करनेमें अपनी बहुतसी प्रान्तीय विशिष्टताओंका त्याग करना होगा, और अखिल भारतीय जामा पहनना होगा। राष्ट्र-भाषाका आकार-प्रकार देशके जनसाधारणके द्वारा—कलकत्ते-जैसे नगरोंकी सड़कों और बाज़ारोंमें जुड़नेवाली भीड़के द्वारा—होगा।

अच्छा, अब ज़रा इस बाज़ारी हिन्दुस्तानीकी बानगी देखिये। सन् १८६७ के एक बंगाली अखबारमें निम्न-लिखित विज्ञापन प्रकाशित हुआ था :—

इस्ताहार

''सब कोईको खबर दिया जाता है कि शहर कलकत्ताका उत्तर डिवीज़नका शामिल मोक़ाम अमरतल्ला गोबिनचन्द धर लेनेमें इगारह नम्बर-का जमीन, ब्लाक नम्बर इगारह, होल्डिंग नम्बर एक सौ तिरानब्बे, ओ जमीनका नाप पांच काठा, उसका कुछ कमी होय और बेशी होय, ओ जमीन और सुरतीबागानके रहनेवाला उसका मालिक बाबू हरीनारायण चक्करबर्ती बेचने मांगता है। ये बी इस्ताहार दिया जाता है, जो कोईको कुछ केलेम याने दावी रहे, याने अगर ओ जमीन किसीका पास बंधक रहे, वह सक्सको चाहिये जे नीचे सही करनेवाला लोगोंको दस रोजका बीचमें इसका हाल जनावे। ये मियाद जानेसे कुछ दावी नेही सुना जायेगा और ओ अदालतमें बी मनज़ूर नही होयेगा।''

कलकत्तेमें मछलीवालोंका एक चलता-फिरता मेला होता है, जिसमें तरह-तरहके स्वांग दिखाये जाते हैं। यह 'जालिया-पाड़ा स्वाँग' कहलाता है। इसमें एक काबुली सूदखोरके स्वांगमें काबुली कहता है—

''मेरी नाम गाफूर मियाँ। हम जब मुलुकसे आया, साथे लाया थोड़ा-से हींग।

बड़े बाजारका सड़कमें बैठके, दिनभर ओही चीज़ बेचके नफा-से पाँच पैसा लेके, गुजराते हम दिन।

जे रोज एक ठो रुपिया हुआ, ओही रोज हम कसम खाया, 'ये ही रुपेया तोड़ाये, तो हम हराम-खोर'।

एक आदमी नाम रामू कहार, रूपिया-ठो उसको दिया उधार, रोज दू पैसा सूद दिया छ बरिस भोर।

सूदमें सब मिला जेतना, उधार हम दिया उतना, सूद लिया रुपयामें चार आना।

अभी हम महाजन हुआ, महीनार्मे सूद मिलता तीन सौ रुपेया, जिसको देता, लेता उसको गोरू, जोरू, धोती और उड़ना।

इये साला बदमास, रुपिया लिया नौ मास, सूद दिया थोड़ा-बहुत दू सौ रुपेया।

और नेही सूद देता—ओही वास्ते सालाको गाली देता, और डंडासे ठंडा करने येही दोस्त लोगको लाथा, ले आओ साला रुपिया।"

कलकत्ता नगरके रंग-ढंगके ऊपर इसी स्वाँगमें एक परदेशी (उत्तरीय भारतवासी) कहता है—

"दिलमें एक भावनासे कलकत्तामें आया,
कैसन कैसन मजा हम हियाँ देखने पाया।
आरी समाज, ब्राह्म समाज, गिरजा, महजीद
एक लोटामें मिलता—दूध, पानी सब चीज।
छोटा बड़ा आदमी सब, बाहर करके दांत,
झपट मारके बोलता है, अंगरेजीमें बात।
उड़िया आदमी लोग अंगरेजीमें बोलता है—
'कम हियर बाबू!
कलकत्ताके काम देखके हम भी हुआ काबू।" आदि।

एक अन्य गीत बंगालियोंके सम्बन्धमें है—

"ऐसा कलकत्ता, बाबू कभी ना देखा जी।
मुंडा छोड़के अंडा खाता, होटलमें सब कोई जाता जी।
गंगा माई नगीचमें बहता, कभी न उसमें नहाता जी।
बोलता—उसको मैला पानी बदन मैला करता जी।
देवता ब्राम्हण मानता नेही, बोलता भुतनी कालीमाई।
हिन्दुआनी छोड़ दिया सब, खिरिस्टानी नहीं सकता जी।
दारू पीके पौंट-पौंट, सब बाबूका मेजाज छोटा लाट।
जोरूसे कजिया, माईको लाठी, बापको साला बोल्ता जी"

× × ×

एक बंगाली सज्जन, जिन्होंने कभी हिन्दुस्तानी नहीं सीखी, मगर बिहारियोंके संसर्गसे जो हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं, एक बाइबिलके क़िस्सेको इस प्रकार बयान करते हैं—

"एक आदमीका दू ठो लेड़का था। उससे छोटा लेड़का उसका बापको बोला—'बाबा, हमारा विषयका (विषय=सम्पत्ति) हिस्सा हमको दे दीजिए।' ओही बात सुनके उसको बाबा दोनों लेड़काको भाग-बटवारा करके दिया था। उसको थोड़ा दिन बाद छोटा लेड़का उसको विषयका हिस्सा एक साथ करके दूर देसपर चला गिया था और उस देसमें बदखियाली करके सब विषय खरच कर दिया।"

इसी कथाको एक बेपढ़े मैथिल रसोइयेने हिन्दुस्तानीमें इन शब्दोंमें कहा था—

"एक आदमीको दो लड़का रहा। छोटका बापसे कहा कि हमरा हिस्सा तुम दे दो। बाप लड़कनका हिस्सा बाँट दिया। फिर छोटा लड़का अपना सभ कुछ लेकर परदेस चला गिया, और उहाँ नवाबीसे सब उड़ा दिया।"

वाणी

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बूँद-बूँद वर्षाके रूपमें आकाशके बादल धरतीपर उतरते हैं—धरतीको पकड़ाई देनेके लिए। ऐसे ही, कहींसे स्त्रियाँ आती हैं पृथ्वीपर—बन्धनोंमें बँधनेके लिए।

उनके लिए कम जगह की—तंग--दुनिया है,—थोड़े आदमियोंकी। उतने ही में उनका अपना सब-कुछ अँट जाना चाहिए—उनकी अपनी सब बातें, सब व्यथाएँ, सब चिन्ताएँ। इसीसे उनके सिरपर घूँघट है, हाथोंमें कंकण हैं, घरमें आँगनका घेरा है। स्त्रियाँ सीमा-स्वर्गकी इन्द्राणी हैं।

भला, किस देवताके कौतुक-हास्यकी तरह अपरिमित चंचलता लिये हुए, हमारे मुहल्लेमें, उस छोटीसी लड़कीका जन्म हुआ? मा उसे गुस्सेमें कहती है—"डाइन"; बाप उसे हँसकर कहता है—"पगली"।

वह भागते हुए झरनेका पानी है, शासनके कंकड़-पत्थरोंको लाँघ-लाँघकर चलती है। उसका मन मानो वेणुवृक्षकी ऊपरकी डालीका पत्ता है, हमेशा फरफर काँपता रहता है।

२

आज देखूँ, तो, वह अशान्त लड़की छज्जेकी रेलिंगपर झुककर चुपचाप खड़ी है—वर्षा-शेषके इन्द्र-धनुषकी तरह। उसकी बड़ी-बड़ी दो काली आँखें आज अचंचल हैं—तमालवृक्षकी डालीपर मेहसे भीगे पंखवाली चिरैयाकी तरह।

उसे ऐसी स्थिर कभी नहीं देखा। मालूम होता है, नदी मानो चलते-चलते एक जगह ठिठककर सरोवर हो गई है।

३

कुछ दिन पहले धूपका शासन था प्रखर;

दिगन्तका चेहरा फक पड़ गया है; पेड़के पत्ते सूखी हल्दी-से हताश्वास हो गये हैं।

इतनेमें सहसा काले बिखरे हुए पागल बादल आकाशके एक कोनेमें तम्बू गाड़कर जम गये। सूर्यास्तकी रक्त-रश्मियाँ मियानके भीतरसे तलवारकी तरह निकल पड़ीं।

आधी रातको देखूँ, तो, दरवाजे खड़खड़ शब्द करते हुए काँप रहे हैं। सारे शहरके घूँघटको आँधीकी हवाने—चोटी पकड़कर—झकझोर डाला।

उठकर देखा, तो, गलीकी बत्ती घनघोर वर्षामें शराबीकी गदली आँखोंकी तरह दिखाई दी। और गिरजाकीघड़ीका शब्द मानो वर्षाके शब्दकी चादर ओढ़कर आ धमका।

सवेरे जलकी धारा और भी तेज हो गई—घामको उसने उठने ही नहीं दिया।

४

ऐसी बदलीमें हमारे मुहल्लेकी वह लड़की छज्जेपर रेलिंग थामे चुपचाप खड़ी है।

उसकी बहनने आकर उससे कहा—"मा बुलाती हैं।" उसने सिर्फ जोरसे सिर हिलाया, उसकी वेणी हिल उठी; कागजकी नाव हाथमें लिये उसका भाई आया, बहनका हाथ पकड़कर खींचने लगा। उसने झटकेसे हाथ छुड़ा लिया। तो भी उसका भाई खेलनेके लिए खींचातानी करने लगा। भाईके गालपर उसने एक चपत जमा दी।

५

मेह बरस रहा है। अँधेरा और भी घना हो उठा। लड़की ज्यों-की-त्यों खड़ी रही।

आदियुगमें सृष्टिके मुँहसे पहली बात निकली थी जलकी भाषामें, हवाके कंठसे। लाखों-करोड़ों वर्ष पार होकर उस स्मरण-विस्मरणकी अतीत बातने आज वर्षा-बादलके कल-स्वरमें उस लड़कीको आकर पुकारा। इसीसे वह आज समस्त सीमाओंके बाहर जाकर खो गई है।

कितना बड़ा काल है; कितना बड़ा संसार है, पृथ्वीमें कितने युगोंकी, कितनी जीव-लीलाएँ हैं। उस सुदूरने, उस विराटने, आज इस लड़कीके मुँहकी ओर देखा—बादलोंकी छायामें, वर्षाके कलशब्दमें।

इसीसे वह बड़ी-बड़ी आँखें खोलकर निस्तब्ध खड़ी रही,—मानो अनन्तकाल ही की प्रतिमा है वह।

—धन्यकुमार जैन

वोटाधिकार-कमेटीकी सिफ़ारिशें

श्रीराम शर्मा

गोलमेज़-कानफ़रेंसके दूसरे अधिवेशनमें कांग्रेसके प्रतिनिधि महात्मा गांधी भी शामिल हुए थे। कानफ़्रेंसमें कई उप-समितियाँ थीं, जो प्रश्नविशेषपर विचार करती थीं। उनमें से एक 'वोटाधिकार-उपसमिति' थी। उसने 'भारतीय वोटाधिकार-कमेटी'की नियुक्तिके लिए सिफ़ारिश की थी, और उसीके अनुसार गोलमेज़-कानफ़रेंसके दूसरे अधिवेशनकी समाप्तिपर दिसम्बर सन् १६३१ में, प्रधान मन्त्रीकी घोषणाके अनुसार, एक कमेटी बनी। भारत-उपसचिव लार्ड लोथियन उसके सभापति बनाये गये, और सर जॉनकर उप-सभापति। इन दो सदस्योंको छोड़कर पार्लामेंटके छै मेम्बर भी इस कमेटीके सदस्य थे। शेष दस—श्री चिन्तामणि, श्री ताम्बे, श्री बखले (मज़दूर-प्रतिनिधि), डा० अम्बेदकर, दीवानबहादुर ए० रामस्वामी मुदालियर, श्रीमती सुब्बारायन, खानबहादुर मौलवी अज़ीज़ुलहक़, सर मुहम्मद याकूब, सर ज़ुलफ़िक़ार अलीखां और सर सुन्दरसिंह मजीठिया—भारतीय सदस्य थे।

गोलमेज़-कानफ़रेंसकी वोटाधिकार-उपसमितिकी सिफ़ारिश (महात्मा गांधी जिसके विरोधी थे) के आदेशानुसार प्रधान मन्त्रीने लार्ड लोथियनको कमेटीकी कार्यवाहीके विषयमें एक आदेश—पत्र—दिया, जिसकी मुख्य बातें ये थीं :—

(१) कुछ संरक्षणके साथ भारतमें उत्तरदायित्वपूर्ण संघ-शासनका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है, और प्रान्तोंको अधिक-से-अधिक प्रान्तीय स्वतन्त्रता दे दी जायगी, इसलिए, वोटाधिकारको इतना बढ़ाना चाहिए, जिससे भारतीय जनताका पूरा प्रतिनिधित्व व्यवस्थापिका सभाओंमें हो सके। वर्तमान वोटाधिकार-प्रणालीमें ब्रिटिश भारतके केवल तीन प्रतिसैकड़ासे कम ही लोगोंको वोटाधिकार

(२) वोटाधिकार-सिद्धान्तका ध्येय तो बालिग़ वोट है; पर व्यावहारिक कठिनाइयोंके कारण बालिग़ वोटका अधिकार नहीं दिया जा सकता, इसलिए, वोटाधिकार कम-से-कम दस प्रतिसैकड़ा और अधिक-से-अधिक पचीस प्रतिसैकड़ा बढ़ा देना चाहिए। अधिक-से-अधिक वोटाधिकार देनेकी दृष्टिसे समूह-प्रणाली (Group System) वोटाधिकारकी आयोजनाके स्थापनपर विचार करना चाहिए। अर्थात् उन सब बालिग़ोंका जिनको प्रत्यक्ष (Direct) वोट देनेका अधिकार नहीं है, बीस-बीसके समूहमें वर्गीकरण करना चाहिए, और उस वर्गमें से उन्हें एक प्रतिनिधि चुनना चाहिए। इस प्रकार चुने हुए वोटरोंको प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंके लिए वोट देनेका अधिकार होना चाहिए।

(३) शहर और देहातके वोटाधिकारमें वर्तमान भेद, शिक्षाके आधारपर वोटाधिकार, स्त्रियोंके अधिक प्रतिनिधित्व, विशेष निर्वाचन-क्षेत्र, सैनिक सेवापर वोटाधिकार, कई प्रान्तोंमें दूसरी व्यवस्थापिका सभा (Second Chamber) और मज़दूरोंका उचित प्रतिनिधित्व किस प्रकार बढ़ाया जाय—इन सब बातोंकी विवेचना होनी चाहिए।

(४) अछूतोंके लिए नवीन शासनमें काफ़ी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। उनके प्रतिनिधि नामज़द नहीं होने चाहिए। इस बातकी जाँच होनी चाहिए कि उनका प्रतिनिधित्व किस प्रकार बढ़ाया जाय, और उनको संयुक्त, या पृथक निर्वाचन मिलना चाहिए, या नहीं।

(५) वर्तमान साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचनको रद्द करना, अथवा क़ायम रखनेकी सलाह देना, 'वोटाधिकार-कमेटी' के अधिकारसे बाहरकी बात है।

प्रजसत्तात्मक शासनकी नींव बालिग़ वोटपर है, और

कहा गया था। ब्रिटिश सरकारने बालिग़ वोटके सिद्धान्तको तो स्वीकार किया; पर वोटाधिकार-कमेटीको आदेश हुआ कि कम-से-कम दस और अधिक-से-अधिक पचीस प्रतिसैकड़ा जनसंख्याको वोटाधिकार मिलना चाहिए। जब वोटाधिकारकी सीमा बाँध दी जाय, तो बालिग़ वोटकी खुली और चौड़ी सड़कपर कोई कैसे चल सकता है? इस दृष्टिसे हम लार्ड लोथियनको नहीं, वरन गोलमेज़-कानफ़रेंसकी गोल-मोल बातों और प्रधान मंत्रीको मताधिकार-कमेटीके इस संकीर्ण जाँच-क्षेत्र-निर्णयका दोषी ठहराते हैं।

जब वोटाधिकार-कमेटी भारतवर्षमें वोटाधिकारपर जाँच करने आई, और जब उसने प्रश्न-पत्र (Questionnaire) प्रकाशित किया, तब हमारी यह धारणा थी कि कमेटीको जो कुछ करना है, वह तो तै ही हो चुका है। गवाही लेने और जाँच करनेका तो सब कोरा दिखावा है, क्योंकि जब सन् १९१९ में वोटाधिकार-प्रश्नकी जाँचके लिए लार्ड साउथबराकी अध्यक्षतामें एक कमेटी आई थी, तब उस कमेटीके उप-प्रधान सर फ्रैंक स्लाईने एक सज्जनसे कहा था—"कमेटीको जो कुछ करना है, वह तो पहले ही निश्चय हो चुका है। राजनैतिक प्रवृत्तिके लोगोंको सन्तुष्ट करनेके लिए हमें घूमना पड़ रहा है।"

दूसरी आशंका यह थी कि कमेटी समूह-प्रणाली-वोटाधिकारकी स्थापनाके लिए सिफ़ारिश करेगी। कई प्रान्तोंमें दूसरी व्यवस्थापिका सभा (Second Chamber) के लिए ज़ोर देगी; हिन्दुओंको छिन्न-भिन्न करनेके लिए अछूतोंके पृथक निर्वाचन-क्षेत्र बनेंगे, और वर्तमान विशेष निर्वाचन-क्षेत्रोंको और दृढ़ कर दिया जायगा, अर्थात् वोटाधिकार इस प्रकारका होगा कि प्रजासत्तात्मक शासन-प्रणालीका पुतला तो दिखाई पड़े; पर वह बेजान हो।

मताधिकार-कमेटीके एक सदस्यसे, जो पार्लामेंटके मेम्बर भी हैं, हमसे घंटों बातें हुईं। समूह-प्रणालीजन्य वोटाधिकारके दोषोंपर ख़ासी मग़ज़पच्ची हुई। किसानों और ग़रीबोंका कितनी बाधक होगी—इन बातोंपर ख़ूब ही दलील और तक़रीर हुई; पर वे महाशय तो समूह-प्रणाली-वोटाधिकारपर फ़िदा थे, और उसे स्वराज्यकी सीढ़ी समझे बैठे थे। प्रान्तोंमें दूसरी व्यवस्थापिका सभाके भी क़ायल थे। अन्तमें मैंने कहा—"इन बातोंमें क्या रखा है? आप लोगोंको जो कुछ करना है, वह तो आप 'साउथबरा' कमेटीकी भाँति सब पहले ही निश्चय कर चुके हैं। अब यह गवाही लेनेका अभिनय हो रहा है।" यह बात सुनकर वे तिलमिला गये, और दुखी होकर बोले—"यह बात सर्वथा झूठ है। हम लोगोंने अभी कोई राय क़ायम नहीं की।" उनको भारतवासियोंकी इस भावनापर बड़ा खेद हुआ, और मैंने उन्हें उस भावनाके कारण बतलाये।

कमेटीकी रिपोर्ट पढ़नेके उपरान्त हम इस नतीजेपर आये हैं कि लोथियन-कमेटी साउथबरा-कमेटीकी भाँति सब कुछ तै करके नहीं आई थी, नहीं तो वह समूह-प्रणाली-वोटाधिकारका विष वृक्ष लगा जाती। लार्ड लोथियनने प्रधान मन्त्रीकी समूह-प्रणाली-वोटाधिकार योजनाका मूलोच्छेद कर दिया, और मेरे मित्र अंग्रेज़ एम० पी० समूह-प्रणाली-वोटाधिकारके विरोधी ही नहीं हुए, वरन् उन्होंने बड़े-बड़े नगरोंमें बालिग़ वोटाधिकारके लिए भी राय दी, और रिपोर्टमें इस विषयका एक पृथक नोट भी लिखा। इसके लिए लोथियन-कमेटी (मताधिकार-कमेटी) बधाईकी पात्र है; पर इस बधाईके मानी यह नहीं हैं कि हम कमेटीकी सिफ़ारिशोंसे सन्तुष्ट हैं। हमारा ख़याल है कि भारतीय स्वतन्त्रताका कोई भी हामी मताधिकार कमेटीकी-सिफ़ारिशोंसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। प्रान्तोंमें दूसरी व्यवस्थापिका सभाके लिए उसने पक्ष और विपक्षके मतोंको बस लिख दिया भर है। लोथियन-कमेटीके सामने हमने गवाहीमें कहा था—जिरहमें कोई भी सदस्य हमें विचलित न कर सका—कि प्रान्तोंकी दूसरी व्यवस्थापिका सभासे किसान और ज़मींदारोंके बीच घरेलू युद्ध-सा छिड़ जायगा। भले और लोकप्रिय ज़मींदारको

जितनी किसी दूसरे सदस्यको। साथ ही दूसरी व्यवस्थापिका सभा स्थापनाके मानी हैं एक हाथसे अधिकारोंको देना, दूसरेसे, उसी समय, छीन लेना।

हमारा खयाल है कि लोथियन-कमेटीने प्रान्तीय सरकारोंके मसविदोंका अधिक खयाल किया है, और ग़ैर-सरकारी गवाहोंके विचारोंपर उतना ध्यान नहीं दिया गया, जितना कि प्रान्तीय सरकारोंके विचारोंका। कहनेको तो 'मताधिकार-कमेटी' की रिपोर्टके साथ आनेवाले सारमें (जो समाचारपत्रोंके लिए प्रकाशन-विभागके अध्यक्षकी ओरसे भेजा गया है) कहा गया है कि "एक दलको छोड़कर कमेटीको भारतवर्षमें सब भिन्न-भिन्न मतवालोंकी सहायता प्राप्त हुई, और उस दलके विषयमें कमेटीको इस बातसे सहायता मिली कि उस दलके विचार सबको मालूम ही थे।" (Except in the case of one party they had the assistance of all shades of opinion in India and in the case of that party were assisted by the fact that its views were already on public record. इसके मानी यह हुए कि यदि वह दल—कांग्रेस—मताधिकार-कमेटीसे सहयोग करता, तो भी वही सिफ़ारिशें होतीं। तो फिर बेचारे माडरेटोंको ही क्यों कष्ट दिया गया, और ग़ैर-सरकारी गवाहोंके भत्तेमें खज़ानेका—ग़रीबोंका—रुपया क्यों फूँका गया? माडरेटोंके सहयोगके बिना भी कमेटीकी वही सिफ़ारिशें होतीं, जो अब हैं। सरकारी प्रकाशन-विभागके रिपोर्ट-सारके उपर्युक्त वाक्यसे सर रलाईकी बातका स्मरण हो आता है। हम लार्ड लोथियनकी योग्यता, कल्पना, ईमानदारी और भारतको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टाके क़ायल हैं; पर एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

कमेटीने बालिग़ वोटाधिकार देनेकी सिफ़ारिश इसलिए नहीं की, क्योंकि बालिग़ वोटाधिकारके इस समय होनेसे चुनावोंका होना सम्भव नहीं। चुनावसे उत्तेजना होती है; प्रेसाइडिंग अफ़सर और उसके चार क्लार्क और पुलिसकी कुल १६४ हज़ार पुलिसके आदमी हैं, और इस हिसाबसे यदि प्रत्येक पोलिंग स्टेशन एक हज़ार वोटरोंके वोट डाल सके, तो एक दिनमें २॥ करोड़से अधिक वोट नहीं पड़ सकेंगे। फिर स्त्रियोंके वोटकी भी दिक़्क़त है।

हमारे खयालसे ये सब लचर दलीलें हैं। यदि सरकार आलिया आर्डिनेंस जन्य उत्तेजनाको सँभाल सकती है, और संसारकी बड़ी-से-बड़ी शक्तिसे भिड़नेको तैयार रहती है, तो पुलिस और सरकारी कर्मचारियोंकी कमीके कारण बालिग़ वोटाधिकारको न रोकना चाहिए था। इसका तात्पर्य यह हुआ कि लाड़ली पुलिस और सरकारी कर्मचारियोंकी संख्या बढ़ानेसे ही बालिग़ वोटाधिकार देनेमें सुविधा होगी। रूस छ-सात वर्षमें निरक्षरता मिटा सकता है; पर भारतवर्षमें शिक्षाकी इस गतिसे सैकड़ों वर्षों तक शिक्षाका उचित प्रचार नहीं हो सकता। यदि यह मान भी लिया जाय कि बालिग़ वोटाधिकार वर्तमान स्थितिमें अमलमें नहीं आ सकता, तो फिर लोथियन-कमेटीको यू० पी० मताधिकार-कमेटीकी इस रायको तो मान लेना चाहिए था कि पचास हज़ार या उससे अधिक जनसंख्यावालों नगरोंमें बालिग़ वोटाधिकार हो जाना चाहिए। कमेटीके अल्पमतवाले सदस्यों—श्री चिन्तामणि, ताम्बे और बखले—ने तो अपने पृथक नोटमें एक बड़ी साधारण राय दी थी। उन्होंने लिखा है कि एक लाख, या एक लाखसे अधिक, जनसंख्यावाले नगरोंमें—जिनकी संख्या देश-भरमें केवल तीस है—बालिग़ वोटाधिकार हो जाना चाहिए। इस सम्मतिका समर्थन श्रीमती सुब्बारायन और मेजर मिलनर तकने किया; पर इस विचारसे कि देहात और शहरोंमें प्रतिनिधित्वका अनुपात समान रहे—यह सम्मति अस्वीकार रही! शहर आधुनिक युगमें शिक्षा, धन और राजनैतिक जाग्रतिका केन्द्र हो रहे हैं। ऐसी अवस्थामें बालिग़ वोटाधिकार बड़े-बड़े शहरोंमें हो जाता, तो बालिग़ वोटाधिकारका श्रीगणेश तो हो जाता। होनेको तो, न्यायकी दृष्टिसे, देशके शासनमें उस व्यक्तिका भी हाथ होना चाहिए, जो निरक्षर है

बालिग़ वोटाधिकारसे एक लाभ यह है कि विशेष निर्वाचन और अछूत-समस्याका हौआ भी दूर हो जाता। बालिग़ वोटाधिकारसे लोगोंकी यह भी शंका मिट जाती कि सरकार हिन्दुओंको छिन्न-भिन्न करके मुसलमानोंकी पीठ ठोक रही है।

रिपोर्टसे प्रकट होता है कि लोथियन-कमेटीने ४ फ़रवरी सन् १९३२को निश्चय किया कि अछूत (Depressed) लोग कौन हैं। कमेटीने अछूत उन्हींको माना है, जिनके छूनेसे लोगोंको छूत लगती है, जो हिन्दू-मन्दिरोंके अन्तरतम भागमें प्रवेश नहीं कर सकते, या जिनके निकट आनेसे छूत लगती है। इस परिभाषाके अनुसार, कमेटीकी रायमें, भारतवर्षमें कुल ३ करोड़ ५० लाख अछूत हैं। अछूतोंकी मर्दुमशुमारी कई बार की गई; प्रत्येक गणनामें अछूतोंकी संख्यामें बड़ा फ़र्क़ रहा, और युक्तप्रान्तमें तो सबसे अधिक फ़र्क़ था। मर्दुमशुमारीके कमिश्नरकी गणनाके हिसाबसे यू० पी० में सन् १९३१ में अछूतोंकी संख्या एक करोड़ २६ लाख थी, और प्रान्तीय मताधिकार-कमेटीके हिसाबसे केवल ५८ लाख एक हज़ार। कमेटीके विचारसे अन्य प्रान्तोंकी अछूतोंकी संख्या ठीक है, और उनकी संख्या इस प्रकार है :—

मदरास	७१ लाख
बम्बई	१७ ,,
मध्यप्रदेश	२९ ,,
बिहार और उड़ीसा	४३ ,,
आसाम	६ ,, ५० हज़ार

निम्नांकित तालिकासे यह बात और भी भलीभाँति प्रकट हो जायगी, और साथमें भिन्न-भिन्न रिपोर्टोंकी संख्याका भेद भी मालूम हो जायगा। संख्या दस लाखमें है। इस तालिकामें बिहार और उड़ीसाकी संख्या विकटतम है और बंगालकी संख्या प्रान्तीय सरकारके अनुमानसे

प्रान्त	साउथबरा-कमेटी	हेनरीशार्प १९१७	मर्दुमशुमारी कमिश्नर १९२१
मदरास	६·४	५·७	६·४
बम्बई	·६	१·६	२·८
बंगाल	९·९	६·७	९
युक्तप्रान्त	१०·१	८·४	९
पंजाब	१·७	२·१	२·८
विहार और उड़ीसा	९·४	१·२	८
मध्यप्रान्त	३·८	३	३·३
आसाम	·३	२.७	२
योग	४२·२	३१·५	४३·३

	साइमन कमीशन	मर्दुमशुमारी कमीश्नर १९३१	प्रान्तीय सरकार १९२७	प्रान्तीय कमेटी १९३२
मदरास	६·५	७	७·१	७·१
बम्बई	१·५	१·८	१·७	१·७
बंगाल	११·५	×	११·७	·०७
युक्तप्रान्त	१२	१२·६	६·८	·६
पंजाब	२·८	१·३	१·३	१·३
बि० और उड़ीसा	५	३·७	५·८	४·३
मध्यप्रान्त	३·३	२·९	२·९	२·९
आसाम	१	१·९	·६५	·६५
	४३.६	×	३७.४५	१८.६२

अब प्रश्न रहा उनके प्रतिनिधित्वका। व्यवस्थापिका सभाओंमें अछूत लोग कैसे पहुँचें, और वोटाधिकार उनको कैसे दिया जाय, क्योंकि वोटाधिकारका आधार है शिक्षा और सम्पत्ति। इस दृष्टिसे ये लोग ग़ैर-अछूतोंसे बहुत पीछे हैं। लोथियन-कमेटीने कई तजवीज़ें पेश की हैं—(१) गाँवके अछूत नौकरोंको वोटाधिकार मिलना चाहिए। (२) साक्षर अछूतको वोटाधिकार मिल जाय। (३) प्रत्येक अछूत कुटुम्बको एक वोटका अधिकार दे दिया जाय। (४) प्रत्येक अछूत वोटरको दो वोटोंका अधिकार दिया जाय—एक विशेष निर्वाचनके लिए और दूसरी सार्वजनिक

देना। (६) साम्पत्तिक वोटाधारको घटा देना। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न-भिन्न दशा है, इसलिए, कमेटीने प्रान्तीय सरकारोंके ऊपर ही यह बात छोड़ दी है कि अछूतोंके वोटाधिकारके लिए ऊपर ही तजवीज़ोंमें से कौनसीका प्रयोग किया जाय ; पर कमेटीकी राय है कि गाँवके अछूत नौकरोंको तो मदरास, बम्बई और मध्य-प्रदेशमें वोटाधिकार मिल ही जाना चाहिए, और साक्षरतापर अधिक-से-अधिक वोटाधिकार देना चाहिए। एक प्रान्तको छोड़कर अछूतोंको उनकी जनसंख्यापर १० प्रतिसैकड़ा वोटाधिकार मिल जाना चाहिए।

कमेटीकी उपर्युक्त सिफ़ारिशें वाहियात हैं—इसलिए नहीं कि उनसे अछूतोंको वोटाधिकार मिलेगा, बल्कि इसलिए कि देशमें ऊँच-नीचके प्रश्नको हल करने और अछूतोंको शासन और देशकी समस्याओंमें समान अधिकार देनेका आन्दोलन जो चल रहा है, उसको भारी धक्का लगेगा। एक प्रकारसे अछूत लोग अपनेको हिन्दुओंसे अलग समझने लगेंगे। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारतमें अछूतोंका कोई प्रश्न है ही नहीं, और जहां गावोंमें एक ब्राह्मण बालक वृद्ध चमार और भंगीको बाबा कहता है, वहांपर अछूत-आन्दोलनके कीटाणुओंको जन्म देकर पुष्ट करना राजनैतिक भूल है। देशके शासनमें चमार, भंगी और ब्राह्मण, वैश्य और ठाकुर—सबका समान अधिकार है, और जब राष्ट्रीय जाग्रतिमें सभीकी ऐसी धारणा है, तब फिर हिन्दुओंकी यह तिक्काबोटी क्यों! इस विषयमें एक विचारणीय बात यह है कि मुसलमानोंमें भी अछूत हैं। जुलाहे, भटियारे, फ़क़ीर और धुनियां लोगोंके लिए सरकार आलियाने क्या किया है? मुसलमानोंमें भटियारे और फ़क़ीर उतने ही पतित और अछूत हैं, जितने हिन्दुओंमें धानुक और डोम। तब फिर हिन्दू अछूतोंके लिए पिताका-सा प्रेम क्यों दिखाया गया है? यदि बालिग़ वोटका प्रयोग कर दिया जाता, तो अछूतोंकी समस्या सब

अब रही संघ-शासनकी बात, सो दो व्यवस्थापिका सभाएँ अखिल भारतवर्षीय होंगी। एक तो 'फेडरल असेम्बली' (जनताकी प्रतिनिधि—हाउस आफ़ कामन्सकी तरह) और दूसरी होगी 'फेडरल सीनेट'। लोथियन-कमेटीने फेडरल असेम्बलीके लिए वर्तमान वोटाधिकार-प्रणालीको विस्तृत करनेकी सिफ़ारिश की है, और यह सिफ़ारिश ठीक ही हुई है। इस असेम्बलीके लिए सदस्योंकी संख्या ३०० रखनेके लिए अनुमति दी गई है—२०० ब्रिटिश भारतसे और १०० देशी राज्योंसे। हम इस संख्याको कम समझते हैं। इंग्लैंडके हाउस आफ़ कामन्सके ६१५ सदस्य हैं, और इतने बड़े हमारे देशके केवल ३०० प्रतिनिधि! अस्तु, इसके अतिरिक्त, सबसे बड़ी आपत्तिजनक बात यह है, और इसपर अल्पमत-वालों—श्री चिन्तामणि, ताम्बे, बखले और श्रीमती सूब्बारायन तक—ने आपत्ति की है कि फेडरल असेम्बलीके लिए वोटाधिकारकी सम्पत्ति और शिक्षाकी कसौटी प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओंके वोटाधिकारसे ऊँची चाहिए। हमारे खयालसे दोनोंके लिए—फेडरल असेम्बली और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाके लिए—एक ही प्रकारका वोटाधिकार होना चाहिए। यू०पी०का उदाहरण लेकर इस समस्यापर विचार कीजिए। युक्तप्रान्तसे फेडरल असेम्बलीके लिए ४८ सदस्य होंगे, जिनमें से ३२ साधरण निर्वाचन-क्षेत्र (General Constituencies) से होंगे, और शेष १६ विशेष निर्वाचन-क्षेत्रोंसे। यदि अल्पमतकी सम्मति ही मान ली जाय, तो संयुक्त-प्रान्त भरमें ७५ लाख वोटर हुए, और जिनमेंसे ६४ लाखके लगभग साधारण निर्वाचन-क्षेत्रोंमें हुए। इस हिसाबसे एक निर्वाचन-क्षेत्रमें दो लाख वोटर हुए और लगभग डेढ़ ज़िलेके क्षेत्रफलमें एक निर्वाचन-क्षेत्र हुआ। साधारण आदमी, चाहे वह कितना ही योग्य हो, बिना लम्बी-चौड़ी थैलीके फेडरल असेम्बलीकी उम्मेदवारीके लिए खड़ा नहीं हो सकता। लोथियन-कमेटीका कहना है कि यदि प्रान्तीय कौंसिल और असेम्बलीके लिए एक ही वोटाधिकार रहा, और उसी दिन

हुए हिन्दीके प्राचीन काव्योंके मर्मज्ञ और अनेक आलोचनात्मक पुस्तकोंके लेखक श्री शुकदेवविहारी मिश्रने सन् १९२८ के मंगलाप्रसाद-पारितोषिकके निर्णायक-पदसे लिखा था—

"इसको तो पचासमें साठ नम्बर देनेको जी चाहता है। ऐसा समझ पड़ता था कि वर्तमानकाल गद्यका समय है, परन्तु पन्तजीने पद्यकी बहुत अच्छी बहार दिखलाई है। भावोंकी सरलता इस महाकविमें बहुत बढ़ी-चढ़ी है, मानो स्वयं सरस्वती देवी हंस छोड़कर इस कवि-रत्नकी जिह्वापर नृत्य करती हैं। उनकी प्रतिभाके सामने मेरे विचारसे बहुतसे प्राचीन कवि नहीं ठहर सकते।"

हमारे इस कविका जीवन बाल्यकालसे ही भाव-प्रवण रहा है। बचपनसे ही उसके सौन्दर्यप्रिय हृदयको, प्रकृति और कला अपनी ओर खींच लेती थीं, मानो वे अपने इस सजातीयको उसी समयसे पहचान गई थीं। बाल्यकालमें वह नदीके रंग-बिरंगे पत्थरोंसे खेला करता था। प्रकृतिके उस मनोरम सौन्दर्य तटपर उसके कौतूहलपूर्ण हृदयमें कला अज्ञात भावसे अपनी छवि बिखेर रही थी। शायद बाल्य-क्रीड़ाकी वही भोली स्मृति आज भी कविकी आँखोंमें अंकित है—

"सरिताके चिकने उपलों-सी
मेरी इच्छायें रंगीन,
वह अजानताकी सुन्दरता
वृद्ध-विश्वका रूप नवीन!"

—'बालापन' (पल्लव, पृ० १०४)

"दिखा भंगिमय भृकुटि-विलास
उपलोंपर बहुरंगी लास,
फैलाती हो फेनिल हास
फूलोंके कूलोंपर चल!"

—'निर्झरी' (पल्लव, पृ० ८७)

बालक क्रीड़ा-कौतुकप्रिय तो होते ही हैं। पन्तजी भी थे, परन्तु उनकी क्रीड़ाप्रियता मिट्टीके घरोंधों ही तक सीमित उनके हृदयमें एक विशेष आकर्षणहै। प्रारम्भसे ही वे प्रकृतिके निर्झरों और लहरोंसे खेलते आये हैं।

हमारे कविके जन्मके दिन ही उसके नन्हे कोमल हाथोंसे माका स्नेहांचल छूट गया था। मातृ-विछोहकी वही अज्ञात अनुभूति मानो कविकी इन पंक्तियोंमें है—

"खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण!"

परन्तु उस मातृ-अंचलके करुण अभावमें भी प्रकृति जननीने अपने स्नेह-स्पर्शसे उसके हृदयको सजल सरस कर दिया।

मनुष्य जब संसारको माकी गोदमें बैठकर देखता है, तभी वह कवि हो जाता है। वह मा कौन है?—गोदमें लेकर हलराने-दुलरानेवाली वह वात्सल्यमयी मा ही केवल मा नहीं है, वह तो जगज्जननी प्रकृतिकी एक प्रतिनिधिमात्र है—जो अपनी अमृतघूँटी पिलाकर उस विश्व-जननीकी सरसता, मधुरता, सुन्दरता हमारे हृदयों और प्राणोंमें भर देती है। किन्तु मनुष्य ज्यों-ज्यों वयस्क होता जाता है, उसकी आँखोंपर धीरे-धीरे भौतिकताका मोटा पर्दा पड़ता जाता है, और उसकी स्थूल दृष्टि उस चिर-आनन्दमयी प्रकृति जननीको भूल जाती है। किन्तु, कवि उस लोक-कल्याणीको नहीं भूलता। वह उसकी स्नेह-गोदमें चिरन्तन एक नित्य नवीन बालककी तरह खेला करता है। वह ऐसे ही गीत गाता है, जिसमें प्रकृतिके प्रेम और सौन्दर्यका सन्देश रहता है। उसे सुनकर, कठोर पत्थरोंसे उठी हुई आडम्बरपूर्ण अट्टालिकाओंसे विरत होकर सांसारिक जन प्रकृतिके कछारों और कुंजोंमें अपने संतप्त हृदयको सुशीतल करनेके लिए दौड़ पड़ते हैं। यदि प्रकृतिके ये लाड़ले शिशु (कवि) कभी-कभी संतप्त संसारमें अपनी हिम-जल-जैसी शीतल वाणी न ढुलका देते, तो आज विश्वका कोना-कोना लाक्षा-गृहकी तरह प्रज्ज्वलित होकर भस्मसात् हो जाता, इसीलिए तो कवि भी, सूर्य और चन्द्रकी तरह, संसारके लिए एक दैवी वरदान है, जो प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषाको प्राप्त है।

कभी-कभी ही अवतरित होकर कविताकी वंशी बजा देते हैं, जिसके द्वारा नवीन माधुर्य, नवीन सन्देश वायुमंडलमें गूँज उठता है। वे अपने समयके साहित्य और कलाको सुदूर भविष्यकी किसी नई दिशाकी ओर गतिवान कर विश्व-साहित्यके हृदयमें अपनी अक्षय-स्मृति छोड़ जाते हैं।

हमारे कविका कविता-काल सन् १९१७-१८ से प्रारम्भ होता है। उस समय हाई स्कूलके एक कमरेमें पढ़ते समय, उसकी हृदय-कली क्रमशः अपनी पंखुड़ियाँ खोल रही थी। कविकी प्रतिभासे उस समय हिन्दी-पाठक उतने परिचित नहीं हो सके थे, जितने कि उसके चारों ओरके तरु, पल्लव, लता, तृण, विहग आदि; क्योंकि, एकान्तमें वह इन्हींसे अपने हृदयको मिला रहा था। कविकी उस समयकी कविताओंका संग्रह 'वीणा' नामसे प्रकाशित हो चुका है; उसमें उसके हृदयका प्रथम हास, प्रथम अश्रु, प्रथम पुलक, प्रथम प्रयास है, परन्तु उस श्री-गणेशमें भी इतनी मार्मिकता और कला-कुशलता है कि आज भी वैसी सरस सुकुमार रचनाएँ, हिन्दीमें दुर्लभ हैं। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि'—शीर्षक कविता हिन्दी कविताके नवजागरणका गीत है। प्रभातमें जगकर कलरव करती हुई विहग-बालिकासे कवि कहता है—

"प्रथम रश्मिका आना तूने
रंगिणि! कैसे पहिचाना?
कहाँ, कहाँ हे बालविहंगिनि!
पाया तूने यह गाना?

सोई थी तू स्वप्न नीड़में
पंखोंके सुखमें छिपकर,
ऊँघ रहे थे, घूम द्वारपर
प्रहरी-से जुगनू नाना,

शशि-किरणोंसे उतर-उतरकर
भूपर काम रूप नभचर
चूम नवल कलियोंका मृदुमुख
सिखा रहे थे मुसकाना

स्नेहहीन तारोंके दीपक,
श्वास-शून्य थे तरुके पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनिमें,
तमने था मंडप ताना;

कूक उठी सहसा तरुवासिनि!
गा तू स्वागतका गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिन!
बतलाया उसका आना?"

इन पंक्तियोंमें कविकी भावुकता भी, 'प्रथम रश्मि' की तरह ही कितनी सूक्ष्म और सजग है। सारा संसार जब सो रहा था, सम्पूर्ण सचराचर प्रकृति जब ऊँघ रही थी, उस समय विहग-बालिकाने ही प्रथम रश्मिका आना कैसे जान लिया, जब कि सुप्त-विश्वमें उसे कोई बतलानेवाला न था। उसके जगकर गाते ही सारे संसारमें जाग्रतिका गाना फैल गया, उसी गानसे सम्पूर्ण सृष्टि जाग उठी—

"निराकार तम मानो सहसा
ज्योतिपुंजमें हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत-जालमें
धर कर नाम-रूप नाना;

सिहर उठे पुलकित हो द्रुमदल,
सुप्त-समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरोंपर
हिल मोतीका-सा दाना;

खुले पलक, फैली सुवर्ण छबि,
खिली सुरभि, डोले मधुबाल,
स्पन्दन, कम्पन औ' नवजीवन
सीखा जगने अपनाना;

प्रथम रश्मिका आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि!
पाया यह स्वर्गिक गाना?"

सृष्टिकी सुषुप्ति और जाग्रतिका कविने कैसा दर्शनीय

चित्र खींचा है! रात्रिके अंधकारमें सृष्टि किस भाँति नीरव, अचेत पड़ी हुई थी, वही दिवसके प्रकाशमें कैसी जीवनमयी हो उठी है!

"प्रथम रश्मिका आना तूने
रंगिणि! कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि!
पाया तूने यह गाना?"

इस जिज्ञासाके साथ कविने दिन और रातके साकार जगत द्वारा अन्तर्जगतके एक सत्यको भी प्रत्यक्ष किया है—विहग-बालिकाके मिस वह सृष्टिकी प्रथम चेतन आत्मासे कहता है—सृष्टिके आदिमें जब कि सारा संसार अज्ञान और मायाके अंधकारमें सोया हुआ निर्वाक पड़ा था, उस समय तुझे ही ज्ञानकी रश्मिका आभास कैसे हो गया, जिसके कारण मायाके अंधकारसे जगकर तू संसारको जगाने लगी। सृष्टिके आदिमें उसी चेतन आत्माके जागनेसे बाह्य विश्व प्रकाशमान, गतिवान हुआ; स्पन्दन, कम्पन एवं जीवनपूर्ण हुआ। यह बाहरका जाग्रत संसार भीतरकी जाग्रत चेतनाका ही बाह्य रूप है।

यह सन् १९१६ की रचना है। उस समय कविकी अवस्था १६ वर्षकी थी। १६ वर्षके कविके कानोंमें बाल-विहंगिनीका जो संगीत गूँज उठा, आँखोंमें प्रकृतिका जो प्रभात-चित्र खिंच गया, वैसी हृदय-संवेद्य श्रवणशक्ति और सूक्ष्म दृष्टि आज भी कितने कानों, कितनी आँखोंमें है?

अपने उसी लघुवयमें, हिन्दी-कविताके नव प्रभातकी सूचना देते हुए, कवि भी विहग बालिकाकी तरह गा उठा था—

"हे स्वर्ण-नीड़ मेरा भी जग-उपवनमें,
मैं खग सा फिरता नीरव भाव गगनमें,
उड़ मृदुल कल्पना-पंखोंमें, निर्जनमें,
चुँगता हूँ गाने बिखरे तृनमें, कनमें!
कल-कंठिनि! निज कलरवमें भर
अपने कविके गीत मनोहर
फैला आओ वन-वन, घर-घर,
नाचें, तृण, तरु, पात।"

सचमुच आज कविके गीतोंके अदृश्य स्नेह-स्पर्शसे हिन्दी-कविताके तृण, तरु, पात, मुग्ध-भावसे नवप्रभातकी स्वर्ण-रश्मियोंमें थिरक उठे हैं। और प्रकृति रानीने नवीन शोभा, नवीन सुषमा, नवीन मधुरिमा और नवीन मृदुलिमासे हमारे कविके गीतोंमें अपने सरल सौन्दर्यका प्रसार किया है।

✓ पन्त जीकी कविताएँ हमारे हृदयको प्रकृतिके विस्तृत आँगनकी ओर खींच ले जाती हैं। जिस प्रकार दिन-भरके थके-माँदे ग्रीष्मपथिकको सघन पेड़ोंकी छाया अपनी ओर आकृष्ट करती है, उसी प्रकार संतप्त संसारके व्याकुल हृदयोंको पन्तजीकी कविताएँ प्रकृतिके क्रीड़ा-क्रोड़में बुला रही हैं। उनकी ऐसी कविताएँ उस वनवाला शकुन्तलाकी तरह मनोहर हैं, जिसका हृदय सुन्दर, स्निग्ध और स्नेहार्द्र है; जो प्रकृतिके अंचलमें ही खेली और खिली है, जिसकी स्निग्ध वेणीमें वसन्तके समस्त सुरभित पुष्प गुँथे हुए हैं, और जो विस्मय एवं कौतूहलकी आँखोंसे वासन्तीके वैभवको देखती है, तथा उसीमें अपनापन मिला देती है। उसकी ममता वनकी लता, पुष्प, खग, मृग, मधुकर तथा अपनी ही जैसी भोली सखियोंके साथ बँधी हुई है।

परन्तु वह कवितामयी शकुन्तला अपनी कुटिमें नहीं नहीं छिपी रह सकी, उसे भी संसारके राजपथमें आना पड़ा, उसे भी बिधि-विडम्बनासे भौतिक विश्वमें सुख-दुखकी साँसें लेनी पड़ीं। इसी भाँति हमारे कविकी कविताके जीवनमें भी परिवर्तन हो चला है।

✓ कविकी 'वीणा', 'पल्लव' और 'ग्रन्थि' नामक कविता-पुस्तकोंकी चर्चा समय-समयपर पत्र-पत्रिकाओंमें होती रही है। हिन्दी-पाठक उनसे थोड़े-बहुत परिचित ही हैं, अतएव हम उनके विषयमें कुछ नहीं लिखना चाहते; हम तो कविकी एक नई कविता-पुस्तकसे पाठकोंको परिचित कराना चाहते हैं। इस सद्यः प्रकाशित कविता-पुस्तकका नाम है—'गुंजन'! इसके भावोंमें केवल कवि-कल्पना ही नहीं बल्कि इसमें प्रतिदिनके जीवनकी साँस-साँस मिली हुई है।

इसको पढ़नेसे जान पड़ता है कि कविकी कविता पहलेकी भाषा, भाव और शैली—सब कुछ बदलकर एक नये स्वरूपमें प्रकट हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कल्पनाके प्रशस्त पंखोंसे नीलाकाशमें उन्मुक्त विहार करनेके बाद, अब वह धीरे-धीरे पृथ्वीपर उतर रही है, और यहींकी किसी डालीपर बैठकर भूलोकके प्राणियोंके सुख-दुखमें अपना कोमल हृदय मिला देना चाहती है।

कविके कविताकी इस नवीन गति-विधिकी सूचना 'पल्लव' के 'परिवर्त्तन' शीर्षक कवितासे ही मिल चुकी थी। हमारे कविके हृदयमें चिरकालसे एक आत्म-चिन्तना जाग्रत है। 'परिवर्तन' नामक कवितामें जो दार्शनिक पंक्तियाँ दीख पड़ती हैं, वे इसी आत्म-चिन्तनासे प्रेरित होकर लिखी गई थीं। तबसे आज तक कविके हृदय और जीवनके बीच मौन जिज्ञासा चल रही है। इसी हृदय और जीवनकी भावनाओंने कविके इस 'गुंजन' की सृष्टि की है। *

'गुंजन'में जीवन-ही-जीवनका गुंजार है। 'वीणा', 'पल्लव' और 'ग्रन्थि' की कविताएँ, कविने कलाकी दृष्टिसे लिखी हैं, उनमें कल्पना प्रधान है। परन्तु 'गुंजन'की अधिकांश कविताओंमें कविने अपनी जीवन-सम्बन्धी अनुभूतियोंको ही छंदोमय कर दिया है।

[ऐसी अनुभूति-प्रधान कविताएँ मानव-जीवनकी सम्पत्ति बन जाती हैं, उनमें कला गौण वस्तु रहती है। कवितामें जब अकेली कल्पना ही अपनी कुशलता दरसाती है, वहाँ कला प्रधान रहती है। कला-प्रधान कविताएँ केवल रंगीले इन्द्रधनुषकी तरह अपनी शोभा और सौन्दर्य फैलाकर हमारी वाह्य दृष्टिको उत्सुक-मात्र कर जाती हैं। उनमें केवल भाव-प्रवण दृष्टियोंके लिए ही आकर्षण रहता है। उनसे मिलकर अखिल मानव हृदय एकरस, एकरूप नहीं हो जाता। कला-प्रधान कविताएँ विश्वसे अनजान बालिकाकी तरह सुन्दर, आकर्षक और विस्मयपूर्ण जान पड़ती हैं, जो उसीकी तरह कल्पनाओंमें ही मग्न बनी रहती हैं; परन्तु जीवन-प्रधान कविताएँ उस अनुभवी राजपथिककी भाँति हैं, जिसका वाह्य रूप, धूप, शीत और वर्षाको झेलते हुए शुष्क, किन्तु प्रौढ़-सा जान पड़ता है, और आन्तरिक रूप
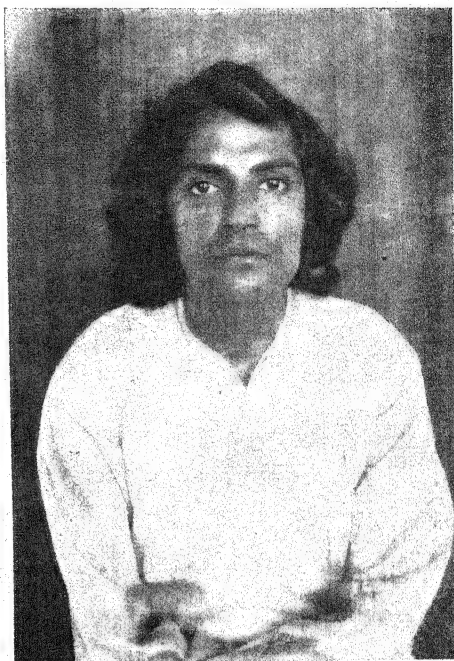
कविवर सुमित्रानन्दन पन्त

अधिक तत्त्वपूर्ण। उसके शब्दोंसे हमें अपने ही सुख-दुखकी भाँति ममता हो जाती है, वह हमारे हृदयोंमें स्थान पा जाता है।]

हिन्दीकी नवीन प्रगतिमें, अभी तक कला-प्रधान कविताओंकी ही रागिनी सुनाई पड़ती है, जो केवल वायुमंडलमें गूँजकर ही समाप्त हो जाती है—उनके स्वरोंका सामंजस्य हमारे अन्तर्जगतके साथ नहीं हो पाता। परन्तु 'गुंजन' के कविने हमारे यथार्थ दुख-सुखमय जीवन-संगीतको ही गुन-गुना दिया है—विश्वके विस्तृत उपवनमें दुखके काँटोंसे छिदकर, सुखके फूलोंसे हँसकर, हृदयके मधुसे छककर, उसने यह अपना नूतन जीवन-गीत गाया है। कहता है—

"काँटोंसे कुटिल भरी हो
यह जटिल जगतकी डाली,
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली।

* प्रकाशक—भारती-भंडार, काशी।

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने-सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणोंका धन।''

विश्वके कँटीले जीवनमें कवि-हृदयकी कैसी मनोहर प्रसन्नता है! कैसी दिव्य सन्तुष्टि! इन पंक्तियोंद्वारा, काँटोंमें बिंध-बिंधकर जीवन-यात्रा करते हुए जगतको एक आश्वासन-सा मिल जाता है। वह भूल सकता है काँटोंकी तीक्ष्णता और कसकको। कवि फिर कहता है—

"देखूँ सबके उर की डाली—
किसने रे क्या-क्या चुने फूल
जग के छबि-उपवनसे अकूल?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल!
किस छबि, किस मधुके मधुर भाव?
किस रंग, रस, रुचि से किसे चाव?
कवि से रे किसका क्या दुराव!
किसने ली पिक की विरह-तान?
किसने मधुकर का मिलन-गान?
या फुल्ल-कुसुम, या मुकुल-म्लान?
देखूँ सब के उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण-फूल,
सब में कुछ दुख के करुण-शूल;—
सुख-दुःख न कोई सका भूल!"

इन पंक्तियोंमें सुख-दुखमय विश्वका कैसा सुन्दर निरीक्षण है।

'प्रसाद'जी और 'निराला'जीने अभी तक इस जीवन-संगीतको नहीं अपनाया, अभी वे कला और कल्पना-लोकमें ही हैं। उनकी दस वर्ष पीछेकी कविताओंमें अभी तक न कोई परिवर्तन हुआ, न विकास; परन्तु 'गुंजन'का कवि अपने ही जीवन और हृदयके अनुरूप विकसित, परिवर्तित और परिमार्जित होता चला जा रहा है। परिवर्तन ही तो प्रगति है—उत्थान है।

हाँ, तो 'गुंजन'के जीवन-संगीतमें कविने जो सुख-दुखमय गुंजार किया है, उसमें उसके जीवनकी प्रगतिका ही परिचय मिलता है।

कविने जगतके सुखदुखमय चतुर्दिक वातावरणमें केवल आनन्द और हासको ही प्रधानता दी है, केवल दुखको ही लेकर इस जगतको क्रन्दनमय नहीं कर दिया। कहता है—

"जग-जीवन में हैं सुख-दुख,
सुख-दुख में है जग-जीवन;
हैं बँधे बिछोह-मिलन दो
देकर चिर स्नेहालिंगन।
जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अन्तस्तल में
नित बूड़-बूड़ रे भाविक!"

जीवनमें सुख-दुखका कैसा अभिन्न मेल है—एक ही स्नेहालिंगनमें मिलनका हर्ष है, उसीके साथ बिछोहके आँसू। हमारे जीवनके समस्त दुख सुख आलिंगनके बाहुओंकी तरह ही परस्पर जुड़े हुए हैं—कैसी सच्ची बात है।

ऐसी ही सुखदुखमयी भावनाओंमें से होकर कविकी दृष्टि वर्तमान हाहाकारपूर्ण उत्पीड़ित संसारपर पड़ी है, और अपने हृदयके दुख-सुखको उसने समष्टिके दुख-सुखसे मिला दिया है—

'मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
चाहता नहीं अविरत-दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।
सुख-दुखके मधुर मिलनसे
यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घनमें ओझल हो शशि,
फिर शशिसे ओझल हो घन।
जग पीड़ित है अति-दुखसे,
जग पीड़ित रे अति-सुखसे,
मानव-जगमें बँट जावें
दुख-सुखसे औ' सुख-दुखसे।
अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न;
दुख-सुखकी निशा-दिवामें
सोता-जगता जग-जीवन।

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का ;
चिर हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !"

कैसा सरल सुन्दर विचार है ! शब्दों और भावोंमें कैसी सुस्पष्टता है ! संसार अति दुखसे पीड़ित है, संसार अति सुखसे पीड़ित है, रह-रहकर उठनेवाला चतुर्दिकका हाहाकार इन शब्दोंकी प्रतिध्वनि दे रहा है। उस हाहाकारने हमारे कविके हृदयको करुणार्द्र कर दिया है, इसीलिए आज उसकी वाणीमें भी विश्व-वेदनाका स्वर गूँज उठा है। वासन्तीकी गोदमें फूलोंके साथ खेलनेवाला कवि सन्तप्त मानव-हृदयको अपने हृदयसे लगाकर द्रवित हो उठा है--

"अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न ;
× × ×
मानव-जगमें बँट जावें
दुख सुखसे औ' सुख दुखसे ।"

आज संसारकी सबसे बड़ी पुकार भी यही है।

इस भाँति पन्तजीकी कविताएँ मानव-जीवनकी साँसोंमें समाकर हमारे हृदयकी वस्तु बनती जा रही हैं।

'गुंजन'की ये सीधी-सादी कविताएँ गुजराती महिलाओंकी तरह अपनी बाहरी सादगीमें ही अपने आन्तरिक सौन्दर्यको प्रकाशित कर रही हैं।

'गुंजन' में और भी बहुत-सी उत्तम-उत्तम कविताएँ हैं, इनमें से कुछके शीर्षक दिये गये हैं, कुछके नहीं। कुछ कविताओंके शीर्षक ये हैं--मधुवन, चाँदनी, भावी पत्नीके प्रति, विहगके प्रति, मुस्करा दी थी क्या तुम प्राण ?, तुम्हारी आँखोंका आकाश, अप्सरा, एक तारा, नौका-विहार। एक तारा और नौका-विहार नामक कविताएँ 'विशाल-भारत' में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। कविकी इन सम्पूर्ण कविताओंके विषयमें बहुत-कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु लेख विस्तारके कारण अभी नहीं।

✓ पन्तजी ही खड़ी बोलीके पहले कवि हैं, जिन्होंने कविताको अपनी ही सजीव आत्माकी तरह अपनाया है। अपनी ही तरह उसका भी लालन-पालन किया है, एवं एक सजीव प्राणीकी तरह ही उसे रंग-रूप, आकार-प्रकार और जीवन दिया है। उनके भाव उनके शब्दोंमें उसी भाँति खिल उठे हैं, जैसे अपने कोमल-कोमल पत्तोंके बीचमें गुलाबके फूल। उनके शब्द और भाव दोनों ही बड़े सुघर हैं, बड़े दुलारसे सजाये सँवारे हुए हैं।

उनकी कविताएँ अत्यन्त संगीतपूर्ण हैं। कविताकी संगीत-मधुरिमा कहीं अपना प्रवाह खो न दे, इसीलिए उन्होंने भिन्न-भिन्न शब्दों और भावोंकी मधुरिमाके अनुरूप ही उन्हें भिन्न-भिन्न गति एवं छन्द दिया है। भाषा, भाव और छन्द सब कुछ उनके हृदयके साँचेमें ढलकर एक नई ज्योतिमें जगमगा उठे हैं। शब्द, गति और भाव—इन तीनोंका ऐसा सुरुचिपूर्ण सामंजस्य अन्यत्र कम मिलेगा।

पन्तजीकी शैली भी उनकी एक खास विशेषता है। कविताके भाव, अपने सौन्दर्य और संगीतकी एकता बनाये हुए किस भाँति प्राणोंको स्पन्दित कर सकते हैं, पन्तजीकी कविताओंमें इसके उदाहरण बहुत मिलेंगे।

उनका व्यक्तित्व भी कवित्वपूर्ण है। उनका हृदय जिस चन्द्रलोकके अमृतसे ओतप्रोत है, वह विश्वकी शुष्क मरुभूमिमें भी सजल-सरस है। अन्य सांसारिक साहित्यिकोंकी तरह उन्होंने जीवनको कवितासे भिन्न नहीं होने दिया है। कवि जब सांसारिकतासे पृथक होकर अपने हृदयके एकान्तमें मग्न हो जाता है, तभी तो वह बच्चोंकी तरह सरल तथा मधुर बना रह सकता है। पन्तजीका शरीर युवक है, हृदय शिशु है। उनकी कविताके शब्द-शब्दमें जो सुकुमारता, मधुरता, सरलता और आत्मीयता झलक रही है, वही उनके नित्य जीवनमें भी।

उनके मौन साहचर्यमें भी हृदयको बहुत सुख और स्वास्थ्य मिलता है। उनका बहुत बोलनेका स्वभाव नहीं, फिर भी जितनी बातचीत करते हैं, उसमें एक कोमलता बहती

रहती है। उनके मृदुमंद वार्तालापके शब्द-शब्द बहुत संयत, ललित तथा स्नेहपूर्ण होते हैं। अनेक बातोंके उत्तरमें थोड़ेसे सारगर्भित शब्दोंमें ही अपना अभिप्राय व्यक्त कर देते हैं। प्रायः उनकी मौन मधुर मुसकान ही वार्तालापका साथ देती है। उनकी सुन्दर आँखोंमें सरस सजगता और हँसनेमें भालस्पर्शी उज्ज्वलता जगमगा उठती है।

कविके अतिरिक्त, पन्तजी एक मनोहर गायक और निपुण वादक भी हैं। आप कई तरहके वाद्य-यंत्र बहुत ही अच्छा बजाते हैं। जिस समय आप सस्वर अपनी कविता पढ़ने लगते हैं, उँगुलियोंके संकेतोंसे एक-एक शब्द और भावको साकार करते हुए श्रोताओंके मर्मस्थलमें अंकित करते जाते हैं और श्रोता भी मंत्रमुग्ध-से गानमें तन्मय हो जाते हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि मानो कविता ही मूर्तिमती होकर स्वयं अपनेको आप गा रही हो।

हिन्दी-साहित्य अपने इस प्रिय कविपर गर्व कर सकता है। परमात्मा हमारे इस कविको अपनी अमृत छायामें नित्य नवीन जीवन दें--यही प्रार्थना है।

महाकवि रवीन्द्रनाथका हिन्दी-पत्र

श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय

सन् १९०६ के दिसम्बरकी बात है। महानगरी कलकत्तेमें कांग्रेसकी बैठक थी। ज्ञानवयोवृद्ध राजर्षि-कल्प पूज्य दादाभाई नौरोजी उस अधिवेशनके सभापति थे। बंग-भंग और स्वदेशी-आन्दोलनके दिन थे। बंगालमें 'बायकाट' का बड़ा ज़ोर था। खूब चहल-पहल थी। जोशका ठिकाना न था। प्रयाग, काशी, मिरज़ापुर, कानपुर, लखनऊ आदिके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हिन्दीके विद्वानोंकी उपस्थिति मानो 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशनकी अग्र-सूचना या पूर्वरूप थी। महामना मालवीयजीसे पूज्य भट्टजी कह रहे हैं—'छोटासा जीव चिउँटी क्या-क्या करे!" मालवीयजी हँसते हुए उत्तर दे रहे हैं—"सिंह आलस्यकी नींदमें पड़ा सोता रहता है। चिउँटी अथक परिश्रम द्वारा सबको चकित कर देती है।" पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी बूढ़े भट्टजीके प्रति (रेलगाड़ीमें मिले हुए) किसी हस्तरेखाविदके कथन "तुम मर ही नहीं सकते" का अंगरेज़ी भाष्य सुनाते हुए कह रहे हैं—"Your fame will be undying" प्रसिद्ध भारतेन्दु-सखा 'प्रेमघन' अपने अनुजोंके साथ एक निराली छटा छहरा रहे हैं। भट्टजी 'प्रदीप' के अनन्य प्रेमियोंसे स्नेहपूरित सम्भाषण कर रहे हैं। प्रसिद्ध समालोचक पं० माधवप्रसाद मिश्रके दर्शनोंको कोई आतुर है, तो कोई 'पूर्ण कवि' रायदेवीप्रसादजी वकीलसे साक्षात लाभको व्यग्र है। नागरी अक्षरोंमें 'उर्दू बेगम' जैसे मनोहर उपन्यास-लेखक मिरज़ापुर-निवासी बाबू भगवानदास जायसवाल बी०ए०, पं० देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए० (कानपुर), 'छत्तीसगढ़-मित्र' के सम्पादक पं० माधवरावजी सप्रे बी० ए०, पं० सरयूनारायण त्रिपाठी एम० ए०, 'बुन्देल आवाज़' वाले बाबू जैन वैद्य (जयपुर), 'टेढ़ी पगड़ीवाले' बाबू जैनेन्द्रकिशोर (ना० प्र० सभा, आरा), 'पाँच मिनटमें तैयार होनेवाले' हमारे प्रिय मित्र बाबू गंगाप्रसाद गुप्त (सम्पादक "भारत-जीवन", काशी) में से अधिकांश प्रसिद्ध बाबू बालमुकुन्द गुप्त सम्पादक 'भारतमित्र से मित्र-भावपूर्वक मिलनेको उत्सुक हैं। हिन्दीके प्रेमियोंको 'सरस्वती' में प्रकाशित 'भाषाकी अनस्थिरता' शीर्षक लेखके झगड़ेकी दलबन्दीका दृश्य अब तक स्मरण होगा।

उन दिनों 'भारतमित्र'के सम्पादक गुप्तजीकी लेखनीका चातुर्य, चमत्कार हिन्दी-प्रेमीमात्रको उनके दर्शनोंके लिए प्रेरित करनेका मुख्य आधार था। वादी-प्रतिवादी, समालोचक और आलोचकको एक ही आसनपर बैठकर शिष्टाचारसंयुत वार्तालाप करते हुए देखना एक अनुपम अनुभव था। अस्तु, यह देखिये, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, बाबू जैन वैद्य, पं० अनन्तराम पराडेय, आठ-दस नवयुवक हिन्दी-लेखकोंके साथ वयोवृद्ध साहित्याचार्य पं० बालकृष्ण भट्ट और महामना मालवीयजीके दर्शनार्थ उनके स्थानपर पहुँचते हैं। भाषा, साहित्य, स्वदेश, स्वदेशी-वस्त्र—इसीकी चर्चा चारों ओर छाई हुई है। कांग्रेस-मंचसे 'भैया देशका यह हाल' हिन्दी गीतका गायन हो रहा है। कांग्रेसके पंडाल ग्राउण्डमें साहित्य-सेवीगण 'जलपान' के पश्चात् अपनी-अपनी रुचिके अनुसार ग्रन्थरूप, चित्ररूप, प्रदर्शनी-दर्शन आदिमें लगे हुए हैं। बाबू गंगाप्रसाद गुप्त तीन-चार मित्रोंके साथ एक अंग्रेज़ी पुस्तकके चित्र देखनेमें मग्न हैं। किसीने कहा कि इस अंग्रेज़ी पुस्तकका हिन्दी-अनुवाद शीघ्राति शीघ्र छपना चाहिए। किसी ने कहा कि हिन्दीमें ऐसा सचित्र सुन्दर ग्रन्थ ऐसी सफाईके साथ छपना क्या सहज है! इतनेमें उस पुस्तकको मेरे हाथमें देते हुए गुप्तजी मुझसे पूछते हैं—"आप इसका अनुवाद कितने दिनोंमें कर सकेंगे?" चित्रोंके दिव्य सौन्दर्यका नेत्रद्वारा पान करता हुआ मैं उनसे पूछ रहा हूँ कि पहले आप तो बताइये कि आप कितने दिनोंमें यह काम कर सकेंगे? इतनेमें हम लोगोंकी दृष्टि एक अत्यन्त आकर्षक चित्रपर पड़ती है, जिसके नीचे अंग्रेज़ीमें लिखित है—

Rabindranath Tagore

हम लोगोंको उस चित्रके दिव्य दर्शनसे ऐसी कुछ स्फूर्ति और मानसोल्लास प्राप्त हुआ कि हम लोग उसे ही उस सचित्र संग्रह (Celebrities of Bengal) का प्राण-स्वरूप बोध करने लगे।

पूज्य राजर्षि दादाभाई द्वारा प्रचारित 'स्वराज' मन्त्रकी दीक्षा ले सब लोग अपने-अपने घर लौटे। दिन बीते। मास बीते। वर्ष बीते। 'Celebrities of Bengal' की वह प्रति हमने गुप्तजीसे तभी छीन ली थी। वह सचित्र संग्रह हमारे पठ्यगृहके लिए एक दिव्य अलंकार ही नहीं, हमारे साहित्य-जीवनका अहंकारतुल्य माना जाने लगा। इस 'बंगालके बड़े लोग'के पावन चित्र-चरित्रने उसे ही मन्त्रमुग्ध बना दिया, जिसने उसके दर्शन और पठन किये।

जीवनमें कभी वह दिन भी आयगा कि हम उन 'साहित्य-संगीत-कला' के परमोच्च आदर्श वीणापाणीके वर पुत्र कवीन्द्र रवीन्द्रके चरणोंमें अपनी भक्ति पुष्पांजलि अर्पित करनेका सुयोग प्राप्त कर सकेंगे—इसकी हमने कभी कल्पना तक न की थी।

सन १९१३ में महाकवि रवीन्द्रनाथको 'नोबुल प्राइज़' प्राप्त हुआ। देशी भाषा तथा अंग्रेज़ी भाषाकी पत्र-पत्रिकाओंमें उनके इस महोच्च सम्मान-प्राप्ति और उनकी अमर रचना 'गीतांजलि'के गौरव-प्रकाशनमें सैकड़ों निबन्ध महीनों तक प्रकाशित होते रहे। देशमें एक अद्भुत उल्लासकी लहर-सी उमड़ पड़ी थी। उसी आनन्दोत्सवके शुभ अवसरपर इन पंक्तियोंके लेखकने नीचे लिखे पद्य-पुष्पोंकी श्रद्धांजलि कविवरके चरणोंमें अर्पित की थी—

"इस अनुपम सम्मान प्राप्तिसे है हमको
　　　अतिशय अभिमान।
हर्ष मग्न हैं त्रिंशकोटि हम भारत
　　　सन्तानोंके प्राण।
सत्कवि-कुल चूड़ामणि! प्यारे!
　　　पूज्य रवीन्द्रनाथ गुणखान।
विश्व व्याप्त हो रहा आपके
　　　'गीतांजलि'का गौरव-गान।

(२)

इस भवदीय अमर रचनाने
　　　प्रकटाया भारत-उत्कर्ष।
लक्ष-लक्ष है आज आपको विमल
　　　बधाई आर्य! सहर्ष।

अमृत मधुर सत्काव्य सुधाका
हमें कराते नित प्रतिपान
जुग-जुग जीवैं आप, शान्ति सुख भोगैं,
करैं देश कल्याण ॥"

बालपुर
२६-११-१९१३ } —लोचनप्रसाद

उड़िया भाषामें

"धन्य ए भारतवर्ष धन्य बंगभूमि
धन्य-धन्य आर्य ! तव महर्षि जनक
धन्य तव शिक्षा-दीक्षा पांडित्य प्रतिभा
धन्य तुम्भे धन्य तव जननी-जनन ॥
साहित्य संगीत सुधा श्रोत प्रवाहिणी
धन्य ए लेखनी तव पूजार्ह पवित्र
धन्य-धन्य पुणि तव अमर रचना
तत्वज्ञान अमरत्वपूर्ण 'गीतांजलि'।
सार्वभौम महाकवे ! ए उच्च सम्माने
हर्ष अभिमाने-नाचे महोल्लासे आजि
भारतीय त्रिंशकोटि सन्तान हृदय।
उन्नत पाश्चात्य सुधी समाज मोहित
तव अनुपम शक्ति देखि आश्चर्य्यरे
स्तम्भितसे तेजि निज जातीय गरब ॥
कृतार्थ कृतार्थ आजि ए भारतभूमि
कृतार्थ बंग जननी बंग भाषा सह।
पवित्र पवित्र आजि ए आम्भर जाति
सुसभ्य संसार नेत्रे एहि नवयुगे
पवित्र पवित्र आजि स्वेत द्वीप डोले
कृष्णकाय कर्मभीरु भारत सन्ताने ॥
तुम्भ योगुँ आर्य-इन्द्र ! मनीषि-सत्तम !
हे शान्ति स्वर्गीय दूत महर्षि-नन्दन !
हे भारत जननीर हृदय-चन्दन !
तव पूत पाद युग्मे श्रद्धा-भक्तियुत
अर्पुछि विनये एहि 'पद्य-पुष्पांजलि'
सदय होइण आर्य ! करन्तु ग्रहण
पल्लिवासी कृषकर क्षुद्र उपहार।"

बालपुर
२६-११-१९१३ } —लोचनप्रसाद

महाकविने ऊपर लिखित हिन्दी तथा उड़ियाकी 'पद्य-पुष्पांजलि'को कृतार्थ करते हुए जिस पत्र-रूपी प्रसाद द्वारा हमें गौरवान्वित करनेकी उदारता प्रकट की थी, वह नीचे उद्धृत है—

पत्र

"सहृदय महोदय,

यद्यपि ईश्वरकी कृपासे हमको आज सम्मान प्राप्ति हुई है, तथापि हम अपनेको सर्वविध सम्मानके अयोग्य हि समझते हैं। विशेष यह भी है की कविको कोइ सम्मानकी आवश्यकता भी है नहीं। हमारे परम देवताके चरणकँवल पर जो गीतांजलि हम् अर्पण किये हैं उससे उनकी प्रसन्नता और हमारी अन्तरकी प्रसन्नता ही से हमारा जीवन धन्य है। पर आप ऐसे सज्जनोंकी अभ्यर्थनाके अयोग्य होनेपर भी आपकी प्रसन्नकृपा प्राप्त होकर हम निजको परम धन्य समझते हैं। कितने कवि हो गये हैं, कितने मौजूद हैं, कितने आगे होनेवाले हैं, पर आप लोगोंकी सप्रेम शुभाकांक्षा दुर्लभ ही है। इतने दूरसे इतनी प्रसन्नता और पवित्र ग्रामवेली कुसुमोपहार प्राप्त होकर हम यथार्थ धन्य हैं। भगवान् आपको नित्य कल्याण प्रेरण किया करें और आनन्दामृत रससे नित्य तृप्त रक्खा करें।

शुक्ल चतुर्थी मार्गशीर्षीया सं०१९७०
शांतिनिकेतन-आश्रम
बोलपुर—वीरभूमि

भवदीय प्रीति-पत्र-सम्मानित
(बंगाक्षरोंमें)
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सजीव साहित्यकी सृष्टि

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र

किसी जातिविशेषकी उन्नति-अवनतिका, उसके उत्थान-पतनका, उसके उत्कर्षापकर्षका प्रतिबिम्ब जितना हमें उस जातिके साहित्यमें देखनेको मिल सकता है, उतना और कहीं नहीं मिल सकता। जातीय जीवनके प्रत्येक पहलूका चित्र उस जातिके साहित्यमें ही चित्रित मिल सकता है। जिस जातिकी जैसी भावनाएँ होंगी, उसका साहित्य भी तदनुकूल ही होगा। यदि जाति सजग, सचेष्ट, सशक्त, सजीव एवं क्रियाशील होगी, तो उस जातिके मनीषी विद्वानों द्वारा जिस प्रकारके साहित्यका निर्माण होगा, उसमें भी हमें वही सजगता, सचेष्टता, सजीवता एवं क्रियाशीलता दीख पड़ेगी। इसके विपरीत यदि जाति अलस, निश्चेष्ट, शक्तिहीन, निर्जीव एवं विलासपरायण होगी, तो उसके समसामयिक साहित्यमें हमें वही अलसता, निश्चेष्टता, शक्तिहीनता, निर्जीवता एवं विलासपरायणता दीख पड़ेगी। सारांश यह कि जातिकी जीवनी शक्तिका बैरोमीटर यदि कोई वस्तु हो सकती है, तो वह साहित्य ही है। यह बैरोमीटर ही आपको बतला देगा कि जातिकी प्राणशक्ति जीवनोन्मुख है, अथवा नाशोन्मुख।

विभिन्न देशोंकी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियोंमें समय-समयपर साहित्य द्वारा जैसे युगान्तरकारी परिवर्तन हुए हैं, उसका साक्षी इतिहास है। इतिहासके पन्नोंमें यह बात स्पष्टरूपसे अंकित है कि किस प्रकार अलक्ष्यरूपसे साहित्यने जातिविशेषके विचारोंमें, उसकी परम्परागत भावनाओंमें, उसके जड़ीभूत भावों एवं विश्वासोंमें अभावनीय क्रान्ति कर डाली है। हिन्दी-साहित्यको ही यदि आप ले लें, तो मालूम होगा कि आरम्भसे लेकर अब तक इसके जो विभिन्न स्वरूप देख पड़ते हैं, उनपर तत्कालीन सामाजिक एवं राजकीय स्थितियोंका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। मुसलमानोंके पाँव जब तक इस देशमें जमने नहीं पाये थे, और देशकी स्वतंत्रताका अपहरण करनेके लिए उनके आक्रमण हो रहे थे, उस समयके हिन्दी-कवियोंने अपने आश्रयदाता नृपतियोंकी प्रशंसा और प्रशस्तिमें जो काव्य-रचना की है, उसमें व्यक्तिविशेषका ही गुण-कीर्त्तन पाया जाता है। उस समय देशकी राजनैतिक स्थिति विशृंखल-सी हो रही थी, हिन्दू साम्राज्य खंड-खंडमें विभक्त हो गया था, किसी एकछत्र शासकका आधिपत्य नहीं रह गया था, और अनेक छोटे-बड़े स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये थे। अतएव जिन-जिन राजाओंके दरबारमें कविगण रहा करते थे, उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओंको ही अपने काव्यका धीरोदात्त नायक बनाकर उनकी, उनके राज्यकी तथा उनके शासनकी गरिमा-गाथाओंका वर्णन किया है। इस समयके काव्य-साहित्यमें सजीवता, क्षमता एवं तेजस्विताके भाव हैं ज़रूर, किन्तु उसमें जातीयता, एकदेशीयता एवं आत्म-चैतन्यताका अभाव है। यही कारण है कि सजीव एवं सतेज होते हुए भी इस साहित्यका देशव्यापी प्रभाव नहीं पड़ सका, और न इसके द्वारा जातीय जागरणका कार्य सम्पन्न हुआ।

इसके बाद जब मुसलमानी शासनकी नींव क्रमशः सुदृढ़ होने लगी और मुसलिम समाजके आचार-विचारोंके साथ हिन्दू-समाजके आचार-विचारोंका विकट संघर्ष होने लगा, उस समय हिन्दू-समाजको मुसलमानोंके

सामाजिक एवं धार्मिक प्रभुत्वसे बचानेके लिए धर्म-प्रवर्त्तक महात्माओं एवं साधु-सन्तोंने सरल, सुबोध और सर्वजन-सुलभ भक्तिवादकी ऐसी सरस मन्दाकिनी बहाई कि उसके पवित्र प्रवाहमें आकंठ अवगाहन करके हिन्दू-समाज एकबारगी भक्ति-रसाप्लुत हो उठा। विशुद्ध ईश्वर-प्रेम और भक्तिके अमृत-प्रवाहने सहस्र-सहस्र धाराओंमें प्रवाहित होकर, हिन्दू-समाजके हृदयको सुधा-सलिलसे सिंचितकर, उसमें एक प्रकारके अनिर्वचनीय आनन्दका स्रोत भर दिया। इस आनन्द-पारावारमें न मालूम कितने कवियोंने डुबकियाँ लगा-लगाकर अपनी लेखनी और वाणीको सफल किया। मुसलमानोंके शासनकी नींव ज्यों-ज्यों सुदृढ़ होती गई, त्यों-त्यों उसके परिणामस्वरूप सुख-शान्तिपूर्ण वातावरणमें हिन्दीके भक्ति-साहित्यका संवर्द्धन और संपोषण होता गया। प्रेम और भक्तिकी सरिता उमड़ चली, तज्जनित आनन्दकी हिलोरें देशके कोने-कोनेमें व्याप्त हो गईं और राम-कृष्णके कीर्त्तनसे सारा देश मुखरित हो उठा। इस कालमें हिन्दी-साहित्यने जैसे-जैसे समुज्ज्वल रत्न पैदा किये, उनकी अम्लान ज्योतिसे आज भी हिन्दी-साहित्य ज्योतिष्मान बना हुआ है, और संसारके किसी भो साहित्यकी तुलनामें अपना मस्तक उन्नत कर सकता है। भक्ति-साहित्यके इस प्राचुर्यसे एक बड़ा लाभ यह हुआ कि हिन्दू-समाजने अपने वैशिष्ट्य एवं निजत्वको—अपनी सभ्यता और संस्कृतिको—विजेता जातिके वैशिष्ट्य, उनकी सभ्यता और संस्कृतिकी छापसे सर्वथा अक्षुण्ण बनाये रखा। मुसलमान भारतवर्षमें बस गये, और हिन्दुओंके साथ हिलमिल भी गये; किन्तु इतनेपर भी हिन्दू-समाजकी क़िलाबन्दीको वे तोड़ नहीं सके। वैष्णव कवियोंने राम-कृष्णके कीर्त्तन और गुणानुवाद द्वारा तथा "जाति-पाँति पूछे नहिं कोई, हरिको भजे से हरिका होई," इस मूलमंत्रके प्रचार द्वारा धर्मके गूढ़ और जटिल तत्वोंको सर्वसाधारण-सुलभ बना दिया, और लोगोंमें धर्मके प्रति अखंड आस्था उत्पन्न कर दी। हिन्दू-समाजके हृदयपर भक्तिवादकी छाप अमिट रूपमें अंकित हो गई, और इसके प्रेमामृतका प्याला एक बार होठोंसे लगाकर फिर इसे छोड़नेकी उसे कभी इच्छा ही नहीं हुई। यही कारण है कि मुसलमान विजेता और हिन्दू विजित जाति होनेपर भी एक दूसरेके धर्म, सभ्यता और संस्कृतिपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेमें समर्थ नहीं हुए; किन्तु इस भक्ति-साहित्यने जहाँ एक ओर हिन्दू-समाजका यह मंगल साधन किया, वहाँ दूसरी ओर उसने हिन्दुओंमें निश्चेष्टता और उद्योगहीनताका भाव भरकर उन्हें तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियोंसे एकदम उदासीन बना डाला! एक विदेशी जाति द्वारा उनकी सहस्रों वर्षकी स्वतंत्रता अपहृत हो चुकी है। स्वदेश और स्वराज्य कहकर गर्व करने लायक़ कोई वस्तु उनके पास रह नहीं गई। संसारमें हिन्दुओंके निवासका जो एकमात्र स्थान था, उसपर विदेशियोंका आधिपत्य स्थापित हो गया। हिन्दुस्तानमें रहकर भी, हिन्दू कहाकर भी, हिन्दू अपने देशके, अपने घरके, आप मालिक नहीं रहे—इस तरहके भाव उनके हृदयमें कभी उठे ही नहीं। देशका शासन सुचारु रूपमें हो रहा है, और लोगोंको अन्न-वस्त्रका कष्ट नहीं है, बस, इतने से ही उनका मतलब था। अतएव हिन्दुओंके हृदयसे स्वदेशाभिमान, जाति-गौरव और स्वातंत्र्याकांक्षा विलुप्त होने लगी, और वे व्यावहारिक ज्ञानशून्य बन गये। जिन महात्माओं और साधु-सन्तोंने भक्ति-साहित्य द्वारा निर्विकार ईश्वरीय प्रेमका प्रचार किया था, वही प्रेम अब विषय-भोग और इन्द्रिय-सुखमें परिणत हो गया। जिन कवियोंकी कविताओंका रसास्वादन करके लोग ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो जाते थे, वैसे कवि अब नहीं रह गये।

उनके बादके कवियोंने ब्रजभाषाके माखनमें श्रृंगारकी कोमल मूर्ति चित्रित करके अपनी कविताओंको

वासनाजनित प्रेमासवसे ओत-प्रोत कर दिया, और उसपर विषयानुरागकी ऐसी तीव्र चाशनी चढ़ा दी कि उसमें कटोरा भर-भरकर रसलोलुप जन अपने मुँहमें उड़ेलने लग गये। इस हलाहलका कुछ ऐसा नशा चढ़ा कि उसकी मस्तीमें सब-कुछ भूलकर लोग विषयानन्दमें आकंठ निमज्जित हो गये। इस विषयानन्दने कवियोंको नारी-सौन्दर्यका ऐसा सूक्ष्म ज्ञान कराया, जैसा शायद ही अभी तक किसी भाषाके कवियोंको प्राप्त हुआ हो। इन प्रेमी कवियों द्वारा साहित्यका अनुपम श्रृंगार हुआ, उसके स्तर-स्तरमें रसका परिपाक हुआ और उसके कोमल-कान्त-कलित कलेवरसे माधुर्यकी धारा-सी फूट चली। इस प्रकार मुग़ल बादशाहोंके शान्तिमय शासन और उनकी छत्रछायामें हिन्दीके काव्य-साहित्यको पूर्ण प्रोत्साहन मिला, उच्च कोटिके साहित्यका निर्माण हुआ और संगीत, शिल्प, स्थापत्य, चित्रकारी आदि ललित-कलाओंका समुचित समादर हुआ; किन्तु यह सब होते हुए भी, ऐसे सजीव साहित्यकी सृष्टि नहीं हुई, जो हिन्दुओंमें सजीवताका भाव भर दे, उनमें आत्मबोधकी भावना जाग्रत कर दे और उनके सुषुप्त चैतन्यको ठोकरें मारकर जाग्रत कर दे। सारी जाति अलसतन्द्राविजड़ित होकर विलास-वैभवमें विभोर बन बैठी, किन्तु घटना-चक्रके प्रभावसे मुग़लोंका यह शान्तिमय शासन चिरकाल तक क़ायम नहीं रह सका। औरंगज़ेबका दुर्दान्त शासनकाल प्रारम्भ हुआ। उसके अत्याचार-तपनके तापसे भारतभूमि उत्तप्त हो उठी। चोटी और यज्ञोपवीतकी रक्षाके लिए त्राहि-त्राहि मच गई। राम-कृष्णके कीर्त्तन बन्द हो गये। मन्दिरों और देवालयोंका घंटा-रव शान्त हो गया। कविता-कामिनीका विलासमय श्रृंगार लुण्ठित हो गया, और वह बेचारी एक कोनेमें मुँह छिपाकर किसी प्रकार सिसकती रही। इस भयंकर अशान्त कालमें उसके लिए स्थान ही कहाँ था? भारतके दक्षिणाकाशमें शिवाजीका प्रचण्ड शौर्य देदीप्यमान हो उठा। पन्ना नरेश महाराजा छत्रसालके दरबारमें सिंहवाहिनी शक्तिकी आराधना होने लगी। बस, फिर क्या था? समय उपयुक्त था ही; परिस्थिति पहलेसे ही तैयार हो रही थी। ऐसे समयमें ही भूषण जैसे वीररसके कविने हिन्दी-काव्य-साहित्यमें, अपने हृदयकी ज्वालामयी भाषा द्वारा, वीर, रौद्र और भयानक रसकी ऐसी कठोर-कर्कश मूर्ति रच डाली कि उसे देखकर हिन्दू-जातिकी सुकुमार भावनाएँ सिहर उठीं, और उनके अंग-प्रत्यंगसे, रग-रगसे, शिरा-शिरासे अग्निमय उच्छ्वास प्रकट होने लगे। कविता-कामिनीके कच, कुच, कटाक्षकी कमनीय कल्पनाका कौशल छोड़कर, भूषणने आलुलायित केशा, मुण्ड-माल-परिहिता, खर करवालधारिणी रणचण्डीकी हुंकारमयी तानसे हिन्दू-जातिके अन्तरतरको इस प्रकार गुंजा दिया, जिससे युग-युगकी राशिभूत उदासीनता, कायरता और नपुंसकताजनित गतानुगतिक पतित भावनाएँ चीख़ उठीं, और इस अधःपतित जातिमें एक ऐसी संजीवनी शक्तिका प्रादुर्भाव हो गया, जिससे वह मुग़लोंकी प्रबलतम शक्तिका सफलतापूर्वक सामना करनेमें समर्थ हुई।

भूषणकी कविता सजीवताकी साक्षात् मूर्ति है। उसमें ओजस्विता, उद्दण्डता और उच्छृंखलताके भाव कूट-कूटकर भरे हुए हैं। कविताके शब्द-शब्दसे, वाक्य-वाक्यसे वीरता टपक रही है। हिन्दुओंके जातीय गौरवका, उनके शौर्यवीर्यका, उनके निजत्व और वैशिष्ट्यका जितना इस कविको ख़याल था, उतना और किसी कविको नहीं। इसके पहले भी आदिकालमें कुछ कवियोंने अपने आश्रयदाता नरेशोंके वीरत्व और प्रतापके वर्णनमें प्रशस्तियाँ लिखी थीं, किन्तु उनमें वे ख़ूबियाँ नहीं, जो भूषणकी कवितामें पाई जाती हैं। भूषणकी कवितामें सबसे बड़ा गुण है हिन्दुओंकी एक-

जातीयता। उसकी वीर वाणी इस जातीयताके रसमें सनी हुई होनेके कारण सारी हिन्दू-जातिकी सम्पत्ति बन गई है, और उसे चिरकालके लिए उसके मानस-पटलपर अंकित कर दिया है।

हिन्दू-जातिकी उस समय जैसी दुर्दशा हो रही थी, उनकी जननी जन्मभूमि यवन-पदाक्रान्त होकर जिस प्रकार करुण क्रन्दन कर रही थी, उसे देखते हुए आवश्यक तो यह था कि भूषण-जैसे कवि देशके प्रान्त-प्रान्तमें पैदा होते, और अपनी जातीयता-गौरव-गुण-गुम्फित काव्य-कलाके चमत्कारसे देशके अशान्त वातावरणको प्रचण्ड झंझावातमें परिणत करके उसके द्वारा सुषुप्त भावोंकी ज्वालामुखीका विस्फोट करा डालते, जिससे हिन्दू-जातिकी समस्त पुंसत्वविहीन भीरु भावनाएँ गलकर नष्ट हो जातीं, और उनकी मज्जा-तन्तुओंमें जातीयताका रस प्रबल वेगसे प्रवाहित होने लगता; किन्तु हिन्दू-जातिके दुर्भाग्यसे ऐसा नहीं हो सका। भूषणकी वीर वाणी उन्हीं तक परिमित रह गई। प्रचार-साधनोंके अभावमें उसकी प्रतिध्वनि सारे देश तक नहीं पहुंच सकी। यही कारण है कि मुग़लोंका राज्य-ध्वंस करके भी यह जाति अपनी अपहृत स्वतंत्रताको पुनः प्राप्त नहीं कर सकी। उस समय यदि कोई ऐसा कवि या लेखक होता, जो अपनी वाणीमें जातीयता और राष्ट्रीयताका सुर भर-भरकर अग्निगानके स्फुलिंगोंसे सारे देशको अग्निमय बना डालता और वीर तथा रौद्रका संगीतपूर्ण प्रखर प्रवाह प्रवाहित करके उसके भैरव-निनादसे हिन्दू-जातिकी सुषुप्त जातीय भावनाओंको जगा डालता, तो यह निश्चय था कि यह जाति एक विदेशी जातिके चंगुलसे निकलकर दूसरी जातिके दासता-पाशमें आबद्ध नहीं होती। अस्तु, मुसलमानी शासनका तेज नष्ट हो जानेपर कुछ समय तक देशमें घोर अशान्ति बनी रही। समग्र देशमें फूट और बैरकी बेलि बढ़कर व्याप्त हो गई, और देशका शासन-प्रबन्ध विशृंखल और अस्त-व्यस्त हो चला। इस स्थितिसे लाभ उठाकर अंगरेज़ वणिकोंने देशका शासनाधिकार क्रमशः अपने हाथमें ले लिया। अंगरेज़ी राज्यकी बदौलत सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित हो गई, किन्तु यह शान्ति और सुव्यवस्था स्वतंत्रताजनित शान्ति और सुव्यवस्था नहीं थी। इसमें हिन्दुओंका अपना कोई कृतित्व नहीं था। विजेता जाति द्वारा विजित जातिपर ज़बरदस्ती लादी गई यह शान्ति मुर्देकी शान्ति-जैसी थी। इस शान्तिमें जीवन, ज्योति और जागरणका सर्वथा अभाव था।

अंगरेज़ोंकी कूटनीति, प्रबन्ध-कौशल, पराक्रम और व्यवसाय-बुद्धिने हिन्दुओंको चकित और विस्मित कर दिया। धार्मिक अत्याचार सहन करते-करते उनका जी ऊब-सा गया था, प्रतिशोधकी भावना बिलकुल लुप्त हो गई थी, और नैराश्य तथा निश्चेष्टताका सर्वत्र साम्राज्य छाया हुआ था। इसी समयसे हिन्दुओंकी मानसिक ग़ुलामी भी शुरू हुई। राजनैतिक स्वतंत्रता तो खो ही चुके थे, मानसिक और बौद्धिक स्वतंत्रता भी जाती रही। पाश्चात्य सभ्यताके वाह्या-डम्बरने उनकी आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर दिया। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृतिके साथ भारतीय सभ्यता और संस्कृतिको जो संघर्ष हुआ, उसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृतिका पराभव हुआ। शिक्षित श्रेणीके लोगोंमें अंगरेज़ोंकी अन्धाधुन्ध नक़ल शुरू हुई। स्व-भाषा और स्व-भेषसे घृणा होने लगी, और उसके बदले पर-भाषा और पर-भेष-भूषासे हमारा प्रेम बढ़ा। इस मानसिक ग़ुलामीने हमें इतना पतित और निर्जीव बना दिया कि हममें स्व-देश और स्व-जातिके प्रति नाममात्रका भी अभिमान नहीं रह गया। जातीय जीवनकी गति निष्क्रिय और शिथिल बन गई, दिल दब गये, हौसले पस्त हो गये, भावनाएँ मुरझा गईं, और सम्पूर्ण मानवीय शक्तियाँ पंगु-सी बन गईं।

ऐसी परिस्थितिमें सजीव साहित्यका निर्माण ही किस तरह हो सकता था, जब जातिमें जीवन ही नहीं रह गया था, उसके प्राणोंका स्पन्दन अवरुद्ध हो गया था, उसकी विचार-धारा म्लान हो गई थी, उसकी उमंगें उत्सन्न हो गई थीं, उसकी धमनियोंमें बहनेवाला रक्त ठंडा पड़ गया था, तो फिर सजीव साहित्यकी सृष्टि ही किसके हाथों होती ?

आरम्भमें अंगरेज़ी शिक्षा-दीक्षाका सबसे प्रबलतम प्रभाव बंगालके ऊपर पड़ा। बंगालियोंने अंगरेज़ी साहित्य-सुधा-रसका खूब छककर पान किया, और उसके रंगमें सराबोर हो गये। यह नशा उनके ऊपर कुछ ऐसा चढ़ा कि इसकी मस्तीमें वे अपने आपको बिलकुल भूल गये। उन्नीसवीं शताब्दीके सुशिक्षित बंगाली अपना सब कुछ खो चुके थे। उनकी आत्मा म्रियमाण-सी हो रही थी। श्वेतांग प्रभुओंके नक्क़ालके सिवा वे और कुछ नहीं रह गये थे। जान-बूझकर स्व-भाषा और स्व-भेष-भूषाको भूल जानेकी कोशिश की जाती थी। यदि बंग-माताएँ उस समय नहीं होतीं, तो शायद बंगाली अपनी मातृभाषा तकको भूल गये होते। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृतिकी सनक उस समयके शिक्षित बंगालियोंके ऊपर सवार हो रही थी, और ऐसा मालूम पड़ता था कि वे कलकत्तेको लंदन और बंगालको काला इंग्लिस्तान बनाकर ही छोड़ेंगे। उन्हें इस बातमें सन्देह होने लग गया था कि भारतकी भी अपनी कोई सभ्यता है, निजत्व अथवा वैशिष्ट्य है। इनके विचारसे भारतके उद्धारका एकमात्र उपाय यही था कि वह नेत्रनिमीलित और करबद्ध होकर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृतिका अनुकरण करने लग जाय, और नखसे सिख पर्यन्त उसी रंगमें अपनेको रँग दे। पाश्चात्य विचारोंका उच्छिष्ट चर्वण करके बंगाली अपने धर्म, साहित्य, समाज, अपने घर, यहाँ तक कि अपने ईश्वरको भी भूल गये। इस प्रकार जिस समय सारे बंगालपर पाश्चात्य सभ्यताका आवरण आच्छादित हो रहा था, और ऐसा प्रतीत होता था कि बंगाल भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके स्रोतसे अपनेको सर्वथा विच्छिन्न कर लेगा; उस समय बंगालियोंको इस अन्धकारपूर्ण वर्तमानसे उज्ज्वल भविष्यका स्वप्न किसने दिखलाया ? साहित्यने, साहित्यने, साहित्यने ! और वह भी कैसा साहित्य ? सजीव, सतेज और प्राणमय साहित्य। इस साहित्यने बंगाली जातिको नवज्योतिका दर्शन कराया, उनकी मुमूर्षु आत्माको जीवन दान दिया, उनकी विवेक-बुद्धिको विशद बनाया, उनके विचारोंको परिमार्जित किया और उनके व्यक्तित्वपर परानुवाद और परानुकरणका जो काला परदा पड़ा हुआ था, उसे दूर करके उन्हें अपने व्यक्तित्व और वैशिष्ट्यका बोध कराया। साहित्य-शलाकाने उनका नेत्रोन्मीलन करके उन्हें अपने देश, अपनी जाति, अपनी भाषा, अपनी सभ्यता और संस्कृतिपर भरोसा करने, अपनी आत्मापर आस्था रखने और अपने देशके समुज्ज्वल भविष्यपर विश्वास रखनेका पाठ पढ़ाया। ऋषि बंकिमचन्द्रने 'आनन्दमठ' नामक मातृ-मन्दिर निर्मित करके उसमें माताकी मूर्ति स्थापित की, और 'बन्देमातरम्' के महामंत्र द्वारा उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर दी। योगी अरविन्दने 'बन्देमातरम्' और 'युगान्तर' में, ब्रह्म-बान्धव उपाध्यायने 'सन्ध्या' पत्रमें अध्यात्म-भावापन्न स्वातंत्र्य-साहित्यका ऐसा प्रखर प्रवाह प्रवाहित किया कि उसमें बंगालके तन-मन-प्राण निमग्न होकर संजीवित हो उठे। वाग्मीप्रवर स्वर्गीय सर सुरेन्द्रनाथ तथा स्वर्गीय विपिनचन्द्र पालने अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा बंगाली जनताके प्राणोंमें विद्युत्शक्तिका संचार कर दिया। बंगालियोंके आत्मबोध और जागरणका यह युग था। इस युगके अनुरूप साहित्यका भी निर्माण होने लग गया। इस साहित्यके प्रभावसे बंगालके घर-घरमें

माताकी मूर्तिकी पूजा होने लगी। डी० एल० राय, रजनीकान्त और कवीन्द्र रवीन्द्रके देश-प्रेम परिपूरित गानने बंगालियोंके शिरा-शिरामें देशभक्तिकी लहर बहा दी, उनके हृदयको आवेगपूर्ण बना दिया, और उनकी स्वातंत्र्याकांक्षाको उद्दीपित कर दिया। इन देश-प्रेमी कवियोंने अपनी हृदय-वीणाके तारोंमें प्राणोंका तान भरकर कुछ ऐसा दिव्य संगीत सुनाया कि उससे बंगाली जातिकी हृत्तंत्री उसी महाप्राणताके लयमें तल्लीन होकर झंकृत हो उठी। समग्र देशमें राष्ट्रीयताकी उत्ताल तरंगें उद्वेलित होने लगीं, और किशोर प्राण पुलकित होकर नाच उठे। कवीन्द्रके काव्यमें बंगला देशकी सजीव मूर्ति ऐसी प्राणमयी भाषामें अंकित हुई कि उसे पढ़कर और सुनकर बंगालियोंकी रग-रगमें स्पन्दन होने लगा। कवीन्द्रकी कविताओंमें बंगालके स्त्री-पुरुष, बालक, वन, नद, नदी, पर्वत, सरिता, सरोवर, आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, पशु-पक्षी, वृक्ष, फल-फूल आदिका ऐसा आवेशपूर्ण मार्मिक वर्णन हुआ कि उसे पढ़कर भावुक हृदय बंगाली देश-प्रेमके उन्मादमें उन्मत्त हो गया, और उसके मानसके सामने बंग-माताकी मूर्ति निरन्तर प्रत्यक्ष-सी होने लगी। बस, फिर किया था, उसके मुँहसे निकल पड़ा—

"किसेर दुःख, किसेर दैन्य, किसेर लज्जा, किसेर क्लेश।"
"सप्तकोटि मिलित कंठ डाके जखन आमार देश।"

"देवी आमार! साधना आमार!
स्वर्ग आमार! आमार देश!"

बंगालके घर-घरमें इस प्राणोन्मादकारी संगीतकी स्वर-लहरी लहरानेलगी, और बंगालका वायुमंडल इसकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित होने लगा। बंकिम बाबूके 'बन्देमातरम्', डी० एल० रायके 'आमार देश' और कवीन्द्रके 'सोनार बंगला' ने बंगालको सजीव और सजग बनानेमें, उनमें शक्तिकी ज्वालामुखी भर देनेमें डायनामाइट-जैसा काम किया। इस समय बंगालमें सजीव साहित्यकी ऐसी सवेग धारा बह चली कि उसके प्रवाहमें पड़कर कितने ही तरुण वह्निशिखा हाथमें लेकर मरण-सिन्धुका सन्तरण करनेके लिए उद्यत हो गये। युग-युगके संचित पाप-पुण्यको तरुणोंकी पवित्र रक्त-धारामें धो डालनेके लिए वे व्यग्र हो उठे। बंगालके इस जाग्रत-युगको गौरवमय बनानेमें सजीव साहित्यने बड़ा-भारी काम किया। परानुकरणकी प्रवृत्ति अधिकांशमें दूर हो गई, आत्म-विश्वासका भाव दृढ़तर हो चला और जाति तथा देशकी मुक्ति उनके बुद्धिबल और बाहुबल द्वारा ही संचालित हो सकती है, यह शिक्षा उनके दिल और दिमागपर सदाके लिए खचित-सी हो गई। सजीव साहित्यकी यह धारा अब तक परिम्लान नहीं हुई है, और उसके अमृत रससे अब भी बंगालियोंका जातीय जीवन संजीवित हो रहा है।

अंगरेज़ी शिक्षा-दीक्षाका सवेग प्रचार जिस प्रकार बंगाल-प्रान्तमें हुआ, उस प्रकार हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंमें नहीं हो सका, अतएव पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृतिकी बेलि इन प्रान्तोंमें विशेषरूपसे फल-फूल नहीं सकी; किन्तु पाश्चात्य शिक्षाके इस कुफलसे बचे रहनेपर भी हिन्दू-समाजकी जीवन-धारा क्षीण और मन्द गतिसे प्रवाहित हो रही थी। सर्वत्र अखण्ड शान्ति और अविचल समाधि विराज रही थी। यह शान्ति और समाधि हृदयकी नहीं थी, बल्कि पत्थरकी शान्तिकी तरहका उसमें मुर्दापना भरा हुआ था। चिरकाल निद्रित, निश्चेष्ट और वेदान्तिक अलसतन्द्राविजड़ित आत्म-विस्मृत हिन्दू-समाज निष्प्राण-सा होकर किसी प्रकार अपना जीवन धारण कर रहा था। उसमें कर्मशीलताका भाव बिलकुल नहीं रह गया था। अनेक युगोंके घात-प्रतिघातसे जर्जरित, उदासीन, निश्चेष्ट हिन्दू-समाजकी इस विराट निश्चेष्टता और अकर्मण्यताको

आहत करके जातीय जागरणके भावको उद्बुद्ध करनेके लिए जिस सजीव साहित्यकी आवश्यकता थी, वह साहित्य उस समय था ही कहाँ ? प्राचीन हिन्दी-लेखकोंमें हमें भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र और बा० बालमुकुन्द गुप्तकी रचनाओंमें सजीव जातीय साहित्यका आभास मिलता है।

बंगालमें स्वदेशी-युगका जो आन्दोलन चला, उसका दूर-व्यापी प्रभाव न्यूनाधिक रूपमें समस्त भारतपर पड़ा। उस समय 'देशकी बात' और 'आनन्दमठ' जैसी कुछ पुस्तकें (अनुवादित रूपमें) तथा 'कर्मयोगी' और 'केसरी' जैसी कतिपय पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनसे हमारे जातीय जीवनको बहुत कुछ उत्तेजन मिला, और इनके पथ-प्रदर्शनसे आगे चलकर सजीव साहित्यके निर्माणमें बड़ी सहायता मिली। डा० एनी बेसेन्टके होमरूल-आन्दोलनसे पश्चिम-भारतमें धारावाहिक रूपमें राजनीतिक जाग्रति आरम्भ हुई, और इसी समयसे हिन्दीमें भी सजीव जातीय साहित्यका निर्माण शुरू हुआ। हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें सजीवता, क्रियाशीलता तथा यौवनोचित चंचलता और हृदयावेशका भाव भरनेमें 'प्रताप' ने जितना काम किया, उतना शायद ही और किसी पत्रने किया हो। उन दिनों 'प्रताप' के ओजपूर्ण लेख और स्फूर्तिदायिनी कविताओंको युवक-हृदय किस चावसे पढ़ा करता था, इसका अनुभव स्वयं इन पंक्तियोंके लेखकको है। कविताएँ तो उसमें ऐसी उमंगपूर्ण निकला करती थीं कि उन्हें बार-बार पढ़कर युवकोंकी हृत्तंत्री आनन्द, उत्साह और उल्लासके तारोंसे झंकृत हो उठती थी। लोग उन कविताओंको कंठस्थ कर लेते थे, अथवा अपने संग्रहकी कापियोंमें लिख लिया करते थे, ताकि समय-समयपर उससे स्फूर्ति और तेजकी उपलब्धि हो सके। कविवर बा० मैथिली-शरणकी 'भारत-भारती' ने भी जातीय जागरणके प्रचारमें बहुत बड़ा काम किया, किन्तु कतिपय उत्कृष्ट गुणोंके अभावके कारण यह ग्रन्थ स्थायित्व लाभ कर सकेगा, या नहीं, इसमें सन्देह है।

असहयोग कालसे लेकर अब तक हिन्दीमें राष्ट्रीय साहित्यकी बाढ़-सी आ गई है। पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तक-पुस्तिकाएँ बहुतसी प्रकाशित हुई हैं, और इस समय भी हो रही हैं; किन्तु खेद है कि इनमें अधिकांश ऐसी हैं, जिनका प्रभाव चिरकाल तक स्थायी नहीं रह सकता। इसका कारण है उनमें सजीवताका अभाव। उनमें प्राणोंको आन्दोलित देनेकी वह शक्ति नहीं, जो अनन्त काल तक हमें चिरनूतन और नितनवीनके रूपमें प्रतीत होती रहे। क्षणिक आवेशके वशीभूत होकर जो रचनाएँ की जाती हैं, उनमें स्थायित्वका प्रायः अभाव-सा रहता है। यही कारण है कि हिन्दीमें राष्ट्रीय कविताओंकी भरमार होनेपर भी आज तक 'बन्देमातरम्', 'आमार देश', "जनगण-मन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता !" जैसा एक भी प्राणोन्मादक गान नहीं बन सका। जिस समय एक बंगाली युवकके मुखसे "के बले मां तुमी अबले ?" अथवा "सप्तकोटि मिलित कण्ठ डाके जखन आमार देश" तथा एक अंगरेज़ बालकके मुखसे—

Rule Britainia, Britania rules the waves,
Britons never shall be slaves."

की प्रकम्पित स्वर-लहरी निकलती है, उस समय गर्वसे उसका वक्षस्थल स्फीत हो जाता है, और देश-प्रेमकी मस्तीमें वह झूमने लगता है। हिन्दी-भाषामें क्या इस तरहका एक भी गान मिल सकता है ? ओजपूर्ण सामयिक संगीतकी रचना हुई है अवश्य, किन्तु उसमें वह सजीवता नहीं, वह स्थायित्व नहीं, जो चिरकाल तक हमारी संगीत-तृषाको शान्त करता रहे।

अस्तु, वर्तमान युगके युवक कवियोंका ही यह काम है कि वे अपनी प्राणमयी तानसे जातिके अन्तरतरको

इस प्रकार गुंजा दें, जिससे प्रचंड क्रियाशीलताकी पावन धाराके उच्छ्वसित आवेगसे आहत होकर उसके परम्परागत भीति-भाव सदाके लिए भग जायँ, और वह इतना कुलिश-कठोर बन जाय कि उसके ही निर्मम हाथोंसे इनका संहार होकर उनकी चिता-भस्मपर चिरनूतन, नितनवीन सौन्दर्यकी सृष्टि हो। उनकी तेजोमयी वाणीमें ही वह बल है, जिससे प्रलयंकर शंकरका भाल-नेत्र उन्मीलित होकर उसकी चिनगारियोंसे हमारी सारी विलास-भावनाएँ भस्मीभूत हो सकती हैं, और हमारे अन्तरमें दीप्ति और शौर्यपूर्ण भावोंका भंडार भर सकता है। अज्ञान और अन्धकारमें डूबे हुए लक्ष-लक्ष नर-नारियोंको ज्ञानालोक द्वारा भगवानके ज्योतिर्मय राज्यमें प्रवेश कराना भारतके जाग्रत यौवन द्वारा ही सम्पादित हो सकता है ; किन्तु इसके लिए चाहिए यौवनकी उन्मादकता, साधकोंकी महाप्राणता, अन्तःकरणकी अनुभूति और अन्तर्दृष्टि। "शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः" इस महामंत्र द्वारा जिन देवताओंने अमृत-युगकी कथा हमें सुनाई थी, उस युगका आवाहन हमें अपने कवियोंकी वाणीमें ही मिल सकता है।

इस वाणीमें एक प्रकारकी जो सद्यःमादकता होगी, उसका आस्वादन करके हम भारतके जातीय जीवनको नूतन रूपमें संगठित कर सकेंगे, और समाजके सर्वांशमें, उसके अणु-परमाणुमें, युग-धर्मकी दीक्षा ओत-प्रोत भावसे भर देंगे। इस प्रकार युग-धर्मकी प्रतिष्ठा द्वारा जब भारतके उज्ज्वल भविष्यका निर्माण होगा, तभी भारत अपने परम धनका सन्धान पायगा, और वह व्यक्तिमें संघको, संघमें जातिको और नरमें नारायणको विकसित कर दिखायगा। उस समय हम देश-माताकी स्नेहमयी, वात्सल्यमयी, माधुर्यमयी, अमृतमयी, सर्वमंगला मूर्तिका दर्शन करनेमें सक्षम होंगे, और देशके लक्ष-लक्ष कवि-कण्ठोंसे सप्तस्वरसंयुक्त तान-लयमें मातृ-महिमाके मधुर मोहन गान मुखरित हो उठेंगे।

राष्ट्रवाद

श्री सुमतिप्रसाद जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०

रोज़की बोल-चालमें हम ऐसे बहुतसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं, जिनका पूर्ण अर्थ हमारी समझमें नहीं आता, और न हम समझनेकी चेष्टा ही करते हैं। यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरातने अपना जीवन शब्दोंकी परिभाषा करने और उनका ठीक-ठीक अर्थ समझनेमें लगा दिया था। उससे पहले 'मनुष्य' शब्द तककी कुछ परिभाषा न थी। हम 'राष्ट्र' शब्दका प्रयोग बात-बातमें करते हैं। राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रपति, राष्ट्र-निर्माण इत्यादि आजकल रोज़मर्राकी साधारण बोलीके शब्द हो रहे हैं, पर हममें से कितने 'राष्ट्र' का अर्थ समझते हैं? वास्तवमें राष्ट्र क्या है, यह समझना सरल नहीं। राजनीतिके प्रख्यात पंडितोंमें स्वयं इस शब्दकी परिभाषापर बड़ा मतभेद है।

कुछ लोगोंका विचार है कि वह जन-समाज जिसकी उत्पत्ति एक ही जातिसे हुई हो, राष्ट्र है; किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यूरोपके बहुतसे देशोंमें भिन्न-भिन्न जातियाँ आ बसी हैं, परन्तु इससे उन देशोंके एक राष्ट्र होनेमें कोई बाधा नहीं पड़ती। पूर्वी यूरोपके देशोंमें इतनी विभिन्न जातियाँ बसती हैं कि वे जातियोंके अजायबघर (Museum of Races) कहे जाते हैं; किन्तु उन देशोंके अधिवासी एक राष्ट्रके नामसे पुकारे जाते हैं। चेकोस्लोवाकिया और स्विट्ज़रलैंड इस प्रकारके राष्ट्रोंके अच्छे नमूने हैं। कनाडामें फ्रांसीसी और अंग्रेज़ दोनों जातियोंके मनुष्य रहते हैं, पर कनाडाके राष्ट्र होनेमें कौन सन्देह कर सकता है? भारतवर्षमें भिन्न-भिन्न नस्लोंके मनुष्य हैं--कुछ आर्य हैं, कुछ द्राविड़ हैं, कुछ मंगोल हैं और कुछ तुर्क आदि—परन्तु यह बात भारतवर्षके राष्ट्र होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डालती।

कुछ लोगोंका विचार है कि एक धर्मके पालन करनेवाले एक राष्ट्रके सदस्य हो सकते हैं, और जिनका वही धर्म न हो, वे उस राष्ट्रमें नहीं गिने जा सकते। यह एकदम ग़लत है। अब संसार इतना बढ़ गया है कि धर्म और राजनीति दो भिन्न-भिन्न विषय हो गये हैं। भिन्न-भिन्न धर्म पालन करनेवाले एक ही देशमें बड़े सुखसे रहते हैं। यूरोपके रोमन कैथालिक और प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायोंके लोग और यहूदी साथ साथ रहते हैं। इसी तरह भारतवर्षमें भी हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी आदि जातियाँ हैं; पर कई जातियोंका होना राष्ट्र-निर्माणको असम्भव नहीं बनाता।

कुछ लोग इस विचारके हैं कि भाषाका एक होना राष्ट्रका चिह्न है। जिनकी एक ही भाषा हो, वे एक राष्ट्रके हैं, और जिनकी भाषा एक नहीं, वे भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंके हैं; किन्तु ऐसा नहीं। स्विट्ज़रलैंडमें जर्मन, फ्रेंच और स्विस—तीन मुख्य भाषाएँ हैं, और तीनों काममें आती हैं; पर स्विट्ज़रलैंड राष्ट्र है, इसे कौन न मानेगा? इसके विपरीत इंग्लैंड और अमेरिका दोनोंके निवासी अंग्रेज़ी भाषा बोलते हैं, पर दोनों ही देश अलग-अलग राष्ट्र हैं। भारतमें भी कई मुख्य भाषाएँ बोली जाती हैं, पर यह बात राष्ट्र-निर्माणमें उतनी बाधा नहीं डालती, जितना जनसाधारणका विचार है। अब शीघ्र ही भारतवर्षकी राष्ट्र-भाषा हिन्दी होगी, जिससे राष्ट्र-निर्माणमें बड़ी सहायता मिलेगी।

कुछ राजनीतिज्ञोंका कहना है कि राष्ट्र-निर्माणमें भौगोलिक स्थिति ही सब कुछ है। यदि भौगोलिक एकता होगी, तो राष्ट्र बनेगा, अन्यथा नहीं; परन्तु यह कहना सर्वांग सत्य नहीं है। पोलैंड अपने पासवाले देशोंसे किसी प्रकार भिन्न नहीं; किन्तु यह बात उसे राष्ट्र होनेसे नहीं रोकती। इतना अवश्य मानना होगा कि यदि भूगोलकी दृष्टिसे कोई देश एक है, तो उसके राष्ट्र बननेमें बहुत आसानी होगी। इंग्लैंड द्वीप होनेके कारण ही जल्दी राष्ट्र पद पा

सका था। भूगोलकी दृष्टिसे भारतवर्ष एक देश है, उसकी भौगोलिक स्थिति उसके राष्ट्र होनेमें सहायक होती है।

कुछ लोगोंका कहना है कि बहुत समय तक एक ही शासनके अधीन रहनेसे जनसमूह राष्ट्र हो जाता है, उसमें एकता बढ़ जाती है। भारत बहुत दिनोंसे इस स्थितिमें रहा है, इसलिए यह बात राष्ट्र-निर्माणमें भारतकी सहायक होगी। यदि जनसमूहोंका एक ही शत्रु हो, तो उससे अपनी रक्षा करनेके लिए वे जनसमूह बहुधा आपसमें मिल जाते हैं, और धीरे-धीरे एक राष्ट्रके रूपमें परिणत हो जाते हैं। कभी-कभी समान विचारवाले देश मिलकर एक राष्ट्र बन जाते हैं। बहुधा राष्ट्रके सदस्य आर्थिक एकता रखते हैं।

ऊपर लिखी बातोंमें से कोई भी बात ऐसी नहीं है, जिसकी उपस्थिति राष्ट्र-निर्माणके लिए अनिवार्य हो; परन्तु इनमें से जितनी भी अधिक बातें किसी देशमें होंगी, उसका राष्ट्र-संगठन उतना ही अधिक दृढ़ होगा। महायुद्धके बाद जिन राष्ट्रोंका निर्माण हुआ है, उनमें एक विशेष बात यह है कि राष्ट्र-संघ (League of Nations) की ओरसे तीन प्रकारके जनसमूहोंको—जिनकी संख्या उस देशमें बीस प्रतिशतसे अधिक और पचास प्रतिशतसे कम है—विधानात्मक संरक्षण (Constitutional Guarantees) दिये गये हैं। ये तीन प्रकारके अल्पसंख्यक लोग वे हैं, जिनकी जाति, धर्म या भाषा बहुसंख्यावालोंसे भिन्न है। उन्हें यह गारंटी की गई है कि जाति, धर्म और भाषाके मामलेमें उनके अधिकार बहुसंख्यावालोंके समान रहेंगे। आश्चर्य यह है कि भारतवर्षका अल्पसंख्यक जनसमूह इनसे सन्तुष्ट नहीं होता। वह बहुसंख्यावालोंके समान ही अधिकार नहीं माँगता, बल्कि उनसे अधिक अधिकार चाहता है।

वास्तवमें राष्ट्रीयताका आवश्यक लक्षण है राष्ट्रकी एकताकी भावना। यदि किसी देशवाले यह विश्वास रखते हैं कि वे एक राष्ट्रके सदस्य हैं, तो वह देश राष्ट्र है, अन्यथा नहीं। यदि भारतके निवासी यह भावना रखते हैं कि भारत [illegible] है, हम सब उसके पुत्र हैं और भारतवर्ष एक राष्ट्र है, तो भिन्न जाति, भिन्न धर्म, भिन्न रीति-रिवाज़ होनेपर भी भारत एक राष्ट्र है। हम जितना ही अधिक इस भावनाकी ओर बढ़ेंगे, इतना ही हमारा कल्याण होगा।

× × ×

संसारके देशोंने राष्ट्रीयताके विचारोंको किस प्रकार अपनाया, यह जानना आवश्यक और रोचक है। पहले यूरोपके राष्ट्रोंके निर्माणपर विहंगम दृष्टिपात कीजिए। प्राचीन रोमन साम्राज्य अपने समयके सारे यूरोपियन सभ्य संसारमें फैला हुआ था, इसलिए वहाँ राष्ट्रोंके अस्तित्वका प्रश्न ही न था। मध्यकालीन यूरोपकी राजनैतिक स्थिति खराब रही। राष्ट्रीयताका विचार उनसे दूर था। धार्मिक झगड़े ही उनका सारा समय ले लेते थे। यूरोपमें वास्तविक राष्ट्रीय विचारोंका जन्म सन् १६४८ से, जब वेस्ट-फ़ीलियाकी सन्धि हुई, हुआ। सबसे पहले राष्ट्रीयताके विचारोंको इंग्लैंडने अपनाया, कारण यह कि वह एक द्वीप था, जिसमें एक ही प्रकारके विचारके मनुष्य बसते थे। वह यूरोपीय महाद्वीपके झगड़ोंसे अलग था। दृढ़ शासकोंने इंग्लैंडको राष्ट्र बना दिया। इसके बाद स्कॉटलैंड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, स्वीडेन, और रूस—एकके बाद एक राष्ट्र बनता गया। इन सबके राष्ट्र बननेका कारण या तो दूसरे देशोंसे अपनी रक्षा करना था, या दूसरे देशोंपर चढ़ाई करना था। अठारहवीं शताब्दीमें राष्ट्रवादके सिद्धान्तको धक्का पहुँचा; किन्तु फ्रांसीसी विप्लव और नेपोलियनने फिर इसका प्रचार किया। जिधर देखिये, "मनुष्यके जन्म-सिद्ध अधिकार" पर विचार हो रहा था। उन अधिकारोंमें से एक अधिकार स्वतन्त्र देशमें स्वराज्य स्थापित करना भी था। इस विचारने दूसरी बार राष्ट्रीयताकी नींव डाली। नेपोलियन सबसे बड़ा राष्ट्र-निर्माता कहा जाता है, यद्यपि यह सच है कि जहाँ उसने राष्ट्र-सिद्धान्तका उल्लंघन अपने लिए हितकर समझा, वहाँ उसने इस सिद्धान्तको तोड़नेमें भी संकोच नहीं किया। नेपोलियनने पोलैंडको राष्ट्र बना दिया। इटली और जर्मनीसे छोटे-छोटे स्थानीय राजाओंको

निकाल बाहर किया, और उनके स्थानमें इटेलियन और जर्मनके राष्ट्र स्थापित किये। उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्र-निर्माणकी शताब्दी है। इस शताब्दीमें पोलैंड, इटली, जर्मनी और हंगरीके बहुतसे देशभक्तोंको देश-निकाला हुआ। देशभक्तोंमें इटलीके भक्त मेज़िनीका नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इटलीका दार्शनिक मेक्यावेली (Macchlaveli) अपनी पुस्तक 'प्रिंस' में बहुत पहले यह लिख चुका था कि राष्ट्र-निर्माणके लिए नीच-से-नीच काम भी वर्जित नहीं। देशके नेताको धर्म और नीतिको एक ओर छोड़ देना चाहिए, और जिस प्रकार भी राष्ट्र-निर्माण हो सके, करना चाहिए। लक्ष्य ही सब कुछ है। उस लक्ष्य तक पहुँचनेका रास्ता बुरा हो, तो चिन्ता नहीं (The end justifies the means)। सन् १८२० से १८७८ तक यूरोपमें सात राष्ट्रोंका जन्म हुआ। वे राष्ट्र हैं— जर्मनी, इटली, ग्रीस, बेलजियम, सर्विया, रूमानिया और बलगेरिया। इतनेपर भी राष्ट्र-निर्माणका काम समाप्त नहीं हुआ, क्योंकि आस्ट्रियन और तुर्क साम्राज्योंमें भिन्न-भिन्न जातियाँ बेहिसाब भरी हुई थीं। इनमें से मुख्य ये थीं— रूमानियन, स्लाव, सर्ब, चेक, पोल, मगयार, क्रोट, बलगर और ग्रीक। ये सब बालकन अन्तरीपमें आस्ट्रिया या टर्कीके राज्योंके अधीन थीं। सन् १८७७ के रूस और टर्कीके युद्धमें टर्की हार गया, और बलगेरिया, सर्विया तथा रूमानिया स्वतंत्र राष्ट्र बन गये। सन् १९१२ में फिर बालकन और टर्कीमें इसी सिद्धान्तपर युद्ध छिड़ गया। सन १९१४-१८ के महायुद्धमें टर्की बिलकुल परास्त हो गया, और बालकन देश स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। इस बार जहाँ तक हो सका, प्रेसिडेन्ट विलसनने राष्ट्र-सिद्धान्तपर यूरोपका नया नक्शा बनानेकी चेष्टा की। कहना न होगा कि विलसनको इसमें पूरी सफलता नहीं मिली।

राष्ट्रीयताका प्रेम केवल यूरोपकी ही सम्पत्ति नहीं है। अमेरिकामें पहले यूनाइटेड स्टेट्स (U. S. A.) ने सन् १७७६ में विप्लव द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की। कनाडाको धीरे-धीरे औपनिवेशिक अधिकार (Dominion Status) मिल गया, जो प्रायः पूर्ण-स्वराज्यके बराबर है। और भी उपनिवेश—आस्ट्रेलिया, दक्षिण-अफ्रिका, न्यूज़ीलैंड, न्यू-फाउंडलैंड, आयरलैंड आदि—राष्ट्र बन गये। सन् १९३१ के क़ानून (Statute of Westminister) से इन उपनिवेशोंकी वास्तविक स्वाधीनता क़ानूनी स्वाधीनता हो गई।

इधर एशियामें जापानने राष्ट्र-संगठन किया। चीनको आन्तरिक झगड़ोंके कारण उतनी सफलता न मिली। फ़ारस राष्ट्र हो गया। टर्कीने उन्नत राष्ट्रोंका नमूना बनकर दिखा दिया। बहुत जल्दी ईराक़ भी स्वतंत्र हो जायगा। भारतवर्षमें राष्ट्रीयताकी लहर कोने-कोनेमें फैल गई है। भारतकी राष्ट्रीयता दिनोंदिन दृढ़ होती चली जा रही है। हिन्दू-मुस्लिम समझौता होनेपर यह स्थायी हो जायगी।

अफ्रिकामें मिस्र देशने राष्ट्र बननेका प्रयास किया, पर वह इंग्लैंडके चंगुलसे पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हो सका। अफ्रिकाके प्रायः सभी देश (अबीसीनिया और लाइबेरियाको छोड़कर) यूरोपके अधीन हैं। जो यूरोपके लोग स्वयं राष्ट्र बननेकी चेष्टामें मर मिटे थे, वही अब दूसरोंके राष्ट्र बननेमें बाधक हैं!

× × ×

कुछ लोग राष्ट्रको साम्राज्यवादका विरोधी शब्द समझते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। जब राष्ट्र महान शक्ति प्राप्त कर लेता है, तो वह औरोंकी राष्ट्रीयता नष्ट करके केवल अपना मान बढ़ानेकी चिन्तामें लग जाता है। इंग्लैंड स्वयं सबसे पुराना राष्ट्र होनेपर भी साम्राज्य रखता है। जापान जब संगठित हो गया, तो उसने भी चीनकी राष्ट्रीयता हड़प कर जानेकी चेष्टा की। जर्मन लेखक ट्राइशके (Treitschke) राष्ट्रको पूजनीय समझता है। वह राष्ट्रके लिए सब कुछ न्यौछावर कर देना ही मनुष्यका धर्म बतलाता है। राष्ट्रके सम्बन्धमें भले-बुरेपर विचार करना कायरता है। यह सब कुछ है, किन्तु है जर्मन राष्ट्रके लिए! बाक़ी लोग जर्मनीके अधीन रहेंगे! वास्तवमें बात यह है कि राष्ट्र धर्मकी तरह मनुष्यका चित्त केवल एक ओर लगा देता है। कट्टर धर्मात्मा यह सोचता

है कि मेरा ही धर्म सच्चा और सर्वश्रेष्ठ है। यही जीवित रहे, बाक़ी सब धर्म नष्ट हो जायँ, और उनके अनुयायी उसी सच्चे धर्मकी शरण लें। इसी तरह एक प्रकारके देशभक्त, और सब देशवालोंका विचार छोड़कर, अपनी ही सोचते हैं, और जिस वस्तुके लिए वे स्वयं जीवन अर्पण करनेको तैयार रहते हैं, उसीको दूसरोंको नहीं लेने देते। भारतवर्षमें आपको ऐसे देश-प्रेमी भी मिलेंगे, जो 'विश्व-विजय' के स्वप्न देखते हैं। यह भावना सच्चे राष्ट्रवादके विरुद्ध है।

दूसरे लोग राष्ट्रको अन्तर्राष्ट्रीयताका विरोधी शब्द बताते हैं, यह भी भूल है। अन्तर्राष्ट्रीयता स्वयं पहले राष्ट्रीयताका अस्तित्व स्वीकार करती है। यदि राष्ट्र न होंगे, तो अन्तर्राष्ट्रीयता कहाँसे आयेगी? अन्तर्राष्ट्रीयताका जन्म तो राष्ट्रोंके आपसमें एक दूसरेके मिलनेसे होता है। यदि राष्ट्र ही न होंगे, तो सम्पर्क काहेका होगा? यह तो सिद्ध हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीयताके लिए राष्ट्रोंका होना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि अन्तर्राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता इन दोनोंको साथ-साथ चलानेके लिए इनकी पारस्परिक मात्रा कितनी होनी चाहिए। कारण यह है कि यदि एककी मात्रा आवश्यकतासे थोड़ी या ज्यादा हो गई, तो दूसरेका अन्त है। जापान राष्ट्रीयताकी ओर इतना झुका कि मंचूरियाको हड़प लिया, और राष्ट्र-संघकी एक न सुनी। जर्मनीने महायुद्धमें राष्ट्रके लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंका खुल्लमखुल्ला उल्लंघन किया। इसी प्रकार वर्तमान इटली राष्ट्र-निर्माणमें ऐसा लगा हुआ है कि अन्तर्राष्ट्रीयताकी अधिक चिन्ता नहीं करता। राष्ट्रोंको एक दूसरेसे युद्धका भय लगा रहता है। अब अधिकांश देशोंने यह नीति कर ली है कि वह आर्थिक बातोंमें स्वावलम्बी (Economically self-sufficient) रहेंगे, इसलिए उन्होंने विदेशोंसे आनेवाले सामानपर बहुत बड़ी चुंगी लगा रखी है। अर्थशास्त्रके विद्यार्थी इस बातको भलीभाँति समझते हैं कि यह नीति संसारकी आर्थिक उन्नतिमें कितनी बाधक है।

कुछ लोग राष्ट्रको विश्व-बन्धुत्व (Cosmopolitanism) का विरोधी शब्द समझते हैं, पर वास्तवमें ऐसा नहीं है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंका होना इसलिए आवश्यक है कि वे भिन्न-भिन्न सिद्धान्त दर्शाते हैं। यदि संसारमें एक ही राष्ट्र होता, तो हम वर्तमान राजनैतिक उन्नति तक न पहुँच सकते। विश्व-बन्धुत्वका अभिप्राय यह नहीं कि सारा संसार एक कुटुम्ब हो जाय; मर्म यह है कि भिन्न भिन्न राष्ट्र एक दूसरेसे झगड़ें नहीं, भ्रातृवत् रहकर पारस्परिक उन्नतिकी चेष्टा करें। विश्व-बन्धुत्व राष्ट्रका विरोधी नहीं, बल्कि सहायक है। इसके सिवा सारे संसारका शासन एक कुटुम्बकी भाँति होता, तो स्वतंत्रता और स्वराज्य काफ़ूर हो जाते। विश्व-बन्धुत्व राष्ट्रोंकी भिन्नतापर ही आश्रित है।

कहा गया है कि राष्ट्रीयता विवाह-जैसी संस्था है, जो बहुत अंशोंमें अच्छी है, परन्तु कभी-कभी बुरी प्रमाणित होती है। पर जैसे हम कुछ बुराइयोंके होते हुए भी विवाह-प्रथाका त्याग नहीं कर सकते, वैसे ही राष्ट्रवादको छोड़ना सम्भव नहीं।

एक दूसरे विद्वानका कहना है कि किसी भी देशके लिए राष्ट्रीयता वैसी ही है, जैसी मनुष्यके लिए उसके शरीरकी हड्डियाँ। जब तक शरीरकी हड्डियाँ ठीक रहती हैं, मनुष्य कभी उनकी बाबत विचार तक नहीं करता; परन्तु ज्यों ही किसी भी हड्डीमें ख़राबी हुई, तो उसे सिवा हड्डीके कुछ नहीं सूझ पड़ता। ठीक इसी तरह, जब तक कोई जनसमूह राष्ट्र रहता है, वह उसका मूल्य नहीं समझता; परन्तु ज्यों ही उसकी राष्ट्रीयता छिनने लगती है, उसे सिवा अपनी राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके और कोई विचार ही नहीं आता। संसारके बहुतसे युद्ध दूसरोंकी राष्ट्रीयता छीनने या अपनी राष्ट्रीयताको बचानेके लिए हुए हैं।

भारतवर्षका वर्तमान शान्तिमय युद्ध इसी राष्ट्रीयताके सिद्धान्तपर चल रहा है।

सबका सुख : उसके उपाय

प्रिन्स क्रोपाटकिन

सबको सुख मिले, यह कोई स्वप्न नहीं है। यह सम्भव है, और मिल सकता है, क्योंकि हमारे पूर्वजोंने उत्पादक शक्तिको बहुत बढ़ा दिया है।

वस्तुत: हम जानते हैं कि यद्यपि उत्पत्तिके काममें लगे हुए लोगोंकी संख्या मुश्किलसे सभ्य संसारके निवासियोंका एकतृतीयांश होगी, तथापि वे आज भी इतना माल पैदा कर लेते हैं, जिससे प्रत्येक घर, एक खास हद तक, सुखी हो सकता है। हमें यह भी विदित है कि जो लोग दूसरोंकी खरी कमाईको बर्बाद करनेमें ही लगे हुए हैं, यदि उन सबको उपयोगी कार्यमें अपना अवकाश व्यतीत करनेको विवश किया जा सके, तो हमारी वर्तमान उत्पत्तिका परिमाण बहुत बढ़ जाय। इसी प्रकार हमको यह भी मालूम हो चुका है कि मानव-जातिकी सन्तति-जननशक्तिसे माल पैदा करनेकी शक्ति तेज़ है। भूमिपर मनुष्योंकी जितनी घनी बस्ती होगी, उतनी ही उनकी सम्पत्ति उत्पन्न करनेकी शक्ति बढ़ेगी।

इंग्लैण्डमें सन् १८४४ से १८६० तक आबादी सिर्फ़ ६२ फ़ी-सदी बढ़ी, परन्तु वहाँकी उत्पत्ति कम-से-कम उससे दुगुनी बढ़ी है, अर्थात् १३० फ़ी-सदी। फ्रान्समें आबादी और भी धीरे-धीरे बढ़ी है, परन्तु उत्पत्तिकी वृद्धि तो वहाँ भी बहुत तेज़ ही हुई है। भले ही वहाँ कृषिको बारबार आपत्ति-कालमें से गुज़रना पड़ा, भले ही वहाँ खेतीमें राजसत्ताका दखल है, रक्तकर (सेनाकी अनिवार्य सेवाका नियम) और सट्टेबाज़ीका व्यापार और लेन-देन है, फिर भी पिछले अस्सी वर्षोंमें गेहूँकी उत्पत्ति चौगुनी और औद्योगिक उत्पत्ति दस गुनी बढ़ गई है। यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) में प्रगति इससे भी अधिक हुई है। यद्यपि विदेशोंके लोग वहाँ आ-आकर बस गये, या ठीक बात तो यह है कि यूरोपके फालतू श्रमिक वहाँ जाकर भर गये, फिर भी सम्पत्ति दस गुनी बढ़ी है।

परन्तु इन आँकड़ोंसे तो केवल इतना-सा अनुमान हो जाता है कि यदि परिस्थिति अच्छी हो जाय, तो हमारी सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ सकती है, क्योंकि आजकल जहाँ सम्पत्ति उत्पादनकी शक्ति शीघ्रतासे बढ़ी है, और साथ-ही-साथ वहाँ निठल्ले और बीचवाले लोगोंकी संख्या भी बहुत अधिक बढ़ी है। समाजवादियोंका खयाल था कि पूँजी धीरे-धीरे थोड़ेसे व्यक्तियोंके हाथोंमें ही केन्द्रीभूत हो जायगी, और फिर समाजको अपना न्याय-उत्तराधिकार पानेके लिए केवल उन थोड़ेसे करोड़पतियोंकी सम्पत्ति ले लेनी पड़ेगी; परन्तु वास्तवमें बात उलटी ही हो रही है। मुफ्तखोरोंका दल निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

फ्रान्समें तीस निवासियोंके पीछे दस व्यक्ति भी वास्तविक उत्पत्ति कर्ता नहीं है। देशकी सारी कृषि-सम्पत्ति ७० लाखसे भी कम आदमियोंकी कमाई है, और खानों और कपड़ेके दोनों प्रधान उद्योगोंमें २५ लाखसे भी कम मज़दूर हैं। परन्तु मज़दूरोंको लूट-लूटकर मज़ा उड़ानेवालोंकी संख्या कितनी है? इंग्लैंडके संयुक्त-राज्यमें कुल दस लाखसे कुछ ही अधिक स्त्री-पुरुष और बालक मज़दूर कपड़ोंमें लगे हैं; नौ लाखसे कुछ कम मज़दूर खानोंमें काम करते हैं; भूमि जोतनेमें भी बीस लाखसे बहुत कम मज़दूर काम करते हैं; और पिछली औद्योगिक गणना* के समय सारे उद्योग-धन्धोंमें ४० लाखसे कुछ ही अधिक स्त्री-पुरुष और बालक लगे हुए थे। फलत: गणना-विभागवालोंको अपने गणनांक बढ़ाने पड़े, इसलिए कि छे करोड़ जनसंख्यापर अस्सी लाख उत्पादकोंकी संख्या दिखाई जा सके। सच पूछो तो, जो माल ब्रिटेनसे

* ये अंक बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भके हैं।

दुनियाके सब कोनोंपर भेजा जाता है, उसका निर्माण करनेवाले साठ-सत्तर लाख मज़दूर ही हैं, और इसके मुक़ाबलेमें जो लोग मज़दूरोंकी मेहनतका बड़ा-से-बड़ा लाभ स्वयं उठा लेते हैं, और उत्पादक और खरीदारके बीचमें पड़कर बिना श्रम किये सम्पत्ति संचित कर लेते हैं, उनकी संख्या कितनी है ?

किन्तु उत्पादनशक्तिके इस शीघ्रगामी विकासके साथ-साथ निठल्ले और बीचवाले दलालोंकी संख्यामें भी भारी वृद्धि हो रही है। यदि पूँजी धीरे-धीरे थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें ही एकत्र होती जाय, तो समाजको केवल इतना ही करना पड़े कि मुट्ठी-भर करोड़पतियोंसे छीनकर उसे जिनकी है, उन्हें दे दी जाय ; परन्तु बात समाजवादियोंकी इस कल्पनाके सर्वथा विपरीत हो रही है। मुफ़्तखोरोंका दल बुरी तरह बढ़ता चला जा रहा है।

इतना ही नहीं, पूँजीपति लोग मालकी पैदावारको भी बराबर कम करते रहते हैं। कहना नहीं होगा कि आयस्टर (घोंघों) की गाड़ियाँ-की-गाड़ियाँ समुद्रमें सिर्फ़ इसलिए फेंक दी जाती है कि जो चीज़ आज तक केवल धनवानोंका एक खास व्यंजन समझी जाती थी, वह कहीं ग़रीबोंके खानेका पदार्थ न बन जाय। और भी कितनी ही विलासकी सामग्रीका यही हाल किया जाता है। उन सबको कहाँ तक गिनाया जाय ? केवल इतना-सा स्मरण रख लेना काफ़ी है कि किस प्रकार अत्यन्त आवश्यक वस्तुओंकी पैदावार सीमित की जाती है। लाखों खनिक रोज़ कोयला खोदनेको तैयार हैं, ताकि वह कोयला ठंडसे ठिठुरते हुए लोगोंको गरमी पहुँचानेके लिए भेजा जा सके ; किन्तु इस परिश्रमके लिए उत्सुक लोगोंमें से बहुधा एकतिहाई या आधे तकको सप्ताहमें तीन दिनसे अधिक काम ही नहीं करने दिया जाता। क्यों ? इसीलिए कि पूँजीपतियों और खानोंके मालिकोंको कोयलेका भाव ऊँचा बनाये रखना है, ताकि उनको ढेरों मुनाफ़ा मिल सके। हज़ारों जुलाहोंको करघे नहीं चलाने दिये जाते, भले ही उन बेचारोंके स्त्री-बच्चोंके शरीरपर पूरे चिथड़े भी न हों, और भले ही बहुसंख्यक समाजको काफ़ी कपड़ा भी पहननेको न मिलता हो।

सैकड़ों भट्टियों और हज़ारों कारखानोंको समय-समयपर बेकार पड़े रहना पड़ता है। बहुतोंमें सिर्फ़ आधे समय काम होता है। प्रत्येक सभ्य देशमें लगभग २० लाख मनुष्य तो ऐसे बने ही रहते हैं,* जिन्हें काम चाहिए ; पर वह दिया ही नहीं जाता।

यदि इन लाखों नर-नारियोंको काम दिया जाय, तो वे कितने हर्षसे बंजर ज़मीनको साफ़ करके, या ख़राब ज़मीनको उपजाऊ बनाकर, उमदा फसलें तैयार करनेमें लग जायँ ! इनका एक ही वर्षका सच्चे दिलसे किया गया परिश्रम लाखों बीघा बेकार ज़मीनकी पैदावारको पाँच गुना कर देनेके लिए काफ़ी है ; किन्तु दुर्भाग्य तो देखिए कि जो लोग धनोपार्जनकी विविध दिशाओंमें अग्रसर बननेमें सुख मानते हों, उन्हींको केवल इस कारण हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना पड़ता है कि भूमि, खानों और उद्योग-शालाओंके मालिक समाजको चूस-चूसकर उस धनको टर्की, मिस्र, भारत, चीन, अफ्रिका या अन्यत्र लगाना पसन्द करते हैं, और वहाँके लोगोंको भी गुलाम बनाते हैं !

यह तो बात हुई उत्पत्तिको जान-बूझकर और प्रत्यक्ष रूपसे कम करने की ; किन्तु इसका एक अप्रत्यक्ष ढंग भी है, जिसका कोई हेतु ही हमारी समझमें नहीं आता। वह ढंग यह है कि सर्वथा निरर्थक पदार्थोंके बनानेमें मानवीय परिश्रमका अपव्यय किया जाता है, जिससे सिर्फ़ धनवानोंके वृथा अभिमानकी तुष्टि होती है।

यह हिसाब लगाना अशक्य है कि जिस शक्तिसे उत्पादनका, और उससे भी अधिक उत्पादक-यन्त्र तैयार करनेका, काम लिया जा सकता है, उस शक्तिका कितना अपव्यय किया

---

* गत महासमरके पश्चात् तो यूरोपके प्रत्येक देशमें, रूसको छोड़कर, बेकारोंकी यह संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। भारतमें इस सम्बन्धके अंक ही नहीं रखे जाते ; फिर भी यह संख्या करोड़ों तक पहुँची हुई है।

जाता है, और सम्पत्तिका उपार्जन किस सीमा तक कम किया जाता है। सिर्फ़ इतना बता देना ही काफ़ी है कि बाज़ारोंपर प्रभुत्व प्राप्त करने, पड़ोसी देशोंपर बलात् अपना माल लादने और घरके ग़रीबोंका ख़ून आसानीसे चूस सकनेके एकमात्र उद्देश्यसे यूरोपके राष्ट्र अपनी-अपनी सेनाओंपर प्रतिवर्ष बेशुमार रुपया खर्च करते रहे हैं। करोड़ों रुपया हर साल नाना प्रकारके कर्मचारियोंके वेतनपर खर्च किया जाता है, और इन कर्मचारियोंका काम क्या है ? यही कि वे अल्पसंख्यक लोगों—अर्थात् मुट्ठी-भर धनिकों—के 'स्वत्वों'की रक्षा करें, और राष्ट्रकी आर्थिक प्रगतियोंको इनके स्वार्थकी अनुकूल दिशामें चलाते रहें। करोड़ों रुपया न्यायाधीशों, जेलखानों, पुलिसवालों और नाम-धारी न्यायके दूसरे लवाज़िमेपर व्यय कर दिया जाता है। इससे कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता, न अपराधोंमें ही कमी होती है ; क्योंकि यह अनुभवकी बात है कि बड़े-बड़े नगरोंमें जब-जब जनताका थोड़ासा भी कष्ट-निवारण हुआ है, केवल तभी वहाँ अपराधोंकी संख्या और मात्रा बहुत कम हुई है। इसी प्रकार करोड़ों रुपया किसी दलके, किसी खास राजनीतिज्ञके अथवा सट्टेबाज़ोंके किसी विशेष समूहके लाभके लिए समाचारपत्रों द्वारा हानिकर सिद्धान्तों और झूठी खबरोंके फैलानेमें लगा दिया जाता है।

किन्तु इस सबसे अधिक विचार तो हमें उस परिश्रमका करना है, जो सर्वथा व्यर्थ जाता है। कहीं तो धनवानोंके लिए अश्वशालाएँ, कुत्तेखाने और नौकरोंके दल-के-दल रखे जाते हैं। कहीं समाजकी बेहूदगियाँ और फ़ैशनके भूतकी कुरुचियोंको सन्तुष्ट करनेके लिए सामग्री जुटाई जाती है। कहीं ग्राहकोंको अनावश्यक वस्तुएँ खरीदनेको विवश किया जाता है, या झूठे विज्ञापन देकर घटिया माल उनके सिर मढ़ दिया जाता है, अथवा कारखानेदारोंके फ़ायदेके लिए सर्वथा हानिकारक चीज़ें तैयार की जाती हैं। जिस सम्पत्ति और शक्तिका इस प्रकार अपव्यय कर दिया जाता है, उससे उपयोगी वस्तुओंकी उत्पत्ति दुगुनी हो सकती है, या कारखाने इतने यन्त्रोंसे सुसज्जित किये जा सकते हैं कि थोड़े ही समयमें दूकानें उस मालसे लबालब भर जायँ, जिसके बिना अधिकांश जनता दुःख उठा रही है। वर्तमान व्यवस्थामें तो प्रत्येक राष्ट्रके चतुर्थांश उत्पादक लोग सालमें तीन-चार मास बेकार रहनेको बाध्य हैं, और आधे नहीं, तो एकचौथाई लोगोंकी मेहनतका सिवा धनवानोंके मनोरंजन अथवा जनताके रक्तशोषणके और कोई उपयोग ही नहीं होता।

इस प्रकार यदि हम एक ओर इस बातका विचार करें कि सभ्य राष्ट्रोंकी उत्पादक शक्ति किस तेज़ीसे बढ़ रही है, और दूसरी ओर इसका कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे वर्तमान परिस्थितिके कारण उत्पादन कितना सीमित अथवा कम किया जाता है, तो हम इस परिणामपर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि यदि हमारी आर्थिक पद्धति ज़रा और बुद्धिसंगत हो जाय, तो कुछ ही वर्षोंमें इतने उपयोगी पदार्थोंका ढेर लग जाय कि हमें कहना पड़े—'बस बाबा, बस ! रोटी, कपड़ा और ईंधन काफ़ी है ! अब तो हमें शान्तिपूर्वक विचार करने दो कि हम अपनी शक्ति और अवकाशका उत्तम उपयोग कैसे करें।'

हम फिर दुहराते हैं कि सबको विपुल सुख-सामग्री मिले, यह स्वप्नमात्र नहीं है। हाँ, यह उस समय स्वप्न अवश्य था, जब एकड़-भर ज़मीनसे मर-पचकर भी थोड़ेसे गेहूँ ही पल्ले पड़ते थे, और खेती और उद्योगके सारे औज़ार मनुष्यको अपने हाथसे ही बनाने पड़ते थे। किन्तु अब यह कोरी कल्पना नहीं रही है, क्योंकि ऐसी संचालन (मोटर) शक्ति खोज निकाली गई है, जो मनुष्यको थोड़ेसे लोहे और कुछ बोरी कोयलेकी सहायतासे घोड़ेके समान बलवान तथा आज्ञाकारी मशीनों और अत्यन्त पेचीदा यन्त्रजालका स्वामी और संचालन बना देती है।

परन्तु यह कल्पना सत्य तभी सिद्ध हो सकती है, जब यह विपुल लक्ष्मी, ये नगर, भवन, गोचर-भूमि, खेतीकी ज़मीन, कारखाने, जल तथा स्थल मार्ग और शिक्षा—व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहें, और एकाधिकार प्राप्त लोग इनका

स्वेच्छापूर्वक उपयोग न कर सकें। यह सब बहुमूल्य सम्पत्ति, जिसे हमारे पूर्वजोंने बड़े कष्टसे प्राप्त किया, बनाया, सजाया, अथवा खोज निकाला है, सबकी सम्मिलित सम्पत्ति बन जानी चाहिए, ताकि मानव-जातिके संयुक्त हिताहितका ध्यान रखकर उसके द्वारा सबका अधिक-से-अधिक भला किया जा सके। बस, नि:सम्पत्तिकरण होना चाहिए। व्यक्तिगत सम्पत्तिका नामोनिशां उठ जाना चाहिए। सबका सुख—यह हमारा ध्येय हो। नि:सम्पत्तिकरण—यह उपाय।

(२)

तो बस, नि:सम्पत्तिकरण ही बीसवीं शताब्दीकी एकमात्र समस्या है, और साम्यवाद ही मनुष्यमात्रके सर्वांग-सुखका उपाय है।

परन्तु यह समस्या क़ानूनके द्वारा हल नहीं की जा सकती। इसकी कोई कल्पना भी नहीं करता। क्या ग़रीब और क्या अमीर, सभी समझते हैं कि न तो वर्तमान सरकार और न भावी राजनैतिक परिवर्तनोंसे उत्पन्न होनेवाला कोई शासन ही इस समस्याको क़ानूनसे हल करनेमें समर्थ होगा। सबको सामाजिक क्रान्तिकी आवश्यकता अनुभव होती है। निर्धन और धनवान दोनों मानते हैं कि यह क्रान्ति निकट आ पहुँची है, और कुछ ही वर्षमें होनेवाली है।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मनुष्य-जातिके विचारोंमें बड़ा परिवर्तन हुआ है। इस विचार-परिवर्तनको सम्पत्तिशाली वर्गने दबा रखनेकी और इसके स्वाभाविक विकासको कुंठित करनेकी बहुत कोशिश की है, किन्तु यह नवीन भावना अपने बन्धन तोड़कर अब क्रान्तिके रूपमें देह धारण किये बिना नहीं रह सकती।

क्रान्ति आयेगी किधरसे? इसके आगमनकी घोषणा कैसे होगी? इन प्रश्नोंका उत्तर कोई नहीं दे सकता। भविष्य अभी गर्भमें है; परन्तु जिनकी आँखें हैं, वे उसके लक्षणोंको समझनेमें ग़लती नहीं करते। मज़दूर और उनके रक्तशोषक, क्रान्तिवादी और प्रतिगामी, विचारक और कर्ममार्गी, सभीको ऐसा मालूम हो रहा है कि क्रान्ति हमारे द्वारपर खड़ी है।

अच्छा, तो जब यह बिजली गिर चुकेगी, तब हम क्या करेंगे?

हम प्राय: क्रान्तियोंके आश्चर्यजनक दृश्योंका अध्ययन तो इतना अधिक करते हैं, पर उनके व्यावहारिक अंशपर इतना कम ध्यान देते हैं कि सम्भव है, हम इन महान आन्दोलनोंके तमाशेको ही, शुरूके दिनोंकी लड़ाईको ही—मोर्चाबन्दीको ही—देखकर रह जायँ; परन्तु यह प्रारम्भकी मिहनत तो जल्दी खत्म हो जानेवाली चीज़ है। क्रान्तिका सच्चा काम तो पुरानी रचनाके छिन्न-भिन्न हो जानेके बाद ही शुरू होता है।

पुराने शासक निर्बल और जर्जर तो होते ही हैं, आक्रमण भी उनपर चारों ओरसे होता है। बेचारे विद्रोहकी फूंक लगते ही उड़ जाते हैं।

सर्वसाधारणकी क्रान्तिके सामने तो पुरातन व्यवस्थाके विधाता और भी तेज़ीके साथ ग़ायब हो जाते हैं। उसके समर्थक देशको छोड़ भागते हैं, और अन्यत्र सुरक्षित बैठकर षड्यन्त्रोंकी रचना और वापस लौटनेके उपाय सोचा करते हैं।

अब सरकार नहीं रहती, तो सेना भी लोकमतके उभारके सम्मुख खड़ी नहीं रहती। सेनानायक भी दूरदर्शिता पूर्वक भाग जाते हैं, अन्यथा सिपाही उनका कहना भी नहीं मानते। सेना या तो निरपेक्ष खड़ी रहती है, अन्यथा विद्रोहियोंमें मिल जाती है। पुलिस आरामसे खड़ी-खड़ी सोचती है कि भीड़पर गोली चलावें, या साम्यवादकी जय पुकार उठें। कुछ पुलिसवाले ऐसे भी निकलते हैं, जो अपने-अपने स्थानमें पहुँचकर नई सरकारकी आज्ञाका इन्तज़ार करने लगते हैं। धनवान नागरिक अपनी-अपनी पेटियाँ भरकर सुरक्षित स्थानोंको चल देते हैं। साधारण लोग रह जाते हैं। क्रान्तिदेवीका अवतरण इसी प्रकार होता है।

तुलसीका वृक्ष
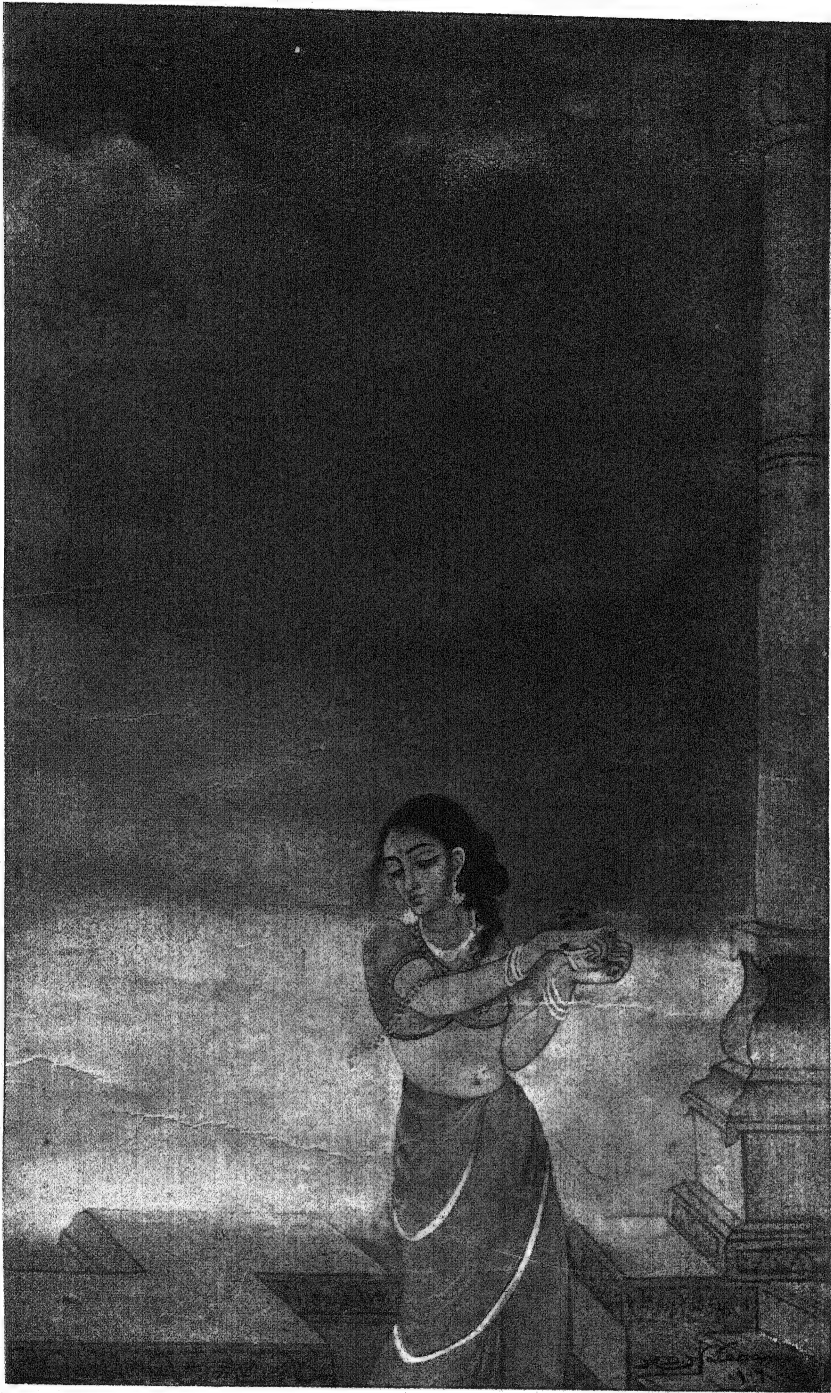
"विशाल-भारत"]

[श्री एम० डी० नटेसन

कई बड़े-बड़े शहरोंमें साम्यवादकी घोषणा कर दी जाती है। हज़ारों आदमी बाज़ारोंमें इधर-उधर घूमने लगते हैं, और शामको सभा-स्थानोंमें जाकर पूछते हैं—"हम क्या करें ?" इस प्रकार उत्साहपूर्वक सार्वजनिक मामलोंपर चर्चा होने लगती है। सब उनमें दिलचस्पी लेने लगते हैं। जो लोग कल तक उदासीन थे, वे ही शायद सबसे अधिक उत्साह दिखाने लगते हैं। सर्वत्र सद्भावना और विजयको निश्चित करनेकी उत्कट लालसा विपुल परिमाणमें पाई जाती है। ऐसे ही समयमें अपूर्व देशभक्तिके कार्य होते हैं। सर्वसाधारणको आगे बढ़नेकी पूरी अभिलाषा रहती है।

ये सब बातें शानदार होती हैं, मनुष्यको ऊँचा उठनेवाली होती हैं; किन्तु ये भी क्रान्ति नहीं हैं। बात यह है कि क्रान्तिकारियोंका कार्य यहाँसे तो शुरू ही होता है। निःसन्देह क्रान्तिमें परिशोधके कार्य भी होंगे। जनताके कोपभाजन व्यक्ति अपने कियेकी सज़ा पायँगे; किन्तु ये भी क्रान्ति नहीं हैं, केवल संग्रामकी स्फुट घटनाएँ हैं।

ऐसे अवसरोंपर समाजवादी राजनीतिज्ञ, कट्टर सुधारक, कल तक जिनकी पूछ नहीं होती थी, ऐसे भी प्रतिभाशाली पत्रकार और हाथ-पैर पीटकर भाषण देनेवाले वक्ता, मध्यमवर्गी और मज़दूर लोग—सभी जल्दी-जल्दी नगर-भवनमें और सरकारी दफ्तरोंमें पहुँचकर रिक्त स्थानोंपर अधिकार कर लेंगे। कुछ लोग जी-भरकर अपने शरीरको सोना-चाँदीकी किनारियोंसे सजा लेंगे, मन्त्रियोंके दर्पणोंमें अपने चेहरोंको देख-देखकर अपनी सराहना करेंगे, और अपने पदके योग्य महत्वकी मुद्रा धारण करके आज्ञा देना सीखेंगे। इन गौरव-चिह्नोंके लगाये बिना भला वे अपने कारखाने या दफ्तरके साथियोंपर रौब कैसे गाँठ सकते हैं ? दूसरे लोग सरकारी कागज़ातमें गड़ जायँगे, और सच्चे दिलसे उन्हें समझनेकी कोशिश करेंगे। ये क़ानून बनायेंगे, और बड़े-बड़े हुक्म निकालेंगे। हाँ, इन हुक्मोंकी तामील करनेका कष्ट कोई न उठायगा। क्रान्ति ही जो ठहरी !

इन लोगोंको जो अधिकार नहीं मिला है, उसका ढोंग रचनेके लिए ये पुराने शासनके स्वरूपका सहारा लेंगे। ये 'अस्थायी सरकार', 'सार्वजनिक रक्षा-समिति', नगर-शासक', 'डिक्टेटर' इत्यादि अनेक नाम धारण करेंगे। निर्वाचित हों, अथवा स्वयंभू, वे समितियों और परिषदोंमें जा बैठेंगे। वहाँ दस-बीस अलग-अलग विचार-सरणिके लोग एकत्र होंगे। इनके मस्तिष्कमें क्रान्तिके क्षेत्र, प्रभाव और ध्येयकी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ होंगी। वे वाग्युद्धमें अपना समय बर्बाद करेंगे। ईमानदार लोगोंका एक ही स्थानमें ऐसे महत्वाकांक्षियोंसे पाला पड़ेगा, जिन्हें केवल सत्ताकी ही चाह है, और जो सत्ताके मिल जानेपर जिस जनतामें से उनका उदय हुआ है, उसीको ठोकर मार देते हैं। ये परस्पर-विरोधी विचारोंके लोग एकत्र होंगे। उन्हें आपसमें क्षणभंगुर सन्धियाँ करनी पड़ेंगी; जिनका उद्देश्य सिर्फ़ बहुमत बनाना होगा; परन्तु यह बहुमत एक दिनसे ज्यादा टिकनेका नहीं। परिणाम यह होगा कि ये आपसमें झगड़ेंगे; एक दूसरेको अनुदार, सत्तावादी मूर्ख बतायेंगे; किसी गम्भीर विषयपर एक मत न हो सकेंगे; ज़रा-ज़रासी बातोंपर वाद-विवाद करेंगे; और लम्बी-चौड़ी घोषणाएँ निकालनेके सिवा और किसी प्रकारका ठोस काम न कर सकेंगे। एक ओर तो ये लोग इस प्रकार अपना महत्त्व प्रदर्शित करते रहेंगे, और दूसरी ओर आन्दोलनकी सच्ची शक्ति बाज़ारोंमें भटकती फिरती होगी !

इन बातोंसे तमाशापसन्द लोग भले ही खुश हो लें, किन्तु यह भी क्रान्ति नहीं है। अभी दिल्ली बहुत दूर है।

हाँ, इस बीचमें जनताको तो कष्ट भोगने ही होते हैं। कारखाने बन्द रहते हैं। व्यापार चौपट हो जाता है। मज़दूरोंको जो थोड़ीसी मज़दूरी पहले मिलती थी, वह भी अब मिलना बन्द हो जाती है। खाद्य-पदार्थोंका भाव बढ़ जाता है। फिर भी वे उस वीरोचित लगनके साथ, जो सदा उनका गुण रही है और जो महान विपत्तिके अवसरपर और भी उच्च हो जाती है, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते

हैं। सन् १८४८ की फ्रांसकी क्रांतिके अवसरपर उन्होंने कहा था—"हम रिपब्लिक सरकारसे तीन महीने तक कुछ न मांगेंगे", परन्तु उनके 'प्रतिनिधि' और नई सरकारके सफ़ेदपोश लोग और दफ़तरके टुच्चे-से-टुच्चे पदाधिकारी तक नियमसे बराबर तनख्वाहें लेते रहे थे!

जनता तो कष्ट उठाती रहती है। बालोचित विश्वास और स्वाभाविक प्रसन्नताके साथ लोग समझते हैं कि "नेताओंपर भरोसा रखना चाहिए। वे लोग 'उस जगह', उस सभा-भवन, नगर-भवन, या सार्वजनिक रक्षा-समितिमें हमारी भलाई सोच रहे हैं।" परन्तु 'उस जगह' तो नेतागण जनताके हितकी चर्चाके अतिरिक्त दुनिया-भरकी बातोंपर वाद-विवाद करते रहते हैं। १७६३ में जब फ्रान्समें दुष्काल हो गया, और उसने क्रान्तिको लंगड़ा कर दिया, और लोगोंकी बुरी दशा हो रही थी, (यद्यपि बाज़ारोंमें शानदार बग्घियोंकी भीड़ लगी रहती थी, और बड़े घरोंकी स्त्रियाँ अपने-अपने आभूषण और पोशाकें पहन-पहनकर निकलती रहती थीं), तब रोब्सपियर जेकोबिन दलवालोंको प्रेरित कर रहा था कि वे इंग्लैंडकी राज्य-व्यवस्थापर लिखे हुए उसके ग्रन्थपर बहस ही कर लें। १८४८ में मज़दूर लोग तो सार्वजनिक व्यापार बंद हो जानेके कारण पीड़ित हो रहे थे, पर अस्थायी सरकार और राष्ट्रीय परिषद् इस बातपर झगड़ रही थीं कि सिपाहियोंको क्या पेन्शन दी जाय और जेलखानेमें मशक्कत कैसी ली जाय? उन्हें उस बातकी फ़िक्र नहीं थी कि जनता इस विपत्ति-कालमें किस प्रकार दिन काट रही होगी। पेरिस की कम्यून-सरकार प्रशियाकी सेनाके मुक़ाबलेमें खड़ी हुई थी, और केवल सत्तर दिन ही जीवित रह पाई। उसने भी यही ग़लती की। उसने यह नहीं समझा कि अपने योद्धाओंको पेट-भर खिलाये बिना क्रान्ति सफल कैसे होगी, और सिर्फ़ थोड़ासा दैनिक वेतन मुक़र्रर कर देनेसे ही कैसे आदमी युद्ध कर सकेगा, और कैसे अपने परिवारका पोषण कर सकेगा?

इस प्रकार कष्ट भोगती हुई जनता पूछती है—"इन कठिनाइयोंको पार करनेका उपाय क्या है?"

(२)

इस प्रश्नका एक ही उत्तर दिखाई देता है। वह यह कि हमें यह बात मान लेनी चाहिए, और उच्च स्वरसे घोषित कर देना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्यको **जीवित रहनेका** सर्वोपरि अधिकार है, फिर चाहे वह मनुष्य-समाजकी किसी भी श्रेणीका हो, बलवान हो या निर्बल, योग्य हो अथवा अयोग्य। साथ ही यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि समाजके हाथमें जीवनके जितने साधन हैं, उनको सबमें निरपवाद रूपसे बाँट देना समाजका कर्तव्य है। हमें इस सिद्धान्तको मान कर उसपर चलना भी चाहिए।

क्रान्तिके प्रथम दिनसे ही ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि श्रमजीवी यह जान जाय कि उसके लिए नवीन युगका उदय हो गया। भविष्यमें अब किसी को, पासमें गगनचुम्बी अट्टालिकाओंके होते हुए, पुलके नीचे दुबककर सोनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी; अपने आसपास इस बाहुल्यके रहते हुए किसीको भूखों मरना नहीं पड़ेगा। सब चीज़ें सबके लिए हैं। यह ख़ाली कल्पना ही नहीं, व्यवहारमें भी चरितार्थ करना होगा। क्रान्तिके प्रथम दिनसे ही श्रमजीवीको यह मालूम पड़ना चाहिए कि इतिहासमें पहली ही बार ऐसी क्रान्ति हुई है, जिसमें जनताको उसके कर्तव्योंका उपदेश देनेसे पूर्व उसकी आवश्यकताओंका विचार किया गया है।

पर यह सब क़ानूनसे नहीं होगा। काम करनेका एकमात्र सच्चा और वैज्ञानिक ढंग अख्तियार करना होगा—ऐसा ढंग, जिसे सर्वसाधारण समझ सकते और चाहते हों। वह ढंग यह है कि सबके सुख-सम्पादनके लिए आवश्यक साधनोंपर तुरन्त और भली प्रकार क़ब्ज़ा कर लिया जाय। अन्न-भण्डारों, कपड़ेकी दुकानों और निवास-स्थानोंपर जनताका अधिकार हो जाना चाहिए। कोई चीज़ बर्बाद नहीं होनी चाहिए। शीघ्र इस प्रकारका संगठन करना चाहिए कि

भूखोंको भोजन मिल जाय, सबकी आवश्यकताएँ पूरी हो जायँ, और उत्पत्ति इस प्रकार हो कि व्यक्ति या समूह-विशेषको ही लाभ न पहुँचे, प्रत्युत सारे समाजके जीवन और विकासको सहायता मिले।

१८४८ की क्रान्तिमें 'काम करनेका अधिकार' इस वाक्यसे लोगोंको बड़ा धोखा दिया गया। और अब भी ऐसे ही द्व्यर्थक वाक्योंसे धोखा देनेकी कोशिश होती है, परन्तु अब उनकी ज़रूरत नहीं है। हमें साहस करके 'सबके सुख' के सिद्धान्तको मंजूर करना चाहिए, और उसकी संभावनाको पूर्ण करना चाहिए।

१८४८ में जब श्रमजीवियोंने काम करनेके अधिकारका दावा किया, तो राष्ट्रीय और म्यूनिसिपल कारखाने बनाये गये, और वहाँ उन्हें मज़दूरी निश्चित करके काम कर-करके मरनेके लिए भेज दिया गया! जब उन्होंने कहा कि 'श्रमिकोंका संगठन' होना चाहिए, तो जवाब दिया गया—"मित्रो! धैर्य रखो। सरकार इसका इन्तज़ाम कर देगी। अभी तो तुम मज़दूरी लेते जाओ। वीर श्रमिको, जीवन-भर तुमने भोजनके लिए युद्ध किया है, अब ज़रा आराम तो ले लो!" इस बीच तोपें सुधार ली गई, फ़ौजें बुला ली गई, और तरह-तरहकी मध्यम-वर्गकी जानी हुई तरकीबोंसे श्रमिकोंको निःशस्त्र कर दिया गया। यहाँ तक कि, जून १८४८ के एक दिन, पिछली सरकारको पलट देनेके चार मास बाद ही उनसे कह दिया गया कि या तो अफ्रिकामें जाकर बस जाओ, नहीं तो गोलियोंसे उड़ा दिये जाओगे।

परन्तु सुखपूर्वक जीवित रहनेके अधिकारपर आरूढ़ होनेमें जनता इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण दूसरे अधिकारकी भी घोषणा करती है। वह यह कि इस बातका निर्णय भी वही करे कि उसको सुख किन चीज़ोंसे मिलेगा, उस सुखकी प्राप्तिके लिए क्या-क्या माल पैदा करना चाहिए, और क्या-क्या नहीं करना चाहिए। 'काम करनेका अधिकार' और 'सबका सुख' इन दोनों सिद्धान्तोंका भेद समझने-योग्य है। पहलेका अर्थ इतना ही है कि श्रमजीवी सदा थोड़ीसी मज़दूरीका दास बना रहे, कठोर परिश्रम करनेको विवश हो, और उसपर मध्यम-वर्गके लोग शासन करते और उसका रक्तशोषण करते रहें। दूसरे सिद्धान्तका अर्थ यह है कि श्रमजीवी मनुष्योंकी भाँति रह सके, और उसकी सन्तानको वर्तमान कालके समाजसे अच्छा समाज मिले। अब समय आ गया है कि व्यापारवादकी चक्कीमें न पिसते रहकर, सामाजिक क्रान्ति की जाय, और श्रमजीवियोंको उनके नैसर्गिक अधिकार प्राप्त कराये जायँ।

राव गाँगाजी

श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ

यह राव सूजाजीके पौत्र और राजकुमार बाघाजीके द्वितीय पुत्र थे। उनका जन्म वि० सन् १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० सन् १४८३ की १८वीं अप्रैल) को हुआ था, और राव सूजाजीके बाद वि० सन् १५७२ की मँगसिर वदि ३ (ई० सन् १५१५ की २५वीं अक्टोबर) को वे जोधपुरकी गद्दीपर बैठे।[1]

वि० सन् १५७४ (ई० सन् १५१७) में महाराणा साँगाजीकी प्रार्थनापर[2] वे अपनी सेना लेकर उनकी सहायताको गये, और उन्होंने गुजरातके शासक मुज़फ्फ़रशाह द्वितीयके प्रतिनिधिको भगाकर राव रायमलजीको ईडरकी गद्दी दिलानेमें उनकी सहायता की। इसके बाद वि० सन् १५७७ (ई० सन् १५२०) में जिस[3] समय महाराणाने निज़ामुल मुल्क (मुबारिज़ुल मुल्क) को भगाकर ईडरका अधिकार फिरसे राव रायमलजीको दिलवाया, उस समय भी राव गाँगाजीने ७००० सवारोंके साथ पहुँच उनका साथ दिया।

वि० सन् १५८२ (ई० सन् १५२५) में जब सिकंदर खां जालोरकी गद्दीपर बैठा, तब गज़नी खांने राव गाँगाजीकी सहायता प्राप्तकर जालोरपर चढाई की[4]; परन्तु सिकंदरखांने फ़ौज-खर्चके रुपये देकर जोधपुरकी फ़ौजको वापस लौटा दिया।

वि० सन् १५८३-८४ (ई० सन् १५२७) में जिस समय महाराना साँगाजी और बाबरके बीच युद्ध हुआ, उस समय भी उन्होंने ४००० सैनिकोंसे[5] महारानाकी सहायताकी थी[6]; परन्तु अनेक कारणोंसे इस युद्धमें सफलता न हो सकी।

---

(१) कहीं-कहीं इस घटनाका समय मँगसिर सुदी १२(१८ नवम्बर) लिखा मिलता है। ख्यातोंमें लिखा है, उन दिनों महाराणा साँगाजी और गुजरातके सुलतानके बीच, ईडरके लिए, झगड़ा चल रहा था। इसीसे राव सूजाजीने उन्हें (गाँगाजीको) अपनी सेना साथ देकर राणाजीकी सहायतामें मेवाड़ भेज दिया था। सरदारोंके बुलानेपर वहींसे आकर वे गद्दीपर बैठे।

(२) कहीं-कहीं इस घटनाका समय वि० सं० १५७३ (ई० स० १५१६) भी लिखा मिलता है। उस समय ईडरपर (राव सीहाजीके पुत्र) सोनगजीके वंशजोंका अधिकार था। जिस समय ईडन-नरेश सूरजमलजीका देहान्त हुआ, उस समय उनके पुत्र रायमलजी गद्दीपर बैठे, परन्तु उनकी अवस्था छोटी होनेके कारण उनके चचा भीमजीने शीघ्र ही उन्हें हटाकर वहाँपर अपना अधिकार कर लिया। यह देख रायमलजी महाराणा साँगाजीके पास चले गये। उन्होंने भी अपनी कन्याका विवाह उनके साथ करना निश्चितकर उन्हें अपने पास रख लिया। वि० सं० १५७१ (ई० स० १५१४) में जब राव भीमजी मर गये और उनके पुत्र भारमलजी गद्दीपर बैठे, तब राव रायमलजीने महाराणा साँगाजी और जोधपुर-वालोंकी सहायतासे ईडरपर फिर अधिकार कर लिया, परन्तु अगले वर्ष गुजरातके सुलतान मुजफ्फ़रशाह द्वितीयने रायमलजीको हटाकर भारमलको दोबारा वहाँका अधिकार दिलवा दिया। इसीसे साँगाजीने रायमलजीको फिरसे ईडरका राज्य दिलवानेके लिए डूंगरसिंहको भेजकर राव गाँगाजीको भी अपनी सहायतामें बुलवाया था। वि० संवत् १५७४ (ई० सन् १५१७) में दिल्लीके बादशाह इब्राहीम लोदीने मेवाड़पर चढाई की थी, और उसमें उसे हारकर भागना पड़ा था। सम्भव है, वि० सं० १५७४ (ई० सन १५१७) की उपर्युक्त घटनाका इसी अवसरसे सम्बन्ध हो।

(३) किसी-किसी स्थानपर इस घटनाका समय वि० सं० १५७६ (ई० स० १५१९) भी लिखा मिलता है।

(४) तारीख़ पालनपुर, भा० १, पृ० ५६।

(५) कहीं-कहीं ३००० सैनिक लिखे हैं।

(६) इस युद्धमें (राव जोधाजीका पौत्र और राव दूदाका पुत्र) राव वीरम भी मेड़तेसे ४००० सैनिक लेकर साँगाजीकी सहायताको गया था। इसीमें राव वीरमके भाई रायमल और रत्नसिंह बड़ी वीरतासे लड़कर मारे गये। ख्यातोंमें इन दोनों भाइयों (रायमल और रत्नसिंह) का राव गाँगाजीकी सेनाका साथ मेवाड़ जाना लिखा है।

वि० सन् १५८५ (ई० सन् १५२९) में (रावजीके चचा) शेखाने[7] नागोरके शासक खांज़ाद दौलत खांकी सहायतासे जोधपुरपर चढ़ाई की। जैसे ही इसकी सूचना गाँगाजीको मिली, वैसे ही उन्होंने सेवकी (गाँव) तक आगे बढ़ उसका सामना किया।[8] युद्ध होनेपर शेखा मारा गया[9], और दौलत खां भागकर नागोर चला गया। इस युद्धमें बीकानेरनरेश राव जैतसीजीने भी, जो अपनी कुलदेवीके दर्शनार्थ नागानेकी तरफ़ गये हुए थे, राव गाँगाजीका पक्ष लिया था। यह घटना वि० सन् १५८६ (ई० सन् १५२९) की है।

ख्यातोंसे ज्ञात होता है कि राव गाँगाजीके और उनके बड़े भाई वीरमके बीच बहुधा झगड़ा चलता रहता था। इसीसे रावजीने उसकी (सोजतकी) जागीरके कई गाँव छीन लिये, और धोलेराव आदिमें अपनी चौकियाँ बिठा दीं।

कर्नल टॉडने रायमलको मारवाड़का राजकुमार (गाँगाजीका पौत्र) लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३२७ और भा० २, पृ० ६५३) इसी प्रकार श्रीयुत हरविलास सारडाने भी रायमलको एक स्थानपर जोधपुरका सेनापति और दूसरे स्थानपर राज्यका उत्तराधिकारी लिखा है। महाराना सांगा, पृ० १४४ और १४८); परन्तु यह ठीक नहीं है। सम्भवतः दूसरे स्थानपर जिस रायमलका उल्लेख है, वह राव साँगाजीका पौत्र और मालदेवजीका पुत्र रायमल हो। परन्तु जब स्वयं मालदेवजीका जन्म वि० सं० १५६८ (ई० सन् १५११) में हुआ था, तब वि० सं० १५८३—८४ (ई० सन् १५२७) के युद्धमें उनके पुत्रका सम्मुख रणमें लड़कर मारा जाना असम्भव ही है।

राव वीरमने वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) की ईडरकी चढ़ाईके समय भी महाराणा साँगाजीकी सहायता की थी।

(७) राजकुमार बाघाजीके इच्छानुसार उनके छोटे भाई शेखाने अपना हक़ छोड़ अपने भतीजे (बाघाजीके ज्येष्ठ पुत्र) वीरमको राज्यका उत्तराधिकारी बनानेकी अनुमति दी थी, परन्तु सरदारोंने चुपचाप गाँगाजीको गद्दीपर बिठा दिया। इसीसे शेखा राव गाँगाजीसे नाराज़ था। दूसरा वीरमके पक्षवालोंको जब-जब मौक़ा मिलता था, तब-तब वे उसे राव गाँगाजीके विरुद्ध भड़काते रहते थे। किसी-किसी ख्यातमें सिरोहीके राव अखैराजजीकी शिकायतपर शेखाकी जागीर पीपाड़के एक गाँवके जब्त किये जानेके कारण और किसीमें ऊहड़ हरदास द्वारा उकसाये जानेके कारण इस युद्धका होना लिखा है।

(८) ख्यातोंमें लिखा है कि युद्धके आरम्भमें जब सरदारोंने राव गाँगाजीको तामजाममें ऊँघते हुए देखा, तब उन्होंने उनसे सचेत हो जानेकी प्रार्थना की। इसपर रावजीने उन्हें आश्वासन देकर कहा कि हमने इस गृह-कलहमें आप लोगोंकी सहानुभूति किसके पक्षमें है, यह जाननेके लिए ही ऐसा अभिनय किया था। किन्तु अब हमें आप लोगोंपर विश्वास हो गया है। इतना कहकर वे शीघ्र ही घोड़ेपर सवार हो लिए और शत्रुके सामने पहुँच उससे युद्ध करने लगे। कुछ ही देरमें उनके तीरने जख्मी होकर दौलत खांका एक हाथी भड़क गया, और उसकी सेनाको कुचलता हुआ मेड़तेकी तरफ़ भाग गया। उसके वहाँ पहुँचनेपर (दूदाके पुत्र) राव वीरमने उसे पकड़वाकर अपने यहाँ रख लिया।

राव गाँगाजीने मेड़तेके राव वीरमको भी इस युद्धमें साथ देनेके लिए बुलवाया था, परन्तु उसने इस गृह-कलहमें भाग लेनेसे इनकार कर दिया। इससे राव गाँगाजी उससे अप्रसन्न हो गये। इसके बाद जब उन्हें रणक्षेत्रसे भागे हुए दौलत खांके हाथीके मेड़ते पहुँचनेका समाचार मिला, तब उन्होंने (गाँगाजीने) उस हाथीको ले आनेके लिए अपने आदमी वहां भेजे, परन्तु वीरमने उसके देनेसे इनकार कर दिया। इससे उनकी अप्रसन्नता और भी बढ़ गई। इसके कुछ दिन बाद, जिस समय राव गाँगाजी और राजकुमार मालदेवजी शिकार करते हुए मेड़तेकी तरफ़ जा निकले, और वीरमने उन्हें अपने यहां चलकर भोजन करनेके लिए कहा, उस समय भी कुँवर मालदेवजीने उस हाथीके लिए बिना भोजन करना स्वीकार न किया। अन्तमें जब राव गाँगाजी और राजकुमार मालदेवजी जोधपुर लौट आये, तब वीरमने इस झगड़ेको शान्त करनेके लिए वह हाथी जोधपुर भेज दिया, परन्तु अभाग्यवश वह मार्गमें ही मर गया। इससे यद्यपि रावजी तो सन्तुष्ट हो गये, तथापि कुँवर मालदेवजीको इसमें राव वीरमके षड्यन्त्रका सन्देह हो जानेसे वे उससे और भी अधिक नाराज़ हो गये।

(९) मरते समय शेखाने राव गाँगाजीसे कहा था कि सूराचन्दके चौहानोंने मेरे एक आदमीको, उधरसे जाते समय पकड़कर, देवीकी बलि चढ़ा दिया था, इसलिए हो सके, तो उनसे इसका बदला ले लेना। इसीके अनुसार कुछ दिन बाद, उन्होंने अपने आदमियोंको समझाकर देवीके मन्दिरकी तरफ़ भेजा। यह देख वहांके चौहानोंने अपने कार्यकर्ताओंको उनके रहने आदिका प्रबन्ध कर देनेकी आज्ञा दी, परन्तु रावजीके भेजे हुए पुरुषोंने चौहानोंके भेजे हुए उन (चौदह) आदमियोंको मारकर शेखाके साथके वैरका बदला ले लिया।

वि० सं० १५८७ (ई० सन् १५३१) में होलीके अवसरपर, जिस समय धोलेरावकी चौकीके सरदार अपनी-अपनी जागीरके गाँवोंमें गये हुए थे, वीरमके पक्षवालोंने आक्रमणकर उस चौकीको लूट लिया। इसकी सूचना मिलनेपर वि० सन् १५८८ (ई० सन् १५३१) में स्वयं राव गाँगाजीने सोजतपर चढ़ाई की। युद्ध होनेपर वीरमका प्रधान कर्मचारी मूता रायमल मारा गया, और सोजत-पर रावजीका अधिकार हो गया।[१०] इसके बाद उन्होंने वीरमको निर्वाहके लिए बाला नामक गाँव जागीरमें देकर उसे वहीं रहनेके लिए भेज दिया। इस घटनाके बाद राज्यमें पूर्ण शान्ति हो गई।

वि० सन् १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० सन् १५३१ की २१वीं मई) को जिस समय राव गाँगाजी महलकी एक खिड़कीके पास बैठ शीतल वायुका सेवन कर रहे थे, उस समय कुछ तो अफ़ीमके सेवनके प्रभावसे और कुछ गरमीकी मौसममें शीतल वायुके लगनेसे उन्हें झपकी आ गई, और उसीमें वे खिड़कीसे नीचे गिर पड़े।[११] इससे उसी समय रावजीका देहान्त हो गया।

जोधपुर शहरका 'गाँगेलाव' तालाव और 'गाँगाकी बावड़ी'[१२] उन्होंने ही बनवाई थी। उनकी रानी पद्मावती[१३] सिरोहीके राव जगमालकी कन्या थी। उसीके कहनेसे राव गाँगाजीने (वि० सन् १५७२--ई० सन् १५१५ में) विवाहके समय अपने श्वसुरसे श्यामजीकी मूर्ति माँग ली थी। यही मूर्ति जोधपुरमें, गाँगाजी द्वारा लाई जानेके कारण, गँगश्यामके नामसे प्रसिद्ध हुई।[१४]

राव गाँगाजी बड़े वीर और दानी थे। कहते हैं, उन्होंने कई गाँव दान किये थे।[१५] इनके छै पुत्र थे—१ मालदेव, २ वैरसल, ३ मानसिंह, ४ किशनसिंह, ५ सादूल और ६ कान्ह।

किसी-किसी ख्यातमें शेखाका युद्धमें हारकर मेवाड़ जाना और वहांपर महाराणाकी तरफ़से किसी युद्धमें लड़कर वीरगति प्राप्त करना भी लिखा मिलता है, परन्तु नहीं कह सकते, यह कहां तक ठीक है।

इस युद्धमें ऊहड हरदास भी मारा गया। यह राजकुमार मालदेवजीसे नाराज़ होकर पहले वीरमके पास सोजतमें पहुँचा, और उसे राव गाँगाजीके विरुद्ध भड़काने लगा। बादमें इसीने शेखाके पास जाकर उसे रावजीसे युद्ध करनेके लिए तैयार किया।

(१०) ख्यातोंमें लिखा है कि वीरमकी सहायताके लिए मेवाड़से महाराणा रत्नसिंहजी (द्वितीय) ने भी सेना भेजी थी, परन्तु राव गाँगाजीने उसे सारण (गाँव) के युद्धमें हरा दिया। इसके बाद रावजीने मेवाड़वालोंसे गोड़वाड़का बहुतसा प्रदेश भी छीन लिया।

(११) ख्यातोंमें इनका मालदेवजीके धक्केसे गिरना भी लिखा मिलता है।

(१२) राव गाँगाजीकी रानी नानकदेवीने जोधपुरमें अचलेश्वर महादेवका मन्दिर बनवाया था। यह बावड़ी इसीके पास है।

(१३) सिरोहीके इतिहास (पृ० २०५) में लिखा है कि इसी पद्मावतीने जोधपुरका पदमलसर तालाव बनवाया था, परन्तु वास्तवमें यह तालाव मेवाड़के सेठ पद्मचन्दके रुपयेसे बना था; जिसे राव जोधाजीने मेवाड़की चढ़ाईके समय पकड़ा था। सम्भव है, इस रानीने इसके घाट आदि बनवाये हों, परन्तु किसी-किसी ख्यातमें इसका महाराणा साँगाजी (प्रथम) की कन्या पद्मावती द्वारा बनवाया जाना भी लिखा मिलता है। सम्भव है, उसने भी इसमें कुछ सुधार किया हो।

(१४) कहते हैं कि इस मूर्तिके साथ ही इसके पुजारी भी आये थे। ये सेवगके नामसे प्रसिद्ध है।

(१५) चंगावड़ा खुर्द (जोधपुर परगनेका), २ दानावासणी (पाली परगनेकी), ३ जोधावास (जैतारण परगनेका) चारणोंको, ४ खाराबेरा, ५ घटियाला, ६ सुराणी, ७ घेवड़ा (जोधपुर परगनेके), ८ नींबोला (मेड़ते परगनेका), ९ धुड़ासणी, १० मालपुरिया, ११ चाडवास, १२ तालका, १३, अखतवासणी (सोजात परगनेके) और १४ छकरलाई (पाली परगनेकी) ब्राह्मणों और पुरोहितोंको तथा १५ कोलू (पूलोदी परगनेका) धाँधलोंको जो पाबूजीके पुजारी हैं, दिये थे। इसी प्रकार इनके अन्य गाँवोंके दानका उल्लेख भी मिलता है, परन्तु इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते।

साहित्य-सेवियोंके आदर्श

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

(विशाल-भारतके लिए)

अप्रैल मासके 'विशाल-भारत'में इसके सम्पादकने 'हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके आदर्श' शीर्षक लेख लिखकर अपने पाठकोंके सामने हिन्दी-साहित्यकी वर्तमान अवस्था और हिन्दी-लेखकोंके कर्तव्योंपर अपने विचार निरभीकतासे प्रकट किये हैं। निःसन्देह हिन्दी-साहित्यके लिए वर्तमान काल बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

आज हिन्दी-पाठकोंकी संख्या बहुत शीघ्र बढ़ रही है, हिन्दी-पुस्तकें काफ़ी संख्यामें बिकने लगी हैं, प्रान्तीय विश्वविद्यालय हिन्दीको अपनाने लगे हैं, और राजनीतिक आन्दोलनके कारण जन-साधारण हिन्दी-समाचारपत्रोंको बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ते हैं। यह युग राष्ट्र-निर्माणका है, और राष्ट्र-निर्माणकी नींव सुन्दर साहित्यपर ही रखी जा सकती है। संसारमें साहित्य ही एक ऐसी वस्तु है, जो अविनाशी है। जिस राष्ट्रने अपने साहित्यके निर्माणमें अमर साहित्यकी रचना की है, उसका नाम भी अमर हो गया है, अतएव हमने यह उचित समझा है कि इस आवश्यक विषयपर अपने विचार स्पष्टरूपसे हिन्दी-जनताके सामने रखें।

शायद यह सन् १९१६ की बात है। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठकके सभापतित्वमें लखनऊमें हुआ था। उस समय मैंने एक व्याख्यान 'लेखन-कला'पर दिया था। उस व्याख्यानसे हिन्दी-लेखकोंमें बड़ी हलचल मची थी। बादमें वह व्याख्यान 'कलकत्ता-समाचार'में प्रकाशित हुआ था। उसमें बहुतसे विचार ऐसे ही प्रकट किये गये थे, जिन्हें सम्पादक महोदयने उस लेखमें लिखा है। घासलेटी साहित्यकी बुरी तरह खबर ली गई थी, नक़ली साहित्य-सेवियोंको आड़ हाथों लिया गया था, और इस बातपर ज़ोर दिया था कि अच्छे चरित्रसे ही अच्छा मस्तिष्क हो सकता है, और शुद्ध मस्तिष्क रखनेवाला पुरुष ही निर्मल साहित्यकी रचना कर सकता है।

परन्तु आज हम इस विषयपर व्यापक रूपसे विचार करते है, क्योंकि 'विशाल-भारत' के सम्पादकने कुछ ऐसे विचार प्रकट किये हैं, जिनसे हमारा मतभेद है। उन्होंने पाश्चात्य और प्राच्य साहित्य-सेवियोंका मुक़ाबला भी किया है, और कुछ साहित्य-सेवियोंके नाम आदर्शरूपमें पेश किये हैं। साथ ही उन्होंने साहित्य-सेवीकी सीमा भी निर्धारित कर दी है, इसलिए यह परमावश्यक है कि हम साहित्य-सेवीके आदर्शोंपर गम्भीरतासे विचार करें, और उसे एक देशीय न मानकर, सिद्धान्तरूपसे इस विषयकी मीमांसा करें।

सबसे पहले हम यह प्रश्न उठाते हैं—"क्या साहित्य-सेवी धर्म-प्रचारक है?" क्या उसका काम वही है, जो किसी ईसाई मिशनरी, या मौलाना, अथवा किसी भिक्षु, या किसी संन्यासीका है? हम इस बातसे सहमत नहीं। हम नहीं मानते कि साहित्य-सेवी और धर्मोपदेशकका दर्जा एक ही है। हमें भय है कि भाई बनारसीदास साहित्य शब्दको बहुत संकीर्ण भावसे प्रयोग करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजसे तीन सौ वर्ष पहले साहित्य शब्द केवल कविता, कहानियों, नाटक, उपन्यास तथा गद्यके सदाचार-सम्बन्धी निबन्धोंके लिए ही उपयोगमें आता था; परन्तु आज ज्ञानके, वृद्धिके, युगमें इसका दायरा बहुत ही विस्तृत हो गया है। यदि टेनिसन और वालटर स्कॉट अंगरेज़ी भाषाके दो बड़े साहित्य-सेवी हैं, तो हक्सले और टिंडल भी उसी भाषाके

सुविख्यात सुलेखक हैं, जिन्होंने सीधी-सादी बोल-चालकी भाषामें विज्ञानके कठिक विषयको अंगरेज़ी जनताके सामने रखा। इसी प्रकार यूरोप और अमेरिकामें विद्याके प्रत्येक विभागमें अच्छे-अच्छे लेखक हुए हैं, जिन्होंने मनोविज्ञान, रासायन शास्त्र, भूगर्भ-विद्या आदि उपयोगी विषयोंपर अच्छे ग्रन्थ लिखकर अपनी भाषाका भंडार भरा है, इसलिए आज हम साहित्य सेवीको धर्म-प्रचारकके रूपमें नहीं देख सकते—उसका काम खास तौरसे जनताके चरित्रका संगठन करना नहीं, बल्कि बड़े व्यापक रूपमें वह ज्ञानके भंडारका अन्वेषक और चित्रकार है। ऐसी अवस्थामें हमें इस विषयपर बड़ी उदारतासे मनन करना चाहिए, और पाठकोंके सामने उन बातोंको रखना चाहिए, जो सब देशोंके साहित्य-सेवियोंपर लागू हो सकें। साहित्यके सार्वभौमिक सिद्धान्तोंपर आज हमें विचार करना है।

यह बात ध्रुव सत्य है कि साहित्य-सेवीका उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। वह जनतामें एक प्रकाश-स्तम्भकी तरह होता है, जिसके सहारे अशिक्षित जनता पथ ग्रहण करती है, इसलिए किसी भी देशका साहित्य-सेवी क्यों न हो, यदि वह चरित्रहीन है, यदि उसके मस्तिष्कमें गंदे और अश्लील कीटाणु भरे हैं, यदि वह वेश्याकी तरह पैसा कमानेके लिए ही ग्रन्थ लिखता है, तो उसे कभी भी सच्चे साहित्य-सेवीकी पदवी नहीं मिल सकती। आज यूरोप और अमेरिकामें जो भयंकर नैतिक पतनके समाचार सुननेमें आते हैं, उनका कारण थर्ड-क्लास घासलेटी सहित्य ही है। छोटे-छोटे लड़के खुफिया पुलिसकी जेब कतरनेवाली उत्तेजनापूर्ण कहानियोंको पढ़कर जेबें कतरना सीख जाते हैं, और उन्होंने अदालतोंमें इसे स्वीकार भी किया है! इसी प्रकार वे उपन्यास जो लोगोंको कामवासनाकी ओर आकर्षित करते हैं, तलाक (Divorce) की बहुलताके जिम्मेवार हैं। यह कहना नितान्त भ्रमपूर्ण है कि विदेशी साहित्य-भंडारकी पूर्ति होनेके कारण वहाँ स्वार्थी लेखकोंसे साहित्यकी हानि नहीं होती। आज यूरोप और अमेरिकाके अखबारोंके सम्पादक पैसा लेकर अपनी आत्माके विरुद्ध दुकानदारी करते हैं, और उन्हें ऐसा करनेमें तनिक भी लज्जा प्रतीत नहीं होती। अपनी पिछली विलायत-यात्रामें महात्मा गांधीको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि लन्दनके अखबार ऐसी बहुतसी झूठी बातें उनके विरुद्ध छाप देते थे। अभी पिछले दिसम्बरमें हमने एक व्याख्यान देहलीमें दिया था, जिसकी बिलकुल असत्य रिपोर्ट एक अंगरेज़ी दैनिक तथा उर्दूके रोज़ाना अखबारमें निकली थी। चरित्रवान व्यक्ति ही प्रत्येक समाजके आभूषण हैं, और वे ही अपनी भाषाकी साहित्य-वाटिकाको सुन्दर पुष्पोंसे अलंकृत कर सकते हैं।

परन्तु चरित्र शब्दको भी व्यापक अर्थोंमें व्यवहारमें लाना चाहिए। हमारे देशमें चरित्रहीन शब्दका अर्थ केवल यह लिया जाता है कि अमुक मनुष्य पर-स्त्रीगामी है, या उसकी काम-इन्द्रिय उसके वशमें नहीं। चरित्र शब्दका यह अत्यन्त ही संकुचित प्रयोग है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनमें विषय-वासनाकी मात्रा अधिक होनेके कारण वे ऐसी-ऐसी बातें कर बैठते हैं, जिनसे हिन्दू जनता उन्हें चरित्रहीन समझने लगती है; परन्तु वे उन कामोंके करनेमें अपना पतन मानते हैं, और उनके लिए उन्हें दुःख भी होता है। संसारमें ऐसे बहुतसे लेखक हुए हैं, जिनमें इस प्रकारका दोष था, किन्तु उसपर भी वे साहित्यके बड़े मर्मज्ञ लेखक हुए हैं, अतएव चरित्रहीनताकी कसौटी यह है कि व्यक्ति बुराईको बुराई न समझता हो, वह ब्रह्मचर्यकी खिल्ली उड़ावे, असंयममें गौरव माने, दूसरोंकी निन्दा, झूठ बोलना, मक्कारी और छल-कपटको अच्छा समझे, ऐसे घृणित दोषोंसे भरा हुआ व्यक्ति कभी भी किसी भाषाका अच्छा लेखक नहीं हो सकता। वह चोरीसे दूसरोंके लेखोंकी नक़लकर अथवा उत्तेजनापूर्ण अश्लील बातें लिखकर लेखक बन बैठे, तो इसे उस भाषाका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

यदि हिन्दी-साहित्यमें ऐसे लेखकोंकी संख्या बढ़ रही है, तो सचमुच हमें अत्यन्त शीघ्र जनताको उनके विरुद्ध चैतन्य करना उचित है।

अच्छा, इसी सम्बन्धमें हम यहाँपर यह प्रश्न उठाते हैं कि किसी साहित्यकी आत्मा कौनसी होती है? लेखकने अपने भारतीय आदर्शोंके अनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी और भक्त कबीरजीको हिन्दी-साहित्यकी आत्माके रूपमें हमारे सामने पेश किया है। यदि ये दो प्रातःस्मरणीय भक्त हिन्दी-साहित्यकी आत्मा हैं, तो संस्कृत-साहित्यकी आत्माकी ज्योतिका दर्शन हम किसमें पावेंगे? कवि-शिरोमणि कालिदासको यदि हम संस्कृत-साहित्यसे निकाल दें, तो उस क्षेत्रके बड़े भागमें अन्धकार-सा प्रतीत होने लगता है। तो कालिदास ही को संस्कृत-साहित्यकी आत्मा कहना ठीक होगा, क्या हिन्दी-साहित्यकी आत्मा और संस्कृत-साहित्यकी आत्मा—इन दोनोंका स्वरूप एक ही जैसा है? कालिदास पूर्व और पश्चिम दोनों प्रकारकी संस्कृतियोंका प्रतिनिधि है—उसमें एकांगीपन नहीं। उसकी दृष्टि सभी रसोंपर पड़ती है, और सभी रसोंका वह कुशल चित्रकार है। क्या भक्त कबीर भी ऐसे ही हैं? भक्ति ईश्वर-आराधनाका अत्यन्त सुखद मार्ग है, परन्तु वह साहित्यकी आत्मा नहीं बन सकती। जर्मन साहित्यकी आत्मा जगत-विख्यात दार्शनिक गेटेके ग्रन्थोंमें छिपी है। क्या गेटे भारतीय विचारोंके अनुसार चरित्रवान पुरुष था! काम-वासनाके वशीभूत होनेपर भी उसने जर्मन साहित्यको किस कौशलसे परिष्कृत किया है। वह एक अत्यन्त निपुण कलाकार था। इसी प्रकार अंगरेज़ी साहित्यकी आत्मा शेक्सपीयरको माना जाता है। वह भी हमारे आदर्शोंके अनुसार चरित्रवान व्यक्ति नहीं था। हमारी तुच्छ सम्मतिमें हिन्दू-हृदय अधिकतर एकांगी होता है। वह एक ही गुणमें सब कुछ देखने लगता है। यदि कोई भी भक्त है, तो वह उसीमें सारे संसारकी मुक्ति मानता है, और यदि कोई ब्रह्मचर्य-प्रेमी है, तो वह उसे ही सब उत्थानोंकी कुंजी मान बैठता है। इसी कारण हममें तुलनात्मक दृष्टि और विश्लेषणशक्तिका बड़ा अभाव है। हमारी रायमें हिन्दी-साहित्यकी आत्मा न तो गोस्वामी तुलसीदासमें छिपी है, और न कबीर ही उसके प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। हिन्दी-साहित्यकी आत्माका प्रादुर्भाव उसी समय होगा, जब सब प्रान्तोंमें हिन्दीका आधिपत्य हो जायगा।

ग्रन्थ पैसेके लिए नहीं लिखे जाते, साहित्य-सेवा स्वार्थ साधनकी वस्तु नहीं है, इस अंशमें बेशक हम सूर, तुलसी, कबीर और मीराबाईसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

बहुधा पाश्चात्य देशोंके लोग इस बातकी शिकायत करते हैं कि आदर्शवादी हिन्दू प्राकृतिक सौंदर्यको अनुभव करनेकी इन्द्रियको खो बैठे हैं। महात्मा गांधीके विरुद्ध यह बहुत बड़ी शिकायत पाश्चात्य कलाकारोंकी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय आदर्श सत्य, शिव और सुन्दरका है। जो सच्चा और कल्याणकारी है, वही सुन्दर है। ऋषि टाल्सटाय और महात्मा गांधी इसी विचारके साहित्य सेवी हैं, परन्तु यह आधी सचाई है। ईश्वर-रचित इस ब्रह्माण्डमें दोनों पदार्थ हैं—चेतन और जड़, प्रकृति और पुरुष, सत्य और असत्य। पाश्चात्य कलाकार कहता है कि जो पदार्थ जैसा हो, उसका वैसा ही चित्रण करना, यही सत्य है। लेखकको क्या अधिकार है कि वह उपदेष्टा बनकर पाठकोंको शिक्षा देने लगे। आज संसारमें इसीलिए जन-साधारण भेड़-बकरी बने हुए हैं, क्योंकि हम उनके सामने घटनाओंका यथार्थ रूप पेश न कर, झट धर्माचारी बनकर, सर्मन झाड़ने लगते हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि लोग घटनाओंके क्रमसे स्वयं नतीजा निकालनेकी आदत डालें। यदि सत्य घटनाएँ अशिव हों, अर्थात् कल्याणकारी न हों, तो भी उनका यथार्थ चित्रण ही सच्चा सौन्दर्य है। इस प्रकार इस क्षेत्रमें दो विचारके चिन्ताशील लेखक आमने-सामने खड़े हैं। भारतवर्षमें कुछ नवीन हिन्दी-लेखक इन पाश्चात्य कलाकारोंकी नकल करना चाहते हैं—कलाके विकासके लिए नहीं, बल्कि केवल अपनी निर्बलताओंको ढकनेके लिए। यह नीति सर्वथा त्याज्य है।

हम इस बातसे लेखक महोदयसे मतभेद रखते हैं कि साहित्य-सेवीके पास मोटर और बंगला नहीं होना चाहिए।

तुलसीदास और बाल्मीकिका समय और था। वे दिन बैलगाड़ियोंपर चढ़ने और पैदल घूमनेके थे। आज हम उस आदर्शको नहीं रख सकते, और न उसे साहित्य-सेवियोंके गले ही मढ़ सकते हैं। मोटरपर चढ़नेवाला और बंगलेमें रहनेवाला व्यक्ति भी त्यागके आदर्शका पालन कर सकता है, यदि उसके सामने जीवनका लक्ष्य स्पष्ट हो। ऐश-आराममें पले हुए हज़ारों नवयुवकोंने पिछले महासमरमें खुशी-खुशी अपने देशके लिए सर्वस्व त्याग कर दिया। कुटियामें रहनेवाला व्यक्ति भी परम स्वार्थी हो सकता है, और ऐसे बहुतसे उदाहरण देखनेमें आते हैं। त्यागका सम्बन्ध हृदयके विकासके साथ है, और हम उस व्यक्तिको अधिक आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, जो भोग-विलासकी सामग्री रखता हुआ भी अवसर आनेपर उसे तत्काल त्याग सकता है। आज ऐसे ही उदाहरण कांग्रेसके क्षेत्रमें मौजूद हैं, और हम इसीलिए उन्हें दूसरोंके सामने आदर्शके तौरपर पेश करते हैं। वह सचमुच बड़ा ब्रह्मचारी है, जो सुन्दर स्त्री रखते हुए भी अपने आपको वशमें रखता है; परन्तु हम ग़रीब बैलको ब्रह्मचारी नहीं मानते, अतएव यहींपर हमारा बड़ा भारी मतभेद 'विशाल-भारत' के सम्पादकसे है। अपने लेखमें उन्होंने कुछ नाम आदर्शके तौरपर भी पेश किये हैं। हमारा इस सम्बन्धमें भी उनसे बड़ा मतभेद है। मान्यवर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने हिन्दीकी बड़ी भारी सेवा की है। हम सब उनके ऋणी हैं; परन्तु वे साहित्य-सेवियोंके आदर्श-रूप नहीं हो सकते, और न स्वर्गीय पं० पद्मसिंह साहित्य-सेवियोंके आदर्श कहे जा सकते हैं। जो लोग अपने प्रशंसकों और मित्रोंको आसमानपर चढ़ा दें और उनकी प्रशंसाके पुल बाँध दें, जो उनके ग्रन्थोंकी तारीफ़ करते हुए न थकें, जो अपने विरोधियोंके गुणोंको स्वीकार न कर उनके दोषोंको बढ़ाकर दिखलावें और उन्हें मिट्टीमें मिलानेका प्रयत्न करें, ऐसे लेखक कभी भी आदर्श-रूप नहीं माने जा सकते।

यह सच है कि गोस्वामी तुलसीदास और भक्त कबीरने धन संग्रह नहीं किया था, और न धनका आदर्श रखकर उन्होंने ग्रन्थ ही लिखे; परन्तु साहित्य-सेवीके लिए इतना ही गुण आदर्शके लिए काफ़ी नहीं। बहुतसे ऐसे साधु-सन्त होते हैं, जो पैसेको छूते भी नहीं; परन्तु वे थोड़ी-सी बातपर क्रोधमें आकर दूसरेका सिर फोड़ देते हैं। आदर्श हमेशा सर्वाङ्गमें होना चाहिए, व्यक्ति-विशेषमें नहीं, ताकि पीछे चलनेवाले गुमराह न हो सकें। व्यक्ति-विशेषमें गुण-दोष दोनों होते हैं। उसका आदर्श माननेमें गुणोंके साथ दोष भी चिपट जाते हैं। यह मार्ग गुरुडमका है। यही झगड़ोंकी जड़ है। हमारी रायमें यदि एक बात हम कबीरसे सीख सकते हैं, तो दूसरी गोस्वामी तुलसीदासजीसे, तीसरी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीसे और चौथी स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीसे। इस प्रकार आदर्श गुणोंका पुंज होना चाहिए।

संक्षेपमें हमारा निवेदन यह है कि आज हिन्दी-साहित्यके इस निर्माण-युगमें साहित्य-सेवीका बड़ा-भारी उत्तरदायित्व है। उसमें चरित्रकी पवित्रता तो होनी ही चाहिए। यदि उसमें निर्बलताएँ हों, तो वह उन्हें गुण न समझ बैठे, और गौरवसे उसकी डुग्गी न पीटे। यह ग़लत है कि साहित्य-सेवीको विशेष अधिकार प्राप्त हैं। साहित्य कोई विशेष अधिकार प्राप्त करनेका क्षेत्र नहीं, बल्कि उत्थान और विकासका क्षेत्र है। पूर्ण पुरुष कोई भी नहीं। अपनेमें भूलें हों, तो उनपर पश्चात्ताप करना चाहिए, और उन्हें दूर करनेका यत्न करना उचित है। त्याग कुटी और झोंपड़ीमें ही छिपा नहीं रहता, वह अभ्यासकी वस्तु है, जो महलोंमें रहकर भी किया जा सकता है। भर्तृहरि महलोंमें ही पले थे, और अवसर आनेपर झटसे उन्होंने उनका त्याग भी कर दिया था। साहित्य-सेवीको अपना आदर्श स्पष्ट रखना चाहिए। उसके पास भले ही गाड़ी-घोड़ा, मोटर और बंगला हो, लेकिन उसे उनका गुलाम नहीं बनना चाहिए। अवसर आनेपर उसे पैदल चलना पड़े, तो उसे दुःख न हो।

झोंपड़ीमें सोना पड़े, तो कष्ट अनुभव न हो। बलिदानका अवसर हो, तो अपना सर्वस्व देनेके लिए तैयार रहे। त्याग साधनाकी चीज़ है, क़ानूनसे बाँधनेकी वस्तु नहीं; वह स्वेच्छाका गुण है, सामाजिक भयका नहीं। साहित्य-सेवी धर्म-प्रचारक नहीं, और न वह संन्यासी ही है। संन्यासी और मिशनरी भी साहित्य-सेवी हो सकते हैं, किन्तु यह क्षेत्र केवल उन्हींका नहीं है। कालेजमें पढ़ानेवाला चार बच्चोंका बाप प्रोफेसर अपनी सब निर्बलताओंके साथ भी साहित्य-सेवी बन सकता है। लार्ड बायरन अपनी भाषाका प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हुआ है। ऐसे मि० किपलिंग भी हैं। इनके चरित्रोंको दुनिया जानती है। अंगरेज़ी भाषामें ऐसे कईएक लेखक हुए हैं। हिन्दी-साहित्यमें उदार-दृष्टिसे इनपर विचार करनेकी ज़रूरत है। यदि किसी साहित्य-सेवीमें कोई दुर्गुण हो, तो हमें उसके विरुद्ध विज्ञापन न कर प्रेमसे उसे समझाना चाहिए।

हाँ, नक़ली लेखकोंके विरुद्ध ज़बरदस्त प्रचारकी ज़रूरत है, क्योंकि वे ही बड़े खतरनाक और साहित्यके शत्रु हैं। जनताको खूब चैतन्य होकर ऐसे ठगोंसे बचना चाहिए, क्योंकि वे न केवल पैसा ही बटोरते हैं, बल्कि आनेवाली सन्तानके मार्गमें काँटे भी बो जाते हैं। उनकी उत्पन्न की हुई कुरुचि और उनके उदाहरण भाषा और लेखकोंको बिगाड़ देते हैं, अतएव इस बातमें हम लेखकसे पूर्णतया सहमत हैं कि नक़ली लेखकोंके बहिष्कारका समय आ गया है, और हिन्दी-जनताको ऐसे स्वार्थी और अपना उल्लू सीधा करनेवाले लेखकों और प्रकाशकोंके विरुद्ध आन्दोलन करना चाहिए। पुस्तक-विक्रेताओंको उनके ग्रंथ रखना उचित नहीं, और न पुस्तकालयोंको भी उनके ग्रन्थ मँगवाने चाहिए. जो समाज पापको सहन कर लेता है, जो दुराचारियोंके प्रति आँखें मूँद लेता है, जो गुंडोंके विरुद्ध आवाज़ उठानेका साहस नहीं करता, और जो शुद्ध साहित्यको प्रोत्साहन नहीं देता, उसका नाश अवश्यम्भावी है। इसी अनीति और सुनीतिके युद्धमें समाजके बलकी परीक्षा होती है। साहित्य समाजका हृदय है। नीरोग विचार नीरोग हृदयसे ही निकल सकते हैं। समाजका बल विशाल सेना, बन्दूक़ और तोपोंपर निर्भर नहीं है। उसकी शक्ति निर्मल विचारों, पवित्र लेखकों और सच्चरित्र नागरिकोंपर ही अवलम्बित है। वही राष्ट्र शक्तिशाली होगा, जो अपने बच्चोंके हाथमें शुद्ध विचारोंसे पूर्ण पुस्तकें देगा, और जिसके नागरिक अपनी भाषा तथा साहित्यकी रक्षा ऐसी सावधानीसे करेंगे, जैसे माता अपने नवजात शिशुकी करती है। संसारमें सब वस्तुएँ नाशवान हैं। बड़े-बड़े महल और स्तूप खंडहर हो जाते हैं, लेकिन साहित्य सदा अमर रहता है, और उसमें कहे हुए विचार आकाशमें गूँजते हैं। जब तक चाँद और सूर्य विद्यमान रहेंगे, सच्चरित्र और त्यागी लेखकोंकी कीर्ति-कौमुदी संसारमें बनी रहेगी।

घटना

श्री ऐंटन चेखोव

प्रातः काल। उदय होते हुए सूर्यकी नरम और उज्ज्वल किरणें खिड़कीके स्वच्छ शीशोंमें से लाँघकर बच्चोंके शयनागारमें पड़ रही हैं। अन्दर बढ़िया पलंगोंपर दो बच्चे सो रहे थे; एक बालक वान्या, जिसकी उम्र छै साल होगी; दूसरी बालिका नीना, जो अभी चार सालकी है। बालककी नींद टूट गई। सिर उठाकर पलंगके सिरहानेके सींकचोंमें से वह अपनी बहनकी ओर देखने लगा। वह भी स्वयं ही जाग गई। दोनों सिर उठाकर दूसरी तरफ़ चुपचाप देखने लगे।

इसी समय धाय चिल्लाती हुई आई—"ऊ-ऊ-ऊ! कितने शरारती बच्चे हैं। सब अच्छे आदमी इस वक्त तक नाश्ता भी कर चुके, और तुम अभी तक उठे ही नहीं!"

सूर्यकी नरम किरणें बच्चोंके बिस्तरों, घरकी दीवारों और धायके कपड़ोंपर इस तरह पड़ रही थीं, जैसे वे उन्हें खेलनेके लिए निमन्त्रित कर रही हों; परन्तु बालकोंने उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। वे दोनों आज खुश-से नहीं थे। कुछ देरकी शीतल चुप्पीके बाद नीनाने रुआँई-सी होकर कहा—"ऊँ! ऊँ! नाश-ता!"

वान्या उठकर बैठ गया। अपनी आँखें मसलकर वह भी कुछ कहना ही चाहता था कि साथके चित्रागारसे इसी तरफ़ आती हुई अपनी माताकी आवाज़ उन दोनों बालकोंके कानोंमें पड़ी। वह कह रही थी—"आज बिल्लीको दूध पिलाना न भूल जाना। वह अब बच्चोंवाली हो गई है!"

दोनों बच्चोंके मुरझाये-से चेहरे हरे हो गये। उन्होंने आश्चर्यकी दृष्टिसे एक दूसरेको देखा। इसके बाद वे दोनों चिल्लाते हुए अपने पलंगोंसे नीचे उतर आये, और कोठी-भरको अपनी चीखोंसे प्रतिध्वनित करते हुए वे रातकी पोशाकमें, नंगे पैरों ही रसोईघरकी तरफ़ भाग पड़े।

वे चिल्ला रहे थे—"बिल्लीने बच्चे दिये हैं! अहा, बिल्लीने बच्चे दिये हैं!"

रसोईघरकी बेंचके नीचे लकड़ीका एक बक्स पड़ा था। इस बक्समें घरका नौकर स्टीपन कोयला रखा करता था। बिल्ली इसी बक्समें से झाँक रही थी। उसके भूरे चेहरेपर अत्यधिक थकावटके चिह्न थे, और उसकी हरी-हरी आँखोंकी सिकुड़ी हुई पुतलियोंमें आज भावुकता-सी दिखाई दे रही थी।...उसकी नज़रसे यह साफ़-साफ़ प्रतीत होता था कि उस समय उसे जो असाधारण प्रसन्नता अनुभव हो रही है, उसमें सिर्फ़ एक बातकी ही कसर बाक़ी है, वह यह कि बच्चोंका बाप, जिसे आजसे काफ़ी समय पहले ही वह तलाक दे चुकी है, इस खुशीके मौक़ेपर उपस्थित नहीं है। वह इस समय इतनी कमज़ोर है कि 'म्याऊँ' 'म्याऊँ' भी नहीं कर सकती। बक्सके अन्दरसे पिल्ले बड़ी पतली, बिलकुल इकहरी, आवाज़में चीख रहे हैं।

दोनों बच्चे उस बक्सके पास घुटने उठाकर बैठ गये, और चुपचाप, निस्तब्ध दशासे, बड़े कौतूहलके साथ, बिल्लीकी इस नई सृष्टिको देखने लगे। वे बहुत चकित, प्रभावित और मग्न-से दिखाई देते थे। उनकी आँखोंमें विशुद्धतम प्रसन्नता चमक रही थी।

वास्तवमें पालतू जानवर बालकोंपर अनजानेमें ही बहुत ही शिक्षाप्रद प्रभाव डाला करते हैं। अगर आप अपने बचपनके सुनहरे दिनोंकी याद करें, तो आपको स्मरण हो आयेगा, उन दिनों अपने घरके कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, बतक, गाय, भैंस आदि अपनेसे कितने अधिक निकटके प्राणी प्रतीत हुआ करते थे, और उनका दैनिक जीवन आपपर किस तरह प्रभाव डाला करता था। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि छोटे बच्चोंके लिए घरेलू जानवरोंकी स्वाभाविक शिक्षा उस शिक्षासे

बहुत क़ीमती है, जो उनकी अध्यापिका उन्हें क्लास-रूममें बन्द करके पानी किन गैसोंसे बनता है, आदिके रूपमें देती है।

नीनाने हर्षोत्फुल्ल लोचन होकर, हँसते हुए कहा—"अहा, कितने छोटे बच्चे हैं! ये तो चुहिया-से मालूम पड़ते हैं!"

वान्याने उनकी गिनती शुरू की—"एक, दो, तीन। तीन बच्चे हैं! एक तेरा, एक मेरा, एक बिल्लीका।"

घरके बालकोंको अपने बच्चोंमें इतनी दिलचस्पी लेते देखकर बिल्ली खुश हो रही थी। वह बोली—"म्याऊँ! म्याऊँ!"

जब बच्चोंके इस तरह देखते रहनेसे उनका जी नहीं भरा, तो उन्होंने उन्हें बिल्लीके नीचेसे, साहस करके, निकाल लिया। पहले तो वहीं बैठे रह, उन्हें प्यार किया, इसके बाद उन्हें अपने कपड़ोंके अन्दर कर लिया। जब इससे भी जी न भरा, तो वे उन्हें उठाकर दूसरे कमरेमें भाग गये। बिल्ली बेचारी 'म्याऊँ, म्याऊँ' करती और पूँछ हिलाती ही रह गई।

माता अपने चित्रागारमें बैठकर बाहरसे आये किसी अपरिचित सज्जनके साथ बातचीत कर रही थी। बिल्लीके बच्चोंको अपनी गोदमें लेकर दोनों बच्चे उसके पास जा पहुँचे, और चिल्लाने लगे—"अम्मा, अम्मा, बिल्लीके बच्चे देखो!"

अपने कुलीन बालकोंको इस तरह रातकी पोशाकमें, बिना नहाये-धोये और नंगे पैरों ही, एक अपरिचितके सामने आया देखकर माताने डाँटकर कहा—'हटो नालायको! जाकर नहाओ-धोओ, नहीं तो मार खाओगे! धाय कहाँ है?"

मगर बच्चोंने अपनी माताकी डाँट-डपटकी ज़रा भी परवा नहीं की, और चित्रागारके ग़लीचेपर, उस अपरिचित सज्जनके सामने ही, इन बिल्लीके बच्चोंको रखकर वे उनसे खेलने लगे। यह देखकर माता उठ खड़ी हुई, और वह ज़बरदस्ती उन्हें उनके कमरेमें खींच ले गई। स्टीपनको आवाज़ देकर बिल्लीके बच्चोंको उसने पुनः उसी बक्समें डलवा दिया। धायने बच्चोंको ज़बरदस्ती स्नान कराया, कपड़े बदले, बालोंमें कंघी की, और उनसे ईश्वरकी प्रार्थना करवाई। इसके बाद उन्हें नाश्ता करवाया गया, मगर आज इन सब बातोंमें बच्चोंका दिल ज़रा भी न लगा। आखिर नाश्तेकी आफ़तसे छुट्टी पाकर जब उन्हें खेलनेकी फ़ुर्सत मिली, तो वे दोनों भागकर पुनः रसोईघरमें जा पहुँचे।

बिल्लीके इन तीन बच्चोंका इस दुनियामें आना एक इतनी बड़ी घटना थी, जिसके सामने वान्या और नीनाके लिए जगतकी अन्य सम्पूर्ण वस्तुएँ बिलकुल तुच्छ पड़ गईं। आज अगर उन्हें कोई इन बच्चोंके बदलेमें २४ रबरकी गेंदें, या दस हज़ार पैसे, अथवा चाकलेटके ४० डब्बे भी देनेको तैयार होता, तो वे इस सौदेको कभी स्वीकार न करते। धाय और रसोइयाके बार-बार मना करनेपर भी वे दोनों दोपहरके भोजन तक उसी बक्सके पास ही बैठे रहे। बैठे क्या रहे, शरारतें करते रहे। बिल्लीके बच्चोंके भविष्यमें दोनों बालक बड़ी-बड़ी स्कीमें बनाते रहे। निश्चय हुआ कि एक बच्चा प्यारके लिए अपनी माके पास ही रहने दिया जायगा, दूसरा अपने पहाड़वाले ग्रीष्मावासमें भेज दिया जायगा और तीसरेको तहख़ानेके स्टोरमें रखा जायगा, क्योंकि वहाँ चूहे बहुत हैं।

अचानक नीनाने बड़े आश्चर्यसे कहा—"अरे, ये हमारी तरफ़ देखते क्यों नहीं? ये तो भिखारियोंकी तरहसे अन्धे हैं!"

वान्या भी इस प्रश्नका ठीक जवाब न दे सका। उसने एक बच्चा उठा लिया, और उसकी आँखोंको ज़बरदस्ती खोलनेका प्रयत्न करने लगा। बच्चा दर्दसे 'चीं, चीं' करता था, और वह उसे पुचकार-पुचकार पुनः उसकी आँखें खोलनेका प्रयत्न करने लगता था, परन्तु अन्त तक वान्याका यह आपरेशन असफल ही रहा। बीच-बीचमें वे दोनों प्यालियोंमें दूध भर-भरकर उन बच्चोंके सामने रखते थे, और उनकी नाक पकड़कर उन्हें दूधमें डुबो देते थे; परन्तु इसपर भी बच्चे दूध नहीं पीते थे, और उनके सामनेका यह सम्पूर्ण दूध उनकी माता 'भूरी बिल्ली' ही पी जाती थी।

वान्याने प्रस्ताव किया—"चलो नीना, हम सब

बच्चोंके लिए अलग-अलग घर बनायें। फिर इनकी माता बारी-बारी इन सबसे मिला करेगी।"

दोनों बच्चे अपनी टोपियोंके डब्बे उठा लाये, और उन्हें रसोईघरके तीन कोनोंमें खड़ा करके रख दिया गया। इसके बाद प्रत्येक डब्बेमें एक-एक बच्चा रखा गया; मगर बच्चोंके ये नये घर अधिक देर तक क़ायम न रह सके। उनकी मा उन्हें शीघ्र ही पुनः उसी लकड़ीके डब्बेमें उठा लाई।

वान्याके सामने अचानक एक समस्या आ खड़ी हुई, और उसे सुलझानेमें उसने अपनी बहनकी मदद माँगी।

उसने कहा—"इनकी माता तो बिल्ली है, मगर पिता कौन है?"

नीनाने भी दोहराया—"हाँ, इनका पिता कौन है?"

"इनका पिता होना ज़रूर चाहिए!"

प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हो गया। अब दोनों बच्चे मिलकर बड़ी गम्भीरतासे इस प्रश्नपर विचार करने लगे कि इनका पिता किसे बनाया जाय। अन्तमें वे एक निश्चयपर भी पहुँच गये। स्टोर-रूमकी दीवारका एक पूरा तख़्ता इन दोनोंके टूटे हुए और पुराने खिलौनोंसे भरा पड़ा था। इन खिलौनोंमें मिट्टीका एक बहुत बड़ा लाल रंगका घोड़ा भी था, जिसकी पूँछ वान्याकी कृपासे इस घरमें पहुँचनेके साथ-ही-साथ टूट गई थी। इसी घोड़ेको इन बिल्लीके बच्चोंका बाप नियत किया गया। नौकरसे कहकर उन्होंने वह घोड़ा तख़्तेपर से उतरवा लिया, और उसे बच्चोंवाले बक्सके पास लाकर खड़ा कर दिया।

मिट्टीके इस घोड़ेको वहाँ रखते ही वान्याने उसे बड़ी गम्भीरतासे चेतावनी दी—"देखो, अब तुम इनके पिता हो। इनका अच्छी तरह ख्याल रखना!"

थोड़ी ही देर बाद घोड़ेकी मौजूदगीमें ही वान्याने एक बच्चा बक्समें से उठा लिया, और उसे लेकर वह अपने पिताके पढ़नेके कमरेमें चला गया। नीना भी उसके साथ थी। कमरेमें कोई नहीं था। वान्याने बच्चेको अपने पिताकी मेज़पर रख दिया। वह बच्चा मेज़के काग़ज़ोंपर से धीरे-धीरे खिसककर लैम्पकी तरफ़ बढ़ने लगा, और वान्या एक पेन्सिल उठाकर उसके मुँहमें डालने लगा। इसी समय उसके पिता वहाँ आ पहुँचे।

उन्होंने डाँटकर कहा—"यह क्या हो रहा है?"

वान्या इसी बातकी ही इन्तज़ारमें था कि कब उसके पिता आयें, और वह उन्हें ये बच्चे दिखाये। उसने बड़ी प्रसन्नतासे, उत्साहके साथ, कहा—"दादा! ये देखो, बिल्लीने बच्चे दिये हैं!"

पिताने गुस्सेमें भरकर कहा—"चल, नालायक कहींका! मेरे सब काग़ज़ तूने खराब कर दिये। उठा इन्हें यहाँसे!"

वान्याको यह देखकर बड़ा दुःखपूर्ण आश्चर्य हुआ कि इन बच्चोंको देखकर उसकी तरह खुश हो जानेके बजाय, उसके पिता और भी गुस्से हो गये हैं!

इसी समय वान्याके कान खींचकर पिताने अपने नौकरको आवाज़ दी—"स्टीपन, इस वाहियात बिल्लीके बच्चोंको यहाँसे उठा ले जाओ।"

भोजनके समय एक और घटना हुई। नीना चोरी-चोरी एक बच्चेको अपने फ्राकके नीचे छिपाये बैठी थी। अभी भोजन शुरू हुए थोड़ा ही समय हुआ था कि बच्चा उसके फ्राकके नीचेसे चीं-चीं करने लगा। बेचारी नीना साफ़ पकड़ी गई। उसके पिताने डाँटकर कहा—"नीना, इसे नीचे फेंक दो!" इसके बाद उन्होंने एकदमसे इन बच्चोंके लिए प्राणदंडकी व्यवस्था दे डाली—"आज इन्हें गन्दी नालीमें फेंक दिया जायगा। इन्हें घरमें रखनेसे गन्दगी बढ़ती है।"

वान्या और नीना दोनों बहुत अधिक डर गये। गन्दी नालीमें ये बेचारे बच्चे अवश्य मर जायँगे। उन्हें कितना दुःख होगा। यह कितनी भयंकर क्रूरता है। इतना ही नहीं, इनकी माताको कितना कष्ट होगा, और हमारी आजकी सारी स्कीमोंका क्या होगा। बच्चोंके दिमाग़में ये सब बातें घूम गईं, और वे ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगे। आखिर लाचार होकर

उनके पिताने वचन दिया कि यदि वान्या और नीना उनके पास नहीं जायँगे, तो उन्हें घरमें ही रहने दिया जायगा।

भोजनके बाद वे दोनों बहुत उदास होकर अपने कमरेमें जा बैठे। धायके बहुत कहनेपर भी फलोंकी डिशको उन्होंने छुआ तक भी नहीं, न मिठाई ही खाई। अपनी माताके सामने भी वे गुस्ताख और उदास बने रहे। कई घंटे इसी तरह बीत गये।

सायंकालको उनका चचा पेट्रूशा घरमें आया। वह अभी बाईस-तेईस वर्षका अविवाहित नवयुवक था। दोनों बच्चे उसे बड़ा प्यार करते थे, और दिन-भरमें अपने पिता या मातासे उन्हें जो-जो शिकायत होती थी, उसकी शिकायत अपने इस चचासे किया करते थे। आज उन्होंने उससे यह भी कहा कि उनके पिता इन बच्चोंको गन्दी नालीमें गिराने लगे थे!

अन्तमें उन्होंने गिड़गिड़ाकर कहा—"चाचा, अम्मासे कहो कि वह बिल्लीके बच्चोंको हमारे कमरेमें रख दें! ऊँ, ऊँ—ज़रूर कहो!"

"तुम्हारे कमरेमें?...बहुत अच्छा। मैं ज़रूर कह दूँगा!"

चचा पेट्रूशा जब आता है, तो प्रायः अकेला नहीं आता। उसके साथ उसका बड़ा-सा कुत्ता नीरो भी होता है। नीरो काले रंगका है, उसके कान लम्बे हैं और पूँछ छड़ीके समान सख्त। वह चुपचाप रहनेवाला, खुश्क मिजाज़का और घमंडी जानवर है। वान्या और नीनाको तो वह कुछ समझता ही नहीं। इनकी तरफ़ वह देखता तक नहीं। जब वह इनके निकटसे गुज़रता है, तो इस बातकी ज़रा भी परवा नहीं करता कि उसकी हिलती हुई सख्त पूँछ कहीं इन्हें लग न जाय, जैसे वे दोनों भी निर्जीव कुर्सियोंके समान ही हों। दोनों बच्चे उससे अपने हृदयके अन्तरतमसे घृणा करते हैं, परन्तु आज उसे देखकर वान्याको एक नई बात सूझ गई।

उसने अपनी आँखें चौड़ाकर कहा—'नीना, नीना! घोड़ेकी जगह हम नीरोको ही बिल्लीके बच्चोंका बाप क्यों न बना दें। देखो न, घोड़ा तो मरा हुआ है, और यह ज़िन्दा है। यह असली बाप बन सकेगा।"

दोनों बच्चे इस नये प्रस्तावको क्रियामें लानेके लिए छटपटाने लगे। वे इस इन्तज़ारीमें थे कि कब उनके पिता भोजनके बाद ताश खेलने जायँ, और हम नीरोको लेकर रसोईघरमें पहुँचें। आखिर उनका पिता ताश खेलनेके लिए दूसरे कमरेमें चला गया, और माता चाय बनानेमें लग गई।

बच्चोंको मनचाही करनेका प्रसन्नतापूर्वक अवसर मिल ही गया। दोनोंने नीरोको रसोईघरमें लेकर बक्सके नज़दीक खड़ा कर दिया, और मिट्टीके घोड़ेको उठाकर वे अपने कमरेमें चले आये।

कुछ देर बाद सब लोग चायके लिए जमा हुए। इसी समय स्टीपनने आकर घोषणा कर दी—"बीबीजी! नीरो बिल्लीके सब बच्चोंको खा गया है।"

वान्या और नीना पीले पड़ गये, और बहुत अधिक भयभीत होकर वे स्टीपनकी ओर देखने लगे।

नौकर हँसकर कहने लगा—"नीरो उन्हें सचमुच चट कर गया। मैं अभी कोयलेके लिए वहाँ गया था। देखा, तो तब तक वह उन तीनोंको समाप्त कर चुका था।"

वान्या और नीनाको विश्वास था कि इस भयंकर दुर्घटनाको सुनकर घरके सब आदमी स्तब्ध हो जायँगे और बदमाश नीरोको उचित दंड देंगे, परन्तु वैसा तो कुछ न हुआ, अपितु उनके पिताने हँसकर कहा—"नीरोका पेट बहुत बड़ा है! वह तीनों बच्चोंको कैसे खा गया!"

बच्चोंके मा, बाप और चचा तीनों मिलकर ज़ोरसे हँस पड़े। इसी समय नीरो अपना मुँह चाटते और पूँछ हिलाते हुए वहाँ आ उपस्थित हुआ। उनका चचा उसे थपकियाँ देने लगा। बच्चोंने यह सब देखा, और उनके कोमल हृदयपर भयंकर ठेस पहुँची।

इन बच्चोंके अतिरिक्त घरके सब लोग खुश हैं, नीरो भी खुश है ; केवल वह बेचारी भूरी बिल्ली बड़े ही करुण-स्वरमें 'म्याऊँ, म्याऊँ' करती हुई बड़ी बेचैनीके साथ एक कमरेसे दूसरे कमरेमें चक्कर काट रही है। इसी समय माने कहा—"चलो बच्चो ! सोनेका समय हो गया !"

दोनों बालक टूटे हुए दिलोंसे अपने बिस्तरोंपर चले गये। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं, उनके हृदयमें बिल्लीके लिए गहरी सहानुभूतिके भाव हैं, और नीरोके लिए अत्यधिक घृणा और क्रोध।

अनुवादक—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

भारतवर्षका वस्त्र-व्यवसाय

प्रो० शंकरसहाय सकसेना, एम० ए०, एम० कॉम

आज भारतवर्ष कृषक देश है। लगभग तीनचौथाई जनसंख्या केवल खेती-बारीके ही द्वारा अपना उदर पालन करती है, किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनीके आनेसे पूर्व बात ऐसी नहीं थी। भारतवर्षका अतीत आर्थिक इतिहास हमें यह बतलाता है कि यह देश संसारका सबसे उन्नत औद्योगिक देश रहा है। यह केवल अतिशयोक्ति नहीं है। इतिहास जाननेवाले जानते हैं कि ईसवी सन्‌के ३००० वर्ष पूर्व भी भारतवर्षका व्यापार बेबीलोनसे होता था। आजसे लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्वकी मिस्र देशमें पाई गईं "ममी" (Mummies) भारतवर्षमें बनी हुई मलमलमें लपेटी हुई मिली हैं। रोम-साम्राज्य प्रतिवर्ष भारतवर्षसे अधिक राशिमें वस्त्र मँगवाया करता था। प्लिनीने इस विषयमें एक स्थानपर लिखा है कि रोम-साम्राज्यको बहुतसा धन भारतवर्षको प्रतिवर्ष भेजना पड़ता है। यूनानमें ढाकाकी मलमल गंगेतिकाके नामसे प्रसिद्ध थी। पश्चिमी विद्वानोंका यह मत है कि भारतवर्षमें वस्त्र-व्यवसाय आजसे दो हज़ार वर्ष पहले ही बहुत उन्नति कर गया था *। यही नहीं कि इस देशके कारीगर केवल वस्त्र-व्यवसायमें ही कुशल थे, वरन लोहे, जहाज़, लकड़ीका सामान, धातुओं तथा अन्य वस्तुओंके खिलौने बनानेका धंधा भी यहाँ बहुत उन्नत अवस्थामें था।

भारतवर्षके इस वैभवको देखकर ही अंगरेज़ व्यापारियोंने सत्रहवीं शताब्दीमें एक कम्पनी बनाकर इस देशसे व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया। आरम्भमें इंग्लैंड भारतवर्षको कोई भी वस्तु नहीं भेज सकता था, क्योंकि वहाँ औद्योगिक उन्नति नहीं हो पाई थी। इस कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी भारतीय वस्तुओंके मूल्य-स्वरूप सोना और चाँदी लाती थी, किन्तु सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें जब इंग्लैंडमें औद्योगिक क्रान्ति हुई, और यन्त्रोंके अविष्कारसे उद्योग-धंधोंका आरम्भ हुआ, उस समय इंग्लैंडके व्यवसायियोंके सामने दो समस्याएँ उपस्थित थीं, एक तो भारतवर्षमें बने हुए वस्त्रोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें इंग्लैंडका माल वहाँके बाज़ारोंमें ही नहीं बिकता था। दूसरी समस्या यह थी कि बड़े-बड़े कारखानोंमें बना हुआ कपड़ा इतना अधिक होता था कि इंग्लैंड-जैसे निर्धन तथा छोटेसे देशमें वह खप भी नहीं सकता था। साथ-ही-साथ इन बढ़ते हुए धंधोंके लिए कच्चे मालकी भी आवश्यकता थी, जो इंग्लैंडमें उत्पन्न नहीं किया जा सकता था। इन समस्याओंको हल करना भी आवश्यक था, क्योंकि इंग्लैंडकी बढ़ती हुई जनसंख्या केवल खेती-बारीपर निर्भर रहकर उदर पालन नहीं कर सकती थी, अस्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने यह आन्दोलन किया कि भारतवर्षका माल उनके देशमें न आने दिया जाय। ईस्ट इंडिया कम्पनी ब्रिटिश मालपर बिना कुछ

* देखो इम्पीरियल गजेटियर, भाग ३, पृष्ठ १९७

कर लगाये उसे भारतवर्षमें आने दे तथा भारतवर्षमें स्वदेशी माल एक स्थानसे दूसरे स्थानपर बिना कर लगाये न जाने दिया जाय। इसका फल यह होगा कि भारतवर्षका व्यवसाय नष्ट हो जायगा। हुआ भी ऐसा ही। ब्रिटिश पार्लमेन्टने इंग्लैंडमें आये हुए मालपर ८० प्रतिशतसे ऊपर कर लगा दिया। यहां तक कि भारतीय वस्त्रका उपयोग करना वहां दगडनीय माना जाने लगा। इसका फल यह हुआ कि यहांसे कपड़ा जाना बन्द हो गया। इधर ईस्ट इंडिया कम्पनीने ब्रिटिश मालपर बिना कर लगाये, उसे देशमें आने दिया, तथा स्वदेशी मालपर एक ज़िलेसे दूसरे ज़िलेमें जाते समय कर लगाया जाने लगा। फल यह हुआ कि स्वदेशी कपड़ा ब्रिटिश कपड़ेकी प्रतिद्वन्द्वितामें बिक न सका। क्रमशः वस्त्र-व्यवसाय, जो इस देशके करोड़ों कारीगरोंका अवलम्बन था, नष्ट हो गया, और धंधेमें लगे हुए मनुष्य खेती-बारीकी ओर आने लगे। भारतवर्षके इस महत्त्वपूर्ण धंधेकी मृत्यु बहुत ही रोमांचकारी है। * यहाँ तो केवल संक्षिप्तमें ही इसका इतिहास दिया गया है। इस सम्बन्धमें मि० एच० एच० विलसनने अपनी पुस्तक 'भारतवर्षके इतिहास' में लिखा है—"भारतवर्षके सूती तथा रेशमी कपड़े उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें भी मैंचेस्टरके बने हुए कपड़ोंसे आधे मूल्यपर इंग्लैंडके बाज़ारोंमें लाभपर बिकते थे। इस कारण यह आवश्यक हो गया कि इंग्लैंडके व्यवसायकी इस प्रतिद्वन्द्वितासे रक्षाकी जाय, अस्तु भारतीय मालपर ८० फी-सदी कर लगाया गया, और अन्तमें भारतीय माल मँगाना दंडनीय कर दिया गया। यदि ऐसा न होता, तो पैस्ले और मैंचेस्टरके कारखाने, भापका उपयोग करके भी, भारतीय मालकी प्रतिद्वन्द्विताके सामने खड़े न रह सकते और बन्द हो जाते। यदि भारतवर्ष स्वतंत्र होता, तो वह अवश्य इसका बदला लेता, और अपने उद्योग-धंधोंकी रक्षा करता; किन्तु भारतको अपने धंधोंकी रक्षा करनेका अधिकार ही नहीं दिया गया। विजातियोंने राजनैतिक प्रभुत्वको काममें लाकर अपने प्रतिद्वन्द्वीको कुचल डाला।"

उन्नीसवीं शताब्दीके मध्य तक भारतवर्षके धंधे लगभग नष्ट हो चुके थे, किन्तु भारतवर्षकी व्यावसायिक जातियाँ अंगरेज़ी व्यापारियोंके सम्पर्कमें आने लगी थीं, और उन्हें आधुनिक व्यापारका थोड़ा-बहुत ज्ञान हो चुका था। बहुतसे अंगरेज़ व्यवसायियोंने उस समय अपने धंधे भारतवर्षमें ही खोल रखे थे। उनकी देखा-देखी पारसी व्यापारियोंने भी बम्बई, सूरत तथा अन्य स्थानोंपर कपड़ा बनानेके कारखाने खड़े किये। सन् १८५१ में एक पारसी सज्जन सी० एन० डावरने बम्बईमें सबसे पहली सूती कपड़ेकी मिल खोली। क्रमशः और भी व्यवसायियोंने सूती कपड़ेके कारखाने खोले। भारतवर्षके इस भागमें कपड़ेका व्यवसाय चमक उठा, इसके कुछ भौगोलिक कारण भी हैं। नर्मदा तथा ताप्तीकी घाटियोंमें बहुत समयसे कपासकी पैदवार होती थी, और भरौच तथा सूरतके बन्दरगाहोंसे बाहर भेजी जाती थी। कच्चा माल पास ही उत्पन्न होनेके कारण तथा इंग्लैंडसे बम्बईमें यन्त्र तथा कपड़े बिननेकी मेशीनोंको मँगानेकी सुविधा होनेके कारण यह धंधा बम्बईमें चमक उठा।

किन्तु मैंचेस्टरके व्यवसायी भला भारतवर्षमें इस धंधेको पनपते कैसे देख सकते थे? क्योंकि मैंचेस्टर प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयेका कपड़ा भारतवर्षको भेजता था। जैसे-जैसे भारतवर्षमें सूती कपड़ेके कारखानोंकी संख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे इंग्लैंडमें आन्दोलन बढ़ने लगा। समाचारपत्रों तथा सभाओंमें यह बात कही जाने लगी कि यदि भारतवर्षका यह धंधा इसी प्रकार उन्नति करता गया, तो इंग्लैंडके व्यवसायियोंका धंधा बंद हो जायगा, और यहांके मज़दूर भूखों मरने लगेंगे। उन्होंने देखा कि भारतवर्षमें इस धंधेके लिए बहुतसी सुविधाएँ हैं। एक तो कपास वहाँ उत्पन्न होती है, दूसरे वहाँ मज़दूरी सस्ती है, तीसरे वहाँ कारखानोंमें काम करनेके घंटे निश्चित नहीं हैं, जिसके कारण वहां मज़दूर चौदह तथा पन्द्रह घंटे प्रतिदिन काम कर सकते हैं, और चौथे भारत-

* जो पाठक इस विषयमें अधिक पढ़ना चाहें, वे श्री डिगबीकी 'समृद्धिशाली भारत' तथा श्री रमेशचन्द्र दत्तकी 'भारतका आर्थिक इतिहास' नामक पुस्तकें पढ़ें। —लेखक

सरकारने विदेशी कपड़ेपर थोड़ासा कर इस कारण लगा रखा था कि उससे सरकारको काफ़ी आय हो जाती थी। पहली सुविधाओंको नष्ट करना मैंचेस्टरके व्यवसायियोंके हाथकी बात नहीं थी, किन्तु कारखानोंमें घंटे निश्चित करने तथा आयत-करको हटा देनेके लिए वे भारत-सरकारपर दवाब डाल सकते थे। इसी उद्देशको लेकर आन्दोलन किया गया, और सन् १८७५ में कामन्स सभामें इस आशयका एक प्रस्ताव पास हो गया कि भारतीय व्यवसायियोंको अपने कारखानोंमें मज़दूरोंसे पन्द्रह और सोलह घंटे काम लेनेकी स्वतंत्रता देना भारी अन्याय है, तथा विदेशी कपड़ेपर आयत-कर लगाकर भारत-सरकार जो भारतीय व्यवसायको प्रोत्साहन दे रही है, वह ब्रिटिश नीतिके विरुद्ध है, अस्तु भारत-सरकारको शीघ्र ही इस ओर ध्यान देना चाहिए।

११ नवम्बर १८७५ के एक पत्रमें भारत-सचिवने भारत-सरकारको लिखा कि जहां तक हो सके, कुछ वर्षोंके ही अन्दर विदेशी कपड़ेपर आयत-कर हटा दिया जाय। २५ फरवरी १८७६ के पत्रमें भारत-सरकारने भारत-सचिवको उत्तर देते हुए लिखा था कि यदि विदेशी कपड़ेपर से आयत-कर हटा लिया जायगा, तो और दूसरा कर लगाना पड़ेगा, जो सरासर प्रजाके साथ अन्याय होगा। उधर भारत-सरकारने कारखानोंमें घंटे निश्चित करनेके लिए एक कमीशन बैठाया। यद्यपि कमीशनकी राय यह थी कि भारतवर्षके श्रमजीवी अधिक समय तक धीरे-धीरे कार्य करनेके अभ्यस्त हैं, वे थोड़े समयमें शीघ्रतापूर्वक काम नहीं कर सकते, अस्तु भारतवर्षमें इंग्लैंडके अनुसार ही फैक्टरी-ऐक्ट बनाना भयंकर भूल होगी; किन्तु इंग्लैंडमें आन्दोलन बड़ी तेज़ीसे चल रहा था, इस कारण भारत सरकारको सन् १८८१ में एक ऐक्ट बनाना पड़ा, जिसके द्वारा कारखानोंमें बच्चों और स्त्रियोंके काम करनेके घंटोंपर थोड़ा नियन्त्रण किया गया। किन्तु मैंचेस्टरके व्यवसायी इस थोड़ेसे नियन्त्रणसे कैसे सन्तुष्ट होते? क्योंकि उसके द्वारा भारतीय कारखानोंकी उन्नतिमें कोई बाधा तो पड़ी ही न थी, अस्तु वे लोग बराबर आन्दोलन करते रहे, और भारत-सचिवके द्वारा उन्होंने दवाब डालकर, भारत-सरकारके विरोध करते रहनेपर भी, सन् १८९१ तथा १९११ में दो फैक्टरी-ऐक्ट और बनवाये। यद्यपि भारतवर्षमें इस धींगा-धींगीके विरुद्ध बहुत-कुछ आन्दोलन हुआ, और धारा-सभाके सदस्योंने सरकारकी कड़ी आलोचना भी की, परन्तु भारत-सरकार तो 'मैंचेस्टर चैम्बर आफ् कामर्स'के हाथकी कठपुतली बन रही थी, और धारा-सभाएँ उस समय शक्तिहीन थीं, इस कारण कुछ न हो सका।

मैंचेस्टर चेम्बर आफ् कामर्सने केवल फैक्टरी-ऐक्ट बनवाकर ही सन्तोष नहीं किया। वे तो भारतीय धंधेको बिलकुल नष्ट कर देनेपर तुले हुए थे, अस्तु वे साथ-ही-साथ आयात-करको भी हटवा देनेके लिए प्रयत्न कर रहे। १८७७ के जुलाई मासमें हाउस आफ् कामन्सने फिर एक प्रस्ताव इस आशयका पास किया—"इस सभाकी सम्मतिमें भारत-सरकार द्वारा लगाया हुआ विदेशी कपड़ेपर आयत-कर व्यापारिक नीतिके विरुद्ध है अस्तु शीघ्र ही इस करको हटा देना चाहिए।"*

पार्लमेंटके आज्ञानुसार भारत-सरकारने मोटे कपड़ेपर से बिलकुल कर हटा दिया। भारतीय जनताने घोर आन्दोलन किया, रोई और चिल्लाई, किन्तु भारत-सरकार विवश थी। ब्रिटिश पूँजीपतियोंके हितसाधनके लिए भारतीय व्यवसायपर कुठाराघात किया गया। किन्तु मैंचेस्टरके व्यवसायी तो इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। वे चाहते थे कि सब प्रकारके कपड़ेपर से कर उठा लिया जाय। इसका भारत-सरकारने घोर विरोध किया। वायसरायने भारत-सचिवको समझानेका बहुतेरा प्रयत्न किया कि भारतीय मिलें केवल मोटा कपड़ा ही तैयार करती हैं, और जो कुछ प्रतिद्वन्द्विता मैंचेस्टरके कपड़ेसे भारतवर्षमें होती है, वह केवल मोटे और कम मूल्यवाले

---

* फैक्टरी-ऐक्टके विषयमें जो पाठक अधिक पढ़ना चाहें, वे डा० रजनीकान्त दासकी 'फैक्टरी लैजिस्लेशन' नामक पुस्तक पढ़ सकते हैं। आयत-करके विषयमें 'Report of the Indian Fiscal Commission' को देखिये। —लेखक।

कपड़ेसे ; फिर भी भारत-सचिवने एक न सुनी, और सन् १८८२ में आयत-कर हटा दिया गया। सन् १८९४ में विदेशी विनिमयमें रुपयेका भाव घट जानेसे भारत-सरकारको अधिक कर लगानेकी आवश्यकता पड़ी। सब पदार्थोंपर आयत-कर लगाया गया, किन्तु भारत-सचिवने कपड़ेपर आयत-कर न लगाने दिया! भारतीय व्यवसायियोंने बहुत-कुछ आन्दोलन किया, किन्तु सब निष्फल रहा। पर भारत-सरकारको तो अधिक आयकी आवश्यकता थी, और कपड़ेके अतिरिक्त और किसीपर कर लगानेका स्थान नहीं रहा था। अस्तु यह बात तय हुई कि जितना आयत-कर मैंचेस्टरके कपड़ेपर लगाया जाय, उतना ही भारतवर्षकी मिलोंके कपड़ेपर भी लगाया जाय। इसी निश्चयके अनुसार ३॥ फी-सदी कर लगाया गया। सारे देशने सरकारकी इस नीतिकी घोर निन्दा की, यहाँ तक कि अंगरेज़ व्यापारियोंने भी इसका विरोध किया। इस कार्यसे भारतीय जनताका सरकारपर से विश्वास उठ गया, और वह समझ गई कि भारतवर्षके धंधेको नष्ट करनेका चक्र चल रहा है।

यद्यपि भारतीय वस्त्र-व्यवसायकी उन्नति तो इन बाधाओंके कारण शीघ्र न हो सकी, किन्तु प्राकृतिक सुविधाएँ होनेके कारण वह नष्ट न हो सका, मिलोंकी संख्या बढ़ती गई और भारतीय बाज़ारोंमें भारतीय मिलोंका माल बिकने लगा। यही नहीं, बम्बईसे सूत और कपड़ा चीन, परशिया और अफ़ग़ानिस्तानको भी जाने लगा।

सन् १९१४ में ग्रेट ब्रिटेन यूरोपीय महासमरमें कूद पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्यकी समस्त शक्तियाँ युद्धमें लगा दी गई। निर्धन भारतको अपना धन और जन इस महायुद्धमें स्वाहा करना पड़ा। उस समय भारत-सरकारको अधिक आयकी आवश्यकता हुई, नये कर लगाये गये, पुराने करोंमें वृद्धि हुई; किन्तु विदेशी वस्त्रपर आयत उतना ही बना रहा, जितना देशी मालपर लगाया गया था! इस अन्यायपूर्ण नीतिको देखकर भारतीय नेता तथा व्यवसायी बहुत दुखी हुए। भारत-सरकारने देखा कि यदि इस विषयमें भारतीय व्यवसायियोंके साथ न्याय न किया गया, तो महायुद्धमें जो कुछ सहायता मिल रही है, वह बंद हो जायगी। अस्तु वायसरायने भारत-सचिवको इस विषयपर स्पष्ट लिख दिया। दूसरे वर्ष ही वस्त्रपर आयत-कर ७॥ फी-सदी कर दिया गया, और देशी मालपर केवल ३॥ फी-सदी ही रहा। मैंचेस्टरके व्यवसायियोंने इस बार भी आन्दोलन किया, किन्तु भारत-सचिवने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि महायुद्धके कारण हम ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते, जिससे भारतीय असन्तुष्ट हों।

महायुद्धके उन चार वर्षोंमें भारतीय मिलोंको स्वर्ण-अवसर प्राप्त हुआ। जैसे-जैसे युद्धकी भयंकरता बढ़ती गई, वैसे-वैसे भारतवर्ष और इंग्लैंडका व्यापार बंद होता गया। इंग्लैंडके कारखाने महायुद्धके लिए आवश्यक वस्तुएँ तैयार करनेमें लगे थे। भारतीय कारखानोंका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा। इस कारण वे जितना कपड़ा तैयार कर सकते थे, उतना करने लगे। एशिया महाद्वीपके देशोंमें भारतवर्षका बना हुआ कपड़ा बिकने लगा। साधारण जातिके कपड़ेका बाज़ार देशी कारखानोंके हाथमें आ गया। उधर जापानने यह अच्छा अवसर देखकर अपना माल भारतवर्षमें भेजना प्रारम्भ कर दिया।

महायुद्धके समाप्त होनेपर इंग्लैंडके व्यवसायियोंने फिर भारतवर्षमें कपड़ा भेजना प्रारम्भ किया, किन्तु उन्हें ज्ञात हो गया कि भारतीय कारखानोंने मोटे कपड़ेका बाज़ार बिलकुल हथिया लिया है, और जापान बढ़िया कपड़ेमें प्रतिद्वन्द्विता करने लगा है। किन्तु महायुद्धके उपरान्त स्थिति कुछ बदल गई। भारतवर्षको सन् १९२१ में अधिक राजनैतिक अधिकार मिल गये थे, और भारतवर्षने संरक्षण-नीतिको स्वीकार लिया था, अस्तु भारतीय वस्त्र-व्यवसायको संरक्षण-नीतिका सहारा मिल गया, और वह उन्नति करने लगा। परन्तु १९२६ के करेंसी-कमीशनने रुपयेकी विनिमय-दर एक शिलिंग छै पेंस निश्चित कर दी। इसका फल यह हुआ कि मैंचेस्टरका कपड़ा तथा अन्य वस्तुएँ भारतवर्षमें आकर सस्ती पड़ने लगीं। विदेशी कपड़ा

देशी कपड़ेकी प्रतिद्वन्द्विता करने लगा, और भारतीय व्यवसाय मन्दा पड़ गया। यद्यपि इस मन्दीके और बहुतसे कारण हैं, परन्तु विनिमय-दर उसका एक मुख्य कारण है। यद्यपि इस समय भारतीय वस्त्र-व्यवसाय, मन्दी होनेके कारण, गिरी हुई दशामें है, फिर भी यह धन्धा नष्ट नहीं हो सकता, और भविष्यमें अवश्य उन्नति करेगा।

यह तो आरम्भमें ही कहा जा चुका है कि मेशीन-युगके पूर्व भारतवर्षका यह गृह-धंधा (Cottage industry) ईस्ट इंडिया कम्पनीकी घातक नीतिके कारण बिलकुल नष्ट हो चुका था। कातनेके धंधेका तो नाम भी शेष नहीं रह गया था, और बुनकर भी नष्टप्राय हो चुके थे। कहीं-कहीं जुलाहे तथा अन्य जातियोंके बुनकर मोटा रेज़ा तैयार करके गाँवोंमें बेंच देते थे। उसमें भी सूत मिलका ही होता था। इस गृह-धंधेकी ऐसी बुरी दशा हो गई थी कि बुनकरोंकी संख्या बहुत कम हो गई, और अधिकतर बुनकर अपने इस पुराने धंधेको भूल चुके थे।

ऐसे समयमें महात्मा गांधीका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। देशकी तीनचौथाई जनसंख्या खेती-बारीपर ही निर्भर है। किसानके पास भूमि इतनी कम है कि वह वर्षमें केवल सात या आठ महीने ही कार्य करता है, और जो कुछ उत्पत्ति होती है, वह उसकी उदर-पूर्तिके लिए भी यथेष्ट नहीं होती। उन्होंने विचारा कि यदि उसको कोई ऐसा धंधा सिखा दिया जाय, जिसके द्वारा वह अपने अवकाशके समयमें काम करके कुछ कमा ले, तो ग्रामीण जनताकी दशा अनायास ही सुधर सकती है। इसी उद्देश्यको सामने रखकर उन्होंने चरखेका आन्दोलन किया, और चरखा-संघ स्थापित करके इस धंधेको फिरसे देशमें प्रचलित करनेका प्रयत्न किया। पहले तो लोगोंने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, और अर्थशास्त्रके विद्वान तो इस योजनको असम्भव कहते रहे, किन्तु महात्माजी समझते थे कि भारतवर्षका यह गृह-धंधा बड़े-बड़े कारखानोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें खड़ा रह सकता है, आवश्यकता है केवल संगठनकी। हुआ भी वही। आज खद्दरका धंधा सफल होता दीख रहा है।

खद्दरके धंधेको स्थायी रूपसे खड़ा करनेके लिए अभी दो बातोंकी और आवश्यकता है। एक तो सूत कातनेका ऐसा यन्त्र बनाया जाय, जो हल्का हो और उससे कम समयमें अधिक सूत काता जा सके। साथ-ही-साथ एक अच्छे करघेका तैयार करना भी नितान्त आवश्यक है। दूसरी आवश्यक बात है सहकारी समितियाँ। सहकारी समितियाँ इस धंधेका संगठन करें, तो अनायास ही यह गृह-उद्योग धंधा सफल हो सकता है। आशा है, चरखा-संघ अवश्य ही इस कार्यमें सफल होगा।*

अन्तमें मैं केवल यही कहूँगा कि इस धंधेके प्रति हम लोगोंका कुछ कर्तव्य भी है। जो धंधा खेती-बारीके अतिरिक्त और सब धंधोंकी अपेक्षा अधिक मनुष्योंकी उदर-पूर्ति करता हो, उस धंधेको सफल बनानेमें यदि हमें प्रारम्भमें थोड़ी हानि भी उठानी पड़े, तो उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

---

* जो पाठक खद्दरके अर्थशास्त्रके विषयमें अधिक जानकारी करना चाहें, तो उन्हें श्री ग्रेग द्वारा लिखित 'खद्दरका अर्थशास्त्र' नामक पुस्तक देखनी चाहिए। —लेखक

डा० सुधीन्द्र बोस

श्री नीलकण्ठ ए० पेरूमल

तीस वर्ष पहलेकी बात है। अमेरिकाकी *स्टैंडर्ड आयल कम्पनीका एक माल ढोनेवाला जहाज़ कलकत्तेसे न्यूयार्क जा रहा था। कलकत्तेसे चलते समय एक दुबला-पतला खूबसूरत-सा बंगाली नवयुवक जहाज़के मल्लाहोंमें भर्ती हुआ। वह पढ़ा-लिखा था। उसने ढाकाके विक्टोरिया-कालेजसे अंग्रेज़ीमें विशेष योग्यताके साथ मैट्रिक पास किया था। एक पढ़े-लिखे हिन्दू नवयुवकका इस प्रकार मल्लाहोंमें भर्ती होना, एक अजीब-सी बात थी, क्योंकि साधारणत: जहाज़ी खलासियोंमें केवल बंगाली मुसलमान ही भर्ती हुआ करते हैं, सो वे भी अनपढ़। खैर, लोग इस बातको भूल गये, उस नवयुवकको भूल गये, वह कौन था, कहां है, इसकी किसीको खबर नहीं; मगर सन् १६१६ में एकाएक संसारने देखा कि वही नवयुवक यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिकाकी सेनेटकी कमेटीके सामने भारतीयोंको अमेरिकामें घुसनेसे रोकनेके लिए जो क़ानून बन रहा था, उसका प्रतिवाद करनेके लिए अमेरिका-प्रवासी भारतीयोंका प्रतिनिधि बनकर वकालत कर रहा है। उसके बादसे हम देखते हैं कि वह अमेरिकाकी एक प्रसिद्ध यूनिवर्सिटीमें अध्यापनका कार्य करता है, संसारके बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञों, सेनेटरों और प्रसिद्ध पुरुषोंसे भेंट करता है, वह अच्छीसे अच्छी स्पीचें देता है, बढ़िया-से-बढ़िया लेख लिखता है, सारी दुनियांका सफर करता है। यही नवयुवक डा० सुधीन्द्र बोस हैं, जो अमेरिकाके एक प्रसिद्ध राजनीतिवेत्ता डा० बेनजामिन एफ० शेम्बॉके कथनानुसार—"अमेरिकामें पूर्वीय राजनीतिके सबसे महान अध्यापक, वक्ता और लेखक" हैं।

सुधीन्द्र बोसका जन्म ढाकामें सन् १८८३ में हुआ था। उनके पिता किसी बड़े भारतीय राजाके यहाँ नौकर थे, और उनके बड़े भाई बहुत दिनों तक ढाकाके विक्टोरिया-कालेजके प्रिन्सिपल थे।

नवयुवक सुधीन्द्र बड़े तेज़ विद्यार्थियोंमें था, जिससे उसके शिक्षक बड़े प्रसन्न रहते थे। उसकी अंग्रेज़ी देखकर उसके साथियोंको ईर्ष्या होती थी। मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा पास करनेपर उसे अंग्रेज़ीमें विशेष निपुणता प्राप्त करनेके लिए पारितोषिक भी मिला था।

सुधीन्द्र बचपन ही से विदेश-यात्रा करने और संसार देखनेका स्वप्न देखा करता था। अन्तमें एक दिन वह स्टैंडर्ड आयल कम्पनीके एक माल ढोनेवाले जहाज़पर सहकारी भंडारी (Assistant Stewart) बनकर भारतसे रवाना हो गया। जहाज़ बंगालकी खाड़ी, अरब-समुद्र, स्वेज़की नहर, भूमध्य सागर और ऐटलांटिक महासागरसे होता हुआ कई महीनेमें न्यूयार्क पहुँचा। इस बीचमें सुधीन्द्र पक्के मल्लाह बन गये, लेकिन वे मल्लाह बननेके लिए तो वहां गये नहीं थे। मल्लाही तो केवल अमेरिका पहुँचनेका एक साधनमात्र थी।

बोस जाकर न्यूयार्कमें उतरे। वहाँ सब चीज़ें निराली और विचित्र थीं। न्यूयार्कको देखते हुए कलकत्ता एक छोटा देहात-सा मालूम होता था। गगनचुम्बी इमारतें, पुरुष-स्त्रियोंकी भीड़-भाड़, फैशनेबिल गाड़ियाँ आदि देखकर वे आश्चर्यमें पड़ गये। अब वे एक स्वतन्त्र देशमें थे, जहाँ वे अपने इच्छानुसार जो चाहें, कर सकते थे; मगर अमेरिकाकी धन-लिप्सापूर्ण बातोंसे बोसका भारतीय मस्तिष्क शीघ्र ही ऊब उठा। वे शीघ्र ही न्यूयार्कसे फिलडेलफिया चले गये, और वहाँके एक बड़े 'स्टोर' में सात डालर प्रतिसप्ताहपर नौकर हो गये, मगर वे वहाँ भी अधिक दिनों तक न टिक सके। वे किसी कालेजमें भर्ती होनेके दिन गिना करते थे। अन्तमें चालीस डालर जेबमें रखकर वे इलिनासकी

यूनिवर्सिटीमें जाकर भर्ती हो गये। अपना खर्च चलानेके लिए उन्होंने सब प्रकारके काम किये। वे लाइब्रेरीमें सहकारी रहे, ट्रैवलिंग एजेन्ट रहे, अखबारोंमें रिपोर्टरका काम किया, होटलोंमें तश्तरियाँ धोईं तथा और भी अनेकों काम किये। अन्तमें उन्होंने बी० ए० पास किया, और एक वर्ष बाद वे एम० ए० हो गये।

सन् १६१० में उन्हें आयोवाकी सरकारी यूनिवर्सिटीमें एक फेलोशिप मिला, और सन् १६१३ में उन्हें राजनीतिशास्त्रमें पी-एच० डी० की डिग्री मिली। पी-एच० डी० की उपाधिके लिए उन्होंने जो निबन्ध लिखा था, उसका विषय था 'भारतमें ब्रिटिश राजके कुछ पहलू'। पी-एच० डी० की उपाधिके साथ-साथ सुधीन्द्रका विद्यार्थी-जीवन समाप्त हो गया। उन्होंने अपनी योग्यतासे यूनिवर्सिटीकी सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की थी, और वे फिर उसी यूनिवर्सिटीमें अध्यापक हो गये। आज भी वहीं अध्यापन करते हैं।

डाक्टर बोसकी उम्र अब उनचास वर्ष है। उनका क़द मझोला, चेहरा अंडाकार, माथा चौड़ा और होंठ पतले हैं। वे किसी क़दर संकोचशील व्यक्ति हैं। उनके फ़ुरसतका अधिकांश समय घरपर या यूनिवर्सिटीकी लाइब्रेरीमें अध्ययन करते बीतता है। मेरे अन्दाज़से वे लगभग आठ घंटे रोज़ पढ़ने-लिखनेमें बिताते हैं। वे हिन्दू ढंगपर प्रतिदिन बड़े सवेरे उठते हैं। जाड़ा हो, या गरमी, आप उन्हें छै बजे सवेरे अपने सुन्दर बँगलेमें किताबों और काग़ज़ोंके ढेरके बीच बैठे अध्ययन करते पायेंगे। वे सात बजे नाश्ता करते हैं, और आठ बजे कालेज पहुँच जाते हैं। अमेरिकनोंकी भाँति वे बारह बजे भोजन करते हैं, और सन्ध्याका भोजन साढ़े पाँच बजे खाते हैं। उसके बाद वे फिर अपने घरके पुस्तकालयमें चले जाते हैं, और सोनेके समय तक पढ़ा करते हैं।

जब मैं पहले-पहल डाक्टर बोससे मिला, तो मैं आश्चर्यसे हक्का-बक्का रह गया, क्योंकि अपनी विस्तृत विदेश-यात्रामें मैं अभी तक किसी ऐसे भारतीयसे नहीं मिला था, जिसने ठेठ हिन्दू-ढंगसे दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया हो। वे ही नहीं, बल्कि उनकी धर्मपत्नीने भी—जो एक भद्र अमेरिकन महिला हैं—मुझे ठीक उसी भारतीय ढंगसे नमस्कार किया। उन्होंने मुझसे मुसकराते हुए कहा—"श्रीमती बोसको और मुझे इस बातकी प्रसन्नता है कि हमीं लोगोंने आयोवा नगरमें पहला भारतीय उपनिवेश स्थापित किया था।"

यह कहते-कहते उनके चेहरेका रंग बदल गया, और यह प्रत्यक्ष झलकने लगा कि उन्हें अपने हिन्दू होनेका कितना अभिमान है। 'ईसाई अमेरिका'में वर्षोंसे डाक्टर बोस हिन्दू-धर्मका झंडा ऊँचा किये हुए हैं। वे हिन्दू-धर्मपर होनेवाले आक्रमणोंका ऐसे उत्साह और दृढ़तासे सामना करते हैं, जिसे देखकर आश्चर्य होता है। अनेकों बार उन्होंने भारतीय धर्मोंका महत्त्व अमेरिकनोंको समझाया है।

"मैंने अमेरिकन जीवन अख़्तियार कर लिया है, क्या इससे मेरे मनमें हिन्दू होनेका जो अभिमान है, उसमें कुछ फ़र्क़ पड़ सकता है?" उन्होंने मुझसे पूछा था।

"एक बार एक अमेरिकनने मुझसे कहा कि चूँकि मैं अमेरिकन हो गया हूँ, इससे मुझे ईसाई हो जाना चाहिए।

"मैंने कहा, क्या यह ज़रूरी है कि सभी अमेरिकन ईसाई ही हों? यह तो सरासर बेवक़ूफ़ी है!"

बहुतसे भारतीयोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि डाक्टर बोस अमेरिकामें भी कैसा ठेठ हिन्दू-जीवन व्यतीत करते हैं। उनका ख़ूबसूरत बंगला आयोवा नगरके शान्त भागमें है। सरस्वती, रामकृष्ण, विवेकानन्द, श्रीकृष्ण, ताजमहल आदिके चित्र उनके कमरोंकी शोभा बढ़ाते हैं। बैठकके क़ालीन ईरानी हैं, और मेज़पर रखे हुए पीतलके गुलदान बनारस और दिल्लीके कारीगरोंकी करामात हैं। इतना ही नहीं, धूम्रपानका भारतीय हुक्का भी एक ओर रखा दिखाई देता है। इस अमेरिकन घरमें पहुँचकर एक बार ऐसा जान पड़ता है, मानो हम हिन्दोस्तानमें पहुँच गये हैं। गत पन्द्रह

वर्षसे 'माडर्न-रिव्यू'का नियमित पाठक होनेके कारण मैं डाक्टर बोसके लेखोंको बड़े चावसे पढ़ा करता था। सन् १९०९ में— जब वे विद्यार्थी ही थे—उन्होंने पहले-पहल इलिनासके विश्वविद्यालयपर लेख लिखाथा। तबसे वे इस सुन्दर मासिक पत्रके नियमित लेखक हैं। वे ऐसी स्पष्ट और स्वच्छ शैलीमें लिखते हैं, जिससे पाठकके मनमें उनकी प्रत्येक बात प्रवेश कर जाती है, इसलिए उनके लेखोंसे मुझे बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ है।

"अच्छा यह बताइये कि आपके लेखोंको पाठक इतने चावसे क्यों पढ़ते हैं, क्या आप औरोंसे भिन्न ढंगसे लिखते हैं ?" मैंने पूछा।

"हाँ, मैं प्रत्येक बातको संक्षेपमें स्पष्टरूपसे और निडरतापूर्वक लिखता हूँ। इस प्रकारके लेख अन्य लेखोंकी अपेक्षा लोगोंके मनको अधिक भाते हैं। लिखनेका तरीक़ा ही यही है।" उन्होंने उत्तर दिया।

डाक्टर बोस बर्नर्ड शा, मेनकेन और फ्रैंक हैरिसके समान निडर और खरी बात कहनेवाले लेखकोंके बहुत क़ायल हैं। इन लोगोंकी सफलताका रहस्य उनकी स्पष्टवादिता और ज़ोरदार शैलीमें ही है। बोस भी हमेशा ऐसे ही ढंगसे लिखते हैं, इसीलिए उनके लेख पाठकोंको बहुत रुचते हैं। यही कारण है अनेकों अमेरिकन और भारतीय सम्पादकोंके यहांसे लेख भेजनेकी प्रार्थनाका ताँता लगा रहता है। एक दिन रविवारको मैं उनके पास बैठा था, उस समय उन्होंने मुझे ढेर-के-ढेर पत्र दिखाये, जिनमें अमेरिकन प्रकाशकोंने उनसे भारतके सम्बन्धमें कुछ लिखनेकी प्रार्थना की थी।

"मुझे लिखनेके लिए बहुत थोड़ा समय मिलता है"— उन्होंने कहा—"लेकिन इन लोगोंके लिए लेख लिखनेमें मेरा मुख्य उद्देश देशकी सेवा करना है, क्योंकि भारतीय द्वारा लिखित लेखोंको पढ़कर अनेकों अमेरिकन भारतको अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। साथ ही मैं इस बातकी कोशिश किया करता हूँ कि भारत और पूर्वीय देशोंके लोग भी अमेरिकाकी अच्छीसे-अच्छी बातें समझ सकें।"

भारतीय अखबारोंमें लेख लिख-लिखकर उन्होंने पाश्चात्य सभ्यताकी अच्छी-से-अच्छी बातें बताई हैं। उनके लेखोंको पढ़कर बहुतसे लोगोंका ज्ञानवर्द्धन हुआ है। उनके लेखोंकी प्रशंसामें संसारके कोने-कोनेसे इतने पत्र आते हैं, जिन्हें देखकर मैं हैरान रह गया। वास्तवमें उन्होंने अपनी लेखनीसे भारतकी यथार्थ सेवा की है।

अमेरिकामें रहनेवाले पूर्वीय व्यक्तियोंमें डाक्टर बोसके समान वक्ता शायद ही कोई होगा। मैंने कई अवसरोंपर उन्हें बोलते हुए सुना है। क्लास-रूममें विद्यार्थियोंको व्याख्यान देते समय उनकी शैली और होती है, और गिरजेके धार्मिक श्रोताओंको वक्तृता देते समय उनकी शैली और होती है। उनकी वक्तृतामें ओज, स्पष्टता और परिहास रहता है। उनमें हाथ-पैरका नाटकीय परिचालन नहीं होता, मगर स्वाभाविक हिलना-डुलना भी बन्द नहीं होता। वे अपने श्रोताओंको घंटों तक मन्त्रमुग्ध रख सकते हैं। वक्तृता समाप्त हो जानेपर भी श्रोताओंकी तबियत हॉलसे बाहर जानेको नहीं चाहती।

एक अमेरिकन शहरमें उनके व्याख्यानकी समाप्तिपर एक महिलाने कहा—"मैं सोचती थी कि आप और एक घंटे तक व्याख्यान देंगे।"

"नहीं श्रीमतीजी, मैं इतने ही समयमें खतम किया करता हूँ।" बोसने उत्तर दिया।

शिक्षकके रूपमें भी डाक्टर बोसका रिकार्ड भी ईर्ष्याके योग्य है। वे आयोवा यूनिवर्सिटीके फेकल्टीके एक प्रभावशाली सदस्य हैं। अमेरिकाके कोने-कोनेसे सैकड़ों विद्यार्थी आयोवामें एकत्रित होते हैं, क्योंकि वे "पूर्वीय राजनीति एक पूर्वीय शिक्षकसे पढ़ सकेंगे।"

जब मैं आयोवा-कालेजमें पढ़ता था, तब मेरे सहपाठी मुझसे बहुधा पूछा करते थे—"क्या तुम बोसको जानते हो ?" जब मैं "हाँ" कहता, तो वे कहते कि उनके क्लासमें हमें सबसे अधिक आनन्द आता है।

वे कहते—"बोस पूर्वकी सबसे जाज्वल्यमान उपज हैं।"

डाक्टर बोस तीन पुस्तकोंके रचयिता हैं। एक तो "भारतमें ब्रिटिश राजके कुछ पहलू" जो उन्होंने

डा० सुधीन्द्र बोस

पी-एच० डी० की परीक्षाके लिए लिखी थी। इसमें आदिकालसे भारतका महत्त्व दिखाया गया है, और यह बताया गया है कि उसने संसारकी संस्कृति बढ़ानेमें कितना भाग लिया था और फिर ब्रिटिश राजका गुलाम होकर उसका कैसा पतन हुआ।

उनकी दूसरी पुस्तक 'अमेरिकामें पन्द्रह वर्ष' में एक निष्पक्षपात लेखक अमेरिकन जीवनका सच्चा चित्र अंकित करता है। जापानपर चेम्बरलेनकी प्रामाणिक पुस्तककी भाँति अमेरिकाके विषयमें डाक्टर बोसकी किताब भी प्रामाणिक कही जा सकती है, और जिन लोगोंने नई दुनिया नहीं देखी, वे इस पुस्तकके द्वारा अमेरिकाकी वास्तविक बातें जान सकते हैं।

'अमेरिकाकी झलक' (Glimpses of America) उनकी तीसरी पुस्तक है। यह 'अमेरिकामें पन्द्रह वर्ष' की पूरक पुस्तक है।

एक दिन हम लोग पत्रकार-कलापर बात कर रहे थे। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यूनिवर्सिटीकी लाइब्रेरीमें इस विषयकी जितनी पुस्तकें हैं, उन्होंने उन सबको पढ़ा है। वास्तवमें बहुत कम भारतीय ऐसे ज्ञान-पिपासु होंगे, जैसे डाक्टर बोस।

"भारतवर्षमें समाचारपत्रोंको अभी बहुत उन्नति करनी है। हम लोग अमेरिकन पत्रोंका अनुकरण करके बहुत-कुछ लाभ उठा सकते हैं। भला, वर्तमान भारतीय प्रेससे हमें कब तक सन्तोष होगा? अब हमें इस ओर अधिक उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।" डाक्टरने कहा था। उनका यह भी विश्वास है कि पत्रकार-कलाका स्कूल खोलनेसे भारतीय नवयुवकोंको लाभ पहुँचेगा, अखबारोंमें काम करनेके पहले उन्हें पत्रकार-कलाका ज्ञान होगा।

डाक्टर बोसकी बातचीत बड़ी दिलचस्प होती है, विशेषकर भोजन करते समय। जब कभी मैं उनके यहाँ भोजन करनेको निमंत्रित हुआ हूँ, मुझे उनके वार्तालापसे बड़ा आनन्द मिला है। इस विषयमें श्रीमती बोस भी कम नहीं हैं। यह आनन्ददायक वार्तालाप केवल मेरे हिस्सेमें ही नहीं था, अमेरिका आनेवाला जो कोई भी भारतीय उनसे मिला है, उसने उनके वार्तालापका आनन्द उठाया है। भारतीय उनके यहाँ ठेठ भारतीय अथिति-सत्कार पाते हैं। भोजनमें भी दाल-भात और भारतीय मिठाइयोंसे उनका सत्कार किया जाता है।

एक दिन मैंने आयोवा नगरमें यहूदी-समाजके सामने भारतपर व्याख्यान दिया था। मेरे व्याख्यानकी समाप्तिपर एक नवयुवक मेरे पास आया, और कहने लगा—"कुछ भी हो, भारतवर्षने कुछ महान मस्तिष्कवाले पुरुष जरूर उत्पन्न

किये हैं। दूर क्यों जाइये, यहींपर डाक्टर बोसका उदाहरण ले लीजिए। वे दलित व्यक्तियोंके सदा सहायक रहे हैं; वास्तवमें पिछले अनेक वर्षोंसे वे असहाय और पददलितोंकी रक्षामें ही दत्तचित्त हैं। बहुत कम अमेरिकन ऐसे मिलेंगे, जो छातीपर हाथ रखकर सचाईके साथ कह सकेंगे कि उन्होंने भी दलितोंकी इस प्रकार रक्षा की है।"

मैं सुनकर चुप हो गया। अचानक मेरे मनमें एक अप्रत्याशित गौरव जाग्रत हो उठा, क्योंकि मैं एक ऐसे व्यक्तिकी प्रशंसा सुन रहा था, जिसे भारत माताने उत्पन्न किया है। यद्यपि वे भारतके पददलितोंकी रक्षाके लिए भारतमें उपस्थित नहीं हैं, मगर उनके चले आनेसे भारतको जितनी हानि हुई है, अमेरिकाको—नहीं, सारे संसारको—उतना ही लाभ पहुँचा है।

डाक्टर बोसमें पूर्वकी समस्त उत्तमोत्तम विशेषताएँ और पाश्चात्यकी सर्वोत्तम संस्कृति है। यद्यपि वे अमेरिकाके नागरिक हैं, मगर उन्हें ठेठ भारतीय कहनेमें कोई भूल न होगी। वे गत तीस वर्षोंसे अमेरिकामें पूर्वीय देशोंपर लेक्चर देते हैं, और पूर्वीय देशोंके सामयिक पत्रोंमें अमेरिकाके सम्बन्धमें लिखते हैं। पूर्व और पश्चिममें एक दूसरेको ठीक-ठीक समझानेके लिए बोसने जितना प्रयत्न किया है, उतना शायद ही और किसी व्यक्तिने किया होगा। वे दोनोंको अच्छी तरह जानते हैं, और उन्हें एक दूसरेको सच्चे रूपमें समझाते हैं। वे पूर्व और पश्चिमकी सांस्कृतिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक एकताके लिए प्रयत्नशील हैं। उनके जीवनका उद्देश है पूर्व-पश्चिममें भ्रातृ-भाव स्थापित करना, और इसके लिए वे अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। बाक़ी रही उनके व्यक्तित्वकी बात, सो मैंने जो अपनी आँखों देखा, वह ऊपर लिखा जा चुका है।

मिलन

श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती

एक दिन ऐसा था, जब मनुष्य बहुत बेवकूफ़ था, इसलिए उसने अपने निकटकी संगिनीको क्रीतदासी बना रखा था। उसने उसके पैरोंमें लोहेकी ज़ंजीर बाँध रखी थी—इतनी लम्बी कि घरके काम-धंधेमें वह इधर-उधर जा सके, किन्तु बाहर दौड़कर भाग न सके।

संगिनी भी रहती थी—ठीक ख़रीदी—लौंड़ीकी तरह।

उसके हृदयकी बातको कौन समझ सकता है? वह मनुष्यकी कोठरीको धो-पोंछकर चमाचम बनाये रखती। आँगनमें के तुलसीकी जड़में प्रतिसंध्याको घीका दीपक जलाकर सब अमंगलोंको दूर रखनेकी प्रार्थना करती। मनुष्यकी क्षुधा-शान्तिके लिए भोजन तैयार करती, प्यास मिटानेके लिए जल लाती, और पूजाके लिए पुष्पोंको सजाती। मनुष्य मन ही-मन सोचा करता कि यह जो मेरे लिए इतना करती है, इसका कारण यही है कि मेरे बिना इसका काम चल ही नहीं सकता।

मनुष्यके हृदयकी बात जानकर विधाता मन-ही-मन हँसे। उन्होंने खिलवाड़ करनेकी इच्छासे एक दिन संगिनीको मनुष्यके निकटसे हटा लिया। मनुष्य उस दिन जब घूम घामकर कोठरीमें आया, तो देखा कि खानेके लिए भोजन नहीं है, पीनेके लिए जल नहीं है, पूजाके लिए फूल नहीं हैं।

यह देखकर मनुष्य एकदमसे अग्नि-मूर्ति बन गया—

शोर-गुल मचाकर उसने घरको सिरपर उठा लिया, और यह ढूँढ़ने लगा कि किसके साथ कुरु-क्षेत्र मचावे? इसी समय विधाता आकर उपस्थित हुए। बिलकुल अनाजनकी तरह उन्होंने पूछा—"मामला क्या है?"

"मामला क्या है?" मनुष्यने क्रोधसे कहा—"मामला क्या है? कहाँ गई हमारी वह? खानेके लिए भोजन नहीं, पीनेके लिए जल नहीं, पूजाके लिए फूल नहीं—वही तो यह सब करती थी।"

विधाताने कहा—"बस, यही तो?"

मनुष्यने कहा—"यह नहीं तो और क्या?"

विधाताने कहा—"ख़ैर, तुम सब चीज़ें ठीक-ठीक पाओगे। तुम्हारे खानेके लिए आहार, पीनेके लिए पानी, पूजाके लिए फूल—सब कुछ, किसीमें भी त्रुटि नहीं होगी।"

विधाताके मंत्रगुणसे मनुष्य सब चीज़ ठीक-ठीक पाने लगा। खानेके लिए भोजन, पीनेके लिए जल, पूजाके लिए पुष्प—सब ठीक-ठीक, पहले ही की तरह। किन्तु संगिनी नहीं लौटी।

सब चीज़ें ठीक-ठीक वैसी ही रहीं—खानेके लिए भोजन, पीनेके लिए पानी, पूजाके लिए पुष्प, किन्तु वह सुर तो पहलेकी तरह नहीं बजता था। वही सुर—जो सुर भोजन और जलपानके बीचके विच्छेदको पूरा करता था, जो जलपान और पूजाके बीचके अवसरको सन्तोष और तृप्तिसे भर देता था। आज इस आहारके पीछे केवल आहार ही है, जलके पीछे केवल जल है, फूलके पीछे केवल फूल—मूर्त्तिमती निष्ठुरताकी तरह, घड़ीके प्रत्येक काँटेके समान, हृदयहीन यंत्रकी तरह अपना-अपना कर्त्तव्य करते जाते हैं।

बाहरका काम समाप्त करके उस दिन मनुष्य थका-माँदा अपनी कोठरीमें लौटा, तो उसने देखा कि सब चीज़ें ठीक-ठीक सजी-सजाई रखी हुई हैं—उसके खानेके लिए आहार, पीनेके लिए जल, पूजाके लिए फूल।

मनुष्यके सारे अंगमें आग सी लग गई। कौन चाहता है तुम्हारी इन चीज़ोंको? कौन चाहता है तुम्हारी इस हृदयहीन दिल्लगीको? कौन चाहता है, कौन, कौन चाहता है तुम्हारी इस यंत्र-चालित निर्दयताको?

लात मारकर उसने सारे भोजनको बिखेर दिया, जलके बर्तनको उलट दिया, फूलके ढेरको तीन-तेरह कर दिया।

विधाता आकर उपस्थित हुए, उन्होंने कहा—"अब क्या मामला है?"

"मामला क्या है"—मनुष्यने क्रुद्धस्वरमें कहा—"मामला क्या है? कौन चाहता है तुम्हारी इन चीज़ोंको? ले जाओ, ले जाओ अपनी इस हृदयहीन भोग-सामग्रीको। मेरी उसको लौटा दो।"

विधाता हँसे। उन्होंने उसकी संगिनीको लौटा दिया।

मनुष्यने उस दिन अपनी संगिनीके पैरसे लोहेकी जंज़ीर खोलकर उसके दोनों हाथोंमें सोनेका कंगन पहना दिया, उसके गलेमें मोतीका हार डाल दिया, और उसको छातीसे लगाकर चुम्बन करके कहा—"तुम क्रीतदासी नहीं हो, तुम तो पूर्ण हो, तुम तो असम्पूर्णको पूर्ण करती हो, तुम शून्यको सम्पदशाली करती हो, तुम रिक्तको सुरसे भर देती हो—तुम क्रीतदासी नहीं हो।"

उस दिन मनुष्य जिस फूलको लेकर पूजा करने बैठा—उस फूलकी गन्धसे देवता जाग्रत हो उठे।

अनुवादक—कृष्णशम्भु प्रसाद

हिन्दीकी सौ श्रेष्ठ पुस्तकें*

श्री सूर्यनाथ तकरू, एम०ए०

विषय-प्रवेश करनेके पहले दो-एक बातकी सफ़ाई दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। मैंने इस लेखमें केवल मौलिक पुस्तकोंकी ही गणना की है। मेरी यह स्पष्ट सम्मति है कि किसी भी भाषाकी गौरव-वृद्धि उसके शृंगार और श्रीकी उन्नति माँगे हुए साहित्यसे नहीं हो सकती। उस अनुवादित साहित्यकी आत्मा ही अपरिचित-सी होती है। मेरा यह अर्थ नहीं है कि अनुवाद होने ही न चाहिए। नहीं, हों, और ख़ूब हों। मेरा यह भी तात्पर्य नहीं कि विदेशी उपन्यासोंके पात्रोंके नाम भारतीय कर दिये जायँ। इससे अधिक उपहासास्पद कोई दूसरी चेष्टा नहीं। मेरा मतलब केवल इतना ही है कि अनुवादकी मृग-मरीचिकामें हम भूल न जायँ। हम यदि लेते हैं, तो दान करने योग्य भी बनें, तब तो मैत्री निभ सकती है, वरना हम एक ही विशेषणके अधिकारी हैं—वह विशेषण कटु हो सकता है, पर है उपयुक्त—भिखारी!

दूसरी बात यह कि इस सूचीमें वे ही पुस्तकें रखी हैं, जिनको मैं पढ़ चुका हूँ। बहुत सम्भव है, और भी योग्य पुस्तकें हों, और मेरे देखनेमें न आई हों। पर यदि इस विषयकी चर्चा होगी, तो वे भी प्रकाशमें आ जायँगी। फिर अपनी-अपनी रुचिका भी तो सवाल है। उदाहरणार्थ, श्री जयशंकर प्रसादका 'अजातशत्रु' मेरी रायमें उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है, पर मेरे अनेक सुधी मित्रोंका इस विषयपर मुझसे मतैक्य नहीं। हाँ, 'वादे वादे जायते तत्वबोधः' लोकोक्तिके अनुसार यदि इस विषयकी और भी चर्चा की जायगी, तो लोकरुचिके अनुसार सौ श्रेष्ठ पुस्तकोंकी तालिका बन जायगी। संसारकी अन्य सभी उत्कृष्ट भाषाओंमें सर्वश्रेष्ठ पुस्तकोंकी अनेक तालिकाएँ हैं, फिर क्या कारण है कि हिन्दीमें ही न हों?

तालिका बनानेका कार्य सरल नहीं है। सौकी परिमित संख्यामें सभी विषयोंकी श्रेष्ठ पुस्तकोंका समावेश करना बहुत कठिन है, और मैं सर्वविषयवेत्ता भी नहीं। हिन्दीकी दरिद्रताके कारण यह कार्य बहुत सरल हो गया है, पर इस सरलतापर मुझे हर्ष नहीं। मेरी तो यह शिकायत है कि इतनी छोटीसी संख्या पूरी करनेके लिए मुझे बहुत हाथ-पाँव मारने पड़े। ऐसे बीसियों ही विषय निकले, जिनपर हिन्दीमें एक भी पुस्तक नहीं है—उदाहरणार्थ, इंजीनियरिंग, पशु-जगत, पक्षी-जगत, वृक्ष-जगत, मनुष्य-देहका इतिहास, मानव-जातियोंकी कहानी, भूमि-विज्ञान, खनिज-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान, जल-चर्चा, कला-कौशलके सैकड़ों भेद-उपभेद, नक्षत्र-विज्ञान, आदि-आदि। शिक्षा-विज्ञान, गणित आदिपर दो-एक पुस्तकें जो हैं, वे आँसू पोंछने तकको पर्याप्त नहीं हैं। तर्कशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, इत्यादिपर वैज्ञानिक पुस्तक एक भी नहीं। कृषि-प्रधान देशको राष्ट्र-भाषा बननेका दावा करनेवाली इस भाषामें कृषिपर अच्छी पुस्तकें हैं ही नहीं, इससे अधिक कलंककी बात और क्या हो सकती है? विज्ञान, पुरातत्त्व, शरीर-विज्ञान, वैद्यकशास्त्र और भूगोलकी पुस्तकें भी नहींके बराबर ही हैं। राम, कृष्ण और अर्जुनके देशमें धनुर्विद्या इत्यादि सामारिक

---

* इधर दो-तीन वर्षोंसे इस विषयपर एक लेख लिखनेका विचार कर रहा था। यहाँ तक कि लगभग एक वर्ष हुआ, इस विषयपर एक लेख लिख भी डाला था, पर यह सोचकर कि मेरे लिए यह अनधिकार चेष्टा है, और छोटे मुँह बड़ी बात होगी, सदा चुप हो रहता था। सदा यह आशा करता कि कोई और अधिकारी विद्वान इस विषयपर लिखते, तो अच्छा था; पर बहुत दिन बीत गये, और अभी तक किसी भी सरस्वती-सेवकने इस विषयपर क़लम नहीं उठाई, तब मेरे मनमें यह विचार आया कि शायद श्रीगणेश करना कोई नहीं चाहता। फल-स्वरूप मैंने ही प्रारम्भ करनेका निश्चय कर लिया। —लेखक

पुस्तकोंकी कमी लज्जास्पद है। नटराजके प्रांगणकी राष्ट्र-भाषामें, जहाँकी सृष्टि एक नाशक नृत्यमें विलीन होती है, ललित-कलाओंके सम्बन्धमें एक भी पुस्तकका न होना, क्या आनन्ददायक है? अपनी भाषाकी निर्धनताको देखकर लज्जासे सिर झुकाना ही पड़ता है। और तो और, अपने इस गौरवमय स्वदेशका एक सर्वांगसम्पन्न इतिहास तक तो इस राष्ट्र-भाषामें है नहीं! जिस भाषामें श्री ओझाजी, श्री जायसवालजी, श्री रेऊजी, डा० वेणीप्रसाद, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रामप्रसाद, श्री सत्यकेतुजी, श्री नरेन्द्रदेवजी सरीखे इतिहासके प्रतिष्ठित विद्वान मौजूद हों, फिर भी वह स्वदेश-इतिहासविहीन रहे! जिस भाषाकी प्रधान साहित्यिक संस्था इस विषयपर दो-एक प्रस्ताव भी पास कर चुकी हो, और उसपर यह उदासीनता!

यह मैं मानता हूँ कि परपददलित परतन्त्र देशमें जीवन-युद्ध ही इतना भयंकर होता है कि अन्य विषयोंपर ध्यान देनेका पर्याप्त अवसर ही नहीं मिलता। भूखा देश वायुयानपर उड़नेकी कल्पना नहीं कर सकता। नंगी जनता ललित-कलाकी सुकुमार सुन्दरताका अनुभव नहीं कर सकती। पराधीनता मनुष्यकी सुदरताकी हत्या कर देती है। पर परतन्त्र तो सारा देश है। अपमानित तो सारा भारत है। भूखा और नंगा रहना तो भारतीयोंका जीवनतत्त्व-सा हो रहा है। फिर क्या कारण है कि बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरातमें इन वस्तुओंकी उतनी उपेक्षा नहीं है, जितनी हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें। उत्तर स्पष्ट है। हम कोरी बकवाद करनेमें अद्वितीय हैं। हम तो दास मलूकाके अजगर हैं। क्रियाशीलता, उद्योग, नवचेतनासे हमारा परिचय नहीं। हम हैं गद्दी स्थापित करनेके शौक़ीन, नेता बननेके मरीज़, बड़े बातें करनेवाले श्रीयुत 'न कुछ कर'। फिर भला, हमारी उन्नति कैसे हो? अन्य प्रान्तीय भाषाओंपर हिन्दीकी विजय-वैजयंती फहरानेके लिए आवश्यक है कि हिन्दीकी सर्वाङ्ग उन्नति की जाय। अच्छा होता कि हिन्दीके प्रकाशक अपना-अपना विषय बाँट लेते, और उस विषयकी ऊँचे दर्जेकी पुस्तकें प्रकाशित करते। पर क्या वे पैसेका मोह छोड़ेंगे? आशा तो नहीं है।

एक बात और। ये सौ पुस्तकें केवल श्रेष्ठत्वकी दृष्टिसे ही नहीं रखी गई हैं। इनमें से कई ऐसी भी हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्व भी है। मेरी इच्छा थी कि श्रेष्ठताके क्रमसे पुस्तकें सजाऊँ, पर यह कार्य असंभव और अनुचित-सा जँचा, इसलिए तालिकाको मैंने कई खंडोंमें विभक्त कर दिया—उपन्यास और कहानियाँ, नाटक, काव्य, गद्यकाव्य, हास्य, लेख-संग्रह, शुद्ध साहित्य, जीवन-चरित, भ्रमण-वृतांत, राजनैतिक, ऐतिहासिक और स्फुट। मेरी बड़ी इच्छा थी कि आयुर्वेदकी पुस्तकोंको भी शामिल कर लूँ, और विज्ञानपर जो दो-एक पुस्तकें हैं, उनका भी उल्लेख कर दूँ, पर इन विषयोंमें सर्वथा अनभिज्ञ होनेसे ऐसा न कर सका। धार्मिक, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी पुस्तकोंको तो मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया है। धर्म तो मनुष्यकी अपनी चीज़ है, और मेरा विश्वास है—और यह विश्वास आनन्ददायक नहीं है—कि अभी हिन्दी-भाषी स्त्रियोंकी कोई वास्तविक रुचि बढ़ नहीं पाई है। इतने प्राक्कथनके बादमें अब तालिकाकी ओर अग्रसर होता हूँ।

उपन्यास और कहानियाँ—१८

मनोरंजनके लिए प्रायः लोग पुस्तकें पढ़ते हैं। क्यों और कैसेका विवाद नहीं, प्रायः लोगोंका पुस्तक-पाठका मुख्य उद्देश्य यही होता है, इसीलिए मैंने सबसे अधिक संख्या इन्हींकी रखी है।

हिन्दीमें अभी तक मौलिक उपन्यासोंकी संख्या अधिक नहीं है। जो हैं भी, वे भी प्रायः तीसरी श्रेणीके। वही नदीमें डूबना, वही संन्यासी द्वारा रक्षा, वही भाग जाना, वही अंतमें संन्यास! कितना बँधा हुआ, रटा हुआ, ठाट होता है। जी ऊब उठता है। फिर भी दो-चार उपन्यास वास्तवमें किसी भी भाषा-सदनको सुसज्जित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, श्री प्रेमचंदजीकी 'रंगभूमि' और श्री प्रसादजीका

'कंकाल'। श्री चतुरसेनजीकी 'हृदयकी प्यास' भी बहुत सुन्दर पुस्तक है। श्री वृन्दावनलाल वर्माका 'गढ़कुंडार' हिन्दीमें अपने ढंगकी अकेली ही पुस्तक है। 'रोमांस' लिखनेमें श्रीयुत वर्माको बहुत सफलता मिली है, और यदि वे उपन्यासके इस अंगको अधिक पुष्ट करते रहेंगे, तो वे हिन्दी-जगतमें अति आदरणीय स्थान पा सकेंगे। उनके उपन्यास अपनी मनोरमताके लिए अद्वितीय होते हैं। श्री जैनेन्द्रकुमारजीकी 'परख', श्री उग्रजीके 'खुतूत' और निर्वासित ग्रेजुएटका 'स्मृतिकुंज' भी अपने-अपने ढंगपर उत्कृष्ट एवं रोचक उपन्यास हैं। श्री उग्रजीने उपन्यास तो कई लिखे, पर 'खुतूत' की टक्करका उपन्यास वे न लिख सके, और शायद लिख भी न सकें। उक्त श्रेष्ठ लेखकोंकी कहानियोंके संकलन भी रखे गये हैं। श्री विनोदशंकर व्यास-संकलित 'मधुकरी' और श्री वाजपेयी द्वारा सम्पादित 'श्रेष्ठ कहानियाँ' उत्तम संग्रह हैं, और हरएक पुस्तक-प्रेमीको रखनी चाहिए। श्री सुदर्शनजी और ज्वालादत्त शर्मा बड़े उत्कृष्ट कहानी-लेखक हैं। यदि ये दोनों महारथी भी उपन्यास लिखने लगें, तो हिन्दीकी श्रीवृद्धि हो। श्री शर्माका तो कोई कहानी-संग्रह भी देखनेमें नहीं आया। अस्तु, मेरी सूची यह है :—

लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
१. प्रेमचन्द	सेवासदन	(हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी)
२. प्रेमचन्द	रंगभूमि	(गंगा-पुस्तकमाला)
३. प्रेमचन्द	कायाकल्प	(सरस्वती प्रेस)
४. उग्र	चन्द हसीनोंके खुतूत	(बीसवीं सदी)
५. प्रसाद	कंकाल	(भारती भंडार)
६. जैनेन्द्रकुमार	परख	(हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर)
७. वृन्दावनलाल	गढ़कुंडार	(गंगा)
८. चतुरसेन	हृदयकी प्यास	(गंगा)
९. निर्वासित	स्मृतिकुंज	(चाँद)
१०. चण्डीप्रसाद	मनोरमा	(चाँद)
११. देवकीनन्दन	चन्द्रकान्ता-सन्तति	(लहरी प्रेस)
१२. प्रेमचन्द	प्रेमद्वादशी	(गंगा)
१३. प्रसाद	आकाशदीप	(भारती भंडार)
१४. जैनेन्द्रकुमार	फाँसी	(इन्द्रप्रस्थ-पुस्तक-भंडार)
१५. कौशिक	चित्रशाला	(गंगा)
१६. सुदर्शन	सुदर्शनसुधा	(इंडियन प्रेस)
१७. व्यास	मधुकरी	बीसवीं सदी)
१८. वाजपेयी	श्रेष्ठ कहानियाँ	(पुस्तक-मन्दिर)

'मनोरमा' यद्यपि उतना उत्कृष्ट उपन्यास नहीं है, फिर भी स्व० हृदयेशका स्मृति-चिह्न है। श्री देवकीनन्दन खत्रीकी 'चन्द्रकान्ता सन्तति' हिन्दीमें एतिहासिक महत्त्व-सा रखती है। इसके अतिरिक्त श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तवकी 'बिदा' श्री भगवतीचरण वर्माका 'पतन', श्री अवधनारायणकी 'विमाता', श्री विनोदशंकरका 'अशान्त' भी अच्छे उपन्यास हैं। अनुवादित उपन्यसोंमें सर्वश्री रवीन्द्रनाथ, शरचन्द्र, प्रभातकुमार, रमेशचन्द्रदत्त, राखालदास, बंकिमचन्द्र, चारुचन्द्र, नरेशसेन गुप्त, हरिनारायण आप्टे, वामनराव जोशी आदि भारतीय औपन्यासिकोंके और टालस्टाय, डस्कोवस्की, तुर्गनेव, विक्टरयूगो, और अलेक्ज़ांडर ड्यूमा आदि विदेशी उपन्यासकारोंके उपन्यास पठनीय हैं। अनुवादित उपन्यासोंके प्रकाशनमें प्रयागके इंडियन प्रेस और बम्बईके हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकरने स्तुत्य सेवा की है। सस्ता साहित्य-मंडलने टालस्टायकी कृतियोंका अनुवाद प्रकाशित करके बड़ा उपयोगी कार्य किया है।

नाटक—८

हिन्दीमें नाटकोंका तो दुर्भिक्ष-सा है। अच्छे अभिनय-योग्य नाटक हैं ही नहीं, और अभिनीत नाटक सुपाठ्य नहीं हैं। नाटकोंमें श्री गोविन्दवल्लभ पन्तकी 'वरमाला' ही दोनों कसौटियोंपर खरी उतरी है। श्री प्रसादजी हिन्दीके श्रेष्ठतम नाट्यकार हैं। यदि वे कृपा करके अपनी बौद्धकालीन भाषा छोड़ देते, तो निस्सन्देह वे बड़े सफल नाटककार होते। अतिदीर्घता, जटिल भाषा, और भूले हुए तथा अपरिचित कालका चित्रण ही उनके दोष हैं। फिर भी वे हिन्दीमें सर्वश्रेष्ठ नाटककार तो हैं ही। उनकी कृतियोंसे हिन्दी

गौरवान्वित हुई है, इसमें दो मत नहीं हो सकते । मुझे उनकी कृतियोंमें 'अजातशत्रु' सबसे अधिक पसन्द है और फिर 'चन्द्रगुप्त' । 'स्कंदगुप्त' न-जाने क्यों मुझको बिलकुल ही नहीं रुचा। अभिनयकी दृष्टिसे स्यात 'राज्यश्री' सबसे अधिक उपयुक्त होगी। 'कामना' भी अपने ढंगकी एक चीज़ है। श्रीयुत सुदर्शनकी 'अंजना' भी बहुत ही अच्छी चीज़ है। नये नाटककारोंमें श्री लक्ष्मीनारायण मिश्रके नये दोनों नाटक सुन्दर हैं। यद्यपि अभी मिश्रजीका हाथ वैसा मंजा नहीं दिखलाई पड़ता, तथापि उनकी प्रतिभा तनिक अभ्याससे उनके द्वारा सफल नाटकोंका प्रणयन करा सकती है, इसमें सन्देह नहीं। श्री भारतेन्दुजी हिन्दीके उन्नायकोंमें से हैं, और उनके नाटकोंका रखना ऋण परिशोध ही है। अस्तु, श्रेष्ठ नाटकोंकी तालिका इस प्रकार है :—

१. जयशंकर प्रसाद	अजातशत्रु	(भारती भंडार)
२. जयशंकर प्रसाद	चन्द्रगुप्त	(,,)
३. जयशंकर प्रसाद	राज्यश्री	(,,)
४. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु नाटकावली	(इंडियन प्रेस)
५. जयशंकर प्रसाद	कामना	(हिन्दी-पुस्तक-भंडार लहे०)
६. सुदर्शन	अंजना	(हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर)
७. गोविन्दवल्लभ पन्त	वरमाला	(गंगा)
८. लक्ष्मीनारायण मिश्र	संन्यासी	(गांधी-साहित्य)

गद्य-काव्य

गद्य-काव्य साहित्यका बड़ा ही प्रिय अंग होता है, पर हिन्दीमें अभी तक यह उपेक्षित ही रहा, फिर भी हिन्दीमें दो गद्य-काव्य-कुशल लेखक ऐसे हैं, जिनके ऊपर किसी भी भाषाको गर्व हो सकता है। वे हैं कलाविद् श्री रायकृष्णदासजी और श्री चतुरसेन वैद्यशास्त्री । स्वर्गीय श्री देवेन्द्रजी-संकलित 'प्रेमकली' भी संग्रहणीय हैं। इस विभागमें—

लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
१ चतुरसेन शास्त्री	अन्तस्तल	(हिंदी-ग्रंथरत्नाकर)
२ चतुरसेन शास्त्री	बनाम स्वदेश	(संजीवन)
३ रायकृष्णदास	साधना	(भारती भंडार)
४ देवेन्द्र	प्रेमकली	(?)

संग्रहणीय पुस्तकें हैं।

कविता (प्राचीन १० + नवीन १०=२०)

कविताका महत्त्व अतिरंजित हो ही नहीं सकता। हिन्दीकी शान भी कविता ही में है। एतदर्थ कविताकी पर्याप्त पुस्तकें रखी गई हैं। नये और पुराने ढंगकी पुस्तकें बराबर संख्यामें रखी गई हैं। इसपर और अधिक लिखना व्यर्थ समझ मैं केवल पुस्तकोंकी सूची देता हूँ :—

१ तुलसीदास	ग्रन्थावली	(काशी-नागरी-प्रचा०)
२ सूरदास	संक्षिप्त सूरसागर	(इंडियन प्रेस)
३ बिहारी	बिहारी-रत्नाकर	(गंगा)
४ मिश्रबन्धु	हिन्दी-नवरत्न	(गंगा)
५ पद्मसिंह	संजीवनी भाष्य	(काव्य-कुटीर)
६ रामनरेश	कविता-कौमुदी (२ भाग)	(हिंदी-मंदिर)
७ कृष्णबिहारी	मतिराम-ग्रंथावली	(गंगा)
८ मिश्रबन्धु	मिश्रबन्धु-विनोद	(गंगा)
९ कबीर	ग्रन्थावली	(इंडियन प्रेस)
१० रत्नाकर	उद्धवशतक	(इंडियन प्रेस)

हिन्दीके अन्य कवियोंमें मीराबाई आदिके संकलन अतिशीघ्र प्रकाशित होने चाहिए। प्रयागके इंडियन प्रेस और लखनऊकी गंगा-पुस्तकमालाको इस ओर विशेष प्रयत्न करना चाहिए। नये ढंगकी कविता-पुस्तकोंमें—

लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
हरिऔध	प्रिय-प्रवास	(खड्ग-विलास)
मैथिलीशरण	भारत-भारती	(साहित्य-सदन)
मैथिलीशरण	जयद्रथ-वध	(साहित्य-सदन)
जयशंकर 'प्रसाद'	आँसू	(भारती भंडार)
सुमित्रानन्दन पंत	पल्लव	(इंडियन प्रेस)
सुभद्राकुमारी	मुकुल	(ओझा-बन्धु)
महादेवी वर्मा	नीहार	(गांधी-गौरव)
लक्ष्मीनारायण	अन्तर्जगत	(हिन्दी-पुस्तक-भंडार)
रामनरेश	स्वप्न	(हिन्दी-मंदिर)
शान्तिप्रिय द्विवेदी	परिचय	(भारती भंडार)

संग्रहणीय हैं।

मुझे श्री मैथिलीशरणजीका 'साकेत' पसन्द नहीं आया। उनके द्वारा अनुवादित 'उमर खैयामकी रुबायात' तो अवश्य ही संग्रहणीय है। विद्वद्वर्य प्रोफेसर केशवप्रसाद मिश्र द्वारा अनुवादित 'मेघदूत'से उत्तमतर अनुवाद मैंने दूसरा नहीं देखा। हिन्दीके नये ढंगके कवियोंमें श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री भगवतीचरण वर्मा और श्री जनार्दन झा 'द्विज'की कविताओंके संकलन अतिशीघ्र प्रकाशित होने चाहिए।

हास्य—५

हास्य मनुष्यकी सबसे प्रिय और उपयोगी आवश्यकता है। यहाँ तक कि किसी महापुरुषने मनुष्यकी परिभाषा हँसते हुए पशु द्वारा की है, परन्तु हमारे साहित्यिक तो अपनेको कर्बलाका निवासी समझते हैं, हँसनेको छिछोरापन! तभी तो देख लीजिए कि ठाकुर-चित्रकलाके नमूने चलते-फिरते नज़र आते हैं। और फिर हास्य लिखना हँसी नहीं है। बक़ौल सुप्रसिद्ध विदूषक हेरॉल्ड लायडके जनताकी एक हँसी हमारे हज़ारों आँसुओंके मोलपर बिकती है। हिन्दीमें केवल दो ही सफल लेखक हैं---श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव और श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द। अन्नपूर्णानन्दजी सच्चे हास्य-कलाविद् हैं। उनका विनोद शिष्ट, साहित्यिक और ऊँचे दर्जेका होता है। श्रीवास्तवजी हिन्दीमें हास्यके प्रवर्तक हैं, और उनकी सूझ खूब ही है। यद्यपि इधर उनकी प्रतिभा-प्रसूत पुस्तकें उतनी उच्चकोटिकी नहीं होतीं, जितनी 'लम्बीदाढ़ी' आदि हैं, फिर भी वे निशाना नहीं चूकते हैं। हास्यकी पुस्तकें जो मैंने तालिकामें रखी हैं, ये हैं :—

१. श्री जी० पी० श्रीवास्तव	लम्बी दाढ़ी	(चाँद)
२. श्री जी० पी० श्रीवास्तव	भड़ामसिंह शर्मा	(चाँद?)
३. श्री जी० पी० श्रीवास्तव	लतखोरीलाल	(चाँद)
४. श्री अन्नपूर्णानन्द	मेरी हजामत	(बलदेवमित्र)
५. श्री अन्नपूर्णानन्द	मगनरहु चोला	(बलदेवमित्र)

लेख-संग्रह—५

लेख लेखकके दिलके टुकड़े हैं। उनको पत्रिकाओंके पृष्ठोंमें पड़े-पड़े सड़ने देना योग्य नहीं है। श्रीयुत बालकृष्ण भट्ट, श्री रुद्रदत्तजी, श्री प्रतापनारायणजी आदि हिन्दीके स्वनामधन्य लेखक थे। आज उनके लेखोंके पढ़नेका कोई साधन नहीं। 'प्रताप'के यशस्वी सम्पादक श्रद्धेय श्री गणेशशंकर विद्यार्थीकी लेखनीका लोहा सभी मानते हैं। उनकी प्रावद शक्तिशाली लेखनीसे निकले हुए लेख-रत्न पढ़नेका चाव किसको नहीं है? पर अभी तक वे पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुए। यदि 'प्रताप' प्रेस इस कार्यको पूरा कर दे, तो पितृ-सेवा और मातृ (भाषा) सेवा दोनों ही करे और धन्यवाद-भाजन हो। सन्तोषका विषय है कि साहित्य-महारथी पूज्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीके कई लेख-संग्रह प्रकाशित हो गये हैं, पर अभी हालमें भारती भंडार द्वारा प्रकाशित 'विचार-विमर्श' अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वर्गीय पद्मसिंहजीकी लेखनशैली बड़ी ही सजीव थी, और बाबू श्यामसुन्दरदासजी हिन्दीके विधायकोंमें हैं? गद्य-लेखकोंमें पं० रामचन्द्र शुक्लका स्थान बहुत ऊँचा है। इसलिए इन तीनों महानुभावोंकी एक-एक पुस्तक रखी है। विद्वद्वर्य आर्य श्री भगवानदासजी कृत 'समन्वय' अपने ढंगकी हिन्दीमें एक ही पुस्तक है। इस विषयकी तालिका यह है :—

१ महावीरप्रसाद द्विवेदी	विचार-विमर्श	(भारतीय भंडार)
२ श्यामसुन्दरदास	गद्यकुसुमावली	(इंडियन प्रेस)
३ पद्मसिंह शर्मा	पद्मपराग	(काव्य-कुटीर)
४ रामचंद्र शुक्ल	विचार-वीथी	(अग्रवाल प्रेस)
५ भगवानदास	समन्वय	(भारती भंडार)

इसके अतिरिक्त विदेशी भाषाओंके उच्चकोटिके लेखोंका अनुवाद भी होना चाहिए। ऐसे अनुवादोंमें श्री रवींद्रनाथके लेखोंके जो अनुवाद संग्रह हिन्दी-ग्रंथरत्नाकरने प्रकाशित किये हैं, उनको हम सादर स्मरण कर सकते हैं। 'Selected English Essays' के ढंगपर 'श्रेष्ठ हिन्दी-लेखों' का संग्रह

भी होना चाहिए। काशीका भारती भंडार इस ओर ध्यान दे, तो अच्छा हो।

साहित्य—१०

हिन्दीमें साहित्य-सम्बन्धी उच्चकोटिकी पुस्तकोंका सर्वथा अभाव है। जो दो-एक हैं, वे भी अधूरी और अपनोंकी प्रशंसासे भरी हुई। हिन्दी-गद्यशैलीपर श्री जगन्नाथप्रसाद शर्माकी एक ही पुस्तक है, पर उस पुस्तकमें श्रद्धेय गणेशशंकर जैसे साहित्कारका नाम तक नहीं उल्लिखत है। साहित्यिक इतिहासकी दो पुस्तकें अब निकली हैं। इस विभागपर श्री श्यामसुन्दर दासने बहुत-कुछ लिखा-लिखवाया है, और इसके लिए हमें उनको धन्यवाद देना चाहिए। मेरी सूची यह है :—

१ श्यामसुंदरदास	साहित्यालोचन	(साहित्यरत्न)
२ ,,	भाषा-विज्ञान	(,,)
३ ,,	हिन्दी-भाषा और साहित्य	(इ० प्रे०)
४ रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी भाषाका इतिहास	
५ नलिनीमोहन सन्यास	भाषा-विज्ञान	(का० ना० प्र०)
६ पदुमलाल बख्शी	विश्व-साहित्य	(गंगा)
७ पद्मसिंह शर्मा	सतसई-संहार	(काव्य-कुटीर)
८ कृष्णविहारी मिश्र	देव और बिहारी	(गंगा)
९ बाबूराम वित्थरिया	हिन्दी-काव्यमें नवरस	(?)
१० जगन्नाथप्रसाद शर्मा	हिन्दी-गद्यशैलीका विकास	(का० ना प्र०)

जीवन-चरित

दूसरोंके जीवन-चरित्रोंसे हमको शिक्षा मिलती है, पर हिन्दीमें इनकी जो भयावह कमी है, वह शोकप्रद है। और तो और, जिस प्रान्तकी भाषा हिन्दी है, उसी प्रान्तके महापुरुषोंकी अच्छी जीवनियाँ तक उसमें नहीं हैं। पं० मदनमोहन मालवीय, स्व० पं० मोतीलाल नेहरू, स्व० पं० बिशननारायण दर, श्री गंगाप्रसाद वर्मा, सर तेजबहादुर सप्रू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री भगवानदास सरीखे नेता, भट्टजी, द्विवेदीजी, श्यामसुन्दरदासजी सरीखे साहित्यकार जिस भाषाके भाषी हों, उसी भाषामें, उन्हीं महापुरुषोंकी, अच्छी जीवनियाँ तक न हों! और आत्म-कथा! हिन्दीके कुछ साहित्यिक तो इसके नामपर ही चिढ़ने लगते हैं। न-जाने क्यों? क्या पूज्य मालवीयजी, श्रद्धेय भगवानदासजी, बाबू श्यामसुन्दरदासजी आदिकी आत्म-कथाएँ उपयोगी न होंगी? क्या स्वामी श्रद्धानन्दजीकी आत्म-कथा द्वारा हिन्दी गौरवान्वित नहीं हुई है? 'विशाल-भारत' के सम्पादक महोदयने एक माला निकालनेका संकल्प किया था, पर शायद वह विचार केनिया-यात्रा कर गया। दो-एक जो जीवन-चरित हैं, वे भी केवल नाम लेनेको ही। श्रद्धेय गणेशजीकी जीवन-कथाकी जैसी आशा हम श्री देवव्रतसे करते थे, वैसी नहीं हुई। इस सम्बन्धमें विश्लेषणात्मक जीवनियोंकी कमी बहुत अखरती है। हिन्दीमें लुडविग, लास्की और गार्डनर कब पैदा होंगे? अस्तु, नीचे लिखी पुस्तकें संग्रहणीय हैं :—

लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
१ श्रद्धानन्द	कल्याण-मार्गका पथिक	(ज्ञानमंडल)
२ श्यामसुन्दरदास	हरिश्चन्द्र	(इंडियन प्रेस)
३ बनारसीदास	सत्यनारायण	(हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन)
४ देवव्रत	गणेशशंकर विद्यार्थी	(नवयुग)
५ शिवदास गुप्त	सप्तर्षि	(?)

भ्रमण-वृत्तान्त

पर्यटनका विषय उपन्याससे भी अधिक मनोरंजक है, और यदि लेखक सफल है, तो पाठक खाना-पीना भूल जा सकता है; पर अभी तक हिन्दी-लेखकोंमें अधिकांशको अपनी कृतियोंमें आत्मीयता और सजीवता लानेमें सफलता नहीं मिली है। उनकी रचनाएँ मुर्दा रेल टाइम-टेबिलकी तरह नीरस रहती हैं। हाँ, दो-एक लेखक हैं, जिन्होंने आदर्श भ्रमण-पुस्तकें लिखी हैं। काशीके सुप्रसिद्ध देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्तकी 'पृथ्वी-प्रदक्षिणा' अपने ढंगकी अनोखी पुस्तक है। स्वामी सत्यदेवजीकी भ्रमण-पुस्तकें भी रोचक हैं। अनुवादित पुस्तकोंमें श्री शौकत उस्मानीकी 'रूस-यात्रा' बहुत पहले

पढ़ी थी, और याद पड़ता है कि अच्छी भी लगी थी। अस्तु--

लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
शिवप्रसाद गुप्त	पृथ्वी-प्रदक्षिणा	(ज्ञानमंडल)
सत्यदेव	मेरी कैलास-यात्रा	(सत्य०ग्रं०मा०)
सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण	(,,)
सत्यदेव	अमेरिका-दिग्दर्शन	(,,)
रामनारायण	यूरोप-यात्रामें छै मास	(इं० प्रे०)

ये भ्रमण-विषयक उत्कृष्ट पुस्तकें हैं।

राजनीति और इतिहास

राजनीति और इतिहासकी पुस्तकोंकी तो भयानक कमी है। जो कुछ पुस्तकें हैं, उनमें श्री सुखसम्पत्तिराय भंडारीका 'राजनीति-शास्त्र' और श्री सम्पूर्णानन्दजीका अन्ताराष्ट्रीय विधान' विशेषरूपसे आदरणीय हैं। श्री तामस्करने भी राजनीतिपर दो-चार सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। इस सिलसिलेमें श्रीयुत भगवानदासजी केलाका नाम न लेना कृतघ्नता होगी। बिना किसीके आश्रयसे वे इस दिशामें चुपचाप ठोस काम कर रहे हैं। नरेन्द्रदेवजीकी पुस्तिका भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण है। इतिहासकी पुस्तकोंमें श्री गौरीशंकर ओझाकी 'प्राचीन लिपिमाला' की प्रशंसा करना मेरे लिए दुस्साहस-सा है। ओझाजी हिन्दीके गौरव-स्तम्भ हैं, और राष्ट्र-भाषाके अनन्य भक्त होनेके अतिरिक्त ऐतिहासिक विद्वानोंकी मंडलीमें उनका आदर भी है। इनके अतिरिक्त श्री सत्यकेतुका 'मौर्य-साम्राज्यका इतिहास' और श्री रघुवीर सिंहका 'पूर्व-मध्यकालीन भारत' भी अच्छी पुस्तकें हैं। श्री ओझाजीके मध्यकालीन संस्कृतिपर भाषण भी सुपाठ्य हैं। इस तरह--

सम्पूर्णानन्द	अन्ताराष्ट्रीय विधान
सुखसम्पतिराय	राजनीतिशास्त्र
,,	संसारकी क्रान्तियाँ
नरेन्द्रदेव	भारतका राष्ट्रीय आन्दोलन
प्राणनाथ	सम्पत्तिशास्त्र
तामस्कर	कौटिल्यकी सामाजिक व्यवस्था
उमादत्त शर्मा	कारावास कहानी
गौरीशंकर ओझा	प्राचीन लिपिमाला
सत्यकेतु	मौर्य-सम्राज्यका इतिहास
रघुवीर सिंह	पूर्व-मध्यकालीन भारत
गौरीशंकर ओझा	मध्यकालीन भारतकी संस्कृति
?	साम्यवाद

इस विभागमें आँसू पोंछनेको पुस्तकें हैं।

स्फुट—१०

अब कुछ स्फुट पुस्तकोंका उल्लेख करके इस लेखको समाप्त करूँगा। श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक लिखित 'संसारकी असभ्य जातियोंकी स्त्रियाँ' बड़ी रोचक और अपने विषयकी हिन्दीमें एक पुस्तक है। सचित्र भी खूब है। श्रीशंकर रावका 'उद्यान', श्री गंगाप्रसादका 'गोपालन', श्री गोरखप्रसादकी 'फोटोग्राफ़ी' भी अपने-अपने विषयोंकी अच्छी पुस्तकें हैं। श्री हरिनारायण मुकर्जी महोदय कृत 'संगीत' पुस्तक बहुत अच्छी चीज़ है। श्री विष्णुदत्त शुक्ल कृत 'पत्रकार-कला' मैंने स्वयं तो नहीं देखी है, पर सुना है कि उपयोगी पुस्तक है। 'मातृभूमि-अब्दकोश' इधर तो नहीं देखनेमें आया, पर चीज़ थी कामकी। एक नई पुस्तक प्रकाशित होनेकी सूचना मिली है, वह है श्री श्रीराम शर्माकी 'शिकार'। श्रीराम शर्माजी हिन्दीके इने-गिने सफल गद्य लेखकोंमें से हैं। उनके भाव कवित्वमय, शैली प्राणमय और भाषा ओजमय होती है। अपने विपक्षीको भी जिस कौशलसे वे सहानुभूतिका पात्र बना देते हैं, वह आश्चर्यजनक है। इतना सजीव प्रकृति और पशु वर्णन कोई दूसरा कर सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है। इन दिनों श्रीरामजी मेरे पक्षित लेखक (Favourite writer) हैं, और मेरे कई साहित्यिक मित्र भी उनके क़लमके ज़ोरको स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त 'जन्तु-जगत्' और वृक्ष-विज्ञान' भी अच्छी पुस्तकें हैं।

अन्तमें मैं इस सूचीकी त्रुटियोंके लिए क्षमा माँगता हूँ, और आशा करता हूँ कि अन्य विद्वान भी इस विषयपर अपना मत प्रकाशित करेंगे।

नोट—सम्भव है कि किसी पुस्तक, या लेखक, या प्रकाशकके नाममें कुछ ग़लती हो गई हो। इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

—लेखक

रूसी कहानियाँ

कहानी लिखना भी एक कला है। थोड़ेसे पृष्ठोंमें जीवनका एक चित्र खींचनेके लिए लेखन-कौशलकी आवश्यकता है। जिन्हें मानव-जीवनका अच्छा अनुभव हो, जिनमें सूक्ष्मदृष्टि हो, जो इस बातका ज्ञान रखते हों कि कौनसी चीज़ ग्रहण करनी चाहिए और कौनसी छोड़ देनी चाहिए, और जिनमें असाधारण वर्णनशक्ति हो, वही छोटी-छोटी कहानियोंके लिखनेमें सफल हो सकते हैं। जो बच्चेसे लेकर बूढ़ेके हृदयमें प्रवेश नहीं कर सकता, जिसने भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यक्तियोंके स्वभावको अध्ययन नहीं किया, और जिसकी दृष्टि इतनी पैनी नहीं है कि वह बाह्य आडम्बरोंको चीरकर अन्तस्तलके भावोंका पता लगा सके, भला, वह कहानी क्या लिखेगा? कहानी-लेखकके लिए अनुभव, सहृदयता तथा भावुकताकी नितान्त आवश्यकता है। रूसी कहानी-लेखकोंमें ये गुण प्रचुर मात्रामें पाये जाते हैं, इसलिए इस कलामें जितनी सफलता उन्हें मिली है, उतनी शायद ही किसी अन्य जातिको मिली हो। इसका एक कारण यह भी सुना जाता है कि ज़ारशाहीके अत्याचारोंके कारण रूसी लेखक राजनैतिक विषयोंकी पुस्तक तथा निबन्ध लिख नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने हृदयके भावोंको उपन्यासों तथा कहानियोंके द्वारा ही प्रकट किया है। प्रस्तुत पुस्तक ('पिस्तौलका निशाना'*) में ग्यारह रूसी लेखकोंकी अठारह कहानियोंका संग्रह है। निम्न-लिखित लेखकोंकी कहानियाँ इस संग्रहमें हैं :—

पुश्किन	तीन कहानी
तुर्गनेव	दो ,,
डोस्टोवस्की	एक ,,
टाल्सटाय	दो कहानी
गार्शिन	एक ,,
चेखोव	दो ,,
सोलोगब	दो ,,
डोरोशेविच	एक ,,
गार्की	एक ,,
ब्रूसाफ़	एक ,,
काटेव	एक ,,

इन कहानियोंको हम प्रारम्भसे अन्त तक पढ़ गये। 'भिन्न रुचिर्हिलोक:' इस दृष्टिसे एक कहानी किसीको अच्छी लगेगी, तो दूसरी किसी दूसरे को। उपवनमें किसीको गुलाब पसन्द आता है, तो किसीको चमेली, और किसीको जुही। कोई टेसू महोदय टेसूके फूल भी पसन्द कर सकते हैं, और वे हिन्दीके उन समालोचकोंकी तरह हैं, जो शब्दाडम्बरमय निरर्थक कहानियोंकी प्रशंसा कर बैठते हैं। यद्यपि 'पिस्तौलका निशाना' नाम बड़ा डरावना है, और ऊपरका चित्र भी हृदयमें कोमल भावनाओंके उत्पन्न करनेके बजाय किसी रमणी-हृदयमें धुकधुकी उत्पन्न कर सकता है, पर इस भयंकर बहिरंगसे हमें धोखेमें न पड़ना चाहिए, क्योंकि इसका अन्तरंग निस्सन्देह बहुत कोमल है।

इन अठारह कहानियोंमें हमें सबसे अच्छी जँची तुर्गनेवकी 'देहाती डाक्टर' नामक कहानी। इन अठारह पुष्पोंमें यह चमेली अपनी मनोहर महक अलग ही दे रही है। इसमें एक मरणासन्न रोगिणी युवतीका इलाज करनेवाले डाक्टरसे प्रेम बड़ी ख़ूबीके साथ चित्रित किया गया है। कहानी डाक्टरके मुखसे ही कहलाई गई है। यह कहानी तुर्गनेवकी पुस्तक 'A sportsman's sketches' नामक पुस्तकसे ली गई है। जब रूसमें यह पुस्तक छपी थी, तो इसकी धूम मच गई थी। सम्राट्से लेकर साधारण पाठकों

---

* 'पिस्तौलका निशाना' (रूसी कहानियाँ); अनुवादक, व्रजमोहन वर्मा; मूल्य ३); गुरु-ग्रन्थ-गुफा; ५ सी, राजेन्द्रलाल

तक ने इस पुस्तकको पढ़ा था। तुर्गनेव शिकारी आदमी थे। बन्दूक कन्धेपर रखकर जंगलमें निकल जाते थे, और अपने देशके वन उपवनोंमें घूमते तथा देशवासियोंके स्वभावका अध्ययन करते थे। अपनी कहानियोंमें उन्होंने इसी गम्भीर अध्ययनका परिणाम निकालकर पाठकोंके सम्मुख रख दिया है। 'देहाती डाक्टर' शीर्षक कहानीकी नायिका बीस वर्षकी युवती थी। उसने अपने जीवनमें किसीको प्रेम नहीं किया था। प्रेमका पाठ पढ़ा ही नहीं था। उसके लिए यह अपना प्रथम तथा अन्तिम पाठ था। उसकी तथा डाक्टरकी बातचीत सुन लीजिए।

" 'क्यों डाक्टर, क्या मैं मर ही जाऊँगी ?'

'ईश्वर दया करे !'

'नहीं, नहीं, डाक्टर, ये बातें रहने दो कि मैं अब भी जी उठूँगी,......नहीं, नहीं......अगर तुम जानते, सुनो। ईश्वरके लिए सब सच-सच कह दो।' वह तेज़ीसे साँस लेने लगी—'यदि मुझे विश्वास हो जाय कि मैं मर रही हूँ, तो तुम्हें सब कुछ सुना दूँगी !'

'अलेक्ज़ेंड्रा, मेरी प्रार्थना......।'

'सुनो, आज मैं पल-भर भी नहीं सोई......मैं देरसे तुम्हें ताक रही थी......ईश्वरके लिए सुन लो।......मुझे तुमपर भरोसा है; तुम सज्जन हो और ईमानदार भी। संसारके सब पावन पदार्थोंकी सौगन्ध, तुम सच-सच बतला दो ! तुम क्या जानो कि मेरे लिए यह कितनी महत्त्वपूर्ण बात है......डाक्टर, ईश्वरके लिए बता दो कि क्या मेरी हालत नाज़ुक है ?'

'अलेक्ज़ेंड्रा, मैं तुम्हें क्या बताऊँ ?'

'मैं पैरों पड़ती हूँ, ईश्वरके लिए बता दो !'

'तब अलेक्ज़ेंड्रा, मैं तुमसे कुछ न छिपाऊँगा। तुम्हारी दशा वास्तवमें खतरनाक है, पर ईश्वर दयावान है।'

'मैं मर जाऊँगी, मैं मर जाऊँगी।' ऐसा जान पड़ा कि वह बड़ी प्रसन्न है। उसका मुँह दमक उठा। मैं घबरा गया। वह एकाएक उठ बैठी, और कुहनी टेककर

ऐलेक्ज़ेंडर पुश्किन

बोली—'डरो मत, डरो मत। मुझे मृत्युका लेशमात्र भय नहीं है। अब......हाँ, अब मैं तुम्हें बताऊँगी कि मेरा रोम-रोम तुम्हारा आभारी है।......तुम दयालु और कृपाशील हो......और मैं तुमसे प्रेम करती हूँ !' मैं भौंचक्का-सा होकर उसे ताकता रह गया; सच जानो, यह मुझपर वज्रपात था।

'सुना, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'

'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना, मैं तुम्हारे इस प्रेमका अधिकारी कैसे बना ?'

'नहीं, नहीं, तुम्हारी समझमें नहीं आया—' और एकाएक अपने युगल बाहु खोलकर उसने मेरा सिर अपने हाथोंमें लेकर चूम लिया। सच जानना, मैं चीख-सा उठा।......घुटनेके बल बैठकर मैंने अपना सिर तकियेमें

आइवन तुर्गनेव

'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना, तुम क्या कहती हो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।'

मेरी आँखोंमें आँखें डालकर उसने हाथ फैला दिये, और कहा—'मुझे अपने सीनेसे लगा लो।' कह नहीं सकता कि उस रातको मैं पागल क्यों न हो गया। मैं समझ रहा था कि रोगिणी आप अपने प्राण ले रही है। वह सुध-बुध बिसार बैठी है। मैं यह भी जानता था कि यदि वह अपनेको मरणासन्न न समझ लेती, तो कभी मेरा खयाल भी न करती। तुम जो भी कहो, प्रेमका पाठ पढ़े बिना बीस वर्षकी अवस्थामें मर जाना बड़ा दुर्भाग्य है, यही विचार उसके कलेजेको छेद रहा था, इसीलिए निराश होकर उसने मेरी बाँह पकड़ी थी। अब समझे तुम? वह मुझे आलिंगन-पाशसे मुक्त न होने देती थी।

'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना, मुझपर और अपने आपपर रहम करो।'

उसने जवाब दिया—'क्यों? अब किसका विचार किया जाय? तुम जानते हो कि मैं मरूँगी ही',—यह रट उसकी ज़बानपर बराबर थी—'अगर मुझे मालूम होता कि मैं बच जाऊँगी और पहले जैसी अच्छी-भली युवती हूँगी, तो लज्जित होती······सचमुच शर्म करती······पर अब क्यों?' ''

छिपा लिया। वह चुपचाप रही। उसकी अँगुलियाँ मेरे बालोंके भीतर काँप रही थीं। मैंने उसके रोनेकी आवाज़ सुनी। मैं उसे समझाने-बुझाने लगा।······याद नहीं कि उससे मैंने क्या-क्या कहा—'तुम्हारे रोनेसे नौकरानी जग जायगी। अलेक्ज़ेंड्रा, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ······सच जानो······अपनेको सँभालो।'

उसने ज़ोरसे कहा—'बस-बस! उन सबकी कुछ परवा नहीं; चाहे जागें, चाहे अन्दर घुस आवें—इससे क्या होगा! तुम देखते हो कि मैं तो मर रही हूँ।······और तुम्हें डर किस बातका है? सहमे क्यों जाते हो? अपना सिर उठाओ।······या शायद तुम मुझसे प्रेम नहीं करते, शायद मुझसे ग़लती हुई······ऐसा हो, तो माफ़ करना।'

अन्तमें डाक्टर कहता है—' दूसरे दिन मेरी रोगिणी चल बसी! ईश्वर उसकी आत्माको शान्ति प्रदान करे।" फिर डाक्टरने ठंडी साँस भरकर कहा—'मृत्युके पहले भी उसने मा-बहनोंको बाहर चले जाने और मुझे उसके साथ अकेला छोड़ देनेके लिए कहा। उसने कहा—'क्षमा कीजिए, शायद कुसूर मेरा ही है···मेरी बीमारी—पर सच जानना कि तुमसे अधिक किसीको मैंने प्यार नहीं किया···मुझे भूलना मत···मेरी अंगूठी पहने रहना।''

तुर्गनेवकी दूसरी कहानी 'मूमू' भी संसारकी सर्वोत्तम कहानियोंमें गिनी जाती है। अंग्रेज़ लेखक कार्लायलने इसे संसारकी सबसे करुणाजनक कहानी बतलाया था। उन दिनों

रूसमें गुलामीकी प्रथा जारी थी, और जो ज़मींदार लोग गुलाम रखते थे, उनके मनमें यह भाव ही नहीं आता था कि गुलामोंके भी कोई हृदय है, उनके भी कोई आत्मा है। सुप्रसिद्ध अराजकवादी प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन चरितमें लिखा है कि 'मूमू'के प्रकाशित होनेके बाद उच्च घरोंके स्त्री-पुरुष आपसमें आश्चर्यके साथ कहने लगे— 'अरे इन दासोंके भी हृदय होता है!" तुर्गनेवके विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। केवल इतना बतला देना पर्याप्त होगा कि टाल्सटायने अपने लड़केको कहा था कि तुम तुर्गनेवकी रचनाएँ पढ़ा करो।
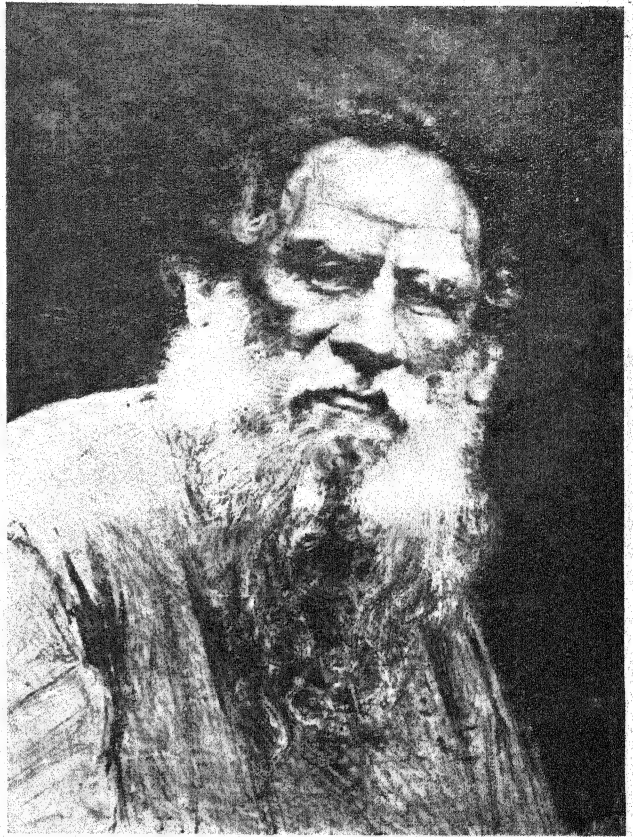
लियो टाल्सटाय

'देहाती डाक्टर'के मुक़ाबलेकी ही कहानी डार्लिंग है। चेख़ोवकी इस कहानीको टाल्सटायने बहुत पसन्द किया था, और इसकी एक विस्तृत आलोचना भी की थी, जो इस पुस्तकमें छाप दी गई है। इस कहानीकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि लेखक इस कहानीकी नायकाके चरित्रको नीचे गिराना चाहता था, पर अपना सारा ध्यान उसीपर केन्द्रीभूत कर देनेके कारण लेखकने उसे बहुत ऊपर उठा दिया है। कहानी पढ़ने लायक़ है, और टाल्सटायकी आलोचनाने कहानीके गुणको ख़ूब अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। चेख़ोवकी एक अत्युत्तम कहानी 'घटना' 'विशाल-भारत'के इसी अंकमें प्रकाशित की जा रही है। यह भी इस संग्रहमें आ जाती, तो बहुत अच्छा होता।

इस संग्रहमें टाल्सटायकी जो दो कहानियाँ हैं, वे हमें मध्यम श्रेणीकी जँची, क्योंकि उनमें प्रचारकपनकी बू आती है। कहानी आदमी धर्मोपदेशके लिए नहीं सुनता—मनोरंजनके लिए सुनता है। पहली कहानी 'इलियास'में ऐसा प्रतीत होता है कि टाल्सटायने पहलेसे ही यह तय कर लिया था कि हम सादे जीवनकी प्रशंसा करेंगे और उसके गुण दिखलावेंगे। स्वयं टाल्सटायने डार्लिंगकी प्रशंसा करते हुए कहा था—"यह कहानी इतनी उत्तम इसीलिए हो सकी है कि पहलेसे इसका प्रभाव अभिप्रेत नहीं था।" 'इलियास'में बात 'डार्लिंग'से उल्टी ही है, यानी लेखकने कहानी एक विशेष अभिप्रायको लेकर लिखी है, और बजाय कलाकारके वह उपदेशक बन गया है। टाल्सटायकी दूसरी कहानी 'बच्चोंकी बुद्धिमानी' स्वाभाविक और अच्छी है, पर यह कहनेमें हमें संकोच नहीं कि टाल्सटायके प्रति इस संग्रहमें न्याय नहीं किया गया। उनकी अच्छे-से-अच्छी कहानियाँ देनी चाहिए थीं।

पुश्किनकी इस संग्रहमें तीन कहानियाँ हैं—

ऐंटन चेखोव
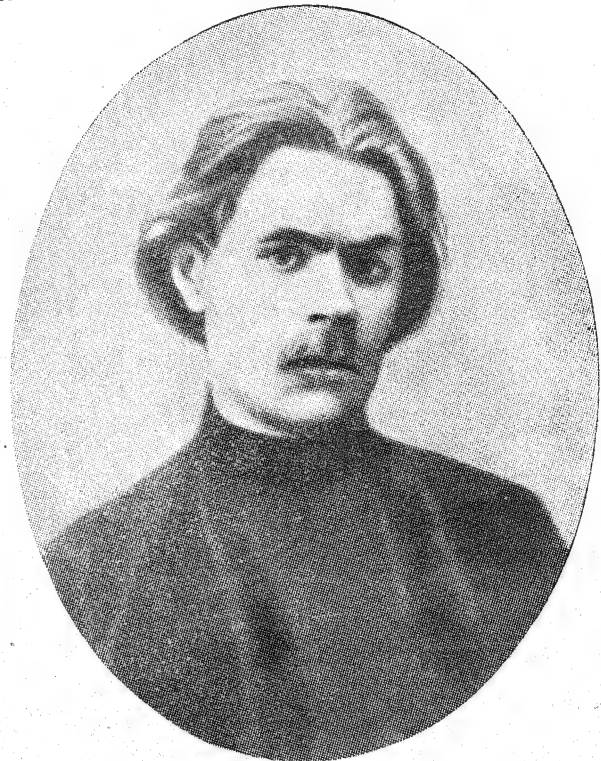
मैक्सिम गॉर्की

(१) पिस्तौलका निशाना, (२) बर्फ़का तूफ़ान, (३) पोस्टमास्टर, और ये तीनों कहानियाँ बड़ी मनोरंजक हैं।

डोस्टोवस्कीकी कहानी 'बड़ा दिन और विवाह' भी पठनीय है। इस लेखककी दो-एक कहानियाँ और भी होतीं, तो अच्छा होता। डोस्टोवस्कीको अपने जीवनमें अनेक कष्टोंका सामना करना पड़ा था। उसे कई वर्ष साइबीरियामें, निर्वासित दशामें, बिताने पड़े थे, और जेलकी यातनाएँ भी उसने ख़ूब भोगी थीं। उसका जीवन तपस्यामय था, और इसी कारण ग़रीबों तथा पीड़ितोंकी बाबत उसने जो कुछ लिखा है, उसमें कलेजा निकालकर रख दिया है। इस संग्रहमें दी हुई कहानीमें भी निर्धनोंके दुर्दशापूर्ण जीवनकी एक झलक आ गई है, और धनिकोंके दम्भपर एक तीखा कटाक्ष भी है।

गार्शिनकी लिखी 'चार दिन' शीर्षक कहानी अपने विषयकी एक ही है। युद्धका और घायल सिपाहियोंकी दशाका जैसा चमत्कारपूर्ण वर्णन इस कहानीमें मिलता है, वैसा बस, 'All quiet on the western front' नामक सिनेमामें ही देखनेको मिला था।

गार्कीकी 'स्टेपीज़में' नामक कहानी अजीब दुनियाँकी सैर कराती है। ग़रीबीके कारण गार्कीको समाजके निम्नतम श्रेणीके लोगोंके बीचमें रहनेका बहुत अवसर मिला है। खानाबदोशों और आवारागर्दोंके संगमें उसने अपने जीवनके अनेक वर्ष बिताये हैं। अपने कटु अनुभवोंको उसने कहानियों तथा उपन्यासोंके रूपमें रख दिया है। सम्भवतः अनेक पाठकोंको यह कहानी अपनी रुचिके अनुकूल प्रतीत न हो, पर उन्हें यह बात भूलनी न चाहिए कि यह कहानी भिन्न रसकी है। केवल मीठा-ही-मीठा खानेसे आदमीकी तबीयत ऊब सकती है ; उसे कभी-कभी कटु वस्तु भी खानी चाहिए। और यह भी तो एक नामुनासिब बात है कि कहानियों तथा उपन्यासोंके नायक राजा तथा धनाढ्य ही हों। पुरानी कहानियोंमें "एक राजा थे और उसके दो रानी थीं। बड़ी

रानीके लड़का नहीं था, छोटीके लड़का था", इत्यादि वृत्तान्त पूँजीपतियोंके युगके होनेके कारण पुराने पड़ गये। अब तो किसानों और मज़दूरोंका युग है। जब वे देशके ही नायक होंगे, तो फिर कहानियोंके नायक क्यों न बनें ?

'जब हसनका पाजामा उतर गया था' और 'ज़रूरी चीज़ें' ये दोनों कहानियाँ मधुर हास्यसे युक्त हैं, और उपदेशप्रद भी हैं।

'संगमरमरकी मूर्ति', 'कलाकी एक वस्तु', 'रोड़ेकी कहानी' और 'समानता' छोटी-छोटी कहानियाँ हैं, पर कलाकी दृष्टिसे ये भी अच्छी हैं। इस संग्रहमें एक ख़ूबी यह भी है कि कहानी-लेखकोंके संक्षिप्त चरित्र प्रारम्भमें दे दिये गये हैं, और मुख्य-मुख्य ६ लेखकोंके चित्र भी। प्रारम्भकी प्रस्तावनामें रूसी साहित्यका संक्षिप्त विवरण है। लगभग ४०० पृष्ठकी सुन्दर जिल्द बँधी हुई पुस्तकका मूल्य ३) अधिक नहीं है। अनुवादकी भाषा साफ़ और मँजी हुई है। जिस तरह अच्छी सड़कपर गाड़ी बिना किसी दचकेके मज़ेमें चली जाती है, उसी प्रकार इन कहानियोंको पाठक आनन्दसे पढ़ सकते हैं, कहीं कोश खोलनेकी ज़रूरत न पड़गी।

सर्वसाधारणको ही नहीं, कहानी-लेखकोंको भी यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। हिन्दी-जनताको यार लोगोंने अब तक बहुत धोखेमें रखा है। अपने मित्रोंकी कहानियोंको वे 'विश्व-साहित्यकी चीज़' कहनेमें ज़रा भी नहीं हिचकते। इस संग्रहसे उन्हें विश्व-साहित्यकी कुछ असली चीज़ोंका पता लग जायगा। कहानी-लेखकोंको यह इसलिए लाभदायक सिद्ध होगी कि इससे वे यह शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे कि घूमे-फिरे बिना और जीवनका अनुभव प्राप्त किये बिना कोई लेखक अच्छी कहानी लिख नहीं सकता। पुस्तक-प्रकाशकसे हमारा अनुरोध है कि वे अन्य देशोंके लेखकोंकी भी कहानियाँ इसी प्रकार पुस्तकाकार छपावें। उनकी यह प्रथम पुस्तक फर्स्ट क्लासकी रही, इसमें सन्देह नहीं।

हरनामदास

श्रीराम शर्मा

मुनिकीरेती, ऋषीकेश और लक्ष्मणझूलाके बीच, टिहरी राज्यका एक स्थान है। गंगाजीपर बसे होनेपर भी अब वह ऊजड़-सा हो गया है। स्टेट गैरेज और कारखानेके पास खड़े होनेसे तो वह काटने दौड़ता है, पर सन् १९२२-२३ में वहाँ ख़ासी रौनक़ थी। वह मधुमक्खीका छत्ता-सा बना हुआ था। डाँडियोंके बनने और चिड़ियाघरके जीवोंको देखनेके लिए वहाँ यात्रियोंके ठट्ठ-के-ठट्ठ लग जाते थे। बरसातमें बबूलके पेड़पर लगे बयाके घोंसलोंमें जैसी चहल-पहल होती है, वैसा ही कुछ समा मुनिकीरेतीमें था। एक उपनिवेश-सा बस रहा था। मीठी चीज़ पाकर जैसे चीटियाँ चारों ओरसे आ जाती हैं, वैसे ही, न-मालूम कहाँसे, वहाँ दुकानदार आ गये थे। किसीकी गुड़-चनेकी दुकान थी, तो कोई हलवाई बना बैठा था। तेलकी पूरियाँ और तम्बाकूकी भी काफ़ी बिक्री थी। परचूनीवालोंको तो अवकाश ही न मिलता था। कुली और मज़दूर दाल-आटा लेकर गंगा किनारे रोटी बनाने लगते थे। दोपहर और शामको मुनिकी-रेतीमें यह मालूम होता था, मानो सेना पड़ाव डाले पड़ी है।

मुनिकीरेतीमें अनेक दुकानदार थे, पर उन सबकी जान था एक पंजाबी पकौड़ीवाला। उसके पास दुकानमें माल अधिक न था। एक कढ़ाई, दो लोटे, एक थाली और एक करछी और सेर दो सेर बेसन—बस, यही सामान उसकी दुकानपर देखा जाता था। दिनमें दो बार कढ़ाई चढ़ाता, और बात-की-बातमें अपनी पकौड़ियाँ बेच लेता। वह लोकप्रिय इतना था कि चलते आदमीसे उसकी दोस्ती हो

जाती थी। एक बार जिसने पकौड़ियाँ खाईं, वह रोज़ाना ही उसकी दुकानपर आता। ठलुआ लोग तक उसकी दुकानपर गप मारने आ जाते, और उसी बहाने पैसे दो पैसेकी पकौड़ी खरीदते। बात यह थी कि पकौड़ीवाला दिलका धनी था। दीन-दुखियोंको बची-खुची पकौड़ी बाँटना, आसपासके रोगियोंकी खबर-सुध लेना, सेवा-शुश्रूषा करना, भूके-प्यासेको खाना देना और लतीफ़े सुनाना उसके स्वभावमें शामिल था। अक्खड़ वह इतना था कि ठीक बातपर वह राज्यके दीवान और उनके रिश्तेदारों तककी परवा न करता था। भलोंके लिए वह कपिला गाय था, और दुष्टोंके लिए नंगी तलवार। बेलौस आदमी था, इसलिए, किसीकी परवा न करता था। उसकी लोकप्रियता और अक्खड़पनकी बातें राज्यके दीवान तक पहुँचीं, और पहुँचीं शिकायतके रूपमें; पर उसने उन शिकायतोंकी उपेक्षा ही की। अलमस्त पकौड़ीवाला अपनी दुकान करता रहा, और गंगाजीकी धारके समान उसकी बातें और लतीफ़ेबाज़ी चलती रहीं।

× × ×

जनवरी सन् १९२४ के एक प्रात:कालको पकौड़ीवालेने अपनी भट्ठी गरम की। हरिद्वार, ऋषीकेश और मुनिकी-रेतीका जाड़ा और तिसपर 'ढाड़ू' * का वेग! जाड़ा मज्जा तकको ठिठुरा रहा था। पकौड़ीवाला आग तेज़ करके तेलका बर्तन उठाने ज्यों ही मुड़ा, त्यों ही दुकानके सामने खड़े एक संन्यासीपर उसकी नज़र पड़ी। वह संन्यासी दुकानके सामने होकर प्रतिदिन टहलने जाया करते थे, और जिज्ञासु तथा कौतूहलपूर्ण दृष्टिसे उधर देखा करते थे। पकौड़ीवाला भी उनकी ओर देखकर अपने काममें लग जाता था। संन्यासीकी आकृति पकौड़ीवालेको देखकर ऐसी हो जाती थी, मानो उनकी स्मृति किसी भूले नामको स्मरण कर रही हो। किसी-किसी दिन वह संन्यासी पकौड़ीवालेकी दुकानके सामने ठिठक भी जाते थे; पर रुककर उससे बातचीत करनेका साहस न होता था। पकौड़ीवालेकी आकृति उस आदमीसे मिलती थी, जिसके वे अतिथि रहे थे, और उनके आतिथ्यमें जिसने सात-आठ हज़ार रुपया खर्च कर दिया था; पर उतना बड़ा आदमी अलादीनके लैम्पके जादूसे ही उस तुच्छ पकौड़ीवालेकी हैसियतमें आ सकता था—ऐसी शंकाके कारण संन्यासी उस पकौड़ीवालेसे कुछ न पूछते थे। उसकी सूरत तो उनके वैभवशाली मेज़बानकी-सी थी। वही छरहरा बदन, वही चेचकरू चेहरा और वही परिचित स्वर! पर वह आन और शान न थी। छै-सात मोटर रखनेवाले और लाखोंके व्यापारीसे पकौड़ीवालेकी सूरत क्यों मिलती है? क्या वह उनके धनी-मानी मेज़बानका कोई भाई है? क्या भाग्यचक्रके चपेटोंसे उसका कोई भाई गंगाकी शरणमें, पहाड़के सहारे, अपने अन्तिम दिन काट रहा है? इन सब प्रश्नोंका कोई उत्तर न मिल रहा था, इसलिए, संन्यासीने कई दिनके सोच-विचारके बाद उस दिन पकौड़ीवालेसे ही बात करनेकी ठान ली, और दुकानके सामने खड़ा देखकर पकौड़ीवाला मुसकराकर बोला—कहिये स्वामीजी महाराज! क्या जाड़ा लग रहा है? तापना चाहो, तो भट्ठीके पास आकर बैठ जाओ।

संन्यासी—जाड़ेकी कोई चिन्ता नहीं। वह तो रोज़की बात है। मैं आपसे एक बात पूछने खड़ा हूँ। तबीयत नहीं मानती। आपका नाम क्या है, बस, मुझे यह बतला दो।

पकौड़ीवाला (गम्भीरतासे)—मे—रा नाम हरनामदास है।

नाम सुनते ही संन्यासी महाराजकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया, और दोनों हाथोंसे अपना सिर पकड़कर बैठ गये, और विस्मयसे पूछा—बग़दादवाले हरनामदास?

हरनामदास—हाँ, महाराज, बग़दादवाला हरनामदास मैं ही हूँ।

संन्यासी—यह क्या बात हो गई! यहाँपर इस दशामें कैसे? यह तो अलिफ़ लैलाकी कहानी-सी घटना है?

* हरद्वार और ऋषीकेशके आसपास प्रातःकाल चलनेवाली हवा।
—लेखक
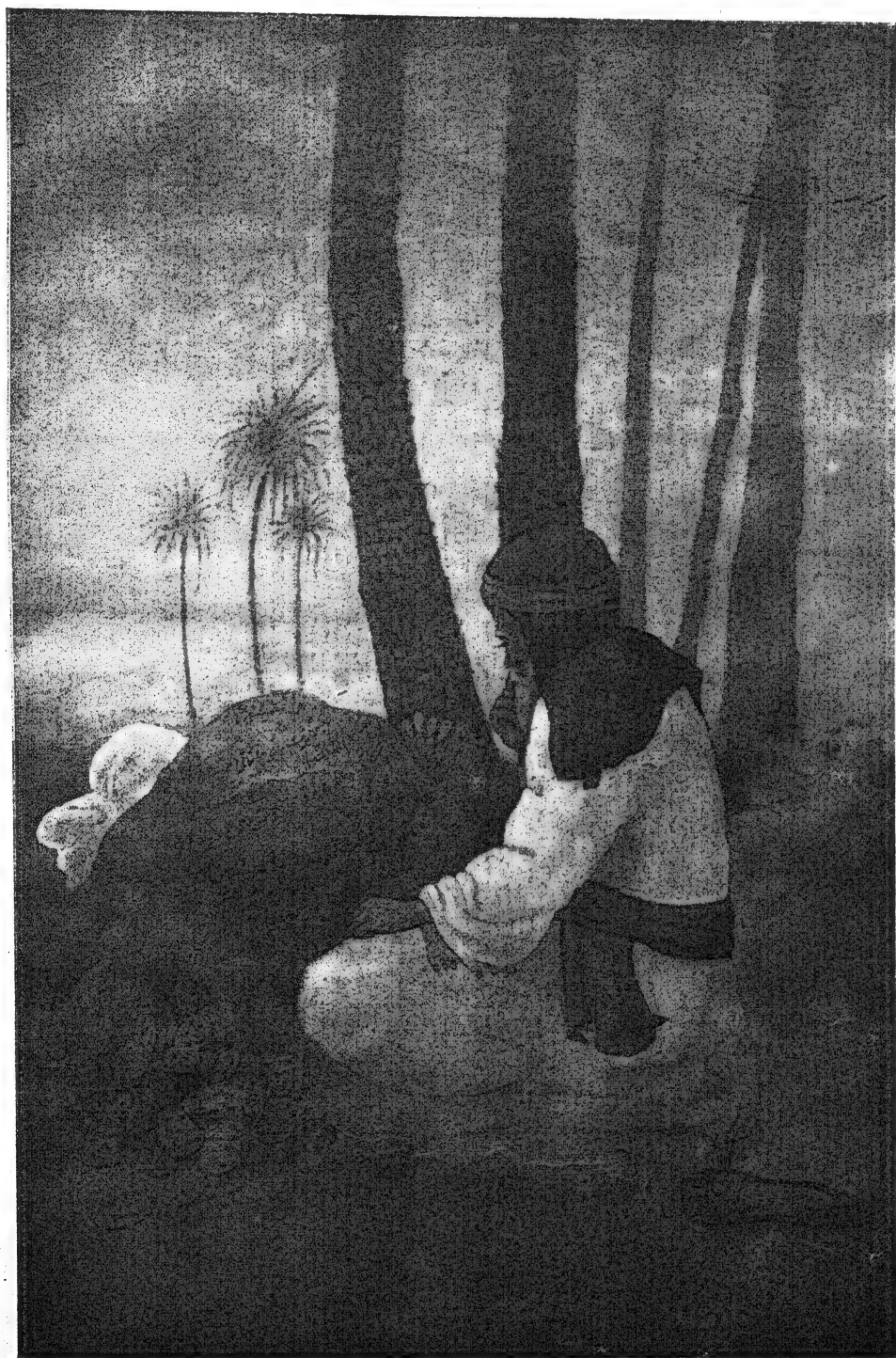
अन्तिम सन्देश

"विशाल-भारत"] [श्री ए० आर० इजाज

हरनामदास—मैं रहता भी अलिफ़ लैलाकी कहानियोंके देशमें था। घटना तो ठीक वैसी ही है; पर मुझे अफ़सोस ज़रा भी नहीं। आनन्द भी मैंने लूटा था। कमाया भी मैंने बहुत। सुख और आनन्दका दूसरा पहलू है दुख और कष्ट। जीवनका एक यह भी अनुभव है। खटाई और नमकके खाये बिना मिठाईका मज़ा नहीं आ सकता। सो स्वामीजी! उस मिठासका स्वाद इस कड़ुएपनसे आ रहा है।

संन्यासी (आश्चर्यसे)—वह तुम्हारा रुपया और सम्पत्ति क्या हुई?

हरनामदास—स्वामीजी महाराज! सम्पत्तिकी क्या बातें करते हो! वह तो आती है, और चली जाती है। लक्ष्मी ...री होकर किसीकी भी नहीं रही।

संन्यासी—भाई, मुझसे तो तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती। कहाँ तुम्हारे दर्जनों टहलुए, और कहाँ आज तुम··· इस दशामें!

हरनामदास (तनिक हँसते हुए)—स्वामीजी महाराज! आप तो ज्ञानवान हैं। आप तो रुपयेकी ओर देखते हैं। मेरी ओर नहीं। रुपया और सम्पत्ति जन्य वैभवसे मैं तो नहीं बदला। उस दशामें मैंने आपकी सेवा सोनेके कुछ टुकड़ोंसे की थी, जो मेरी सम्पत्तिका नगण्य भाग थे—बस, हाथके मैलके समान, और अब मैं आपकी सेवा अपनी पूरी सम्पत्तिसे करनेको तैयार हूँ, और नौकरोंके स्थानमें स्वयं मैं मौजूद हूँ।

ये बातें सुनकर संन्यासीने एक ठंडी साँस ली, और दुकानमें आकर भट्टीके सामने बैठ गये। आध घंटे तक वहाँ तापते रहे और हरनामदाससे बातें करते रहे। चाय पीकर वहाँसे वे शोक और चिन्ता-मुद्रामें डूबे चले गये।

× × ×

सन् १९२७ के आरम्भमें देहरादूनमें 'हिन्दू-संसार' के मानहानिवाले मुक़दमेकी सुनवाई हो रही थी। अभियुक्त-पक्षकी ओरसे गवाह बुलानेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी। मुद्दईके भयसे टिहरी राज्यसे जो गवाह आ रहे थे, वे अपनी हथेलीपर जान रखकर आ रहे थे। जनवरी या फरवरीकी किसी रातको वकीलके घरपर मुक़दमा-सम्बन्धी परामर्श रातभर होता रहा, और दो-एक विषयपर इतना वाद-विवाद हुआ कि प्रातःकालके छै बज गये। कई मित्र तो लेट रहे। थोड़ी देरके लिए मैं भी आरामकुरसीपर पड़ रहा, और साढ़े छै बजे कमरेके दालानमें बाहर निकला। दालानसे लगीं नीचे जानेको सीढ़ियाँ थीं। मेरा कमरेके बाहर निकलना हुआ, और सीढ़ियोंपर दो आदमियोंका चढ़ना। उन्हें नीचेसे ऊपर चढ़ते देख मैं खड़ा हो गया, और वे सीढ़ियोंसे ऊपर दालानमें आ गये। उनमें एक संन्यासी था, और दूसरा साफ़ा बाँधे, कृरहरे शरीरका—आकृति और भेषसे—पंजाबी। पूछनेकी भावनासे मैंने उनकी ओर देखा, और साफ़ेवाला आदमी बोला—बाबू चंडीप्रसाद वकीलकी यही कोठी है?

मैं—हाँ, यही है। कहो क्या है? कहांसे आये हो?

साफ़ेवाला—'हिन्दू-संसार' की तरफ़से गवाही देने ये (संकेत करते हुए) स्वामीजी आये हैं।

मैं (स्वामीजीकी ओर देखते हुए)—स्वामीजी महाराज! आपका शुभ नाम?

साफ़ेवाला—आपका नाम स्वामी कृष्णाचार्य है।

मैं—इस नामका कोई गवाह 'हिन्दू-संसार'की ओरसे तलब नहीं किया गया।

संन्यासी—मैं बिना तलब किये हुए ही आया हूँ। हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी मामला है। मैंने जब समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि अमुक अभियोग लगाया गया है, तो मैंने धर्मकी खातिर यह उचित समझा कि मैं स्वयं चलकर गवाही दूँ।

मैं—आपके पास इस बातका क्या प्रमाण है कि आप घटना-स्थलके गवाह हैं?

संन्यासी—मैं डायरी रखा करता हूँ। आप डायरी देख लें।

मैं (डायरी पढ़कर और साफ़ेवालेकी ओर सम्बोधित होकर)—आप कौन हैं?

साफ़ेवाला—आपको मुझसे क्या सरोकार ! स्वामीजीका एक सेवक हूँ ।

साफ़ेवालेकी यह रुखाई मुझे पसन्द नहीं आई, और मैं उसके उत्तरको अशिष्टतापूर्ण समझ कुछ कहने ही को था कि इतनेमें संन्यासी बोल पड़े—इनका नाम हरनामदास है। पहले ये बहुत बड़े व्यापारी थे। इनका लाखोंका कारोबार बग़दाद और बसरेमें था। अब मुनिकीरेतीमें रहते हैं।

हरनामदासकी बातचीतसे मुझपर अच्छा प्रभाव न पड़ा, और यह सन्देह होने लगा कि कहीं गुरु-चेलेकी मिली भगत न हो। मुझे स्वामीजी और हरनामदासकी बातोंमें 'मनतुराहाजी बिगोयम तू मिराक़ाज़ी बिगो' की गन्ध आई।

कुछ दिनों बाद मुझे ऋषीकेश जानेका अवसर पड़ा, और मिस्त्री केसरसिंहकी दुकानपर जाकर बैठा ही था कि भीतरसे हरनामदास निकला। मुझे देख कर वह बाग़-बाग़ हो गया, और ऐसे मिला, मानो वर्षोंसे मुलाक़ात हो। झटसे पानी लाया, और हाथ धोनेको कहा। मैंने बहुत कुछ कहा कि मुझे हाथ धोनेकी ज़रूरत नहीं, पर वह न माना। शीघ्र ही अँगूठेसे सोडाकी बोतल खोल दी और मेरे हाथमें दे दी। सोडा और लैमोनेड मुझे अच्छा नहीं लगता, पर उस आवाभगतके मारे मुझे मनमारके पीना पड़ा। सोडाके बाद फल और मिठाई खानी पड़ी। यह आतिथ्य उस शुष्क मिलनके कारण था, जब हरनामदास स्वामी कृष्णाचार्यको लेकर देहरादून गया था, और आठ-दस मिनटकी अति साधारण और वकीलोंकी-सी बातोंके उपरान्त मैंने उससे यह भी न पूछा था कि चाय पियोगे। भोजनकी तो बात ही क्या हो सकती थी। हरनामदासके स्वभावपर मुझे आश्चर्य था। खाने खिलानेमें उसकी आँखोंसे संतोष, प्रसन्नता और आत्म-गौरवकी ज्योति चू रही थी। उसकी आँखें रसीली-सी थीं। जो बात करता था, वह ऊँचे स्वरमें। भीतर और बाहर वह एकसा ही प्रतीत होता था।

हरनामदासके व्यक्तित्वका अनुमान तो मुझे ऋषीकेशमें हो गया था। उसकी मुखाकृतिसे उसके चरित्रका पता मैं कुछ लगा सका ; पर न-जाने क्यों इस बातपर विश्वास न होता था कि अरबमें उसने लाखों रुपये कमाये होंगे। मुझे उस कथनमें अतिशयोक्तिकी मात्रा अधिक मालूम होती थी।

× × ×

सन् १९२८ के जाड़ोंके दिन थे। खेतवाली कुटियासे मैं घर—गाँवमें—कोई चीज़ लेने गया था। अभी मैं घर पहुँचा ही था कि पीछेसे एक नौकर भागता आया कि ···साहब आये हैं। ···साहब एक अति उच्च पदाधिकारी थे। उनसे मिलनेमें, उन तक पहुँचनेमें, न-मालूम कौन-कौनसे नियमोंका पालन करना पड़ता था। वे महानुभाव कैसे आ गये। उन्हीं पैरों मैं लौटा, और कुटियापर आकर देखा, तो हरनामदास और···साहब हैं।···साहबको पीड़ासे इतना कष्ट था कि उनसे दस क़दम पैदल न चला जाता था। डेढ़ मील स्टेशनसे हरनामदास उनको अपनी पीठपर रखकर लाया था। उस दिनसे मुझे हरनामदासका वास्तविक रूप दिखाई पड़ा। तबसे कई महीने तक हरनामदासका गाँवमें रहना हुआ। बीसियों बार उसके साथ मैंने यात्रा की ; देहरादूनसे दिल्ली, दिल्लीसे कलकत्ता, शिमला, जयपुर और लखनऊ तक न मालूम कितनी बार वह साथ रहा।

हरनामदास···साहबकी क्रीतदासकी भाँति सेवा करता था। नौकरीके लिए नहीं। नौकरी तो वह परमात्मा तककी नहीं कर सकता, और न वह यह भविष्यकी किसी आशासे करता था। ऐसा करना होता, तो वह अपनी मुनिकीरेतीकी ढाई-तीन सौ रुपया मासिककी आमदनीकी दुकानको केवल सेवाकी खातिर चौपट न कर आता। उसके आने और सेवा करनेके केवल दो कारण थे—पहला तो यह कि···साहबने मनुष्यताके नाते हरनामदासकी कठिन बीमारीमें अपने नौकरोंसे कुछ शुश्रूषा करा दी थी। बस, उनके उस गुणपर हरनामदास लट्टू था। दूसरा कारण था···साहबका स्वार्थी और नीच लोगोंके कारण कष्ट और विपत्तिके आवर्तमें पड़ जाना। हरनामदासकी कोमल आत्मा किसीका कष्ट नहीं देख सकती। दूसरोंके कष्ट-निवारणके लिए

उसकी मनुष्यता दु:खित होकर आगे बढ़ती है, और अपने आपको होम देती है। इन्हीं दोनों कारणोंसे प्रेरित होकर हरनामदास···साहबकी सेवा करनेपर तत्पर हुआ था।

किसी व्यक्तिके दोष-गुण साथ रहनेसे ही प्रतीत होते हैं, नहीं तो दूरके ढोल सुहावने लगते ही हैं। हरनामदासके चरित्रका न केवल मैंने अध्ययन ही किया, वरन उसकी एक-एक बातको मैंने मालूम करनेकी चेष्टा की। हरनामदासके विषयमें मैंने जो प्रश्न किये, उनका उत्तर तो मिला ही, साथमें प्रमाण भी मिला।

× × ×

अम्बाला ज़िलेमें विरामपर (पो० बेला) नामका एक गाँव है। हरनामदासका जन्म वहीं हुआ था। उसके दादाको महाराजा रणजीतसिंहसे जागीर भी मिली थी। हरनामदासके पिता विरामपरकी एक विभूति थे। हरनामदासकी छोटी आयुमें ही वे चल बसे। माका विछोह पहले ही हो गया था। इस कारण बालक हरनामदासका लालन-पालन उसके चाचापर पड़ा। चाचा उसे बेहद प्यार करते थे; पर हरनामदासकी चाचीका व्यवहार उसके प्रति न तो मातृवत् था, और न चाचीका-सा। उसके चाचा इस बातको जानते थे; पर उस स्त्रीके आगे किसीकी नहीं चलती, जो घरकी मालिकिन कही जाती है। नौकरशाहीके कारनामोंको न देखकर कोई घरकी नौकरशाही स्वरूपा उस स्त्रीको देख ले, जो अपने बच्चों और अपने पतिके अतिरिक्त औरोंको गुलाम समझती है। ऐसी स्त्रियोंकी संकीर्णता और स्वार्थपरता पर ही सम्मिलित कुटुम्बकी नौका टकराकर चूर-चूर हो जाती है। ऐसी स्त्री सीधी-सादी स्त्रियोंको अपनी चालबाज़ीसे झूठा भी साबित कर देती हैं। बस, नौकरशाहीके-से सभी ढोंग रचती है। यदि इस व्यवहारसे तंग आकर कोई विद्रोह कर दे, तो आँसू बहाकर कहती है—"मरनेके बाद मैं क्या छातीपर रख ले जाऊँगी।" छातीपर रखकर तो कोई नहीं ले जाता, पर जमादारी नहीं छोड़ी जाती। हरनामदासको खाने-पीनेका कष्ट न था। घर भरपूर था। चाचाका दुलार था; पर चाचाका प्रेम चाचीकी जमादारीके कारण नहींके बराबर था। जहाँ चाचा घरसे दूर होते, चाची हरनामदासको दुत्कारती और धमकाती।

हरनामदास

घरकी मालिकिनकी जमादारी बड़ी भयंकर होती है। वह मारती भी है और रोने नहीं देती। हरनामदासको घर बूचड़खानेसे अति भयंकर मालूम होता था। कहीं भाग जानेको उसकी आत्मा तड़प रही थी।

× × × ×

सन् १८९५ में नौ वर्षके बालक हरनामदासने अपनेको मातृभूमिसे सैकड़ों मील दूर पाया; पर उसके लिए घरके नरकसे बसरा स्वर्गतुल्य था। उन दिनों पर्शियन आयल कम्पनीका दौर-दौरा था। उन दिनों नासीरियासे मिट्टीका तेल लानेके लिए पाइप लगाये जा रहे थे। कम्पनीका दफ्तर अबादानमें था। हरनामदासको भी कम्पनीकी नौकरी मिल गई, और वेतन था ३५) मासिक। कम्पनीके संचालकोंको एक बड़ी दिक्कत बोलचालकी अरबीके न जाननेकी थी। जो अंग्रेज़ आता था, वह बोलचालकी अरबी सीखनेका प्रयत्न करता था। बिना उसके वहांके लोगोंसे वार्तालाप और व्यापार करनेमें बड़ी कठिनाई थी। कम्पनीके नौकर टूटी-फूटी अरबीसे काम चलाते थे। हरनामदासका काम था वहांपर पाइपोंकी ढिमरियोंको कड़ा करना। उमर थोड़ी थी, और इस कारण वह अरबी लोगोंके घरोंमें बेधड़क चला जाता था, और बच्चोंमें खेल भी आता था। एक

विदेशी अबोध बालकको देखकर अरबी स्त्रियाँ उससे बातें करने लग जातीं, और उसके मातृ-विछोहपर तरस खातीं। हरनामदास इस प्रकार बोलचालकी अरबी जानने लगा। बच्चोंमें खेलने जाता, और वहांकी स्त्रियोंसे बातें करता। बोलचालकी भाषा सीखनेके लिए सबसे अच्छा ढंग है भाषा-भाषियोंके गार्हस्थ-जीवनसे सम्पर्क। बालक होनेके कारण हरनामदासको ऐसा अवसर मिला। हँसी और खेलका आनन्द समवयस्कके साथ ही होता है। बच्चे और जवानके खेलमें हृदयकी कलीकी सुगन्ध-संचारिणी चटकन नहीं। हरनामदासका खेल-कूदका समय अरबी बच्चों और स्त्रियोंमें बीतता। फल-स्वरूप बोलचालकी अरबीपर उसका असाधारण अधिकार हो गया।

× × × ×

पर्शियन आयल कम्पनीके प्रधान इंजीनियर अपनी नवविवाहिता बधूके साथ एक दिन टहलने जा रहे थे, और दोनोंमें इस बातपर बाज़ी लगी हुई थी कि कौन अरबी अधिक जानता है। किसी शब्दपर वाद-विवाद था। पतिका कहना था कि अमुक चीज़का अमुक अरबी नाम है, और पत्नी उस चीज़का कोई दूसरा ही अरबी नाम बताती थी। हरनामदास अरबी लोगोंके घरसे निकल रहा था, और उसने दोनोंकी बातें सुनी। दोनोंको ग़लत पाकर बाल-स्वभावानुसार हरनामदासने मुसकराकर कहा—"आप लोग दोनों ग़लत हैं।" यह कहकर उसने उस चीज़का अरबी नाम बता दिया। इंजीनियर और उसकी स्त्री हरनामदासकी बातोंसे बड़े प्रभावान्वित हुए, और एक अरबीको बुलाकर उन्होंने हरनामदासकी बातकी सत्यताकी जाँचकी और उस अरबी और हरनामदासमें बातें करा दीं। हरनामदासने फर्राटेके साथ अरबी बोली। साहबकी आँखें खुलीं। मेम तो उसपर मुग्ध हो गई, और अगले दिनसे हरनामदासकी ड्यूटी साहबके बँगलेपर लग गई। काम था साहब और मेमको बोलचालकी अरबी सिखाना। मज़दूरीके कामसे एक प्रकारकी अध्यापकी मिली।

इधर हरनामदास तेज़ीसे बालपनसे युवावस्थाकी ओर क़दम बढ़ा रहा था। वहांके रहन-सहनसे उसको खाने-पीनेका शौक़ लग ही गया था। मयनोशी तो वहाँकी साधारण-सी बात थी। मयनोशीके साथ जवानीकी अलमस्ती भी बढ़ रही थी। युवावस्था उसके चेहरे-मुहरेसे फूट-फूटकर निकल रही थी। चितवनमें वह बालपनका भोलापन न था। हँसीमें वह दैवी माधुर्य न था। और तो और, प्रकृतिने भी युवावस्थाका साइन बोर्ड—दाढ़ी और मूँछ—मुँहपर लगा दिया था। ईरानकी वायुने कहा—"ए जवांमर्द, नौकरीकी जड़ आकाशमें है। वह गुलामीका परिष्कृत रूप है। तू आगे बढ़ और व्यापार कर। नौकरीकी सांकरी बटियापर कब तक चलेगा?" युवा हरनामदासने होंठोंपर के दोनों मिक़नातीसों—मूछों—पर हाथ फेरा और कहा—"एवमस्तु।" अगले ही दिन मेम साहबसे उसने कहा—"मेम साहिबा, मैं तो अब दुकान करूँगा। नौकरी न मुझे पसन्द है, और न उसमें मुझे मज़ा ही आता है।"

मेम हरनामदासपर बहुत प्रसन्न थी, और उसने अगले ही दिन दर्जनों मज़दूरोंको लगाकर हरनामदासकी दुकान तैयार करा दी। बाँस और लकड़ीके तख़्तोंसे कामचलाऊ बहुत बढ़िया दुकान बन गई, और तीसरे दिनसे बिक्री होने लगी।

अबादानमें पर्शियन आयल कम्पनीकी सीमाके निकट पहले एक ही दुकान थी। प्रतिद्वन्द्विताके अभावके कारण दुकानदार ग्राहकोंकी परवा न करता था। कसके दाम लेता था, और तिसपर नख़रे दिखाता था। हरनामदासकी दुकान खुलते ही ग्राहकोंकी आमदका तूफ़ान उसकी ओर आने लगा, और अन्धाधुन्ध बिक्री होने लगी। इसके अतिरिक्त कुछ अनुचित व्यापार भी हुआ, और वह था लुका-छिपाकर मंजूरशुदा मिक़दारसे अधिकमें शराबका बिकना। कस्टमवालोंकी जेबें गरम की गई, और किसी दूसरी चीज़के बहाने हरनाम-दासकी दुकानमें सैकड़ों दर्जन शराबकी बोतलें भी आने लगीं। एक वर्षमें ही अस्सी हज़ारका मुनाफ़ा हुआ, और वह रक़म प्रतिवर्ष बढ़ती ही गई।

पापमें पतनके बीज स्वतः ही हुआ करते हैं, और समय पाकर वे ऐसे फूट निकलते है, जैसे ज़मीनमें छिपे घासके बीज बरसातका पानी पड़ते ही उग पड़ते हैं। लोगोंको हरनामदासकी इस सम्पत्ति-नदीकी चढ़ती और बढ़ती धारको देखकर ईर्ष्या हुई। उन्होंने कम्पनीके मैनेजरसे शिकायत की कि हरनामदास चोरीसे शराब बेचता है। बेचते सब थे, और शिकायत करनेवालोंने इस कारणसे शिकायत न की थी कि चोरीसे शराब बेचनेके वे विरोधी थे, वरन् इसलिए कि वे उस प्रकारके व्यापारमें अपना भाग चाहते थे। तहक़ीक़ात हुई। हरनामदास अपने पुराने मित्र इंजीनियर तकसे लड़ बैठा। उसने इस बातको स्वीकार किया कि वह इस प्रकार शराब बेचता है ; पर उस प्रकारके व्यापारमें गोरोंकी शै ही नहीं, वरन् हाथ भी था। गौरांग प्रभुओंको यह बात असह्य थी। चोरीसे शराब बिके ! कोई बेचे, और चाहे कोई पिये ; पर क़ानून और प्रकाशनमें यह बात न आये कि गोरे लोग भी उस काममें शामिल हैं। हरनामदासकी हितैषिणी मेम उस समय विलायतमें थी, और उसके पतिसे, जो अब मैनेजर था, हरनामदासकी ठनी हुई थी। मुक़दमेबाज़ीमें लगभग सब रुपया फुँक गया। मुक़दमा-रूपी कुम्भज उस दो-चार लाखकी निधिको सूँत गये ; पर हरनामदासकी बात रह गई।

× × ×

सन् १९१४ का महायुद्ध-रूपी ज्वालामुखी फूट पड़ा। सम्पूर्ण यूरोप धुआँधार हो उठा। टर्कीने इंग्लैंडके विरुद्ध मोरचा लिया, और जर्मन सैनिक जनरलोंने अंग्रेज़ोंको चारों ओर परेशान कर दिया। जर्मन और तुर्कोंके आक्रमणोंको रोकनेके लिए जनरल टाउनशैंड बग़दादकी ओर भेजे गये। जंगी जहाज़ 'स्पैकिल' बग़दादकी खाड़ीमें तोपोंसे सुसज्जित खड़ा था ; पर टाउनशैंडको ऐसे आदमियोंकी ज़रूरत थी, जो अरबीको ख़ूब बोल लेते हों, और सैनिकोंको खाद्य-सामग्री भी दे सकें। चिन्तामग्न जनरल टाउनशैंड गुप्त रूपसे पर्शियन आयल कम्पनीके दफ्तरमें आये, और ऐसे आदमीकी खोजमें लगे। मैनेजर तकको हरनामदासकी ही सिफ़ारिश करनी पड़ी। यद्यपि वह हरनामदाससे खार खाये बैठा था ; पर मरता क्या न करता। हरनामदासको छोड़कर वहाँपर कोई दूसरा ऐसा आदमी न था, जो बोलचालकी अरबीमें दक्ष हो, और जो व्यापारको जानते हुए अपनी जान हथेलीपर लिए फिरता रहे। जनरल टाउनशैंडकी और हरनामदासकी बातचीत हुई, और उसी दिनसे दोनोंकी दोस्ती गँठ गई।

× × ×

तूफ़ानसे जैसे मरुभूमिमें टीले कहीं-के-कहीं जा बनते हैं, उसी प्रकार युद्धके तूफ़ान कालमें सम्पत्तिकी ढेरियाँ लग गईं। ऐरे-ग़ैरों तककी बन आई। पाट, फाटका, रुई और युद्धकी सामग्री बेचनेवालोंकी पाँचों घीमें थी। लाखों आदमी मर रहे थे। घायलोंके चीत्कार और तोपोंकी गर्जनासे सब दिशाएँ काँप रही थीं। विधवाओंकी आहोंसे सहृदयोंके टुकड़े हुए जाते थे ; पर व्यापारी बन रहे थे। जिनको युद्धसे पहले बातचीत करनेका शऊर तक न था, वे ठेका या व्यापारके कारण नवाब बन रहे थे। ऐसे कालमें हरनामदासकी कौड़ी चित पड़ी, तो क्या आश्चर्य। वह तो रणक्षेत्रमें था, जहाँ बीसियों बार बम उसके पास फटे, और जहाँ गोलियोंकी आकस्मिक वृष्टिसे उसके साथियोंके हाथके ग्रास हाथमें रह जाते थे। हरनामदासने यदि एक-एक दिनमें तीस-तीस हज़ार कमाया, तो क्या आश्चर्य।

बग़दादमें हरनामदासकी धाक थी। जनरल टाउनशैंडके वह खास दोस्तोंमें था। उनके कैम्पमें वह किसी भी समय जा सकता था। सिपाहियोंके लिए वह हलवाईकी दुकान किये था, और उसकी कई दुकानें थीं, पर बग़दादमें ही उसकी खास गद्दी थी।

वाई० एम० सी० ए० के साथ भी हरनामदासने काम किया था, और इतना अच्छा काम किया था कि स्वर्गीय के० टी० पालने उसके विषयमें समाचारपत्रोंमें लिखा।

तीन-चार वर्षकी लड़ाईमें हरनामदासने पचास-साठ लाख रुपया कमाया।

× × ×

तोपें गरजतीं और गोले उगला करतीं। युद्धकी भयंकरता उग्र हो रही थी; पर संसारके सभी काम हो रहे थे। हरनामदासका भोग-विलास भी जारी था। सायंकालको जब अवकाश मिलता, तो दोस्तोंकी बैठक जमती। ईरानी, इटालियन और फ्रांसीसी शराब—बढ़िया-से-बढ़िया शराब—के दौर रहते। उधर महफ़िल सजती और तबला ठनकता। बग़दादकी बढ़िया-से-बढ़िया नर्तकीका नृत्य होता, और महफ़िलमें एक-एक हज़ारका नोट फेंक दिया जाता। नर्तकी उसको आँखके पलकोंसे उठा लेती।

रातको सोते समय दर्जनों नौकर उसकी टहलमें लग जाते। कोई टाँगे दबाता, तो कोई उँगलियाँ चटकाता, और बग़लमें पचास रुपया मासिक वेतन और ख़ुराकपर कहानी कहनेके लिए रखा हुआ पठान कहानी कहने लगता। ग़म ग़लत तो हरनामदासको करना न था। उसके भोग-विलासकी एक दिशा थी। सिक्ख-धर्मका उसपर प्रभाव था। उसने उसकी रक्षा की। वहाँके समाजने सच्चरित्रताकी जो सीमा बाँध दी है, उसका उल्लंघन उसने नहीं किया। उसने वहाँ सत्रह विवाह किये थे, अरबी स्त्रियोंसे वहाँके क़ानूनके अनुसार निकाह नहीं, मुताह किये थे। कुछ दिनोंके लिए एकसे मुताह किया, और नियत समयके बाद उसको तलाक़ दे दिया।

इस आपत्तिजनक चित्रके पहलूका एक दूसरा रूप भी था। हरनामदासने युद्ध-कालमें बिक्रीकी आमदनीमें आनेवाली दुअन्नियों और चौअन्नियोंको गद्दीपर नहीं रखा। ग़रीबों और ज़रूरतवालोंमें बाँट दिया करता था। स्मरण रहे, दुअन्नी और चौअन्नीसे प्रतिदिन सैकड़ोंकी आमदनी होती थी। हलवाईकी दुकानपर दुअन्नी और चौअन्नियोंका आना—अधिक संख्यामें आना—स्वाभाविक ही था। यदि एक रेजमेंटके लिए हज़ारोंकी खाद्य-सामग्री जाती थी, तो लड़ाईसे लौटे हुए सिपाही—फ़ायरिंग लाइनसे दूर—ख़ुद मिठाई लेकर खाते थे। ग़रीब आदमियोंकी कन्याओंके विवाहका ख़र्च हरनामदास अपने ऊपर ले लेता था। जिसका कहीं ठिकाना न था; जिसको भाग्यने ठुकरा दिया था, उसका आश्रय हरनामदास था। कष्ट-पीड़ितोंकी रक्षाके लिए वह बड़े-से-बड़े गोरेको कुछ न समझता था। सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेटकी हैसियतके अनेक गोरोंको उसने पिटवाया था। जब जनरल टाउनशैंडके साथ उसकी दोस्ती थी और जब हरनामदास उनकी नाकका बाल हो रहा था, तब किसी टुटपुँजिये गोरेका क्या ताब, जो हरनामदासके विरुद्ध कुछ कर सके! युद्धकालमें वर्ण-भेदपर ग्रहण लग गया था।

× × ×

कुतका घेरा पड़ा, और जनरल टाउनशैंड तथा उनकी सेना फन्देमें फँस गई थी। हरनामदासने हवाई-जहाज़ोंसे खाद्य-सामग्री पहुँचाई, और यदि पाँच मिनटकी देर हो जाती, तो हरनामदासको भी टाउनशैंडके साथ आत्म-समर्पण करना पड़ता।

× × ×

दिनके बाद रात और रातके उपरान्त दिनका होना प्रकृतिका नियम है। युद्धके उपरान्त शान्ति हुई। हरनामदासने रुपया भी कमाया। यश भी कमाया। मेडल्स (तमग़ा) और धन्यवादकी तो गिनती ही क्या। उसको पंजाबमें कुछ ज़मीन भी पुरस्कार-स्वरूप मिलनेकी आज्ञा हुई; पर बग़दादमें अब जनरल टाउनशैंड और मौडका दौरदौरा न था। ब्रिटिश साम्राज्यपर से शनिश्चरका ग्रह हट गया था। वर्ण-भेदका ग्रहण भी समाप्त हो चुका था।

गोरे और कालेके भेदका पिशाच अधिकारी गोरोंके सिरपर चढ़कर बोलने लगा। एक दिन हरनामदासकी गद्दीपर पुलिसने छापा मारा, और उसको यह हुक्म दिया गया कि तीन घंटेके अन्दर बग़दाद छोड़कर हिन्दुस्तान चले जाओ। हरनामदास अपने नशेमें चूर था। उसने पुलिसकी धमकीको कोरा मज़ाक़ समझा; पर वह मज़ाक़ न था।

हरनामदासके कई आदमियोंको पुलिसने पहले ही से मिला रखा था। उन्होंने पुलिसके षड्यन्त्रमें सहायता दी। ठीक समयपर हरनामदासको जहाज़पर पुलिसके घेरेमें लाया गया। गद्दीपर उस समय अस्सी हज़ार रुपये थे। एक मुसलमान मुनीमको साथ लेकर हरनामदास, अस्सी हज़ार रुपयोंके साथ, हिन्दुस्तानको रवाना हो गया। खयाल था युद्ध-सेवा और मेडलोंके ज़ोरसे पुलिसके षड्यन्त्रको फोड़ दिया जायगा; पर भाग्यका तख्ता पलट चुका था। भारतवर्षमें पहुँचते ही मुसलमान मुनीम सत्तर हज़ार रुपया लेकर भाग गया! विपत्तिका पहाड़ टूटकर सीधा सिरपर आ रहा था; पर हरनामदासको कोई चिन्ता न थी। शेष दस हज़ार रुपया तो था ही, और अरबकी लाखोंकी सम्पत्ति उसीकी तो थी, ऐसा उसका खयाल था। लाखों रुपया उसने भले कामोंमें व्यय किये थे। तेरह लाख तो उसने मुताह और रँगरेलियोंमें ही उड़ा दिये थे, और लाखों रुपया उसके पास था। छै-सात दुकानें थीं, और भी सम्पत्ति थी; ऐसी दशामें मुनीमने नमक-हरामी की तो क्या बात है। 'हंडिया फूटी'पर कुत्तेकी ज़ात मालूम हुई' की-सी भावनासे हरनामदासने पहले गंगा-स्नानकी ठानी। विदेशमें चौबीस वर्ष रहनेके बाद वह लौटा था। गंगाजीके प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक था। फ़र्स्ट क्लासका टिकट कटाकर वह हरिद्वारके लिए रवाना हो गया।

हरिद्वारके समीप लुक्सर जंकशनपर हरनामदासने खिड़कीसे बाहर देखा, तो आर्तनादमें एक साधु कह रहा था—"बाबा, एक पैसा दे! भगवान तेरा भला करेगा। बाबा, कलसे कुछ नहीं खाया।" ऐसी घटनाओंसे हरनामदासका कोमल हृदय सर्वदा पिघलता रहा है। जब साधु हरनामदासके डब्बेके पास होकर निकला, तो वही आवाज़ लगाई। हरनामदासने एक खोमचेवालेको बुलाकर कहा—"इस साधुको भरपेट पूरियां और मिठाई खिला दो। दाम मैं दूँगा।" साधुसे बहुत न खाया गया। उस प्रकार कहकर माँगनेकी उसकी तो बान थी। साधुने पानी पीकर हरनामदासको आशीर्वाद दिया—'बाबा, तेरे बेटे अमर हों।" बेटोंकी बात सुनकर हरनामदासने मुसक... "हरिद्वार तो गंगा-स्नान करने नहीं जायगा?"

"हाँ, बाबा चलेंगे।"—कहकर साधु तयार हो गया।

× × ×

हरिद्वारमें जाकर एक धर्मशालामें डेरा डाला। धर्मशालाके प्रबन्धकने साधुको धर्मशालामें ठहरनेकी आज्ञा न दी, पर दस रुपयेके एक नोटने प्रबन्धकको मोमकी भाँति पिघला दिया। रात हुई। हरनामदासने शराबके कई पैग चढ़ाये, और सुबह आँख खुली। साधु नदारद था, वह हरनामदासके बचे-खुचे दस हज़ार रुपयोंके नोटोंको लेकर चम्पत हो गया था! महासागरके बीच, जहाँसे समुद्र-तट सैकड़ों मील हो, हरनामदासका जहाज़ डूब गया। पास-पल्ले कुछ नहीं था। कलाईमें बँधी साढ़े सात सौकी एक घड़ी थी। सोचा, उसीको बेचकर घर जाया जाय। घड़ी जो बेचनी चाही, तो चालीस रुपयेसे अधिक किसीने दाम न लगाया। हरनामदासके मानको ठेस लगी। सबके सामने उसने घड़ीको पत्थरपर रखा, और धड़ामसे उसे जूतेकी ऐड़से चूर-चूर कर दिया। लोगोंने उसे पागल समझा। कुछ आदमियोंकी भीड़ उसके चारों ओर एकत्र हो गई। हरनामदासके चेहरेपर गम्भीरता और उदासीनताका दृश्य था। लोगोंकी भीड़को चीरता हुआ बोला—"जब मेरे इतने रुपये काम न आये; जब साढ़े सात सौकी घड़ीका मूल्य चालीस रुपया ही लगे, तो फिर वह घड़ी ही मेरी क्या सहायता कर सकती है।"

× × ×

काली कमलीवालोंके यहाँ एक विचित्र आकृतिका व्यक्ति रसोइयाका काम करता था। हाल ही में आया था। वहाँकी भीतरी हालत देखकर और दाढ़ीसे दोषोंको छिपानेवालोंकी वास्तविकतासे चकित होकर उसे बड़ा दुःख हुआ। नौकरी उससे कभी हो नहीं सकती थी। बदकलामी सहना उसके खूनमें न था। एक अधिकारीने उससे कुछ कह दिया, और उस रसोइयाने उसे ठोंक-पीट दिया, और नौकरी छोड़कर वह चला गया। पीटनेवाला रसोइया हरनामदास था।

हरनामदासने बहुत हाथ-पैर पीटे। लिखा-पढ़ी बहुत की। कागज़ात, मेडल्स और टाउनशैंड-मैत्री और युद्ध-सेवाकी तोप भी चलाई, पर कुछ न हुआ। न तो उसको बग़दाद जानेका पासपोर्ट मिला, और न सरकार—शायद ईराक़-सरकार—के यहाँसे कुछ हुआ। जवाब आया, तो यह आया कि उस नामका कोई आदमी वहाँ न था, और न उसका वहां कुछ रुपया है। हरनामदासका कहना है कि चलते समय नशेमें उसके मुख्तारने, पुलिसकी शैसे, न मालूम किस कागज़पर हस्ताक्षर करा लिये थे।

× × ×

जनरल टाउनशैंड और जनरल मौडके मित्र, कुतको हवाई-जहाज़से सहायता देनेवाले और स्वर्गीय के० टी० पालके परिचित हरनामदासको इस प्रकारके व्यवहार और अंग्रेज़ अधिकारियोंकी क्षणिक स्मरणशक्तिपर इतनी ग्लानि हुई कि उसने अपने कागज़ात, सर्टीफ़िकेट, पत्र और मेडल्स गंगाजीके गर्भमें अर्पित कर दिये। वह अपने पुराने वैभवको भुलाने लगा, और अति साधारण व्यक्तिकी भाँति अपना जीवनक्रम बना लिया।

किसीको उसकी पूर्व दशा, इतने रुपये और टाउनशैंड-दोस्तीका सहजमें विश्वास नहीं हो सकता। स्वयं मुझे नहीं हुआ था; पर जब मैंने कागज़ात देखे और सर्टीफ़िकेट तथा पत्रोंका अवलोकन किया, तो अपने भ्रमपर बड़ा क्षोभ हुआ। संसारमें कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जिनको हम अपने संकीर्ण अनुभवकी कसौटीपर कसते हैं, और हरएकको अपने मानसिक क्षितिजके भीतर ही समझते हैं।

× × ×

हरनामदाससे मैं सन् १९२८ से भलीभाँति परिचित हूँ। उसके पास रुपया नहीं है; पर दिल वही है, वही उदारता है। यदि उसके पास चार-पाँच रुपये हुए और उसने किसीको कष्टमें देखा, तो उसकी सहायता करनेमें वह कभी नहीं चूकता। सेवा करना उसका खास गुण है। साधारण-से-साधारण आदमीसे वह सैकेंडोंमें दोस्ती कर लेता है। किसीसे कुछ माँगना उसके लिए हराम है।

मैं उसके दोषोंको भी जानता था। शराब, सिगरेट, अफ़ीम, गाँजा और भाँग—सबकी उसे आदत थी। शराब तो बग़दादी बीमारी थी। सिगरेट साधारणसी बात हुई। अफ़ीम दमके रोगको दबानेके लिए खाई जाती थी। गाँजा और भाँग ऋषिकेशमें साधुओंने पिलाना प्रारम्भ करा दिया था। मैंने एक दिन दुखी होकर उससे कहा—"हरनामदास, ये नशे तुम्हारे नामपर बट्टा लगाते हैं। तुम्हारे रूपके अनुरूप नहीं हैं। इनका छोड़ना तुम्हारे लिए असम्भव ज़रूर है; पर क्या तुम शराब और गाँजा नहीं छोड़ सकते?" हरनामदासने कोई उत्तर नहीं दिया। देशमें शराबखोरी और अन्य मादक द्रव्योंके विरुद्ध आन्दोलन भी था। सायंकालको हरनामदासने सिगरेट, गाँजा और अफ़ीमकी पुड़ियोंको फेंक दिया, और सब नशोंसे तोबा कर ली। एकदम छोड़नेसे उसे काफ़ी कष्ट हुआ। मरणासन्न हो गया; पर व्रतसे वह टला नहीं, और आज तक वह उसपर डटा है। किसी प्रकार उसके पास फिरसे रुपया भी आ जाय, तो भी, वह मदिरापान या कोई और नशा न करेगा—ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

× × ×

जनवरी सन् १९३१ में मैं देवघरसे कलकत्ता आया, तो तुलापट्टीमें हरनामदासको रोग ग्रसित पाया। कलकत्तेकी तुलापट्टी एक तो वैसे ही भट्टी-सी बनी रहती है, तिसपर हरनामदासने वहां छोटीसी दूधकी एक दुकान खोली थी। बुखार जो आया, तो तीन दिन तक चारपाईपर पड़ा रहा। कोई पानी देनेवाला तक न था। हम लोग (मेरे बड़े भाई और मैं) जो आये, तो हरनामदासकी तबीयत हरी हो गई। उसकी सूरत-शक्ल ऐसी हो गई थी, मानो क़बरिस्तानसे उखाड़-कर किसीको चारपाईपर रख दिया हो। दवादारू की और सिंघीबागान और चित्तरंजन एवन्यूके तिराहेपर उसकी दुकान करा दी। वहाँ भी वह ग़रीबोंको न भूलता था। दो-एक कंगालको राजेन्द्र मल्लिकके यहाँ चाहे भोजन न मिले; पर याचना करनेसे हरनामदासके यहाँ कुछ-न-कुछ जरूर मिल जाता था।

हरनामदासको हम लोगोंने समझाया—"तुम किसके लिए दुकान करते हो ? बाल-बच्चोंकी तुम्हें चिन्ता नहीं। अपनी जान क्यों खटाईमें डालते हो ? कलकत्ता बग़दाद नहीं है। यहांपर वहांकी-सी ईमान्दारी नहीं। दुकान छोड़ मौज करो। कलकत्तेकी दुर्गन्धपूर्ण वायुका क्यों सेवन करते हो।"

हरनामदासकी समझमें यह बात आ गई, और उसने ५ मई सन् १९३२ को कलकत्ता छोड़ दिया, और आजकल वह गाँवमें कुटियापर है। बिना कामके हरनामदाससे रहा नहीं जाता, सो सुबह उठकर, वह खुरपी लेकर पपीतों और नीबूके पेड़ोंकी नराया करते हैं और मट्ठा और रोटीपर भगवानका नाम लेकर गुज़ारा करते हैं। वे न तो मेरे नौकर हैं, और न आश्रित, घरके एक आदमीकी तरह रहते हैं। बग़दादी रईसको नौकर रखनेकी अपनी हैसियत नहीं। हरनामदास रईस ही हैं। पैसा पास नहीं है ; पर तबीयत वैसी ही शाहाना है।

हां, ईरानमें हरनामदासका एक मकान भी है, और उसका किराया भी अब तक उसके चचेरे भाईके नाम आता है। उसके गाँवमें चचेरे भाई हैं। ख़ूब सम्पन्न हैं। दो-चार बार बुलाने भी आये हैं ; पर घरकी ओर हरनामदासके पैर नहीं पड़ते। घरसे दुखी होकर गया था, इसलिए, घरवालोंको केवल सत्तर हज़ार रुपये दिये थे। उसका विचार है कि अब फ़क़ीराना हालतमें घरकी ओर न जाया जाय।

× × ×

हरनामदासकी जीवन-कथा बड़ी उपदेशप्रद है। धन-सम्पत्तिके गर्वसे मदान्ध लोगोंको उससे शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्यके भाग्य पलटनेमें कोई देर नहीं लगती। धन और शानका घमण्ड वृथा है। अकबर और शाहजहांके अनेक वंशज टुकड़े-टुकड़ेके लिए तरस रहे हैं।

हरनामदासकी कथा स्मरणकर हृदयसे एक ठंडी साँस निकलती है, और कानोंमें यह गूँज होने लगती है :—

"जिनके तबेलों बीच कई दिनकी बात है,
हरगिज़ न था इराक़ियो अरबीका वाँ शुमार।
अब देखता हूँ मैं कि ज़मानेके हाथसे,
मोचीसे कफ़शपाको गठाते हैं वह उधार।"
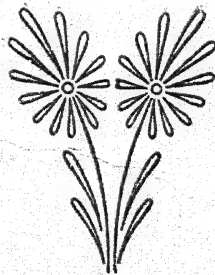
जानी दुश्मन

हम लोग साथ-साथ यात्रा कर रहे थे। मेरे साथ एक ही घोड़ा था, मगर था बड़ा अच्छा—मैं जानता हूं कि वह अच्छा घोड़ा था, क्योंकि मैं कई बार उससे गिर चुका था; प्रायः मैं अच्छे घोड़ेसे ही गिरा करता हूं। वह बड़ी शानसे जल्दी-जल्दी क़दम आगे रखता और हवामें सिर ऊँचा करके चलता था। मेरा साथी अपनी सफ़ेद घोड़ीपर चुपचाप शान्तिपूर्वक सवार था। उसके साथ चार-पाँच लद्दू घोड़े भी थे, जो उसके पीछे-पीछे आ रहे थे, मगर उनपर कोई बोझा नहीं लदा था।

वह बड़ा मज़बूत आदमी था। उसका क़द लम्बा और कंधे चौड़े थे, पर उसका चेहरा कुछ मरियल और पीला-सा था। वह अपनी राष्ट्रीय पोशाकमें था, जिसकी जाकेटमें सामनेकी ओर चमकदार बटनोंकी कतारें थीं, और सिरपर चमकीला रेशमी रूमाल बँधा हुआ था, जिसके दोनों छोर सिरके दोनों ओर लटककर कंधेपर तथा छातीपर झूम रहे थे। इस पोशाकने उसे ऐसा सुन्दर बना दिया था कि मेरी आँखें उसपर गड़ी हुई थीं। मैं इसी डरसे उससे बोलता भी नहीं था कि बोलनेसे कहीं चुपचाप उसे देखनेका आनन्द नष्ट न हो जाय।

उसका नाम था डायको म्राओविच।

मैंने उसके विषयमें आश्चर्यजनक कहानियाँ सुन रखी थीं। वह डाकू कहकर प्रसिद्ध था, और लोग उसकी बहादुरीकी प्रशंसा करते थे। उसके डरसे हेरज़ेगोविनाका अधिकांश भाग कुछ समय तक थर्रा उठा था। यही कारण था कि उसके सम्बन्धमें मुझे इतना अनुराग उत्पन्न हो गया।

तुम अपने साथ इतने लद्दू घोड़े क्यों रखते हो, जब तुम इनपर कोई बोझ नहीं ढोते?"—बहुत देर तक चुप रहनेके बाद, उससे बातचीत करनेके ख़यालसे, मैंने पूछा।

"मैं इनपर बोझा लादकर नगर ले गया था, अब वहींसे लौटा आ रहा हूं।"

"क्या चीज़ें ले गये थे?"

"बहुतसी चीज़ें थीं—रोटी, आलू, गोभी।"

"किसके लिए?"

"स्वर्गीय अली मुयाविचके बच्चोंके लिए।"

मैं ठिठक गया, और आश्चर्यसे उसकी ओर देखने लगा। अली मुयागिच बहुत बहादुर और अत्यन्त निष्ठुर तुर्कोंमें से था, और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह म्राओविचोंका जानी दुश्मन था!

"क्यों, क्या तुमने उनसे कोई खेत लगानपर लिया है?"

"नहीं, पर मैं उनका ऋणी हूं—अत्यधिक ऋणी हूं।"

वह चुप हो गया। उसने सिर झुका लिया, और अपने घोड़ेकी नाकपर कोड़ा मारा, यद्यपि जानवर तेज़ीसे जा रहा था। घोड़ेने पुश्त मारी, और एक ओर हट गया। एक बार फिर उसने कोड़ा मारा, और तब घोड़ा सीधा आगेको भागा।

यह देख, आगे कुछ और पूछ-ताछ करनेकी मैंने परवा नहीं की। अपने घोड़ेकी लगाम ढीलकर, मैंने धीमे स्वरमें गाना शुरू किया; वह गाना किस किस्मका था, यह अब मुझे स्मरण नहीं।

जान पड़ा कि उसे वह गाना बहुत भाया; क्योंकि वह अपने घोड़ेको मेरे घोड़ेके पास ले आया, और ध्यानपूर्वक सुनने लगा।

"ज़रा ज़ोरसे गाओ।"

मैंने अपनी आवाज़ ऊँची की। उसने अपने सिरपर बँधे हुए रूमालको गरदनके नीचे खींच लिया, और सिर हिला-हिलाकर मेरे गानेका साथ देने लगा।

आख़िरकार मैं रुक गया।

"और गाओ।"

"इससे आगे मैं नहीं जानता।"

इसपर वह अप्रसन्न हो गया, उसने लगाम खींची, और उस रास्तेकी ओर मुड़ गया, जो जंगलकी तरफ़ जाता था।

"तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"जंगलको। आओ, कुछ देर सुस्ता लें।"

मैं उसके पीछे हो लिया। जंगलमें पहुंच, हम लोग घोड़ोंसे उतर पड़े, और उन्हें चरनेके लिए छोड़कर, हम लोगोंने शाहबलूतके एक विशाल वृक्षकी छायामें बैठकर, तम्बाकूके बटुओंसे अपने-अपने पाइप भरे।

हम लोग चुपचाप बैठकर घोड़ोंका घास चरना और दूरके किसी वृक्षपर खुटबढ़ई पक्षीकी खट-खट आवाज़ सुन रहे थे।

"तुम अलीके ऋणी कब हुए ?"—निस्तब्धता भंग करते हुए, मैंने बातचीत आरम्भ करनेके लिए, प्रश्न किया।

डायकोकी तेवरियाँ चढ़ गईं। उसने हाथ हिलाते हुए जवाब दिया—

"बहुत दिन हुए।"

"तुमने अपना ऋण चुका दिया ?"

"ओह, नहीं; उसका क़र्ज़ चुकानेमें समर्थ होनेके लिए काफ़ी समय लगेगा।

दो-तीन बार मुँहसे धुआँका गुबार छोड़नेके बाद उसने एक क्षणके लिए मेरी ओर देखा, और कहा—

"यह बड़ी लम्बी कहानी है—यद्यपि यह मुझे रुचिकर नहीं है, फिर भी तुम्हें सुनाऊँगा—

"तुर्कोंकी क्रूरताने मुझे डाकू होनेके लिए बाध्य किया था। सब प्रकारके मानव-अधिकारोंसे वंचित रहकर तुर्कोंकी ग़ुलामी करते-करते मैं ऊब गया था। प्रत्येक व्यक्तिको सिर झुकाते-झुकाते और उसके द्वारा अपमानित होते-होते मेरा दिल पक उठा था—इसलिए मैंने बन्दूक़ उठाई, और अपने आधे दर्जन साथियोंको संग लेकर जंगली पहाड़ियोंकी राह ली। यहाँ हम लोग तुर्कोंकी टोहमें रहते, और जहाँ कहीं वे मिल जाते, उनपर टूट पड़ते। लड़ाई-भिड़ाईके बिना एक दिन भी न बीतता था, और हम लोग हमेशा कुछ-न-कुछ ले-देकर चलते बनते थे। अंतमें हमारा मुक़ाबला मुयागिचोंसे हुआ, और हमें अपना पुराना हिसाब-किताब साफ़ करना पड़ा—हम लोगोंने उनके घरपर हमला किया, और उनके कुटुम्बके तीन व्यक्तियोंको मार डाला; पर अली बच निकला। हम लोगोंने उसकी बड़ी देर तक तलाशी की; परन्तु नहीं पा सके। हम लोगोंने उसके घरको लूट लिया, और बहुतसा लूटका माल लेकर अपनी माँदमें लौटे आये।

लेकिन यह सौदा हमें बहुत मँहगा पड़ा। अलीने हम लोगोंसे कहीं अधिक शक्तिशाली दल तैयार किया, और हम लोगोंको पहाड़ियों और घाटियोंमें ऐसा खदेड़ा कि अन्तमें हम लोगोंको एक ऐसे विकट जंगलमें पनाह लेनी पड़ी, जहाँ पहाड़ी बकरों तकका पहुंचना भी दुश्वार था। यहाँ हम लोगोंने अपनी क़िलाबन्दी की और मृत्यु पर्यन्त लड़नेका निश्चय किया। अली और उसके साथियोंने हम लोगोंको घेरकर मुहासिरा डाल दिया। हम लोगोंके लिए यह बड़ी मुसीबत और अभावका समय था। न खानेको रोटी थी, न पीनेको पानी, और न किसीमें इतनी हिम्मत ही थी कि वह छिपकर बाहर जाय और कुछ प्राप्त करनेकी कोशिश करे। हम लोग भूख और प्याससे मर रहे थे। मेरे साथी उदास चेहरोंसे इधर-उधर घूमते थे, पर उनमें से कोई भी न

तो इसकी शिकायत करता, न झींकता और न अपने भाग्यको ही कोसता था।

"आखिरकार मैं इस परिणामपर पहुंचा कि इस प्रकार काम नहीं चलनेका। इसलिए मैंने अपने साथियोंसे कहा—'भाइयो, देखो, यहां भूख और प्याससे मरनेके बजाय, क्या यह बेहतर नहीं है कि हम लोग निकलकर दुश्मनोंपर टूट पड़ें, उनसे बदला लें और मर्दोंकी भाँति लड़कर मरें? हम लोग मरेंगे तो निश्चय ही, तो फिर लड़ते-लड़ते ही क्यों न मरें? तुर्कोंके खून बहानेकी हविस मनमें लिए हुए परलोक जानेके बजाय, इसी लोकमें क्यों न यह हविस मिटा लें?"

वे सब समझ गये कि मेरा कहना ठीक था— इसके सिवा और कोई चारा ही न था। वे मेरे प्रस्तावपर राज़ी हो गये।

अपने बरछेके साथ सबसे पहले कूदनेवाला मैं ही था; मेरे बाद मेरे दूसरे साथी आये। तुर्कोंने गोलियोंसे हमारा स्वागत किया। मैंने अपने दो साथियोंको गिरते देखा। यह सोचकर कि अन्य कोई उपाय ही नहीं है,— मैं शत्रुपर टूट पड़ा, दूसरोंने मेरा अनुगमन किया। मेरी आँखें ख़ूनी हो रही थीं, मैं कुछ देख नहीं सकता था। मैं अपने बरछेको हवामें इधर-उधर घुमाता हुआ आगेको दौड़ा। एकाएक पीछेसे किसीने मुझपर भयंकर आघात किया, और मैं अचेत हो गया।

जब मेरी आँख खुली, मैंने अपनेको मुयागिचके मकानमें पाया—मैं एक चटाईपर पड़ा था, और कईएक तुर्क, जिनमें अली मुयागिच भी था, वहाँ खड़े-खड़े अपने सिर हिला रहे थे। जब मैंने आँखें खोलीं, तो अली मेरे ऊपर झुका, और उसने मेरा हाथ थाम लिया।

'कैसी तबीयत है?'—उसने पूछा।

मैंने उठनेकी कोशिश की; पर एकाएक ऐसा दर्द मालूम हुआ, मानो मुझे कोई और नई चोट लगी हो, मैं एक बार फिर बेहोश हो गया।

पूरे महीने-भर मैं मृत्यु-शय्यापर पड़ा रहा। अली एक क्षणके लिए भी मेरे पाससे अलग नहीं होता था। वह मेरी तीमारदारी ऐसी सावधानीसे करता था, जैसी सावधानीसे शायद मेरा पिता भी न करता। वह अपने हाथों मेरी पट्टियाँ बदलता, बच्चोंकी तरह मुझे खिलाता-पिलाता। भूख न होनेपर भी वह मुझसे खानेके लिए खुशामद करता। कभी-कभी वह मेरा सिर अपने जाँघपर रख लेता और मेरे मुँहमें ज़बरदस्ती अंडे या मांस डालकर मुझे खानेके लिए बाध्य करता।

अंतमें मैं अच्छा होने लगा। जैसे ही मेरे पैरोंमें थोड़ीसी खड़े होने भरकी ताक़त आई, मैं उठा, और दीवारोंको पकड़कर कमरेमें टहलने लगा। अली अकसर मेरी बाँह थामकर, सहारा देता हुआ, मुझे आँगनमें ले जाता, जहाँ मैं उसके शहतूतके पेड़की छायामें बैठकर आराम करता।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मैं मज़बूत होने लगा। मैंने देखा कि अब जब अली मेरी तरफ़ मुसकुराता हुआ देखता, तो उसका चेहरा कैसा खिल उठता था।

'क्या सोच रहे हो, क्या तुम कूद सकते हो?'—एक बार उसने मुझसे पूछा।

'नहीं।' मैंने जवाब दिया—'मैं अभी भी बहुत कमज़ोर हूं।'

उसने अपनी मूंछोंपर ताव दिया, और हँसकर कहा—"जल्द, ओह, बहुत जल्द, तुम इस योग्य हो जाओगे।"

कुछ दिनोंके बाद उसने फिर उसी प्रश्नको दोहराया।

'मैं कोशिश करूँगा।'—मैंने उत्तर दिया।

वह एक तरफ़ हट गया। मैं दौड़ने और कूदनेके लिए चला। मेरी कुदान इतनी ऊँची थी कि अली प्रसन्नतासे हँस पड़ा।

'इसका मतलब यह है कि तुम अब एकदम अच्छे हो गये।'—उसने कहा।

आँगनमें मुझे छोड़कर वह घरके अंदर चला गया। मैं हैरान होकर उसकी ओर देखता रहा। क्षणभर बाद वह दो भरी हुई बन्दूकें लेकर लौटा। उसका चेहरा एकदम पीला पड़ गया था, आँखें भूखी बिल्लीकी तरह भयानक रूपसे चमक रही थीं।

उसने मेरे सामने खड़े होकर कहा—'मैंने तुम्हें तन्दुरुस्त किया है, और तुम्हें अपने पैरों खड़ा होनेके क़ाबिल बनाया है! अब तुम पहलेकी नाईं चंगे हो गये हो। अब तुम इस योग्य हो गये हो कि मेरा ऋण चुका सको—तुम जानते हो कि तुम मेरे अत्यधिक ऋणी हो—तुम्हें तीन सिर देना है, क्योंकि तुमने मेरे दो भाइयोंका ख़ून किया है।' इस समय पहलेकी अपेक्षा उसकी आँखें भीषण रूपसे जल रहीं थीं, उसके होंठ काँप रहे थे। 'मैंने उसी समय तुम्हारा ख़ात्मा कर दिया होता, जब तुम मेरे सामने घायल पड़े थे, पर मैंने ऐसा नहीं करना चाहा। मैं तुम्हें भला-चंगा करके मारना चाहता था। अली मुयागिचने कभी किसी असहाय शत्रुको नहीं मारा, और वह तुम्हें भी इस नियमका अपवाद नहीं बनाना चाहता।'

उसने मुझे एक बन्दूक़ थमा दी, और कहा—

'यह बन्दूक़ है! यह मेरी बन्दूक़के समान ही बढ़िया और मज़बूत है, और उसीकी भाँति भरी हुई है। आओ, हम लोग जंगलमें चलें, और वहाँ अपने हथियारोंकी ताक़त आज़मायें।'

मुझे उत्तर देनेके लिए शब्द ही नहीं मिले, और सिर झुकाये हुए उदास भावसे मैं आगे बढ़ा।

अंतमें हम लोग जंगलमें जा पहुंचे।

'जहाँ तुम हो, वहीं खड़े हो जाओ।' उसने कहा—

'मैं यहाँ खड़ा रहूंगा, जिससे हम दोनों आमने-सामने हों। बस, ठीक इसी स्थानसे, हम लोग एक ही साथ फायर करेंगे।'

पर इतनी देरमें मेरे होश-हवास दुरुस्त हो गये थे। मैंने अपनी बन्दूक़ फेंक दी, और एक ओर हट गया। भला, मुझे तुम्हारे विरुद्ध हाथ उठाना चाहिए? क्या तुम मुझे इतना नीच समझते हो कि मैं तुमपर फायर करूँगा? संसारकी किसी भी न्यामतके लिए मैं तुमपर फायर करनेका नहीं!'

"तुम्हें करना ही होगा! मैं तुम्हें मजबूर करूँगा!' उसने घृणापूर्ण मुसकराहटके साथ कहा। 'मैं इस द्वन्द्वको स्थगित नहीं कर सकता, और मैं किसी निःशस्त्र आदमीपर फायर भी नहीं करना चाहता। बन्दूक़ उठाओ! मैं मजाक़ नहीं करता।'

मैं अचल खड़ा रहा।

'मैं कहता हूं, बन्दूक़ उठाओ!' वह चिल्ला उठा—'वरना मैं कहूंगा कि तुम गीदड़ हो।'

मैंने झुककर बन्दूक़ उठा ली।

'इधर घूमो।'

मैं घूम गया।

'मेरे ऊपर निशाना साधो।'

'उसने मेरे ऊपर निशाना साधा, और मैंने अपनी रायफ़ल उसकी ओर की। उसने फायर किया, और उसकी आवाज़ जंगलमें गूँज उठी।

मुझे याद नहीं कि मैंने घोड़ा खींचा, या नहीं—परन्तु जब मैंने उसकी ओर देखा, तो वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। मैं वेदनासे चीख़ उठा, और उसकी ओर दौड़ा। पर वह मर चुका था।

उसी समयसे, प्रतिवर्ष, मैं उसके लड़कोंके लिए आलू और गोभीके कई बोझ ले जाया करता हूं। उनके निर्वाहके लिए उन्हें भेंड़े और गायें भी भेजा करता हूं।"

डायकोने अपनी कहानी समाप्त कर दी, और सिर झुकाकर बैठ गया। मैंने देखा कि वह अपने गालोंपर बहते हुए आँसुओंको रोकनेकी कोशिश कर रहा था।*

अनुवादक—श्रीपति पाण्डेय

* Svetozar Chorowich की एक सर्वियन कहानी।

स्वाभिमानी

तुर्गनेव

(गतांकसे आगे)

बिना किसी प्रकारके शिष्टाचारके, बिना किसीसे कुछ पूछे ही – जैसी कि विद्यार्थियोंकी आदत हुआ करती है—मैं सीधे उसके घरमें दाखिल हो गया। पहले कमरेमें कोई भी आदमी न था। मैंने टारहोवका नाम लेकर पुकारा, और उसका कोई उत्तर न पाकर वापस लौटना ही चाहता था कि इतनेमें पासके एक कमरेका दरवाज़ा खुला, और टारहोव उपस्थित हुआ। उसने अजीब ढंगसे मेरी ओर देखा, और बिना कुछ बोले ही मुझसे हाथ मिलाया। पूनिनसे मैंने जो कुछ सुना था, वह सब उसे बतलानेके लिए आया था। यद्यपि मुझे तुरन्त ही यह मालूम हो गया कि टारहोवसे मिलनेका मैंने ठीक मौक़ा नहीं चुना था, तथापि थोड़ी देर तक इधर-उधरकी बातें करनेके बाद आखिर मैंने उसे मानसीके सम्बन्धमें बाबूरिनकी आकांक्षाएँ बतला दीं। इस खबरको सुनकर प्रत्यक्षरूपमें वह अधिक विस्मित नहीं जान पड़ा। वह चुपचाप टेबिलके पास बैठ गया और अपनी आँखोंको मेरी तरफ़ गड़ाये हुए और पहलेके समान ही मौन भावमें उसने ऐसे भावोंकी व्यक्ति की, मानो वह यह कहना चाहता हो—"अच्छा, और तुम्हें क्या कहना है ? जो तुम्हारे खयाल हों, उन्हें कह डालो।" मैं गौरके साथ उसके चेहरेकी तरफ़ देखने लगा। उसमें मुझे उत्कंठा, कुछ व्यंग्य तथा किंचित अहंकारका भाव दीख पड़ा, किन्तु इससे मुझे अपने विचारोंको प्रकट करनेमें कोई रुकावट नहीं हुई। इसके विपरीत उसके सम्बन्धमें मेरे मनमें यही खयाल पैदा हुआ कि—"तुम अपनी शान दिखला रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें बख्शूँगा नहीं।" मैंने उसे उपयुक्त उपदेश देना शुरू किया—"देखो, आवेशजनित भावनाओंके सामने झुकनेमें बड़ी बुराई है। प्रत्येक आदमीका यह कर्तव्य है कि वह दूसरे आदमीकी स्वतंत्रता तथा व्यक्तिगत जीवनके प्रति आदर-भाव रखे इत्यादि।" इस प्रकार कहते हुए मैं बेतकुल्लफीके खयालसे कमरेमें इधर-उधर घूमने लगा। टारहोवने न तो मुझे बीचमें टोका ही, और न वह अपनी जगहसे टससे मस हुआ। वह सिर्फ अपनी ठुड्डीपर अंगुलियोंको दौड़ा रहा था।

"मैं जानता हूं",—मैंने कहा···(मेरे इस कथनका ठीक उद्देश्य क्या था, इसकी मुझे भी कोई स्पष्ट भावना न थी—बहुत सम्भव है कि वह ईर्ष्या हो ; किन्तु इतना तो ज़रूर था कि वह नीतिनिष्ठा नहीं थी !) "मैं जानता हूं"—मैने कहा—"कि यह आसान नहीं है, यह हंसीकी बात नहीं है ; मुझे निश्चय है कि तुम मानसीको प्यार करते हो, और मानसी तुम्हें प्यार करती है······यह तुम्हारे लिए यों ही कोई क्षणिक उमंग नहीं है······किन्तु देखो, यदि हम यह मान लें ! (यहाँ मैंने अपने हाथोंको मोड़कर छातीपर रखा)···हम यह मान लें कि तुम वासनाको तृप्त भी कर लो, तो इससे क्या होगा ? तुम उसके साथ शादी नहीं करोगे, यह तुम खुद भी जानते हो, किन्तु अपनी इस कार्रवाईसे तुम एक अत्युत्तम ईमानदार और उसके उपकारी व्यक्तिके सुखका सर्वनाश कर रहे हो··· और कौन जानता है ? (यहाँ मेरे चेहरेसे एक साथ ही सुतीक्ष्णता एवं चिन्ताका भाव व्यक्त होने लगा)······कि शायद मानसीके निजी सुखका भी···"

इसी प्रकार मैं कहता चला गया।

प्रायः १५ मिनट तक मेरे इस कथनका प्रवाह जारी

रहा। टारहोव अब भी मौन था। मैं उसके मौनावलम्बन-पर घबराने लगा। मैं समय-समयपर उसकी ओर दृष्टिपात कर लिया करता था, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं था कि मुझे इस बातका संतोष हो जाय कि मेरे शब्दोंका उसपर प्रभाव पड़ रहा है, बल्कि यह जाननेका था कि उसने क्यों मेरे कथनपर न तो कुछ उज्र ही किया, और न अपनी सम्मति ही जाहिर की, बल्कि एक गूंगे और बहरे व्यक्तिकी तरह चुपचाप बैठा रहा। आख़िर मुझे यह अनुमान हुआ कि उसके चेहरेपर परिवर्त्तनका लक्षण दृष्टिगोचर हो रहा है। उससे बेचैनी और दुःखद विक्षोभके चिह्न परिलक्षित होने लगे, तथापि आश्चर्यकी बात तो यह थी कि···वह उत्कण्ठा, वह प्रकाश, वह हँसती हुई-सी कोई वस्तु जो मुझे प्रथम बार टारहोवकी ओर दृष्टिपात करनेपर दीख पड़ी थी, इस समय भी उसके विक्षुब्ध एवं विषण्ण मुखमंडलपर विद्यमान थी। मैं यह निश्चय नहीं कर सका कि अपने उपदेशकी सफलतापर अपनेको बधाई दूँ, या नहीं, जब कि टारहोव एकाएक उठ खड़ा हुआ, और मेरे दोनों हाथोंको दबाकर जल्दी-जल्दी बोलते हुए मुझसे कहा—"धन्यवाद है, तुम्हें धन्यवाद है। तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है,···यद्यपि दूसरे पक्षमें, यह भी प्रश्न हो सकता है कि···आख़िर बैबूरिन, जिसके विषयमें तुम इतनी डींग मारते हो, है क्या चीज़? वह एक ईमानदार मूर्खके सिवा और कुछ भी नहीं है! तुम उसे प्रजातंत्रवादी कहते हो किन्तु है वह महज़ मूर्ख। बस, वह जो कुछ है, यही है। उसके सारे प्रजातंत्रवादका अर्थ यही है कि उसकी कभी कहीं गुज़र नहीं हो सकती!"

आह! यही तुम्हारा ख़याल है! एक मूर्ख! की कभी गुज़र नहीं हो सकती? किन्तु मैं तुमसे कहूंगा कि"—मैंने कुछ गर्म होकर कहना शुरू किया,—"मेरे प्यारे ब्लाडीमीर निकोलेच, मैं तुमसे यह कहूंगा कि इस ज़मानेमें कहीं भी गुज़र न होना, एक उत्तम और उदार प्रकृतिका लक्षण समझा जाता है! जो लोग बेकार होते हैं, जो बुरे होते हैं, वही जहाँ-तहाँ अपनी गुज़र कर लेते हैं, और अपनेको प्रत्येक परिस्थितिके अनुकूल बना लेते हैं। तुम कहते हो कि बैबूरिन एक ईमानदार मूर्ख है। क्यों, तब क्या तुम्हारी समझसे बेईमान और चालाक होना उससे अच्छा है?"

"तुम तो मेरे शब्दोंको तोड़-मरोड़कर दूसरा ही अर्थ निकालते हो!" टारहोव ज़ोरसे बोला—"मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता था कि मैं उस आदमीको किस रूपमें समझता हूं। क्या तुम समझते हो कि वह एक अनुपम व्यक्ति है? कदापि नहीं! मुझे उसके जैसे आदमी अपने जीवनमें बहुतसे मिले हैं। वह अपने चेहरेको ज़रा गम्भीर, मौन, हठी और वक्र बनाकर बैठा रहता है···अहा-हा-हा। बस, तुम कहोगे कि उसके चेहरेसे मालूम होता है कि उसके अन्दर बहुत कुछ है, किन्तु दरअसल उसमें कुछ भी नहीं है, उसके दिमाग़में एक भी विचार नहीं है—जो कुछ है, वह सिर्फ आत्म-प्रतिष्ठाका ख़याल है।"

"अगर आत्म-प्रतिष्ठाके अलावा और कुछ न भी हो, तथापि वह एक सम्मानजनक वस्तु है", मैं बोल उठा—"किन्तु यह तो बतलाओ कि तुम्हें उसके चरित्रका इस प्रकार अध्ययन करनेका अवसर कहाँ मिला? तुम तो उसे जानते भी नहीं, क्यों? या मानसीने तुमसे उसके बारेमें जो कुछ कहा है, उसके आधारपर तुम उसका वर्णन करते हो?"

टारहोवने अपने कंधेको हिलाया। मानसी और मैं···हम दोनोंमें बातचीत करनेके लिए और ही विषय हैं। मैं तुमसे यह कहता हूं", इतना कहते समय उसका सम्पूर्ण शरीर अधीरताके कारण कांप उठा—"मैं तुमसे कहता हूं कि अगर बैबूरिन इतना भले और ईमानदार स्वभावका है, तो वह क्योंकर यह नहीं देख पाता कि मानसी उसके उपयुक्त जोड़ी नहीं है। इन दो बातोंमें एक बात हो सकती है, या तो वह जानता है

कि वह उसके साथ जो कुछ कर रहा है, वह कृतज्ञताके नामपर एक प्रकारका अत्याचार है···और यदि ऐसा ही हो, तो फिर उसकी ईमानदारी कहाँ रही ?—या वह जो कुछ कर रहा है, उसे अच्छी तरह समझ नहीं पाता··· इस हालतमें उस मूर्खके सिवा और कह ही क्या सकते हैं ?"

मैं जवाब देना ही चाहता था, किन्तु टारहोवने फिर मेरे हाथोंको ज़ोरसे पकड़ लिया, और फिर तेज़ीसे कहना शुरू किया—"यद्यपि···अवश्य···मैं यह स्वीकार करता हूं कि तुम्हारा कहना ठीक है, सहस्रों बार ठीक है। ······तुम मेरे एक सच्चे दोस्त हो···किन्तु अब मुझे कृपया अकेले छोड़ दो।

मैं हैरतमें पड़ गया। "तुम्हें अकेला छोड़ दूँ ?"

"हाँ, ज़रूर मुझे छोड़ दो, क्या तुम देखते नहीं, अभी-अभी तुमने जो कुछ कहा है, उसपर अच्छी तरह विचार करो···मुझे इसमें शक नहीं कि तुम्हारा कहना दुरुस्त है—किन्तु अब मुझे अकेले ही रहने दो।"

"तुम इस प्रकार उत्तेजित अवस्थामें हो···" मैंने कहना शुरू किया।

"उत्तेजना ? मैं ?" टारहोव हँस पड़ा, किन्तु फौरन ही उसने अपनेको संभाल लिया। "हाँ, ज़रूर मैं उत्तेजित हूं। मैं होता नहीं तो क्योंकर ? तुम खुद ही कहते हो कि यह कोई हँसीकी बात नहीं है। हाँ, मुझे इस सम्बन्धमें अकेले ही विचार करना चाहिए।" वह अब तक भी मेरे हाथोंको दबा ही रहा था। "अच्छा, मेरे प्यारे दोस्त, अब प्रणाम।"

मैंने विदा होते समय उससे कहा—"अच्छा, प्यारे दोस्त, प्रणाम !" वहाँसे चलते-चलते मैंने आखिरी बार टारहोवकी ओर दृष्टिपात किया। वह प्रसन्न मालूम पड़ता था। किन्तु किस बातपर ? या तो इस बातपर कि मैंने, एक सच्चे दोस्त और साथीकी हैसियतसे, उसे उस मार्गके खतरेसे आगाह कर दिया था, जिसपर उसने पाँव रखा था—या इस बातपर कि मैं वहाँसे विदा हो रहा था। तमाम दिन संध्याकाल पर्यन्त मेरे मस्तिष्कमें नाना प्रकारके विचार चक्कर काटते रहे, जब तक कि मैंने पूनिन और बैबूरिनके मकानमें प्रवेश नहीं किया। मैं उसी दिन उन लोगोंसे मिलने गया। मैं यह बात स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि टारहोवके कुछ वाक्य मेरे अन्तरतममें प्रविष्ट हो गये थे···और इस समय भी वे मेरे कानोंमें गूँज रहे थे।···क्या सचमुच यह सम्भव था कि बैबूरिन···क्या यह सम्भव था कि वह यह नहीं समझता हो कि मानसी उसके उपयुक्त जोड़ी नहीं है ?

पर क्या यह सम्भव हो सकता था, बैबूरिन—स्वार्थत्यागी बैबूरिन—ईमानदार मूर्ख हो !

पूनिन जब मुझसे मिलने आया था, तो उसने कहा था—"हमारे घरपर एक दिन पहले तुम्हारे आनेकी प्रतीक्षा की जा रही थी।" यह हो सकता है, किन्तु आजके दिन तो अवश्य ही कोई मेरे आनेको आशा नहीं रखता था। मैंने सबको घरपर ही मौजूद पाया, और सभीको मेरे आनेपर आश्चर्य हुआ। बैबूरिन और पूनिन दोनों ही अस्वस्थ थे। पूनिनको सिरदर्द हो रहा था। वह एक पलंगपर अपने शरीरको सिकोड़े हुए लेटा था, उसके सिरमें रूमाल बँधा हुआ था, और पेशानियोंपर ककड़ीके टुकड़े रखे हुए थे। बैबूरिन पित्तकी बीमारीसे पीड़ित था; वह बिलकुल पीला, धुंधला-सा दीख पड़ता था, उसकी आँखोंके चारों ओर गोलाकार रेखाएँ पड़ गई थीं, भौंहें सिकुड़ी हुई थीं और दाढ़ीके बाल बढ़े हुए थे। वह एक दुलहाके समान तो प्रतीत नहीं होता था ! मैंने वहाँसे चलनेकी कोशिश की···किन्तु उन लोगोंने मुझे जाने नहीं दिया, और चाय पानके लिए आग्रह किया। संध्याकाल वहाँ प्रसन्नतापूर्वक नहीं बीता। यद्यपि मानसीको कोई बीमारी नहीं हुई थी, और वह पहलेके समान उतनी संकोचशील भी नहीं थी, पर साफ़ तौरसे

वह चिढ़ी हुई और क्रुद्ध-सी दीख पड़ती थी···आखिर वह अपनेको रोक नहीं सकी, और मेरे हाथमें चायका प्याला देते हुए, कानके पास सटकर जल्दी-जल्दी कहने लगी—"तुम जो चाहे, सो कहो, तुम चाहे जितनी ही कोशिश करो, किन्तु उससे कोई फर्क नहीं पड़ सकता !" मैं ताज्जुबमें आकर उसकी तरफ़ देखने लगा, और मौक़ा पाकर मैंने चुपकेसे उसके कानमें कहा—"तुम्हारे कहनेका क्या अभिप्राय है ?"

"मैं तुम्हें बताऊँगी।" उसने जवाब दिया उसकी काली आँखें, उसकी तनी हुई भौंहोंके नीचेसे क्रुद्ध-भावमें चमकती हुई एकक्षण तक मेरे चेहरेपर गड़ी रहीं, फिर फौरन ही वहांसे हट गईं—"मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि आज तुमने वहां जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सुन लिया, और इन निरर्थक बातोंके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूं; क्योंकि जैसा तुम चाहते हो, वैसा किसी भी तरहसे हो नहीं सकता।"

"तुम वहां मौजूद थीं ?" मेरे मुँहसे अनजाने यह निकल पड़ा······किन्तु इसी समय बैबूरिनका ध्यान इधर आकृष्ट हुआ, और उसने हम लोगोंकी ओर दृष्टिपात किया। मानसी मेरे पाससे खिसक गई।

दस मिनटके बाद वह किसी तरह फिर मेरे पास आ पहुंची। उसे देखनेसे मालूम पड़ता था कि वह कोई साहसिक एवं भयंकर बात मुझसे कहनेके लिए समुत्सुक हो, मानो वह अपने संरक्षकके सामने हो, उसकी सावधान दृष्टिके नीचे हो, सिर्फ उसे सन्देह नहीं हो इतना बचाकर, उन बातोंको मुझसे कहना चाहती हो। यह तो एक जानी हुई बात है कि किसी खतरनाक खाई-खन्दकके ऊपर बिलकुल किनारेपर चलना स्त्रियोंका एक प्रिय कौतुक है। "हां, मैं वहां मौजूद थी।" मानसीने धीमे स्वरमें कहा। उस समय उसकी आकृतिमें कोई परिवर्त्तन नहीं दीख पड़ता था। सिर्फ उसके नथुने कुछ-कुछ कांप रहे थे। "हां, अगर बैबूरिन मुझसे पूछ बैठे कि मैं तुम्हारे कानोंमें लगकर क्या कह रही हूं, तो उससे इसी वक्त सारी बातें कह दूँगी। मुझे उसकी परवा ही क्यों होने लगी ?"

"ज़रा सावधान,"—मैंने उससे प्रार्थना की। "मेरा सचमुच खयाल है कि वे लोग हमें देख रहे हैं।"

"मैं तुमसे कहती हूं, मैं उनको सारी बातें कह सुनानेके लिए बिलकुल तैयार हूं। फिर हमें देख ही कौन रहा है ? उनमें एक तो बुड्ढा-बुड्ढी बीमार पड़ा है, और कुछ भी नहीं सुनता। दूसरा अपने गम्भीर दार्शनिक विचारमें ही मग्न है। तुम डरो मत।" मानसीकी आवाज़ कुछ ऊँची हो उठी, और उसके गालोंपर क्रमशः एक प्रकारकी फीकी लाली दौड़ गई। उसके चेहरेपर यह लाली खूब फबती थी, और इतनी सुन्दर वह पहले कभी मालूम नहीं हुई थी। टेबिलको साफ़ करते हुए और चायके प्याले तथा तश्तरीको अपने-अपने स्थानपर रखते हुए, वह कमरेमें तेज़ीके साथ इधर-उधर घूम-फिर रही थी। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, मानो अपनी सहज स्वतंत्र चाल-ढालसे वह किसीको चुनौती दे रही हो। उसे देखनेसे प्रतीत होता था, मानो वह कह रही हो—"तुम चाहे जैसे मेरी आलोचना करो, किन्तु मैं तो अपने ढंगपर ही चलती रहूंगी, और मुझे तुम्हारा कुछ डर भी नहीं है।

मैं इस बातपर पर्दा नहीं डाल सकता कि उस संध्याको मानसी मुझे बहुत ही मनोमुग्धकर-सी जान पड़ी। "हां", मैंने अपने मनमें सोचा—"यह एक छोटी चंडी है—यह एक नये ढंगकी है······यह अनुपम है। दिलपर चोट किस तरह पहुंचाई जा सकती है, यह इन हाथोंको मालूम है······किन्तु इससे क्या ? कोई हर्ज नहीं !"

"पैरेमन सेमोनिच", वह एकाएक चिल्ला उठी—"क्या प्रजातंत्र एक ऐसा साम्राज्य नहीं है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने इच्छानुसार कार्य कर सके ?"

"प्रजातंत्र राज्य साम्राज्य नहीं है", बैबूरिनने अपने

हाथोंको ऊपर उठाकर, भौंहोंको सिकोड़ते हुए, जवाब दिया—"वह एक प्रकारकी सामाजिक संस्था है, जिसमें प्रत्येक बात क़ानून और न्यायपर अवलम्बित रहती है।"

"तब", मानसी कहने लगी—"प्रजातन्त्र राज्यमें कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तिपर अत्याचार नहीं कर सकता ?"

"नहीं।"

"और प्रत्येक व्यक्ति अपने इच्छानुसार कार्य करनेके लिए स्वतन्त्र है ?"

"पूर्ण-स्वतन्त्र।"

"आह ! यही तो मैं जानना चाहती थी।"

"तुम क्या जानना चाहती हो ?"

"ओह, मैं चाहती थी—मैं तुमसे यही बात कहलाना चाहती थी।"

"हमारी यह नवयुवती नई बातें सीखनेके लिए उत्सुक है !"—पूनिन सोफेपर से बोल उठा।

जब मैं रास्तेसे होकर बाहर जाने लगा, तो मानसी मेरे साथ हो ली; पर उसका ऐसा करना शिष्टाचारकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि उसी धूर्ततायुक्त उद्देश्यसे था। उससे विदा ग्रहण करते हुए मैंने पूछा—"क्या तुम सचमुच उसे इतना अधिक प्यार कर सकती हो ?"

"उसे मैं प्यार करती हूं, या नहीं, यह मेरा काम है।" उसने उत्तर दिया—"जो होना है, वह होकर ही रहेगा।"

देखो, तुम जो कुछ करना चाहती हो, उससे सावधान हो जाओ; आगके साथ मत खेलो···वह तुम्हें जला डालेगी।"

"सर्दीसे ठिठुरकर मरनेकी अपेक्षा जलकर मरना कहीं अच्छा है ! तुम······अपनी नेक सलाह अपने पास ही रखो। तुम यह कैसे कह सकते हो कि वह मेरे साथ शादी नहीं करेगा ? अथवा तुम यह कैसे जानते हो कि मैं विवाह करनेकी विशेष इच्छा रखती हूं ? यदि मेरा सर्वनाश ही हो जाय······तो इससे तुम्हें क्या मतलब ?"

मेरे बाहर होनेपर उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया। मुझे यह याद है, घर जाते हुए मैं कुछ प्रसन्नताके साथ यह सोचने लगा कि मेरा मित्र टारहोव अपनी इस नवीन ढंगकी प्रेयसीको पाकर बड़ी विपत्तिमें पड़ेगा···उसे यह सुख बहुत मँहगा पड़ेगा। पर वह इसे पाकर सुखी होगा, यह बात मैं खेदपूर्वक अनुभव कर रहा था।

इस घटनाको बीते तीन दिन हो चुके थे। मैं अपने कमरेमें लिखनेकी टेबिलके पास बैठा था। उस समय मैं कोई विशेष काम नहीं कर रहा था, बल्कि जलपानके लिए तैयार हो रहा था। मुझे सनसनाहट-सी आवाज़ मालूम हुई। मैंने सिर उठाकर देखा, और देखते ही मेरे होश उड़ गये। मैं जड़वत् बन गया। मेरी आँखोंके सामने कठोर, भयानक, खड्डम-जैसी सफ़ेद एक छाया-मूर्ति खड़ी दीख पड़ी। वह पूनिनकी मूर्ति थी। वह अर्द्धनिमीलित नेत्रोंसे मेरी ओर देख रहा था, उसकी पलकें धीरे-धीरे झपकी ले रही थीं; उसकी आँखोंसे निश्चेष्ट भयका भाव—वैसा ही भय, जैसा सन्त्रस्त खरगोशमें पाया जाता है—व्यक्त हो रहा था। उसकी भुजाएँ उसके दोनों बग़लोंमें छड़ी-जैसी लटक रही थीं।

"पूनिन ! तुम्हें क्या हुआ है ? तुम यहाँ कैसे आये ? क्या तुम्हें किसीने देखा नहीं ? बात क्या है ? बोलो न !"

"वह भाग गई है।"—पूनिनने रुद्धकण्ठसे बहुत ही धीमी आवाज़में उत्तर दिया, जो मुश्किलसे सुनाई पड़ती थी।

"तुम क्या कहते हो ?"

"वह भाग गई है !"—उसने फिर दुहराया।

"कौन ?"

"मानसी ! वह रातमें ही निकल गई, और एक परचा छोड़ गई है।"

"एक परचा ?"

"हाँ, उसने लिखा है—'मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूं', "मैं फिर वापस नहीं लौटूंगी। मेरी तलाशमें न रहना।' हमने ऊपर-नीचे सब जगह छान डाली ; रसोइयेसे पूछ-ताछ की ; किन्तु उसे भी कुछ पता नहीं। मैं ज़ोरसे नहीं बोल सकता ; मुझे माफ़ करना। मेरा गला बैठ गया है।"

'मानसी तुम्हें छोड़कर चली गई !" मैंने विस्मित होकर कहा—"बड़ी मूर्ख ! मि० बैबूरिन तो अवश्य ही अत्यन्त निराश हुए होंगे। वे अब क्या करना चाहते हैं ?

"वे कुछ भी करना नहीं चाहते। मैं गवर्नर-जेनरलके पास जाना चाहता था ; उन्होंने मना कर दिया। मैं पुलिसको इसकी सूचना देना चाहता था ; उन्होंने यह भी मना कर दिया, और बहुत रुष्ट हुए। वे कहते हैं—"मानसी स्वतंत्र है।" मैं उसके किसी काममें बाधा देना नहीं चाहता।" वे इस हालतमें भी अपने आफिसमें काम करने गये हैं। परन्तु देखनेमें वे ज़िन्दा-जैसा नहीं, बल्कि मुर्दा मालूम पड़ते हैं। वे मानसीको बहुत ज़्यादा प्यार करते थे......हा ! हम दोनों उसे कितना प्यार करते थे !"

इसी वक्त पूनिनको देखकर मुझे पहले-पहल यह मालूम हुआ कि वह लकड़ीकी बनी हुई एक जड़ मूर्ति नहीं, बल्कि एक सजीव प्राणी है ; उसने अपनी दोनों मुट्ठियोंको ऊपर उठाकर अपनी खोपड़ीपर रखा, जो हाथीदांतकी तरह चमक रही थी।

"कृतघ्न बालिका !" उसने आह-भरी आवाज़में चिल्लाकर कहा—"किसने तुम्हें खिलाया-पिलाया, उढ़ाया-पहनाया और पाल-पोसकर बड़ा किया ? किसने तुम्हारे लिए चिन्ता की, और अपना सारा तन-मन-प्राण तुमपर न्योछावर कर दिया......और तुमने इन सारी बातोंको भुला दिया ! यदि तुम मुझे छोड़ देती तो सचमुच वह कोई बड़ी बात न होती, पर पैरेमन सेमोनिचको, पैरेमनको......"

मैंने पूनिनसे बैठ जाने और आराम करनेकी प्रार्थना की।

पूनिनने अपना सिर हिलाया—"नहीं, मैं नहीं बैठूँगा। मैं तुम्हारे पास आया हूं...मैं नहीं जानता, किस लिए। मैं विक्षिप्त-सा हो रहा हूं ; घरपर अकेले बैठे रहना भयानक जान पड़ता है ; मैं अपनेको क्या करूँ ? मैं कमरेके बीच खड़ा होकर अपनी आँखोंको मूँद लेता हूं और "मानसी !" यह नाम लेकर पुकारता हूं। पागल होनेका यही तरीक़ा है। मगर नहीं, मैं व्यर्थकी बातें क्यों बक रहा हूं ? मुझे मालूम है कि मैं तुम्हारे पास किस लिए आया हूं। तुमको याद होगा कि उस दिन तुमने मुझे वह महानिकृष्ट कविता पढ़ सुनाई थी......तुम्हें यह भी स्मरण होगा कि उसमें वृद्ध पतिका ज़िक्र आया है। तुमने ऐसा क्यों किया था ? क्या तुम्हें उस समय कुछ मालूम हुआ था......या तुमने कुछ अनुमान किया था ?" पूनिनने मेरी ओर दृष्टिपात किया—"पिओटर पिट्रोविच", वह एकाएक चिल्ला उठा, और उसका सारा शरीर काँपने लगा—"तुम शायद जानते हो कि वह कहाँ है। मेरे सहृदय मित्र, मुझे बताओ, वह किसके पास गई है ?"

मैं घबरा गया, और मेरी आँखें नीचेकी ओर झुक गईं......

"शायद अपनी चिट्ठीमें उसने कुछ लिखा हो !"—मैंने कहना शुरू किया......

"उसने लिखा है कि मैं आप लोगोंको छोड़कर जा रही हूं, क्योंकि मैं किसी और ही व्यक्तिसे प्रेम करती हूं। मेरे प्यारे नेक दोस्त ! तुम यह ज़रूर जानते हो कि वह

कहाँ है ? उसे बचाओ, हम लोगोंको वहाँ ले चलो ; हम उसे वापस लौट आनेके लिए कहेंगे। ज़रा सोचो तो कि वह कैसे व्यक्तिका सर्वनाश कर रही है।"

पूनिनका चेहरा एकदम लाल हो उठा। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो उसके सिरमें खून दौड़ गया हो। वह धड़से घुटनोंके बल गिर पड़ा। "मित्र, हमें बचाओ, हमें वहाँ ले चलो।"

मेरा नौकर दरवाज़ेपर आया, और चकित होकर चुपचाप खड़ा-खड़ा यह सब दृश्य देखता रहा।

मैंने बड़ी मुश्किलसे पूनिनको उठाकर खड़ा किया, और उसे यह विश्वास दिलाया कि अगर इस सम्बन्धमें मुझे किसीके प्रति कुछ सन्देह भी हो, तो फौरन उसी दम और ख़ासकर दोनों साथ मिलकर कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि इससे हमारे सारे प्रयत्न निष्फल हो जायँगे। मैंने उसे यह भी विश्वास दिलाया कि इस मामलेमें भरसक प्रयत्न करनेके लिए मैं तैयार हूं, मगर किसी बातके लिए जवाबदेह नहीं हूंगा। पूनिनने मेरा विरोध नहीं किया, और असलमें मेरी बातोंको उसने सुना भी नहीं। वह सिर्फ समय-समयपर कातर स्वरमें दुहराता रहा, "उसे बचाओ, उसे और बैबूरिनको बचाओ।" आख़िर वह रो पड़ा। "कम-से-कम एक बात तो बताओ।" उसने पूछा—"क्या वह सुन्दर है, नवयुवक है ?"

"हाँ, वह नवयुवक है", मैंने उत्तर दिया।

"वह नवयुवक है", पूनिनने इस वाक्यको अपने गालोंके आँसू पोछते हुए दुहराया—"और यह युवती नई······बस, इसीसे यह उपाधि खड़ी भई !"

उसके मुँहसे यह छन्दबद्ध वाक्य संयोगसे निकल पड़ा, क्योंकि बेचारे पूनिनकी प्रवृत्ति उस समय छन्द-रचनाकी ओर थोड़े ही थी। मैं एक बार फिर उसके असंबद्ध वाक्य-प्रवाह अथवा उसके मूक हास्यको ही सुननेके लिए बहुत कुछ न्योछावर कर देता······किन्तु हाय ! उसकी वह वक्तृत्वशक्ति सदाके लिए विलीन हो गई, और फिर मुझे उसका वह हास्य कभी सुनाई नहीं दिया !"

मैंने उससे वादा किया कि ज्यों ही मुझे कोई बात निश्चित रूपमें मालूम होगी, त्यों ही मैं उसे सूचित कर दूँगा······टारहोवके नामका मैंने कोई ज़िक्र नहीं किया। पूनिन एकाएक बिलकुल निस्तब्ध हो गया। "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, महाशय, आपको धन्यवाद है,"—उसने करुणोत्पादक मुखसे कहा और 'महाशय' शब्दका व्यवहार किया, जैसा उसने पहले कभी नहीं किया था—"सिर्फ एक बातका ध्यान रखना, जनाब, पैरेमन सेमोनिचसे कुछ भी न कहना······नहीं तो वह नाराज़ हो जायगा। सारांश यह कि उसने इस विषयकी चर्चाकी बिलकुल मनाही कर दी है। अच्छा, महाशय, अब विदा होता हूं।"

ज्यों ही वह उठा और अपनी पीठको मेरी ओर घुमाया, मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह कितना दीन एवं दुर्बल हो गया है ; वह दोनों पाँवोंसे लंगड़ाकर चलता था, और हरएक पगपर घूम जाता था······

"यह बुरा लक्षण है। इसका अर्थ यह है कि इसका अन्त सन्निकट है।"—मैंने सोचा।

यद्यपि मैंने पूनिनसे वादा किया था कि मैं मानसीका पता लगाऊँगा, और गर्चे मैं उसी दिन टारहोवके यहाँ जानेके लिए चल पड़ा, मगर मुझे किसी बातका पता चलनेकी तनिक भी उमीद नहीं थी, क्योंकि मुझे यह निश्चय था कि या तो वह मुझे अपने घरपर मौजूद नहीं मिलेगा, और मिला तो वह मुझसे मिलनेसे इंकार कर देगा। मेरा यह अनुमान ग़लत निकला। मैंने टारहोवको घरपर मौजूद पाया ; वह मुझसे मिला, और जो कुछ जानना चाहता था, वह सब मैंने जान लिया ; लेकिन उससे कोई फायदा नहीं हुआ। ज्यों ही मैंने उसके दरवाज़ेके चौखटको पार किया, टारहोव दृढ़तापूर्वक तेज़ीके साथ

मुझसे मिलने आया, उस समय उसकी आँखें चमक रही थीं, और उनसे ज्योति निकल रही थी। उसका चेहरा बहुत ही मनोहर और कान्तिपूर्ण बन गया था। उसने दृढ़ताके साथ फुर्तीसे कहा—"सुनो, पेत्र्या, मेरे मित्र, तुम जिस कामसे आये हो, और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, वह मैं समझता हूं, मगर मैं तुम्हें सावधान किये देता हूं कि अगर तुम मानसीके विषयमें, या उसके कार्यके सम्बन्धमें, अथवा जिस मार्गको मैंने अपनी सहज बुद्धिके अनुसार ग्रहण किया है, उस विषयमें एक शब्द भी कहोगे, तो फिर हम दोनों मित्र-रूपमें नहीं रह जायँगे, हम दोनों परिचित-रूपमें भी नहीं रह जायँगे, और तब मैं तुमसे कहूंगा कि मेरे साथ एक अपरिचित व्यक्ति-जैसा व्यवहार करो।"

मैंने टारहोवके ऊपर दृष्टि डाली। वह भीतरसे बिलकुल इस तरह काँप रहा था, मानो सितारका तार कसकर खींचा गया हो। उसके सम्पूर्ण शरीरमें झनझनाहट-जैसी आवाज़ हो रही थी। वह बड़ी मुश्किलसे अपने यौवनके उच्छ्वास एवं आवेशको दबाकर रख सकता था। आनन्दातिरेकके कारण वह आत्म-विभोर बन गया था—उसकी आत्मा आनन्द-सागरमें तल्लीन हो गई थी।

"क्या यह तुम्हारा अन्तिम निश्चय है?" मैंने खेदपूर्वक पूछा।

"हाँ, पेत्र्या, मेरे मित्र, यह अन्तिम निश्चय है।"

"ऐसी हालतमें मेरे लिए तुमसे विदा माँगनेके सिवा और कुछ कहना नहीं है।"

टारहोवने धीरेसे अपनी पलकोंको नीचा कर लिया। उस समय वह मारे आनन्दके फूला नहीं समाता था।

"अच्छा, पेत्र्या, अब विदा," उसने कुछ-कुछ नाकसे बोलते हुए और मुसकराते हुए तथा अपने सफेद दाँतोंको दिखलाते हुए कहा।

मैं अब क्या करता? मैंने उसे आनन्दोपभोग करनेके लिए छोड़ दिया। ज्यों ही मैंने बाहर निकलकर दरवाजा बन्द किया कमरेका दूसरा दरवाज़ा भी बन्द हो गया—इसे मैंने खुद अपने कानोंसे सुना।

दूसरे दिन मैं भरे हुए दिलसे, पाँव घसीटता हुआ, अपने अभागे परिचितोंसे मिलनेके लिए उनके स्थानपर गया। [क्रमशः

श्रीमती महादेवीजीकी कविता

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

स्त्री कवियित्रियोंमें श्रीमती महादेवी वर्माका स्थान नवीन हिन्दी-कविता-क्षेत्रमें प्रथम है। सन्ध्याके आकाशमें जिस प्रकार एक तारिकाके उदित होते ही क्रमशः अन्य तारिकाओंके दर्शन होने लगते हैं, उसी प्रकार महादेवीजीके बाद अन्य कवियित्रियोंके भी दर्शन मिलते जा रहे हैं। महादेवीजीकी ही भाँति उन सबके जीवनके आकाशमें भी वेदनाका ही गान गूँज रहा है।

यद्यपि महादेवीजीसे भी पहले श्रीमती सुभद्राकुमारी कविता-क्षेत्रमें खूब प्रसिद्ध हो चुकी हैं, किन्तु सुभद्राजीकी कविताएँ नवीन प्रगतिसे पहलेकी हैं; साथ ही उनकी कविताओंमें अन्तर्जगतकी अपेक्षा वस्तु-जगतकी भावनाएँ अधिक हैं। वाह्य जगतकी वस्तुओंसे हम जिस प्रकार दृष्टि, स्पर्श और ध्वनि द्वारा सहज ही परिचित हो जाते हैं, उसी प्रकार सुभद्राकुमारीके भावोंसे भी; किन्तु कवि पन्तजीके शब्दोंमें—"'नीहार' * की कवि वस्तु-जगतकी अनुभूति नहीं रखतीं, भावना-द्वारा ही वे वस्तुओंको परखती हैं। मेघ-मरुत, पुष्प-लहर आदि सभी इस जगतके उपकरण मनोवेगोंसे रंजित होकर उनके सामने आते हैं। मनोरागकी आँखोंसे ही वे उसकी कल्पना करती हैं, इसलिए उनकी भावनाओंकी अभिव्यक्तिमें काल्पनिक छाया-रूपोंकी अस्पष्टता वर्तमान है।"

ऐसे अस्पष्ट कविता-चित्रोंके सम्बन्धमें रवि बाबूने एक स्थानपर लिखा है—"हमने अपने समस्त जीवनमें क्या देखा, क्या समझा, क्या पाया; हम इसे समस्त रूपसे स्पष्टतया नहीं बता सकते। कवि लोग भी सम्पूर्णतया बतला सकते हैं, सो बात नहीं है। उनकी भी समस्त वाणी स्पष्ट नहीं होती, सत्य नहीं होती, सुन्दर नहीं होती। अपनी प्रकृतिके गूढ़ तात्पर्यको सम्पूर्णतया प्रकाशित करनेमें उनका प्रयत्न भी हमेशा सफल नहीं होता, किन्तु जहाँ उनकी चेष्टाओंका अवसान हो जाता है, वहाँ उनसे भी अलक्षित भावसे एक विश्वव्यापी गूढ़ चेष्टाकी प्रेरणासे समस्त बाधाओं और स्पष्टताओंके बीचमें से एक मानस-रूप जिसको 'हम पकड़नेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु पकड़ नहीं पाते'—स्वयमेव कभी अल्प मात्रामें, कभी अधिक मात्रामें प्रकाशित हुआ करता है।"

महादेवीजीने भी अपनी भावनाओंमें ऐसे ही मानस-रूपको पकड़नेकी चेष्टा की है, किन्तु वह इस चेष्टाके परे है, इसीलिए उनके हृदयमें उसके लिए विकलता है—कहती हैं—

> "मैं फूलोंमें रोती, वे बालारुणमें मुस्काते,
> मैं पथमें बिछ जाती हूँ, वे सौरभमें उड़ जाते।"

इसी भाँति—

> "वे आँसू बनकर मेरे इस कारण ढुल-ढुल जाते,
> इन पलकोंके बन्धनमें मैं बांध-बांध पछताऊँ।
> मेघोंमें विद्युत-सी छबि उनकी बनकर मिट जाती,
> आँखोंकी चित्रपटीमें जिसमें मैं आँक न पाऊँ।
> वे तारक-बालाओंकी अपलक चितवन बन आते,
> जिसमें उनकी छाया भी मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ।
> सोते, सागरकी धड़कन बन लहरोंकी थपकीसे,
> अपनी यह करुण-कहानी जिसमें उनको न सुनाऊँ।
> वे आभा बन खो जाते शशि-किरणोंकी उलझनमें,
> जिसमें उनको कन-कनमें देखूँ पहचान न पाऊँ।
> वे चुपकेसे मानसमें आ छिपते उच्छ्वासें बन,
> जिसमें उनको साँसोंमें, ढूँढूँ पर रोक न पाऊँ।'
> वे स्मृति बनकर प्राणोंमें खटका करते हैं निशि दिन
> उनकी इस निष्ठुरताको जिसमें मैं भूल न जाऊँ।

यह अदृश्य, अस्पृश्य मानस-रूप ही उनकी आत्माका प्रियतम परमात्मा है; अपनी कवितामें सर्वत्र उन्होंने उसीके प्रति आत्म-निवेदन किया है। उसीकी सजल स्मृति और आनन्द तथा हास उन्होंने अपने प्राणोंमें तथा प्रकृतिकी प्रत्येक दिशामें देखा है। मीराकी तरह उन्होंने भी उस प्रियतमके लिए क्रन्दन किया है, किन्तु उनका प्रियतम मीराके गिरधर गोपालकी तरह साकार और सगुण नहीं, केवल अदृश्य और अस्पृश्य है, केवल भावनाओंमें ग्रहण करनेकी वस्तु है।

महादेवीजीकी कविता-रानीका संक्षिप्त परिचय तो पन्तजीकी 'चाँदनी' शीर्षक कविताकी इन पंक्तियोंमें दिया जा सकता है—

* श्रीमती महादेवी वर्माकी कविताओंके संग्रहका नाम।

"वह खड़ी दृगोंके सन्मुख सब रूप, रेख, रँग ओझल,
अनुभूति-मात्र-सी उरमें आभास, शांत, शुचि उज्ज्वल।
वह है, वह नहीं, अनिर्वच, जग उसमें, वह जगमें लय,
साकार चेतना-सी वह जिसमें अचेत जीवाशय।"

चाँदनी ही की भाँति उनकी कविताका अर्थ भी आभासित होता है; परन्तु उसे न तो हम स्पर्श कर सकते हैं, न ग्रहण कर सकते हैं। एक रहस्यमयीकी तरह उनकी कविता अस्तित्त्वहीन होकर भी अस्तित्त्वमय है, अस्तित्त्वमय होकर भी अस्तित्त्वहीन है। साकार जगतके उपकरणों द्वारा ही वे अपनी भावनाओंको व्यक्त करती हैं, किन्तु उनकी भावनाओंका जगत उनकी कल्पनाओंके साँचेमें ढलकर, अपना वास्तविक रंग-रूप बदलकर उनके ही अन्तर्जगतकी वस्तु बन गया है।

पन्तजीके शब्दोंमें—

"महादेवीजीकी कल्पना चाँदनीकी साड़ी पहन, तारोंकी स्वप्निल जाली मुखपर डाले, सन्ध्याका सिन्दूर माथेपर लगा, कविताके आकाशमें अपने सोनेके पंखोंको फैलाकर, यतिहीन उड़ानमें, सौन्दर्यके स्वर्गिक पुलिनोंको छूकर, भावोंके कुसुमोंपर सजल ओसके आँसू बरसाती हुई, जिस प्रकार सूक्ष्मताकी नीहारिकामें विलीन हो जाती है, उसके लिए फिर रूप-जाल तथा वाणीके आवरणमें परिणत होकर आकार-प्रकार ग्रहण करना उतना ही कठिन हो जाता है।"

किन्तु ऐसी कविताएँ प्रायः अति कल्पना और अति भावुकताके कारण ही आवरणहीन एवं अरूप हो जाती हैं।

कल्पना साहित्यकी वाह्यगति है, अनुभूति आन्तरिक गति। कल्पना आन्तरिक अनुभूतिके वाह्य प्रकाशनका काम करती है—वह उसके लिए बाहर रंग, रूप एवं आकार-प्रकार तैयार करती है। कविताका वाह्य काल्पनिक शरीर पुष्पकी पंखुड़ियोंकी तरह नेत्ररंजक और दर्शनीय होता है, परन्तु उसके भीतर अनुभूति सुरभिकी तरह अन्तर्हित रहती है। यही उसका सच्चा रहस्यमय सौन्दर्य है।

काव्य-कल्पनाके पंख, जहाँ तितलीके बहुरंगी पंखोंकी तरह केवल रंगसाज़ी एवं कलाका ही प्रदर्शन करते हैं, वहाँ वे हमारे वाह्य नेत्रोंको ही लुभाकर रह जाते हैं; परन्तु कविता जब अपने मधुपके-से पंख फैलाकर, कसकके काँटों-काँटोंमें छिदकर, शब्दोंके पल्लव-पल्लवमें छिपकर, अनुभूतिपूर्ण मधुमय जीवन-गुंजार करती है, तब वह हमारे कानों तक ही नहीं, मर्मस्थल तक पहुँच जाती है।

आजकलकी अधिकांश कविताओंमें तितलीके पंखों-जैसा वाह्य आकर्षण ही अधिक है।

परन्तु महादेवीजीकी सभी कविताएँ वाह्य आकर्षण ही नहीं रखतीं, बल्कि कुछमें अन्तःसौन्दर्य भी है। जहाँ उन्होंने वस्तु जगतके विषय लेकर उनपर अपनी वेदना और कल्पनाका रंग स्पष्टतासे चढ़ाया है, वहां उनकी हार्दिक अनुभूतिका सुन्दर परिचय मिलता है। उनकी ऐसी कविताएँ अधिक सुबोध और मर्म्मस्पर्शिनी हैं। उन कविताओंकी वेदना, उदासीनता और विरक्तिके साथ हमारे हृदयकी भी सहज सहानुभूति हो जाती है। उन कविताओंके पढ़नेसे जान पड़ता है कि कविके अन्तरतममें वेदनाकी एक अदृश्य अनुभूति, बाँसुरीमें किसी उदास रागिनीकी तरह सोई हुई है। कुछ ऐसी कविताओंके नाम ये हैं—मेरा एकान्त, परिचय, संसार, समाधिके दीपसे, स्मारक इत्यादि। हम महादेवीजीकी कल्पनामूलक एवं छायात्मक कविताओंके सम्बन्धमें किसी अन्य लेखमें विचार करेंगे; अभी तो यहां उन कविताओंके ही कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं—जिनके द्वारा हम उनके वेदना-बहुल हृदयसे सहज परिचय प्राप्त कर सकते हैं। 'मेरा एकान्त'—शीर्षक कवितामें कहती हैं—

"कामनाकी पलकोंमें झूल
नवल फूलोंके छूकर अंग,
लिए मतवाला सौरभ साथ
लजीली लतिकाएँ भर अंक,
यहां मत आओ मत्त समीर!
सो रहा है मेरा एकान्त!
लालसाकी मदिरामें चूर
क्षणिक भंगुर यौवनपर भूल,
साथ लेकर भौंरोंकी भीर
विलासी हे उपवनके फूल!
बनाओ इसे न लीलाभूमि
तपोवन है मेरा एकान्त!
निराली कलकलमें अभिराम
मिलाकर मोहक मादक गान,
छलकती लहरोंमें उद्दाम
छिपा अपना अस्फुट आह्वान,
न कर हे निर्झर! भंग समाधि
साधना है मेरा एकान्त!

विजन वनमें बिखराकर राग
जगा सोते प्राणोंकी प्यास,
ढालकर सौरभमें उन्माद
नशीली फैलाकर निश्वास,
लुभाओ इसे न मुग्ध वसन्त !
विरागी है मेरा एकान्त !

गुलाबी चल चितवनमें बोर
सजीले सपनोंकी मुस्कान,
झिलमिलाती अवगुंठन डाल
सुनाकर परिचित भूली तान,
जला मत अपना दीपक आश !
न खो जाये मेरा एकान्त !"

संसारके आडम्बरोंसे दूर, कविने इन पंक्तियोंमें बड़े ही प्रशान्त एकान्तकी सृष्टि की है—उसका एकान्त तपोवन है, उसका एकान्त साधनापूर्ण है, उसका एकान्त विरागी है। भौतिक विश्वकी किसी भी शोभा-श्रीमें उसके लिए ममत्व या आकर्षण नहीं। कविकी इन पंक्तियोंमें सन्ध्याके सूनेपनकी-सी उदासीनता शब्द-शब्दसे उच्छ्वसित हो उठी है। ऐसा जान पड़ता है कि उसके हृदयमें जो अज्ञात वेदना छिपी पड़ी है, उस वेदनाका स्वर, इस वाह्य विश्वके स्वरके साथ नहीं मिल पाता, इसीलिए वह मानो गोधूलीकी तरह इससम्पूर्ण विश्वसे पृथक् होकर अपनेको अपने ही हृदयके एकान्तमें अदृश्य रखना चाहती हैं। कवि-हृदयका यह कैसा करुण सन्यास है !

'संसार'—शीर्षक कवितामें कहती हैं—

"निश्वासोंकी नीड़, निशाका
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अविराम छिन्न
मुक्तावलियोंके बन्दनवार
तब बुझते तारोंके नीरव नयनोंका यह हाहाकार,
आँसूसे लिख-लिख जाता है—'कितना अस्थिर है संसार !'
देकर सौरभ दान पवनसे
कहते जब मुरझाये फूल,
जिसके पथमें बिछे वही क्यों
भरता इन आँखोंमें धूल ?
'अब इनमें क्या सार'—मधुर जब गाती भौंरोंकी गुञ्जार
मर्म्मरका रोदन कहता है—'कितना निष्ठुर है संसार !'"

वाह्य विश्वकी अस्थिरता, क्षणभंगुरता और दुःखपरायणताका कैसा मूर्तिमान चित्र है ! संसार स्वप्न और असार है, साथ ही—

मर्म्मरका रोदन कहता है—
"कितना निष्ठुर है संसार !"

इसीलिए अपनी कविताकी किसी भी पंक्तिमें, संसारके किसी भी कोनेमें, उन्होंने उल्लास या आनन्दको नहीं देखा। शेलीकी तरह उनकी भी दृष्टि चतुर्दिक वेदनामय है, किन्तु शेलीकी कविता अपने ही निराश भौतिक जीवनसे उद्भूत हुई थी ; और महादेवीजीकी कविता कल्पना-लोकमें आध्यात्मिक विकलतासे प्रसूत हुई है। महादेवीजीकी उपर्युक्त पंक्तियोंके साथ हमें पन्तजीकी भी ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं—

"जब शशिकी शीतल छायामें रुचिर रजत-किरणें सुकुमार
प्रथम खोलतीं नव-कलिकाके अन्त:पुरके कोमल द्वार,
अलिबालासे सुन तब सहसा,—'जग है केवल स्वप्न असार',
अर्पित कर देती मारुतको वह अपने सौरभका भार।"

पन्तजीके असारता-निदर्शनमें सुकुमारता है, महादेवीजीकी पंक्तियोंमें मादकता और प्रवाह। महादेवीजी संसारकी असारता और निष्ठुरतापर अपनी सजल दृष्टि डालकर केवल विकल हो जाती हैं, परन्तु पन्तजीने इस असारतामें भी सार-तत्त्वका निर्देश किया है—असार विश्वमें अपने जीवनके सौरभको मिला देने—लुटा देनेमें ही अपने अस्तित्वकी सार्थकता है। वे विश्वकी असारता देखकर जीवनको क्रन्दनमय नहीं बना लेना चाहते, बल्कि इस असारताको, जीवनके इस क्षणिक अवसरको, सार्थक कर लेना चाहते हैं। अपनी 'गुंजन' नामक नई कविता-पुस्तकमें कहते हैं—

"हँसमुख प्रसून सिखलाते पलभर है जो हँस पाओ,
अपने उरकी सौरभसे जगका आँगन भर जाओ।"
कितना मधुर सन्देश है !

भिन्न-भिन्न कवियोंका भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होता है। अपने ही जीवन और परिस्थितियोंकी भावनाके अनुसार एक ही संसार किसीके लिए आनन्दमय है, मादकतापूर्ण है ; किसीके लिए वेदना-मय, क्रन्दन-मय। भावना-मय ही तो संसार है।

एक ही संसार भिन्न-भिन्न भावनाओंमें कैसा विभिन्न स्वरूप धारण करता है, महादेवीजीने 'संसार' शीर्षक कवितामें इसी बातको व्यक्त किया है। आगे कहती हैं—

"हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अंचलमें बिखरा रोली,

लहरोंकी बिछलनपर जब
मचली पड़तीं किरणें भोली,
तब कलियें चुपचाप उठाकर पल्लवके घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकोंसे कहती हैं—'कितना मादक है संसार !'
स्वप्नलोकके फूलोंसे कर
अपने जीवनका निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर तब अज्ञात देशसे जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरोंमें—'कितना पागल है संसार !' "
स्वर्ण वर्णसे दिन लिख जाता
जब अपने जीवनकी हार,
गोधूली, नभके आंगनमें
देती अगणित दीपक बार,
हँसकर तब उस पार तिमिरका कहता बढ़-बढ़ पारावार,
'बीते युग पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार !'

उपरोक्त पंक्तियोंमें संसारका ध्वनि और शब्दचित्र कितना प्राणस्पर्शी है, मानों कविकी सांस-सांस इसमें समा गई हो। तथा—

बीते युगपर बना हुआ है
अब तक मतवाला संसार।

इन शब्दोंमें कितना गूढ़ व्यंग है। हम नित्य देखते हैं कि जाज्वल्यमान किरणोंसे प्रकाशित होकर दिन अपने आकाशमें उदित होता है, परन्तु अविराम जीवन-संग्रामके बाद, अन्तमें वह हारकर निष्प्रभ पड़ जाता है। संसारके हृदय पटलपर उसकी स्वर्णकिरणें, केवल उसकी असफलताको ही अंकित कर जाती हैं, केवल उसके भविष्यके अन्धकारका ही निर्देश कर जाती हैं। उधर गोधूली फिर नभके आंगनमें अगणित तारक-दीपक बार देती है, परन्तु वे भी दो क्षण टिमटिमाकर बुझ जाते हैं। ऐसी ही असफलता और विनाशके चक्रमें सृष्टिके कितने ही युग बीत गये। परन्तु संसार उन बीते युगोंकी असफलता और नश्वरताके निर्देशको न समझकर उन्हीं असफलताओं और नश्वरताओंके आधारपर अपनेको खड़ा करके अपने अहंपूर्ण जीवनके मदमें मतवाला बना हुआ है। इस क्षणभंगुर भवमें क्षणभंगुर अस्तित्व और सफलताके लिए क्षणभंगुर प्रयासमें लगा हुआ है। जीवनकी चिरस्थायी आध्यात्मिकताकी ओर उसका ध्यान नहीं है। वह सूर्य और तारोंकी तरह अपने क्षणिक भौतिक जीवनमें क्षणभर चमककर, बुझता चला जा रहा है। महानाश विराट् अन्धकार जैसा व्यापक स्वरूप धारण कर मानो मनुष्यकी इस दुर्बलताका उपहास कर रहा है।

श्रीमती महादेवी वर्मा

"समाधिके दीपसे"—शीर्षक कवितामें कहती हैं—

"जिन अधरोंकी मन्द हँसी थी नव अरुणोदयका उपमान,
किया देवने जिन प्राणोंका केवल सुषमासे निर्माण;
तुहिनबिन्दु-सा, मंजु सुमन-सा जिनका जीवन था सुकुमार,
दिया उन्हें भी निठुर कालने पाषाणोंका शयनागार।
कन-कनमें बिखरी सोती है अब उनके जीवनकी प्यास,
जगा न दे हे दीप! कहीं उसको तेरा यह क्षीण प्रकाश !"

इन पंक्तियोंके साथ, दूर, विजनमें, दीपकके क्षीण प्रकाशमें अपनी नश्वरताको मन्द-मन्द प्रकाशित करती हुई समाधिका करुण चित्र आँखोंके सामने आ जाता है। फूलों-सा शरीर पाषाणोंके शयनागारपर सोया हुआ है।

जीते जी उसकी अभिलाषाओंके अनेक साथी थे, उसकी शोभाके अनेक उपासक, उसके संकेतोंके अनेक सेवक। किन्तु आज इस एकान्त निर्जनमें कोई नहीं है, केवल चारों ओर उदास प्रकृति सन्नाटेमें जम्हुआई ले-लेकर उस नश्वरताको और भी नश्वर कर रही है। ऐसे ही सुनसान वातावरणमें इस कविताको पढ़ते ही अपना भी हृदय रो पड़ता है—

जगा न दे हे दीप ! कहींउसको तेरा यह क्षीण प्रकाश !

इसमें कवि-हृदयकी कैसी आर्द्र सहानुभूति है !

'स्मारक'—शीर्षक कवितामें कहती हैं—

"मिटा जिनको जाता है काल
अमिट करते हो उनकी याद,
डुबा देता जिसको तूफ़ान
अमर कर देते हो वह साध ;
मूक जो हो जाती है चाह
तुम्हीं उसका देते सन्देश।
राख में सोने का सम्राज्य
शून्यमें रखते हो संगीत,
धूलसे लिखते हो इतिहास
बिन्दुमें भरते हो वारीश ;
तुम्हींमें रहता मूक वसन्त
भरे सूखे फूलोंके हास !"

जिसप्रकार 'समाधि' में जगतकी नश्वरताका निर्देश है, उसी भांति 'स्मारक' में मनुष्यजीवनकी चिरसाकारताका कैसा सूक्ष्म निदर्शन है।

महादेवीजीके हृदयने वस्तुजगतके उपकरणोंमें अपनी ही वेदना और अपनी ही करुणाको चित्रपट प्रदान किया है। परन्तु जिस प्रकार सुखीको सुखमें सुख मिलता है, उसी भाँति विदग्धको भी अपनी वेदना ही में अपार सुख मिलता है। महादेवीजी भी अपनी ही वेदना और अपने ही एकान्तमें सन्तुष्ट हैं, इसीलिए 'परिचय' शीर्षक कवितामें कहती हैं—

"जिसमें नहीं सुवास, नहीं जो करता सौरभका व्यापार,
नहीं देख पाता जिसकी मुस्कानोंको निष्ठुर संसार ;
जिसके आँसू नहीं माँगते मधुपोंसे करुणाकी भीख,
मदिराका व्यवसाय नहीं जिसके प्राणोंने पाया सीख ;
मोती बरसे नहीं, न जिसको छू पाया उन्मत्त बयार,
देखी जिसने हाट न जिसपर ढुल जाता मालीका प्यार ;
चढ़ा न देवोंके चरणोंपर गूँथा गया न जिसका हार,
जिसका जीवन बना न अब तक उन्मादोंका स्वप्नागार ;
निर्जन वनके किसी अँधेरे कोनेमें छिपकर चुपचाप,
स्वप्नलोककी मधुर कहानी कहता-सुनता अपने आप ;
किसी अपरिचित डालीसे गिरकर जो नीरस जंगली फूल,
फिर पथमें बिछकर आँखोंमें चुपकेसे भर लेता धूल ;
उसी सुमन-सा पल-भर हँसकर सूनेमें हो छिन्न मलीन,
झड़ जाने दो जीवन-माली ! मुझको रहकर परिचय-हीन !"

कैसी सरल इच्छा है ! अपने ही आपमें कैसी शीतल तृप्ति है ! भावनामें कितनी सादगी और मर्म्मस्पर्शिता है !

श्रीमती वर्मासे जो परिचित नहीं, उनके लिए कवि पन्तजीके शब्दोंमें यह लिख देना पर्याप्त होगा— 'नीहारकी कवि सदैव प्रसन्नमुख रहती हैं।......जिस प्रकार कविताके कल्पना-लोकमें पीड़ा उनकी अभिन्न संगिनी है, उसी प्रकार वस्तु और व्यवहार-लोकमें हँसी।......उनकी दृष्टि तिग्म और संयमित है। वार्तालापका प्रवाह आकर्षक।"

महादेवीजीकी कविताओंमें उनके नारी-हृदयका पूर्ण निजस्व है। वैसा निजस्व सुभद्राकुमारीके इन शब्दोंमें नहीं—

"मैं उन्मत्त प्रेमका लोभी हृदय दिखाने आई हूँ ;"

इस 'उन्मत्त लोभी' में नारी-हृदयका परिचय नहीं मिलता ; वह तो मधुकर-जैसा जान पड़ता है, उसमें मधुप-बालिकाकी-सी सरलता नहीं।

अवश्य ही सुभद्राजीकी भाषा व्याकरणकी दृष्टिसे प्रायः निर्दोष और साफ़ रहती है, तथा महादेवीजीकी भाषा कहीं-कहीं सदोष ; परन्तु यह दोष चन्द्रमामें तिलकी तरह है।

महादेवीजीके कुछ शब्द-विन्यास बड़े ही सुकुमार हैं, यथा—ढरकीले आँसू, सिहराई कम्पन, इत्यादि ; परन्तु कहीं-कहीं उनका शब्द-विन्यास कोमल होते हुए भी सुन्दर नहीं, जैसे—जर्जर अंचल, स्वप्नोंकी तस्वीर ; ऐसे शब्द-विन्यासोंमें शब्दोंका पारस्परिक सौन्दर्य नहीं मिल सका है। कुछ शब्दोंमें उनके उच्चारण-दोष भी दीख पड़ते हैं, यथा—अह्वान, सम्राज्य, ज्योतिस्ना, कलियें। कुछ शब्द-विन्यास अमूर्त भी हैं, जो कि उनकी सूक्ष्म भावुकताके परिचायक हैं ; यथा—उच्छ्वासोंकी माला, निश्वासोंका नीड़।

महादेवीजीकी लेखन-शैलीमें बड़ी मादकता और सुन्दरता है। कहनेके ढंगमें उनके हृदयकी जो स्वाभाविकता है, उसीसे समस्त कवितायें सजीव हो उठी हैं।

भगवान करें, वे समय और जीवनके विकासके साथ-साथ अधिक-से-अधिक अनुभव-परिपक्व और रस-विदग्ध होकर चिरकाल तक हिन्दी-काव्यकी शोभा बढ़ाएँ।

साइकिलपर दिल्लीसे कलकत्ता

श्री जी० डी० जोशी

स्वाधीनता और पराधीनतामें पूर्व और पश्चिमका अन्तर है। स्वाधीन राष्ट्रके नवयुवकोंके अन्दर एक विद्युन्मय कार्यशक्ति काम करती है, उनके अन्दर एक ज्वाला जलती रहती है, जिसकी उष्णतासे प्रेरित होकर वे समुद्रोंको चीर डालते हैं, पर्वतों और जंगलोंको लांघ जाते हैं, नदी और नालोंको तैर जाते हैं, फिर भी उनकी अन्तर्ज्वाला शान्त नहीं होती। वह अन्तर्ज्वाला एकके बाद दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे कार्यकी खोजमें उन्हें भटकाती है। यही कारण है कि हम प्रतिवर्ष कितने ही पाश्चात्य यात्रियोंको भारतमें भ्रमण करते हुए देखते हैं। कोई पैदल यात्रा करता है, तो कोई साइकिल द्वारा दुनियाका चक्कर लगाता है, और कोई मोटर-साइकिलपर बैठकर देश-देशान्तरोंको छान डालता है, हवाई-जहाज़ और समुद्री जहाज़ोंसे प्रतिवर्ष यूरोप-अमेरिका आदि देशोंसे हज़ारों यात्री विश्व-भ्रमण करनेको निकलते हैं। गत वर्षकी बात है कि ब्रिटिश लोगोंका एक जत्था माउन्ट कामटपर चढ़नेके लिए भारत आया था। उनके पास काफ़ी सामान था, हर तरहके साधन थे, ताकि किसी प्रकारसे उन्हें निराश न होना पड़े। यूरोपियन लोगोंका यह समूह रानीखेत (अलमोड़ा) के पास अपना डेरा डालकर आगे बढ़ा, और माउन्ट कामटपर चढ़कर तमाम बातोंकी छान-बीन की। इस वर्ष भी कांचनजंघा चोटीपर चढ़नेके लिए जर्मन लोगोंका एक जत्था यहाँ आया हुआ है। पूछनेपर मालूम हुआ कि उन लोगोंने अपने गाँठसे एक पैसा भी खर्च नहीं किया। उन लोगोंका तमाम व्यय या तो स्टेटकी ओरसे दिया जाता है, यदि स्टेटसे न मिला, तो देशके रईस लोग उनके व्यय-भारको सहते हैं। इतना ही नहीं, उसके साथ ही उनको उत्साहित करनेके लिए हर तरहकी सुविधाएँ दी जाती हैं।

और हमारे यहाँ? हमारे यहाँ मामला ही दूसरा है। सहायता देना तो दूर रहा, कोई प्रोत्साहन भी नहीं देता! हाँ, ऊटपटाँग बातें कहकर निरुत्साहित करनेवाले बहुत मिल जाते हैं। एक राष्ट्रीय पत्रके सम्पादकसे मैंने प्रार्थना की कि वे मेरी इस यात्राकी सूचना छाप दें, इससे मुझे यात्रामें कुछ सुविधा होगी। उन्होंने इस प्रार्थनाको अस्वीकार कर दिया! पर एक ऐंग्लो-इंडियन पत्रने बड़े हर्षसे उस सूचनाको छापा, और इससे मार्गमें मुझे बहुत कुछ सुविधा हुई।

× × ×

साइकिल द्वारा भारत-यात्रा करनेके पूर्व मैंने अपने एक मित्रसे अपने विचार प्रकट किये। वे सज्जन पढ़े-लिखे समझदार व्यक्ति हैं। मैंने सोचा कि वे अवश्य मुझे उत्साहित करेंगे। मैंने उनसे कहा—"मैं साइकिलसे भारतकी यात्रा करना चाहता हूँ। आपकी क्या राय है?"

मित्र—"अरे भाई, साइकिलसे यात्रा, साइकिलसे! नपुंसक हो जाओगे। फेंफड़े और मसाना बिलकुल खराब हो जायगा।"

आसपास बैठे हुए कई मित्र हँसने लगे। मैंने अपनेको

हास्यास्पद समझकर इस सम्बन्धमें अधिक बातें नहीं की। चुपचाप चल दिया।

श्री जी० डी० जोशी

दूसरे मित्रसे जब फिर मैंने यह विचार प्रकट किये, तो उन्होंने कहा—"गरमीका मौसम है, दस क़दम चलनेपर मर जाओगे।"

तीसरे मित्रसे पूछा, तो उन्होंने कहा—"बिहारमें पक्षियोंकी तरह बड़े-बड़े मच्छड़ होते हैं, जिनके काटनेपर आदमी जीता नहीं बच सकता, इसलिए इस समय यात्रा करना अच्छा नहीं।"

चौथे सज्जनने बड़े पतेकी बातें बतलाईं, कहा—"ग्रांड ट्रंक सड़कके किनारे डाकबँगले हैं, बिस्तर फ़्री मिलता है, भोजनादिका प्रबन्ध निःशुल्क होता है, नौकर मिलते हैं, पंखा मिलता है। आप चले जाइये, दिल्लीकी गरमीसे तो आराममें रहेंगे।"

पाँचवें सज्जनने कहा—"भ्रमण तो अच्छा है, पर अकेला अच्छा नहीं।"

इसके बाद मैंने किसीसे पूछना उचित नहीं समझा। यात्रा करना निश्चय कर लिया।

साइकिल द्वारा देश-भ्रमण करना कष्टजनक तो अवश्य है, किन्तु आनन्ददायक भी है। प्रतिवर्ष कितने ही यूरोपियन यात्री साइकिल द्वारा भारतमें आते हैं, पर भारतीय लोग बहुत कम साइकिलसे सफ़र करते हैं। आजसे कुछ वर्ष पहले कानपुरके दो नवयुवकोंने साइकिल द्वारा भूमंडलकी यात्रा करनेका कार्य उठाया था। मालूम हुआ है, उनमें से एककी मृत्यु हो गई, और दूसरे भारतके अनेक भागोंकी यात्रा करके कानपुर पहुँच गये। ऐसे ही एक पारसी नवयुवकके सम्बन्धमें भी सुना गया था कि वह साइकिलसे संसारकी यात्रा कर रहा है, पर पता नहीं, उसका क्या हुआ।* आजकल कितने ही छात्र साइकिलसे भ्रमणको निकलते हैं, पर वह यात्रा बहुत कम दूरीकी होती है।

यात्रा आरम्भ करनेसे पूर्व कई असुविधाएँ सामने आईं। ४ मईको रवाना होना था। उस दिन चेकका नक़दी रुपया नहीं मिल सका। साइकिल भी तैयार नहीं हो सकी, अतः ५ मईको रवाना हुआ। रवाना होनेसे पूर्व मुझे अपने पास क्या-क्या सामान रखना चाहिए, यह सवाल था। अगर अधिक सामान पास रखता हूँ, तो वज़न बढ़ेगा; कम सामान रखता हूँ, तो आवश्यकताएँ कैसे पूरी होंगी,—बहुत देर तक इसी उधेड़-बुनमें लगा रहा। आखिर एक जोड़ा कपड़ा पहनकर, एक जोड़ा अतिरिक्त कपड़ा और पंचर ठीक करनेका सामान अपने साथ लिया। कोई सूट-केस या हैंडबेग भी पास नहीं रखा, बल्कि सामानको एक धोतीमें बाँध लिया, और गठरी साइकिलकी बैकमें बांध दी गई।

एक आवश्यक कार्य जो मैंने किया, और जो प्रत्येक यात्रीको करना चाहिए, वह यह था कि मैंने अपने मार्गके स्थान निर्दिष्ट करके जगह-जगहके बड़े आदमियोंके नाम और पते नोट कर लिये, और उनके नाम परिचय-पत्र भी ले लिये। परिचय-पत्र देनेवालोंमें स्वामी रामानन्द संन्यासी (मन्त्री, दलितोद्धार-सभा, दिल्ली) तथा मास्टर विश्वम्भरदयालजी, प्रोप्राइटर विद्याभूषण प्रेस, दिल्लीको मुझे हार्दिक धन्यवाद देना है, क्योंकि उन्हींके दिये परिचय-पत्रोंसे मुझे यू० पी० के प्रायः सभी स्थानोंपर हर तरहकी सुविधा मिली। तीसरा परिचय-पत्र बनारसके प्रसिद्ध वकील बाबू गौरीशंकरने दिया था। उससे

* वे कभीके बम्बई पहुँच चुके। —सं०

मुझे रास्तेमें भोजनादिकी सुविधा हो गई। कलकत्ता संस्कृत-कालेजके लाइब्रेरियन श्रीयुत यू० के० बोसने, जो मुझे हज़ारीबाग़ रोड स्टेशनमें मिले थे, कई स्थानोंके पते मुझे बता दिये थे। अतः उनसे भी मेरा बहुत मतलब सिद्ध हुआ। रास्तेमें भी प्रत्येक स्थानसे अगले स्टेशनके लिए कभी-कभी किसी सज्जनसे पत्र लिखा लिया करता था।

५ मईको प्रातःकाल ६ बजे नये बाज़ार दिल्लीसे रवाना हुआ। हाथमें एक पतला-सा बेंत था, जिसे मैं गयाके पास शेरघाटी तक लाया, पर वहाँपर उसे छोड़ दिया, और एक डंडा हाथमें ले लिया। वह डंडा कलकत्ते तक मेरे साथ रहा। जंगलके बीचमें कोई रिवाल्वर, या पिस्तौल, या चाकू, या छुरी मेरे पास नहीं थी। अन्य आवश्यक सामानमें एक रिस्ट-वाच, एक फाउन्टेनपेन, डायरी और काग़ज़-पेन्सल मेरे जेबमें थे। मेरे सारे सामानका वज़न कुल मिलाकर चार-पाँच सेरसे अधिक न होगा।

इसी बीच मैंने बत्तीस दिनमें प्रायः १३०० मीलकी यात्रा की। प्रतिदिन प्रातः ५½ से ६ के बीचमें रवाना हो जाया करता, और ६-१० के बीचमें ठहर जाता, परन्तु किसी-किसी दिन ११ बजे तक चलता। दस-बारह मील चलनेके बाद कुछ मिनट तक आराम कर लिया करता था। मेरी प्रतिघंटेकी चालका औसत दस-बारह मील है, पर ज़िला हज़ारीबाग़में, जहाँ दलुवा-भलुवाका भयावना जंगल है, मैं क़रीब पन्द्रह-सोलह मील प्रतिघटेकी चालसे साइकिल ले गया। मैंने प्रायः तीस बड़े-बड़े नगरों तथा क़स्बोंका भ्रमण किया। पैंसठ स्थानोंमें ठहरा। केवल तीन-चार स्थानोंको छोड़कर सब जगहोंपर अत्यधिक सत्कार हुआ। बनारसमें एक वृद्ध सज्जन मेरे भारतमें साइकिल द्वारा भ्रमण करनेकी खबर सुनकर आये, और मेरे पैर छूकर कहने लगे—"आप ही लोग कृष्णके अवतार हैं! भगवानने गोवर्द्धन उठाया था, आप सुदर्शनपर भ्रमण कर रहे हैं!" वे महाशय उम्रमें पचास वर्षसे अधिकके थे। मुझे इतनी शर्म मालूम हुई कि कुछ कहा नहीं जाता। कई स्थानोंपर लोगोंने मुझे छोटी-मोटी चीज़ें भेंट भी कीं। कन्नौजमें एक फर्मने इत्रकी शीशी, मोहनलालगंज (लखनऊ) में तेल और साबुन आदि वस्तुएँ मिलीं।

प्रातःकाल क़रीब तीस मील तथा सायंकाल ५ बजेसे ७ बजे तक कभी पन्द्रह और कभी बीस मीलका सफ़र करता। इस तरह नित्यप्रति मेरा सफ़र चालीस-पचास मीलके दरमियान बैठता। अलीगढ़, कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, बनारस, गया आदि बड़े-बड़े शहरोंमें दो-दो दिन ठहरा। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थान देखे। युक्तप्रान्त और बिहारके प्रायः सभी शहर दिल्लीकी तुलनामें फीके पड़ते हैं। दिल्लीकी-सी चहल-पहल, चाँदनी चौककी-सी सैर और सीमेंट की हुई सड़क बहुत कम हैं।

जहाँ तक हो सका, मैंने ग्रान्ड ट्रंक रोडपर ही चलनेका प्रयास किया, किन्तु कानपुरमें इसे छोड़कर लखनऊ चला गया था। वहाँसे रायबरेली, प्रतापगढ़ आदि होकर फिर प्रयागमें ग्रान्ड ट्रंक रोड पकड़ ली। इसी तरह मिर्ज़ापुर और गया जानेको भी पक्की सड़क छोड़ देनी पड़ती है। यू० पी० में सड़कके किनारे-किनारे सब जगह बस्ती है, गाँव हैं, क़स्बे हैं। सड़कपर सारे दिन आपको दस-दस क़दम चलनेपर ट्रैफ़िक मिलेगा। आजकल रेलोंका स्थान मोटरें ले रही हैं। देहलीसे बुलन्दशहर या खुर्जा जानेवाले मुसाफ़िर रेलके लिए न ठहरकर मोटरसे चले आते हैं। वही किराया और उससे जल्दी सफ़रका तै हो जाना। मोटरोंका उपयोग इतना अधिक होने लगा है कि कुछ ही वर्षोंमें रेलसे यात्रा करना लोग पसन्द ही न करेंगे।

× × ×

पहले रोज़ दिल्लीसे रवाना हुआ। गाज़ियाबाद तक सीमेन्ट की हुई सड़क है अतः वहाँ पहुँचनेमें कुछ देर नहीं लगी। दिल्लीसे यह स्थान १३ मील दूर है। इसके बाद सिकन्दराबाद आता है। दिल्लीसे यह ३० मील दूर है। प्रातःकाल यहीं ठहरा। सायंकाल बुलन्दशहर। बुलन्दशहरसे दूसरे रोज खुर्जा, तीसरे दिन खुर्जासे अलीगढ़। अलीगढ़से चौथे दिन प्रातःकाल सिकन्दराराव

होकर शामको ऐटा। पांचवे दिन ऐटासे मैनपुरी। छठे दिन मैनपुरीसे प्रात:काल भोगांव और सायंकालको गुरुसहायगंज। सातवें दिन गुरुसहायगंजसे प्रात:काल कन्नौज और सायंकाल बिल्हौर। बिल्हौरसे आठवें रोज़ कानपुर पहुँचा। कानपुरमें दो दिन ठहरा। वहांसे एक ही दिनमें उन्नाव होकर लखनऊ पहुँच गया। कानपुरसे लखनऊ ४५ मील दूर है। प्रात: बन्थरामें ठहरा। यह स्थान कानपुरसे ३५ मील दूर है। लखनऊमें दो दिन ठहरकर वहाँसे प्रात:काल बछरांवा और सायंकाल रायबरेली चला गया। रायबरेलीसे आगे दूसरे दिन सलोन नामक क़स्बेमें और सायंकाल सगरा नामक ग्राममें ठहरा। सगरासे प्रतापगढ़ १६ मील है, और वहांसे प्रयाग ४० मील। यह दूरी एक ही दिनमें ते की और ८ बजे रात प्रयाग पहुँचा। प्रयागमें दो दिन ठहरकर वहांसे प्रात:काल गोपीगंज और सायंकाल मिरज़ापुर चला गया। दूसरे रोज़ विन्ध्याचल आदि पहाड़ देखकर, खानेको मिरजामुराद नामक ग्राममें गया, लेकिन बड़ी कठिनाईसे दो बजे खाना मिल सका। इसी दिन सायंकाल बनारस पहुँच गया। बनारसमें दो दिन तक सारनाथ, रामनगर आदि स्थान देखे, और वहाँसे तीसरे दिन प्रात:काल सैदराजा और सायंकाल मोहनिया चला गया। मोहनियाके पास ही से बिहारका इलाका शुरू हो जाता है। इससे तीन-चार मील पीछेकी ओर कर्मनाशा नदी बिहार और यू० पी० की सरहद बनाती है। मोहनियांसे आगे सहसराम और वहाँसे सायंकाल सोन नदीके किनारे पहुँचा। यहाँपर केवल रेलका ही पुल है, जिसकी लम्बाई २॥ मीलसे कम नहीं है। नदीका पाट क़रीब ४ मील लम्बा हो गया है, जिसमें बालू-ही-बालू है। पुलके दोनों ओर दो स्टेशन हैं। एक ओरके स्टेशनका नाम देहरी-ऑन-सोन और दूसरी ओरके स्टेशनका नाम सोन-ईस्ट-बैंक है। रातको ६ बजे यह पुल पार करके सेकेण्ड क्लासके वेटिंगरूममें सो रहा। दूसरे दिन प्रात: मदनपुरमें खाना खाकर शेरघाटी पहुँचा। यहाँसे दुवा-भलुवाका जंगल शुरू हो जाता है, और क़रीब-क़रीब १०० मील तक—आसनसोल पहुँचने तक—एक तरहसे जंगल ही है। शेरघाटीसे गया पहुँचा। गयामें विष्णुपद, प्रेतशिला, रामशिला आदि स्थान देखे। दो दिनके बाद तीसरे दिन प्रात:काल बोधगया आया। यहाँपर बुद्ध भगवानका विशाल मन्दिर है। इसके बाद खानेको बारहचट्टी पहुँचा। यहींसे क़रीब २२ मीलका भीषण जंगल है। बीचमें केवल महाराज टिकारीकी कोठी है। मैंने इस जंगलको दो दिनमें ते करनेका निश्चय किया। पहले रोज़ बारहचट्टीसे महाराजकी कोठीमें दूसरे रोज़ वहाँसे बरकट्ठामें। यहाँसे फिर जंगल कम है। सड़कके किनारे बस्ती हैं, लेकिन दूर-दूर तक जंगल हैं। महाराज टिकारीकी कोठीमें कई लोग रहते हैं, इसलिए वहीं रहा।

× × ×

सड़कके दोनों ओर जंगल हैं, जंगल—भयंकर जंगल! दिल कांप रहा है। हाथमें केवल लाठी है। पैडलपर पैर मार रहा हूँ। साइकिल उड़ रही है—कम-से-कम २० मील प्रतिघंटेकी चालसे। शरीरसे पसीना निकल रहा है, मईका आखिरी सप्ताह और ३ बजेका वक्त। अगर सामनेसे शेर आ गया, तो क्या होगा? जीवनका अन्त! सामनेसे एक मोटर लारी आई। जीमें जी आया, पर कुछ ही सेकेंडमें वह निकल गई, फिर वही बात। सड़क ऊँची है, साइकिल नहीं चलती। गरम लूका एक झोंका आया, टोप गिरकर सड़कके किनारे गिर पड़ा, पर उठानेकी हिम्मत नहीं पड़ती। बड़ी हिम्मतके साथ साइकिल सड़कपर लिटा दी। टोप उठाया, उसका फीता मज़बूत किया। ऊपर-नीचे, इधर-उधर, आगे-पीछे देखा। बीहड़ जंगल था। चारों ओर सुनसान था। एक ओर बड़ी दूरपर पक्षी बोल रहे थे। दूसरी ओर देखा, बड़े-बड़े ऊँचे पेड़ वायुके झोंकोंसे टूट रहे थे। सामने देखा, एक बैलगाड़ी आ रही है। फिर होश ठिकाने आये। फिर साइकिल उड़ी। कुछ ही मिनटोंमें महाराज टिकारीकी कोठी सामने आई। बस, आधे जंगलका सफर समाप्त।

दूसरे दिन महाराज टिकारीकी कोठीसे बराकट्टामें खाना खाकर सायंकाल बगोदर पहुँचा। वहाँसे हज़ारीबाग़का, जो ८ मील दूर है, बाज़ार देखने गया। संथाल जातिके लोग और बिरहोर देखे। 'बिरहोर' वे लोग हैं, जो अब तक जंगलोंमें एक जगहसे दूसरी जगह फिरते रहते हैं। इनके घर नहीं होते। कच्चा मांस और महुवा खाते हैं, जानवर पालते हैं, नंगे रहते हैं; पर ईमानदार, सच्चे और भले मनुष्य होते हैं। इतिहासमें जिन कोलोंके सम्बन्धमें पढ़ाया जाता है वे अब तक यहाँ मौजूद हैं। बगोदरसे तोपचाँचीमें खाना खाकर शामको धनबाद पहुँचा। वहाँसे सुबह झरिया गया और कोयलेकी खानोंको देखा। धनबादसे फिर उसी रोज़ बराकर आया। दूसरे रोज़ प्रातः आसनसोल होकर रानीगंज ठहरा, और सायंकालको प्रागपुर (पलागढ़) के गांवमें ठहरा। वहाँसे दूसरे दिन बर्दवान और शामको मैमारी क़स्बेमें ठहरा। मैमारीसे दूसरे दिन बंडेल और चिनसुरा होकर चन्द्रनगर पहुँचा। चन्द्रनगर फरासीसियोंके अधिकारमें है। यहाँ एक दिन ठहरकर प्रायः सभी स्थान देखे। एडमिनिस्ट्रेटरके यहाँ भी गया। पुलिस-कमिश्नर और अन्य अधिकारियोंके आफ़िस देखे।

चन्द्रनगरके बाद कलकत्ता तक ग्रांड ट्रंकके किनारे क़रीब-क़रीब बिलकुल बस्ती है—कई स्टेशन, कई क़स्बे। क़रीब २५ मील चलने तक बाज़ार-ही-बाज़ार नज़र आता है। कहीं शिवराजपुर, कहीं श्रीरामपुर। दो-दो मीलपर रेलवे स्टेशन हैं। दूसरे रोज़ प्रातः सात बजे चन्द्रनगरसे चलकर नौ बजे हावड़ा पहुँच गया।

कलकत्तेमें क्या-क्या देखा, यह अपनी 'साइकिल पर भारत-यात्रा' नामक पुस्तकमें लिखूँगा। यह नगर अपनी शोभाके लिए भारतवर्षमें अपना सानी नहीं रखता, तांगे और इक्के यहाँ नहीं हैं। सारा ट्रैफ़िक बसों, मोटरों और ट्रामकारोंपर निर्भर है। सारे शहरमें रातों-दिन चहल-पहल रहती है।

कलकत्तेमें मुझे एक पत्रकारसे बहुत-कुछ प्रोत्साहन मिला। उनके परिचय-पत्र द्वारा मुझे सुप्रसिद्ध बौद्धधर्म-प्रचारक देवमित्र धर्मपालजीके दर्शन करने और आध घंटे बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। धर्मपालजी कईबार संसारके भिन्न-भिन्न देशोंकी यात्रा कर चुके हैं। सन् १८९३ में आप शिकागोकी सर्वधर्म-परिषद्में निमंत्रित होकर गये थे, और वहाँ आपने बौद्धधर्मके विषयमें एक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान भी दिया था। भारतमें बौद्धधर्मका जो पुनरुद्धार हो रहा है, वह मुख्यतया आप ही के प्रयत्नका फल है।

अनेक हिन्दी तथा अंगरेज़ी पत्रकारोंसे भेंट की। एक पत्रकार महोदयने मुझसे कहा—"अपनी यात्राओंमें आप मुख्य-मुख्य पुरुषोंसे मिलने तथा प्रधान-प्रधान संस्थाओंको देखनेका प्रयत्न अवश्य करें। भिन्न-भिन्न भाषाओंके साहित्य-सेवियोंसे भी मिलना चाहिए।" मुझे उनका यह प्रस्ताव बहुत पसंद आया, और अपनी भावी यात्राओंमें इसके लिए विशेषरूपसे प्रयत्न करूँगा।

कलकत्तेके विशाल भवनों तथा कोलाहलमय बाज़ारोंको देखनेकी अपेक्षा मैंने अपना समय यहाँके विशेष व्यक्तियोंसे मिलनेमें व्यय करना उत्तमतर समझा। कलकत्तेमें एक सप्ताह रहकर मैं फिर ट्रेनसे दिल्लीके लिए रवाना हो गया।
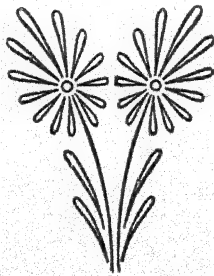
समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

अंगरेज़ी

'महात्मा गांधी'—रचयिता श्री कनुदेसाई और वेरियर इलविन, प्रकाशक ; गोल्डन विस्टा प्रेस लन्दन। भारतमें मिलनेका पता—'कुमार' प्रेस, रायपुर, अहमदाबाद।

इस पुस्तकको 'स्केच बुक' कहना चाहिए। इसमें गुजरातके युवक चितेरे श्री कनुदेसाईकी तूलिका और पेंसिलसे निकले हुए महात्मा गांधीके चौदह चित्र ; और श्री वेरियर इलविन द्वारा लिखे हुए दस शब्द चित्र हैं। इस प्रकार इस छोटी पुस्तकमें एक प्रकारसे दृश्य और श्रव्य दोनों काव्य संग्रहीत हैं। टाइटिल पेजपर और भीतरके मुखपृष्ठपर महात्माजीका 'सत्यकी खोजमें' नामक एक अत्यन्त सुन्दर चित्र है, जो 'विशाल-भारत' प्रकाशित हो चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि महात्माजीके चित्रोंमें कनुभाईका यह चित्र सर्वोत्तम चित्र है। मूल चित्र काले और सुनहरे रंगोंमें हैं। अन्य चित्रोंमें सात पेंसिलसे खींचे हुए रेखांकन हैं। 'युद्ध-पथपर' नामक अत्यन्त भावपूर्ण चित्र तथा प्रार्थना नामक रंगीन चित्र पहले प्रकाशित हो चुके हैं। 'अछूतकी झोंपड़ीमें' नामक चित्र बड़ा करुणाजनक है। साबरमतीका सन्त, एक अछूतकी दीन झोंपड़ीमें उपस्थित है। परिवारके सब लोग उसके प्रेम और अनुग्रहसे गद्गद होकर अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं। संसारके इस सर्वश्रेष्ठ पुरुषके आगमनपर उसे क्या भेंट दी जाय, घरकी स्वामिनीके हृदयमें यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ। उसने सोचा कि मेरे पास जो सबसे प्रिय, सबसे बहुमूल्य वस्तु है, वही उसे अर्पित की जा सकती है। सहसा उसने अपनी गोदके नवजात शिशुको महात्माकी ओर बढ़ा दिया। किसी माताके पास इससे बढ़कर बहुमूल्य वस्तु क्या हो सकती है ? महात्मा बच्चेपर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं। लोगोंके चेहरोंपर भक्ति, प्रेम, श्रद्धाके भाव प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। चित्र करुणारसमें डूबा जान पड़ता है।

'पूर्व और पश्चिम' शीर्षक चित्र भी बड़ा सुन्दर है। महात्माजी बैठे हुए हैं, और मीराबेन उनका भोजन दे रही हैं। भारतका सन्त और उसकी पवित्र अनुयायिनी अंगरेज़ देवी—दोनों पूर्व और पाश्चात्यकी एकताका सजीव परिचय दे रहे हैं।

यह तो हुआ रेखांकन। अब शब्दांकन देखिये। श्री इलविनने दस छोटे-छोटे स्केच लिखे हैं, जिनमें उन्होंने महात्माजीको 'अन्वेषक' 'संन्यासी', 'मज़दूर', 'कवि और शिल्पी', 'विद्रोही', 'आनन्द-मूर्ति', 'दु:खी आत्मा', 'भक्त', 'मानव-प्रेमी' और 'वसुधैव कुटुम्ब' के रूपमें चित्रित किया गया है।

Rise of the Christian Power in India—By Major B. D. Basu, I. M. S. ; Second Edition with 4 maps and 58 plates one in colours. Published by R. Chatterjee, Prabasi office. Calcutta, Price Rs. 15.

सोलहवीं शताब्दीसे यूरोपकी जातियोंने संसारमें हाथ-पैर फैलाना शुरू किये। उन्होंने समुद्र-यात्राओंके द्वारा संसारके सुदूर देशोंमें व्यापार-वाणिज्यके लिए पहुँचना प्रारम्भ किया। भारतमें सबसे पहले पोर्चुगीज़ व्यापारी आये थे, मगर उनके द्वारा आविष्कृत समुद्री मार्गको जानकर यूरोपकी अन्य जातियोंने भारतमें आनेका तांता बांध दिया। अंग्रेज़, फ्रेंच, डच, डेन आदि जातियाँ एकके बाद एक भारतवर्षमें आईं। धीरे-धीरे इनका प्रभाव यहां तक बढ़ा कि आज समूचा भारतवर्ष अंग्रेज़ोंके अधीन है।

भारतमें यूरोपियन जातियोंके आगमनसे लेकर अंग्रेज़ोंके राज्य स्थापित करने तकके, जो इतिहास लिखे गये हैं, वे प्राय: सभी यूरोपियन लेखकों द्वारा लिखे गये हैं। भारतवासियोंने भी, जो इतिहास लिखे हैं, वे इन्हीं यूरोपियन लेखकोंकी पुस्तकोंके आधारपर ही लिखे हैं। यूरोपियनों

द्वारा लिखित इतिहासोंमें बहुतसी ऐसी बातें अन्धकार ही में रह गई हैं, जिनपर प्रकाश पड़ना आवश्यक था। साथ ही बहुतसी ऐसी बातें सत्य कहकर वर्णित हैं, जो ऐतिहासिक खोजकी ज़रासी आँचमें बर्फ़की तरह गल जायँगी।

प्रयाग-प्रवासी स्वर्गीय मेजर वामनदास वसुने अनेकों वर्ष परिश्रम करके और सहस्रों प्रामाणिक पुस्तकें और कागज़-पत्र संग्रह करके, बड़े विस्तृत अध्ययनके बाद, इस इतिहासकी रचना की है, इसलिए यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि यह पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टिसे पूर्णतः प्रामाणिक है। भारतमें ब्रिटिश राज्यकी स्थापनाके सम्बन्धमें आप चाहे जितनी पुस्तकें पढ़ें; मगर इस पुस्तकको पढ़े बिना आपका ज्ञान एकांगी ही रहेगा। प्रयाग-यूनिवर्सिटीने इस पुस्तकके कुछ अंशोंको एम० ए० के कोर्समें मुकर्रर किया है। पहले यह पुस्तक पाँच भागोंमें प्रकाशित हुई थी, जिनका मूल्य २५) था; मगर अब ये पाँचों भाग एक जिल्दमें प्रकाशित किये गये, और उसका दाम घटाकर केवल १५) ही रखा गया है। इस नवीन संस्करणमें चार नक्शे, एक सौ बीस चित्र तथा अनेकों नये तथ्य तथा सूची भी दी गई है। पुस्तकमें 'विशाल-भारत' साइज़के १०११+१६ पृष्ठ हैं। पुस्तक सुन्दर मोटे कागज़पर छपी है, और जिल्द खासतौरपर मज़बूत बनी है। —व्रजमोहन वर्मा

—

हिन्दी

'योगीगुरु'—श्रीमान परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी निगमानन्दजी सरस्वती; प्रकाशक, श्री कुमारचिदानंद, दक्षिण-बंगाल, सारस्वत मठ, पो० टालीशहर (२४ परगना); पृष्ठ-संख्या ३८०; मूल्य १॥)

संसारमें प्रत्येक मनुष्य सुख-शांतिमय जीवनकी अभिलाषा रखता है। कोई भौतिक सुख चाहता है, और कोई आध्यात्मिक; किन्तु वास्तविक शांति आत्मिक सुखकी प्राप्तिसे ही मिल सकती है। इसी कारण भौतिक उपकरणोंमें सुख माननेवाले भी धीरे-धीरे इसी मार्गपर आगे जा रहे हैं। आध्यात्मिक शांतिके लिए सद् विचार और सदाचार एवं चित्तकी एकाग्रता आवश्यक होती है, और ये सब एकमात्र योगकी साधारण एवं व्यावहारिक क्रियाओं द्वारा सुलभ हो सकती हैं, इसीलिए धीरे-धीरे योग मानव-जीवनका आवश्यक धर्म होता जा रहा है। योगकी सिद्धिके कारण अनेक व्यक्ति साधु-महात्माओंके सेवक बने रहते हैं, किन्तु अधिकांश पाखंडियोंने साधु नामको कलंकितकर लोगोंको संतसमागमसे विरक्त बना दिया है। साथ ही नवीन शिक्षा-दीक्षाके उपासक पेशेवर या जादूगरकी तरह प्रत्यक्ष चमत्कार दिखानेवाले योगीकी बातोंको ही मानते हैं, या फिर कुछ जिज्ञासु योग-क्रियाओंके वैज्ञानिक लाभोंका पता पानेकी टोहमें लगे रहते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे योग्य महात्माओंका सहवास सर्वसाधारणके लिए सुलभ न होनेके कारण ऐसे व्यक्तियोंको योग-विषयक साहित्य देखनेकी इच्छा होती है। संस्कृतमें योगपर यथेष्ट पुस्तकें हैं, पर उनकी भाषाटीका होते हुए भी वे सर्वसाधारणके लिए बोधगम्य नहीं। नये ढंगपर लिखा हुआ योग-विषयक साहित्य बहुत थोड़ा है। उन इनीगिनी पुस्तकोंमें ही प्रस्तुत 'योगीगुरु' की गणना हो सकती है। इसकी प्रत्येक बात अनुभवकी वस्तु होनेसे अन्य ग्रन्थोंकी अपेक्षा यह पुस्तक अपना विशेष महत्व रखती है, क्योंकि इसके लेखक स्वयं एक योगी हैं।

इस पुस्तकमें उन्होंने बतलाया है कि किस प्रकार सिद्ध-गुरुके दर्शन और उनसे इस दुर्लभ योग-विद्याकी प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकारकी पुस्तक कदाचित हिन्दीमें यह पहली है। इसमें योगकी श्रेष्ठता, पंचतत्त्वोंका ज्ञान, नवचक्रका दर्शन, योगके आठ अंग और चार प्रकारके योगोंकी सामान्य व्याख्या करनेके बाद साधना-कल्पमें साधकोंके भेद और साधनके अंग-उपांगोंका वर्णन किया गया है। नाड़ी-शोधन, नाटक-योग और कुंडलिनी चैतन्य करनेकी विधि, रूप योग-साधन, नाद-साधन, आत्म-ज्योति-दर्शन, इष्ट देवता-दर्शन, देवलोक-दर्शन और मुक्तिकी संक्षेपमें चर्चाकर सहज उपायों एवं विधियोंका

भी वर्णन किया है; लेकिन जिन गूढ़ क्रियाओंका बिना प्रत्यक्ष प्रयोग कराये ज्ञान नहीं हो सकता, उनके लिए जिज्ञासुओंको सावधान कर दिया है, क्योंकि केवल पुस्तक देखकर योग-साधनामें सफल हो सकनेके लिए सब लोग अधिकारी नहीं हो सकते।

तीसरे मंत्रफल-मंत्रशास्त्र एवं तंत्रोक्तयोग-विधियोंका वर्णन किया गया है, जो तांत्रिक समुदायके उपयोगकी वस्तु है। चौथा स्वर-कल्प ऐसा है, जिसे सर्वसाधारण भी अपने व्यवहारमें लाकर योगके अनेक अद्‌भुत चमत्कार अनुभव कर सकते हैं। केवल स्वर-श्वासके ज्ञान और उसकी गति बदलने-मात्रसे मनुष्य आधि-व्याधि और उपाधिसे सहज ही में छुटकारा पा सकता है। सब लोग इस कल्पको अधिक पसंद करेंगे।

इस प्रकार यह पुस्तक अपने नामानुरूप विशेष विचारशील व्यक्तियोंके लिए अधिक लाभदायक हो सकती है, पर जो लोग एकदम ही नये सिरेसे इसमें प्रवृत्त होना चाहते हैं, उन्हें प्रारम्भिक तैयारीके लिए यह पुस्तक मार्गदर्शकका काम दे सकेगी।

मैं अपने लगभग तीन वर्षके अध्यवसायसे इस पुस्तकके विषयमें इतना कह सकता हूँ कि सुख-शांति या आत्म-ज्ञानके अभिलाषियोंके लिए यह पुस्तक वस्तुतः उपयोगी सिद्ध होगी। विषय-विवेचन और आकारकी दृष्टिसे १॥) रु० मूल्य भी उचित है। —'भरद्वाज'

—

'पिंगल-प्रबोध'—लेखक, श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'; प्रकाशक, श्री रघुनन्दन शर्मा, हिन्दी-प्रेस, प्रयाग; मूल्य ॥) ; कागज़ छपाई-सफ़ाई आदि साधारण।

प्रस्तुत पुस्तक छंद लिखनेका अभ्यास करनेवाले नये कवियों या छंदशास्त्रका अध्ययन करनेवाले नये विद्यार्थियोंके लिए लिखी गई है। पं० ज्योतिप्रसादजी स्वयं अच्छे कवि और लेखक हैं, इसलिए आप इस पुस्तकके लिखनेके प्रकृत अधिकारी भी हैं। आपने बड़ी सुबोध भाषामें पिंगल-विषयके मूल सिद्धान्तोंका विवेचन और प्रतिपादन किया है। प्रारम्भमें कोई ५० पृष्ठके अपने प्रारम्भिक वक्तव्यमें आपने इस विषयकी अनेक आवश्यक बातोंपर अच्छा प्रकाश डाला है। आपके समझानेका ढंग इतना सरल है कि पाठकको समझनेमें ज़रा भी कठिनाई नहीं होती। नवसिखियोंके लिए पुस्तक बड़े कामकी है। यदि छपाई-सफ़ाई आदिका अधिक खयाल रखा जाता, तो और भी अच्छा होता।

—जगन्नाथप्रसाद मिश्र
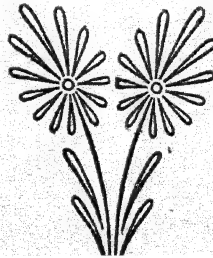
सम्पादकीय विचार

भारत-सचिवका वक्तव्य

गत २७ जूनको भारतवर्षके सम्बन्धमें भारत-सचिव सर सैम्युल होरने पार्लमेंटमें एक वक्तव्य सुनाया। उस वक्तव्यका सार यह है—

"भारतीय शासन योजनाके विषयमें सम्राट्की सरकार (ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल) ने निश्चय किया है कि अपनी नीतिको कार्यरूपमें लानेके लिए पार्लमेंटमें एक ही बिल पेश किया जाय। उसी बिलमें 'प्रान्तीय स्वराज्य' और 'संघ-शासन'की स्थापना होगी। संघ-शासनमें देशी राज्योंका शामिल होना आवश्यक है, इसलिए, उस बिलमें यह व्यवस्था भी रहेगी कि संघ-शासनको प्रारम्भ करनेके लिए जो ज़रूरी बातें होंगी, उनकी पूर्ति तक प्रान्तीय स्वराज्यको प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। जिनके लिए संरक्षणकी आवश्यकता होगी, उन्हें उचित संरक्षण मिलेगा। गोलमेज़-कानफरेंस अब न की जायगी, क्योंकि गोलमेज़-अधिवेशन और संघ-समितिकी बैठकसे मुख्य समस्याओंके सुलझानेमें देर होती है। साम्प्रदायिक प्रश्नका फ़ैसला शीघ्र ही, इसी ग्रीष्म ऋतुमें, कर दिया जायगा, और इस फ़ैसलेकी घोषणाके उपरान्त परामर्शकारिणी समिति (Consultative Committee) की बैठक होगी, और वह अनेक प्रश्नोंपर अपनी सम्मति देगी। परामर्शकारिणी कमेटीसे जो प्रश्न बचेंगे, उनके लिए विशेषज्ञोंको लन्दन परामर्शके लिए बुलाया जायगा। इन सब कामोंके लिए एक संयुक्त जाँच-कमेटी (Joint Select Committee) बनाई जायगी। इस कमेटीके सदस्य 'हाउस आफ़ कामन्स' और 'हाउस आफ़ लार्डस'में से होंगे। यह कमेटी सरकारी योजनाके सम्बन्धमें भारतीय प्रतिनिधियोंसे पूछ-ताछ कर सकेगी। यदि किन्हीं बातोंको परामर्शकारिणी समिति ते नहीं कर सकेगी, तो ब्रिटिश सरकार, विषय और उपयोगिताकी दृष्टिसे, कुछ लोगोंको विचारके लिए निमन्त्रित करेगी।"

भारतकी राजनैतिक स्थितिपर भाषण देते हुए सर होरने कहा—"आर्डिनेंससे हमें सफलता मिली है। सविनय अवज्ञा-आन्दोलन संगठित सरकारके विरुद्ध सफल नहीं हो सकता। यद्यपि स्थिति क़ाबूमें है, यद्यपि उपद्रवकारी रोक दिये गये हैं, तो भी वे अपना आन्दोलन बन्द नहीं करना चाहते, इसलिए, विशेष अधिकार जारी रखे जायँगे। विशेष अधिकारोंका रखना इसलिए और भी आवश्यक है कि हमारे विपक्षी हमारी तनिक-सी कमज़ोरी तकसे लाभ उठायेंगे। लोगोंको हमारे उपायोंसे असन्तोष हो सकता है; पर हमने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि हम अपनी शक्ति-भर प्रत्येक उपायसे अपने विरोधियोंको दबायेंगे।"

मंत्रिमण्डलके विरोधी सदस्योंने सर होरकी नीतिका विरोध करते हुए कहा—"आर्डिनेंसोंके कारण कांग्रेस-आन्दोलन गुप्त रूप धारण करता जाता है। दमननीतिके कारण नरम दलके लोग भी ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध होते जाते हैं। भारतको पूरा अधिकार है कि वह ब्रिटिश साम्राज्यके भीतर रहे, या न रहे। सर होरको महात्मा गांधीसे समझौता करना चाहिए।"

इन बातोंका उत्तर देते हुए सर होरने फ़रमाया कि हम उन्हीं लोगोंसे समझौता करनेको तैयार हो सकते हैं, जो सरकारसे समझौता करनेको तैयार हों। किसी भी हालतमें हम उन लोगोंसे समझौतेकी बात नहीं करना चाहते, जिनमें सहयोगका कोई भी अंश नहीं है। जब तक कांग्रेस व्यवस्थित सरकारके विरुद्ध लगी हुई है, तब तक हम समझौता नहीं कर सकते। हम बराबरकी लड़ाई (Drawn game) नहीं छोड़ना चाहते।"

यह है ब्रिटिश सरकारका वास्तविक रूप! इस वक्तव्यसे

कई बातें स्पष्ट हो गईं। (१) कानफ़रेंसोंकी नीतिको तिलांजली दे दी गई। (२) भारतके भावी शासनका निर्णय पार्लामेंट अर्थात् अनुदार दलके हाथमें है। (३) परामर्शकारिणी समिति (Consultative Committee), अथवा किसी भी समितिका भारतके सिर मढ़े जानेवाले संरक्षण, अथवा शासन-योजनामें कोई हाथ न होगा। सर होरने एक कूटनीतिज्ञकी भाँति यह भी लालच दिया है कि आवश्यकता पड़नेपर भारतवर्षसे विषय-विशेषके लिए कुछ लोग निमंत्रित किये जायँगे; पर यह सब-कुछ नहींके बराबर है। स्थितिका नग्न रूप यह है कि ब्रिटिश सरकारका वर्तमान अनुदार दल भारतवर्षके विषयमें मनमानी करना चाहता है, और वह लार्ड इरविनकी नीति और उनकी बातोंकी तनिक परवा नहीं करना चाहता। भारतवर्षको वह साइमन-कमीशनकी सिफ़ारिशोंके अनुसार ही सुधारोंके खिलौनेसे ही बहकाना चाहता है। एक दूसरी बात और मज़ेकी है। होर साहबका कहना है कि एक ही बिलसे केन्द्रीय संघ-शासन और प्रान्तीय स्वराज्यकी स्थापना होगी; प्रान्तीय स्वराज्य केन्द्रीय संघ-शासनकी स्थापनाके लिए प्रतीक्षा न करेगा। अर्थात्—प्रान्तीय स्वराज्य पहले मिल जायगा, और तब किन्हीं शर्तोंकी पूर्तिपर केन्द्रीय संघ-शासन (Federal Central Government) की स्थापना होगी।

सर होरने साफ़ कहा है—"भिन्न-भिन्न अंगोंको संघ-शासनमें शामिल होनेके लिए तैयार रहना चाहिए—(The units concerned must be prepared actully to federate)।" इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि प्रान्तीय स्वराज्य मिलनेपर यदि कोई प्रान्त संघ-शासनमें शामिल न होना चाहे—और विशेषकर बिना अपनी शर्तें पूरी कराये—तो या तो केन्द्रीय शासन-संघकी स्थापना ही न होगी, या फिर कोई प्रान्तविशेष उससे अलग भी रह सकेगा। उदाहरणके लिए पंजाबको लीजिए। साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचनके अनुसार—जिसके लिए भारतीय स्वतन्त्रताके कुछ विरोधी और इंग्लैंडका अनुदार दल प्राणपणसे प्रयत्न कर रहा है—पंजाबमें मुसलमानोंका प्राधान्य होगा, और होगा साम्प्रदायिक प्रवृत्तिवाले मुसलमानोंका, राष्ट्रीयतामें विश्वास करनेवाले मुसलमानोंका नहीं। ऐसी दशामें पंजाब संघ-शासनमें शामिल होनेके विरुद्ध रहेगा। तर्कके लिए हम यह मान भी लें कि नौकरशाहीके इशारेपर नाचनेवाले लोग पंजाबको संघ-शासनमें ले भी आवें, तो फिर देशी राज्योंका जो सवाल है।

गत वैशाखके 'विशाल-भारत'में हम बता चुके हैं कि देशी राज्योंने संघ-शासनमें शामिल होनेसे पूर्व कई शर्तोंकी गारंटी चाही है। उन शर्तोंके मानी हैं देशी राज्योंके वर्तमान अधिकारमें कुछ कमी न होना। हमारे खयालसे केन्द्रीय शासन-संघ और केन्द्रीय उत्तरदायित्वका मखौल किया जा रहा है। जनताका यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि ब्रिटिश सरकार भारतवर्षमें अपनी पुरानी नीति जारी रखना चाहती है। वह नहीं चाहती कि भारतीय लोगोंको वास्तविक स्वतन्त्रता दी जाय। सच तो यह है कि ब्रिटिश मन्त्रिमंडल समयानुकूल दिल बहलानेवाली बातें कह देता है, और तेलीके बैलकी भाँति घूम-फिरकर फिर वहीं आ जाता है।

जर्मनीमें बौद्धधर्म

संसारके बौद्ध देशोंसे बिना किसी प्रकारका प्रोत्साहन या सहारा मिले हुए भी जर्मनीमें अनेक लोग अपने-आप बौद्धधर्मकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। उन्हें ईसाई धर्मकी अपेक्षा बौद्धधर्ममें अधिक शान्ति मिलती है। ये लोग कोई बहुत पढ़ी-लिखी श्रेणीके नहीं हैं, बल्कि साधारण कोटिके हैं, जिन्हें अपने जीवनके नित्यप्रतिके संघर्षमें लगा रहना पड़ता है। अपने जीविकाके धन्धोंमें व्यस्त रहते हुए भी वे बुद्ध भगवानके उपदेशोंका गहरा अध्ययन कर रहे हैं। वे कभी-कभी अपनी छोटी-मोटी सभाएँ भी किया करते हैं। यद्यपि जर्मन लोग बौद्धधर्मके आदि रूप—थेरावाद—के

अनुयायी हैं, मगर धर्मकी छोटी बातोंमें उनमें अकसर काफ़ी मतभेद दीख पड़ता है।

जर्मन भाषामें बौद्ध सूक्तियोंका अच्छा संग्रह होनेसे जर्मनीमें बौद्धधर्मके भावोंके प्रचारमें बड़ी सहायता मिली है। इसके अलावा जर्मन फ़िलासफ़ीमें भी बौद्ध भावनाओंने अच्छा प्रवेश कर लिया है। उदाहरणके लिए जर्मनीका सबसे अग्रणी दार्शनिक शोपनहार--जिसकी फिलासफी आदिसे अन्त तक बौद्ध फ़िलासफ़ी है—कहता है कि बौद्धधर्म पृथिवीपर सबसे महान और गम्भीर धर्म है, वह ईसाई धर्मसे अधिक सच्चा है। यहाँ तक कि Metgsose ने भी, जो स्वयं ग्रीक सभ्यताका बड़ा हामी था, कहा है—"बौद्धधर्ममें ईसाई धर्मकी अपेक्षा सौगुनी अधिक वास्तविकता है। इतिहासमें जितने धर्म मिलते हैं, उनमें सबसे अधिक प्रत्यक्षवादी धर्म बौद्धधर्म है।"

बौद्ध सूक्तियों-सम्बन्धी साहित्यके अलावा जर्मनीके वैज्ञानिक अन्वेषक अपने अन्वेषणमें बौद्धधर्मकी तह तक जा पहुँचे। ओल्डेनबर्ग, न्यूमान, सीडेनस्टकर, ढल्के, न्यानातिलोक गीगर इत्यादि बड़े-बड़े विद्वानोंने पाली आदि भाषाके बौद्ध ग्रंथोंके सुन्दर अनुवाद और वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

इन सब ग्रंथोंके फल-स्वरूप जर्मन लोगोंमें बौद्धधर्मके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ है, और जर्मनीमें अनेक छोटे-छोटे बौद्ध समुदाय बन गये हैं। इस प्रकारके दो समुदाय बर्लिन और म्यूनिकमें हैं, और एक-एक समुदाय हैम्बर्ग, कलोन ब्रेसल्यू, ब्रीमेन आदि स्थानोंमें हैं। इन समुदायोंके अलावा और भी ऐसे अनेक लोग बौद्धधर्मके अनुयायी हैं, जो किसी समुदायविशेषमें नहीं शामिल होना चाहते।

डा० ढल्केने आदि बौद्ध ग्रंथोंके आधारपर कई सुन्दर दार्शनिक और वैज्ञानिक पुस्तकें लिखी थीं। उन्होंने बर्लिनमें एक 'बौद्ध भवन' भी स्थापित किया है। वे डाक्टरीका पेशा करके अपनी सारी गाढ़ी कमाई इस भवनको चलानेमें लगाते रहे। खेद है कि कुछ दिन पूर्व उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्युके बाद उनके बौद्ध भवनका चलना कठिन है। यदि संसारके अन्य देशोंके बौद्धधर्मसे सहायता देकर इस भवनको नहीं खरीद लेंगे, तो एक धार्मिक व्यक्तिकी सारी उम्रका परिश्रम नष्ट हो जायगा। हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि कुछ भारतीय बौद्ध स्वर्गीय डा० ढल्केकी बहनसे इस बौद्ध भवनको खरीदनेकी लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। बर्माके प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु उत्तम इस कामके लिए शीघ्र ही जर्मनी जानेवाले हैं। भिक्षुक उत्तमका स्वास्थ्य इधर एक वर्षसे अच्छा नहीं है। इस यात्रासे उन्हें जर्मनीमें अच्छी-से-अच्छी डाक्टरी चिकित्साकी सुविधा भी मिलेगी। हम आशा करते हैं कि सरकार भिक्षु उत्तमको इस यात्राके लिए पासपोर्ट देनेमें अड़चन न डालेगी। इस पवित्र कार्यके लिए उन्हें पासपोर्ट न देना सरासर अन्याय और निष्ठुरता होगी।

—

हिन्दीमें धार्मिक ग्रन्थोंका प्रकाशन

हमारे देशमें साक्षर लोगोंकी संख्या पाँच प्रतिशतसे अधिक नहीं है। उनमें भी संस्कृत जाननेवालोंकी संख्या तो और भी कम है। हिन्दुओंके प्रायः सभी धर्म-ग्रंथ संस्कृतमें हैं, इसलिए जनसाधारणकी पहुँच उन तक नहीं होती। हिन्दीमें हमारे धर्म-ग्रंथोंका अच्छा अनुवाद भी नहीं मिलता। प्रसन्नताकी बात है कि प्रयागका नवस्थापित 'धर्म-साहित्य-प्रकाशक-मंडल' इस बातकी चेष्टा कर रहा है कि हिन्दुओंके धार्मिक ग्रंथोंके प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद सचित्र लाइब्रेरी-संस्करणके रूपमें प्रकाशित किये जायँ। इस पुण्यकार्यको भद्री-नरेश श्री बजरंगबहादुर सिंहने उठाया है। धर्म-साहित्य-प्रकाशक-मंडलके साहित्य-मंत्री हिन्दीके कवि और लेखक श्री भगवतीचरण वर्मा हैं। उन्हींकी देख-रेखमें यह कार्य प्रारम्भ किया गया है। प्रकाशनका श्रीगणेश पुराणोंसे किया गया है, और श्रीमद्भागवतके कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुके हैं। मंडल इस बातकी कोशिश कर रहा है कि प्रत्येक मास एक पुराणका अनुवाद

प्रकाशित हो, जिससे डेढ़ वर्षमें सारा पुराण-साहित्य प्रकाशित हो जाय। प्रत्येक ग्रंथके ८०० पृष्ठ, आठ तिरंगे तथा सोलह इकरंगे चित्र रहेंगे, और प्रत्येक पुस्तकका मूल्य १०) और १५) के बीचमें होगा।

इस पुस्तकमालाके प्रकाशित होनेसे हिन्दीके एक बड़े अभावकी पूर्ति होगी। इस प्रयासके लिए हम भद्री-नरेश तथा श्री भगवतीचरणजीको हार्दिक बधाई देते हैं। आशा है, हिन्दी-जनता इस ग्रंथमालाकी स्थायी ग्राहक बनकर इससे लाभ उठावेगी।

—

द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-गद्य-पद्यकी वर्तमान शैलीके प्रवर्तकोंमें हैं। हिन्दी-साहित्यपर उनका बहुत बड़ा अहसान है। प्रसन्नताकी बात है कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने श्री द्विवेदीजीके प्रति हिन्दी साहित्यकी कृतज्ञता और सम्मान प्रकट करनेके लिए यह निश्चय किया है कि उनकी आगामी सत्तरवीं वर्षगाँठके समय उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पित किया जाय। इस ग्रन्थमें साहित्य और कलाका सुन्दर समावेश करनेकी चेष्टा की जायगी। इसमें भारतके श्रेष्ठ चित्रकारोंके उत्तम चित्र दिये जायँगे, और हिन्दीके प्रमुख साहित्यिकों तथा देश-विदेशकी अन्य भाषाओंके प्रमुख विद्वानोंके लेख दिये जायँगे। ग्रन्थमें लगभग ६०० पृष्ठ और पचास चित्र रहेंगे।

सभा इस योजनाको सफल बनानेका भरसक प्रयत्न कर रही है, किन्तु यह सफलता देशके श्रीमानोंकी कृपा-दृष्टिपर ही अवलम्बित है; क्योंकि इसके लिए ५०००) के व्ययका अनुमान किया गया है, अतः गुणज्ञ तथा विद्या-प्रेमी श्रीमानोंसे आग्रह है कि इस कार्यके लिए यथोचित सहायता प्रदान करके इस योजनाको सुसम्पन्न करानेके यशोभागी हों।

अभिनन्दन-ग्रन्थको सर्वांगपूर्ण बनानेके लिए साहित्यिकोंका पूर्ण सहयोग चाहिए। सभाके प्रधान मन्त्रीने हिन्दी-लेखकोंसे इस ग्रन्थमें लिए रचना भेजनेकी अपील निकाली है।

रचना लेखकके इच्छानुसार गद्य या पद्यके किसी भी अंगमें हो सकती है, तथा वह उनकी रुचिके अनुकूल किसी भी विषयकी हो सकती है। सभा चाहती है कि ग्रन्थ विभिन्न विषयोंसे पूर्ण करके आचार्य द्विवेदीजीको समर्पित किया जाय। हाँ, इन विषयोंका सम्बन्ध वर्तमान धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक प्रश्नसे न हो।

अभिनन्दन-ग्रन्थको सभा जिस रंग-ढंगसे निकाला चाहती है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अविलम्ब प्रेसमें दे दिया जाय। इस बातपर ध्यान देते हुए लेखक-समुदाय शीघ्र ही अपनी कृति—श्रीकृष्णदास, प्रधान मन्त्री, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीके पतेपर भेजें।

—

मज़दूरोंके प्रश्न

श्रीमती सती देवी और श्रीयुत जे० सी० रायने हमारे पास एक सूचना भेजी है, जिसका शीर्षक है—'An appeal for the establishment of the labour reaserch institute'—'मज़दूरोंकी दशाकी जाँचके लिए एक अन्वेषक-संघ स्थापित करनेके लिए प्रार्थना'। इस सूचनाका अभिप्राय यह है कि यद्यपि पिछले कुछ वर्षोंमें मज़दूरोंमें काफी जाग्रति हो गई है, और अधिकाधिक शिक्षित व्यक्तियोंकी रुचि भी इधर प्रवृत्त हो गई है, तथापि कहींपर इन प्रश्नोंके विधिवत अध्ययन करनेके लिए सामग्री नहीं मिलती। नवयुवकोंके हृदयमें यह भाव तो उत्पन्न हो गया है कि किसी तरह मज़दूरोंकी दशा सुधारनेका प्रयत्न होना चाहिए, पर उन्हें पथ-प्रदर्शक नहीं मिल रहे। 'श्रमजीवी-दशा-अन्वेषक-संघ' के स्थापित करनेका उद्देश्य इसी त्रुटिको पूरा करना है। प्रारम्भमें यह संघ निम्न-लिखित काम करेगा :—

(१) उद्योग-धंधोंमें लगे हुए मज़दूरोंके विषयमें अंक तथा दूसरा उपयोगी मसाला इकट्ठा करना।

(२) इस मसालेको सर्वसाधारणकी समझमें आने-योग्य भाषामें उपयुक्त ढंगसे छपाना ।

(३) मज़दूरोंके झगड़ोंकी जाँच करना और उनको सुलझानेकी कोशिश करना ।

(४) आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नोंके विषयमें पैमफ्लेट छापना ।

(५) सर्वसाधारणमें इस विषयपर व्याख्यान दिलाना ।

(६) इन प्रश्नोंका अध्ययन करनेके लिए छोटे-छोटे समूह स्थापित करना ।

(७) सामाजिक तथा आर्थिक विषयोंकी पुस्तक इकट्ठीकर पुस्तकालय क़ायम करना ।

(८) मज़दूर-संघोंकी उन्नति करना ।

(९) मज़दूर संघोंके लिए कार्यकर्ता तैयार करना ।

इस संघका कार्यक्षेत्र तो समस्त बंगाल है, पर फ़िलहाल यह कलकत्तेमें ही काम करेगा । इस संघके सदस्योंसे तीन रुपये वार्षिक चन्दा लिया जायगा, और संघकी ओरसे जो पुस्तक, ट्रैक्ट इत्यादि प्रकाशित होंगे, वे संघके सदस्योंको बिना मूल्य मिलेंगे । पाँच सौ रुपये देनेवाले इसके संरक्षक गिने जायँगे । इस विषयमें रुचि रखनेवालोंको निम्न-लिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करना चाहिए—मि० जे० सी० राय, ३ बी०, निवेदिता लेन, बागबाज़ार, कलकत्ता ।

संघके उद्देश्य तो वास्तवमें बहुत अच्छे हैं, पर संचालक महानुभाव उन्हें कार्यरूपमें परिणत कर सकेंगे, या नहीं, इसमें हमें सन्देह है । संचालकोंसे हमारा अनुरोध है कि जो कुछ काम करें, ख़ूब सोच-समझकर करें । हम लोगोंको संख्या क़ायम करनेकी बीमारी है । असली काम तो कुछ होता-जाता नहीं, लोग सेक्रेटरी, कोषाध्यक्ष और सभापति बन बैठते हैं । व्यक्तिगत ढंगसे काम करना इसकी अपेक्षा कहीं अच्छा है । संचालकोंसे हमारा निजी परिचय नहीं है, अतएव उपयुक्त पंक्तियाँ उनके विषयमें नहीं लिखी गईं । संघकी सफलता हम हृदयसे चाहते हैं ।

—

हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन

इन्दौरके कुछ पत्रकार बन्धुओंने वहाँपर अखिल भारतीय हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन करनेकी योजना की है, और उनके इस निश्चयका हम हृदयसे अभिनन्दन करते हैं । अपनी विज्ञप्ति नं० १ में संयोजक महोदय लिखते हैं—

"यों तो लगभग चार-पाँच वर्षोंसे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन भी हो जाया करता है, पर उसे कोई स्थायित्व प्राप्त नहीं हुआ है । न उसका जनतामें मूल्य है, और न स्वयं सम्पादक-समूहमें । वह एक केवल खेल-सा हो जाता था, जो दो-तीन घंटों तक साहित्य-सम्मेलनके प्रांगणमें हमारे सम्पादक बन्धु खेल लिया करते थे ।

गत वर्ष झाँसीमें भी यही हुआ । इस युगमें सम्पादकों द्वारा इस प्रकार अपने संगठनकी बर्बादी देखकर किसे दुःख न होगा । हमने इसका कारण यह समझा कि बड़ी और स्थायित्व-प्राप्त संस्थाके साथ अन्य संस्थाका सम्मेलन कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता । किसी संस्थाको महत्व प्राप्त होनेके लिए यह आवश्यक है कि वह अपना निजत्व पृथक ही रखे ।

हमारी यह धारणा है कि देश, जाति और धर्मके उत्थानके लिए देशमें हिन्दी-सम्पादकोंने अधिक-से-अधिक त्याग किया है, पर इसके बदलेमें उन्हें अधिक-से-अधिक कष्ट उठाने पड़े हैं, और अधिक-से-अधिक उनकी उपेक्षा की गई है । क्या किसी भी राजनैतिक सम्मेलनमें जनता और सरकार द्वारा कोई हिन्दी-पत्रकार निमंत्रित किया गया ? क्या कोई भी हिन्दी-पत्रकार केवल पत्रकार होनेके कारण सम्मानित किया गया ? क्या किसी पत्रकारको कोई बहुमूल्य पुरस्कार प्राप्त हुआ ? क्या हिन्दी-पत्रकारोंकी आर्थिक दशा कभी भी अच्छी रही ? यदि इन सब प्रश्नोंके उत्तर नकारात्मक हैं, तो क्या अब यह कर्तव्य पत्रकारोंका नहीं रह जाता कि वे यह सोचें कि इसका कारण क्या है ? हम तो इसका कारण संगठनका अभाव ही समझते हैं ।"

हिन्दी-पत्रकार सम्मेलनके कई अधिवेशनोंमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। वृन्दावन, भरतपुर, मुज़फ्फरपुर, गोरखपुर तथा कलकत्तेके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनोंके अवसरपर घंटे-दो-घंटेके लिए जो कार्रवाई हिन्दी-पत्रकारोंने की, उसमें हमें भी थोड़ा-बहुत भाग लेना पड़ा था। साल-डेढ़-सालके लिए इस सम्मेलनके मंत्रित्वका कार्य भी हमें करना पड़ा था, इसलिए इस विषयपर अपने विचार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

इस बातसे हम सहमत हैं कि पत्रकार-सम्मेलनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका पुछल्ला बन जानेके कारण बड़ी हानि उठानी पड़ी है। साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनोंका कार्य जिस ढंगसे होता है, उसे देखते हुए यह आशा करना कि दूसरी किसी संस्थाको भी उसी अवसरपर समय मिल सकेगा, अनुचित है। सम्मेलनोंके अवसरपर साहित्य-सेवियों तथा पत्रकारोंको इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि वे अधिवेशनोंके लिए समय ही नहीं निकाल सकते। यदि उन्हें खींच-खाँचकर लाया भी जाय, तो वे चले तो आते हैं, पर विशेष उत्साहपूर्वक कार्यवाहीमें भाग नहीं लेते। पर हिन्दी-पत्रकारोंकी वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए हमें यह आशंका है कि अभी कई वर्ष तक पत्रकार-सम्मेलनका अधिवेशन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ ही करना पड़ेगा।

पत्रकार-सम्मेलनके लिए सभापतिका चुनाव करते हुए बड़ी कठिनाई होती है। कोई उसका सभापति ही नहीं बनना चाहता! जिम्मेवार पत्रकारोंके हृदयमें यह भावना उत्पन्न हो गई है कि यह घंटे-भरका तमाशा है, कुछ काम होता-जाता नहीं, इसलिए इस झंझटमें पड़ना स्वयं उपहासास्पद बनना है। जिसे लिखा जाता है, वही मना कर देता है! मन्त्रित्वके कामके लिए भी बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। आखिर ठोंक-पीटकर वैद्यराज बनाये जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कार्य अग्रसर ही नहीं होने पाता। जिसके समयका अधिकांश नोन, तेल, लकड़ीकी फिक्रमें व्यतीत होता हो, और जिसके हृदयमें न इस कार्यके प्रति रुचि या उत्साह ही हो, वह भला इस संस्थाके मन्त्रित्वका कार्य कैसे कर सकता है?

तीसरी कठिनाई आर्थिक है। पत्रकारोंसे तीन रुपये वार्षिक भी वसूल करना कठिन हो जाता है। अभी अधिकांश पत्रकारोंके मनमें यह विश्वास ही नहीं जमा कि पत्रकार-सम्मेलनसे हमारा कुछ हित भी हो सकता है। इस लिए वे इसके लिए पैसा देना धनका अपव्यय ही समझते हैं। सर्वप्रथम कार्य जो हमें करना है, वह यह है कि पत्रकारोंके हृदयमें यह विश्वास बिठला दें कि अबकी बार यह कार्य गम्भीरतापूर्वक उठाया जा रहा है, और इस साल कुछ न कुछ काम अवश्य होगा। उदाहरणार्थ, यदि हम अगले वर्षमें हिन्दी-पत्रोंके इतिहासका मसाला ही इकट्ठा कर लें, तो भी बहुत समझिये।

इन्दौर-निवासी पत्रकार बन्धुओंसे हमें कई बातें निवेदन करनी हैं। हिन्दी-पत्रकारोंके संगठनका कार्य कई बार प्रारम्भ किया गया, और कई बार ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया गया है। यदि हमारे यहाँ एक-दो पत्रकार भी ऐसे नहीं हैं, जो इस बातकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लें कि चाहे दूसरा कोई इस कामको करे, या न करे, हमें तो यह कार्य करना ही है, तो फिर इस कामको न उठाना ही ठीक होगा। अधिकांश संस्थाओंमें असली काम करनेवाले आदमी दो-एक ही होते हैं; वे इंजनकी तरह सारी गाड़ीको खींचते हैं, और शेष आदमी डिब्बोंकी तरह खिंचते हैं। पत्रकार-सम्मेलनको योग्य प्रधान और योग्य मंत्रीकी नितान्त आवश्यकता है।

सदस्यका वार्षिक चन्दा अभी दो रुपये वार्षिकसे अधिक न रखा जाय, और काम चलानेके लिए अलग चन्दा इकट्ठा कर लिया जाय।

अधिकांश पत्रकार निर्धन हैं, और उनमें कितने ही तो ऐसे हैं, जिनके लिए किसी दूरके स्थानपर मार्ग-व्यय खर्च करके पहुँचना अत्यन्त कठिन है। इसके सिवा सालमें

दो बार छुट्टी लेकर जाना भी मुश्किल है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके मौक़ेपर तो जाना आवश्यक ही है, क्योंकि उस अवसरपर साथी-संगियोंसे मेल-मुलाक़ात हो जाती है। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं कि पत्रकार-सम्मेलनको हिन्दी-साहित्य-साम्मेलनका पुंछेला नहीं बनाना चाहिए; पर अभी हमें वह दिन दूर दीख पड़ता है, जब पत्रकार महानुभाव अपने पाससे व्यय करके दूर-दूर नगरोंकी यात्रा कर सकेंगे। इसलिए बेहतर यह होगा कि साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनके दो दिन पहले ही पत्रकार-सम्मेलन हो जाया करे। मान लीजिए ग्वालियरका सम्मेलन ५, ६, ७ तारीखको होनेवाला है। पत्रकार-सम्मेलनकी तिथि ३, ४ रख दी जाय। तीन तारीखको स्वागतकारिणीके सभापति तथा अधिवेशनके प्रधानके भाषण हों, और चौथी तारीखको पत्रकारोंकी स्थितिपर विचार हो, तथा प्रस्ताव आदि रखे जायँ। जो पत्रकार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें सम्मिलित होने जाते हैं, उनके लिए यह कोई मुश्किलकी बात न होगी कि वे दो दिन पहले वहाँ पहुँच जायँ। यदि वे एक दिन पहले भी पहुँचेंगे, तो भी विशेष आवश्यक कार्यवाहीमें भाग ले सकेंगे।

ये सब बातें पहले इन्दौरके अधिवेशनमें तय हो जानी चाहिए। इस अधिवेशनके लिए पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयीसे अच्छा दूसरा प्रधान नहीं मिल सकता।

तीन साहित्य-सेवियोंका स्वर्गवास

यह वर्ष हिन्दी-साहित्यके लिए अत्यन्त अशुभ प्रतीत होता है। साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्माके स्वर्गवासको अभी तीन महीने भी नहीं हुए कि इस बीचमें बाबू शिवनन्दनसहाय, श्री किशोरीलाल गोस्वामी और श्री जगन्नाथदास रत्नाकरका देहावसान हो गया। इनमें पहले सज्जनके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें मुज़फ्फरपुर-सम्मेलनके अवसरपर प्राप्त हुआ था, द्वितीय महानुभावकी सेवामें हम अनेक बार उपस्थित हुए थे, और तृतीयकी तो 'विशाल-भारत' पर खासतौरसे कृपा थी। स्थान-स्थानपर इन महानुभावोंके लिए शोक-सभाएँ की गई हैं, अनेक पत्रोंमें उनके विषयमें नोट तथा लेख भी निकले हैं, और किसी-किसीने यह भी चर्चा की है कि इन लोगोंके स्मारकके लिए भी कुछ होना चाहिए। महीने दो महीनेके भीतर यह चर्चा जहाँ-की-तहाँ बैठ जायगी, और हम लोग अपने दैनिक काम धन्धोंमें व्यस्त हो जायँगे। पहले तो हमारे यहाँ ऐसे आदमियोंकी संख्या ही अत्यल्प है, जो गुरुजनोंको स्मरण करना पुण्यकार्य मानते हों, और जो करते भी हैं, उनका मज़ाक उड़ानेवाले भी थोड़े नहीं हैं। एक पत्रकार महोदयने 'विशाल-भारत'के इस प्रयत्नपर व्यंग्य किया है, और उपर्युक्त साहित्य-सेवियोंके लिए भी विशेषांक निकालना 'विशाल भारत' का ही कर्तव्य बतलाया है। 'विशाल भारत' इसमें अपना गौरव मानता है। यदि उसके पास साधन और शक्ति होती, तो वह बड़े हर्षके साथ इस पुण्यकार्यको करता। जो महानुभाव वयोवृद्ध साहित्य-सेवियोंका अपमान करनेमें ही अपना गौरव समझते हैं, अथवा उनके स्वर्गवासी हो जानेपर भी अपने द्वेषको नहीं छोड़ते, उन्होंने शायद यह समझ लिया है कि न वे कभी बूढ़े होंगे और न मरेंगे।

अन्तमें हमें केवल इतना ही कहना है कि 'विशाल भारत' उपर्युक्त साहित्य-सेवियोंकी स्मृतिके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करनेके लिए सर्वदा उद्यत है, क्योंकि वह कृतज्ञताको मानव-जातिका एक सर्वोच्च गुण मानता है, और वृद्धों तथा स्वर्गस्थोंके आशीर्वादको उन्नतिका सरलतम मार्ग।

साहित्य-सेवियोंके आदर्श

अप्रैलके 'विशाल भारत'में हमने इस विषयपर एक लेख लिखा था। अनेक सज्जनोंने उसे पसन्द किया था, और कुछने उसकी प्रतिकूल आलोचना भी की थी। इन आलोचनाओंमें एक तो ऐसी थी, जिसके कई अंश हमारी समझमें ही नहीं आये; पर स्वामी सत्यदेवीजीका लेख, जो इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है, भिन्न कोटिका है। वह गम्भीरतापूर्वक लिखा गया है, और उसके अनेक अंशोंसे हमारा

कोई मतभेद नहीं। उन्होंने लिखा है—"चरित्र शब्दको व्यापक अर्थोंमें व्यवहारमें लाना चाहिए। हमारे देशमें चरित्रहीन शब्दका अर्थ केवल यह लिया जाता है कि अमुक मनुष्य परस्त्रीगामी है, या उसकी कामेन्द्रिय उसके वशमें नहीं। चरित्र शब्दका यह अत्यन्त ही संकुचित प्रयोग है।" इस बातसे हम सहमत हैं। सच्चरित्रतामें जितेन्द्रियताके अतिरिक्त सचाई, ईमानदारी, परदुःखकातरता, कृतज्ञता, भलमनसाहत इत्यादि अनेक गुणोंका समावेश होना चाहिए। पर जितेन्द्रियताको हम एक महत्त्वपूर्ण गुण अवश्य समझते हैं, और उन लोगोंसे सर्वथा असहमत हैं, जो अपनी प्रतिभाके विकासके लिए नाना प्रकारके पतनकारी अनुभवोंको आवश्यक मानने लगे हैं। सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक थ्यूरोने एक जगह लिखा है—

"The generative energy which, when we are loose, dissipates and makes us unclean, when we are continent invigorates and inspires us. Chastity is the flowering of man; and what are called Genius, Heroism, Holiness, and the like, are but various fruits which succeed it."

अर्थात्—"जब हम अजितेन्द्रिय बन जाते हैं, तो जो उत्पादकशक्ति नष्ट होती है, और हमें गन्दा बनाती है, वही ब्रह्मचर्यपूर्वक रहनेसे हमें बल तथा स्फूर्ति प्रदान करती है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है मनुष्य-रूपी वृक्षका पुष्पित होना। प्रतिभा, वीरता और पवित्रता तथा अन्य ऐसे ही गुण इस वृक्षके फल हैं, जो वृक्षके पुष्पित होनेके बाद ही आते हैं।"

स्वामी सत्यदेवजीने हमारे चुने हुए आदर्शोंसे भी मतभेद प्रकट किया है। यह स्वाभाविक ही है। हमने अपने लेखमें लिखा था—

"पाठक कह सकते हैं—'भावुकतापूर्ण बातें तो बहुत हो चुकीं। हमें दृष्टान्त बतलाइये, जिनको आदर्श मानकर हम अपने चरित्रका निर्माण करें।' इस प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन है, यह तो अपनी-अपनी रुचि, योग्यता, मनोवृत्ति और परिस्थितिपर निर्भर है। प्रत्येक लेखकको अपना लक्ष्य और आदर्श स्वयं चुनना चाहिए। किसी दूसरेके चुने हुए आदर्शको अन्ध-विश्वासके साथ मान लेनेका परिणाम अच्छा नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न प्रकारके लेखकोंसे मिलिये। प्राचीन और नवीन लेखकों तथा कवियोंकी रचनाओंको पढ़िये, और उनका सत्संग भी कीजिए। केवल अपनी ही भाषाके नहीं, दूसरी भाषाओंके भी विद्वानोंसे परिचय प्राप्त कीजिए। अपने दृष्टिकोणको ऊँचा रखिये, और शिक्षा जहाँ कहींसे भी मिल सकती है, उसे ग्रहण कीजिए। इस प्रकार प्रयत्न करते-करते आप अपने आदर्शको चुन सकते हैं; पर चुन लेनेके बाद भी आपको सदा इस बातके लिए तैयार रहना चाहिए कि यदि भविष्यमें इनसे उच्चतर आदर्श मिलेगा, तो निस्संकोच ग्रहण कर लेंगे। हमें अपने लिए जो आदर्श दीख पड़ते हैं, वे ये हैं, इत्यादि।"

लेखके अन्तमें हमने फिर लिखा था—"हम यह नहीं कहते कि सब लोग इन्हींको अपना आदर्श मानें, पर कोई-न-कोई आदर्श प्रत्येक लेखक या कविको अपने सम्मुख अवश्य रखना चाहिए।"

स्वामी सत्यदेवजीने लिखा है—"अपने लेखमें लेखकने कुछ नाम आदर्शके तौरपर भी पेश किये हैं। हमारा इस सम्बन्धमें भी उनसे बड़ा मतभेद है। मान्यवर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने हिन्दीकी बड़ी-भारी सेवा की है। हम सब उनके ऋणी हैं; परन्तु वे साहित्य-सेवियोंके आदर्श-रूप नहीं हो सकते, और न स्वर्गीय पं० पद्मसिंह साहित्य-सेवियोंके आदर्श कहे जा सकते हैं। जो लोग अपने प्रशंसकों और मित्रोंको आसमानपर चढ़ा दें, और उनकी प्रशंसाके पुल बाँध दें, जो उनके ग्रन्थोंकी तारीफ करते हुए न थकें, जो अपने विरोधियोंके गुणोंको स्वीकार न कर उनके दोषोंको बढ़ाकर दिखलावें, और उन्हें मिट्टीमें मिलानेका प्रयत्न करें, ऐसे लेखक कभी भी आदर्श-रूप नहीं माने जा सकते।"

हमारा खयाल है कि स्वामी सत्यदेवजीने उपर्युक्त दोनों

लेखकोंको काफी निकटसे नहीं देखा, अतएव उनके विषयमें जो विचार प्रकट किये हैं, वे भ्रमात्मक हैं। समाचारपत्रों और मासिक पत्रोंके लेखों तथा वाद-विवादोंसे मनुष्यके असली व्यक्तित्वका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। पर इस विषयमें हम बहस नहीं करेंगे। स्वामीजीसे केवल इतना निवेदन करेंगे कि आप जिन लेखकोंको आदर्श मानते हों, उनके नाम कृपया जनताको बतलाइये।

—

नरम दलकी नीति

सरकारकी दुमुँही नीतिके बारेमें आजकल टीका-टिप्पणी हो रही है; पर हमारे खयालसे यह कोई नई नीति नहीं है। यह तो पुरानी नीति 'गरम दलवालोंको कुचल डालो और नरम दलवालोंको अपना लो' (Crush the extremists and rally round the moderates) वाली नीतिका रूपान्तर मात्र है। गत तेरह वर्षोंसे नरम दलकी विचित्र नीति रही है। सन् १९१९ के सुधारोंको उन्होंने अपनाया, और सन् १९२१ के आन्दोलनमें उन्होंने सरकारका साथ दिया। काम निकालनेके बाद सरकारने उनको ठुकराया। श्री चिन्तामणि तकको त्याग-पत्र देना पड़ा! सन् १९२२ से उनकी नीति ढिलमिल रही है। उन्होंने न तो कांग्रेसका साथ दिया, और न पूरी तरहसे सरकारका ही साथ दिया। सरकारने उनको अपनानेके लिए काफ़ी प्रयत्न किया; पर वे सरकारकी भी आलोचना करते रहे, कभी-कभी उसका साथ भी देते रहे, कांग्रेस-आन्दोलनकी भी निन्दा करते रहे। विद्वद्वर बाबू भगवानदासजीके शब्दोंमें नरम दलवालोंने चार भारी भूलें की हैं:—(१) सन् १९२८ का सर्वदल-शासन-विधान-योजनाको कांग्रेसने उन्हींकी सहायतासे तैयार किया था। नरम दलवाले उस विधानपर कांग्रेसके साथ रहते, तो महात्मा गांधीको कठिनाई भी न पड़ती। (२) सन् १९३० के अन्तमें गोलमेज़-कानफ़्रेंसकी योजना हुई। नरम दलवाले ब्रिटिश सरकारके चक्करमें पड़ गये, और बिना गांधीजीके ही लन्दन चले गये। उन्हें बिना गांधीजीके नहीं जाना चाहिए था। (३) सन् १९३१ में जब गांधीजी गोलमेज़-कानफ़रेंसके दूसरे अधिवेशनमें गये, तब उनको सर्वदल-सम्मेलन-ड्राफ्टको ही माँगका आधार बनाना चाहिए था, ऐसा उन्होंने नहीं किया, और गांधीजीको कठिनाई उठानी पड़ी। (४) चौथी भूल उनकी थी महात्माजीकी अन्तिम गिरफ्तारीके समय। महात्माजीकी गिरफ्तारीपर उन्हें गोलमेज़-कानफरेंसकी सब समितियोंसे इस्तीफ़ा दे देना चाहिए था। उन्होंने ऐसा नहीं किया! आज नरम दलवालोंको देशमें कोई पूछता भी नहीं। 'हाथ पैर बचाकर' जो चोट करना चाहता है; देशके राष्ट्रीय युद्धसे जो मुँह ही नहीं मोड़ता, वरन् उसकी निन्दा करता है, उसे पूछ ही कौन सकता है? सरकार भी समझती है कि नरम दलवालोंमें दम नहीं है। उनको वह उस पतिव्रता हिन्दू स्त्रीके समान समझती है, जो कभी अपने दुष्ट पतिके विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकती।

पर अब सर होरके भाषणसे नरम दलवालोंके ठेस लगी है। डाक्टर सप्रू तथा श्री श्रीनिवास शास्त्रीने तो परामर्शकारिणी समितिसे इस्तीफ़ा दे दिया है, और नरम दलके स्तम्भ श्री चिन्तामणिजीने भी सरकारकी नीतिकी कड़ी निन्दा की है।

—

बीकानेर-राज्य

देशी राज्य और संघ-शासनके सम्बन्धमें बीकानेर-नरेश सर गंगासिंहजी खासी दिलचस्पी लेते रहे हैं। जहाँ अनेक देशी नरेश संघ-शासनमें शामिल होनेसे झिझकते हैं, वहाँ बीकानेर-नरेश कई बार डंकेकी चोट संघ-शासनमें शामिल होनेकी बात कह चुके हैं। बीकानेर-नरेशके विषयमें हमारी जो धारणा थी, वह यह थी कि वे सुलझे हुए, वाकपटु और जनताकी रायका खयाल करनेवाले नरेश हैं। विदेशी पत्रोंमें हमने उनके भारतीय पोशाकमें कुछ चित्र भी देखे, और उनसे हमारी धारणा हुई कि सर गंगासिंहजीमें भारतीयताकी मात्रा भी काफ़ी है। यों तो हम देशी राज्योंको भारतीय स्वतन्त्रताके मार्गमें रोड़े समझते हैं, और हम लिख भी चुके

हैं कि ये श्री केलकरके शब्दोंमें "ब्रिटिश सरकारकी कलाईपर बाज़के समान हैं।" ब्रिटिश भारतमें कांग्रेस-आन्दोलनको दबानेके लिए उनका प्रयोग किया जा सकता है। अस्तु, बीकानेर-नरेशको हम सुलझा और समझदार आदमी समझते थे; पर आजकल जो कार्रवाई उनके राज्यमें हो रही है, उसका वृत्तान्त पढ़कर हमें शायद अपनी धारणा बदल देनी पड़े। हमारे एक मित्रने बीकानेरमें चलनेवाले मुक़दमेकी बात सुनाई, काग़ज़ात दिखाये और दैनिक पत्रोंमें छपे मुक़दमा-सम्बन्धी अवतरण भी दिखाये। राज्यकी ओरसे मुक़दमेका चलानेवाले कुँवर सबलसिंहका बयान भी हमने पढ़ा, और साप्ताहिक 'विश्वमित्र' की २० जूनकी एक प्रति भी देखी। 'विश्वमित्र'के उस अंकमें अभियुक्त श्री चन्दनमल शर्माकी उस अर्ज़ीका मज़मून भी पढ़ा, जिसमें उनपर और उनके कुटुम्बपर पुलिस द्वारा किये गये अत्याचारका वर्णन है। और जिसको उन्होंने अदालतमें पेश किया है।

बीकानेरमें श्री ख़ूबराम सराफ़, श्री सत्यनारायण बी० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट, स्वामी गोपालदास, सेठ बदरीप्रसाद, श्री प्यारेलाल सारस्वत, श्री सोहनलाल शर्मा और श्री चन्दनमल शर्मापर १२४ ए (राजविद्रोह), १२० बी (षड्यंत्र) और बीकानेर-राज्यकी एक धारा ३७७ सी में मुक़दमा चल रहा है। अभियुक्तोंमें कई गण्यमान्य व्यक्ति हैं। मुक़दमेके दौरानमें हम अभियोगकी सचाई और झूठके विषयमें कोई राय नहीं दे सकते; पर साधारण क़ानूनकी दृष्टिसे किसी भी अभियुक्तको फ़ैसलेसे पूर्व दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस मामलेके विषयमें हमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे कुछ स्पष्ट बातें कहनी हैं। आरोपी सबलसिंहके बयानमें कहा गया है कि तलाशीमें किसी अभियुक्तके यहाँसे तीन राज-विद्रोहियोंके चित्र निकले। हमें मालूम हुआ है कि ये चित्र गांधीजी, स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरूके थे। बयानमें और भी कई मज़ेदार बातें हैं। मन्त्रीकी परिभाषा 'लेखक' तो सबलसिंहकी योग्यताका सर्टीफ़िकट है। अस्तु, अभियुक्तोंने अदालतकी कार्यवाहीमें कोई भाग लेनेसे इनकार कर दिया है। उन्हें ब्रिटिश भारतसे वकील बुलानेकी आज्ञा नहीं दी गई। यह हम जानते हैं कि देशी नरेश निरंकुश होते हैं; पर निरंकुशताकी भी सीमा होती है, और ब्रिटिश भारतसे वकील बुलानेकी आज्ञा देनेसे बीकानेर-शासन-प्रणालीका अन्त न हो गया होता। अभियुक्तोंको क़ानूनी सुविधा देना साधारणसी बात है, नहीं तो अदालतमें मुक़दमा चलानेकी ज़रूरत ही क्या? बीकानेरमें नया 'सेफ़्टी ऐक्ट' भी जारी हुआ है, और वह जूनसे ही लागू हैं; पर ये अभियुक्त तो उस धारामें नहीं आते।

इस मामलेमें सनसनी पैदा करनेवाली बात है श्री चन्दनमल द्वारा लगाया हुआ पुलिसपर अभियोग। हमें विश्वास नहीं होता कि एक क्षत्रिय नरेशके राज्यमें अबलाओं और अभियुक्तोंके प्रति ऐसा व्यवहार किया जा सकता है। हमें अदालतकी एक कार्यवाहीपर भी आपत्ति है। जब चन्दनमलने इस विषयमें अपनी अर्ज़ी दी, तब अदालतको पुलिसके उसकी जाँचका हुक्म देना चाहिए था। चन्दनमलकी अर्ज़ीका मज़मून पढ़कर हमारे रोंगटे खड़े हो गये। क्या ये बातें ठीक हैं?

बीकानेर-नरेशसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी कीर्ति-रक्षाके लिए श्री चन्दनमलकी अत्याचार-सम्बन्धी अर्ज़ीपर स्वतन्त्र जाँच करावें। अभियुक्तों और अभियुक्तोंके सम्बन्धियोंसे हमारा कहना यह है कि यदि उनका मार्ग सत्य है, यदि उनका आदर्श उच्च है, तो वे अपने पथपर डटे रहें। सत्य और आदर्शकी रक्षामें हानि उठानी पड़े, अपना अस्तित्व तक मिटाना पड़े, तो भी कोई हानि नहीं। यह वह हानि है, जिसमें सर्वदा लाभ है। उदयपुरके वंशज आज भी हैं; पर अकबरके वंशज टुकड़ोंके मुहताज हैं। बीकानेर-नरेशसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस विषयमें दूरदर्शितासे काम लें। प्रजाको सन्तुष्ट रखनेमें ही राज्यकी भलाई है।

हिन्दीकी सौ श्रेष्ठ पुस्तक

अन्यत्र इसी अंकमें श्री सूर्यनाथ तकरूका एक लेख इस विषयपर प्रकाशित हुआ है। इस प्रकारके चुनावोंसे किसीका सर्वांशमें सहमत होना कठिन ही है, क्योंकि यह दृष्टिकोण तथा रुचिकी विभिन्नताका प्रश्न है। जिसे एक आदमी उत्कृष्ट मानता है, उसे ही दूसरा निकृष्ट समझ सकता है। लेखक महोदयके चुनावसे कितने ही अंशोंमें हमारा भी मतभेद है—उदाहरणार्थ, 'लतखोरीलाल'को हास्यरसकी श्रेष्ठ पुस्तकोंमें सम्मिलित करना और 'चिड़िया घर' जैसी उत्तम पुस्तकको छोड़ देना लेखककी अनभिज्ञताका सूचक है। इसी प्रकार यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकोंमें 'चीनमें तेरह मास' तथा 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' नामक पुस्तकोंकी गणना न करना ज़बरदस्त भूल है, पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने परिश्रम करके एक नवीन विषयपर लिखा है, और इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं। 'विशाल भारत'के पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे इस चुनावके विषयमें अपनी सम्मति हमें लिख भेजें। हिन्दीके अन्य पत्रोंमें भी यदि इस प्रकारकी चर्चा चले, तो इससे पाठकों तथा लेखकों और पुस्तक-विक्रेताओंका भी कुछ हित हो सकता है। इस विषयपर अपने विचार हम किसी अगले अंकमें प्रकाशित करेंगे।

—

"दे ख़ुदाकी राहपर"

विलायतके पत्रोंमें 'अखिल-भारतीय मुस्लिम कानफ्रेंस' के कुछ 'मुसलिम नेताओं' की ओरसे एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ है। यह वक्तव्य घुड़दौड़के मशहूर खिलाड़ी सर आग़ाख़ांके ज़रियेसे प्रकाशित हुआ है। इस वक्तव्यमें हिन्दुओंके ऊपर खासतौरपर आक्रमण किया गया है। घुड़दौड़ी हजूरने इसे प्रकाशित करनेके पहले हिन्दुओंपर किये गये आक्रमणोंमें कुछ शब्दोंका हेर-फेर करके इस्लाह भी की है, जिससे कुछ आता-जाता नहीं।

यह वक्तव्य एक प्रकारसे मुसलमानोंकी ओरसे अंग्रेज़ जातिको दी हुई अर्ज़ी है, जिसमें फिदवियोंने बाद क़दमबोसी इस बातकी दस्तबस्ता अर्ज़ की है कि मुसलमानोंकी सारी माँगें बेचूँ-चराके मंजूर हो जानी चाहिए। इसके लिए जो दलीलें पेश की गई हैं, उनका सारांश यह है—

"ऐ अंग्रेज़ो, हिन्दोस्तानमें तुम्हारा अगर कोई भी दोस्त है, तो हम मुसलमान ही हैं। हम लोग तुम्हारे हमेशा वफ़ादार रहे हैं। इसके ख़िलाफ़ हिन्दू लोग हमेशा बेवफ़ा और राजद्रोही रहे हैं। हिन्दोस्तानमें जितने भी राजनैतिक ख़ून हुए हैं, वे सब हिन्दुओंने ही किये हैं। असहयोग, सत्याग्रह और उससे पहले जितने भी वैध-आन्दोलन हुए हैं, वे मुख्यतः हिन्दुओं ही के किये हुए हैं, इसलिए भविष्यमें हिन्दोस्तानको जो नया शासन-विधान दिया जाय, उसमें मुसलमानोंकी जो कुछ भी माँगें हैं, वे पूरी की जायँ और हिन्दुओंके दावेकी उपेक्षा की जाय। हमने महायुद्धमें अपने हम-मज़हब तुर्कोंके खिलाफ अंग्रेज़ोंकी तरफ़से तलवार उठाई थी, और रंगरूटोंसे सरकार इंगलिशियाकी मदद की थी, इसलिए हम लोग अपनी मुराद पानेके मुस्तहक़ हैं।"

इस सारांशसे यह प्रत्यक्ष है कि इस क़ीमती वक्तव्यमें राष्ट्रीय मुसलमानोंका रत्ती-भर भी हाथ नहीं है। इतना ही नहीं, इस वक्तव्यके प्रकाशित होने बाद ही देशके समझदार मुसलमानोंने खुले शब्दोंमें इसका विरोध भी किया। बंगाल-प्रान्तीय मुसलिम लीगकी कार्यकारिणी कौंसिलने निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया था—

"लन्दनमें कुछ मुसलमानोंने जो हस्ताक्षर-हीन, भ्रमपूर्ण और शरारत-भरा वक्तव्य निकाला है, यह कौंसिल उसका ज़ोरदार विरोध करती है। 'मुसलमानोंका राजनीतिक आधारपर जो स्थान होना चाहिए, उससे दृढ़तर स्थान प्राप्त करनेके लिए' इस वक्तव्यमें जो गद्दारीपन दिखाया गया है, उसके लिए यह कौंसिल खेद प्रकाश करती है। यह गद्दारीपन मुसलमानोंके गौरव और आत्म-सम्मानके विरुद्ध है, और इससे मुसलमानोंकी कमज़ोरी प्रकट होती है। कौंसिलको इस

बातका भी अफ़सोस है कि इस वक्तव्यमें अपनी माँगोंके पूरा करनेके लिए यह दलील दी गई है कि 'मुसलमान लोग अन्य इस्लामी देशोंके अपने सहधर्मियोंके—जो हमारे भाई-बन्द हैं—विरुद्ध लड़े थे।" यह कौंसिल मुसलमानोंकी आत्म-निर्भरता तथा भारतके अन्य सम्प्रदायोंके साथ मेल रखनेमें पक्का विश्वास रखती है, और उसका विश्वास है कि सबके साथ मिलकर ही मातृभूमिके भाग्यका निपटारा होगा।"

मुसलमानोंकी सबसे बड़ी धार्मिक संस्था 'जमायतुल उल्माय हिन्द' ने भी इस गदाई वक्तव्यके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया है। अनेक प्रसिद्ध मुसलमानोंने व्यक्तिगत-रूपसे अथवा सम्मिलित-रूपसे इस वक्तव्यका विरोध किया है।

वक्तव्यमें किसीके हस्ताक्षर नहीं हैं। शायद वक्तव्य लिखनेवालोंमें इतना साहस नहीं था कि वे खुल्लमखुल्ला अपना नाम प्रकट कर सकें। इससे एक बात और भी प्रकट होती है कि शायद इस वक्तव्यके प्रतिपादकोंमें साम्प्रदायिक मुसलमानोंके प्रमुख व्यक्ति भी नहीं हैं।

वक्तव्य प्रकाशित करनेवालोंके कथनका मतलब यह है कि हम विशेष अधिकार इसलिए नहीं चाहते कि हमने देश या राष्ट्रके लिए कोई विशेष बलिदान और त्याग किया है, बल्कि इसलिए कि हम अंग्रेज़ सरकारके 'राजा बेटा' रहे हैं; हिन्दू लोग शरारती रहे हैं, इसलिए उन्हें कुछ न मिलना चाहिए। असहयोग, सत्याग्रह और खिलाफत आदि आन्दोलनोंमें राष्ट्रीय मुसलमानोंने जो कष्ट सहे हैं, और जो त्याग और बलिदान किये हैं, आग़ाखां साहब और उनके पिट्ठू अपने थोड़ेसे स्वार्थके लिए उसका सारा श्रेय ही लोप कर देना चाहते हैं!

भारतमें आतंकवादियोंके द्वारा जो राजनैतिक हत्याएँ हुई हैं, आग़ाखां साहब उसका पूरा फ़ायदा उठाना चाहते हैं। वक्तव्यमें लिखा है—"महीनोंसे हिन्दू कांग्रेसी समाचारपत्र नियमित रूपसे आतंककारी कृत्योंके लिए सज़ा पानेवाले प्रत्येक व्यक्तिकी प्रशंसा करते रहे हैं।" मगर क्या यह बात सच है कि आतंककारी कृत्यों और उनके अभियुक्तोंकी प्रशंसाका सारा दोष हिन्दुओंका ही है? क्या मुसलमानोंने कभी उसमें भाग नहीं लिया? क्या मुसलमानोंने कभी राजद्रोह नहीं किया, या किसी अंग्रेज़की हत्या नहीं की?

ग़दरकी बातें बहुत पुरानी हो गईं, उनका ज़िक्र न करना ही ठीक होगा; मगर क्या घुड़दौड़ी हुज़ूरको यह मालूम है कि वहाबी-आन्दोलनके सारे अभियुक्त मुसलमान ही थे; क्या वे जानते हैं कि लार्ड मेयो और चीफ जस्टिस नार्मनकी हत्या उनके सहधर्मियोंने ही की थी; क्या उन्हें याद है कि खिलाफत-आन्दोलनमें खेरीके डिप्टी-कमिश्नर मि० वेलोबी मुसलमानके हाथसे ही मारे गये थे; क्या वे नहीं जानते कि काकोरी-केसमें फाँसी पानेवाले श्री अशफ़ाकुल्ला हिन्दू नहीं थे; क्या वे जानते हैं कि श्री भगत सिंहपर प्रस्ताव पास करनेवाली लाहौर-म्यूनिसिपैलिटीके अधिकांश सदस्य हिन्दू नहीं—मुसलमान हैं; क्या वे जानते हैं कि गत वर्ष एक अंगरेज़की हत्याकी चेष्टामें चौबीस घंटेके भीतर फाँसीपर लटकनेवाला पेशावरका मुहम्मद नूर इस्लाम ही का अनुयायी था? मोपला-विद्रोह, काश्मीर, ढाका, किशोरगंज, पेशावर, कोहाट, मुल्तान और चटगाँव आदिके दंगोंमें किसका हाथ था?

इस वक्तव्यके लिखनेवालोंका कहना है कि अगर नवीन शासन-विधानमें हिन्दुओंका प्रधानत्व हो गया, तो वे उसकी अपेक्षा मौजूदा अंगरेज़ी राज्यको अधिक पसन्द करेंगे; न केवल इसलिए कि अंगरेज़ी शासन पक्षपातहीन है, बल्कि इसलिए भी कि हिन्दुओंका प्रधानत्व होनेसे देशमें, पुरुषत्वपूर्ण और लड़ाकू मुसलमानोंमें और उन हिन्दुओंमें जिनमें कांग्रेसके गर्म विचारवालोंने षड्यन्त्र, विप्लव, रक्त-पिपासा और अराजकताका बीज बो दिया है, भयंकर द्वन्द्व होगा।

राष्ट्रवादी भारतीयोंका—चाहे वे हिन्दू हों, या मुसलमान—तथा कांग्रेसका ध्येय भारतके लिए स्वायत्त शासन प्राप्त करना रहा है। स्वायत्त शासनका अर्थ यह होता है कि शासन राजनैतिक पार्टियोंके द्वारा हो, न कि साम्प्रदायिक जातियोंके द्वारा। यदि किसी कालमें शासनकर्ताओंमें

हिन्दुओं या मुसलमानोंका बहुमत होगा, तो इसीलिए होगा कि बहुमत किसी पार्टी-विशेषके राजनैतिक प्रोग्रामका अनुयायी है, न कि इसलिए कि बहुमत हिन्दू है, या मुसलमान। भारतको उत्तरदायित्वपूर्ण शासन देनेकी बात है, मगर मुसलमानोंकी माँगें देखकर जान पड़ता है, मानो वे उत्तर-दायित्वपूर्ण शासनका अर्थ ही न समझते हों। मगर हम समझते हैं कि हुज़ूर आगाख़ां, या उनके साथी, ऐसे बेवकूफ नहीं हैं, जो इस बातको न समझ सकें। मालूम यह होता है कि ये लोग किसी मदारीके इशारेपर उछल रहे हैं। एक बात मज़ेकी यह है कि ये मुसलमान हिन्दुओंकी प्रधानता नहीं चाहते, मगर जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत है, वहाँ मुसलमानोंकी प्रधानता ज़रूर चाहते हैं! ख़ूब, चित पड़े तो हम जीतें, पट पड़े तो तुम हारो!

अब ज़रूरत इस बातकी है कि ईमानदार देशभक्त मुसलमानोंको साहसके साथ आगे बढ़कर एक सुरसे यह खुल्लमखुल्ला घोषित कर देना चाहिए कि इस वक्तव्यको प्रकाशित करनेवाले उनके प्रतिनिधि नहीं हैं।

—

पद्मसिंह-अंक

'विशाल भारत' का आगामी अंक स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माकी स्मृतिमें निकलेगा। हर्षकी बात है कि उसके लिए बहुत-कुछ मसाला इकट्ठा हो चुका है, और जो थोड़ेसे लेख शेष हैं, वे भी शीघ्र ही आनेवाले हैं। स्वर्गीय शर्माजीके मित्रों तथा भक्तोंसे यह प्रार्थना है कि वे शीघ्र ही जो कुछ परामर्श इस विषयमें देना हो, हमें लिख भेजें। विशेषांक निकालनेके बाद हमारा विचार शर्माजीका जीवन-चरित लिखनेका भी है, पर उसमें न-जाने कितना समय लगेगा, और प्रकाशित होते-होते काफी विलम्ब हो जानेकी आशंका है। जिन महानुभावोंको शर्माजीके विषयमें छोटी-छोटी दो-चार बातें भी ज्ञात हों, वे उन्हें ज्यों की-त्यों लिख भेजें। इस अंकमें उनका उपयोग हो जायगा। हम चाहते हैं, कि इस अंककी एक प्रति स्वर्गीय शर्माजीके प्रत्येक मित्रकी सेवामें पहुँचे। शर्माजीके अनेक भक्त ऐसे हैं, जो साधन-सम्पन्न हैं, और जिनके लिए इस अंककी सौ-पचास प्रतियाँ खरीदकर अधिकारी सज्जनोंको भेंट करना कोई मुश्किल बात न होगी। बड़ी कृपा हो, यदि वे तुरन्त ही हमें इसकी सूचना भेज दें।

—

श्री देवेन्द्र सत्यार्थीका सदुद्योग

श्रीयुत सत्यार्थीजी सन् १९२५ से ग्राम-कविताओंका संग्रह कर रहे हैं। इसके लिए आप सहस्रों मीलकी यात्रा कर चुके हैं। आप पटियाला-राज्यके निवासी हैं और पहले-पहल आपने अपने प्रान्त पंजाबके ग्राम-गीतोंका संग्रह करना आरम्भ किया था। अब तो आप भारतवर्षके अनेक भागोंकी यात्रा कर चुके हैं। और कितने ही स्थानोंमें तो आपको पाँच-पाँच सात-सात महीने रहकर यह काम करना पड़ा है। जिन जातियों अथवा प्रान्तों या स्थानोंके ग्रामगीत आपने इकट्ठे किये हैं, उनके नाम निम्न-लिखित हैं :—

(१) बुरहानपुर गंजाम डिस्ट्रिक्टकी सवरा जाति, (२) कोण्ड जाति, (३) पाथो जाति, (४) गारो और मुण्डा जाति, (५) तेलगु, (६) महाराष्ट्र, (७) गुजरात, (८) आसाम, मनीपुर, खासी पर्वत और कूचविहार, (९) पंजाब—(इस प्रान्तके संग्रहमें कुल्लू वेली, गद्दी, शिमला तथा जम्मूके ग्रामगीत भी सम्मिलित किये गये हैं।), (१०) मारवाड़ (११) उड़ीसा। संग्रह-कार्यके लिए आपको बुरहानपुर गंजाममें पाँच-छै महीने रहना पड़ा, कूचविहारमें भी इतना समय बिताना पड़ा, और उड़ीसाके लिए बारह महीने देने पड़े। आपने अपने संग्रहके अनेक अंश हमें सुनाये और इसमें सन्देह नहीं कि आपने जो मसाला इकट्ठा किया है, वह श्री रामनरेश त्रिपाठीजीकी 'ग्रामगीत' नामक पुस्तककी तरहकी कई जिल्दोंके लिए पर्याप्त होगा। हमें सन्देह केवल इस बातका है कि स्वयं सत्यार्थीजी इस वृहत संग्रहका

यथोचित रीतिसे सम्पादन तथा सदुपयोग कर सकेंगे या नहीं। यह कार्य इतना विशाल और महत्त्वपूर्ण है कि इसमें संग्रहकर्ताकी तरहके बीसियों नवयुवकोंका जीवन खप सकता है। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अथवा नागरीप्रचारिणी सभा इस कार्यको अपने हाथमें ले लें, तो यह कम समयमें और अधिक आसानीके साथ हो सकता है; पर जब तक इन संस्थाओंका ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं होता, तब तक व्यक्तिगत रूपसे ही इसे करते रहना चाहिए। भारतकी राष्ट्रीय एकताकी दृष्टिसे इस प्रकारकी यात्राएँ और संग्रह उपयोगी सिद्ध होंगे। सत्यार्थीजीके प्रयत्नमें हम सफलता चाहते हैं। ब्रह्मदेशके गीत संग्रह करनेके लिए आजकल आप रंगून गये हुए हैं। आपका वर्तमान पता है—मार्फत पोस्ट-मास्टर, रंगून।

—

'भारतीय भंडार'के ग्रन्थ

हिन्दी-जगतके सुप्रसिद्ध कलाविद् रायकृष्ण दासजीसे 'विशाल भारत'के पाठक भलीभाँति परिचित हैं। 'कला-भवन' नामक महत्त्वपूर्ण संग्रहालय आपके ही प्रथम परिश्रमका फल है, और नागरी-प्रचारिणी सभा काशीके मन्त्रित्वका कार्य भी आजकल आप ही कर रहे हैं। 'भारती भंडार'के भी आप ही संचालक हैं। हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वानोंकी रचनाओंको प्रकाशित करना इस संस्थाका उद्देश्य है, और अब तक इसके द्वारा अनेक उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं। जो महानुभाव इस भंडारकी पूर्ति कर रहे हैं, उनमें आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रद्धास्पद डा० भगवानदास तथा श्री जयशंकर प्रसादके नाम उल्लेख-योग्य हैं। स्वयं संचालक महोदयकी उत्तमोत्तम पुस्तकें भी यहींसे प्रकाशित हुई हैं, और कविवर सुमित्रानन्दन पन्तका नवीन काव्य-ग्रन्थ—'गुंजन'—भी इसी भंडारसे शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। हमें खेद है कि अब तक हम इस उपयोगी संस्था तथा उसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंका विस्तृत परिचय अपने पाठकोंको नहीं दे सके। भविष्यमें हम ऐसा करनेका प्रयत्न करेंगे। इस समय इतना ही कहना चाहते हैं कि इस भंडारको अपनाना हिन्दी-पाठकोंका कर्तव्य है। एक रुपया भेजनेपर वे इसके स्थायी ग्राहक बन सकते, और पौन मूल्यमें इसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंको पा सकते हैं। पता—'भारती भंडार' रामघाट, बनारस सिटी।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
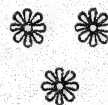
"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

आश्विन १९८९ : : सेप्टेम्बर १९३२

भाग १०, अंक ३. पूर्ण-अंक ५७.

एशियामें जाग्रति

दीनबन्धु सी० एफ० ऐराडूज़

समूचा एशिया एक महान क्रान्तिकी लपटोंमें होकर गुज़रा है, अथवा अब भी गुज़र रहा है। मानव-जातिके सम्पूर्ण इतिहासमें शायद इससे पहले इस प्रकारकी कोई सर्वव्यापी घटना नहीं घटी। कारण यह है कि सम्पूर्ण मानव-जातिका आधेसे अधिक भाग इस क्रान्तिके दायरेमें आ जाता है, और इसकी प्रतिध्वनि इस समय भी संसारके बाक़ी हिस्सोंमें सुनाई पड़ रही है। यूरोप और अमेरिकामें जो आर्थिक दुर्दशा फैली है, उससे भारत और सुदूर पूर्वमें—चीन, श्याम आदिमें—होनेवाली घटनाओंका घनिष्ट सम्बन्ध है। बात यह है कि आधुनिक कालमें आमद-रफ़्तके साधनोंका विकास इतनी शीघ्रतासे हुआ कि हमारी इस पृथिवीका विस्तार एकाएक छोटा हो गया है ; फल यह हुआ है कि यदि एक गोलार्द्धपर कोई आर्थिक संकट आता है, तो दूसरे गोलार्द्धमें भी उसका प्रभाव बड़ी तीव्रतासे अनुभव होता है।

एशियाकी क्रान्तिको कभी-कभी लोग "राष्ट्रीयताके उत्थान या राष्ट्रीयताकी लहर" के नामसे पुकारते हैं, मगर वास्तवमें राष्ट्रीयता तो इस क्रान्तिका एक ऊपरी पहलूमात्र है,—वह उसका मूल नहीं है ; वह तो केवल ऊपरी लक्षण ही है। इसकी अपेक्षा दो बातें कहीं अधिक गहराई तक जाती हैं। उनमें से पहली बात यह है कि इस समय समस्त एशियामें यूरोपियनोंके आधिपत्यके विरुद्ध प्रतिक्रिया हो रही है ; दूसरी बात यह है कि अब अन्तमें पद-दलित एशियाई किसानोंने युगोंके अत्याचारों और ज़ुल्मोंके विरुद्ध बग़ावतकी आवाज़ उठाई है।

एशियाके उत्तरी भागमें—रूस और साइबीरियामें—किसानोंकी क्रान्ति तो हुई ही थी, जिसमें ज़मींदारोंकी ज़मीनें छीनकर उनपर अधिकार कर लिया गया था, मगर चीनमें भी आज यह अन्दाज़ लगाया जाता है कि

कम-से-कम दस करोड़ चीनी किसानोंने अपने सदियोंके पुराने गुलामीके जुएको अपने कन्धोंसे उतार फेंका है, और अपना संगठन करके सोवियट प्रजातन्त्रोंकी शुरूआत कर दी है। भारतमें भी यद्यपि मामला यहाँ तक नहीं बढ़ा है कि खुल्लमखुल्ला हिंसा हो, और यद्यपि अभी तक किसानोंकी दुरवस्थामें कोई सुधार नहीं हुआ है, फिर भी एक नैतिक जागरण तथा एक नया निर्भयतापूर्ण साहस दिखाई दे रहा है। इन दोनों ही बातोंसे यह प्रकट होता है कि अब ग़रीबोंके भावी दृष्टिकोणमें युगान्तर उपस्थित हो गया है। अब आगेसे भारतीय किसानको दबाकर उससे नीचतापूर्ण आत्म-समर्पण नहीं कराया जा सकता। अब वह अपने अधिकारोंको दृढ़तापूर्वक स्थापित करना और उनकी स्थापनाके लिए आपसमें एकता उत्पन्न करना सीख रहा है—वह भी ऐसे ढंगसे, जैसा करनेका उसे पहले कभी अवसर ही नहीं मिला था।

निकट-पूर्वके ईरान, ईराक़ और टर्कीके देशोंमें तथा सुदूर पूर्वके जापानमें क्रान्तिकी यह लहर अभी तक किसानोंमें ऐसे सर्वव्यापी रूपमें नहीं पहुँच सकी है, जैसे अन्य स्थानोंमें। मगर अब इस बातके चिह्न प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं कि इन देशोंमें भी जाग्रति शुरू हो गई है, और वह अधिक दिन तक रोकी नहीं जा सकती है।

इसके पहले कि मैं भारतमें घटनेवाली घटनाओंका वर्णन करूँ, आइये, ज़रा एक क्षणके लिए चीनकी हालत देख लें। चीन ऐसी यातनाएँ भोग रहा है, जैसी किसी अन्य राष्ट्रने न भोगी हैं, और न भोग सकता है; कारण यह है कि वहाँकी आबादी बहुत ज़्यादा है। यांग-सी-कियांग ह्वांगहो और उसकी सहायक नदियोंमें जो बाढ़ आई थी, उसके फलस्वरूप यह अन्दाज़ लगाया जाता है कि सब मिलाकर बीस लाख आदमियोंकी जान गई होगी, और साठ लाख आदमियोंका, केवल प्राणको छोड़कर, और समस्त सांसारिक सर्वस्व नष्ट हो गया। फिर इस साल यह बिलकुल असम्भव-सा दीख पड़ता था कि दूसरी बाढ़ आनेके पहले पिछले सालके टूटे हुए बाँध फिरसे बनाये जा सकें। ख़ैर, बहुत थोड़े वक्तमें किसी तरह यह काम पूरा किया गया। इन सब अकथनीय यातनाओंके कारण अनेकों प्रान्तोंने नानकिंगकी केन्द्रीय सरकारका शासन तोड़ फेंका है, और, जैसा मैं अभी ऊपर कह चुका हूँ, वे आजकल बग़ावत कर रहे हैं। निराशा और यातनाओंसे उत्पन्न हुई एक सर्वव्यापी क्रान्तिके द्वारा वे सोवियट प्रजातन्त्रोंके रूपमें संगठित हो रहे हैं।

हिन्दुस्तानमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना घटी है, जिसने इस देशको संसारके अन्य देशोंसे विचित्रता प्रदान की है। भारतमें किसानोंने मानव-इतिहासके सर्वोच्च सन्तोंमें से एक अत्यन्त पवित्रात्मा नेता महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें यूरोपके विरुद्ध एकदम हिंसारहित बग़ावत की है। वे ही एक ऐसे अवतार और प्रेरणोत्पादक हैं, जिन्होंने भारतके सर्वसाधारणमें ऐसी जाग्रति पैदा कर दी है, उन्हें इतना आन्दोलित कर दिया है, जितना वे इससे पहले कभी भी नहीं हुए थे; और ऐसा करनेमें उन्होंने उस समय भी, जब भारतवासी गुलामीके बन्धन तोड़ स्वतन्त्र होना चाहते थे, इस क्रान्तिकारी आन्दोलनको शान्तिपूर्ण रखनेकी सफल चेष्टा की है। इस प्रकार आज भारतवर्ष संसारके सामने अपने विशुद्ध नैतिक बलपर खड़ा है। आज तक किसी भी देशने स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए—तलवारको छोड़कर, केवल कष्टसहन द्वारा—ऐसा नैतिक बल नहीं दिखाया। यद्यपि आन्तरिक झगड़ोंके कारण आदर्श कुछ गिर गया है, और कुछ खंडित भी हो गया है, फिर भी हज़ारों पुरुष-स्त्रियोंने प्रसन्नतासे जेलके कष्ट सहकर अहिंसाकी जो सर्वव्यापी अपील की है, और समूचे भारतमें लोगोंने इस अपीलका जो उत्तर दिया है, उससे यह समझना चाहिए कि अन्तमें वह अटल रहेगा। साथ ही भारतकी इस नवीन नैतिक शक्तिने सारे संसारके हृदयोंमें खलबली पैदा कर दी है।

भारतीय किसानोंमें जो जाग्रति हुई है, उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण गुजरातके बारडोली ताल्लुक़ेकी जाग्रति है। सरदार बल्लभभाई पटेलके वीरतापूर्ण नेतृत्वमें किसानोंने

एक होकर अत्यधिक भूमि-करके ख़िलाफ़ जंग छेड़ दी। अन्तमें समझौता हुआ, जिसमें विजय किसानोंके पक्षकी ही हुई। शायद कई शताब्दियोंके बाद भारतके गाँवोंमें किसानोंकी ऐसी सर्वांगपूर्ण विजय हुई होगी। भारतके अन्य सभी प्रान्तोंके ग्रामीणोंने इस घटनाको अच्छी तरह समझा, और अन्तमें उन्हें यह ज्ञात हो गया कि सामूहिक कार्यमें कितना बल होता है। लगभग एक साल पहले युक्तप्रान्तके किसानोंने भी इसी उपायसे लगानमें काफ़ी छूट प्राप्त की थी। किसानोंको अपने संगठनमें और अपनी सुरक्षाके लिए मुख्य सहायता कांग्रेसके नेताओंसे मिलती है। यद्यपि वे कुछ समयके लिए उनसे अलग कर दिये गये हैं, परन्तु किसानोंने शान्तिपूर्ण उपायोंसे प्रतिरोध करना सीख लिया है, इसलिए इस बातकी सम्भावना नहीं है कि वे हिंसात्मक उपाय काममें लायँगे। जैसा मैं कह चुका हूँ, यह अहिंसाकी अपील बहुत ज़ोरदार है। यह प्राचीनतामें बौद्ध काल और बौद्ध कालसे भी परे जाती है, और आज विक्षुब्ध भारत, अपने महान दुःखों और भयंकर निराशाओंका भार लिये हुए, इसी सिद्धान्तसे शक्ति, सौन्दर्य और प्रकाश प्राप्त कर रहा है।

ग्रेट-ब्रिटेन भारतके सम्बन्धमें, अधिकांश भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध, जो ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेनेके लिए ज़ोर दे रहा है, वह वास्तवमें बड़ी भारी है। कारण यह है कि भारतवर्ष ग्रेट-ब्रिटेनसे सहस्रों मील दूर है, और उसकी सभ्यता ग्रेट-ब्रिटेनकी सभ्यतासे एकदम भिन्न है। गत महायुद्धके बादके इस युगमें भी ग्रेट-ब्रिटेन अब तक इस भावनापर भूला है कि हमने हिन्दुस्तानको फ़तह किया है, इसलिए उसपर हमारा हक़ है। आजकलके इस युगमें, समस्त सभ्य संसारके स्त्री-पुरुषोंमें, इस तरहकी भावनाका कोई युक्तिपूर्ण अर्थ बाक़ी नहीं रह गया, फिर भी ग्रेट-ब्रिटेनमें अनेक ऐसे धृष्ट लोग मौजूद हैं, जो कहते हैं—"हिन्दुस्तान पर शासन करनेका हक़ केवल हमारा है।" यद्यपि इन लोगोंने कभी हिन्दुस्तानकी शक्ल भी नहीं देखी, और न ये उसके सम्बन्धमें कुछ जानते-बूझते ही हैं।

आज इन विचारों और शक्तियोंके पारस्परिक संघर्षका फल यह हुआ है कि मामला भयंकर रूपसे अटक गया है। वायसरायने कई ऐसे कठोर आर्डिनेन्स निकाले हैं, जो क़ानूनके रूपमें व्यवहार होते हैं, और जिनसे प्रत्येक प्रान्तमें मार्शल लाकी भाँति शासन जारी है। ग्रेट-ब्रिटेन जैसे स्वतन्त्र देशमें ऐसी परिस्थितिकी कल्पना ही करना असम्भव है। पुलिसको अधिकार दिया गया है कि वह लोगोंके प्राइवेट मकानोंकी बिना वारंटके तलाशी ले सके, और लोगोंको बिना वारंटके गिरफ्तार कर सके। मुक़दमें गुप्तरूपसे किये जा सकते हैं। उच्चसे उच्चकोटिके जुर्मके लिए—ऐसे जुर्म, जो जुर्म नहीं, केवल अन्तःकरणके विश्वासकी बात हैं—ऐसी सज़ाएँ दी जाती हैं, जो निर्दयतापूर्ण हिंसात्मक जुर्मोंकी सज़ाओंसे भी कठोर हैं। इस प्रकारसे सहस्रों नवयुवक, आदर्शवादी और देशभक्त—पुरुष और स्त्रियाँ, दोनों—गिरफ्तार करके जेलोंमें बंद कर दिये गये हैं। जो इस प्रकारसे क़ैद किये गये हैं, वे यह महसूस करते हैं कि वे अपने देशके लिए ये यातनाएँ सह रहे हैं। इस प्रकारकी स्थितिमें हम और आप (इंग्लैण्ड-निवासी) भी ऐसा ही महसूस करते। फल यह है कि इस प्रतिरोधकी जड़ उससे कहीं ज़्यादा गहरी पहुँच गई है, जितनी एक साल पहले थी। राष्ट्रीयताका जोश भीतरकी ओर दबाया जा रहा है, जिससे उसकी उग्रता इतनी अधिक बढ़ गई है, जितनी पहले कभी नहीं थी। मुझे अपनी पिछली यात्रामें जो थोड़ासा समय मिला था, उसमें मैंने जो कुछ देखा और समझा, उसके अनुसार भारतकी परिस्थिति यह है। अपनी तमाम असफलताओं और त्रुटियोंके होते हुए भी आज भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेस इस सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलनकी आत्मा और प्राण है, वहाँ इस राष्ट्रीयताकी परिधि और केन्द्र है। हम ब्रिटेन-निवासियोंके लिए तमाम सवालोंका सवाल यह है—"क्या हम लोग शान्तिके इच्छुक हैं या नहीं? क्या हम फिर लड़ाईकी मनोवृत्तिको शुरू करना चाहते हैं? क्या ब्रिटिश सरकारने कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय

आन्दोलनको दबोच डालनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है, अथवा वह उसके साथ सुलह करनेको तैयार है ?"

व्यक्तिगत रूपसे मेरे लिए तो इस विषयमें कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि एक ईसाईकी भाँति मुझे जहाँ कहीं शान्ति मिलेगी, मैं शान्तिके लिए हमेशा तैयार रहूँगा।

अब मैं आपको यह समझा दूँ कि अगर ये आर्डिनेन्स अगले छै महीनेके लिए और जारी रहेंगे, तो क्या-क्या बातें ज़रूर ही होंगी :—(१) वे लोग जो अभी माडरेट या लिबरल कहलाते हैं, विरोधी दलमें जा मिलेंगे। (२) पुलिस जब इस प्रकारके दंड-विधायक कामोंमें इस्तेमाल की जायगी, तो वह नियन्त्रणसे बाहर बेलगाम हो जायगी। (३) ग्रेट-ब्रिटेनके रोज़गारको इतना धक्का पहुँचेगा, जैसा अभी तक कभी नहीं पहुँचा। लोग ख़ुद ही कोई भी ब्रिटिश चीज़ ख़रीदनेसे इनकार करेंगे। (४) उग्र क्रान्तिकारी दल, जो अहिंसाके स्थानमें हिंसात्मक उपायोंमें विश्वास रखते हैं, बराबर बढ़ते जायँगे। (५) सरकारको देशी नरेशों, ज़मींदारों और साम्प्रदायिक मुस्लिम दलोंकी सहायतापर अधिकाधिक निर्भर करना पड़ेगा, जिसके फलस्वरूप हिन्दुस्तान एक सिरेसे दूसरे सिरे तक दो भागोंमें बँट जायगा।

जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, मुझे तो यही तसवीर —हालत—दीख पड़ती है। वास्तवमें परिस्थिति बहुत ख़राब—अन्धकारमय—दिखलाई देती है। यहाँ ग्रेट-ब्रिटेनमें अनेक कारणोंसे लोग महात्मा गान्धीकी विश्वसनीयतामें एकदम अविश्वास करने लगे हैं। यह बात परिस्थितिको और भी अधिक अन्धकारमय बनाती है। यह ग़लत विचार संसारमें विचित्र रूपमें फैलाया गया है, और मुझे भय है कि इसके फैलानेके लिए प्रेसोंमें प्रोपेगैण्डा किया गया है। यूरोपके इस आतंक कालमें प्रेसों—अख़बारों—का प्रभाव इतना अधिक है, जिसका अनुमान करना कठिन है, और यहाँ इंग्लैण्डमें तो अख़बारोंके पीछे बहुत बड़े-बड़े आर्थिक स्वार्थ हैं, जो सदा ऐसे मौक़ेकी टोहमें रहते हैं। उन्हें इस प्रकारका एक अवसर रोमकी घटनामें मिल गया। रोमके उस झूठे 'इंटरव्यू' ने बेहद नुक़सान पहुँचाया। जो कोई भी महात्मा गान्धीको जानता है, वह इस इंटरव्यूकी असत्यताको एक क्षणमें समझ लेगा, मगर इस असत्य प्रचारसे नुक़सान तो हो ही गया। महात्मा गान्धी संसारमें एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो कभी एक भी झूठी बात मुँहसे नहीं निकाल सकते। उन्हींपर इस इटेलियन इंटरव्यूमें विश्वासघातक कार्य करनेका इल्ज़ाम लगाया गया था। यह कार्यवाही वैसी ही थी, जैसे कोई छिपकर निर्दयतासे किसीकी पीठमें छुरी मारे; क्योंकि यह तब प्रकाशित हुआ, जब महात्माजी इटलीसे चल चुके थे, और जहाज़पर थे, अतः इस झूठी ख़बरको प्रचार करनेके लिए पूरे दो दिनका समय मिल गया। जब स्वयं महात्माजीने इसका प्रतिवाद किया, तब तक यह बात प्रत्येक देशमें सत्य मान ली गई थी! बस, उसी क्षणसे स्थिति बराबर ख़राब होती गई, और आज जब वे जेलके कष्ट सह रहे हैं, तब हज़ारों आदमी उनका उपहास कर रहे हैं और मज़ाक़ उड़ा रहे हैं। संसारके महान पुरुषोंके साथ जैसी बातें सदासे होती आई हैं, वैसी ही आज उनके साथ हो रही हैं; क्योंकि विशुद्ध पवित्रता और सत्कर्मोंके भाग्यमें ही यह लिखा है कि वे यन्त्रणाओंकी भट्टीमें यहाँ तक तपाये जायँ कि उनका कुन्दन एक बार नहीं, सात बार तक तपकर विशुद्ध हो जाय। अतः उनके लिए तो हमें आशा और प्रार्थना करनी चाहिए कि इस बुराईसे अच्छाई पैदा हो, और यहाँ ग्रेट-ब्रिटेनमें हम लोगोंको चाहिए कि हम अब चेतें, और कुछ काम करें; नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि महात्मा गान्धी और उनके अनुगामियोंके साथ ही नहीं, बल्कि भारतके सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ जो निर्दयतापूर्ण अन्याय हो रहा है, हमारी उपेक्षासे उसके पापका हिस्सा हमारे सिर भी आ पड़े। हमारा यह कर्तव्य है कि हम इस पापके भागी होनेसे बचें।

[विलायतके सुप्रसिद्ध केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयके स्त्री-पुरुषोंके सामने भारतभक्त श्रीयुत ऐण्ड्रूज़ने भारतके सम्बन्धमें एक व्याख्यान दिया है। उपर्युक्त लेख उसी व्याख्यानका सार है, जो उन्होंने 'विशाल-भारत'को लिख भेजा है। —सम्पादक]

कवीन्द्रके साथ ईरानको

श्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय

गत मावमें कवीन्द्र रवीन्द्रनाथसे एक दिन सुना कि ईरान-सरकारने उन्हें फिरसे अपने देशमें आनेका निमन्त्रण दिया है। कविकी उम्र सत्तरसे ऊपर हो चुकी है। तन्दुरुस्ती भी अच्छी नहीं रहती, उसपर से इतना लम्बा दूर-दराज़का खुश्की सफ़र! इसलिए कोई भी उन्हें नहीं जाने देना चाहता था; मगर यह मालूम हुआ कि हवाई-जहाज़से यह खुश्की सफ़र आसानीसे तै हो सकता है। वक्त भी कम लगेगा, और कलकत्तेसे बुशायर (अबूशहर) तक डच हवाई-जहाज़ोंकी वाक़ायदा हफ्तेवार सर्विस भी है। कवि इन्हीं हवाई-जहाज़ोंके द्वारा यात्रा करना चाहते थे। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं भी उनके साथ चलूँ। फ़ारसकी यात्रा, हवाई सफ़र और कविका साथ। नेकी और पूछ-पूछ! मैं फौरन तैयार गया हो।

एरोप्लेनकी आवाज़, उसके झकझोरे और हिलना-डोलना मामूली आदमियोंको ही सहना मुश्किल होता है, इसलिए कविकी वृद्धावस्था और तन्दुरुस्ती देखकर लोग तरह-तरहकी बातें करने लगे; मगर कविने किसीकी बातपर ध्यान न देकर स्वयं हवाई-जहाज़की यात्राका अनुभव करना निश्चित किया, और एक दिन एक डच एरोप्लेनपर डच कौंसल और उनकी स्त्रीके साथ उड़कर कलकत्तेके ऊपर चक्कर लगाये। इस हवाई-जहाज़के पाइलेट (चलानेवाले) अटलांटिक महासागर पार करनेमें ख्याति पानेवाले सुप्रसिद्ध उड़ाके फान डाइक (Von dyck) थे। इस अनुभवके बाद कवीन्द्रने एरोप्लेनसे ही जाना निश्चित किया।

रायल डच एयरमेल (K. L. M.) कम्पनीवालोंसे यह तै हुआ कि वे हम लोगोंको बुशायर तक पहुँचा देंगे। पहले वे हम चार आदमियोंको—यानी कवीन्द्र, उनकी पुत्र-वधू श्रीमती प्रतिमा देवी, कवीन्द्रके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री अमिय चक्रवर्ती तथा मुझे—एक ही एरोप्लेनपर ले जानेको राज़ी हो गये, लेकिन बादमें एकाएक उन्होंने ख़बर दी कि उनके किसी प्लेनपर दो सवारियोंसे ज्यादा नहीं जा सकतीं। इसपर कविने विरक्त होकर एरोप्लेनसे जानेका इरादा छोड़ दिया, और बम्बईके ईरानी कौंसिलको जहाज़से जानेका बन्दोबस्त करनेको लिखा। यह सुनकर मुझे बड़ी निराशा हुई। बादमें मालूम हुआ कि डच कम्पनी कवीन्द्रको ले जानेके विज्ञापनका अवसर नहीं छोड़ना चाहती। कुछ दिन तक लिखा-पढ़ी होती रही। जावाको तार दिये गये। बादमें यह ख़बर मिली कि कम्पनी दो बारमें यानी ४ थी एप्रिलको एक आदमीको और ११ वीं एप्रिलको तीन आदमियोंको ले जानेको तैयार है। एक आदमी आगे जाकर रास्तेका तथा गन्तव्य स्थानका बन्दोवस्त ठीक करेगा, इसलिए यह तै हुआ कि मैं पहले प्लेनसे ४ एप्रिलको चलूँ, और बाक़ी लोग ११ को रवाना हों।

× × ×

४ एप्रिलको सवेरे ३ बजे रातसे उठकर तैयार हुआ। इतने सुबह उठनेका अभ्यास नहीं है, इसलिए उस वक्त भला कुछ खाना-पीना कैसे होता? फिर भी मार-पीटकर दो-तीन सन्देश और एक प्याली काफी गलेके नीचे उतारकर जल्दी-पल्दी मोटरपर बैठ दमदम एरोड्रोमकी तरफ़ भागा। दमदम कलकत्तेसे कुछ मीलपर कलकत्तेका एक उपकूल है। यहींपर हवाई-जहाज़ोंका अड्डा बनाया गया है। एरोप्लेन सवेरे पाँच बजे छूटनेवाला था। अभी तक पौ नहीं फूटी थी, उसपर कोहरा अलग छाया हुआ था, इसलिए एरोड्रोमका रास्ता मिलना ही मुश्किल हो गया। ख़ैर, इधर-उधर थोड़ा-बहुत चक्कर काटकर एरोड्रोम पहुँचे। उस वक्त एरोड्रोममें लोग अस्तबलका दरवाज़ा खोलकर एरोप्लेनको

बाहर निकालनेकी कोशिश कर रहे थे। अस्तबलके लम्बे-चौड़े, हाहाहूती घरमें एक और भी छोटा हवाई-जहाज़ बन्द था। ख़ैर, थोड़ा ठेल-ठालकर डच कम्पनीका पुष्पक विमान बाहर निकाला गया। यह फोकार कम्पनीका बनाया हुआ F. 7 टाइपका केवल दो पंखवाला (monoplane) मुसाफिरी प्लेन है। गत यूरोपियन महायुद्धमें जर्मन लोग इसी कम्पनीके बनाये एरोप्लेनोंसे आये दिन ब्रिटिश और फ्रेंच एरोप्लेनोंका नाश किया करते थे। रायल डच एयरमेलकी शोहरत बहुत-कुछ इन्हीं प्लेनोंके कारण है। डच उड़ाके भी जर्मनोंकी भाँति अपनी होशियारी और स्थिर बुद्धिके लिए संसारमें मशहूर हैं।

यह प्लेन अपेक्षाकृत छोटा था। कवीन्द्र जिस प्लेनमें जानेवाले थे, वह F. 12 टाइपका, इससे कहीं बड़ा और कहीं ज्यादा आरामदे है। जहाज़का रंग नीला था, जिसपर सुनहरे अक्षरोंमें नाम लिखा था। अगल-बगल एक जोड़ ख़ूब चौड़े पंख थे, और पीछे एक छोटे-मोटे पालवाली दुम। देखनेसे यही मालूम होता था, मानो नीले रंगकी एक बड़ी गृद्धिनी पंख मारती हुई उड़ रही है। जहाज़में तीन इंजन थे। नीचे दो पैर-से लटक रहे थे, जिनमें दो बड़े-बड़े बैलून टायरके पहिये लगे थे। दुमके नीचे लंगरके फलकी तरह लोहेकी एक चीज़ लगी थी, वही हवाई-जहाज़का लंगर था। दोनों पहियों और इस लंगर—इन्हीं तीनोंके सहारे जहाज़ ज़मीनपर खड़ा होता है। भीतर सामनेकी तरफ़ 'कॉकपिट' होता है, जिसमें बैठकर पाइलेट जहाज़ चलाता है। नाना प्रकारके गेज, मीटर आदि हैंडिलमें लगे हुए हैं। पाइलेटके सामने एक बोर्डमें एक कागज़ और पेंसिल लगी रहती है; क्योंकि जो कुछ बातचीत करनी होती है, वह लिखकर या इशारेसे ही हो सकती है। इंजनकी आवाज़में कुछ कहना-सुनना तो नामुमकिन ही है। बोर्डके ऊपर शकुन चिह्नस्वरूप एक आरंग ओटंग (सुमात्रा-जावाका बनमानुस) की लाल मूरत खड़ी हुई अंगूठा दिखा रही है। जहाज़में दो हिस्से थे; एकमें माल भरनेकी जगह, और दूसरेमें यात्रियोंके बैठनेका बन्दोबस्त। यात्रियोंके कमरेमें दो लाइनोंमें चार बेंतकी कुरसियाँ पड़ी थीं। पाइलेटके कमरेकी ओर एक कुरसीके सामने बेतारका तार लगा था। वहाँपर वायरलेस आपरेटर हरवक्त कानमें फोन लगाये बैठा रहता है। कमरेके दोनों ओर सेलूलाइडकी बनी हुई खिड़कियाँ थीं। ऊपरमें रेलगाड़ियोंकी भाँति टोपी आदि रखनेकी छोटी-छोटी टाँडें थीं। पीछे एक छोटा बाथरूम और सामान रखनेकी कोठरी थी।

हिन्दोस्तानसे बाहर जानेके लिए हवाई-जहाज़ोंकी तीन लाइनें हैं। अंगरेज़ी 'एयरवेज़ कम्पनी' के हवाई-जहाज़ कराचीसे लन्दन तक हर हफ्ते जाते हैं। इन जहाज़ोंका किराया भारी-भरकम और चाल बहुत सुस्त है। कलकत्तेसे अगर डच या फ्रेंच हवाई-जहाज़ोंको चिट्ठी दी जाय, तो वह अंगरेज़ी हवाई-जहाज़की बनिस्बत चार दिन पहले लन्दन पहुँचेगी, मगर ऐसा होनेसे अंगरेज़ी कम्पनीका चार ही दिनमें दिवाला निकल जायगा, इसलिए फ्रेंच और डच जहाज़ोंको इस देशसे डाक ले जानेकी आज्ञा नहीं है। डच रायल एयरमेलके जहाज़ हर हफ्ते जावासे रंगून, कलकत्ता, जोधपुर, कराची होकर एम्सटर्डम (हालैंड) जाते हैं। तीसरी लाइन फ्रेंच हवाई जहाज़ोंकी है, जो प्रति पन्द्रहवें दिन इन्डो-चाइनामें सैगनसे रंगून, कलकत्ते आदिके रास्ते मार्साई (फ्रांस) जाते हैं। फ्रेंच जहाज़ साइज़में सबसे छोटे, मगर चालमें सबसे तेज़ हैं। डच जहाज़ भी प्रायः उतनी ही तेज़ीसे जाते हैं, मगर वे सबसे ज्यादा निरापद और समयके हिसाबसे सबसे अधिक नियमित मशहूर हैं।

पाँच बजे खलासियोंने जहाज़को बाहर निकालकर खड़ा किया। कोई दस मिनट बाद डच कम्पनीके एजेन्ट ड्रेसिंग गौन पहने चट्टी सटकाते हुए आ मौजूद हुए। एक कर्मचारीने मेरा असबाब तौला। पन्द्रह किलोग्राम (लगभग १५ सेर) असबाब बिना महसूल

लिया गया; बाक़ीपर कलकत्तेसे बुशायर तकका ६) फी सेर किराया लगा। इतनेमें जहाज़के कर्मचारी भी आ गये। एजेन्ट साहबने उनसे मेरा परिचय कराया, और उन्होंने मेरी स्त्रीसे जहाज़का भीतरी भाग देखनेका आग्रह किया। इसपर मेरी स्त्री तथा अन्य बन्धुओंने जहाज़पर चढ़कर उसे अच्छी तरह देखा।

इतनेमें जहाज़के कर्मचारियोंने इंजन आदिकी परीक्षा शुरू की। प्रत्येक जहाज़में पाइलेट, सहकारी पाइलेट, मैकेनिक (यन्त्र-परीक्षक) और उसका सहकारी—चार आदमी रहते हैं। सहकारी मैकेनिक बेतारके तारका काम भी करता है। जाँच करनेपर मालूम हुआ कि बाईं तरफ़के इंजनके प्लगमें कुछ गड़बड़ है। मैकेनिकोंने फौरन उसे खोलकर बदल डाला। अब तीनों इंजन एक-एक करके पूरे ज़ोरसे चलाये गये। इंजनोंकी आवाज़से कान फटने लगे। तीनों प्रोपेलरोंकी आँधीसे धूल और पत्तोंका बवंडर उठने लगा। डच इंजनोंके चलाने—स्टार्ट करने—का तरीक़ा भी अनोखा है। प्रत्येक इंजनमें तोपके मोहरेकी तरह एक Starting Chamber होता है। इसी मुँहमें बारूदका एक कार्तूस पहना देते हैं। इस कार्तूसमें एक डोरी लटकती रहती है। मैकेनिक इस डोरीको पकड़कर ज़ोरसे चिल्लाता है—O.K. (सब ठीक)। पाइलेट भीतरसे चिल्लाकर जवाब देता है—O.K.। मैकेनिक एक बार फिर चिल्लाता है—Hold tight (कसकर पकड़ो)। भीतरसे पाइलेट जवाब देता है—Hold tight। बस, मैकेनिक डोरी खींच लेता है, कार्तूस चलता है, और इंजन स्टार्ट हो जाता है।

इंजन और कल-पुर्जोंकी जाँच हो चुकनेपर, सबसे विदा लेकर, मैं जहाज़पर सवार हुआ। दरवाज़ा ज़ोरसे बन्द कर दिया गया। मैं पहले-पहल हवाई-जहाज़पर चढ़ा था, इसलिए कौतूहलका कोई ठिकाना ही न था। यात्रा शुरू हुई। पहले जहाज़ गड़गड़ करके मैदानकी दूसरी ओर ज़मीनपर चला, क्योंकि हवाई-जहाज़ हवाकी विपरीत दिशाको छोड़कर उड़ नहीं सकता। इसलिए हरएक एरोड्रोमकी चोटीपर हवाका रुख़ बतानेका यन्त्र लगा रहता है। मैदानमें घूमकर जहाज़ हवाके रुख़के विपरीत खड़ा हुआ। तीनों इंजन भयंकर शब्दके साथ गरज उठे। इसी बीचमें सहकारी मैकेनिकने मेरे पास आकर एक खिड़की खोल दी और कहा—"रूमाल उड़ानेके लिए।"

हवाई-जहाज़ पहले ज़मीनपर ज़ोरसे दौड़ा, फिर ऐसे झोंके लेने लगा, मानो घोड़ा सरपट दौड़ रहा हो। उस समय वह ज़मीन छोड़ रहा था—रह-रहकर ज़मीन छोड़ देता तथा फिर ज़मीनपर टिक जाता था। ज़रासी देरमें सब झोंके बन्द हो गये। नीचे देखा, तो ज़मीनसे बीस-तीस फीट ऊपर थे। ज़रासा और ऊपर उठनेपर सारा दमदम एक अजीब नज्ज़ारा दिखाने लगा। चारों तरफ़, खेत, ज़मीनें, पेड़ोंकी क़तारें, घर-झोंपड़े—सभी चीजें बौनी-सी दीख पड़ने लगीं। एकाएक ऐसा जान पड़ा, मानो खेत-ज़मीन सभी करवटके बल हो गये हों। बहुत नीचे ऐरोड्रोममें अनेकों रूमाल और चादरें हिल रही थीं, और मेरा छोटा भाई दोनों हाथोंसे इशारा कर रहा था। देखते-ही-देखते बहुत ऊपर उठ गये, और गंगाकी ओर बढ़े। कोहरेका झीना आवरण ओढ़े कलकत्ता शहर सोता पड़ा था।

ज़मीनसे हवाई-जहाज़की ऊँचाईका अन्दाज़ लगाना मुश्किल है। पूछनेकी भी सूरत न थी, क्योंकि इंजन ऐसे ज़ोरोंसे गरज रहे थे कि उनकी आवाज़से बचनेके लिए सभी कानोंमें रूई ठूँसे थे। फिर भी पहाड़पर चढ़नेके अन्दाज़से कोई दो हज़ार फीटकी ऊँचाईसे हम लोगोंने गंगा पार की। दूरपर बालीका पुल दीख पड़ा। गंगाकी धार नागिनकी तरह बलखाती हुई कोहरेमें गायब हो गई। गंगा पार होकर थोड़ा आगे बढ़नेपर खेत और ज़मीनें शतरंजके खानों-सी देख पड़ती थीं।

× × ×

तीनों इंजनोंकी भयंकर आवाज़के साथ जहाज़ थर-थर काँपता था। बीच-बीचमें हवाके झोंकोंमें

पड़कर वह हिंडोलेकी तरह ऊपर-नीचे जाता-आता था। बहुत नीचेपर छोटे-छोटे तालाब, खेत, मैदान—जिनमें बीच-बीचमें चौपायोंका झुंड चींटियोंकी पंक्तिकी तरह धूल उड़ाता जाता था—नज़र आता था। जहाँपर पेड़-पत्ते ज़्यादा थे, वहाँ गाढ़ा हरा रंग दिखलाई पड़ता था। बहुत ऊपरसे नीचेकी ओर ताकनेमें कुछ और ही दृष्टिकोणसे देखना पड़ता है।

सुना था कि हवाई-जहाज़ रेल-लाइनके साथ ही साथ जाता है, मगर बहुत आँख गड़ाकर देखनेपर भी रेलवे लाइन कहीं दिखाई न पड़ी। हाँ, बीच-बीचमें ग्रैंड ट्रंक रोड दिखाई पड़ जाती थी। एक बार एक छोटा स्टेशन भी नज़र पड़ा था। सहकारी मैकेनिक साहब बेतारका तार छोड़कर आये और काग़ज़के बने हुए डिक्सी गिलासमें फ्लास्कसे गरमागरम चाय ढालकर मेरे पास लगे हुए ब्रैकेटमें अटका गये। फिर कुछ सैन्डविच (पकौड़ियाँ) और एक टुकड़ा केक भी खानेको दे गये।

इन लोगोंका यह खाना-पीना सारा दिन चलता रहता है। खाने-पीनेके समय-असमयका विचार न करके बिना दूध-चीनीकी गरम चाय,—जो बादमें ठंडी हो जाती है,—रोटी, मक्खन, केक, बिस्कुट, डब्बोंमें बंद मछली, विलायती मटर, केला, नारंगी, अंडे, ठंडा मांस इत्यादि चीज़ोंका भोग लगाया करते हैं। ज़रा देरमें वही महाशय काग़ज़पर यह प्रश्न लिखे हुए आ मौजूद हुए कि मेरा वज़न कितना है? पूछनेपर मालूम हुआ कि वे हिसाब लगा रहे हैं कि जहाज़पर कुल कितना बोझ है। मैंने लिखकर पूछा कि कितनी ऊँचाईपर जा रहे हैं। उन्होंने पाइलेटके यहाँ जाकर पता लगाकर बताया—१,१०० मीटर, यानी लगभग ३,५०० फीट। इतना ऊपर उठनेपर भी गरमीमें विशेष कमी नहीं मालूम होती थी।

देखते-देखते नीचेके कछारका रंग हरे और धूसर वर्णसे बदलकर लाल हो गया। पेड़-पत्ते भी कम हो गये। बीच-बीचमें ताल-तलैयाँ ऐसी मालूम होती थीं, जैसे ताड़के पेड़ोंके फ्रेममें जड़ा हुआ आईना चमक रहा हो। उनके पास खपरैलके झोंपड़ोंके गाँव बच्चोंके खेलके घरों-से दिखाई पड़ते थे। ज़मीन भी कहीं जोती-बोई थी और कहीं ऊसर। जान पड़ा कि वीरभूमिका ज़िला पार कर रहे हैं। थोड़ा आगे बढ़नेपर छोटी-बड़ी पहाड़ियाँ दीख पड़ने लगीं। उसके बाद बड़े-बड़े पहाड़ नज़र आये। दूरपर बालूसे भरी हुई नदी दिखाई देती थी। एक पहाड़ देखकर अनुमान हुआ कि काशीपुर-पंचकोटका पहाड़ है। उसके बाद बारी-बारीसे पहाड़, पहाड़ियाँ, वन, जंगल और कहीं-कहींपर कम आबाद हिस्से मिलते रहे। बीच-बीचमें बालूके वक्षपर चाँदीकी रेखा-सी बलखाती हुई एक-आध छोटी नदियाँ दिखाई दे जाती थीं। बादमें सभी एकसा जान पड़ने लगा, शायद इसलिए कि हजरते इंसानकी करामातके कोई निशान नज़र न आते थे।

नौ साढ़े नौ बजे, पहाड़ोंसे घिरी हुई एक बड़ी नदी दिखाई दी। इतने ऊपरसे देखनेपर भी इस जगहको न पहचानना नामुमकिन था, क्योंकि सोन नदी और रोहतास पहाड़को एक बार देखनेके बाद भूलना असम्भव है। नदीके समीप हमारा जहाज़ किसी कारणसे नीचे उतर आया। अब तो गाय-भैंसोंके बाड़े, नदी-तटकी बालूपर चरवाहे लड़कोंकी दौड़ा-दौड़, जलमें लोगोंका तैरना और औरतोंका कपड़ा धोना—सभी चीज़ें ख़ूब साफ़ दिखाई पड़ने लगीं। सोनके बालू-भरे विशाल वक्षपर स्वच्छ जलकी धारा बह रही थी। दूसरे तटकी ओर पर्वत-श्रेणी हमारे जहाज़से ऊँची थी। इतनी देर तक नीचे पृथ्वीको एक अपरिचित भावसे देखनेके बाद सहज भावसे ऊपरकी ओरसे देखनेमें आँखोंमें ठंडक-सी पहुँची। पुष्पक रथपर देवताके समान बैठनेसे मनमें एक प्रकारके बड़प्पनके भाव ज़रूर आते हैं, मगर साथ ही समस्त परिचित जगतसे एक प्रकारके विच्छेद-भाव आकर दिलमें एक बेचैनी-सी पैदा कर देते हैं। सच है, उच्च पदके साथ अशान्ति भी काफ़ी होती है।
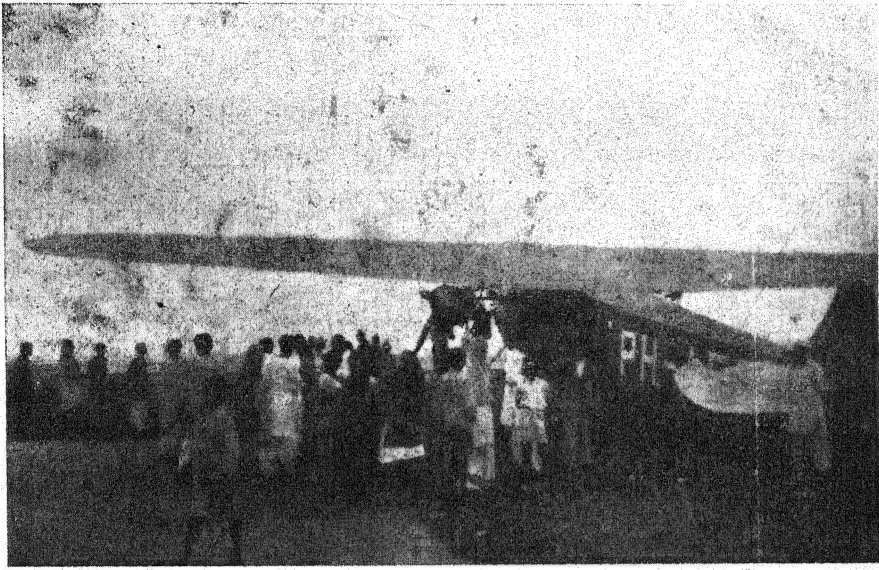
दमदम ऐरोड्रोम। यात्राके पहले लेखक प्लेनके सामने खड़ा चाय पी रहा है

नदी पार करनेके बाद जहाज़ धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। इधर इस तरहसे पहाड़-पर-पहाड़ आने लगे, मानो उनका अन्त ही नहीं। प्रत्येक पहाड़के बाद थोड़ीसी समतल भूमि और उसके बाद फिर उससे भी ऊँचा पहाड़। मालूम होता था कि दैत्योंका ज़ीना हो। ख़ैर, जहाज़ने ऊपर उड़कर इन पहाड़ोंको पार किया। एक बार फिर मैदान और समतल भूमि दिखाई दी। जगह-जगह खपरैलोंके मकानोंके ग्राम और दो-एक छोटे-मोटे शहर तथा एक-आध छोटी नदियाँ भी मिलीं। ग्यारह बजे यमुनाकी नीली धारा दीख पड़ी। उसे पार करते समय दाहनी ओर यमुनाका पुल और इलाहाबादका क़िला नज़र आया। पार होते ही इलाहाबादके म्योर-कालेजका क्लाक-टावर, खुशरोबाग़ और अन्य अनेक चिरपरिचित चीज़ें देखीं। कुछ क्षणमें इलाहाबाद पीछे छूट गया। सामने आकाशमें और भी ऊँचाईपर कोई चीज़ उड़ती हुई नज़र आई। मैं सोचने लगा कि वह कोई दूसरा जहाज़ है, या कोई चिड़िया होगी। इतनेमें इंजनकी आवाज़ एकदम कम हो गई, और वह चीज़ भी ग़ायब हो गई। नीचे देखा, तो जान पड़ा, एक एरोड्रोम धीरे-धीरे आगे बढ़ा चला आ रहा है। धीरे-धीरे जहाज़ ज़मीनकी ओर उतरने लगा। एरोप्लेनका नीचे उतरना बड़े आरामका है। न हिलता-डोलता है, न धक्के या झोंके लगते हैं। इंजन बंद होनेसे आवाज़ भी नहीं होती। जहाज़के ज़मीनपर लगनेके ठीक पहले तक प्लेन सरसर करके उतर आता है। ठीक ज़मीनपर लगते वक्त इंजन फिर चलाया जाता है। उसके बाद ज़मीनपर टिकनेके साथ ही बड़े ज़ोरके धक्के और झोंके लगते हैं। गड़गड़ाहटकी आवाज़ होती है, और जहाज़ घोड़ेकी तरह कूदता है। ज़रा ही देरमें दोनों पहिये ज़मीनपर लगकर एकसे दौड़ने लगते हैं, और ठीक जगहपर पहुँचते ही इंजन बन्द कर दिया जाता है, फिर जहाज़ खड़ा हो जाता है।

इलाहाबादमें बड़ी गरमी थी। एरोड्रोम शहरसे दस मील दूर बमरौली गाँवमें एक बड़े मैदानमें बना है। जहाज़से नीचे उतर, थोड़ी दूर पैदल चलकर, मैं पैरोंको ठीक करने लगा; इतने ही में ललित भैया (डा० ललितमोहन वसु) खाने-पीनेका सामान लिए हुए आ

मौजूद हुए। उनके मोटरपर बैठकर हम लोग खाद्य-पदार्थोंका सद्व्यवहार करने लगे, तब तक देखा कि एक मटमैले लाल रंगका एरोप्लेन भी वहाँ आ उतरा। मालूम हुआ कि यह फ्रेंच एयर ओरियन्ट लाइनका

बुशायरका ऐरोड्रोम
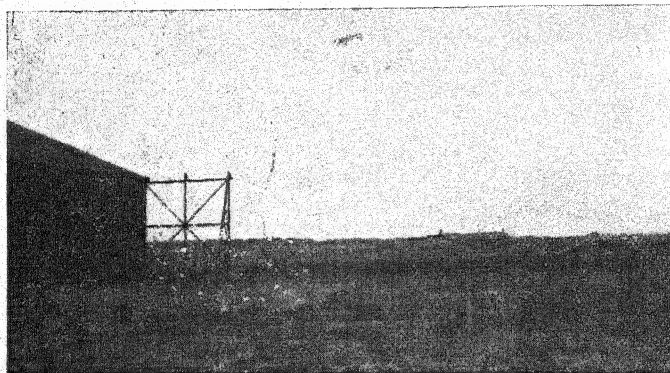
ऐरोप्लेन है, जो सैगन (इन्डो-चाइना) को जा रहा है। शायद यही प्लेन था, जो थोड़ी देर पहले मुझे आकाशमें उड़ता दिखाई दिया था। खाना समाप्त करके ललित तथा अन्य बन्धुओंको मैंने भीतरसे जहाज़ दिखलाया। इतने ही में इंजन चलने लगा। मैकेनिक साहबको दो उँगलियाँ ऊपर उठाये हुए देखकर समझ गया कि सब ठीक है। खैर, मैं भी सवार हो गया, और जहाज़ फिर चला।

× × ×

नदी-नद, खेत, ऊजड़ मैदान, शहर और गाँवोंको नीचे छोड़कर जहाज़ हू-हू करता हुआ, तूफ़ानकी तरह, दौड़ने लगा। ऊपर हवाका रुख़ विरुद्ध दिशामें था, इसलिए जहाज़ नीचेके ही स्तरमें (तीन-चार हज़ार फीटकी ऊँचाईपर) जा रहा था। सुना कि सहकारी मैकेनिक साहब बेतारके तारसे देश-भरके हवाघरों (मेटिऑरॉलाजिकल आफिसों) से हवाकी अवस्थाके सम्बन्धमें पूछ-ताछ कर रहे है। एक बार एक बड़ी झीलके समान कोई चीज़ दिखाई दी, और सुदूर क्षितिजपर पहाड़ोंकी अस्पष्ट छाया भी नज़र आई। झीलके चारों तरफ़ सरल रेखाओंकी भाँति नाले थे। मालूम हुआ कि वे शायद आबपाशीकी नहरें हैं। इन नहरोंके दोनों ओर हरे खेत थे, और उनके बाद बड़े भारी मैदान, जिनमें असंख्य गायें-भैंसें चरती घूमती नज़र आती थीं। बीच-बीचमें खेतोंकी फ़सल कटी रखी थी। ये स्थान धूपमें झरे-पोंछे आँगनकी तरह चमचमा रहे थे। हवाका रुख़ विपरीत होनेसे जहाज़ बहुत नीचे उतर आया था। अब लोगोंके अस्पष्ट चेहरे भी दिखाई देने लगे। वे लोग भी हमारे जहाज़की तरफ़ ताकते थे, और एक दूसरेको ऊपर इशारा करके जहाज़ दिखाते थे। अब तक मैं भी ऊपर ऐरोप्लेन देखा और दिखाया करता था। यह पहला ही मौक़ा था कि दर्शकसे दृष्टव्य श्रेणीमें आया था।

गायों और भेड़ोंके झुंड ऐरोप्लेनकी आवाज़ सुनकर, भड़ककर, चारों ओर भागते थे। ऊपर देखनेकी उनमें बुद्धि नहीं जान पड़ती, मगर इस मामलेमें भैंसें बहुत गम्भीर जान पड़ीं। उनमें अधिकांश मुँह उठाकर अपनी साथिनोंकी घबराहटको देखतीं, और फिर गम्भीर भावसे चरने लगती थीं, बाक़ी मुँह भी ऊपर नहीं उठाती थीं।

धीरे-धीरे नीचेकी मिट्टीका रूप-रंग बदलने लगा। पेड़-पौदे नदारद होने लगे। छोटे-बड़े पहाड़ भी मिलने लगे। मालूम हुआ कि राजपूतानेकी सीमामें प्रवेश कर रहे हैं। अब आदमियोंकी पगड़ियों और स्त्रियोंके रंगोंका बाहुल्य दिखाई देने लगा। ऊपरसे खेतोंके बीच-बीचमें उज्ज्वल, लाल, नारंगी रंगके घाँघरे पहने और गहरे नीले रंगके दुपट्टे ओढ़े स्त्रियोंका दल बहुत सुन्दर दीख पड़ता था। धीरे-धीरे पहाड़ोंकी संख्या बढ़ने लगी। ये पहाड़ अजन्तासे इलोरा जाते समय इन्ध्याद्रिके पहाड़ोंके समान समतलपृष्ठ
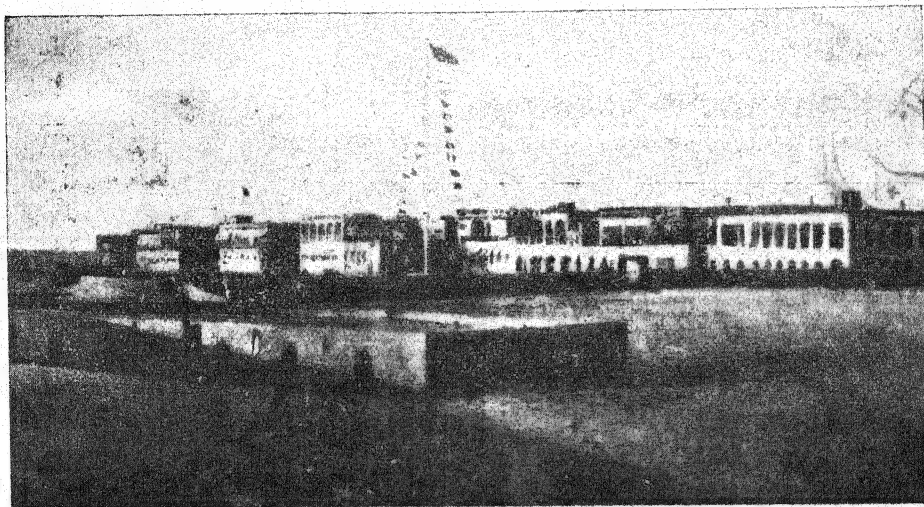
बुशायरमें ब्रिटिश राजदूतका भवन। हालमें यह ब्रिटिश झंडा उतार दिया गया है

और श्रेणीवद्ध थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो एकके बाद एक समुद्रकी लहर जमकर पत्थर हो गई हो। दो-चार ऊँट भी दिखाई दिये। कई बार पहाड़ोंकी गोदमें, बड़े-बड़े पत्थरोंके ढोकोंमें, छिपी हुई नीले पानीकी कई छोटी-बड़ी नदियाँ भी दिखाई दीं। एक ऐसा पहाड़ मिला, जिसकी चोटीसे लेकर तलेटी तक पुराने, काले, काई लगे हुए मन्दिरों और मठोंसे ढँकी थी। प्राय: पाँच बजे शामको दूरसे ही जोधपुरका क़िला और उसके नीचे बसा हुआ शहर दिखाई दिया। पाँच बजे जोधपुर जा उतरे। इलाहाबादसे जोधपुर तक हवाके बहुत तेज़ होने और विपरीत दिशामें बहनेके कारण जहाज़ बहुत हिलता-डुलता था, और हवाके बगूलोंमें पड़कर ऊपर-नीचे भी गिरता-उठता था। ऐरोप्लेनकी भाषामें इसे Very bumpy journey कहते हैं। एकाएक नीचे उतरनेका अनुभव कोई विशेष आरामदे नहीं है। जान पड़ता है कि जैसे पैरके नीचेसे सब कुछ खिसक गया हो, और शरीरका निचला भाग मानो नीचे धसनेवाला हो। समुद्रमें तूफ़ानके झोंके खाते हुए जहाज़से उतरकर जब कड़ी ज़मीनपर पैर रखते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है, मानो ज़मीन भी हिलती-डुलती हो। जोधपुरमें हवाई-जहाज़से उतरनेपर भी ठीक वैसा ही अनुभव हुआ। मेरे उतरनेके बाद ही पाइलेटने जल्दीसे आकर पूछा—"कहिये, क्या बड़ी bumpy journey (धचकेवाली यात्रा) थी? आपको यह पहला ही साबक़ा है, तबीयत तो ख़राब नहीं मालूम होती?" मैंने कहा—"नहीं, सो कुछ बात नहीं।" इतनेमें डच कम्पनीके जोधपुरके एजेन्ट आ मौजूद हुए। पाइलेट साहबने मुझे उनके मोटरपर बिठाकर होटल पहुँचा दिया। रातमें ऐरोप्लेन नहीं चलता, इसीलिए वहाँ राज्यकी ओरसे यह होटल खुला है। होटलका इन्तज़ाम बहुत बढ़िया है, मगर रातमें गरमी बहुत होनेसे अच्छी तरह नींद नहीं आई।

सबेरे साढ़े चार बजे अर्द्धनिद्रित अवस्थामें ही एरोड्रोम पहुँचा। चारों तरफ़ सन्नाटे और अन्धकारका राज्य था। मैदानमें मेरा प्लेन, एक अंगरेज़ी फौजी प्लेन और एक विदेशी प्लेन खड़े थे। इंजन चलानेपर मालूम हुआ कि हमारे प्लेनके बीचका इंजन बहुत Miss कर रहा है। मैकेनिक और उनके सहकारी लोग इंजन दुरुस्त करनेमें जुट गये। पाइलेट साहब मुझे एरोड्रोमका नया अस्तबल दिखानेके लिए ले गये।

जोधपुरके महाराजको एरोप्लेनका बड़ा शौक़ है। देखा कि उनके पास तीन माथ (Moth) एरोप्लेन हैं। वे ख़ुद भी अच्छे पाइलेट हैं। हमारे यहाँ रहते समय ही वे एक छोटे लड़केको (शायद राजकुमार होगा)
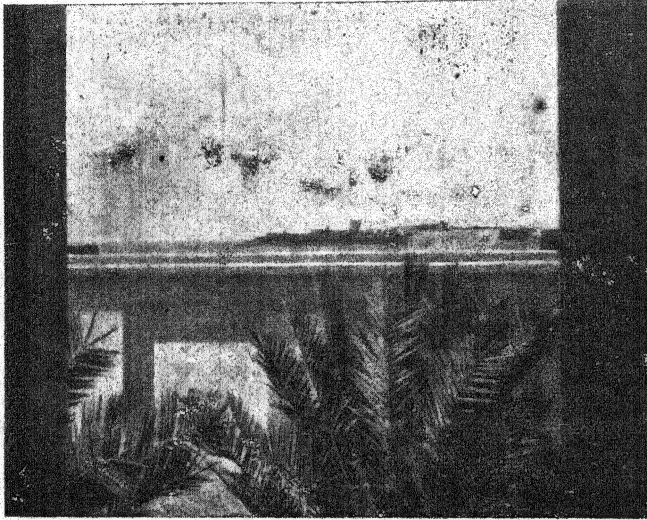
लेखकके होटलसे बुशायरका दृश्य

साथ लेकर आये, और एक प्लेनपर शायद सुबहकी हवाख़ोरीके लिए आसमानपर उड़े। मैंने मनमें सोचा कि हाँ, राजाओंके लिए यह उपयुक्त हवाख़ोरी है। लौटकर आया, तो देखा, और दो एरोप्लेनोंके लोग भी आ गये हैं, और उनके इंजनोंमें भी गोलमाल है। सुना कि विदेशी एरोप्लेन रुमानियाके किसी राजकुमारका है, जो उनकी फ़रमाइशके मुताबिक ख़ास तौरपर तैयार किया गया है। वे उस प्लेनकी परीक्षा लेनेके लिए अकेले श्याम जा रहे थे। स्वाधीन देशोंके राजे-रजवाड़ोंके शौक़ भी पुरुषोचित ही होते हैं।

आठ बजे इंजन ठीक हुआ। पेट्रोलका पाइप बन्द हो गया था। एक देशी नवयुवकने मैकेनिकको विशेष सहायता दी थी, इसलिए सबने उसे बहुत धन्यवाद और थोड़ी बख़शीश देकर ख़ुश किया। फिर पिछले दिनकी भाँति "O. K." "Hold tight"का सबक़ दोहराया गया, कार्तूस दाग़ा गया, एक-एक करके तीनों इंजन भीमवेगसे गर्जन करने लगे। पाइलेट साहबने अंगूठा दिखाया, और हमारा पुष्पक विमान आकाशमें उड़ने लगा।

जोधपुर छूटनेपर रेगिस्तान अपने असली रूपमें दीखने लगा। चारों तरफ़ सफ़ेद बालू-ही-बालू थी। कहीं-कहींपर एक-आध दीवारोंसे घिरे हुए अहाते और दो-चार घर दिखाई पड़ जाते थे। यह सब देखते-देखते निद्रा आने लगी, और मैं सो गया। आँख खुलनेपर देखा कि नीचेकी ज़मीन आश्चर्यजनक समतल और सफ़ेद थी। कहींपर ज़रा भी ऊँचा-नीचा नज़र न आता था। पेड़-पत्ते और आदमी-आदमज़ादका कोई निशान नहीं दिखाई देता था। अब काफ़ी सर्दी मालूम पड़ने लगी, मगर उस समय उसका कारण समझमें न आया। थोड़ी देर बाद अचानक समझाई दिया कि सफ़ेद ज़मीनका कुछ अंश थोड़ा दूसरे रंगका है, और उसपर कुछ बहुत छोटी-छोटी काली चीज़ें—कीड़ोंकी तरह—हैं।

एक काला विन्दु खिसककर अलग हटा, इससे यह मालूम हुआ कि वह कोई जन्तु है, मगर पेड़-पौधे न होनेके कारण अनुपातका अन्दाज़ा न लगनेसे आँखोंका भ्रम न गया। ज़मीन बहुत नज़दीक जान पड़ती थी। बादमें सुना कि हम लोग ३५०० मीटर अर्थात् १०,५०० फ़ीटकी ऊँचाईपर जा रहे हैं, क्योंकि नीचे रेगिस्तानमें बालूकी आँधीका डर है। प्लेन इस समय बड़ी तेज़ीसे जा रहा था, इसीलिए चार घंटेसे भी कम समयमें ५०० मील तै करके हम लोग कराची जा पहुँचे। कराची शहरसे आठ-दस मील दूर रेगिस्तानकी गोदमें कराचीका ऐरोड्रोम है। रेलसे अगर आप दिन-रात चलें, तो साठ घंटेमें कलकत्तेसे कराची पहुँचेंगे

बुशायरमें कवीन्द्रकी गाड़ीके पास लोगोंकी भीड़

ऐरोप्लेनसे केवल दिन-ही-दिनमें चलकर सत्ताईस घंटेमें (पन्द्रह घंटे ऐरोप्लेनपर और १२ घंटे होटलमें) अनायास ही कराची पहुँच गये।

कराचीमें श्रीयुत चट्टोपाध्याय और उनकी श्रीमती भोजन-सहित ऐरोड्रोममें आ गई थीं। उन्होंने भोजन कराकर तृप्त किया। कराचीसे हिन्दोस्तान छूटता है। यहाँ कस्टम और डाक्टरी परीक्षाएँ होती हैं। कस्टम अफ़सरने दो-चार बातें पूछकर कहा कि अपने कैमेरेपर मोहर लगाकर पाइलेटके पास जमा कर दो, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनके अनुसार, बिना विशेष अनुमति प्राप्त किये, आकाशसे फोटो लेना मना है। मुझे यह बात मालूम थी, इसलिए कैमरा पहले ही से पाइलेटके पास जमा करा दिया था। डाक्टर साहबने सिर्फ यह पूछा कि मैंने प्लेग, कालरा, चेचक, आमाशय, टाइफस, टाइफाइड आदि बीमारियोंके टीके लिये हैं या नहीं। ख़ैर, १२॥ बजे कराचीसे रवाना हुए। अब भारत-भूमि छूट गई।

कराची छोड़कर एरोप्लेन सीधा समुद्रके ऊपर उड़ने लगा। कुछ ही देर बाद पृथ्वीके ओर-छोर अदृश्य हो गये। जब तक तटके पास थे, तब तक मछुओंकी दो-एक नावें दीख पड़ जाती थीं, मगर कुछ मिनटोंमें वे भी ग़ायब हो गई। चारों तरफ़ बस अथाह पानी ही पानी था। जिन उड़ाकोंने अटलान्टिकको पार किया था, उनके हृदयोंमें कैसे भाव उठते होंगे, इसका कुछ-कुछ अनुभव होने लगा। पानी और आकाश, आकाश और पानी। चारों तरफ़ निर्जन निस्तब्धता फैली थी। केवल एरोप्लेनके कुछ प्राणी इंजनके गर्जनके साथ सागर पार कर रहे थे। इस प्रकार प्रायः डेढ़ घंटे चलनेके बाद दाहनी तरफ़ ज़मीनका किनारा दिखाई पड़ा। कुछ ही क्षणमें वह टेढ़ा-मेढ़ा होकर आगे आ गया, मगर उसपर पेड़-पत्ते या बस्तीका कोई चिह्न न था। अरब-सागरकी लहरोंसे धोया हुआ, सीधा बालुकामय तट था, जिसपर समुद्रफेनका हाशिया चढ़ा था। बालूके ऊपर पत्थरोंके बड़े ऊँचे-ऊँचे ढोके-से थे। आकाशसे देखनेमें यह तट-प्रदेश जितना सुन्दर दिखाई देता है, नाव या जहाज़ोंसे उतरनेके लिए उतना ही भयंकर और घातक है। हाँ, भूतत्त्वकी दृष्टिसे बलूचिस्तानका यह तट एक अच्छा उदाहरण है। समुद्रका जल, आबहवा, बादल-बूँदी, पहाड़ आदि वस्तुओंसे प्रकृति देवीने इस तट-प्रदेशमें अपनी पूरी कारीगरी दिखलाई है।

हवा तूफ़ानकी तरह ज़ोरसे विपरीत दिशामें बह रही थी। ऐरोप्लेन जब ऊपर उठता था, तब समुद्रका जल तालाबकी भाँति निश्चल और काँच-सा साफ़ दिखाई देता था, और जब हवाका थपेड़ा खाकर नीचे उतरता था, तब जलके वक्षस्थलपर लहरोंका नृत्य और फेनकी माला दीखने लगती थी। एक बार सूँसोंका एक दल भी नज़र आया था।
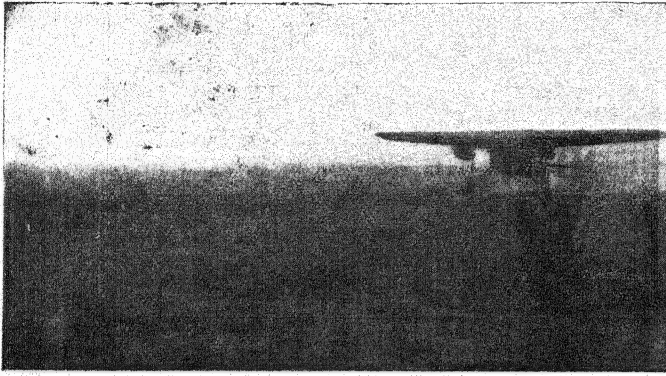
कविवर श्री रवीन्द्रनाथका एरोप्लेन बुशायरमें उतर रहा है।

इधर घंटे-पर-घंटे बीत रहे थे। मालूम होता था कि आज आकाश-मार्गका अन्त न होगा। दो-एक छोटे अन्तरीप पार होनेके बाद फिर तटसे कोई सम्पर्क नहीं रहा। मेरे मनमें विचार आया कि सिर्फ बीस-इक्कीस वर्ष पहले फ्रेंच उड़ाके ब्लेरिओने मामूलीसी इंगलिश चैनल (इक्कीस मील) पार करके डेढ़ लाख रुपया इनाम पाया था, और आज देखिये कि सिर्फ थोड़ासा किराया देकर लोग अरब सागर (६०० मील) पार करते हैं ! प्रतिसप्ताह मेशीनकी तरह कितने ऐरोप्लेन इधर-से-उधर आते-जाते हैं, कोई इसकी खबर तक नहीं रखता।

बहुत देर तक हिलने-डुलने और धक्का लगनेसे थकावट मालूम होने लगी। तूफ़ानका ज़ोर किसी तरह भी कम न होता था। लगातार आठ घंटेसे ऐरोप्लेन चल रहा था। इतनेमें सहकारी पाइलेट साहबने उद्विग्न-भावसे पेट्रोल-गेज़ (नापनेका यन्त्र) की ओर ताकना शुरू किया। यह व्यापार देखकर मेरा हृदय सिहर उठा। यदि पेट्रोल ख़तम हो जाय तो ? ऐरोप्लेनपर चढ़नेके बाद यह पहले-ही-पहल खटका हुआ था, मगर अधिक देर तक सोचनेके पहले ही दूरपर सूखी भूमि दिखाई दी। आठ घंटे उड़नेके बाद जस्क ऐरोड्रोम जा पहुँचे। चूँकि हम लोग पश्चिमकी ओर जा रहे थे, इसलिए सन्ध्या भी देरसे हुई, और उजेला रहते-रहते ही हम लोग भूमिपर जा उतरे।

फ़ारसकी भूमिपर यह पहली ही बार पदार्पण था।

पहले ही सुन रखा था कि इस देशमें चुंगी और पासपोर्ट आदिके सम्बन्धमें बड़ी कड़ाई और देख-रेख होती है, इसलिए इन झंझटोंसे बचनेके लिए मैं बम्बईके ईरानी राजदूतकी चिट्ठी साथ लाया था, जिसमें ईरानी सरकारके निमन्त्रणका हवाला था। थका-माँदा मैं उतरा ही था कि चुंगीवालोंका दल माल-असबाब देखनेके लिए आ धमका। मैंने वह चिट्ठी और पासपोर्ट उनके आगे धर दिया। चिट्ठीने जादूका काम किया। प्रधान कर्मचारीने कहा—"आप सीधे विश्रामघरमें मय अपने सामानके चले जाइये। आपके सामानकी जाँच-पड़तालकी ज़रूरत नहीं। मैं आपका पासपोर्ट देखकर आदमीके हाथ भिजवाये देता हूँ।" ऐरोप्लेनवाले भी यह देखकर भौंचक्के रह गये। उन्होंने कभी कल्पनामें भी यह नहीं सोचा था कि मैं चुंगीवालोंसे ऐसी आसानीसे छुटकारा पा जाऊँगा।

जस्क समुद्र-तटपर एक बालुकामय छोटा अन्तरीप-मात्र है। यहाँके लोगोंका मुख्य रोज़गार मछली पकड़ना, चुंगीवालोंकी आँख बचाकर बिना चुंगी चुकाये माल लाना और इंडो-पर्शियन तारघर या ऐरोड्रोममें काम करना है। यह कच्चे मकानोंका छोटा गाँव है। आसपास दो-एक ओसिस (नख़्लिस्तान) भी हैं।

ईरानमें राज-अतिथियोंका दल

बैठे हुए बाईं ओरसे—श्रीयुत ईरानी, श्रीमती प्रतिमा देवी, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीमती ईरानी, डा० मेहरहोमजी, कुमारी ईरानी।
खड़े हुए—श्री अमिय चक्रवर्ती, श्री कैहान (ईरानी कौंसल) लेखक तथा श्री असदी (कविकी कृतियोंके फारसी अनुवादक)

आते वक्त ऐरोप्लेनकी आवाज़से ऊँटोंका एक दल तितर-बितर होकर भागता दिखाई पड़ा था।

यहाँके 'रेस्ट-हाउस' (विश्रामघर) में रात काटी। यह ब्रिटिश इम्पीरियल एयरवेज़ कम्पनीका बनवाया हुआ है, और एक ब्रिटिश दम्पतिकी देख-रेखमें है। ख़ूब सवेरे उठकर पुन: यात्रा आरम्भ हुई। एक और डच ऐरोप्लेन भारतकी ओर जा रहा था। मैंने उसके द्वारा घरको खबर भिजवाई।

सुबह जब ऐरोप्लेन रवाना हुआ, तब ख़ूब कोहरा छाया हुआ था। हवा भी प्रतिकूल थी, इसीलिए समुद्रके ऊपर बहुत निचाईपर ही जा रहे थे। थोड़ी देर बाद आँख खुलनेपर देखा कि किनारेके पास जा पहुँचे हैं, और सामने मेघोंसे ढका हुआ अभ्रभेदी पहाड़ है। कोहरे और अन्धकारसे सभी चीज़ें अस्पष्ट दिखाई देती थीं। ऐरोप्लेन एकाएक सीधा ऊपर उठने लगा। जितना ही ऊपर उठते जाते थे, उतनी ही छोटे-बड़े पहाड़ोंकी नोकीली चोटियोंकी पंक्तियोंपर पंक्तियाँ नज़र आती थीं। मालूम पड़ता था, मानो कोई हिंस्र जन्तु ऐरोप्लेनको निगलनेके लिए मुँह बाये बढ़ा चला आता हो। कोहरा और हवा सभी विरोधी थे। इसके अलावा प्लेनको पहाड़से टकरानेसे बचानेके लिए दाहने-बाएँ घुमाना पड़ता था। पाइलेट साहबने एक बार पीछे फिरकर सहकारीकी ओर देखा। सहकारी फ़ौरन जाकर उन्हें सहायता देने लगा।

तीनों इंजन प्रचंड गर्जन कर रहे थे। रेवमीटरकी सुई १६-१८ से बढ़कर २०-२२ पर काँपने लगी। प्लेनके भीतरका अगला हिस्सा पिछलेका समतल न होकर काफ़ी ऊँचा कोण बनाता हुआ ऊपरको उठा हुआ था। इधर पहाड़ोंकी ओर देखनेमें भय मालूम होता था। डर लगता था कि अब टकराये, अब टकराये! बहुत नीचे पहाड़पर छोटे-छोटे कटे हुए खेत,—जैसे दार्जिलिंगके नीचे शिकिमकी ओर दीख पड़ते हैं—नज़र आते थे। उनके बीचमें खपड़े या मकईके डंठलोंसे छाये हुए छोटे-छोटे घर थे। और भी नीचे पहाड़की दीवारसे घिरे हुए और पातालमें छिपे हुए बन्दरगाह थे, जो मालूम होता है, किसी ज़मानेमें (शायद अब भी) समुद्री डाकुओंके क़िले रहे होंगे। सामने मेघ दिखाई दिये। प्लेन उन्हें भेदकर ऊपर उठने लगा। बड़ी विषम और आतंक-उत्पादक चढ़ाई थी।

पाइलेटने कहा था कि प्रत्येक बार जावा घूमकर आनेपर उन्हें आरामके लिए छै सप्ताहकी छुट्टी मिलती है। अब यह सब हाल देखकर समझमें आया कि छै सप्ताहकी छुट्टी जो मिलती है, तो कुछ अधिक नहीं है!

सहसा इंजनकी आवाज़ धीमी पड़ गई। प्लेनका अगला भाग भी नीचेकी ओर झुक गया। बहुत नीचे समुद्रका विशाल वक्ष नज़र आने लगा। यह जानकर कि पहाड़ लाँघनेकी पारी समाप्त हो गई, मैंने एक दीर्घ निश्वास लिया। कोई सवा दस बजे हम लोग बुशायर जा पहुँचे। मुझे यहीं तक आना था। यहाँ एरोप्लेनसे सम्बन्ध छूटता था, इसलिए सब प्लेनवालोंको अनेक धन्यवाद देकर और हाथ मिलाकर उनसे विदा ली।

मेरे जस्क पहुँचनेकी ख़बर पाकर तेहरानसे मजलिसके सभापतिने मेरे सम्बन्धमें बुशायरके गवर्नर-जनरलको तार दे दिया था, इसलिए बुशायरमें आतिथ्य-सत्कारमें कोई कमी नहीं हुई।

सात दिन बाद यहीं बुशायरमें दूसरे एरोप्लेनसे कवि और उनके साथी तथा जहाज़ द्वारा बम्बईसे श्री दिनशा ईरानी अपने दल-सहित आ पहुँचे। इन राज-अतिथियोंके फारस-भ्रमणका इन्तज़ाम बड़ी धूमसे होने लगा। [क्रमशः

विस्मृतिके फूल

श्री भगवतीचरण वर्मा

आज तुम्हारी कृपा-कोरसे होकर देवि सनाथ
चित्र बनाने मैं बैठा था किस आशाके साथ,
रुकी नहीं तूलिका हो गये सातो रंग समाप्त—
किन्तु अन्तमें शेष रह गया कोरा कागज़ हाथ!

नयनोंमें थी सुधा, अधरपर हिमजलका परिधान,
और कपोलोंपर लज्जाकी भीनी-सी मुसकान,
श्वासोंमें विश्वास भरा था, उरमें प्रेम अथाह—
बस, इतना ही सा मुझको था देवि तुम्हारा ज्ञान!

× × ×

वहाँ नहीं था रूप कि जिसका क्षण-भरका उल्लास,
वहाँ नहीं था रंग कि जिसका सीमित है उच्छ्वास,
आँखोंके आगे था व्यापक-सा निःसीम प्रकाश—
कोरे कागज़पर पाओगी उसका देवि विकास!

फेंक न देना उस कागज़को, रखना उरके पास,
वहाँ तुम्हारी छवि अंकित है, मेरी पागल प्यास,
तुम रेखासे मुक्त, मुक्त मेरा मादक अनुराग,
और मुक्त है एक दूसरेपर अविकल विश्वास।

स्वर्गीय नाथूरामशंकर शर्मा

मटर

श्रीराम शर्मा

बहुत दिनोंकी बात है। एक बार स्वर्गीय पंडित मोतीलालजी नेहरूके साथ, अपने एक मित्रके आग्रहसे, मुझे ताज देखने जाना पड़ा। ताजमें स्वर्गीय पंडितजीके मज़ाक़ और उनके वार्तालापका मज़ा चखा। उसी स्थानपर विचार सूझा कि यह देखना चाहिए कि पंडितजी भोजन क्या करते हैं। अगले दिन उनकी भोजन-सामग्री जा देखी, तो उसमें एक डब्बा दिखाई पड़ा। डब्बेपर लिखा था—"योर्कशायर हीरो मटर" (Yorkshire Hero Peas)। मई या जूनका महीना था, और पंडितजीने मँगाई थी बेमौसिमी चीज़—मटर, और वह भी डब्बेकी! खयाल हुआ कि अंग्रेज़ियतकी हवा ही तो है। जहाँ डब्बेका दूध है, जहाँ सरकारी तालीम है, वहाँ मटर भी डब्बेकी हुई तो क्या? यदि कोई व्यक्ति देशका रत्न हो, यदि कोई जनरल देशका त्राता हो, तो फिर उसके भोजन और उसकी व्यक्तिगत बातोंपर खयाल करना अपनी मानसिक संकीर्णता और अशिष्टताका परिचय देना है। जिस व्यक्तिमें इतने गुण हों, उसकी तुच्छ कमज़ोरियोंपर ध्यान देना मूर्खता है। पर तबीयत नहीं मानी। डब्बेके लेबिलको पढ़ा। डब्बेके भीतर मटर थी, और उसमें मेरे लिए कोई आपत्तिजनक पदार्थ—मांस या मदिरा—न था। तब फिर उन मटरोंको चखा क्यों न जाय, इसी धुनमें मैं उसी प्रकारका एक डब्बा लाया। खोलकर और पानीमें धोकर, उनको बनाकर खाया, तो उँगलियाँ चाटता ही रह गया। जूनके महीनेमें मटरोंमें ऐसा स्वाद था, मानो खेतसे तोड़कर बढ़िया, मीठी और ताज़ी मटर अभी बनाई हों। देवताओंका-सा भोजन था। जिसने उनको चखा, उनकी दाद दी। एक बार गंगोत्रीसे नीलंग-पाससे तिब्बतमें कुछ मील चला गया, और एक दिन भूखसे व्याकुल रहा। रातको बथुआकी पत्तियाँ खाई थीं। यदि कहीं डब्बेकी मटर पास होती, तो कुछ कष्ट न होता। अस्तु, उसके बाद मैंने वही मटर घरपर अपने खेतपर की। ताज़ी मटरकी बड़ी-बड़ी फलियोंमें से बड़े-बड़े दाने निकले, और उनका स्वाद बहुत बढ़िया था—ठीक डब्बेकी मटरका-सा। डब्बेमें भी तो हरी मटर ही भरी जाती है, और शायद एक पावके दाम बारह आने पड़ते हैं। अपने देशमें इतनी मटर भरी जा सकती है—और इतने कम दामोंमें—कि विदेशसे आनेवाली मटरकी रोक भी हो सकती है, और लोगोंको वह सस्ती भी मिल सकती है। यात्रामें जाया जाय, तो क्यों न दस-बीस डब्बे साथमें रख लिये जायँ, और हिमालयके रम्य शिखरपर मटरका भोग लगे। और तो और—डब्बेमें मटर भरनेकी बात तो दूर—पढ़े-लिखे ज़मींदार और किसान तक अपने खानेके लिए दो-चार क्यारी इस मटरको नहीं बोते। इसमें पाठ्य-प्रणालीका तो दोष है ही, पर अपनी सूझकी भी कम कमी नहीं है।

मटरकी खेतीपर मैं अपने विचार और प्रयोग लिखता हूँ। आशा है, 'विशाल भारत' के पाठक मटरको उगावेंगे। जिनके पास शहरमें थोड़ासा भी बाड़ा हो—जहाँ पन्द्रह-बीस बीज ही बोये जा सकें—वे भी मटर बोकर बढ़िया मटरका आनन्द लें। इस लेखको पढ़कर दो-चार व्यक्तियोंने भी मटर उगाई, तो लेखकको बड़ा सन्तोष होगा।

विलायतवालोंने मटरकी काश्तकी बड़ी उन्नति की है, और वहाँवालोंकी लगनसे मुख्यतया दो प्रकारकी मटर तैयार की गई है। एक तो गोल या सादा और दूसरी झुर्रीदार या सिकुड़ी हुई। झुर्रीदार या सिकुड़ी हुई मटर बीजरूपमें ही सिकुड़ी होती है, अर्थात् पककर जब बीज सूख जाता है, तब

बीज सिकुड़ जाता है, और उसपर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। हरी फलीके अन्दर मटरके दाने सिकुड़े नहीं होते, और न उनपर कोई झुर्री होती है। गोल अथवा सादा मटरके बीज सूखकर झुर्रीदार नहीं होते, पर स्वाद और मिठासमें झुर्रीदार अथवा सिकुड़ी मटर ही बढ़िया होती है, और वर्षोंके अनुभवके उपरान्त मैं तो झुर्रीदार मटरको ही बोता हूँ। यों बुरी गोल मटर भी नहीं है, पर स्वादमें अपनी बहन या सौत झुर्रीदार मटरको नहीं पा सकती। हाँ, झुर्रीदार मटर सादा मटरकी अपेक्षा कुछ नाजुक होती है। सादा मटरकी अपेक्षा उसकी देख-भाल कुछ अधिक ही करनी पड़ती है, पर फरावमें उससे घटिया नहीं है।

झुर्रीदारके भी दो भेद हैं; एक तो गट्टी या बौना मटर (Dwarf-growing pea) और दूसरी लम्बी बढ़नेवाली। गट्टीकी ख़ूबी यह है कि उसका पौदा बहुत नहीं बढ़ता; बस, एक फ़ुट, और बहुत बढ़ा तो डेढ़ फीट तक। ठीक काश्त किये जानेपर—खतीली ज़मीन और समयपर पानी मिलनेसे—बोनेके दिनसे दो महीनेसे कुछ पहले ही खानेको फलियाँ तैयार हो जाती हैं। अर्थात् यदि आप १० अक्टूबरको इनको बो दें, तो नवम्बरके अन्त तक आपको मटरकी फलियां खानेको मिल जायँगी।

बढ़ी (बढ़ीसे तात्पर्य बड़े पौदेवाली) मटरपर तीन और चार महीनेके भीतर फलियाँ लगती हैं, पर गट्टी मटरकी अपेक्षा बढ़ीपर बेहद फलियाँ आती हैं, और बहुत दिनों तक आती हैं।

कौनसी मटर बोनी चाहिए

अब प्रश्न यह है कि कौनसी मटर बोनी चाहिए—गट्टी छोटी या बड़ी। स्मरण रहे, छोटी और बड़ी मटरसे तात्पर्य पौदेसे है। बड़ी मटरका पौदा तीन-चार फीटसे छै फीट तक बढ़ता है। गट्टी मटरके पौदेपर खासी बड़ी फलियाँ लगती हैं, हालाँ कि बड़ी मटरकी फलियाँ गट्टीकी अपेक्षा कुछ बड़ी ही होती हैं। अस्तु, बोनेके विषयमें मेरी राय है कि दोनों प्रकारकी मटर बोनी चाहिए, ताकि फलियोंका तारतम्य लगा रहे। अक्टूबरके प्रारम्भसे बोना शुरू करना चाहिए, और दस-दस दिन या पन्द्रह-पन्द्रह दिनके बाद, सुविधानुसार, मटर बोते रहने चाहिए। नवम्बरके उपरान्त बड़ी मटरको नहीं बोना चाहिए। जिसको यह झमेला पसन्द न हो और जिसके पास स्थानकी कमी हो, वह अक्टूबरके अन्तमें दोनों प्रकारकी मटर बो दे।

ज़मीन और खाद

मटर रबीकी (शीतकालमें होनेवाली) फ़सल है। मटरकी काश्तके लिए उपजाऊ और ख़ूब पोली ज़मीन चाहिए, ताकि पौदेकी जड़ें काफ़ी गहराई तक जा सकें। कमज़ोर और बिना खादवाली ज़मीनमें मटर अच्छी न होगी; न बहुत बढ़ेगी, न उसपर बड़ी और अधिक फलियाँ ही आयेंगी। जिस खेतमें या खेतके टुकड़ेमें मटर करनी हो, उसमें एक महीना पहले खाद डाल देनी चाहिए और ख़ूब गहरी जुताई करनी चाहिए। दो-एक बार 'वाट्स' हलसे जोत दिया जाय, तो और भी अच्छा है। कच्ची या ज़िन्दा खाद नहीं देनी चाहिए। सबसे अच्छी बात तो यह है कि मटर उस खेत या स्थानमें करनी चाहिए, जिसमें पहलेकी फसलमें काफी खाद पड़ चुकी हो। यदि पहलेकी फ़सलमें काफ़ी खाद दी गई हो, तो फिर मटर बोनेसे पहले थोड़ी ही खाद डालनी चाहिए। मैं तो ऐसा करता हूँ कि गोभीके खेतमें (जिसमें बेहद खाद डाली जाती है—एक क्यारीमें दो बड़ी डलियाँ) ककड़ी और खरबूजा कर दिया। आषाढ़में उनकी बेलें उखाड़ दीं, और खेत जुतवा डाला, तब उसमें सन बो दिया। एक मास बाद उस सनको खेतमें ही जुतवा डाला (वाट्स हलसे), और फिर जुताई होती रही। गोबरकी खादकी कमीके कारण सनके पेड़ोंकी खाद (green manuring) देनी चाहिए। यह बात तो हुई उन लोगोंके लिए, जिनको बीघों मटर करनी हो, पर जिनके पास छोटासा बाड़ा है, या दो ही चार क्यारी स्थान है, उन्हें उस ठौरको फावड़ेसे ख़ूब गोड़

लेना चाहिए, और मरी हुई खाद (क्यारी पीछे एक डलिया) डालनी चाहिए और फिर गोड़ देना चाहिए, ताकि खाद खूब मिल जाय। तब क्यारियोंको एकसा कर देना चाहिए। खेतोंमें पटेला देकर एकसा कर देना चाहिए।

उन स्थानोंमें जहाँ मटरकी काश्तमें दिक्क़त पड़ती है, या जहाँ शीतकाल थोड़े ही दिनों होता है, या जहाँपर मटरके लिए अच्छी ज़मीन नहीं है, या जो बढ़िया मटर करना चाहते हैं केवल खानेके लिए,—बेचनेके लिए नहीं, क्योंकि बेचनेके लिए इतना परिश्रम करना व्यर्थ है,—मटरके लिए इस प्रकार ज़मीन तैयार करनी चाहिए कि एक फुट चौड़ी और डेढ़ फ़ीटसे दो फ़ीट तक गहरी नाली खोदनी चाहिए। खाईकी मिट्टी खाईके ऊपर किनारेपर पड़ी रहने देनी चाहिए। खाईकी धरातलपर खुरपीसे या फावड़ेसे पाँच-छै इंच गोड़ देना चाहिए। इस गुड़ी हुई मिट्टीपर छै-सात इंच मरी खादकी तह लगा देनी चाहिए, अर्थात् मिट्टीके ऊपरकी नालीमें छै-सात इंच ऊपरको खाद डाल देनी चाहिए, तब नालीको ऊपरवाली मिट्टीसे लगभग भर देनी चाहिए और उस नालीको पानीसे भर देना चाहिए। दो-चार दिन बाद जब नालीकी मिट्टी भुरभुरी बोने लायक़ हो जाय, तब नालीके बीचमें बीज बो देना चाहिए। बोनेके बाद फ़ौरन पानी नहीं देना चाहिए। जैसे-जैसे पौदे बढ़ते जायँ, नालीमें मिट्टी भरते जाना चाहिए, पर जहाँपर देशी मटर होती है, वहाँपर इस बखेड़ेमें पड़नेकी कोई ज़रूरत नहीं। नालीवाली बात लेखककी खोज नहीं है। एक किताबमें कभी पढ़ा था, इसलिए आज़माया था, और वह तरीक़ा ठीक साबित हुआ, इसीलिए लिख दिया है।

बीज और बोनेका समय

बीघे दो बीघेके लिए जैसे देशी मटर बोई जाती है, वैसे ही बाँससे (जो हलमें बाँधा जाता है) बोना चाहिए। मैं तो दस-बीस कूँड़ों तकको बाँससे बुवाता हूँ। बीज भी उतना ही डालना चाहिए, जितना देशी मटरका। जहाँ हाथसे बोनी हो, वहाँ एक फुटमें आठसे दस बीज तक बोने चाहिए। बीजोंको भुरभुरी और हल्की मिट्टीमें दो-तीन इंच गहरा बोना चाहिए। यदि ज़मीन चिकनौट या भारी हो, तो डेढ़ इंच गहरा बीज बोना चाहिए। यह तो हुई कूँड़ोंमें—क़तारोंमें—बोनेकी बात। कूँड़ोंके बीचमें दूरीका प्रश्न भी बड़े महत्त्वका है। छोटी—गट्टी—मटरके कूँड़ एकसे डेढ़ फ़ीटकी दूरीपर होना चाहिए, और बड़ी लम्बे पौदेवाली मटरके कूँड़ोंकी दूरी दो फ़ीटसे चार फ़ीट तक होनी चाहिए। कूँड़ोंकी दूरी मटरकी बढ़वारपर निर्भर है। प्रत्येक विलायती मटरकी बढ़वारकी ऊँचाई बीज-विक्रेता या बीज-वर्णनके साथ रहती है। उदाहरणके लिए टेलीग्राफ़ मटरका पौदा छै फ़ीटकी ऊँचाई तक बढ़ता है, और टेलीग्राफ़ मटरके कूँड़ोंकी दूरी छै फ़ीट होनी चाहिए। सटनकी प्रसिद्ध सेलेक्टड ड्यूक आफ़ एलबनी (Selected Duke of Albany) मटरके कूँड़ोंकी दूरी मैंने तीन फ़ीट रखाई, तो मेरे होशियार नौकर पातीने कहा—"पंडितजी, इतनी दूरि पै कूँड़ करवाओगे, तौ होइगौ का? सिबरे खेतमें बीस-पचीस कूँड़ हौंगे।" पर जब मटरके पौदे बढ़े, बढ़कर उनकी इतनी घनी झाड़ी बँधी कि पैर रखनेको भी स्थान न मिला और मटरकी फलियोंकी लागका कुछ ठिकाना न रहा, तब पातीकी समझमें आया कि विलायती मटरके कूँड़ घने करनेसे लाभकी अपेक्षा हानि ही होती है; क्योंकि घने कूँड़ करनेसे फलियां कम आती हैं।

रही बोनेके समयकी बात, सो इसके लिए कोई ठीक तालिका नहीं दी जा सकती। मटर शीतकालकी चीज़ है, इसलिए जहाँपर जलवायु जब उपयुक्त हो, तभी बोनी चाहिए। अधिक गरमीमें मटर जमती नहीं, और यदि जम भी आये, तो पौदे ज़मीनकी ऊपरी गरमीसे ही मारे जाते हैं। पश्चिमी युक्तप्रान्तमें आगरेके समीप गट्टी मटरको १५ सितम्बरसे बोना चाहिए, पर १५ सितम्बरके लगभग बोनेसे मटर प्रायः मारी जाती है, इसलिए थोड़ी बोनी चाहिए। मैं गत आठ-दस वर्षोंसे मटर करता हूँ, और १५ सितम्बरसे क़रीब बोई गई

मटर बीसों बार नष्ट हो गई है। हाँ, आखिर अक्टूबरकी बोई कभी नहीं मारी गई, इसलिए जो जोखिममें न पड़ना चाहें, वे यू० पी० और पंजाबमें अक्टूबरमें मटर बोवें। अन्य प्रान्तोंके लिए अन्दाज़ा हो सकता है कि बंगालमें सितम्बरसे दिसम्बर तक बोनी चाहिए। पूनाके निकट जुलाईसे सितम्बर तक, बम्बई और मदरासमें अगस्तसे दिसम्बर तक, यू० पी० और पंजाबमें १५ सितम्बरसे दिसम्बर तक और पहाड़पर मार्चसे मई तक बोनी चाहिए।

पौदोंके लिए सहारा

बड़ी मटर बहुत बढ़ती है, इसलिए जिसे दो-चार कूँड़ ही बड़ी मटर लगानी हो, उसे कूँड़ोंके किनारे सात-आठ फीट ऊँची लकड़ी एक-एक या दो-दो फ़ीटकी दूरीपर गाड़ देनी चाहिए। उन लकड़ियोंमें पतले तार या लकड़ियाँ—कई एक—बाँध देनी चाहिए, ताकि इस प्रकारकी बनी जालीपर मटरकी बेल चढ़ सके। ऐसा करनेसे मटर फलती भी ख़ूब है, और तोड़नेमें भी आसानी रहती है। दो कूड़ोंकी दूरीमें एक गली-सी बन जाती है। जिस समय मटरपर फूल आते हैं, उस समय उसकी शोभा देखते ही बनती है। दो कूड़ोंके बीच खड़े हो जाइये। नाज़नी मटर सहस्र नेत्रोंसे—मटरके फूलोंके सामने मृगनयन भी कोई चीज़ नहीं—आपको निहारती है—"ता" करती है, और आपकी आँखोंमें समा जाती है। ऐसे स्थानपर बैठकर लिखिये, तो कल्पनाशक्ति पुष्पोंके प्रोत्साहनसे अपने जौहर निकालकर रख देती है। परन्तु इस प्रकार बाड़ थोड़ी जगहवालोंको लगानी चाहिए। जिन्हें बीघे दो बीघे मटर करनी हो, उनको यह बाड़ लगाना—जिसपर मटरकी बेल चढ़ सके—उचित नहीं। बेल यों ही फैल जाती है। यदि हो सके, तो चार-पाँच फूल आनेके बाद बेलकी फुनगी तोड़ देनी चाहिए, ताकि बेलमें बहुत कल्ले फूटें।

सिंचाई

मटरके विषयमें आप किताबें पढ़ जाइये, पर एक अनुभवकी बात आपको न मिलेगी, वह यह कि मटरमें जब तक आप पानी न दें, तब तक तो न दें, पर एक बार पानी देनेके बाद फिर उसको सूखने नहीं देना चाहिए। उगनेके बाद जब कुछ पत्ते आ जायँ और दिनकी धूपमें वह मुरझाती-सी दिखाई पड़े, तब पानी देना प्रारम्भ करना चाहिए, और फिर सूखने नहीं देना चाहिए। हाँ, निराईके उपरान्त दो-चार दिन तक बिना पानीके पड़ी रहे, तो कोई बात नहीं। निराईका तात्पर्य न केवल घास-पात काटकर फेंक देना है, वरन् ज़मीन पोली होनेसे सूर्यकी किरणें ज़मीनमें प्रवेश नहीं कर सकतीं और फ़सल सूखती नहीं। सिंचाईके बारेमें कोई विशेष नियम नहीं बताया जा सकता। जलवायु और ज़मीनके ऊपर सिंचाई निर्भर है। निराई ज़रूर होनी चाहिए।

फलियोंका तोड़ना

मटरकी फलियां तोड़नेमें लोग बड़ी ग़लती करते हैं। भरी फलियां लगी रहती हैं, और वे तोड़ी नहीं जातीं। फलस्वरूप फलियां कम लगती हैं। चाहिए यह कि भरी फलियोंको तोड़ता रहे, जिससे मटरकी बेल ख़ूब फले।

कौनसी मटर बोनी चाहिए

औरोंके अनुभवका मुझे पता नहीं, पर अनेक प्रकारकी मटरोंको बोनेके पश्चात् मैं तो अब तीन-चार प्रकारकी ही मटर बोता हूँ। सम्भव है, औरोंको और प्रकारकी मटर बोनेसे सफलता और सन्तोष मिला हो। गट्टी या जल्दी आनेवाली मटरोंमें मैं तो सटन्स पायोनीयर (Sutton's Pioneer), अमेरिकन वाण्डर (American Wonder) और 'लिटिल मारवेल' (Little Marvel) को ही अच्छा पाता हूँ। इन मटरोंकी फलियाँ बड़ी और अति स्वादिष्ट होती हैं, और पौदे डेढ़ फ़ीटसे अधिक बढ़ते ही नहीं, कम ही रहते हैं। इनमें सहारा लगानेकी ज़रूरत नहीं।

बड़ी लम्बे पौदेवाली मटरमें मैं केवल दोको पसन्द करता हूँ। स्मरण रहे, यह मेरा निजका अनुभव है। सम्भव

है, और प्रकारकी मटरें भी इनकी टक्कर की हों। हाँ, बड़ी मटरोंमें मैं सटन्स सेलेक्टड ड्यूक आफ़ एलबनी और टेलीग्राफ़ (अमेरिकन) को बहुत पसन्द करता हूँ। ये बेहद फलती हैं। पहली तो ५ फ़ीटके लगभग बढ़ती है, और दूसरी ६ फ़ीटके लगभग। मैं केवल झुर्रीदार मटरोंको ही बोता हूँ।

बीज और फलियोंका मूल्य

सटनकी मटरोंका मूल्य, जिनको मैं लगाता हूँ, ३।) प्रति पौंड है, अर्थात् ६॥) प्रति सेर। तनिक विचार कीजिए इस मूल्यपर। पर एक बात ज़रूर है, बीज होता बहुत बढ़िया है। मालूम होता है कि एक-एक दाना छाँटकर रखा हो, और फलियोंके भावकी यह बात है कि जो क़द्रदाँ हैं, जो इस मटरके स्वाद और गुण जानते हैं, वे अधिक मूल्यपर इन्हें खरीदते ही हैं। देशी मटर यदि दो पैसे सेर बिकेगी, तो विलायती बड़ी मटर दो-तीन आना सेर। कभी-कभी तो आठ आना सेर और बारह आना सेर तक बिक जाती है। यों फिर पेट भरनेके लिए तो ज्वारकी फलीकी क्या कमी है।

मैंने यह भी प्रयत्न किया कि इन मटरोंका बीज किया जाय। बीज हुआ, पर गट्टी छोटी बड़ी खोटी निकली। उगती ही नहीं। कई बार आज़मा चुका हूँ, पर बीज जमता नहीं। हाँ, बड़ी मटर खूब उगती है और खूब फलती है, पर तीन-चार वर्षमें घरके बीजसे छोटी फलियां आने लगती हैं, इसलिए इस घरू बीज (Acclimatised seeds) को मैं तीसरे साल बदला देता हूँ।

डब्बेकी मटर

तबीयत करती है कि डब्बोंमें मटर भरी जाय और सस्ते-से-सस्ते दामोंपर बेची जाय, पर शायद--शायद ही क्यों, निश्चय ही—दिलो-दिमाग़में लिखने-पढ़नेकी प्रवृत्तिने सिक्का जमा लिया है, और व्यापारके कीटाणुओंके लिए—यदि व्यापारके कीटाणु होते हैं तो—वहाँ कोई स्थान नहीं। साथ ही सरस्वतीकी इच्छा रहनेसे लक्ष्मी पास नहीं फटकती, और जिनके पास लक्ष्मी है, उनका वाहन जो है, सो मालूम ही है। फाटके और आमोद-प्रमोदमें हज़ारों फूँकेंगे। रंगरेलियोंमें डूबे रहेंगे, पर किसीसे यह न होगा कि चार-पाँच हज़ार रुपया लगाकर मटर भरनेका काम करे, ताकि लोगोंको बढ़िया मटर भी मिल सके, और विदेशमें जानेवाला रुपया भी रुक जाय—और कुछ न हो, तो लोगोंको भोजनकी एक बढ़िया सामग्री ही मिले।
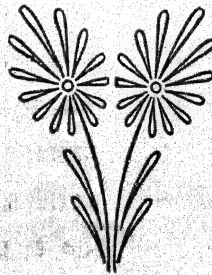
सौरभ-विन्दु

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पुण्य-फल

घने जंगलमें तपस्वी नेत्र मूँदे कठोर तपस्या कर रहा था ; उसे स्वर्ग-प्राप्तिकी आकांक्षा थी ।

लकड़ी बीननेवाली बालिका उसके लिए अपने अंचलमें भरकर फल लाती और पत्तोंके दोनोंमें जल ।

दिन बीतते गये, और तपस्वीकी तपस्याकी कठोरता बढ़ती गई । अब न वह उन फलोंको खाता था, न जल पीता था । बेचारी बालिका अत्यन्त उदास थी ।

भगवान इन्द्रने सुना कि एक मनुष्य देवत्व प्राप्त करनेकी ढिठाई कर रहा है । अनेक बार देवराजने दैत्योंको संग्राममें परास्त किया था, पर आज इस तपोबलधारी मनुष्यसे वे भयभीत हो रहे थे ।

देवराज मानव-स्वभावसे परिचित थे, और उन्होंने इस मृत्तिकोत्पन्न जीवको पथ-भ्रष्ट करनेका प्रबन्ध किया ।

स्वर्गके शीतल समीरके एक झोंकेने आकर उस बालिकाके शरीरको छू दिया, और उसका यौवन सौन्दर्यकी प्रसव-पीड़ासे सिहर उठा, और उसके मनोभाव मधुमक्खियोंके छेड़े हुए छत्तेके समान भिन्ना उठे ।

तपस्वीके उस स्थानको छोड़कर गिरिगुहामें अपनी तपस्या सम्पूर्ण करनेका समय आ गया ।

जब उसने अपने नेत्र खोले, तो उस बालिकाका स्वरूप उसे एक अर्द्ध-विस्मृत श्लोकके समान जान पड़ा—मधुर स्वरसे गाये जानेके कारण जैसे वह श्लोक अत्यन्त प्रिय जान पड़ता है, वैसे ही वह बालिका उसे प्रिय लगी ।

वह उठा और बोला—"मेरे जंगलको छोड़ जानेका समय आ गया ।"

नेत्रोंमें जल भरकर बालिकाने पूछा—"परन्तु अपनी सेवा करनेके सौभाग्यसे मुझे क्यों वंचित करते हो ?"

वह फिर बैठ गया, देर तक सोचता रहा, और फिर जहाँ था, वहीं बैठा रहा ।

उस रात्रिको पश्चात्तापके मारे बालिकाको नींद न आई । वह अपनी शक्तिसे भयभीत हो उठी, और उसे अपनी विजयसे घृणा होने लगी, तो भी उसका मन आनन्दकी लहरोंपर नाच रहा था ।

प्रात:काल आकर उसने तपस्वीको प्रणाम किया, और बोली—"मुझे आशीर्वाद दीजिए, अब मैं जाऊँगी ।"

तपस्वीने चुपचाप उसकी ओर देखा, और बोला—"जाओ । तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो ।"

वर्षों तपस्वी वहीं तपस्या करता रहा । उसकी तपस्या पूरी हुई । देवराजने आकर उसे सूचना दी कि उसने स्वर्ग प्राप्त किया ।

तपस्वीने कहा—"मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए ।"

देवताने पूछा—"फिर और क्या पुण्य-फल तुम चाहते हो ?"

वह बोला—"वही लकड़ी बीननेवाली बालिका ।"

* * * *

अनादृत भगवान

लोग कहते थे कि बजाकार कबीरपर ईश्वरकी कृपा है । जनता उनके पास औषधि और यन्त्र-तन्त्रके लिए आती थी । परन्तु कबीर दुखी थे । नीच कुलमें जन्म लेनेके कारण अभी तक उन्हें अत्यन्त सुखमय एकान्त प्राप्त था, जिसे वे ईश्वर भजन और चिन्तनसे और भी मधुर बना लेते थे । वे चाहते थे कि किसी प्रकार उन्हें फिर वही एकान्त प्राप्त हो ।

इस नीच कुलोत्पन्न साधुकी ख्यातिसे रुष्ट होकर ब्राह्मणोंने एक वेश्याकी सहायतासे उन्हें अपमानित करनेका प्रबन्ध किया । कबीर बाज़ारमें कपड़ा बेचने आये । वेश्याने

उनका हाथ पकड़ लिया, और उन्हें उसे त्याग देनेके लिए उलाहना देने लगी। बोली—"मैं अब तुम्हें न छोड़ूँगी।"

कबीरने कहा—"भगवान अपने ही ढंगसे लोगोंकी सुनते हैं।"

शीघ्र ही उस स्त्रीको भय मालूम हुआ। कबीरके चरणोंपर गिरकर बोली—"मेरे पापोंसे मेरी रक्षा कीजिए।"

कबीरने कहा—"अपने जीवनमें भगवानकी ज्योति आने दो।"

कबीर अपने करघेपर कपड़ा बिनते थे, और भगवानके भजन गाते थे। उन भजनोंसे उस वेश्याके पाप धुल गये, और वह भी अपने मधुर स्वरमें भजन गाने लगी।

एक दिन राजाने किसी झोंकमें कबीरको बुला भेजा कि आकर राजसभामें भजन सुनावें। जुलाहेने 'नाहीं' कर दी, पर दूत बिना राजाज्ञा पूरी किये उसका द्वार न छोड़ते थे।

जब कबीर राजसभामें आये, तो राजा तथा अन्य राजपुरुष उन्हें देखकर सहम उठे, क्योंकि उनके साथ वह वेश्या भी थी। कोई मुसकराये, कोई झुँझलाये। महाराज फकीरके घमण्ड और उसकी निर्लज्जतापर अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

कबीर अपमानित होकर घर लौट आये। स्त्री उनके चरणोंपर गिर पड़ी, और रोते-रोते बोली—"मेरे कारण आप क्यों अपमानित होते हैं? मुझे आज्ञा दीजिए, मैं चली जाऊँ।"

कबीरने कहा—"मैं भगवानको क्योंकर फेर दूँ, जब वे अनादृत होकर मेरे घर आये हैं?"

अनुवादक—रामचन्द्र शुक्ल

उद्गार

श्री बालकृष्ण राव

(१)

प्रणयकी पावन प्रतिमा मंजु!
सत्य स्वर्गिक सौन्दर्य सदेह;
मिटेगा सत्वर जीवन-दीप,
मिलेगा यदि न तुम्हारा स्नेह।

(२)

मंजु मन-मुकुरस्थित प्रतिबिम्ब,
और स्मृति-पटपर मनहर चित्र;
नयन-नीरधिके हेतु मयंक,
प्राणधन बनती मूर्ति पवित्र।

(३)

डूब जाये अथवा जा लगे,
तरणि जीवनकी अब उस पार;
समर्पित लहरोंको ही हुई,
नहीं अब है अपना अधिकार।

(४)

एक विटपीके हम-तुम फूल,
खिले-खेले थे अब तक साथ;
रहेंगे संग सदा या हाय,
पड़ेंगे अन्य-अन्यके हाथ।

पुराय-पर्व

श्री सियारामशरण गुप्त

पात्र सूची

सुतसोम (श्रुतसोम)—	...	इन्द्रप्रस्थके राजा, बोधिसत्व
विशाखा—	...	सुतसोमकी रानी
यशोधन—	...	सुतसोमका सहचर सचिव
ब्रह्मदत्त—	...	वाराणसीका निर्वासित राजा
किंकर } — रसक	... ...	ब्रह्मदत्तके अनुचर
नन्द—	...	एक गाथाकार ब्राह्मण
सुभद्र—	...	नन्दका ब्रह्मचारी पुत्र
पूर्णा और उत्पला	...	विशाखाकी दासियाँ
पथिक, प्रहरी और सैनिक आदि—		

समय :—भगवान गौतम बुद्धके जन्मके पूर्व।

स्थान :—राजधानी हस्तिनापुर एवं मृगचिरा नामक ग्रामके राजप्रासाद और वन।

पहला अंक

[१]

(आचार्यकुलसे कुछ हटकर, यमुना किनारे निर्जनमें बालक ब्रह्मचारी सुभद्र और किंकर। समय—प्रभात)

सुभद्र—क्यों जी, तुम मुझे 'बालक-बालक' क्यों कहते हो ?

किंकर—तो क्या वृद्ध कहूँ ?

सुभद्र—नहीं जी, तुम्हें बता तो चुका हूँ,—मेरा नाम सुभद्र है। यदि बालक कहनेसे ही काम चल जाय, तो नाम क्यों रखा जाता ? तुम्हें याद न रहता हो तो तीन-चार बार 'सुभद्र-सुभद्र' कह लो, फिर न भूलोगे।

किंकर—सुभद्र, सुभद्र, सुभद्र, सुभद्र—

सुभद्र—अरे, क्या दिन-भर इतना ही घोखते रहोगे ? कहीं तुम आचार्यकुलमें प्रविष्ट हो जाओ तो एक पृष्ठाचार्य तुम्हींको सिखाते-सिखाते हैरान हो जाय।

किंकर—(आश्चर्य-मुद्रासे) ऐसी बात है !

सुभद्र—हाँ, ऐसी बात है। विश्वास न हो तो चलो, तुम्हें गुरुगृह दिखा दें। डरकी कोई बात नहीं। छोटेमें आचार्यदेवकी बड़ी जटाएँ देखकर मैं डर गया था। परन्तु तुम तो लम्बे-चौड़े पूरे मनुष्य हो। अच्छा बताओ, तुम डरते तो नहीं ?

किंकर—कहीं आचार्यदेव अप्रसन्न हो उठे तो डरना ही पड़ेगा।

सुभद्र—(हँसकर) हः हः हः हः तुमने आचार्यदेवको देखा नहीं है, इसीसे ऐसी नासमझीकी बात कहते हो। वे कभी किसीपर अप्रसन्न नहीं होते।

किंकर—किन्तु मुझे तो डर लगता है।

सुभद्र—मेरे साथ चलनेमें कोई डर नहीं है। अरे, किस ओर जा रहे हो ? गुरुकुल इधर है। तुम भूलते बहुत हो। मैं तो एक दिनमें ही सब ठौर-ठिकाने पहचान गया था।

किंकर—नहीं भाई, मैं न चल सकूँगा। सच तो यह है, हमारी-तुम्हारी पहचान ही कितनी। कल थोड़ी देरके लिए यहीं पथमें कुछ बातचीत हो गई थी। सो भी अच्छी तरह नहीं,—तुम्हारे साथ और ब्रह्मचारी थे।

सुभद्र—(रूठकर) अच्छा जाओ। हमारी-तुम्हारी पहचान ही कितनी ? (मुँह फेरकर जाना चाहता है।)

किंकर—भाई, तुम तो तनिकमें ही बिगड़कर चलते हुए। सुनो तो—

सुभद्र—जाओ, मैं नहीं सुनूँगा।

किंकर—जान पड़ता है, तुम्हें कानोंसे कम सुनाई देता है। इसीसे न सुननेका बहाना करते हो।

सुभद्र—(लौटकर) क्या कहा ? धीरेसे धीरे कोई बात कहकर देख न लो, मुझे कानोंसे कैसा सुनाई देता है।

किंकर—(हँसकर) नहीं भाई, तुम्हारे कान बिलकुल ठीक हैं। तुमने हमारी बात सुन तो ली !

सुभद्र—फिर तुमने ऐसी झूठ बात कही, क्योंकि तुम हमें नहीं जानते।

किंकर—तुम्हींको नहीं, हम तो तुम्हारे पितृदेवको भी जानते हैं।

सुभद्र—(विस्मित होकर) जानते हो,—सच ?

किंकर—जानते नहीं तो क्या यों ही कह दिया ? कौन है जो उन्हें नहीं जानता ? जो उन्हें नहीं जानता, वह उनकी 'शतार्ह' गाथाओंको तो अवश्य ही जानता है। उन्हें देखकर बड़े-बड़े राजा उठ खड़े होते हैं, उनकी एक-एक गाथापर सौ-सौ कार्षापण निछावर कर देते हैं।

सुभद्र—कल हमींसे यह सब सुना था—

किंकर—नहीं, इसीलिए नहीं, हम उन्हें पहलेसे जानते हैं। इतना ही न जानते थे कि तुम उन्हींके पुत्र हो, तो यह तुमने बता दिया। उनके सिरपर बड़े-बड़े बाल हैं। उनकी दाढ़ी—

सुभद्र—(शीघ्रतामें, इस विचारसे कि कहीं यह बात भी किंकर न कह डाले) हाँ, हाँ, उनकी दाढ़ीमें कुछ सफेद बाल हैं। मैं नहीं समझता था कि तुम्हें सब मालूम है। अच्छा, तुम सुतसोमको जानते हो ?

किंकर—नहीं तो।

सुभद्र—अरे तुम नहीं जानते ! उन्हें तो हमसे भी छोटे बच्चे जानते हैं, और तुम नहीं जानते !

किंकर—(मुँहपर दीनताका भाव दिखाकर) मैंने क्या तुम्हारी तरह आचार्यकुलमें पढ़ा है, जो यह सब जान सकूँ ?

सुभद्र—यह तो ठीक है, परन्तु उन्हें तो सब कोई जानते हैं।

किंकर—इन्द्रप्रस्थके राजेश्वर सुतसोमके लिए तो नहीं कह रहे हो ?

सुभद्र—हाँ हाँ, उन्हींकी बात कह रहा हूँ।

किंकर—भाई वाह, अच्छा धोखा दिया। मैंने तो समझा था, किसी देवताके बारेमें पूछ रहे हो। मैं कुपढ़ हूँ तो क्या राजेश्वर सुतसोमका नाम भी नहीं जानता।

सुभद्र—पिताजी उन्हींके यहाँ होते हुए, मुझसे मिलने यहाँ आ रहे हैं। उन्हें ऐसी ही बड़ी-बड़ी जगहोंमें जाना पड़ता है, कभी घर थोड़े ही रह सकते हैं। मेरा जी चाहता है, उन्हींके साथ देश-विदेश घूमता फिरूँ। परन्तु मुझे आचार्य-कुलमें बहुत दिनों तक रहना पड़ेगा, तब कहीं जाने पाऊँगा।

किंकर—चलो न, आज हमारा डेरा देख आओ। उस कदम्बके पास ही है।

सुभद्र—मुझे आचार्यदेवके लिए समिधा ले जानी है। देर हो जायगी। (चौंककर) ऐं, बातों ही बातोंमें बहुत दूर चले आये !

किंकर—चौंकते कैसे हो, क्या कोई डर है ?

सुभद्र—नहीं भाई, आचार्यदेवने मना कर दिया है कि आजकल अकेले दूर न जाना चाहिए।

किंकर—सो क्यों ?

सुभद्र—सुना है यमुनाके उस पार एक दुष्ट नरखादक आ गया है। वह बहुतसे मनुष्योंको पकड़कर उन्हें वैसा ही खा गया है। (घृणासे मुँह बिचकाता है)

किंकर—दुष्ट नरखादक !—तो तुम मेरा विश्वास नहीं करते ? (आँखोंमें एक भीषण तीव्रता आ जाती है, और उसका स्वर और मुख-भाव एक ही साथ कठोर हो जाते हैं)

सुभद्र—(किंकरकी आकृति देखकर जहाँका तहाँ खड़ा हुआ, विस्मयाभिभूत होकर अपना आधा ऊपरी शरीर पीछेको ढकेल लेता है) तुम्हें देखकर मुझे डर लगता है।

किंकर—(सुभद्रका एक हाथ पकड़कर) चलो, मेरे साथ चलो। देखें, तुम्हारे आचार्य कैसे रोकते हैं।

सुभद्र—नहीं, मुझे छोड़ दो, मुझे डर लगता है।

किंकर—(इधर-उधर शीघ्रदृष्टिसे देखकर) तुम इस तरह न चलोगे। अच्छा तो यों सही (सुभद्रको उठाकर कन्धेपर रख लेता है, और चल पड़ता है। सुभद्र चिल्लाता है—'अरे छोड़ दो, छोड़ दो!' किंकर उसका मुँह दाब कर उसे लिए हुये जाता है।

[२]

(स्थान—इन्द्रप्रस्थके राजकीय अन्तःपुरका उद्यान-भाग। समय—कृष्णपक्षकी सुनसान रात। एक स्फटिक-चत्वरपर ताराओंके क्षीण प्रकाशमें अकेली बैठी हुई विशाखा एक गीत गुनगुना रही है।)

गीत

अरे ओ, मेरे मनके शूल,
मुझे तू सोने मत देना;
अलसताके झोंकोंमें भूल
अचेतन होने मत देना!

श्रान्त दिन गया, चला जावे;
विहग-कुल लौट स्वगृह आवे;
तमिस्रा तम ही तम लावे;
मुझे क्या, तू तो है अनुकूल।
अरे ओ मेरे मनके शूल!

बुझ गई दीपावलि मेरी;
रातने भी करवट फेरी;
हुई क्या सचमुच ही देरी?
झड़ रहे इस मालाके फूल;
अरे ओ मेरे मनके शूल!

अचानक आ जावें जब वे,
सजग ही पावें दृग तब ये;
मिलूँ मैं ही आगे सबसे,
पदोंपर लोटूँ सुध-बुध भूल,
अरे ओ मेरे मनके शूल!

(पार्श्वके लता-कुंजसे अचानक सुतसोम निकल पड़ते हैं। रानी चौंककर हर्षसे उद्दीप्त हो उठती है, साथ ही लज्जित होकर अपनी प्रसन्नता छिपानेका प्रयत्न करती है।)

सुतसोम—कहो देवि, सुध-भूल होनेके पहले ही मैं कैसा आ पहुँचा?

विशाखा—(चुप रहती है)

सुतसोम—क्या देवी सचमुच ही सुध-भूल हो गई?

विशाखा—(सँभलकर) आर्यपुत्रकी जय हो!—यदि प्रतिदिन इसी तरह राजेश्वर सुध भुला दिया करें तो क्या राज्यकी कुछ हानि हो जाय?

सुतसोम—राजेश्वरीकी सुध भुलानेके लिए सामर्थ्य भी तो सामान्य नहीं चाहिए।

विशाखा—इस समय तो आर्यपुत्रने उसे राजेश्वरीके पदसे नीचे गिराकर प्रजाकी श्रेणीमें ही बिठा दिया है।

सुतसोम—बात कुछ समझमें न आई।

विशाखा—ऐसी बातकी भी क्या टीका की जाय?

सुतसोम—फिर भी सुनूँ तो, मेरे विरुद्ध तुम्हारा अभियोग है क्या?

विशाखा—(हँसकर) आपके विरुद्ध अभियोग और आप ही उसका विचार करेंगे?

सुतसोम—(सजग होकर) यह सन्देहका अंकुर कैसा? क्या देवि, कहीं मैंने न्याय-विचारमें त्रुटि कर दी?

विशाखा—देखिये, आर्यपुत्र तनिकमें ही कैसे गम्भीर हो गये। मैं तो यही कहना चाहती थी कि राजेश्वर अपनेको प्रच्छन्न रखके, वेश बदलकर, और भी अनेक प्रकारसे जिस तरह प्रजाके सुख-दुःखका परिचय लिया करते हैं, उसका अभ्यास अब उन्हें कुछ अधिक हो गया है। नहीं तो जिस दासीको वे राजेश्वरीका पद दिये हुए हैं, उसका मन परखनेके लिए इस तरह पीछे छिपकर—

सुतसोम—बस करो देवि, मैं तुम्हारी बात समझ गया। यद्यपि मैं जानता हूँ कि तुम जो कुछ कह रही हो, वह केवल तुम्हारा वाग्विनोद ही है, परन्तु मुझे मान ही लेना चाहिए कि मुझसे अनौचित्य हो गया है और—

विशाखा—बस, बस, जाने दीजिए आर्यपुत्र !

सुतसोम—बात यह हुई—मैंने देखा कि मैं आकर खड़ा हो गया और तुमने गीतकी तल्लीनता-वश मेरी ओर देखा तक नहीं। इसीसे मैं विनोद-वश लता-कुंजकी ओटमें छिप गया। यह ठीक है, मेरा उद्देश बुरा न था, परन्तु विनोदके अभिधानमें भी अनौचित्यका अर्थ अनौचित्य ही है। पतन और स्खलन इसी प्रकार पीछेसे आकर पहले तो विनोद-विलास करते हैं, और फिर तुरन्त ही स्वामी बनकर अपना पूरा आधिपत्य जमा बैठते हैं।

विशाखा—आर्यपुत्र, आप जिसे अनौचित्य कहते हैं, वह कुछ भी हो, मेरा मन उसीके लिए तरसता है। आज राजेश्वरको इतनी क्रीड़ा करनेका अवकाश तो मिला ! यदि यह अनौचित्य होता तो मेरे रोम-रोममें, मेरी प्रत्येक शिरा और उपशिराओंमें आनन्द ऐसे उल्लास-नृत्यके साथ प्रवाहित न हो उठता। आज राज्य-परिदर्शन का काम पूरा करके, इस समय यहाँ आ जानेका आपका निश्चय था। परन्तु मुझे जान पड़ा, समय हो गया और आप नहीं पधारे। इसीसे मैं कुछ उद्विग्न हो गई थी। मेरे क्षुद्र हृदयको समझना चाहिए था कि समय भले ही समयपर न पहुँचे, परन्तु आर्यपुत्र नहीं रुक सकते। मैंने अविश्वास किया, (स्वर क्रमशः गम्भीर होता जाता है) मुझे तुरन्त उसका फल मिल गया। आर्यपुत्र, अनौचित्य आपसे नहीं, हुआ है मुझसे। नहीं तो मेरे मुँहसे वैसी बात निकलती ही क्यों ?

सुतसोम—(एकाएक अट्टहास करके) इसमें अप्रसन्नताकी क्या बात है ? नहीं प्रिये, यह ठीक नहीं है। यदि आत्म-संशोधनमें तुम्हीं मुझे सहायता न दोगी, तो मैं और किससे इस बातकी आशा करूँ ?

विशाखा—आप चन्द्रमाका कलंक ही देखते हैं। किन्तु उसके अतिरिक्त वहाँ कुछ और भी तो है। क्या आप उसकी ओर दृष्टि भी न डालेंगे ?

सुतसोम—अपने प्रकाशका अंश देखनेमें तो कुछ कठिनता नहीं है। हाँ, जिनकी आँखें अपने अन्धकारके अंशमें भी प्रकाशकी ही तरह देख सकती हैं, वास्तवमें उन्हींकी दृष्टि दृष्टि कहलानेकी अधिकारिणी है।

विशाखा—(उदासीन भावसे) ठीक है।

सुतसोम—तुम जिस भावसे यह 'ठीक है' कह रही हो, वही तो ठीक नहीं है। यदि तुम कहती—'नहीं, यह ठीक नहीं है'—तो मैं तुम्हें कुछ समझानेका प्रयत्न भी करता। परन्तु यह 'ठीक है' तो अपराजित प्रतिद्वन्द्वीको कौशलसे वन्दी करके निरस्त कर देनेके समान है।

विशाखा—अच्छा बताइए, आपका कोई प्रतिद्वन्द्वी शत्रु भी है ? (सुतसोम कुछ सोचने लगते हैं। विशाखा विजयके-से उल्लाससे उत्फुल्ल हो उठती है) अब बताइये, चुप कैसे रह गये ? है इस संसारमें आपका कोई शत्रु ?

सुतसोम—इस तरह क्यों हँसती हो देवि ! क्या तुम समझती हो, मैं उत्तर न दे सकूँगा ?

विशाखा—तो फिर दीजिए न।

सुतसोम—सुनो, इस संसारमें अपना सबसे बड़ा शत्रु स्वयं 'मैं' हूँ। यह 'मैं' ही परमार्थका सबसे अधिक बाधक है।

विशाखा—(खिन्न होकर) इस 'मैं'के साथ यदि कोई विशेषरूपसे संश्लिष्ट है, तो वह भी मैं ही हूँ। पुरुषोंने अपने प्रतिपक्षमें अबला नारीको खड़ा

करके अपने पौरुषको कौन-सा गौरव प्रदान किया है, आर्यपुत्र, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। लोग आपको अजातशत्रु कहते हैं, परन्तु अब मैं अनुभव करती हूँ, आपकी यह दासी ही आपकी सबसे बड़ी शत्रु है।

सुतसोम—नहीं प्रिये, मैं तो ऐसा नहीं समझता। यदि पुरुष चारों ओरसे किसीके ऋण-पाशमें जकड़ा हुआ है तो नारीके। श्रद्धाके प्रतिदानसे ही उस ऋणका परिशोध हो सकता है। मेरे हृदयमें उसके लिए अखण्डरूपसे पूजाका प्रदीप प्रज्ज्वलित है।

विशाखा—आर्यपुत्र जो कुछ कहते हैं उसमें शंका कौन कर सकता है? परन्तु इस प्रकार पूजाका प्रदीप जलाकर आप अपनी कल्पित 'देवी'को पत्थरकी मूर्ति ही प्रमाणित कर रहे हैं। और, यह भी कि उस मूर्तिमें और आपमें दूरीका व्यवधान भी कम नहीं। सुना है, सिद्धोंने भविष्य-कथन किया है कि आप अगले भवमें पुत्र-कलत्र और राज्यका परित्याग करके बुद्धत्व प्राप्त करेंगे। मुझसे अलग-अलग-से रहकर आप इसी जन्ममें उस परित्यागका अभ्यास तो नहीं कर रहे हैं? (रानीका स्वर कम्पित हो उठता है)

सुतसोम—बुद्धदेव जो कुछ करेंगे, वह आलोच्य नहीं है। परन्तु इतना मैं कह सकता हूँ कि जिसे तुम बुद्धके कलत्र-प्रेमका परित्याग कहती हो, वह परित्याग नहीं, विश्वकी परिधिमें उस संकीर्ण प्रेमकी परिव्याप्ति मात्र है।

विशाखा—(अभिमानपूर्वक) जान पड़ता है नाथ, विशाखाके संकीर्ण प्रेमकी भी उसी विशाल परिधिमें परिव्याप्ति हो रही है। अच्छा है, वही हो जिसमें आर्यपुत्रकी प्रसन्नता।

सुतसोम—तुम जो कह रही हो, यदि वह हो जाय, तो मेरे लिए गौरवकी ही बात हो। परन्तु प्रत्येक बातके लिए समय होता है। जिस फूलमें अपने सौरभसे सारे उपवनको आमोदित करनेकी शक्ति होती है, वही जब मुकुल-रूपमें रहता है, तब अपनी क्षुद्र सीमाके भीतर ही उस सुगन्धिको रखकर वह अपनी अनागत महत्ताका संचय करता है। (विशाखाके मुँहपर दृष्टि डालते हुए उत्तर सुननेके लिए कुछ रुककर) इसलिए आगामि जन्मकी बातके लिए अभीसे चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। (कुछ सुननेके लिए फिर रुककर) कहो, क्षुद्र मुकुल,—नहीं, तुम्हारे लिए क्षुद्र कलिका कहना ही—(संयत होनेकी चेष्टा करनेपर भी विशाखाके मुँहपर हँसी फैल जाती है) हँस गई देवि, हँस गई!

विशाखा—इसमें इस प्रकार हँसनेकी क्या बात हुई, हँस आप रहे हैं या मैं?

सुतसोम—अच्छा तो दूसरी बात सुनो,—मुझे शीघ्र हस्तिनापुरसे बाहर जाना पड़ेगा।

विशाखा—क्यों, क्या कोई नई बात हुई? बहुत दिनोंके अनन्तर राजधानीमें आकर अभी आपका स्वेद भी नहीं सूखा, और आप फिर जानेकी बात कहने लगे। अच्छा, इस बार आपके साथ मैं भी चलूँगी।

सुतसोम—नहीं देवि, इस बार तुम्हारा साथ चलना ठीक न होगा। (कुछ सोचकर) अच्छा, मैं सोमवती अमावास्याके कुछ पहले मृगाचिरा पहुँच जाऊँगा। वहाँ तुम मुझसे आ मिलना। उद्यानकी मंगल-पुष्करिणीमें वहाँ तुम्हारा पर्वस्नान भी हो जायगा।

विशाखा—मेरे लिए तो आर्यपुत्र भी पर्वकी ही तरह आते हैं। कदाचित् पर्वकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह तुरन्त चले जानेके लिए आता है।

सुतसोम—तुम मेरे 'प्रतिपक्षी' की बात पूछ रही थीं, सो वास्तवमें वह प्रकट हो गया है। उसीकी शान्तिके लिए इस बार तुरन्त जा रहा हूँ।

विशाखा—क्या सुन सकती हूँ, आर्यपुत्रका यह प्रतिपक्षी कौन है ?

सुतसोम—वाराणसीका ब्रह्मदत्त।

विशाखा—तो क्या युद्ध होगा ?

सुतसोम—हो सकता है, परन्तु यह युद्ध वैसा नहीं होगा, जैसा साधारणतः समझा जाता है।

विशाखा—(शंकित होकर एक साँसमें) तो आर्यपुत्र अकेले शत्रु-सेनाके बीचमें तो नहीं जाना चाहते ?

सुतसोम—(एकाएक अट्टहास कर उठते हैं) ओः अत्रभवतीकी शंकाका कारण यह है ! नहीं देवि, ब्रह्मदत्त वाराणसीका निर्वासित राजा है। उसके साथ कुछ लोग हैं अवश्य, परन्तु उन्हें सेनाकी संज्ञा नहीं दी जा सकती।

विशाखा—तो फिर किस साहससे वह परमप्रतापी राजेश्वर—('सुतसोम' कहते-कहते रुककर) आर्यपुत्रका विरोध किया चाहता है ?

सुतसोम—तुम्हारे 'परमप्रतापी आर्यपुत्र' का ही नहीं, वह मानवमात्रका विरोधी सुना जाता है।

विशाखा—तो क्या वह इसीलिए वाराणसीके राज-सिंहासनसे उतारा गया है ?

सुतसोम—उसके विरुद्ध अभियोग तो बहुतसे हैं, परन्तु—

विशाखा—परन्तु आर्यपुत्रको किसीपर विश्वास नहीं है ? किसीकी बुराईकी बातें अपनी आँखोंसे देखकर भी आर्यपुत्र विश्वास नहीं किया चाहते और किसीकी महत्ताकी बात सुनकर भी स्वीकार कर लेते हैं !

सुतसोम—अच्छा, वह बात जाने दो। कहा जाता है कि ब्रह्मदत्तको नरमांसकी चाट पड़ गई थी, और वह वलिका बहाना करके गुप्तरूपसे प्रजाकी हत्या करता-कराता रहता था, (सुनकर विशाखा सिहर उठती है) बात प्रकट होनेपर बलाध्यक्ष कालहस्तीके नेतृत्वमें प्रजाने विप्लव करके ब्रह्मदत्तको सिंहासनच्युत कर दिया।

विशाखा—धन्य है वह प्रजा, जिसने ऐसे साहसका सत्कार्य किया !—परन्तु अब तो उसकी बुद्धि ठिकाने आ गई होगी ?

सुतसोम—नहीं, वह और भी भयंकर हो उठा है। अब तो उसे कुत्सा या निन्दाका भी भय नहीं रह गया, और वह दस्यु बनकर इधर-उधर घूम रहा है। अब तो उसका नाम ही 'नरखादक' पड़ गया है।

विशाखा—आर्यपुत्र, यह नाम सुननेमें भी बुरा लगता है। ऐसे व्यक्तिको दण्ड देनेकी व्यवस्था शीघ्र होनी चाहिए।

सुतसोम—हाँ, कुछ-न-कुछ होना तो शीघ्र ही चाहिए। इधर कुछ दिनोंसे वह एक और बड़ा दुष्कर्म कर रहा है।

विशाखा—वह क्या आर्यपुत्र ?

सुतसोम—किसी वटके नीचे, अपने अधिष्ठाताको प्रसन्न करनेके लिए उसने एक सौ एक मनुष्योंकी वलि देनेकी प्रतिज्ञा की है।

विशाखा—यह वृत्तान्त तो बहुत भीषण है। मैं तो सुनकर ही काँप उठी।

सुतसोम—तबसे वह मनुष्योंको पकड़-पकड़कर कहीं वन्दी कर रहा है। अभी-अभी कोटपालके यहाँ समाचार पहुँचा है कि कुछ मनुष्योंका पता नहीं लग रहा है।

विशाखा—आह बेचारे ! किसी तरह उन्हें बचाइये, आर्यपुत्र ! उस नराधमने ही उन्हें वन्दी कर रखा होगा।

सुतसोम—सम्भवतः ऐसा ही है। परन्तु एक बातका मुझे बड़ा आश्चर्य है। (विशाखाके मुँहपर उत्कर्ण होनेका भाव प्रकट होता है) ब्रह्मदत्त जब तक्षशिलामें पढ़ता था, तब तो ऐसा नहीं जान पड़ता था।

विशाखा—तो क्या आर्यपुत्र उसे पहलेसे जानते हैं ?

सुतसोम—तक्षशिलामें वह और मैं एक ही आचार्यके

निकट पढ़ते थे। मैं अवस्थामें कुछ छोटा था, परन्तु आचार्यने अनेक छात्रोंके ऊपर मुझ ही को पृष्ठाचार्य बना दिया था। यह बात ब्रह्मदत्तको अच्छी नहीं लगती थी। नियमानुसार मेरा जैसा सम्मान करना चाहिए था, वह नहीं करता था। हम लोगोंमें वहाँ उसके घूँसे बहुत प्रसिद्ध थे। वह उद्धत और उच्छृंखल तो अवश्य था, परन्तु आगे चलकर ऐसा निकलेगा, यह कोई नहीं जानता था।

विशाखा—तब तो ब्रह्मदत्त आपका छात्र निकला। उसे शिक्षा देनेका आपको दूना अधिकार है।—परन्तु इस समय आप श्रान्त-से प्रतीत हो रहे हैं। चलिए, विश्राम कीजिए।

(दोनोंका प्रस्थान)

[३]

(स्थान—वन। समय-सुनसान रात। किंकर और रसक एक जगह खड़े बात कर रहे हैं।)

रसक—महाराज कहाँ हैं ?

किंकर—मालूम नहीं। मैं भी उन्हींको खोज रहा हूँ।

रसक—कर तो मैं भी यही रहा हूँ, परन्तु यह इसीलिए कि आमना-सामना न हो जाय।

किंकर—सो क्यों ?

रसक—क्या यह भी पूछनेकी बात है ? इतनी दौड़-धूप की, किन्तु मुझे किसी मनुष्यकी छाया भी नहीं मिली। भाग्य तो तुम्हारा है, जो तुम आज भी एक ब्रह्मचारी पकड़ लाये। अब दुष्टके सामने—(शंकित होकर इधर-उधर देखता है कि कहीं ब्रह्मदत्त तो नहीं सुन रहा है)—अरे, तुम, उनसे जड़ न देना कि मैं ऐसी बात कह रहा था।

किंकर—इतना डरते हो तो उनकी सेवामें रहते ही क्यों हो ?

रसक—अपनी इच्छासे थोड़े रहता हूँ। यदि भागकर बच सकता तो कभीका भाग गया होता। मैंने निश्चय कर लिया है कि ब्रह्मदत्त वट देवताको जब एक सौ एक मनुष्योंकी बलि देकर अपनी कार्य-सिद्धि कर लेंगे, तब मैं अपनी सेवाके पुरस्कारमें विदा लेकर किसी जनपदमें जा बसूँगा।

किंकर—यह तो बहुत बड़ी आशा है।

रसक—(शंकित होकर) तो क्या यह अनुष्ठान पूरा हो जानेपर भी मैं छूट न सकूँगा ?

किंकर—(रसकको चिन्तित जानकर किंकरकी गम्भीरता दूर हो जाती है, और उसके ओठोंपर कुटिलताकी मूक हँसी फूट पड़ती है। उस हँसीको आँखोंकी पुतलियोंपर नचाता हुआ) —और तुमने समझा क्या था ?

रसक—अरे नहीं, तुम हँस रहे हो ? (अपनी बातका समर्थन सुननेके लिए प्रश्न-सूचक दृष्टि डालता है)

किंकर—(कुटिलतापूर्वक) तुम इस धोखेमें न रहना कि मैं सच नहीं बोल सकता। लुक-छिपकर बड़े लोगोंके पास आने-जानेसे कुछ-कुछ यह दोष मुझमें भी आ गया है।

रसक—बड़ी बात, तुममें यह दोष आया तो। तुम्हें मेरी शपथ, सच बोलना, कोई शंकाकी बात तो नहीं है ?

किंकर—शंकाकी बात है या नहीं, यह तो तुम जानो, मैं तो इतना जानता हूँ कि नियत समयमें एक सौ एक बलि-पुरुष किसी प्रकार नहीं पकड़े जा सकते। उस समय तक जितने मनुष्य मिल जायँगे, हमारी बलि भी उन्हींके साथ चढ़ा दी जायगी। (किंकर अपनी बात पूरी कर चुकता है, रसक तब भी भीत-मुद्रासे क्षण-भर तक उसके मुँहकी ओर देखता रहता है, जैसे वह कुछ और सुन रहा हो)

रसक—भाई, तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो। कुछ हो, मैं तो भागूँगा। (किंकर ठठाकर हँस उठता है। कुछ देर तक जब उसकी हँसी जारी ही रहती है, तब उसे टोककर क्रोधपूर्वक) तो तुम समझते हो, एक निराधार बात कहकर तुमने मुझे डरा दिया है ?

किंकर—नहीं—यह नहीं—मैं सोच रहा हूँ—(बात करते-करते हँसता जाता है)

रसक—मैं जानता हूँ तुम्हें। तुम्हारी यह हँसी हँसी नहीं है, रोना है। अच्छा, और हँस लो (रोषदृष्टिसे घूरता है) हाँ और—

किंकर—(हँसी रोककर) अच्छा रोना ही सही। परन्तु जब रोना ही है, तो इसी प्रकार क्यों न रोया जाय?

रसक—सचमुच तुम हृदयसे भी पशु हो गये हो—अपने आपको भी ठगनेसे नहीं चूकते। भीतरसे आता है रोना, और दिखाते हो ऊपर हँसी।

किंकर—(आत्मगर्वसे छाती फुलानेका भाव प्रकट करके)—सचमुच? तब तो इससे बढ़कर गौरवकी बात मेरे लिए दूसरी हो नहीं सकती। मैं पशु हूँ तो बाहरसे और हाँ भीतरसे भी। यह नहीं कि बाहरसे कुछ और, और भीतरसे कुछ और। कहो, अब और क्या कहते हो?

रसक—(हाथ जोड़कर माथेसे लगाता हुआ) मैंने तुम्हें हाथ जोड़े भैया! मुझसे भूल हुई, जो मैंने वैसा कहा। अब तो बता दो, किस लिए हँस रहे थे? मैं तुम्हारे क्रोधसे उतना नहीं डरता, जितना हँसनेसे।

किंकर—अच्छा, बता दूँ? मुझे तुम्हारे भोलेपनपर हँसी आ गई थी।

रसक—भोलेपनपर?

किंकर—हाँ, भोलेपनपर। भोलापन न कहकर तुम उसे मूर्खता भी कह सकते हो। तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि ब्रह्मदत्त साधारण व्यक्ति नहीं है। और यह भी तुम्हें मालूम है कि उसने अनर्घपदलक्षण मन्त्र सिद्ध कर लिया है, और उसके सामनेसे भागकर कोई जा नहीं सकता। फिर भी तुम भागना चाहते हो!

रसक—तो फिर मैं करूँ क्या?

किंकर—तुम मेरा विश्वास करोगे? मैं हस्तिनापुरकी वन्दीशालासे भागा हुआ चोर हूँ। मुझे प्राणदण्डकी आज्ञा हुई थी।

रसक—हुई होगी। यहाँ तो मुझे तुम्हारा ही बल है।

किंकर—तो सुनो, जो हो रहा है, होने दो। यह शरीर चिरकाल नहीं रह सकता, मुझे सच्चा ज्ञान-लाभ हो गया है। इधरसे उधर, उधरसे इधर आनेमें ही जीवन बिता दिया, तो क्या किया?

रसक—लो, तुम फिर हँसने लगे!

किंकर—नहीं, मैं ठीक कह रहा हूँ। जब ब्रह्मदत्तके शरण होकर ही मेरा जीवन बचा है, तब कुछ भी हो, मैं अन्त तक उनकी सेवामें रहूँगा।

रसक—अभी तो तुम कह रहे थे, वे हमें और तुम्हें देवताकी वलि चढ़ा देंगे।

किंकर—उस समय मैंने तुम्हें डरानेके लिए ही वैसा कहा था। परन्तु ऐसा हो सकता है। (रसक सन्न-सा रह जाता है) और मैं इसके लिए तैयार भी हूँ। यदि उनका अनुष्ठान मेरी वलिसे पूरा होता हो तो हो जाय यह शरीर नष्ट। मुझे इसका मोह नहीं।

रसक—(काँपकर) मुझे तो है और बहुत है। किसी तरह मेरा छुटकारा करा दो, मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ।

किंकर—(दूर किसीकी पदध्वनि होती है, कान लगाकर उसे सुनता हुआ) कदाचित् महाराज हैं।

रसक—(कान लगाकर) वही हैं। तो इस समय मुझे जाने दो। उनके सामने होते हुए मुझे डर लगता है। देखो, भैया, मेरे ऊपर दया रखना। (जाता है)

(ब्रह्मदत्तका प्रवेश)

ब्रह्मदत्त—(कुछ दूरसे) किंकर!

किंकर—(उसकी ओर बढ़ता हुआ) महाराज, मैं उपस्थित हूँ।

"विशाल-भारत"

मन्दिरके द्वारपर

(वृहत्तर भारतके द्वीपोंमें)

[चित्रकार—श्री धीरेन्द्रकृष्णदेव वर्मन
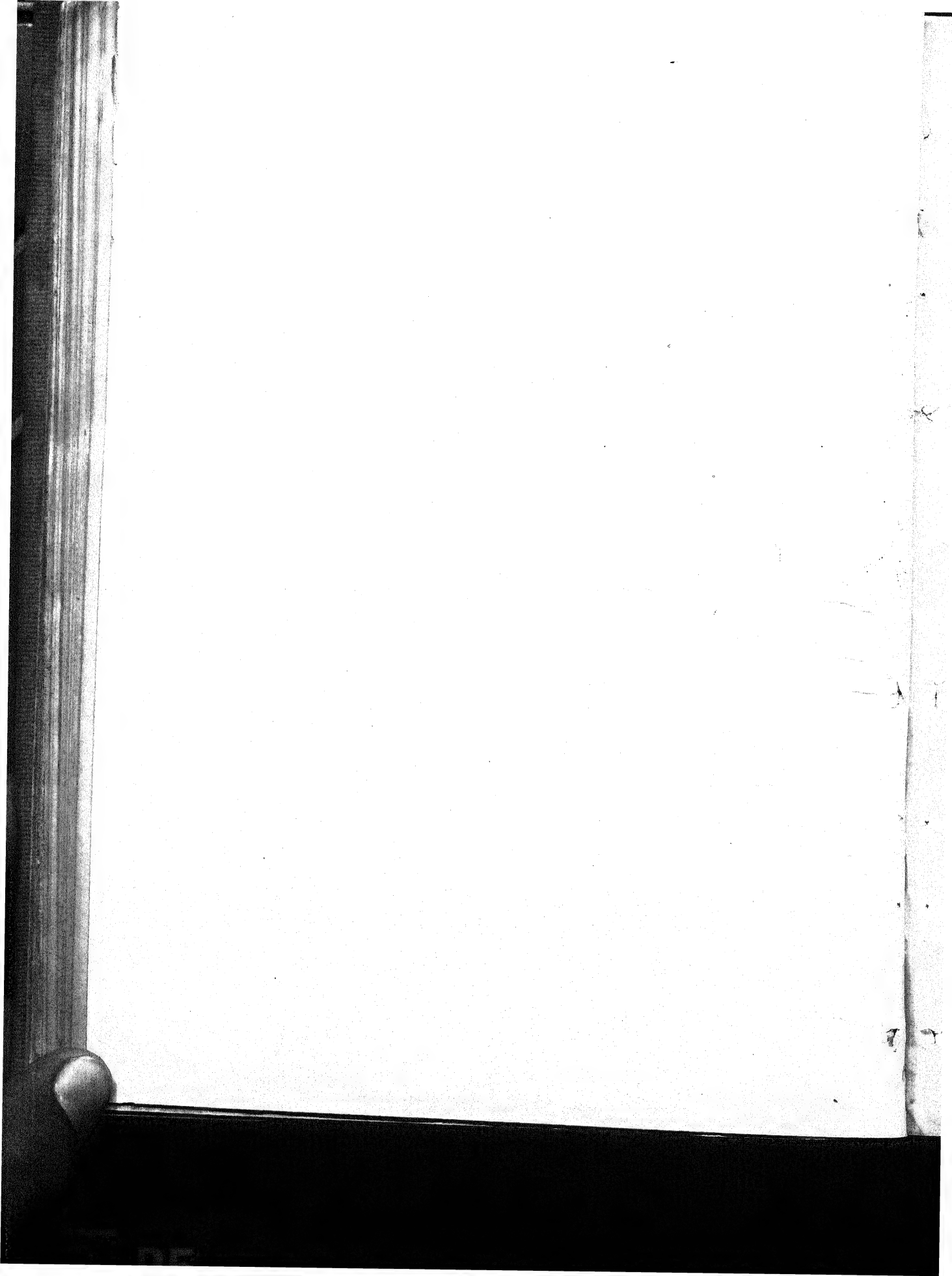
ब्रह्मदत्त—तुम तैयार हो ?

किंकर—बहुत अच्छी तरह ।

ब्रह्मदत्त—रसक कहाँ है ?

किंकर—अभी तो यहीं था ।

ब्रह्मदत्त—फिर तुमने जाने क्यों दिया उसे ?

किंकर—मुझे मालूम न था ।

ब्रह्मदत्त—(विकृत अनुकरण करके) मुझे मालूम न था—(रोषके साथ शब्दोंपर जोर देता हुआ) तुम्हे मालूम होना चाहिए था ।

किंकर—(कुछ देर सन्नाटेमें रहकर) तो उसे खोज लाऊँ ?

ब्रह्मदत्त—(हाथके संकेतसे रोककर) रहो, आज उसने कुछ किया ?

किंकर—आज तो उसे कोई मनुष्य नहीं मिला ।

ब्रह्मदत्त—(भड़ककर) क्यों नहीं मिला, फिर उसने किया क्या ?

किंकर—मैं तो ।

ब्रह्मदत्त—बीचमें अपनी बात मत जोड़ो । मैं जानता हूँ, आज तुम एक ब्रह्मचारी लाये थे । मैं रसककी बात पूछता हूँ ।

किंकर—तो जाकर मैं उसे अभी बुला लाऊँ ?

ब्रह्मदत्त—(कुछ ठहरकर) मैंने अभी तुमसे कहा था, तैयार हो ? जानते हो किस लिए ?

किंकर—(विषयके परिवर्तनसे मुक्ति-सी पाकर) आप जो आज्ञा देंगे, उसीके लिए ।

ब्रह्मदत्त—तो सुनो, अब देर न होनी चाहिए ।

किंकर—बिलकुल नहीं, अब सोमवती अमावसके दिन ही कितने रह गये ! उसी दिन तो नरयज्ञ है ।

ब्रह्मदत्त—एक बात और है । मुझे मालूम हुआ है कि हस्तिनापुरके चर हमारा स्थान खोज रहे हैं ।

किंकर—तो क्या रसकको बुलाकर स्थान बदलनेकी तैयारी करूँ ?

ब्रह्मदत्त—(अप्रसन्न होकर) स्थान बदलोगे और वटवृक्ष भी उठाकर अपने साथ ले चलोगे ? सुनो, मैं ब्रह्मदत्त हूँ । तुम्हारी तरह तनिकमें ही डरकर स्थान छोड़नेकी बात मैं नहीं सोच सकता ।

किंकर—(डरनेके अभियोगसे उत्तेजित होकर) महाराज, मैं डरता होता, तो आपकी सेवामें ही न होता । अब मैं कुछ न कहूँगा । आप आज्ञा दीजिए, मैं आगमें कूदनेके लिए तैयार हूँ ।

ब्रह्मदत्त—(किंकरको शान्त करता हुआ) अच्छा, अच्छा कोई बात नहीं, तुम बड़े भलेमानस हो ।

किंकर—महाराज, मेरे लिए भलेमानसका पद अपवाद रूप हो गया है । मैं इतना जानता हूँ कि मैं आपकी आज्ञाके बाहर नहीं ।

ब्रह्मदत्त—अच्छा सुनो, सुतसोम हमें पकड़नेकी चिन्तामें है । स्थान बदलनेसे काम न चलेगा ।

किंकर—तनिक भी नहीं ।

ब्रह्मदत्त—मैंने सोचा है,—मैंने क्या सोचा, देवताने ही मेरे हृदयमें प्रेरणा की है—

किंकर—आप वटवृक्षके नीचे बैठे होंगे ।

ब्रह्मदत्त—हाँ ।

किंकर—तभी ।

ब्रह्मदत्त—सुतसोम हमें पकड़ना चाहता है, हम उसे पकड़ेंगे ।

किंकर—बात तो महाराजने बड़ी अच्छी सोची । यदि हम उन्हें पकड़ सके—

ब्रह्मदत्त—(कठोर पड़कर) पकड़ क्यों न सकेंगे ?

किंकर—वही तो ! हम उन्हें पकड़ लेंगे, और वे अपने छूटनेके लिए, सौ क्या दो सौ तक बलि-पुरुष दे देंगे । कुछ और भी—

ब्रह्मदत्त—नहीं, उसे छोड़नेकी आवश्यकता नहीं । सुतसोमके रक्तसे ही सोमवतीको हमारी पूजा पूरी होगी ।

किंकर—तो एक बात और हो सकती है । उन्हें छोड़कर बलि-पुरुष ले लिये जायँ, फिर दुबारा पकड़ लिया जाय ।

ब्रह्मदत्त—(झुड़ककर) धुत् ! छोड़कर फिर पकड़ना कैसा ?—इसी कामके लिए मैं तुम्हें अभी तैयार चाहता हूँ। तुम हस्तिनापुरसे परिचित हो, तुम साथ रहोगे, तो काम शीघ्र बन जायगा।

किंकर—जो कुछ मेरे किये हो सकेगा, मैं तैयार हूँ।

ब्रह्मदत्त—तुम तो बड़े चतुर हो। किसी तरह उसे नगरके बाहर तक लाओ, साथमें रक्षक और प्रहरी न हो।

किंकर—रक्षक और प्रहरियोंसे तो वे दूर ही रहते हैं। कहा करते हैं—'मैं क्या कोई वन्दी हूँ, जो मुझे घेरे रहना चाहते हो ?'

ब्रह्मदत्त—तब तो तुम उसके सम्बन्धमें जानते हो।

किंकर—अच्छी तरह। वे बड़े ढोंगी हैं। सारे उत्तरापथ और दक्षिणापथमें उनकी जोड़का दूसरा राजा आपको न मिलेगा। मैं उनकी एक बात आपको सुनाऊँ।

ब्रह्मदत्त—क्या ?

किंकर—वे कहते हैं—'मैं प्रजाका सेवक हूँ।' हूँ— सेवक हैं ! सेवक हैं तो सिरपर राजमुकुट क्यों धरते हैं, अपने नामके पहले राजेश्वर पद क्यों लगवाते हैं, और परिषद्में सबसे ऊँचे आसनपर क्यों बैठते हैं ? क्या सेवकका धर्म यही है ?

ब्रह्मदत्त—वह सेवक हो, या और कुछ, हमें तो उसे पकड़ना है।

किंकर—परन्तु जब वे कहते हैं, तो सेवक बनकर रहते क्यों नहीं ? मैं हूँ उनकी प्रजा। मैं उनसे कहूँ कि ऐसा कर दो तो कर देंगे ?

ब्रह्मदत्त—(रूखेपनसे) इस समय इन बातोंका प्रयोजन नहीं। प्रातःकाल ही हमें हस्तिनापुर पहुँचना है। रसक भी साथ रहेगा। (बातें करते हुए दोनों जाते हैं। थोड़ी देर तक रंगस्थल निर्जन ही रहता है। तदनन्तर रसक एक वृक्षकी ओटसे अपना सिर निकालकर इधर-उधर दृष्टि डालता है, फिर बाहर आता है)

रसक—हूँ—ये बातें ! (भौंहें चढ़ाकर सिर मटकाकर भाव-भंगीसे प्रकट करता है—अच्छा समझूँगा !)

पटाक्षेप

[क्रमशः

ओस

श्री रामनारायण चतुर्वेदी, बी० ए०

उषा देवीका नव श्रृंगार
प्रकृतिका शुभ सौन्दर्य अपार ;
कुसुम किसलय निज हृदय निकाल
देखते सुषमा नेत्र प्रसार।

*

दिवाकरको मुक्तामय थार
देवि वसुधाका यह उपहार ;
दलित दूर्वाका रोदन रोष
इसे कैसे कहते कवि ओस ?

देख नवलाके उरका भार
हुआ प्रेमी पागलको खेद ;
झटककर तोड़ दिया हिय-हार
समझ कर दो हृदयोंका भेद।

*

देख भारतमाताका त्रास
रातको रोया है आकाश ;
लुटाया या कुबेरने कोष
इसे मैं कैसे मानूँ ओस ?

पंजाबका सर्वप्रथम वैज्ञानिक

श्री सद्गोपाल, एम० एस-सी०

आजकलके भारतीय विश्वविद्यालयोंसे प्रतिवर्ष सहस्रों विद्यार्थी विज्ञानमें उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं। अकेले पंजाब-विश्वविद्यालयसे प्रतिवर्ष केवल रसायनशास्त्रके बीसियों स्नातक पास हो जाते हैं। जिन प्रयोगशालाओंमें यह लोग शिक्षा प्राप्त करते हैं, वहाँ सब प्रकारकी सुविधाओंके होते हुए भी यह बहुसंख्यक स्नातक देशकी आर्थिक उन्नतिके लिए किसी प्रकारका भी कार्य नहीं कर सके हैं। आज हम जिन महानुभावके जीवनका वर्णन करेंगे, उनका विस्तृत कार्य आजकलके निरर्थक रिसर्चसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक साधारण शिक्षाप्राप्त नवयुवक केवल अपनी अद्वितीय मेधा और अध्यवसायके ज़ोरसे, और सब प्रकारकी सुविधाओंके सर्वथा अभाव होते हुए भी, किस प्रकार पंजाबमें सर्वप्रथम वैज्ञानिकका पद प्राप्त कर सका, यह इस लेखसे विदित हो सकेगा।

पंजाबके प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा व्यापारिक नगर अमृतसरके स्टेशनसे उतरते ही एक सड़क नगरके बाहरकी ओर खालसा-कालेजको जाती है। इसी सड़कपर थोड़ी दूर जानेपर इस्लामाबाद नामक एक छोटीसी बस्तीमें हमारे चरितनायक ला० शम्भुनाथजीकी एसिड-फैक्टरीकी ऊँची-ऊँची चिमनियोंमें से धुआँ निकलता दिखाई पड़ता है।

ला० शम्भुनाथजीका जन्म बटाला-निवासी ला० पूर्णचन्द कपूरके कुलमें अमृतसरके समीप किला सोभासिंह नामक स्थानपर हुआ था। ज़रा सयाने होनेपर उन्हें स्थानीय स्कूलमें पढ़नेके लिए भेज दिया गया। इस स्कूलसे इस होनहार बालकने एंग्लो-वर्नाक्यूलर मिडलकी परीक्षा पास की। बाल्यावस्थासे ही उसका मन पुस्तक पढ़नेमें नहीं लगता था। वह प्रायः साधारण रासायनिक प्रयोग और पुरज़ोंके अभ्यासमें ही लगा रहता था, इसीलिए उसकी नियमबद्ध शिक्षा यहींपर समाप्त हो गई।

इस होनहार बच्चेकी आयुका तेरहवाँ वर्ष था, जब उसे ध्यान हुआ कि सोनेकी परीक्षाके लिए किसी सुगम उपायका अनुसन्धान होना चाहिए। स्कूलमें उसे विज्ञानकी कितनी शिक्षा मिली होगी, इसका अनुमान आजकलके मिडल श्रेणीके विद्यार्थियोंके ज्ञानसे किया जा सकता है। इस बालकको वैज्ञानिक अनुसन्धानकी प्रबल इच्छा थी, इसीलिए उसने सोनेकी परीक्षाके साधनोंपर विचार करना प्रारम्भ कर दिया। माता-पिता बालककी इन क्रियाओंको सर्वथा निरर्थक और धनका अपव्यय समझते थे। वे प्रायः उसे झिड़का करते थे कि तुम अपने जीवनको ख़राब कर रहे हो। अन्तमें इन बाधाओंसे तंग आकर शम्भुनाथजीको अठारह वर्षकी आयुमें एक दिन घरसे निकलना पड़ा। उसके सामने दो मार्ग थे। प्रथम मार्ग था माता पिताके आज्ञानुसार स्कूलमें चले जाना, और दूसरे मार्गके अनुसार स्कूलकी निरर्थक पढ़ाईसे दूर रहकर अपनी वैज्ञानिक क्रियाओंको सफल बनाना। दूसरा मार्ग था अत्यन्त कण्टकाकीर्ण, पर हमारे दृढ़व्रती बालक वैज्ञानिकने इसी मार्गका अवलम्बन अपने लिए श्रेयस्कर समझा।

घरसे निकलते समय शम्भुनाथजीके पास केवल आठ आने पैसे थे। स्थानीय डिस्ट्रिक्ट आफ़िसमें उन्हें १०) मासिकपर लेखकका काम मिल गया। इस पदपर वे लगातार छै वर्षों तक कार्य करते रहे। अपनी आयका अधिकांश वे वैज्ञानिक क्रियाओंके लिए ही व्यय करते थे। एक बार उन्होंने वेतनवृद्धिके लिए उच्च अधिकारियोंसे प्रार्थना की। वहाँसे असन्तोषजनक उत्तर मिलनेपर उन्होंने नौकरी छोड़कर अपनी बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करनेका निश्चय कर लिया।

अमृतसरमें उन दिनों "मूस" नामक एक 'धातुका मिश्रण' (alloy) बिका करता था। इसमें ताँबा, सोना तथा चाँदीका सम्मिश्रण था। ला० शम्भुनाथने इसे खरीदकर कापर-नाइट्रेट और गन्धकके प्रभावसे हल करके हीराकसीस निकालकर बेचना प्रारम्भ कर दिया। यह उनके वैज्ञानिक अनुसन्धानका प्रथम सफल प्रदर्शन था। इस क्रियासे जो सोना तथा चाँदी अलग होते थे, उन्हें भी बेचकर वे इस व्यापारको खूब बढ़ाने लगे। अमृतसरके हरिसिंह नामके एक सज्जनने उनसे बहुतसा सामान खरीदा, जिससे उन्हें पर्याप्त लाभ पहुँचा।

उन्हीं दिनों अमृतसरमें एक विशेष प्रकारकी धातुके बर्तनोंका अधिक प्रचार था। ला० शम्भुनाथने टूटे-फूटे बर्तनोंको खरीदकर उनमें से भी कापर-नाइट्रेट और गन्धकके तेज़ाबकी सम्मिलित क्रियासे हीराकसीस और ज़िंक-सल्फेट (Zinc Sulphate) बनाना प्रारम्भ कर दिया।

अपने वैज्ञानिक अनुभवके क्षेत्रको विस्तृत करनेके लिए व्यय करनेमें वे सदैव निस्संकोच रहते थे। इसी कारण अनेक बार उनका जीवन-निर्वाह कठिन हो जाता था। ऐसे कई अवसरोंपर उनकी धर्मपत्नीने अपने आभूषण बेचकर परिवारका पालन किया। अन्तमें उनके सतत उद्योगसे सोनेकी परीक्षाके लिए, अर्शमीदसके प्रसिद्ध वैज्ञानिक सिद्धान्तके अनुसार, तराज़ू बनानेमें सफलता प्राप्त हो गई। इसे उन्होंने 'गोल्ड टेस्टिंग बैलेंस' (Gold Testing Balance) के नामसे १८९० में पेटेंट कराकर बेचना प्रारम्भ किया। तराज़ू इतना सूक्ष्म बना कि थोड़ीसी भी मिलावटकी परीक्षा बड़ी सुगमतासे हो सकती है। इस 'गोल्ड टेस्टिंग बैलेंस' के बनानेका अधिकार ला० नत्थूराम ओसवालने ८०००) में उनसे खरीदकर उनकी आर्थिक समस्याको सुलझानेमें बड़ी सहायता की। इस सफलतासे प्रेरित होकर वे फिर वैज्ञानिक अनुसन्धानमें तल्लीन हो गये। शोरेके तेज़ाबको बनानेके लिए वे पोटाशियम-नाइट्रेट (क़लमी शोरा) और गन्धकके तेज़ाबकी क्रियाका संशोधन करने लगे। इस विधिसे तेज़ाब तो बन जाता था, किन्तु बर्तन भी टूट जाता था। यह एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई। तब उन्होंने शीशे और इनामेलके बर्तनोंका भी व्यवहार किया, किन्तु सफलता न हो सकी। अन्तमें उन्हें यह सूझा कि ताँबेके बर्तनके अन्दर सोनेकी पतली चादर लगाकर देखा जाय। इस उद्देश्यके लिए तीस तोला सोना खरीदकर बर्तन बनाया गया, और तेज़ाब बनाना प्रारम्भ किया। जब तेज़ाब बना, तो उसमें सोना भी घुलना प्रारम्भ हो गया। तीस तोलेमें से केवल छै तोला सोना बाक़ी मिल सका! नवयुवक शम्भुनाथको यह आर्थिक धक्का भी निराश न कर सका। अन्तमें आगरेके पत्थरसे सब सामान बनाकर शोरेका तेज़ाब बनाना प्रारम्भ कर दिया। गत महायुद्धके कारण इस तेज़ाबकी माँग बहुत बढ़ गई, और ला० शम्भुनाथजीका व्यापार भी खूब चमक उठा। तेज़ाबके साथ ही उन्होंने कई प्रकारकी धातुओंके भस्म तथा लवण (Oxides and Salts) भी बनाने प्रारम्भ किये।

काम इतना बढ़ गया था कि उन्हें नगरसे बाहर वर्तमान स्थानपर आना पड़ा। यहाँ आकर उन्होंने तेज़ाबके कारखानेके साथ ही जिस्तके रंग, जिन्हें पिगमेंट (Pigment) कहा जाता है, बनाने शुरू कर दिये। इस कामको करनेमें उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और सिरदर्द होने लगा। अन्ततोगत्वा इसी कारणसे रक्त विषाक्त (Lead Poisoning) हो गया, और सन् १९२४ में इस साधारण शिक्षाप्राप्त, किन्तु सफल वैज्ञानिकका स्वर्गवास हो गया।

रासायनिक प्रयोगोंके अतिरिक्त उन्हें जादूके खेल (Magical Tricks) और शतरंजका भी बहुत शौक़ था। धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय वे नित्यप्रति किया करते थे, और प्रायः आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान धर्मवीर पं० लेखरामजीके साथ जाकर विधर्मियोंसे शास्त्रार्थ करते थे।

ला० शम्भुनाथजीके चार पुत्र हैं। उनके नाम

क्रमश: ला० बोधराजजी, ला० सोमराजजी, ला० मुलखराजजी और ला० हंसराजजी हैं। पिताके योग्य पुत्रोंने कार्यको भलीभाँति सँभालकर इतना उन्नत किया है कि अब एक नया कारखाना बहुत विस्तृत रूपमें बनाना पड़ा है। इस समय गन्धक, नमक तथा शोरेके तेज़ाबोंके सिवा निम्न-लिखित पदार्थ भी विशुद्ध रूपमें बनाये जा रहे हैं :—

१. कॉपर सल्फ़ेट (Copper Sulphate)
२. फ़ेरस सल्फ़ेट (Ferrous Sulphate)
३. एपसम साल्ट (Epsom Salt)
४. फिटकरी (Alum)
५. ग्लॉबर साल्ट (Glauber Salt)
६. फ़िनाइल, इत्यादि।

इस समय यह कारख़ाना उपर्युक्त वस्तुएँ बनाकर देशकी एक बड़ी भारी माँगको पूरा कर रहा है। इसे अधिक उन्नत बनानेके लिए इसमें आधुनिक विज्ञानके अनुसार परिवर्तन होना आवश्यक है।

पावस

श्रीमती 'चकोरी'

आते छिपे, दृग मूँदते भानुके,
मेघके छौने बड़े उतपाती ;
चंचला माँ तब दीपक लेकर
रोषभरी उन्हें ढूँढ़ने आती।
झोली भरे सुर-सुन्दरियाँ
गजमोतियोंकी झड़ी-सी हैं लगाती ;
ओलोंके रूपमें आते वही,
उन्हें बल्लरियाँ 'हियहार' बनातीं।

करते घन घोष जिसे सुनके
जग जाते जो भाव हैं सोये हुए ;
कहीं झिल्लियाँ बीन बजा रही हैं
स्वर एक-में-एक सँजोये हुए।
कहीं चातक हर्षसे विह्वल हैं
अपनेपनमें कुछ खोये हुए ;
अनुरागके रंगमें डूब रहे
मन स्वाँति सुधासे भिगोये हुए।

कहीं श्याम चँदोवा तना नभने
हरी फ़र्श बिछा दी धराने अहा !
तरु-पल्लवोंने हरी शाल ली ओढ़,
हरे रंगसे गया विश्व नहा।
सजे बल्लरियोंने हरे परिधान—
कोई हरे तोरण बाँध रहा ;
मलयानिलने यह पावस आगम—
का, सबसे जा सँदेशा कहा।

अलि गायकोंकी जुड़ी मंडली है,
कहीं नृत्य मयूर दिखा रहे हैं ;
तितली फिरतीं बनी अप्सरा-सी
जिन्हें पुष्प सुरा-सी पिला रहे हैं।
तरु तन्मय होकर झूमते हैं,
पिक गान मनोहर गा रहे हैं ;
बक-पाँति कहीं उड़ी जा रही है,
हलके कहीं बादल छा रहे हैं।

उमड़ी चली पैर पखारनेको बड़ी साधसे है रविबाला कहीं ;
रची पावसके गले डालनेको जुगुनूने मनोहर माला कहीं।
लिये तूलिका सन्ध्या भी आ पहुँची नभ कंचन-सा रँग डाला कहीं ;
है वियोगिनीका उर बेधनेको सुनासीरने चाप सम्हाला कहीं।

धर्म क्या है और क्या नहीं ?

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रश्न

धर्म क्या है, यह बतलाना उतना कठिन नहीं, जितना यह बतलाना कि धर्म क्या नहीं है ? विवेचकको लाचार होकर कठिन कार्य ही करना पड़ता है, क्योंकि धर्मके नामपर जो सिक्के इस समय प्रचलित हैं, वे प्रायः सभी खोटसे भरपूर हैं। धर्मके नामपर जो सिक्के चलते हैं, वे प्रारम्भमें ही न्यूनाधिक असल और नक़लके मेलसे बनाये जाते हैं। कुछमें तो सोलह आना ताँबा रहता है, जिसे खरा सोना कहकर पेश किया जाता है। कुछमें आधा और तीनचौथाई मिश्रण रहता है, जिसे ग़नीमत समझिये। ऐसे सिक्केकी परखका उत्तम ढंग यही है कि सोने और ताँबेकी विशेषताओंको जानकर उनकी परीक्षा कर डाली जाय। जहाँ मिश्रणकी मात्रा अधिक और असल धातुकी मात्रा कम हो, वहाँ पहले मिश्रणको पहचान लेना अधिक आवश्यक है।

धर्मोंके आचार्य लोग संसारमें सबसे बड़ी वस्तु धर्मको ही मानते हैं। अनन्य सुख उसीसे मिलता है, परमात्माके दर्शन उसीसे होते हैं। जन्म-जन्मान्तरका सुधार भी उसीसे सम्भव है। अभिप्राय यह कि धर्मगुरुओंकी सम्मतिमें धर्मसे ही मनुष्यका उद्धार हो सकता है, परन्तु सब स्थानोंपर और सब समयोंमें वह एक ही सा नहीं समझा जाता। 'मुंडे मुंडे मतिभिन्ना' का ऐसा उत्तम दृष्टान्त अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? कहीं ज्ञान-रूपी नौकाको ही भवसागरसे पार उतरनेका उपाय बतलाया गया है, तो कहीं केवल कर्मकी महिमा गाई गई है। एक धर्ममें अहिंसाको धर्मका प्रधान स्तम्भ माना गया है, तो दूसरे धर्मानुयायियोंके लिए मुक्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन पशु या मनुष्यकी कुरबानी है। मुसलमानके लिए चार बीवियाँ जायज़ हैं, तो ईसाई एकसे अधिक बीबीको अधर्म समझता है। हिन्दूके लिए तलाक़ महापाप है, परन्तु ईसाई और मुसलमानके लिए वह विहित है। किसीके लिए सिरपर बालोंका बोझ लादना धर्मका आवश्यक अंग है, तो किसीके लिए सिर घुटाना ही महाधर्म है। कोई लम्बी दाढ़ीको स्वर्गकी सीढ़ी मानता है, तो दूसरा शरीरके सब बालोंको बढ़ाना ही परलोकके लिए उपयोगी समझता है। धर्माचार्यों और उनके भोले-भाले अनुयायियोंकी दृष्टिमें तो यह भिन्नता केवल जोशको पैदा करनेका साधन है। वे देखते हैं कि दुनियामें पाप भरा पड़ा है। उन्हें अपनेसे भिन्न सम्मति रखनेवालोंकी हरएक वस्तु गुनाह दिखाई देती है, जिसपर उनका मज़हबी जनून जोश मारता है, परन्तु एक विवेचकके लिए तो यह भिन्नता दूसरा ही सन्देश लाती है। वह देखता है कि धर्मके नामपर मनुष्य-जातिने मानो अपने घरमें एक विषका बीज बो लिया है। जिसे पवित्र वस्तु समझा जाता है, वह घरों और जातियोंको उजाड़नेका साधन बना हुआ है।

तब विवेचक सोचता है कि आख़िर यह धर्म है क्या चीज़ ? सुन्द और उपसुन्दको लड़ानेवाली इस मोहनी मायाका असली रूप क्या है ? यह मनुष्य-जीवनसे उत्कृष्ट समझी जानेवाली, परन्तु अन्धे जोशमें मनुष्यको पशुओंसे भी बदतर बना देनेवाली, बला क्या है ? इसमें कुछ असल भी है, या सब खोट ही खोट है ?

धर्मका बीज

मनुष्य पग-पगपर अपनी परिमित शक्तियोंका अनुभव करता है। वह केवल सुख-ही-सुख भोगना चाहता है, परन्तु लाचार होकर उसे दुःख भोगने पड़ते हैं। उस समय वह अनुभव करता है कि 'मैं कमज़ोर हूँ। मेरी शक्ति बहुत कम है। इस संसारमें कोई ऐसी भी शक्ति है, जो मुझसे ज़बरदस्त है, वही हमें

दुःख देनेवाली है।' जो दुःख दे सकता है, वही सुख भी दे सकता है। दुःखका अभाव ही सुख है। दुःखका आभ्यन्तर अनुभव मनुष्यके हृदयमें एक परोक्ष शक्तिकी भावनाको पैदा करता है।

वह भावना दृढ़ होने लगती है, जब मनुष्य जड़ संसारके नियमोंको देखता और उनपर विचार करता है। सूर्य, चाँद, रात-दिन और ऋतुओंका नियमसे आना-जाना देखकर मनुष्य सोचता है कि इस नियमका चलानेवाला कौन है? कोई है तो अवश्य, पर वह हमारे जैसा नहीं है। वह हमसे बड़ा है—बहुत बड़ा है—तभी तो ऐसे बड़े ब्रह्माण्डको चला रहा है। बस, जो इस विशाल ब्रह्माण्डको बनाने और बिगाड़नेवाला है, वही हमारे सुख-दुःखोंका अधिष्ठाता भी है। धर्मके साथ जो भय और आशाका अंश मिला हुआ है, उसका यही कारण है।

मनुष्य दुःखसे घबराता है। घबराकर सोचता है, मैं इससे कैसे बचूँ, क्या करनेसे बच सकूँगा? वह देखता है कि कई बार यत्न करनेपर वह दुःखोंसे बच भी गया है। भूख लगी, तो खाना खा लिया। पेटमें दर्द हुआ, तो औषध ले ली। सर्दी लगी, तो कुछ ओढ़ लिया। दुःख रुक गया। तो दुःखोंसे बचना सम्भव है। ऐसे उपाय सम्भव हैं, जो मनुष्यको दुःखोंसे बचा सकें। उन सब उपायोंको हम तो जानते नहीं। बस, वही जानता है, जो हमारे सुख-दुःखोंका अधिष्ठाता है। वही ईश्वर है।

धर्ममें दो भाव मुख्य रहते हैं—(१) मनुष्यसे अतिरिक्त किसी शक्तिकी भावना, और (२) कर्तव्या-कर्तव्यका विचार। दोनोंका जन्म दुःखके अनुभवसे होता है। दुःखका सामना प्रत्येक मनुष्यको करना ही पड़ता है, यही कारण है कि किसी-न-किसी रूपमें धर्मकी भावना प्रत्येक हृदयमें रहती है।

मनुष्य-जीवनमें धर्मका स्थान

निबन्धके प्रारम्भमें हमने कहा है कि धर्मके सिक्केमें असल कम और खोट अधिक है। धर्मका असल हिस्सा उतना ही है, जो हमने ऊपर लिखा है। मनुष्य दुःखसे घबराता है, उससे बचनेकी चेष्टा करता है; फिर भी दुःखसे पीछा नहीं छूटता, तब वह सुख-दुःखके एक शक्तिशाली अधिष्ठाताकी कल्पना करता है, और जिस उपायसे दुःखसे बच सके, उसकी तलाश करता है। जो आदमी जलप्रधान देशमें रहे, उसके लिए सबसे आवश्यक वस्तु नौका है। उसपर बैठकर मनुष्य उस पार जानेकी आशा रखते हैं। इस संसारके दुःखोंसे उस पार उतरनेके लिए भी मनुष्य नौका तलाश करता है, और उसे धर्मके नामसे पुकारता है। इस अभिप्रायको दर्शनकारने निम्न-लिखित सूत्रमें कहा है—

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः सधर्मः।"

इस लोकमें जो सुख मिलता है, उसे अभ्युदय, और मरनेके पीछे जिस सुखकी कल्पना की गई है, वह निःश्रेयस कहलाता है। जिन कर्मों या विचारोंसे वह दोनों मिलें, वह धर्मके नामसे पुकारा जाता है। वह दुःखभीरु सुखार्थी मनुष्यका सहारा है।

प्रत्येक मनुष्य कोई-न-कोई सहारा अवश्य ढूँढ़ता है। बड़े-से-बड़ा नास्तिक भी किसी-न-किसी विचार या लक्ष्यकी तलाश करता है। शायद ५ फी-सदी मनुष्य भी इस नियमके अपवाद नहीं हो सकते। ईश्वर न सही, नेचर सही; आस्तिकता न सही, नास्तिकता सही; मनुष्य-हृदयके एक रिक्त कोनेको भरनेके लिए एक-न-एक चीज़ तो चाहिए ही। मनुष्य जीवनमें धर्मका यही स्थान है।

मत या दीन कैसे बनता है ?

इस लोक और परलोकके दुःखोंसे बचनेके उपायका नाम धर्म है। अरबीका 'मज़हब' शब्द लगभग इसी भावको बतलाता है। मज़हबका शब्दार्थ है 'रास्ता'। ठीक रास्ता ही मज़हब है। रास्तेका कोई लक्ष्य होता है। वह लक्ष्य इस लोक और प्रायः परलोकमें ही ढूँढ़ा जाता है। हमसे बहुत अधिक बड़ी एक शक्ति और दुःखसे बचनेके मार्गकी सत्तापर विश्वास, धर्म या मज़हबका मौलिक विश्वास है, परन्तु आज हम इन दोनों

लेबलोंको जिन बोतलोंपर लगा हुआ देखते हैं, उनमें कुछ और ही माल भरा हुआ है। वह इतना सरल या शुद्ध नहीं है। हमने जो मौलिक विचार बतलाये हैं, यदि वहीं तक धर्म सीमित रहता, तो एक प्रकारसे मनुष्य प्रकृतिका खण्ड न हो जाता। वह केवल तरल विचारको पसन्द नहीं करती। वह तो प्रत्येक तरल विचारको ठोस और प्रत्यक्ष रूपमें देखना चाहती है। नदियाँ प्राय: पहाड़से पैदा होतीं और किसी-न-किसी रूपमें समुद्रमें विलीन हो जाती हैं। मार्गमें उनका जो रूप होता है, वह प्रारम्भ और अन्तके रूपोंसे भिन्न होता है। स्रोतसे निकलनेके पश्चात् जल जिस भूमिमें से होकर गुजरता है, वह उसकी विशेषताओंको ले लेता है। यदि भूमिकी मिट्टी काली है, तो जलका रंग काला होगा, और यदि मिट्टी पीली है, जल पीला होगा। इसी प्रकार धर्म-सम्बन्धी मौलिक विचारोंका प्रवाह जिस मार्गसे होकर गुज़रता है, उसकी विशेषताओंको अपना लेता है। उन सब विशेषताओंके कारण वह केवल धर्म न रहकर मत, या दीन, अथवा religion का रूप धारण कर लेता है। यदि हम प्रचलित मतोंकी पड़ताल करें, तो उन्हें हम स्थान, समय और व्यक्तियोंकी विशेषताओंका मजमुआ पायँगे। उनका नाम हम अपनी शिष्ट भाषामें धर्म रखना चाहते हैं। यदि एक मैले-कुचैले चीथड़ेको खेतकी विशुद्ध रूई कहा जा सकता है, तो वर्तमान मतोंको भी धर्म नामसे पुकारा जा सकता है।

मनुष्यमें ईश्वर-कल्पना ✓

मनुष्यका हृदय कहता है कि संसारमें मनुष्यसे अधिक शक्तिशाली वस्तु अवश्य है। वही इस विस्तृत ब्रह्माण्डको चलाती है। वह वस्तु कैसी है? इस प्रश्नके उत्तरोंने ही दुनियाकी फ़िलासफ़ीको इतना भिन्न और पेचीदा बनाया है। प्राय: मनुष्य अपनी शक्तियोंसे परिमित रहता है। वह दूसरोंमें भी अपनी ही तसवीर देखता है। जैसे वह स्वयं घरका संचालन करता है, उसी प्रकार वह इस ब्रह्माण्डके संचालककी कल्पना करता है, तो ब्रह्माण्डको बड़ा घर और उसके संचालकको अपना विस्तृत रूप समझता है। वह ईश्वरको बड़ा मनुष्य या मनुष्यविशेषसे अधिक कुछ नहीं समझता—शायद सामान्यत: समझ भी नहीं सकता। योगदर्शनने उसे पुरुषविशेष कहा है। जैसे घड़ेको कुम्हार बनाता है, वैसे ब्रह्माण्डके बनानेके लिए ईश्वर चाहिए। यह एक ज़बरदस्त तार्किकोंकी युक्ति है। जब योग और तर्कके आचार्य भी ईश्वरको मनुष्यकी परिभाषामें देखते हैं, तब भला केवल हृदयकी भावना या अंधी भक्तिसे प्रेरित होनेवाले सन्तों या भक्तोंसे मनुष्य-प्रतिभाकी सीमाका उल्लंघन कैसे सम्भव है? ईश्वरके सम्बन्धमें ८० फ़ी-सदी कल्पनाएँ ऐसी ही होती हैं, जिनमें ईश्वरको मनुष्यकी बड़ी तसवीर मान लिया जाता है।

मनुष्यके साथ कुटुम्बका विस्तार लगा हुआ है। ग्रीस, भारत, मिस्र, रोम आदि पुराने देशोंकी देव-मालाओंका यही आधार है। यदि ब्रह्माण्ड एक घर है, तो उसके संचालकोंका भी एक परिवार होगा।

मनुष्य वेष बदलकर अपने बहुतसे काम चला लेता है। चोरोंको पकड़नेके लिए प्राय: राजपुरुष नये-नये रूप धारण करते हैं। ईश्वर-रूपी मनुष्य क्यों पीछे रहे। वह भी राक्षसोंके ध्वंसके लिए रूप धारण करता है। यह अवतारवादका बीज है।

मनुष्य शासन करनेके लिए गद्दीपर बैठता है, जो अन्य आसनोंसे ऊँची रहती है। ईश्वर भी संसारका शासन करता है, उसका आसन बहुत ऊँचा—सातवें आसमानपर होना चाहिए।

मनुष्य ईश्वरकी भावनामें मनुष्य-भावनाको मिश्रित कर देता है। धर्मके उस प्रारम्भिक विचारमें यह पहला खोट है, जो मनुष्यमें भेद-बुद्धि पैदा करती है।

पैग़म्बरकी कल्पना

धर्मकी तहमें हमने दो भावनाएँ देखी हैं। मनुष्य दु:खसे डरता है, और सुखको चाहता है। भय और आशा यह दो धर्मके आधार-स्तम्भ हैं। ऐसे असामान्य

कल्पनाशाली मनुष्य पैदा होते रहते हैं, जो साधारण जनताके हृदयोंमें भय और आशाके बलबलोंको बड़े वेगसे जगा देते हैं। दुःखसे घबराये और अकुलाये हुए हृदय उन महापुरुषोंकी ओर उत्सुकतासे निहारने लगते हैं। वे पैग़म्बर कहलाते हैं। उनके नामको पवित्र समझा जाने लगता है। वे ईश्वरके चीफ़ एजेंट माने जाते हैं। कलमेमें ख़ुदाके साथ उनका नाम लिया जाने लगता है। वही और केवल वही मनुष्यको भवसागरसे पार उतारनेके लिए मल्लाह माने जाने लगते हैं।

धर्मके प्रारम्भिक भावमें भेद पैदा करनेका यह दूसरा कारण होता है। ईश्वर वही है तो क्या हुआ, पर चीफ़-एजेंट तो भिन्न है, इसी आधारपर यहूदी, ईसाई और मुसलमानोंमें कितने घोर संग्राम हुए हैं। लक्ष्य एक ही है, परन्तु वहाँ तक पहुँचनेवाला गाइड भिन्न है। इसी आधारपर ख़ूनकी नदियाँ बह गई हैं। यदि पक्षपात छोड़कर केवल समालोचक बनकर सोचा जाय, तो पैग़म्बरकी भिन्नताके कारण सिरफुड़ौवल करनेवाले लोग बच्चे प्रतीत होंगे, परन्तु जिन लोगोंमें धार्मिक जुनून पैदा हो जाता है, उनकी पागलसे भी बुरी दशा हो जाती है। जिस हज़रत ईसाने कहा है कि 'यदि कोई मनुष्य तुम्हारे एक गालपर चपत जमाये, तो तुम उसके सामने दूसरा गाल कर दो', उसी हज़रत ईसाके अनुयायी ईसाइयतके नामपर उन लोगोंके गले काटते फिरते हैं, जिन्होंने उनकी ओर कभी हाथ भी नहीं उठाया। अन्धता यहीं तक समाप्त नहीं होती। ईसाइयोंके एक सम्प्रदायने दूसरे ईसाई सम्प्रदायका जितना रक्त बहाया है, उतना शायद काफ़िरोंका भी न बहाया हो। यह धर्मान्धताके नमूने हैं।

धर्मको मतके रूपमें परिवर्तित करनेवाली वस्तु दुःखसे बचाने और सुखकी आशा पूरी करनेके लिए सिफ़ारिश करनेवाले एक चीफ़-एजेंटकी कल्पना है। वह चीफ़-एजेंट पैग़म्बर कहलाता है।

किताब

मत या दीनके लिए एक अत्यावश्यक वस्तु किताब है। किताब दो तरहकी होती है। एक वह, जो सीधी ईश्वरकी कही हुई समझी जाती है। वह किन्हीं अनेक व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित हुई हो, या किसी एक व्यक्ति द्वारा, पर उसके शब्द ईश्वरके शब्द समझे जाते हैं, और मनुष्योंके नाम सम्बोधित होते हैं। वेद, कुरान आदि इसी कोटिके हैं। दूसरी प्रकारकी किताब या धर्मग्रन्थ वे हैं, जो ईश्वर-वाक्य होनेका दावा न करें, केवल धर्मके पैग़म्बरका वाक्य समझा जाय, परन्तु उसका स्थान अपने दीनमें वही हो, जो क़ुरानका इस्लाम या वेदका हिन्दू-धर्ममें है। बौद्ध जातक ग्रन्थोंमें बुद्धके उपदेश-वाक्य इसी कोटिके हैं। मिस्र, बेबीलोनिया आदि प्राचीन जातियोंके धर्मग्रन्थ अनेक व्यक्तियोंके गाये या कहे हुए वाक्योंके समूह-रूप ही होते थे। बाइबिल भी एक प्रकारसे ऐसा संग्रह ही है। किताबकी तहमें यह कल्पना काम करती है कि जब ईश्वर इस जगत्‌का नियन्ता है, तो अन्य राजाओंकी तरह उसकी भी कोई-न-कोई क़ानूनकी किताब होनी चाहिए। जो पैग़म्बर द्वारा परमात्मा तक पहुँचनेकी आशा रखते हैं, वे उसीको क़ानूनका प्रकाशक मानते हैं। जो एक पैग़म्बरकी कल्पनाके पूर्व जातीय धर्मके माननेवाले होते हैं, वे प्रायः भिन्न-भिन्न समयोंके बने हुए क़ानूनोंके संग्रहको ही किताबकी पदवी दे देते हैं।

किताब पवित्र मानी जाती है। हरएक किताबका माननेवाला केवल अपनी किताबको सच्ची और पाक मानता है। दूसरी किताबोंमें सत्यकी मात्राकी सम्भावना रखते हुए भी उन्हें पूरा सत्य नहीं माना जाता। सच्चे मतवादीका यही चिह्न है कि वह अपने अवतारको पूर्णावतार, और दूसरे सब अवतारोंको अंशावतार कहे।

दलाल पुरोहित

यदि ईश्वर एक बड़ा या विशेष मनुष्य है, तो उसके काम करनेके लिए विशेष नौकरोंकी आवश्यकता है। यदि ईश्वरका चीफ़-एजेंट पैग़म्बर है, तो फिर सब-

एजेंट क्यों न हो ? यदि मनुष्य-जातिके हितके लिए धर्म-पुस्तकरूपी पेनल्ड कोडको जन्म दिया गया है, तो वकीलोंकी और मजिस्ट्रेटोंको भी ज़रूरत है। इन सब आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए धर्मके दलाल पैदा हो जाते हैं। वे पुरोहित, मुल्ला, पादरी, मुनि आदि अनेक नामोंसे पुकारे जाते हैं। मनुष्य स्वभावसे आलसी है। वह मेहनतके बिना ही फल पाना चाहता है। उसे स्वयं अच्छे काम न करने पड़ें, और पुरोहितके जप-तपसे ही मोक्ष मिल जाय, तो क्या हर्ज है। यजमान छल-कपटसे दुनियाको ठगता रहे, और धर्मके एजेंट उसके लिए स्वर्गकी सीढ़ियाँ बना डालें, तो क्या बुरा है ? पुरोहितकी प्रथाका जन्म मनुष्यके प्रमादसे होता है। चालाक और प्रभावशाली लोग अपनी अक्लका सिक्का जमाकर साधारण मनुष्योंकी समझपर परदा डाल देते हैं। साधारण मनुष्य असल और नक़लमें भेद नहीं कर सकते। परिणाम यह होता है कि जहाँ प्रारम्भमें प्रतिभा या तपस्याके बलसे ही लोग पुरोहित बनते हैं, वहाँ आहिस्ता-आहिस्ता पुरोहितोंके कुल बन जाते हैं। पुरोहित कुलमें जन्म लेकर ठग और बदमाश भी पुरोहित ही रहते हैं! जो अधिकार जन्मसे ही मिल जाय, इसके लिए परिश्रम कौन करे ? 'अर्के चेन्मधुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्' ज्ञान और कर्म—दोनोंका परित्याग करके भी जो लोग ईश्वरके विशेष दूत बने रह सकें, और पूज्य समझे जायँ, उन्हें किताबोंसे सिर पटकने और तपश्चर्या द्वार शरीरको कष्ट देनेसे क्या लाभ ?

जिन मतोंमें ईश्वरको नहीं माना जाता, उनमें भी महात्मा बुद्ध, या महात्मा महावीर और संस्थापकोंको वही स्थान मिल जाता है, जो ईश्वरवादी मतोंमें ईश्वरको मिलता है। इन मतोंमें पुरोहित संस्थापकके ही प्रतिनिधि समझे जाते हैं।

रीति-रिवाज

मनुष्य पुरानी चीज़में श्रद्धा रखने लगता है। यह उसकी विशेषता है—और निर्बलता भी है। वह अनुभव करता है कि जो वस्तु मुझसे पहले पैदा हुई, और अब तक है, वह मुझसे बढ़िया अवश्य है। बच्चा अनुकरणसे ही बहुत-कुछ सीखता है; अनुकरण शिक्षाका एक सहायक है, परन्तु जब युवाकी बुद्धि परिपक्व हो जाती है, तब उसे उन लोगोंमें शामिल हो जाना चाहिए, जिनका अनुकरण किया जाता है। अनुकरण अबोधके लिए है—विवेकीके लिए नहीं। जब विवेककी दशामें पहुँचकर भी मनुष्य अनुकरण ही करता है, तब वह अपने लिए ख़तरनाक हो जाता है। रीति-रिवाज़ मनुष्यके अनुकरण-बुद्धिके ही परिणाम हैं। जो होता आया है, वह ठीक है, यह मनोवृत्ति प्रचलित रीति-रिवाजोंको पवित्र धर्मकी पदवी तक पहुँचा देती है। मतोंके संस्थापक जो कुछ करते या कहते थे, उनके एजेंट जो कुछ करते या कहते रहे हैं, वह सब कुछ धर्मके नामसे पुकारा जाकर मतका आवश्यक अंग बन जाता है। रीति-रिवाजके शामिल हो जानेसे मत एक पेचीदा और देखनेमें रोबदार पदार्थ बन जाता है। मनुष्य सिरके बाल किस ढंगपर कटाये ? दाढ़ी कैसी रखे ? कपड़ा किस ढंगका पहने ? जूता खुला हो, या बन्द ? ईश्वरका ध्यान खड़ा होकर करे, या बैठकर ? धर्मके स्थानके दो द्वार हों, या चार ? थूकना हो तो पूर्वकी ओर थूके, या पश्चिमकी ओर ? दिनमें एक बार खाये, या दो बार ? साल-भर कितनी बार दान करे ? मतोंके आचार्य और पुरोहित इन प्रश्नोंके भी उत्तर उसी दृढ़ निश्चयके साथ देते हैं, जिस दृढ़ निश्चयसे वह मनुष्यके नित्य धर्मोंका बखान करते हैं। रीति और रिवाज धर्ममें शामिल कर दिये जाते हैं—उसके आवश्यक अंग बन जाते हैं। गौण और मुख्यका भेद नष्ट हो जाता है। धर्म एक प्रेतका रूप धारण कर लेता है, जो मनुष्यके सिरपर हमेशा दिन और रात—सवार रहे।

मनुष्य-जातिका सबसे बड़ा शत्रु

मनुष्य अनुभव करे कि वह संसारमें सबसे बड़ा नहीं—कोई ऐसी शक्ति भी है, जो उससे बड़ी और

ऊँची है—और साथ ही उसके हृदयमें सुख प्राप्त करने और दुःखसे बचनेकी अभिलाषा तथा उस अभिलाषाको पूर्ण करनेके साधनोंकी जिज्ञासा हो—यह दोनों बातें स्वाभाविक हैं। यही धर्मका बीज है। इस समय धर्मके नामसे जो मत रूपी अनेक नदियाँ बह रही हैं, उनका मूल स्रोत यही है।

वह स्रोत जब पर्वतकी कन्दरासे निकल कर घाटियोंमें बहने लगता है, तब पर्वतकी चट्टानें और भूमि उसमें अपना हिस्सा डालने लगती हैं। काश्मीरमें जाकर झेलम नदीका मूल स्रोत देखो। झरना कितना स्वच्छ है। पानी मोतीके रंगको मात करता है। दस गज़की गहराईमें तैरती हुई मछलीके रोएँ दिखाई देते हैं। दो मीलकी यात्राके पीछे पानी गदला हो जाता है, और दस मील पहुँचकर वह इस योग्य नहीं रहता कि उसमें स्नान भी किया जाय। जिस भूमिसे होकर पानी गुज़रा, उसने उसपर क़ब्ज़ा जमा लिया। पानी मिट्टीके रंगमें रँगा गया।

यही दशा धर्म-भावनाकी है। भावना मनुष्य-प्रकृतिका एक अंश है—इस कारण अनिवार्य है। वह भावना मनुष्योंमें होकर बहती है, तो कलुषित हो जाती है। उसमें जो मिश्रण हो जाते हैं, उनमें से मुख्य वह है, जो हम इस निबन्धमें दिखा चुके हैं। और भी गौण मिश्रण हैं। कहीं अत्यन्त क्रूरता—यहाँ तक कि मनुष्यका भी बलिदान किया जाता है, कहीं अत्यन्त भावुकता—यहाँ तक कि जुएँ और लीखें अपने शरीरपर पाली जाती हैं—यह बेहूदगिएँ और पिशाचलीलाएँ भी धर्मके नामपर होती हैं। मुख्य और गौण, सामान्य और व्यक्तिगत—सभी प्रकारके मिश्रणों और बेहूदगिओंको लिए हुए जब धर्मरूपी जल-प्रवाह बहता है, तब वह मनुष्य-जातिका सबसे बड़ा शत्रु बन जाता है, क्योंकि वह मनुष्यकी मानसिक दासताका सबसे बड़ा सहायक हो जाता है, और मानसिक दासतासे ही अन्य सब प्रकारकी दासताएँ जन्म लेती हैं।

मानसिक दासताका मित्र

वर्तमान रूपमें व्यवहारमें आनेवाला धर्म कई प्रकारके खोटके मिल जानेसे मनुष्य-जातिके लिए एक आफ़त बना हुआ है। हमारे इस कथनको समझने और माननेके लिए किसी परिश्रमकी आवश्यकता नहीं है। मनुष्यको मन विचार करनेके लिए दिया गया है। मननशक्तिको माँजकर उससे कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय किया जाता है। यदि मनका संस्कार करनेकी जगह उसे लोहेके डिब्बेमें बन्द कर दिया जाय, तो उन्नति रुक जायगी। डिब्बा जितता ही मज़बूत होगा, उन्नतिमें उतनी ही अधिक बाधा आयेगी। थोड़ी-बहुत धर्म-भावना उसमें स्वाभाविक है। जब धर्मके नामपर मत या दीनका डिब्बा तैयार करके मनुष्यके मनको उसमें बन्द कर दिया जाता है, तो मनकी उन्नति सर्वथा रुक जाती है। वह डरका शिकार हो जाता है। किताब, कलमा और काबा, श्रुति-स्मृति और तीर्थ उसके सिरपर सवार हो जाते हैं। वह स्वतन्त्र कर्ता नहीं रहता—प्रत्युत बीसियों बन्धनोंमें जकड़ा जाकर सोलह आना गुलाम बन जाता है।

मानसिक दासता सन्य सब प्रकारकी दासताओंकी माता है। जब इंजिन ही बिगड़ गया, तो गाड़ी क्या चलेगी? उस समय ड्राइवर भी अशक्त हो जाता है। मनके अपाहज हो जानेपर आत्मा जड़से भी बदतर हो जाता है। जड़ स्वयं अपना नाश नहीं कर सकता, दासताकी बेड़ियोंमें जकड़ा हुआ मन अपना और अपने मालिकका भी सर्वनाश कर देता है। सब प्रकारकी गुलामी मनकी गुलामीका परिणाम है, और मनुष्यके फैलाये हुए चित्रके रूपमें ईश्वर, पैग़म्बर, किताब, पुरोहित और रूढ़ियाँ मनको क़ैदी बनानेके लिए लोहेकी सलाख़ों और तालोंका काम देते हैं। इस कारण वर्तमान रूपमें धर्म मानसिक दासताका सबसे बड़ा मित्र और इसीलिए मनुष्य-जातिकी उन्नतिका सबसे बड़ा शत्रु है।

अंगूठीकी मुसीबत

"तो क्या मैं जाकर चाबियोंका गुच्छा ले आऊँ ?" —मैंने शाहदासे पूछा।

"अपने ब्याहकी ऐसी धुन ?" शाहदा बोली—"अच्छा जा !"

मैं प्रसन्न होती हुई कमरेसे बाहर निकली।

दोपहरका समय था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। माताजी अपने कमरेमें सो रही थीं। एक टहलनी पंखा झल रही थी। मैं चुपकेसे बाहरवाले कमरेमें पहुँची, और मसहरीके तकियेके नीचेसे चाबियोंका गुच्छा लेकर सीधी कमरेमें आई, और शाहदासे कहा—"जल्दी चलो।"

हम दोनोंने धीरेसे पंजोंके बल चलकर, कि कहीं कोई पैरकी आहट न सुन ले, जीनेकी राह ली। ऊपर पहुँचीं, और पिताजीवाली छतपर भी वैसा ही सन्नाटा पाया। सबसे पहले दौड़कर मैंने वह द्वार जो ज़ीनेसे बाहर आने-जानेके लिए था, बन्द कर दिया। फिर वह द्वार, जिससे अभी हम लोग ऊपर आई थीं, बन्द कर लिया। अब हम लोग पिताजीके कमरेमें घुसीं। मैंने उनकी अलमारीका ताला खोला। क्या देखती हूँ कि सामने बीचवाले तख्तेपर बहुतसे पत्र और चित्र रखे हैं। एक चीज़की ओर इशारा करके शाहदा बोली—"वह देख, वह देख, वह तो अच्छा है !"

मैंने कहा—"नहीं, शुरूसे देखो। इस ओरसे।" यह कहकर मैंने पहला बंडल खोला, और उसमें से चित्र निकाला। वह एक प्रोफेसर साहबका चित्र था, जिनकी अवस्था कोई पैंतीस वर्षकी होगी। वह एक बहुत ही बढ़िया सूट पहने बड़ी शानसे कुरसीका तकिया पकड़े खड़े थे। कुरसीपर उनका पाँच वर्षका बालक बैठा था। उनकी पहली स्त्रीका स्वर्गवास हो चुका था, और अब मुझसे ब्याह करना चाहते थे। नाम, पता इत्यादि सब चित्रकी पीठपर लिखा हुआ था।

"यह ले, पहले ही बिस्मिल्लाह ग़लत !"—शाहदा बोली।

मैंने चित्र देखते हुए कहा—"क्यों, क्या यह बुरा है ?"

"दुष्ट, यह दुहाजू है।"—शाहदा बोली—"इससे भूलकर भी ब्याह न कीजियो। तू तो अपनी तरह कोई क्वाँरा ढूँढ़। अरी, तनिक इस बालकको तो देख। अगर तेरे नाकोंमें दम न कर दे और नथनोंमें तीर डाल-डाल दे, तो मेरा नाम नहीं। देखती नहीं कि विषकी गाँठ कितनी चंचल है, और फिर रातमें तेरी सौत स्वप्नमें आकर अलग गला दबायेगी।"

"तू तो सिड़िन हो गई है।"—मैंने कहा—"शाहदा ढंगकी बातें कर।"

शाहदाने हँसकर कहा—"मेरी बलासे, मुझे क्या, कल करती हो, तो आज कर ले। मेरी समझमें तो इस प्रोफेसरको भी कोई ऐसी ही मिले, तो ठीक रहे, जो दो-तीन नटखट बच्चे दहेजमें साथ लाये, और सब मिलकर इसके बालकको मारते-मारते इसका कचूमर निकाल दें। चल, इसे रख और दूसरा देख।"

प्रथम चित्रपर यह रिमार्क पास किया गया, और उसको जैसाका तैसा रख दिया।

दूसरा चित्र उठाया और शाहदासे पूछा—"यह कैसा है ?"

शाहदा ध्यानसे चित्रको देखकर बोली—"वैसे तो ठीक है, परन्तु कुछ काला है। कौनसे दर्जेमें पढ़ता है ?"

मैंने चित्रको भली प्रकार देख-भालकर कहा—"बी० ए० में पढ़ता है। काला तो ऐसा नहीं है।"

शाहदा बोली—"हूँ, यह तुझे क्या हो गया है ? जिसे देखती है, उसीपर रीझ जाती है ! न काला देखती है, न गोरा। न बूढ़ा देखती है, न जवान।"

मैंने ज़ोरसे शाहदाके चुटकी-भरके कहा—"दुष्ट, मैंने

तुझे इसीलिए बुलाया था कि तू मुझे खिजावे ? ध्यानसे देख।"

ध्यानसे चित्रको देखकर और कुछ सोचकर शाहदा बोली—"बहन, यह किसी तरह भी ठीक नहीं। मैं तो यही कहूँगी, वैसे तू जाने।"

मैंने कहा—"पत्र तो देख, कैसे धनवानका बेटा है।"

यह चित्र एक विद्यार्थीका था, जो टेनिसका बल्ला लिये हुए बैठा था। दो-तीन पदक लगाये हुए था, और दो-तीन जीते हुए 'कप' भी मेज़पर रखे थे।

शाहदा बोली—"वैसे तो लड़का अच्छा है। उम्रमें भी तेरे जोड़का है, मगर अभी पढ़ता है। और तेरी भी शौकतकी-सी दशा होगी कि दस रुपया मासिक जेबखर्च और कपड़ेपर चाकर हो जावेगी और सास-ननदकी रात-दिन जूतियाँ। यह तो बखेड़ा है।"

मैंने कहा—"बी० ए० में पढ़ता है। वर्ष दो वर्षमें नौकर हो जायगा।"

शाहदा बोली—"टेनिसका जमादार वैसे भी हो रहा है। तू देख लीजियो कि दो-तीन बार फेल होगा। सास-ननद ताने देंगी कि बहू पढ़ने नहीं देती। फिर वह दौड़ने-धूपनेका शौक़ीन। तुझे रपटा मारेगा। वैसे तो लड़का अच्छा है। सूरत भी भोलीभाली है, और ऐसा कि जब कुछ छेड़-छाड़ करे, तो ताक़में बैठाल दिया; किन्तु न बाबा, मैं यह सलाह न दूँगी।"

इस चित्रको भी रख दिया। अब दूसरा बंडल खोला, और उसमें भी एक चित्र निकला।

"अरे यह निगोड़ा पानका गुलाम कहाँसे निकला!" शाहदा हँसकर बोली—"देख तो दुष्टकी दाढ़ी कैसी है, और फिर मूँछें उसने ऐसी कतरवाई हैं, जैसे सींग कटाकर बछड़ोंमें मिलनेकी कहावत है।"

मैं भी हँसने लगी। यह एक बड़े-भारी रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे, और उनकी अवस्था भी अधिक न थी; किन्तु मुझे वह तनिक भी पसन्द न आये।

ध्यानसे शाहदाने चित्र देखकर प्रथम तो उनका उपहास किया, फिर कहने लगी—"ऐसेको भला कौन लड़की देगा? न-मालूम इसके कितनी लड़कियाँ और स्त्रियाँ होंगी। फेंक इसे।"

यह चित्र भी रख दिया गया। दूसरा बंडल खोलकर एक और चित्र निकाला। यह तो बड़ा गबरू जवान है। "इससे तू तुरन्त कर ले।"—शाहदा चित्र देखकर बोली—"यह कौन है, देख तो?"

मैंने देखकर बताया कि डाक्टर है।

"बस। बस। बस। यह ठीक है। अच्छी तरह तेरी नाड़ी टटोल-टटोलकर थरमामीटर लगायेगा। चेहरा-मोहरा भी ठीक है।" शाहदाने हँसकर कहा—"मेरा दूलहा भी ऐसा ही हट्टा-कट्टा बहुत तन्दुरुस्त है।"

मैंने हँसकर कहा—"दुष्ट, फिर भी तूने ऐसी बातें कहाँ सीखीं? क्या तूने अपने दूलहाको देखा है?"

"देखा तो नहीं, किन्तु सुना है कि बहुत सुन्दर है।"

मैंने मुसकराकर चिढ़ानेकी नियतसे कहा—"खाक, भद्दा-सा होगा।"

"भद्दा-सा होगा?" शाहदा घबराकर बोली—"इतना तो मैं जानती हूँ कि जो कहीं वह तेरे सामने पड़ जावे, तो तू उसपर ज़रूर ही रीझ जावे।"

मैंने अब डाक्टर साहबके चित्रको ध्यानसे देखा और उसकी छानबीन की। यह बात न थी कि वह-मुझे बुरे लगे हों, किन्तु इस विचारसे कि आपसमें एक दूसरेके विचार मिल सकें, मैंने कहा—"इनकी नाक ज़रा कुछ मोटी है।"

"सब ठीक है।" शाहदा बोली—"ज़रा इसका खत तो देख।"

मैंने देखा, केवल दो पत्र हैं। पढ़नेसे मालूम हुआ कि इनकी पहली स्त्री मौजूद है, किन्तु पगली हो गई है।

"दूर कर, दूर कर, इस कम्बख़्तको आँख ओटकर," शाहदाने कुढ़कर कहा—"झूठा है दुष्ट। कलको तुझे भी पागलखानेमें डालकर तीसरीको तकेगा।"

डाक्टर साहब भी छोड़ दिये गये, अब और एक चित्र उठाया।

शाहदाने और मैंने ध्यानसे इस चित्रको देखा। यह चित्र एक चढ़ती अवस्थावाले सुन्दर जवानका था। शाहदाने पसन्द करते हुए कहा—"यह तो ऐसा है कि मेरी भी राल टपकी पड़ती है। देख तो, कितना सुन्दर जवान है, बस, इससे आँख मीचकर कर ले, और इसे गलेका हार बना लेना।"

हम दोनोंने ध्यानसे इस चित्रको देखा। सब प्रकार अच्छा लगा और पास भी कर दिया। शाहदाने उसके पत्र देखनेकी इच्छा प्रकट की। पत्र जो पढ़े, तो मालूम हुआ कि आप विलायतमें पढ़ते हैं।

"अरे राम! राम! छोड़ इसे।"—शाहदाने कहा।

मैंने कहा—"कोई कारण भी है ?"

"वजह यह कि इसे भला वहाँकी मिसें छोड़ेंगी। अजब नहीं, वह एकआधको साथ लावें।"

मैंने कहा—"फिर इससे क्या होता है ? महमद भाईको तो देखो, पाँच वर्ष विलायतमें रहे, तो क्या हो गया ?"

शाहदा गर्म होकर बोली—"बड़े तेरे महमद भाई। रजिस्टर लेकर वहाँकी भावजोंके नाम लिखना शुरू करेगी, तो सारी उम्र बीत जायेगी, और रजिस्टर पूरा न होगा। मैं तो ऐसा जुआ न खेलूँगी, न किसी दूसरेको सलाह दूँगी। यह उधारका-सा मसला ठीक नहीं।"

यह चित्र भी मन न भाया, और रख दिया गया। इसके बाद एक और निकाला। शाहदाने चित्र देखकर कहा—"यह तो खुदाकी दुआसे इतने दुबले-पतले हैं कि सुईके नकुएमें से निकल जायँगे। अगर कोई आँधीका झकोरा आया, तो उड़-उड़ा जायँगे, और तू बेवा हो जायगी।"

इसी भाँति दो-तीन चित्र और देखे, फिर असली चित्र आया, जिसे देखकर मेरे मुँहसे अचानक निकल गया—"ओहो !"

"मुझे दे, देखूँ, देखूँ"—कहकर शाहदाने चित्र ले लिया। हम दोनोंने ध्यानसे उसको देखा। यह एक बड़ासा चित्र था। प्रथम तो जिसका चित्र था, वह आप ही जीता-जागता चित्र बन रहा था। और फिर इतना साफ और उत्तम रीतिसे खींचा गया था कि रोम-रोमका अक्स था। शाहदाने हँसकर कहा—"इसे मत छोड़ियो। ऐसे मिलें, तो मैं दो कर लूँ। यह है कौन ?"

चित्रको उलटकर देखा। जैसे दस्तखत ऊपर थे वैसे ही पीठपर भी थे, किन्तु शहरका नाम लिखा हुआ था। और पत्रोंके बिना देखे, मुझे ज्ञात हो गया कि यह किसका चित्र है। मैंने शाहदासे कहा—"यह वही हैं, जिनकी उस दिन मैंने तुझसे चर्चा की थी।"

"अच्छा, यह बैरिस्टर साहब हैं!" शाहदाने प्रसन्न होकर कहा—"इनकी सूरत तो अच्छी है, मगर कुछ चलती-चलाती भी है ?"

मैंने कहा—"अभी क्या चलती होगी। अभी आये ही कितने दिन हुए।"

"तो फिर हवा खाते होंगे।" शाहदाने हँसते हुए कहा—"परन्तु तू उससे ज़रूर ही कर ले। खूब तुझे मोटरोंपर घुमावेगा, और सिनेमा और थियेटर भी दिखावेगा, जलसोंमें भी नचावेगा।"

मैंने कहा—"कुछ कंगाल थोड़े ही हैं। इस वक्त तो पिताके सर खा-पी रहे हैं।"

शाहदाने चौंककर कहा—"अरी, सुन तो सही।"

मैंने कहा—"कहो।"

शाहदा बोली—"रूप-रंग भी अच्छा है। बहुत गोरा चिट्टा है। यहाँ तक कि तेरेसे भी अच्छा है। और उम्र भी ठीक है, मगर कहीं कोई मेम-वेम तो नहीं पकड़ लाया है ?"

मैंने कहा—"मैं क्या जानूं, लेकिन अगर कोई साथ होती, तो ब्याह काहेको करते ?"

"ठीक। ठीक।" शाहदा सर हिलाकर बोली—"बस, अब तू अल्लाहका नाम लेकर उसे फाँस।"

मैंने चित्र उठाये, और शाहदा दूसरे चित्र देखने लगी। मैं पत्र पढ़ रही थी, और वह एक चित्रकी ओर मुँह बना रही थी। मैंने प्रसन्न होकर पत्रका कुछ भाग उसे सुनाया। शाहदा सुनकर बोली—"वाह! वाह!" और आगे बढ़ी, तो कहने लगी—"वह मारा!" इसी तरह सारा पत्र पढ़ डाला।

शाहदाने पत्र सुनकर कहा—"यह तो सब कुछ ठीक है, और चूल बैठ गई। अब तू गुड़ बाँट।"

हम दोनोंने इस चित्रको ध्यानसे देखा। दोनोंको सब प्रकार भला लगा। यह एक नई उमरवाले बैरिस्टर थे, और बहुत ही सुन्दर जँचते थे। नाक-कान इत्यादि सारा शरीर सुडौल था। शाहदा रह-रहकर बड़ाई कर रही थी। दाढ़ी-मूँछ सब साफ थीं। एक धारीदार सूट पहने हुए थे। हाथमें कोई पुस्तक थी।

मैंने बैरिस्टर साहबके दूसरे पत्र भी पढ़े, और मुझे सब हाल खुल गया कि बैरिस्टर साहब एक बहुत ऊँचे और धनवान घरानेके हैं। ब्याहकी सारी बातचीत तै हो चुकी है। अन्तवाले पत्रसे पता चलता है कि बस ब्याहकी तिथिकी कुछ उलझन बाक़ी है।

मेरी इच्छा हुई कि और पत्र पढ़ूँ, और विशेषकर आनरेरी मजिस्ट्रेट साहबवाला, परन्तु शाहदा बोली—"अब और पत्र पढ़नेकी आवश्यकता नहीं। बस, यही ठीक है।"

मैंने कहा—"इनकी बातचीतकी कुछ भनक मेरे कान तक पहुँच चुकी है। फिर देख तो लेने दे कि कहाँ तक बातचीत हो चुकी है।"

शाहदाने भड़ककर कहा—"चल, जाने दे, हरामजादेकी बात छोड़।"

मैंने बहुत-कुछ यत्न किया, किन्तु उसने एक न मानी। झंझट दूर करनेके लिए सब चीज़ें जल्दी-जल्दी जहाँकी तहाँ रख दीं, और अलमारीका ताला बन्द करके मैंने मरदाने ज़ीनेका द्वार खोला। शाहदाके साथ चुपकेसे जैसे आई थी, वैसे ही कमरेमें लौट गई। जहाँसे कुंजी ली थी, उसी प्रकार रख दी। शाहदासे देर तक बैरिस्टर साहबके बारेमें बातचीत होती रही। शाहदाको इसीलिए बुलाया भी था। शामको वह अपने घर चली गई, मगर इतना बता गई कि मौसीकी बातचीतसे भी मालूम होता है कि तेरा ब्याह अब तै हो चुका है, और तू बहुत शीघ्र लटकाई जावेगी।

[२]

इस बातको महीना-भरसे अधिक हो गया। कभी-कभी तो मात-पिताकी बातचीत चुपकेसे सुनकर उनके मनका भाव लेती थी, और कभी ऊपर जाकर अलमारीसे नये आये हुए पत्र पढ़ती थी। मैं मन-ही-मन प्रसन्न थी कि मुझ-सा भाग्यवान भला कौन होगा। इतनेमें मालूम हुआ कि सब बातचीत ठीक होकर अन्तमें बिगड़ना चाहती है।

अन्तिम पत्रसे मालूम हुआ कि बैरिस्टर साहबके वालिद चाहते हैं कि विवाह और विदा शीघ्र ही हो जाय—दोनों एक साथ ही, और माताजीका कहना था कि वह इस समय केवल निस्बतकी रस्म करेंगी, और फिर पूरे वर्ष बाद विवाह और विदा करेंगी। उनका कहना था—'लड़कीका दहेज इत्यादि धीरे-धीरे तैयार होगा।' यह भी कहती थीं कि 'मेरी एक लड़की ही लड़की है, भली प्रकार देखभालके करूँगी। यदि लड़का ठीक न हुआ, तो इस रोक-टोककी रस्मको तोड़ दूँगी।' यह सारी बातें मैं चुपकेसे सुन चुकी थी। इधर तो ऐसे विचार, उधर बैरिस्टर साहबके पिता बहुत शीघ्रता कर रहे थे। उनका कहना था कि यदि इधरसे ढील-ढाल हुई, तो वह अपने पुत्रका विवाह दूसरे स्थानमें कर लेंगे। वहाँ सब बातचीत ठीक हो चुकी है। मुझे यह न ज्ञात हुआ कि पिताजीने इसका क्या उत्तर दिया। मैं ताकमें थी।

कोई मेरे मनसे पूछे कि मेरी क्या हालत हुई, जिस दिन मैंने अब्बाजान और अम्माजानका निर्णय सुना। पत्र लिखकर भेजा जा चुका था, यदि आपको ऐसी ही जल्दी है कि आप दूसरी जगह विवाह किये लेते हैं, तो

बिस्मिल्लाह कीजिए, हमको अपनी कन्या भार नहीं है। यह पत्र लिख दिया गया। फिर उन दुष्ट आनरेरी मजिस्ट्रेटकी बातचीत हुई कि मैं वहाँ झोंकी जाऊँगी। ईश्वर जाने इन आनरेरी मजिस्ट्रेटसे मुझे क्यों इतनी घृणा थी। कुछ उनकी उम्र भी ऐसी न थी, मगर शाहदाने कुछ ऐसे ढंगसे उनकी दशा यानी दाढ़ी इत्यादिकी हँसी उड़ाई थी कि मेरे हृदयमें उनके लिए तिल-भर भी स्थान न था। मैं घंटों अपने कमरेमें पड़ी विचार करती रही। इस बातको एक सप्ताह भी न हुआ था कि मैंने उसी प्रकार अलमारीका ताला खोलकर बैरिस्टर साहबके पिताका हालका पत्र पढ़ा। ऐसा प्रतीत होता था कि यह पत्र उन्होंने पिताजीके अन्तिम पत्र पानेसे पूर्व लिखा है कि बैरिस्टर साहबको किसी दूसरे स्थानपर जाना है, और राहमें वह ऐसे ही होते हुए जायँगे। यदि सब बातचीत आपको ठीक जँची, तो रोक-टोक भी कर दी जायगी। उसी दिन उस पत्रका उत्तर भी मैंने सुन लिया। उन्होंने लिख दिया था कि लड़केको तो मैं आप ही देखना चाहता हूँ। आपका घर है। जब जी चाहे, भेज दीजिए, लेकिन यह विचार हृदयसे निकाल दीजिए कि एक वर्षसे पूर्व विवाह हो जाय। माताजीने भी इस उत्तरको ठीक समझा, और फिर उन्हीं आनरेरी मजिस्ट्रेट साहबकी बातचीत मेरे कानोंमें पड़ी। इन सारी बातोंसे मेरा चित्त ऐसा घबराया कि मैंने माताजीसे शाहदाके घर जानेकी आज्ञा माँगी, और मनमें तीन-चार दिन न लौटनेकी ठानकर चली गई।

शाहदाके घर पहुँची, तो उसने देखते ही जान लिया कि कुछ दालमें काला है, और पूछा—"क्या तेरे बैरिस्टरने किसी औरको वरमें बैठा लिया?" मैं भला इसका क्या उत्तर देती? सारी बातें आदिसे अन्त तक कह गई कि वह कैसी शीघ्रता कर रहे हैं, और इच्छुक हैं कि शीघ्र-से-शीघ्र विवाह हो जाय; मगर अम्माजान राज़ी नहीं होतीं। सारी बातें सुनकर और मुझे अनमना देखकर वह चंचल बोली—"वाह! चट रोक-टोक और पट विवाह, भला यह कौन करेगा? मगर एक बात है।"

मैंने पूछा—"वह क्या?"

शाहदा बोली—"वे तेरे लिए तरस रहे हैं। और यह चाल अच्छी है।"

मैंने कुढ़कर कहा—"तू चाल निकाल रही है, और हँसी कर रही है।"

"फिर क्या करूँ?"—शाहदाने कहा (क्योंकि बेचारी कर ही क्या सकती थी)।

मैंने कहा—"कोई सलाह करो, कोई राय दो। आओ दोनों मिलकर विचारें।"

"पगली कहींकी"—शाहदा बोली मेरी नादानीपर खिझिन हुई है क्या? सलाह क्या दूँ? अच्छा; ला मुझे पता बता। मैं बैरिस्टर साहबको लिख भेजूँ कि वहाँ तो तुम इस छोकरीपर तुले हो, और यहाँ यह तुमपर रीझी है। आकर तुझे भगा ले जायँ?"

"भाड़में जाय तू, और चूल्हेमें जाय तेरी सलाह।" मैंने कहा—"क्या इसीलिए मैं आई थी? ले जाती हूँ।" यह कहकर मैं उठी।

"तेरे बैरिस्टरकी ऐसी-तैसी।" शाहदाने कहा, और मेरा हाथ पकड़कर बोली—"जाती कहाँ है?" न शादी, न विवाह। दूल्हाका दुखड़ा लगी रोने। तुझे क्या? कोई न कोई माईका लाल आकर तुझे ले ही जायगा। चल, दूसरी बातें कर।"

यह कहकर शाहदाने मुझे बैठा लिया, और मैं भी हँसने लगी। दूसरी बातें होने लगीं, मगर मेरे मनमें तो व्यथा ही और थी, और दुखी थी। घूम-फिरकर फिर वही बातें होने लगीं। शाहदाने स्नेहवश जो कुछ कर सकती थी, किया—यानी मेरे लिए परमात्मासे प्रार्थना की, और आनरेरी मजिस्ट्रेट साहबको खूब कोसा। इससे अधिक वह बेचारी और कर ही क्या सकती थी—"मैं खुदाकी इबादतके बाद तेरे लिए उनसे कहा करूँगी, और तू भी प्रतिदिन ऐसा

ही करियो।" शाहदाने कहा। इससे अधिक न वह कर सकती थी, न मैं।

मेरा मन घरसे कुछ ऐसा उचाट-सा हो गया था कि दो बार आदमी बुलाने आया, और मैं न गई। चौथे दिन मैंने शाहदासे कहा—"अब चाहे पत्रका उत्तर आया हो!" मैं भोजन करके ऐसे समय जाऊँगी, जब सब सो गये हों और तुरन्त ही मुझे पत्र देखनेका मौका मिल जाय।

विदा होते समय मैं इस भाँति जा रही थी, जैसे कोई मनुष्य अपने भाग्यकी परीक्षा करने जा रहा हो। मेरी दशा अजीब आशा और निराशाजनक थी कि जाने बैरिस्टर साहबके पिताने उस पत्रमें स्वीकृति दे दी होगी, या नामंजूर कर दिया होगा कि हमें वर्षके अन्तमें विवाह स्वीकार नहीं है। मैं रह-रहकर विचार रही थी। विदा होते समय मैंने अपनी प्यारी सहेलीकी गरदनमें बाहें डालकर खूब दबाया, न मालूम क्यों मेरे नेत्रोंमें जल भर आया। शाहदाने गम्भीर होकर कहा—"बहन, ईश्वर उस दुष्टके हाथसे तेरी रक्षा करे। तू दुआ कर! अच्छा।"

मैंने चुपकेसे कहा—"अच्छा।"

[३]

शाहदाके घरसे जो आई, तो जसा चाहती थी, वैसा ही सन्नाटा था। माताजी सो रही थीं, और पिताजी कचहरी जा चुके थे। मैंने धीरेसे झाँककर इधर-उधर देखा, कोई न था। धीरेसे द्वार बन्द किया, और भागकर मरदाने ज़ीनेका द्वार भी बन्द कर दिया। अब सीधे कमरेमें पहुँची। वहाँ जो कुछ देखा, उससे अवाक् रह गई। क्या देखती हूँ कि बड़ासा चमड़ेका ट्रंक खुला पड़ा है। पासकी कुरसीपर और ट्रंकमें कपड़ोंके ऊपर भाँति-भाँतिकी वस्तुओंकी दूकान-सी लगी है। मैंने मन-ही मन सोचा, भला, यह कौन है, जो यों सामान छोड़ गया है। क्या कहूँ, मेरे आगे कैसी दूकान लगी हुई थी, और कैसी-कैसी वस्तुएँ रखी थीं कि मैं सब भूल गई, और ध्यानसे उन्हें देखने लगी। भाँति-भाँतिकी डिब्बी और विलायती बक्स थे, जो मैंने कभी न देखे थे। मैंने पहले शीघ्रतासे एक सुनहरा गोल डिब्बा उठा लिया। मैं इसकी प्रशंसा कर रही थी। यह गिन्नीके सोनेका डिब्बा था, और उसपर सच्ची सीपका बढ़िया काम था। ऊदी-ऊदी सीपके टुकड़े सातों रंगमें जगमगा रहे थे, और सारे कोड़ोंपर विदेशी कुन्दनका काम हो रहा था। ढकना तो देखने ही योग्य था। उसमें मोती जड़े थे, और समुद्री घोंघोंकी बहुतसी नन्हीं-नन्हीं कतारें ऐसे सुन्दर ढंगसे सोनेमें जड़ी थीं कि मैं देखकर अचम्भेमें पड़ गई। मैंने उसे खोलकर देखा, तो भीतर पाउडर लगानेका एक नन्हासा पफ रखा था, और उसके भीतर लाल रंगका पाउडर रखा हुआ था। मैंने पफ निकालकर उसके नरम-नरम रोएँ देखे, जिनपर धूलकी तरह पाउडरके महीन-महीन कण छा रहे थे। यह देखनेको कि यह कितना नरम है, मैंने उसको अपने गालपर धीरे-धीरे फेरा; फिर उसे जैसाका तैसा रख दिया। मुझे यह खयाल भी न हुआ कि मेरे गालपर लाल पाउडर जम गया है। जैसे ही मैंने डब्बा रखा, मेरी निगाह एक थैलीपर पड़ी। यह एक हरी मखमलकी थैली थी, जिसपर भाँति-भाँतिके सुनहरे चित्र बने हुए थे। मैंने उसे उठाया, तो मेरे अचरजका कोई ठिकाना न रहा; क्योंकि वास्तवमें यह विदेशी रबरकी थैली थी, जो मखमलसे भी अधिक नरम और सुन्दर थी। मैंने ध्यानसे सुनहरे कामको देखा। खोलकर जो देखा, तो भीतर दो चाँदीके बालोंमें करनेके ब्रश थे, और एक हड्डीके जोड़का कंघा था। मैंने उसे भी रख दिया, और अनेक छोटी-छोटी सुन्दर डिब्बियाँ देखीं। किसीमें सेफ्टी-पिन, किसीमें सुन्दर-सा ब्रश और किसीमें फूल था। इसी प्रकार भाँति-भाँतिके ब्रश और ब्लाउज़ पिन इत्यादि थे। दो-तीन डिब्बियाँ ऐसी थीं, जिनकी अजीब बनावट थी—एक किताबकी-सी थी और एक क्रिकेटके बल्लेकी भाँति। बहुतसी ऐसी थीं, जो मुझसे किसी प्रकार न खुलीं। सिगरेट केश, दियासलाईका बक्स और भी बहुतसी वस्तुएँ थीं, मगर सब देखने-योग्य। मैं उन्हें देख रही थी कि एक मखमलका डिब्बा बक्सके कोनेमें रेशमी रूमालोंमें दबा हुआ दीख पड़ा। मैंने उसे निकाला। खोलकर देखा, तो बहुतसे नन्हें-नन्हें नाखून काटने और घिसनेके औज़ार निकले। इन सबमें सीपके छोटे-छोटे सुन्दर दस्ते जड़े हुए थे और ढकनेमें एक छोटासा दर्पण जड़ा था। मैंने उसे जैसे ही उसकी जगह रखा, एक और मखमली डिब्बा मेरे हाथ लगा। उसे जो मैंने निकाला और खोला तो उसके भीतर हरे रंगका एक फाउन्टेन पेन निकला, जिसपर सोनेकी जालीका खोल चढ़ा था। मैंने उसे भी रख दिया। इधर-उधर देखने लगी। एक छोटीसी

सुनहरे रंगकी डिब्बी दीख पड़ी। उसे खोलना चाहा, मगर वह किसी भाँति न खुली। मैं उसे खोज ही रही थी कि एक लकड़ीके बक्सका कोना दीख पड़ा। उसे फ़ौरन ट्रंकसे बाहर निकाला। एक भारीसा सुन्दर बक्स था। उसे जो मैंने खोला, तो मेरे अचरजका ठिकाना न रहा। उसके अन्दर एक साफ़-सुन्दर बिल्लौरी इतरदान निकला। यह कोई बालिश्त-भर लम्बा और इसीके अनुसार चौड़ा था। मैंने उसे निकालकर ध्यानसे देखा। लकड़ीका बक्स, जिसमें यह बन्द था, अलग रख दिया था। विचित्र वस्तु थी। उसके भीतरकी सारी वस्तुएँ बाहरसे दीख पड़ती थीं। भीतर चौबीस छोटी-छोटी विदेशी इत्रकी कलमें थीं, जिनके भाँति-भाँतिके रंग बिल्लौरके पार होकर अजब समा दिखा रहे थे। मैं उसे चारों ओरसे देखती रही, और खोलना चाहा। जहाँ भी जोड़ था, बटन दीख पड़े, दबाये ; किन्तु न खुला। मैं उसे देख ही रही थी कि मेरी दृष्टि एक चित्रके कोनेपर पड़ी, जो ट्रंकके तनिक नीचेको रखा था। मैं अब उसे तो भूल-सा गई, और चित्र निकाल लिया। उसके साथ ही एक मखमली डिब्बी रूमाल और टाइयोंमें उलझती हुई चली आई, और खुल गई। क्या देखती हूँ कि उसमें एक सुन्दर अंगूठी जगमगा रही है। तुरन्त चित्रको छोड़कर मैंने उस डिब्बीको उठा लिया, और अंगूठी निकालकर देखने लगी। उसके बीचमें एक नीला नगीना था, और आसपास सफेद-सफेद हीरे जड़े हुए थे, जिनपर निगाह ही न जमती थी। मैंने इस सुन्दर अंगूठीको ध्यानसे देखा, और अपनी उँगलियोंमें डालना शुरू किया। किसीमें तंग होती थी और किसीमें ढीली, किन्तु सीधे हाथकी छिगुनीके पासवाली उँगलीमें मैंने उसे किसी-न-किसी भाँति पहन ही तो लिया। हाथ ऊँचा करके उसके नगोंकी भड़क देखने लगी। मैं उसे देख भालकर डिब्बीमें रखनेको उतारने लगी, तब देखा कि वह फँस गई है। मेरे बाएँ हाथमें वह बिल्लौरवाला इतरदान था। मैं उसे रखनेको हुई, जिससे उँगलीमें फँसी हुई अंगूठी उतारूँ कि अचानक मेरी दृष्टि उस चित्रपर पड़ी, जो सामने रखा था, और जिसे देखनेकी मेरी सर्वप्रथम इच्छा हुई थी। उसपर एक हवा-सा महीन कागज़ था, जिसकी सफ़ेदीमें होकर चित्रके रंग झलक रहे थे। मैं इतरदानको रखना भूल गई, और तुरन्त ही चित्रको उठा लिया। कागज़ उठाकर जो देखा, तो मालूम हुआ कि यह सारी सामग्री बैरिस्टर साहबकी है। यह उन्हींका चित्र था, और किसी विदेशी दूकानका उतरा हुआ रंगीन चित्र था। मैं बड़े ध्यानसे देख रही थी और सोच रही थी कि यदि यह असली चित्र है, तो ज़रूर बैरिस्टर साहब बहुत ही सुन्दर पुरुष हैं। मुँहका रंग फीका गुलाबी था। काले बाल और आड़ी माँग निकली थी। मुँह, आँख, नाक ऐसी साफ़ उतरी हुई थी कि मुझे भ्रम था कि मैं सुन्दर हूँ, या वह। कोटकी धारियाँ चालाक चित्रकारने असली रंगमें इस भाँति दिखाई थीं कि हरएक तागा अपने रंगमें जैसाका तैसा दीख पड़ता था। मैं उस चित्रके देखनेमें बिलकुल लीन थी। देखते-देखते हवाके कारण वह कागज़ मेरे काममें बाधा डालने लगा। मैंने झुँझलाकर चित्रको अलग किया। मेरा बायाँ हाथ घिरा ही हुआ था। उसमें वही बिल्लौरी इतरदान था। फिर उसी प्रकार कागज़ उड़कर आया, और चित्रको ढक लिया। मैंने झटककर फिर अलग करना चाहा, किन्तु वह चिपक-सा गया, और अलग न हुआ। मैंने मुँहसे फूँक मारी। फिर भी न हटा, तो मैंने 'उँह' करके बाएँ हाथकी उँगलीसे उसे हटाया, मगर ऐसा करनेमें वह बिल्लौरी इतरदान, भारी तो वैसे भी था, हाथसे फिसलकर गिर पड़ा और 'झन' शब्दके साथ पक्के फ़र्शपर चूर-चूर हो गया !

मैं धक्से हो गई, और मुँह कुम्हला गया। चित्रको एक ओर फेंककर तुरन्त इतरदानके टूटे टुकड़े उठा-उठाकर मिलाने लगी कि पास ही से किसीने कोमल स्वरमें कहा—"कष्ट न कीजिए, आप ही का था" आँख जो उठाई, तो सामने बैरिस्टर साहबको खड़ा पाया। यह कैसा अचम्भा ! इससे तो मैं अवाक् रह गई कि ये यहाँ कैसे आ गये। दो-तीन सेकेंड तो जान न सकी, क्या कहूँ। जल्दीसे मैंने इतरदानके टूटे हुए टुकड़े फेंक दिये, और दोनों हाथोंसे मुँह छिपाकर द्वारकी ओटमें हो गई।

[४]

मेरी हालत उस समय क़ाबिल रहम थी। बाँयाँ मन धड़क रहा था। यह पहला ही मौक़ा था, जो मैं अकेली एक अनजान आदमीके सामने थी, और उसपर भी चोरी करते पकड़ी गई। सारा ट्रंक कुरेदकर फेंक दिया था, और फिर इतरदान तो फोड़ ही डाला। अंगूठी भी उँगलीमें पहने थी।

ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे थी। सारा शरीर काँप रहा था। जब कुछ हवास ठीक हुआ, तो अंगूठीका खयाल आया। शीघ्रतासे उसे उतारने लगी। भाँति-भाँतिसे घुमाया। सब तरह उँगलीको दबाया और अंगूठीको खींचा, लेकिन जल्दीमें वह और भी न उतरी। जितनी देर हो रही थी, मैं उतनी ही अधिक घबरा रही थी। पल-पल भारी था। मैं काँपते हाथोंसे सब प्रकार अंगूठी उतारनेकी कोशिश कर रही थी, किन्तु वह न उतरती थी। क्रोधमें आकर मैंने उँगली मरोड़ डाली, किन्तु इससे क्या होता है। मैं तन-बदनसे अंगूठी उतारनेका उद्योग कर रही थी कि इतनेमें बैरिस्टर साहब बोले—"शुक्र है कि आपने अंगूठी पसन्द तो की।"

यह सुनकर मेरे सारे शरीरमें पसीना आ गया और गोया मरमिटी। मैंने मन-ही-मन कहा कि मैं मुँह छिपाकर जो भागी, तो शायद अंगूठी उन्होंने देख ली, और था भी ऐसा ही। इस बातने मुझपर बिजली गिरा दी। मैं यह सुनकर और भी शीघ्रतापूर्वक उसे उतारने लगी, पर वह उँगलीमें बुरी तरह फँसी थी, और किसी प्रकार न उतरती थी। मेरा हृदय बड़ी तेज़ीसे धड़क रहा था, और मैं शरमसे पानी-पानी हुई जाती थी। सोचमें पड़ी थी कि कैसे यह निगोड़ी अंगूठी उतरे।

इतनेमें बैरिस्टर साहब आड़से ही बोले—"इसमें से यदि और कोई चीज़ पसन्द हो, तो ले लीजिए।" मैंने यह सुनकर अपनी उँगली मरोड़ ही तो डाली कि तेरी यही सज़ा है, लेकिन उससे क्या होता था! मैं बहुत हैरान और दुखी थी। शर्मसे पानी-पानी हुई जाती थी।

इतनेमें बैरिस्टर साहब फिर बोले—"चूँकि यह महज़ वक्तकी बात है कि मुझे अपनी मन्सूबा बीबीके साथ बातचीत करनेका और भेंटका अवसर मिला है, और मैं ऐसे मौक़ेको कैसे हाथसे खोऊँ।"

यह कहकर वह द्वारसे होकर सामने आ खड़े हुए। अब मैं घिर गई। शर्म और हयासे ज़मीनमें गड़-सी गई, और सर झुकाकर दोनों हाथोंसे मुँह छिपा लिया। फिर कोनेकी ओर मुड़ी। किवाड़ोंमें घुसी जाती थी। मेरी ऐसी बुरी हालत देखकर बैरिस्टर साहब भी लजा गये, और उन्होंने कहा—"मैं ढिठाई की, क्षमा चाहता हूँ, किन्तु···" यह कह उन्होंने पलंगकी चादर खींचकर मेरे ऊपर डाल दी, और आप कमरेसे बाहर निकलकर बोले—"आप कृपाकर मसहरीपर बैठ जायँ, और विश्वास रखें कि मैं अब अन्दर न आऊँगा, पर इस शर्तपर कि आप मेरी चन्द बातोंका जवाब दे दें।"

मैंने इसीको बहुत समझा, और मसहरीपर चादरमें लिपटकर बैठ गई।

बैरिस्टर साहब बोले—"आप मेरी ढिठाईपर क्रोधित तो नहीं हैं।"

मैं चुपचाप पहलेकी भाँति अंगूठी उतारती रही, और कुछ न बोली। और शीघ्रतासे अंगूठी उतारनेका उद्योग करने लगी कि अंगूठी जल्द उतर आवे।

बैरिस्टर साहबने फिर कहा—"शीघ्र जवाब दीजिए, शीघ्र।" मैं फिर भी चुप रही, तो उन्होंने कहा—"आप उत्तर नहीं देतीं, तो मैं आता हूँ।"

मैं घबरा गई, और निरुपाय होकर धीरेसे बोली—"जी नहीं।" मैं अब भी बराबर अंगूठी उतारनेका उद्योग कर रही थी।

बैरिस्टर साहब बोले—"धन्यवाद, यह अंगूठी तो आपको भाती है।"

"या खुदा!" मैंने दुखी होकर कहा—"इससे तो मैं मर जाऊँ तो अच्छा है।" यह कहकर मैं पागलोंकी भाँति उँगली नोचने लगी। क्या कहूँ, मेरी क्या दशा थी, अगर बस चलता, तो उँगली काटकर फेंक देती। मैंने उसका कुछ उत्तर न दिया। चुप देखकर बैरिस्टर साहबने फिर पहलेवाली बात दुहराई। मैं अपने आपको कोस रही थी कि उसका क्या उत्तर दूँ। यदि कहती हूँ कि अच्छी है, तो शर्मकी बात है, और यदि कहूँ कि अच्छी नहीं, तो शोभा नहीं देता, और फिर यह कह न बैठें, तो फिर पहनी क्यों? मैं चुप रही और कुछ न कहा।

तनिक देर बैठकर बैरिस्टर साहब फिर बोले—"इतरदान तो आपको ऐसा पसन्द आया कि आपने उसे तोड़ ही डाला, और मेरा सारा परिश्रम सफल हुआ, मगर अंगूठीके लिए आप कुछ और कह दें, ताकि उसकी भी क़ीमत वसूल हो जाय।"

यह सुनकर मारे शर्म और क्रोधके मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। सारा क्रोध उँगलीपर ही उतार रही थी, जैसे इसीने इतरदान फोड़ डाला हो। मैं इसके टूटनेपर बहुत

दुखी थी, मेरे मुँहसे कुछ न निकलता था। जब मैं कुछ न बोली, तो बैरिस्टर साहबने कहा—"आप कुछ उत्तर ही नहीं देतीं। मैं अब आता हूँ।"

मैं घबरा गई कि सचमुच न आ जायँ, और झट बोली—"भला, इसका क्या उत्तर दूँ ? आपका इतरदान मुझसे टूट गया, बड़ा दुख है……"

बात काटकर बैरिस्टर साहबने कहा—"वाह! वह इतरदान तो आप ही का था। आपने तोड़ डाला, अच्छा किया। मेरे विचारसे अंगूठी भी आपको अच्छी लगी, और भाग्यवश आप उसे अब तक उँगलीमें पहननेकी कृपा कर रही हैं।

मैं अब क्या कहूँ, जो दशा मेरी इस बातको सुनकर हुई। मन-ही-मन मैंने कहा, ठीक है अच्छी अंगूठी पहन रही हूँ। अंगूठी क्या है कि गलेकी फाँसी हो गई, जो ऐसी ठीक आई कि उतरनेका नाम नहीं लेती! मैंने मनमें कहा कि यदि यह दुष्ट मेरी उँगलीमें न फँस गई होती, तो काहेको मैं ऐसी बेशर्म बनती और वह यों कहते कि आप पहने हैं। ईश्वर गवाह है कि मैं इस निगोड़ी अंगूठीके उतारनेके लिए क्या-क्या जतन कर चुकी थी, और अब तक कर रही थी। पर वह ऐसी फँसी थी कि टससे मस न हुई। मैं चुप रही, कुछ न कहा, लेकिन अंगूठी अब भी उतारनेमें लगी थी।

बैरिस्टर साहबने मुझे चुप देखकर कहा—"आप फिर उत्तर देनेमें देरी कर रही हैं। 'अच्छी है, या बुरी' सिर्फ दो बातोंमें से एक कह दीजिए, नहीं तो जान रखिये कि मैं आपके सामने आनेका बहाना ढूँढ़ रहा हूँ।"

मैंने फिर क्रोधमें उँगली नोच डाली, और पीछा छुड़ानेकी नियतसे कह दिया—"अच्छी है।"

"जी नहीं,"—बैरिस्टर साहब बोले—"अच्छी है और आपको नहीं भाई, तो किस कामकी ? फिर अच्छी कहकर तो दूकानदारने ही दी है, न मैं यह पूछता ही हूँ। आप यह कहिये कि आपको अच्छी लगी या नहीं ? नहीं तो मैं आता हूँ।"

मैंने मनमें सोचा, यह अवश्य घुस आयँगे, फिर झकमारके कहना ही पड़ेगा, इसलिए कह दिया—"अच्छी लगी।" इतना कहकर मैं दाँत पीसकर फिर उँगली नोचने लगी।

"धन्यवाद,"—बैरिस्टर साहब बोले—"हज़ार बार धन्यवाद! अब आप जा सकती हैं। एक बात और कहना चाहता हूँ कि यह अंगूठी तो ज़रूर आप ही की है, और आप पहनकर अब उतारना भी न चाहती होंगी, लेकिन मुझे खेदवश कहना पड़ता है कि सभ्यताकी रीतिके अनुसार और वस्तुओंके साथ-साथ मुझे यह अंगूठी भी भेजनी पड़ेगी, इसलिए अगर आप बुरा न मानें, तो इस समय इसे यहीं छोड़ जाइये। मैं अलग हुआ जाता हूँ। खुदा खैर करे।" यह कहकर वह हट गये, और मैंने उनके जानेकी आहट सुनी। वह सामनेके गुसलखानेमें चले गये। वास्तवमें वह गुसलखानेमें कंघा इत्यादि कर रहे होंगे, जब मैं अचानक आकर फँस गई। अब मैं बड़े फेरमें पड़ी। उँगलीसे अंगूठी उतारनेके लिए बड़ा परिश्रम किया। घबराहट और जल्दीसे मैं पागल-सी हो रही थी, क्योंकि बिना अंगूठी उतारे मैं घर भी न लौट सकती थी। दुखित होकर मैंने हाथकी बजाय दाँतोंसे भी सहायता ली, और उँगली भंभोड़ खाई, मगर वह कमबख्त अंगूठी तो जानपर आ बनी थी—किसी भाँति न उतरी! मैंने दुखित होकर अपना कर्म ठोंका, और रोकर बोली—"या अल्लाह! कैसे संकटमें पड़ी हूँ। यह दुष्ट तो मेरे प्राण लिये लेती है।"

बैरिस्टर साहब गुसलखानेमें खड़े-खड़े थक गये, और मैं जहाँ-की-तहाँ ही थी। वह लौट आये, और बोले—"माफ कीजिए, मुझे नहीं मालूम था कि आप अंगूठी नहीं उतारना चाहतीं, और इस शर्तपर जानेको भी राज़ी नहीं हैं, मगर यह रस्म अंगूठीसे ही पूरी की जा सकती है, इसलिए मैं खाली डिब्बी रख दूँगा और कहला दूँगा कि अंगूठी आपके पास है।"—यह कहकर और तनिक ठहरकर बोले—"वैसे तो कोई बात न थी, मगर अभाग्यवश आपके पिता इसे देख चुके हैं।"

मैं अपनी उँगली मरोड़ रही थी, किन्तु यह सुनकर घबरा गई। यह तो दिल्लगी थी कि वह कह देंगे कि अंगूठी मेरे पास है, पर मैं यह विचार रही थी कि जब पिताजी इस अंगूठीको देख चुके हैं, तो बैरिस्टर साहब इस विषयमें क्या बहाना करेंगे।

इस बीचमें बैरिस्टर साहबने यह सोचा कि मैं शायद इसलिए नहीं जाती कि वह सामने गुसलखानेसे मुझे जाते हुए देख न लें, इसलिए उन्होंने तुरन्त कहा—"अच्छा,

अब मैं समझा, मैं अब गुसलखानेसे हटकर ज़ीनेमें खड़ा हुआ जाता हूँ।"

मैं अब बहुत दुखी और लाचार थी कि कैसे इस नासमझीको जल्द-से-जल्द दूर करके असली कारण समझा दूँ। मेरी बुद्धि काम न करती थी कि या खुदा, क्या करूँ! न जानेको राह, न ठहरनेको जगह—मेरी यह दशा थी। और इधर बेरिस्टर साहब न जाने क्या सोच रहे थे। जब मैंने देखा कि अब वह ज़ीनेमें चले ही जायँगे, तो 'मरता क्या न करता' वाली मसल करके, न-मालूम कैसे धीरेसे कह दिया—"यह नहीं उतरती।"

इधर तो मेरी यह दशा और बेरिस्टर साहब यह सुनकर फूले न समाते थे। हँसकर बड़ी खुशीमें, जैसे कोई अपनोंसे कहता है, बोले—"अच्छा, यह बात है! खुदा करे न उतरे।"

भला, मैं इसका क्या उत्तर देती। चुप रही। बसभर उद्योग करती रही कि अंगूठी उतर आवे, लेकिन जब थोड़ी देर हुई, तो उन्होंने कहा—"यदि आप बुरा न मानें, तो मैं उतार दूँ।"

'या खुदा!' मैंने मन-ही-मन कहा। अब कैसी करूँ? मैं तो न उतरवाऊँगी। यह निश्चय करके मैं फिर उद्योग करने लगी, किन्तु खुदाका नाम लो, वह भला काहेको उतरती! इतनेमें बेरिस्टर साहबने फिर कहा—"वह आपके उतारे न उतरेगी। कोई बात नहीं, मैं बाहरसे ही उतार दूँगा।

मैं अब परेशान हो गई थी, और इस संकटसे किसी-न-किसी तरह पीछा छुड़ाना चाहती थी, इस वास्ते मैंने निरुपाय होकर मसहरीपर बैठकर हाथ दरवाज़ेसे बाहर कर दिया।

बेरिस्टर साहबने उँगली हाथमें लेकर कहा—"शाबाश इस अंगूठीको! क्यों साहब, तारीफ़ तो आप भी करती होंगी कि मैं कैसी नाप-तोलकर ठीक अंगूठी लाया हूँ! वह अंगूठी भी कैसी, जो यह लुत्फ़ न दिखावे।"

मैं लाचार थी, और सब चुपचाप सुन रही थी, मगर इस बातपर मुझे इस दशामें भी हँसी आ गई कि देखो तो दुष्ट किस नापकी अंगूठी आ गई है कि मुझे मुसीबतमें डाल दिया। उंगलीको उन्होंने खूब इधर-उधरसे देखकर और दबाकर कहा—"यह तो सूज गई है।" यह कहकर वह उतारनेका उद्योग करने लगे।

जल्दीसे बोले—"अरे, माफ़ कीजिएगा, क्या आप बता सकती हैं कि इस बेचारी उँगलीपर दाँत किसने पैनाये हैं?"

मैंने तुरन्त शर्माकर हाथ भीतर खींच लिया।

"देखूँ, देखूँ,"—बेरिस्टर साहबने कहा—"अब मैं कुछ न कहूँगा।"

लाचारीसे फिर हाथ बढ़ाना पड़ा, और वह अंगूठी उतारने लगे। उन्होंने खूब परिश्रम किया। दबाया। मगर इस तरह कि मारे कष्टके मेरी बुरी दशा थी, लेकिन वह प्राणलेवा अंगूठी न उतरी। वह बेचारे सब प्रकार उद्योग कर रहे थे कि इतनेमें किसीने मरदाने ज़ीनेका द्वार खटखटाया। बेरिस्टर साहब यह कहकर—"आज शाम न सही, कल शाम"—गुसलखानेकी तरफ़ चले और फिरकर कहा—"कृपाकर जैसे भी हो, यह अंगूठी मेरे पास अवश्य भिजवा देना।" जाते-जाते वह एक और वाक्यवाण मुझपर छोड़ गये। वह यह कि "पाउडर लगानेकी तो आपको कोई आवश्यकता न थी।" मैं मारे शर्मके मर गई। मेरे एक गालपर लाल पाउडर लगा था, जो उन्होंने देख लिया था।

इधर वह गुसलखानेमें गये। उधर मैं भागी सीधे कमरेमें आकर साँस ली। दर्पण उठाकर जो देखा, तो एक गालमें लाल पाउडर भड़क दिखा रहा था। अपनेको कोसती गई और पोंछती गई। इसके बाद मैंने उँगलीपर एक कपड़ा लपेटा कि अंगूठी छिप जाय और बहाना कर दूँ कि चोट आ गई है।

[५]

खूब बहाना चला। माताजीने चोट या घाव आदिके विषयमें विशेष छानबीन न की। मैंने भी सरमें पीड़ाका बहाना कर दिया और वह टहलनीसे यह कहकर कि 'रहने दे उसका दूल्हा आया है, शर्मसे बाहर नहीं आती,' चुप हो रहीं।

उन्हें या टहलनीको भला यह पता कब था कि यह दुष्ट तो उससे मिल भी आई है, और केवल मिली ही नहीं, उसकी सारी चीज़ें भी बिगाड़ आई है।

तीसरे पहरका समय था। मैं घड़ी-घड़ी शाहदाकी बाट जोह रही थी। उसे मैंने बुलाया, तो उसने नाहीं कर दी, क्योंकि आज ही तो मैं उसके घरसे आई थी। मैंने फिर उसे एक पत्र लिखा—"बहन, जैसे भी हो, शीघ्र आ। नहीं तो मेरे प्राणोंकी रक्षा नहीं।" इस पत्रके उत्तरका आसरा बड़ी बेचैनीसे कर रही थी।

मैं जानती थी कि वह ज़रूर आयगी। वह आ गई, और मैं उसे लेने तक न गई। माताजीसे उसे मालूम हुआ कि बैरिस्टर साहब आये हैं। उसकी घबराहट दूर हो गई, और हँसती हुई आई। आते ही न सलाम, न जुहार, बोली—"अरी दुष्ट, तनिक बाहर आकर मिल तो जा।"

"मैं तो मिल भी आई।"—मैंने मुसकराकर कहा—"और विश्वास न हो, तो यह देख।"—यह कहकर मैंने उँगली खोलकर दिखा दी।

"यह बात!"—शाहदाने आश्चर्यसे कहा।

मैंने आदिसे अन्त तक सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। शाहदा मेरा मुँह ताकती रह गई। फिर बोली—"यह तो बड़ा मज़ेदार मिलन हुआ।"—यह कहकर वह चुटकियाँ लेनेको आगे बढ़ी।

मैंने कहा—"मिलन गया चूल्हेमें। अब इस निगोड़ी अंगूठीको किसी तरह उतार। चाहे उँगली कटे या रहे, मगर इसे तू उतार दे, इसीलिए मैंने तुझे बुलाया भी है।"

शाहदाने कहा—"खैर, उतर तो यह अभी आयेगी, मगर इसे देने क्या तू जायगी?"

अब मैं भी सोचमें पड़ी कि यह जायगी कैसे। ऐसे पहुँचना चाहिए कि किसीको खबर न हो। कुछ सोचकर शाहदा बोली—"मैं पानमें रखकर भेज दूँगी। टहलनीसे कहला दूँगी कि यह पान उन्हींके हाथमें देना और कह देना कि तुम्हारी सालीने भेजा है।"

यह तदबीर मुझे भी पसन्द आई, क्योंकि माताजी यही समझतीं कि पानमें कुछ ठट्ठा किया होगा, जो नई बात न थी।

जब यह सब ठीक कर चुकी, तो शाहदाने अंगूठी उतारना शुरू की। बहुत शीघ्र मालूम हो गया कि इसका उतरना उतना सहज नहीं है। तेल और साबुनकी मालिश की गई, मगर कुछ न हुआ। जब सब जतन करके हार गई, तो शाहदा भी घबराई और कहने लगी—"उँगली सूज गई। यह तो खुदा ही उतारे, तो उतरे।" घंटों उसमें मूँड़ मारा गया। बोरा सीनेका बड़ा सूजा लाया गया। छोटी-बड़ी कैंचियाँ आईं। मोचना लाया गया। काग निकालनेके पेंच और मशीनका पेंचकश। जो कुछ औज़ार मिला, लाया गया, और उससे काम लिया गया, मगर सब बेकार!

रातको उसी सोचमें मुझसे खाना भी न खाया गया। थककर मैं बैठ रही और रोकर शाहदासे कहा—"खुदाके लिए तू ही कुछ कर।" रातको गर्म पानीमें उँगली डुबोई गई, और सब प्रकार डोरे डालकर खींची गई, मगर कुछ न हुआ! रह-रहकर मुझे सोच आता था, और शाहदा जब जतन करते-करते थक जाती, तो मैं कहती—"खुदाके लिए मुझे तो इस अंगूठीकी आफ़तसे बचा।"

"फिर तू आँख लड़ाने गई ही क्यों थी?"—शाहदा खुद तंग आकर बोली।

"खुदाकी मार पड़े तुम्हारी इस इश्क़बाज़ीपर। मैं तो इस संकटमें फँसी हूँ, और तुम्हें यह हँसी सूझी है!"—मैंने मुँह फुलाकर कहा।

"यह इश्क़बाज़ी नहीं तो क्या है? गई वहाँ और शौक़से मिस्सी और पाउडर लगाया, फिर दुल्हाके चोंचलेमें पड़कर अंगूठी भी पहन ली।"—शाहदाने कहा—"अब इस रसिकताका मज़ा भी चखो। खूब गुलछर्रे उड़ाये और अब......"

मैंने अपने हाथसे उसका मुँह बन्द करके कहा—"खुदाके लिए तनिक धीरे बोलो।"

"ला, कैंचीसे अंगूठी कतर दूँ।"—शाहदाने कहा—"वैसे यह नहीं उतरेगी।"

मैंने कहा—"न बहन, कतरने न दूँगी। न-जाने कितनी क़ीमतकी अंगूठी है। एक तो मैं शामतकी मारी इतरदान तोड़ आई और इसे भी काट डालूँ!"

"भला, मजाल है, जो वह चूँ भी कर जायँ। अभी कहला भेजूँ, जाओ जी अपना रस्ता नापो, हमारी लड़की भारू नहीं, कहीं और जाकर देखो।"—यह कहकर शाहदाने कैंची ले ली और मुझसे कहा—"इधर लाओ, इधर।"

"नहीं, नहीं,"—मैंने कहा—"ऐसा न करो।" फिर वही जतन होने लगे। यहाँ तक कि इस अंगूठीने रात-भर सोने न दिया। रात-भर उँगलीपर भाँति-भाँतिसे खींची गई। कभी मैं अपनेको खूब-खूब कोसती और कभी अंगूठीको खरी-खोटी सुनाती और कभी गिड़-गिड़ाकर प्रार्थना करती कि ईश्वर तू ही सहाय हो।

तंग आकर प्रातःकाल मैंने शाहदासे कहा—"अब मेरी उँगली वैसे भी मारे पीड़ाके कड़ी पड़ गई है। तू काट दे।"

शाहदाने कैंचीसे अंगूठी काटनी चाही। आशा थी कि

सोना है, सहूलियतसे कट जायगा, मगर वह गिन्नीका कड़ा सोना था, और तनिक देरमें मालूम हो गया कि उसका काटना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। भाँति-भाँतिके औज़ार काममें लाये गये, किन्तु एक न चली। अब तो मैं और भी घबराई और ऐसी दशा बिगड़ी कि शाहदासे बोली—"यदि संखिया मिल जाय, तो खाकर अभी मर जाऊँ।"

अब शाहदा भी सोचमें पड़ी, और उसने बहुत-कुछ विचार करनेके बाद मुझसे धीरेसे कहा—"अब बस एक ही उपाय है।"

"वह क्या?"—मैंने शीघ्रतापूर्वक कहा—"बताओ।"

"वह यह है,"—शाहदाने मुसकराकर कहा—"वह यह कि तुम ऊपर जाओ और अपने चहेतेसे निकलवाओ। नहीं तो शाम तक अवश्य पकड़ी जाओगी और नाक-चोटी कटेगी।"

"मैं तो कदापि न जाऊँगी,"—मैंने कहा—"चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय।"

"ये बातें! और वह भी हमसे!" शाहदाने कहा—"तनिक दिलसे तो पूछ।"

मैंने सच बात कही—"ईश्वरकी सौगन्द' मैं किसी प्रकार जाना नहीं चाहती। मैं इस समय इस निगोड़ी अंगूठीके मारे जीवनसे निराश हो रही हूँ।"

शाहदा बोली—"मैं हँसी नहीं करती, तुम्हें अच्छा लगे या न लगे, जाना अवश्य पड़ेगा; क्योंकि घरके किसी भी औज़ारसे यह असम्भव है कि हम या तुम उसे उतार या काट सकें।"

मैं चुप बैठी रही और सोचती रही। शाहदाने धीरे-धीरे सब ऊँच-नीच सुझाया कि कोई हर्ज नहीं, और फिर इस दशामें कि वे आप ही इतने लजीले और शर्मीले हैं। मरता क्या न करता। कोई और जतन ही न था। मैं मजबूरन राज़ी हो गई।

[६]

जब सन्नाटा हो गया, तो ऊपर पहुँची। शाहदा भी साथ थी। दरवाज़ेके पास पहुँचकर मेरा क़दम न उठता था। शाहदाने मुझे हटाकर झाँककर देखा। किवाड़का शब्द सुनकर बेरिस्टर साहब निकल आये, क्योंकि वह शायद आसरेमें थे। वह सीधे गुसलखानेकी ओर चले। वह जैसे ही दरवाज़ेके सामने आये, इस नटखट शाहदाकी बच्चीने मुझे एकदमसे आगे करके फुर्तीसे दरवाज़ा खोलकर भीतरको ज़ोरसे धकेल दिया। वह इतने निकट थे कि मैं उनसे लड़ गई। उन्हें इस बेतुकी हर्कतका गुमान भी न था। "अरे!" कहकर उन्होंने एकदमसे मुझे हाथोंसे रोका। वह खुद बुरी तरह घबरा गये, मगर मेरी दशापर तर्स खाकर उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। मैं क्या कहूँ कि मेरी क्या दशा थी। द्वार शाहदाने बन्द कर लिया था, और मैं सीधे कमरेमें घुस गई। चादरमें भलीभाँति अपनेको लपेटकर बैठ गई।

बेरिस्टर साहब जब आये, तो पहले सलाम किया, और अन्दर घुस आनेकी धमकी देकर जवाब लिया। फिर मिज़ाज पूछा। जवाबमें मैंने हाथ द्वारसे बाहर कर दिया।

"यह क्या हाल है?"—बेरिस्टर साहबने उँगली देखकर कहा—"दीख पड़ता है कि उँगली और अंगूठी दोनोंमें आपने जर्राही की है।"

मैं कुछ न बोली, और उन्होंने उँगलीको चारों ओरसे देखा, फिर पूछा—"कृपाकर पहले यह बता दीजिए, यह कौन चंचल हैं, जिन्होंने आपको मेरे ऊपर धकेल दिया? आपके लगी तो नहीं?"

मैंने बस इतना कहा—"शाहदा।"

"आपकी कोई सखी मालूम पड़ती हैं।"—बेरिस्टर साहबने कहा—"हैं तो बड़ी भोली।"

मैं शाहदाकी शरारतपर मन-ही-मन हँस रही थी कि देखो, इस दुष्टने कैसी शरारत की।

"मैं साबुन लाता हूँ,"—यह कहकर वह साबुन लेने गये। मुझसे कहा भी न गया कि साबुनकी मालिश हो चुकी है।

बेरिस्टर साहबने साबुनसे ख़ूब मालिश की, और फिर सब भाँति अंगूठी उतारनेका उद्योग किया, लेकिन सब बेकार हुआ। जब सब जतन कर चुके, तो थककर उन्होंने कहा—"यह अंगूठी आप पहने रहें। बड़े शगुनकी है। मेरा भाग्य अच्छा है, नहीं तो हज़ारों रुपया खर्च करनेपर भी मुझे इस नापकी अंगूठी न मिलती।"

मैं घबरा गई, और मुझे शर्म मालूम हुई। मुँहसे तो न बोली, पर हाथको झटका कि उतार दीजिए।

"अब यह नहीं उतरती।"—उन्होंने बेपरवाहीसे कहा—"पहने रहिये।"

मैं बहुत घबराई, और सारी शर्म और हया ताक़में रखकर

बोली—"खुदाके लिए मेरी हालतपर तर्स कीजिए और कोई जतन कीजिए। चाहे उंगली कटे, या रहे।"

बेरिस्टर साहबने कहा—"उतर तो यह सकती है, परन्तु आप राज़ी न होंगी।"

मैं चुप रही कि या खुदा, राज़ी क्यों न होऊँगी? बेरिस्टर साहब भी चुप रहे। क्या कहूँ, मैंने फिर बेशर्म बनकर कहा—"मैं सब प्रकार राज़ी हूँ। उतर जावे।"

मैं बिलकुल न जानती थी कि इससे उनका क्या मतलब है। वह सुनकर चले आये। मैं चादरमें मुँह छिपाकर सिकुड़ गई। वह पलंगके सामने एक कुरसीपर मेरे आमने-सामने बैठ गये। कहने लगे—"ठीक बात तो यह है कि इसमें तीन हाथोंकी आवश्यकता है। आप अगर राज़ी हों, तो मैं अपने दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे धीरे-धीरे दबाता हूँ। साबुन लगाकर आप अपने हाथसे अंगूठी ऊपर करनेकी कोशिश करें। बस, और कोई जतन नहीं।"

बेबसी सब कुछ करवा लेती है। मैंने भी ऐसा ही किया। उन्होंने साबुनकी मालिश करके उँगली दबाई, और मैंने अंगूठी उतारनेकी कोशिश की।

मेरा सारा मुँह चादरमें ढँका था, क्योंकि मैं सरसे पैर तक चादरमें लिपटी बैठी थी। मैं टटोल-टटोलकर अंगूठी ऊपर कर रही थी। दो दफा अंगूठी चक्कर खा-खाकर उँगलीकी गिरहपर से लौट-लौट गई। बेरिस्टर साहबने जब तीसरी बार देखा कि मैं कहीं-की-कहीं अंगूठी सरकाती हूँ, तो उन्होंने कहा—"आप तो अंगूठी उतरवानेपर सब बातोंपर राज़ी हैं। इस काममें तीन हाथोंके अलावा चार आँखोंकी भी ज़रूरत है, अभाग्यवश यहाँ बस दो ही काम कर रही हैं। पर आपको सब कुछ मंजूर है।" यह कहकर उन्होंने एक झटकेसे मेरी चादर उतार ली और खींचकर उसे दूर फेंक दिया। मैं सिकुड़कर बैठ रही और अपना मुँह गोदमें छिपाकर चादरकी ओर हाथ बढ़ाया।

"मैं सच कहता हूँ कि मेरी यह ताक़त नहीं, जो आपकी ओर आँख उठा सकूँ। इस वास्ते चादरकी आपको बिलकुल ज़रूरत नहीं। वैसे मैं नाहीं नहीं करता, लेकिन अपना हाथ और दोनों आँखें काममें लाइये।"—यह कहकर वह वास्तवमें नीचेकी ओर देखते हुए फिर उसी तरह कोशिश करने लगे। मैं फिर चादरकी ओर बढ़ी, तो उन्होंने उँगली घसीटकर कहा—"नहीं, आप दूसरा हाथ तो मुँहपर रखे ही हैं, फिर मेरी सौगन्दका आप विश्वास नहीं करतीं? खुदा गवाह है। मैं आपको कभी न देखूँगा।" यह उन्होंने ऐसे कहा, जैसे कोई खिजके कहता है। मैंने बेबस होकर हाथ हटा लिया, और उँगली दबाने लगी। पर क्या कहूँ, जो मेरी दशा थी। वह मेरी ओर बिलकुल नहीं देख रहे थे, और मैं देख रही थी कि वह गरदन बहुत नीचेकी ओर किये हैं, मगर फिर भी मैं सिमटी जा रही थी। दोनों हाथ अलग थे, और समझ न पड़ता था कि मुँह कहाँ ले जाऊँ, मगर यह दशा तनिक देर रही। वह बोले—"आप तो उतारनेमें मन नहीं लगातीं।" मैं सब भूलकर उद्योग करने लगी। दोनों कोशिश कर रहे थे, मगर मैं रह-रहकर अपनी निगाह अंगूठीसे हटाकर बेरिस्टर साहबके चौड़े माथे और साफ़-सुन्दर झुके हुए मुँहपर छिरकर फेंक लेती थी। कभी मैं उनके पपोटोंको देखती और कभी लम्बी-लम्बी पलकोंको। मुझे यह मालूम न था कि जब मैं ऐसा करने लगती हूँ, तो मेरा हाथ काम करनेसे आप-ही-आप रुक जाता है, और जिस मनुष्यका ध्यान उँगली और अंगूठीपर है, वह बड़ी आसानीसे जान सकता है—बिना मेरी ओर देखकर—कि मेरी आँखें अब कहाँसे कहाँ पहुँच गई। एक बार मैंने जी कड़ा करके बेरिस्टर साहबका मुँह ध्यानसे जी-भरके देखा। उधर मेरा हाथ रुक गया। बेरिस्टर साहबने तंग आकर कहा—"मुझे आप फिर फ़ुरसतमें देख लीजिएगा। इस समय तनिक दया करके इधर देखिये।"—यह कहकर उन्होंने मेरी उँगली झटकी। मुझे ऐसी शर्म लगी कि मैंने तुरन्त अपना मुँह अपने बाएँ हाथकी कुहनीसे छिपा लिया।

बेरिस्टर साहबने कहा—"अच्छा, माफ़ कीजिए।" और उसी प्रकार नीचेकी ओर देखते हुए मेरा हाथ पकड़कर काममें लगा दिया।

फिर मेरी हिम्मत न पड़ी, जो बेरिस्टर साहबकी ओर ताकूँ। बड़े ध्यानसे अंगूठी उतारनेकी कोशिश की। बहुत-बहुत उद्योग हम दोनोंने किया, मगर वह प्राणलेवा अंगूठी न उतरती थी, न उतरी। जब बेरिस्टर साहब थक गये और कोई आशा न रही, तो उन्होंने हाथ रोक लिया, और उसी भाँति नीचेकी ओर देखते हुए बोले—"यह नहीं उतर सकती। क्या आप कह सकती हैं कि यह किस इच्छासे पहनी थी?"

मैं झेंप गई, और बाएँ हाथकी कुहनीसे मुँह छिपा लिया।

बैरिस्टर साहबने कहा—"बस, एक बातका उत्तर दे दीजिए, तो अभी आपको छुट्टी मिल जाय। वह यह कि समयसे पहले आपने इसे क्यों पहन लिया?"—हाथको उन्होंने झटककर कहा—"बोलिये।"

मैं कुछ न बोली, तो उन्होंने कहा—"फिर आप जानें और आपका काम। मैं बस, इसी शर्तपर यह कठिनाई दूर कर सकता हूँ।"

मैं बड़ी मुश्किलसे बस उतना ही कह सकी "यों ही।"—मैं कम्बख़्तियोंसे कुहनीकी आड़में बैरिस्टर साहबके सुन्दर मुँहको बड़े गौरसे देख रही थी। उनकी लम्बी-लम्बी पलकें उसी भाँति नीचेकी ओर झुकी हुई थीं।

उन्होंने मेरा उत्तर सुनकर बहुत धीरेसे कहा—"आपके पूज्य पिताजी तो एक वर्षका समय चाहते हैं, मगर धन्यवाद है कि आप खुद·······"

उन्होंने तर्स खाकर इतना ही कहा, अधिक और कुछ न बोले—"इसकी कोई ज़रूरत तो थी नहीं।"—उन्होंने बात बदलनेके अभिप्रायसे कहा—"आपके उत्तरके लिए धन्यवाद। अब बात यह है कि यह अंगूठी कटके उतरेगी, और मुझे बाज़ारसे रेती लानी पड़ेगी।"—यह कहकर वह उठ बैठे और द्वारकी ओर देखने लगे। मैंने समय पाकर चादर ले ली और अपने ऊपर डाल ली। मुझे तुरन्त ख़याल आया कि एक छोटीसी रेती मैंने उस छोटे बकसमें देखी थी, जिसमें बहुतसे छोटे-छोटे नाख़ून काटने और घिसनेके औज़ार रखे थे। मैं कुछ कहनेको थी ही कि बैरिस्टर साहब बोले—"मैं इस जगहसे जानकार नहीं हूँ, मगर जाता हूँ, कहीं-न-कहींसे रेती ढूँढ़ लाऊँगा। आप ठीक समझें, तो भीतर चली जायँ।"—यह कहकर वह खूँटीकी ओर अपनी टोपी लेने बढ़े।

मैंने जी कड़ा करके बस इतना ही कहा—"है।"

"कहाँ है?"—बैरिस्टर साहबने मुड़कर पूछा।

मैंने उत्तरमें ट्रंककी ओर उँगली उठा दी।

"मेरे ट्रंकमें?"—बैरिस्टर साहबने आश्चर्यसे पूछा—"मेरे ट्रंकमें?"

"जी।"—मैंने धीरेसे कहा।

"कम-से-कम आज तक तो मुझे रेती और फावड़े सूटकेसमें रखनेकी आवश्यकता हुई नहीं। आगे ईश्वर जाने। यह और बात है कि जब आप···" इतना कहकर वह रुक गये, पर मैं जान गई कि यह सब उन्होंने मुझीपर डालकर कहा है। फिर बोले—"तो आप ही कष्ट करें और निकाल दें, क्योंकि यह मैं ठीक कहता हूँ कि मेरे पास कोई रेती या फावड़ा नहीं है।"

उठना तो पड़ताही। यह सोचकर कि लाओ इनकी बात ग़लत साबित कर दूँ, मैं बढ़ी। उन्होंने सूटकेस खोल दिया। मैंने इधर-उधर देखकर और चीज़ोंको उलट-पलटकर वह बक्स उनके सामने डाल दिया।

"ओहो! होगी तो। इसमें अवश्य होगी।" माफ़ कीजिएगा। आपने खुद ही तो मेरे ट्रंककी तलाशी ली है, मगर देख लीजिए फावड़ा नहीं है।

उनकी आँखें इस भाँतिकी थीं कि मैं बार-बार उन्हें देख रही थी, और वह बेचारे क़सम खानेको भी पलक न उठाते थे। मैं मन-ही-मन कह रही थी, कैसा भला और शर्मीला आदमी है। बक्समें से एक लम्बीसी सीपके दस्ताकी नाज़ुक-सी रेती निकली। बैरिस्टर साहबने कहा—"यदि अब तीन हाथ और चार आँखें लगें, तो बस पाँच मिनटका काम है।" देर वैसे भी बहुत हो चुकी थी। मैंने बहुत देखभालके अपनी उँगली पकड़ ली इस प्रकार कि अंगूठी न हट सके, और बैरिस्टर साहबने उस बारीक और तेज़ रेतीसे काटना शुरू किया। उसके रेतनेमें बड़ी कठिनाई पड़ रही थी, क्योंकि इधर-उधर उँगलीका मांस सूजा हुआ था। बैरिस्टर साहब अंगूठी काटनेमें तत्पर थे, और मैं फिर कम्बख़्तीसे कनखियोंसे उनकी लम्बी-लम्बी पलकें और साफ़-सुन्दर माथेको देख रही थी। अंगूठी काटते-काटते बैरिस्टर साहबने मुझसे पूछा—"आपने मुझे भलीभाँति देखा है?" मैंने कुछ उत्तर न दिया, तो उन्होने कहा—"तो मैं काम छोड़े देता हूँ, नहीं तो जवाब दीजिए।"—यह कहकर उन्होंने हाथ रोक लिया।

मुझे जल्दी थी, और मैं यह समझकर कि इसका जवाब पाकर शायद अब प्रश्न न हो, बोली—"जी हाँ।" यह कहकर मैं शरमा गई।

बैरिस्टर साहब बोले—"किन्तु मैंने अभी तक आपको नहीं देखा है। सिर्फ़ एक झलक देखी थी, और वह भी धोकेसे।"

यह बिलकुल सत्य था कि उन्होंने मुझे एक बार भी नज़र-भरके न देखा था, और मैं बराबर देखती रही थी। इससे मुझे कब इनकार था? मैं चुप हो रही। कुछ न बोली। अंगूठी थोड़ी ही रह गई थी कि बैरिस्टर साहबने हाथ रोककर उसी प्रकार नीचे

ताकते हुए कहा—"इतनी मेहनत मैंने मुफ्त कर दी, पर अब बिना मज़दूरीके कुछ न करूँगा। वादा कीजिए, क्योंकि यह अन्याय है कि आप मुझे देख लें, और मैं न देखूँ।"

मैं चुप रही और चादरसे मुँहको भलीभाँति छिपाने लगी कि उन्होंने उँगली भी छोड़ दी। मैं बहुत शीघ्रता कर रही थी। मैंने दुखी होकर कहा—"ख़ुदाके लिए।"

"बस, बस, यह लीजिए।"—यह कहकर उन्होंने पलक मारते अंगूठीको काटकर निकाल दिया, और अब मेरी जानमें जान आई।

"मेरी मज़दूरी?" बैरिस्टर साहबने कहा।

मैंने और भी चादरमें मुँह छिपा लिया।

"यह नहीं हो सकता।"—यह कहकर उन्होंने एक झटकेमें चादर मुँहसे उतार डाली। सीधा हाथ तो मेरा पकड़े ही हुए थे, मैंने बाएँ हाथकी कुहनी अपने मुँहपर रख ली।

"यह कोई न्याय नहीं,"—बैरिस्टर साहबने कहा—"यदि आपको काफ़ी समय है, बड़ी अच्छी बात है, इसी प्रकार बैठी रहिये।"

मैं बहुत घबरा रही थी, और सर झुकाये हुए कुहनीसे मुँह छिपाये बैठी थी। सोच रही थी कि कैसे पीछा छुड़ाऊँ। सीधा हाथ तो पकड़े थे ही, उन्होंने कहा—"माफ़ कीजिएगा।" यह कहकर मेरा बायाँ हाथ भी मेरे मुँहसे हटा दिया। लाचारीसे मैंने अपना मुँह कंधों आँचल और अपनी गोदमें छिपानेकी कोशिश की, तो उन्होंने हाथ छोड़कर अपने हाथोंसे मेरी ठोड़ी ऊपरको कर दी। मैंने अपना छुटा हुआ हाथ तुरन्त मुँहपर रख लिया। हारकर बैरिस्टर साहबने कहा—"अगर मेरे आज तीन हाथ हो जायँ।" अब अगर वह मेरे दोनों हाथ पकड़ लेते, तो मैं गोदमें मुँह छिपा लेती, और हाथ छोड़कर सर ऊपर करते, तो हाथसे ढँक लेती।

हारकर बैरिस्टर साहब बोले—"चाहे कुछ भी हो, देर वैसे भी हो रही है, मगर उस समय तक कभी जाने न दूँगा, जब तक ईमानदारीसे आप मेरी मज़दूरी न दे दें।" लाचार होकर अपना पीछा छुड़ानेकी गरजसे क्षण-भरको आँखें मूँद लीं, और हाथ मुँहसे हटा लिये। मैंने जब आँखें खोलीं, तब वे मेरी ओर ताक रहे थे। दूसरा हाथ भी मैंने झटककर छुड़ा लिया और दोनों हाथोंसे मुँह छिपाकर चादर इकट्ठी करके जानेको सरकी। मैं जाने ही को थी कि उन्होंने कोमल स्वरमें कहा—"ठहरिये।" मैंने झाँककर देखा, तो वह सूटकेसमें से कोई वस्तु निकाल रहे थे। उन्होंने एक छोटासा डिब्बा निकाला, और उसमें से एक सोनेकी घड़ी निकालकर मेरी कलाईपर बाँधी, और कहा—"और चीज़ शामको।"

इतना कहकर मेरा हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया और कहा—"जाइये। ख़ुदा ख़ैर करे।" जैसे ही मैं जानेको हुई, मेरा हाथ पकड़कर और झटककर कहा—"हमें भूलोगी तो नहीं।"

मैं कुछ न बोली, मगर अपनी कुहनी और चादरकी आड़से उनके सुन्दर मुखको देखती रही। क्या बताऊँ, इस बातसे मेरे दिलपर कैसी बीती। ऐसा मालूम होता था कि ये बातें उन्होंने सच्चे मनसे कही हैं।

एक बार फिर उन्होंने यही शब्द मुझसे कहे, और जब मैं कुछ न बोली, तो बाएँ हाथसे मेरी ठोड़ी ऊपर उठाकर कहा—"ख़ुदाके लिए भूल न जाना।" मैंने सर हिलाकर बताया कि नहीं भूलूँगी। वह झुके हुए थे, और चादरके कोनेमें से मेरी उनकी चार आँखें हो गईं, क्योंकि मैं निगोड़ी उस समय भी उन्हें ताक रही थी। मेरा सरका हिलाना बस, गज़ब कर गया! एक हाथ तो मेरी ठोड़ीपर था ही, दूसरे हाथसे अनजानमें उन्होंने झटककर मेरा हाथ मुँहसे हटा दिया—"भूल न जाना, भूल न जाना, भूल न जाना। ख़ुदा ख़ैर करे।" मेरी आँखें बन्द हो गईं, और साँस जहाँकी तहाँ रुक गई।

जैसे भी बना, मैं इस मुसीबतसे पीछा छुड़ाकर भागी, और तीरकी तरह दरवाज़ेके भीतर घुस गई।

"अरी, यह क्या? यह क्या?"—शाहदाने मुझे बेहाल देखकर कहा—"यह क्या?"

मैंने बनावटसे कहा—"कुछ नहीं, होता क्या?"

शाहदा बोली—"मौसी आई थी, और तुझे पूछ रही थी।"

मैं सन्न रह गई, और घबराकर मैंने पूछा—"फिर तुमने क्या कह दिया?"

शाहदाने भोलेपनसे कहा—"कहती क्या! मैंने कहा शहद खा रही है, अभी आती है।"

मैंने कहा—"तेरा सत्यानाश हो, तूने तो मुझे दहला दिया।"

वह बोली—"तनिक मुझे बता तो दे, यह क्या हो रहा था? दुष्ट···"

मैंने बात काटकर कहा—"हम नहीं बताते।" यह कहकर मैंने उसका हाथ पकड़कर साथ साथ घसीट कमरेमें

आई, और उसे वह घड़ी दिखाने लगी, जो बैरिस्टर साहबने आदरसे पहना दी थी।

शाहदाने उसमें कूक भरी और कानसे लगाकर बोली— "अब तूने बैरिस्टर साहबको फँसा लिया, और वह एक वर्ष क्या, दो वर्ष इन्तज़ार करेंगे, मगर विवाह तुझसे ही करेंगे।"

शामको सारी वस्तुएँ—यानी पाउडरका डिब्बा और दूसरी डिब्बियाँ आदि—मय अंगूठीके आईं। न-मालूम किससे इस थोड़ेसे समयमें बैरिस्टर साहबने अंगूठीको ऐसी सफ़ाईसे जुड़वा दिया था कि शाहदाको छोड़कर और इस समय किसीको पता न चला। पिताजीको बैरिस्टर साहबने फुसलाकर राज़ी कर लिया, और वह अब एक वर्ष छोड़ छै महीनेपर आ गये। बैरिस्टर साहब दो महीने बाद फिर आये। मेरा मन कहता था कि वह ज़रूर मुझसे मिलना चाहते होंगे, और शायद इसी आसरेमें आये भी होंगे, मगर मैं झांकने तक न गई। कुछ वस्तुएँ तोहफ़ाके तौरपर भिजवाकर वह चले गये।

छै माहमें से चार तो बीत चुके हैं, और दो बाक़ी हैं। कुछ भी हुआ अच्छा या बुरा, मगर अंगूठीवाली भाभई कभी न भूलूँगी।

लेखक—अज़ीमबेग चग़ताई
अनु०—मुंशी कन्हैयालाल

लहरोंसे

श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०

प्रणयीकी मृदुल उमंगों-सी, लज्जाकी तरल तरंगों-सी,
तुम कौन स्वप्न अद्भुत रचती हो इन्द्रधनुषके रंगों-सी?
अँधियालीमें उजियाली-सी, सूखे वनमें हरियाली-सी,
तुम हो अतीत-सी मधुर कौन ऊषाकी मादक लाली-सी?

किस कविकी तुम कल्पना सजल, किस बालककी भावना सरल,
किस होनहार नवयुवक-हृदयकी तुम स्वप्निल कामना तरल?
तुम बुद्धदेवकी करुणा-सी लहराती ममता छहराती,
किस दीन दुखीके अन्तसका सन्ताप मिटाने हो जाती?

तुम लघु लघु प्रिय प्रिय कौन अरी, फिरती रहती चंचल चंचल,
मेरी आँखोंमें फैलाती अपनी मोहकताका अंचल!
ऐ सुन्दरियो, जलकी परियो, यह कैसी केलि मचाती हो?
इठलाती हो, मुसकाती हो, इतराती हो, बलखाती हो!

आकांक्षा-सी ऊपर उठकर, प्रार्थना-सदृश नीचे गिरकर,
यह शिलाखंडमें कौन लेख लिखती रहती हो निशि-वासर?
पलमें उठती, पलमें गिरती, यह कैसा है उत्थान-पतन?
करती रहस्य क्या उद्घाटन? है ऐसा ही अस्थिर जीवन!

पीयूष-वर्षिणी निर्झरिणी, मेरे अन्तस्तलमें उतरो,
तन-मनमें प्राणोंमें मेरे नवजीवनका आनन्द भरो!
अपने ही जैसा कर दो यह मेरा मानस भी सरस सरल,
कोमल कोमल निर्मल निर्मल शीतल शीतल उज्ज्वल उज्ज्वल!

अमेरिकन कालेजोंमें स्त्रियोंकी शिक्षा

श्री बी० बी० मुन्दकुर, एम० ए०, पी-एच० डी०

अमेरिकाके अधिकांश कालेज और स्कूलोंमें लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा एक साथ होती है। अमेरिकन समाजकी मध्य और उच्च श्रेणीकी लड़कियोंमें कालेजकी शिक्षा प्राप्त करना एक मामूली बात हो गई है। अन्य यूरोपियन देशोंकी भाँति अमेरिकन स्त्रियोंके सामने भी रोटी—जीविका—का सवाल दर-पेश है। उन्हें यह बात ज्ञात हो गई है कि कालेजकी शिक्षासे उन्हें न केवल जीविकोपार्जनकी सुविधा होगी, बल्कि वे जीवनकी अन्य बातोंका सामना भी अधिक अच्छी तरह कर सकेंगी—शिक्षाप्राप्त महिलाएँ सुगृहिणी और सुमाताएँ बन सकेंगी।

साथ ही देशमें स्कूलों, दूकानों, व्यापारी कोठियों, अस्पतालों, समाचारपत्रोंके कार्यालयों आदिमें कालेजकी शिक्षाप्राप्त महिला कार्यकर्त्रियोंकी माँग भी बढ़ रही है। यह माँग इतनी बढ़ी हुई है कि उसको पूरा करनेके लिए काफ़ी तादादमें लड़कियाँ नहीं मिलतीं। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए कालेज-संचालकोंने अपने कालेजोंमें आर्ट, साइन्स, क़ानून आदि विभागोंकी भाँति स्त्रियोंके लिए एक गृह-प्रबन्ध-विभाग (Home Economics Department) भी खोल रखा है। इस विभागके अलावा लड़कियाँ पुरुष-विद्यार्थियोंके साथ अन्य विभागोंमें भी भर्ती होकर विशेष विषयोंमें दक्षता प्राप्त करती हैं। इनमें साधारण शिक्षा, विज्ञान, डाक्टरी और दन्त-चिकित्सा छात्राओंमें विशेष लोकप्रिय हैं। हाँ, कोई-कोई इंजीनियरिंग, कला और क़ानून भी पढ़ती हैं।

मगर यह तो निश्चय ही है कि छात्राओंकी सबसे बड़ी संख्या गृह-प्रबन्ध-विभागमें भर्ती होती हैं, और अपने कालेजोंमें छात्राओंको अधिक-से-अधिक आकर्षित करनेके लिए कालेजों और यूनिवर्सिटियोंके संचालक इस विभागमें अच्छे-से-अच्छा स्टाफ रखते हैं।

आयोवा-स्टेटके 'कालेज आफ ऐग्रीकल्चर और मेडिसन आर्ट' में गृह-प्रबन्ध-शिक्षाका एक बड़ा सुन्दर विभाग है। आयोवाकी छात्राओंका तो कथन है कि उनका यह विभाग अमेरिका-भरमें सबसे अच्छा है। इसमें शक नहीं कि आयोवा-कालेजका यह विभाग देशमें अपनी अच्छी पढ़ाईके लिए प्रसिद्ध है।

आयोवाके इस कालेजमें प्रतिवर्ष एक हज़ारसे अधिक लड़कियाँ भर्ती होती हैं। इनमें अधिकांश आयोवा-रियासतकी हैं, मगर उनमें मेक्सिको, वीयना, न्यूज़ीलैंड और इस्टोनिया जैसे सुदूर देशोंकी छात्राएँ भी

भोजनके पौष्टिक गुण जाँचनेकी प्रयोगशाला

पहुँच जाती हैं। गृह-प्रबन्ध-विभागके शिक्षक-शिक्षिकाओंकी संख्या साठ है, जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने विषयकी विशेषज्ञ हैं। इस विभागमें निम्न-लिखित विषय पढ़ाये जाते हैं—व्यावहारिक कलाएँ, भोजन और पौष्टिक खाद्य-द्रव्य, प्रबन्ध-शिक्षा (जिसमें काफ़ी,

आयोवा स्टेट कालेजका गृह-प्रबन्ध-विभाग

चाखानों और दूकानोंका इन्तज़ाम करना सिखाया जाता है), शारीरिक व्यायाम, कपड़े और स्त्रियोंकी पोशाकें तथा घरका प्रबन्ध (जिसमें घरका इन्तज़ाम, बच्चोंकी देख-रेख, बच्चोंकी शिक्षा, घरकी सजावट) आदि बातें पढ़ाई जाती हैं।

पहले गृह-प्रबन्ध-शिक्षामें केवल भोजन बनाना और सिलाई ही सिखाई जाती थी, मगर अब वे सब बातें बदल गईं। अब इस शिक्षाका उद्देश्य यह है कि स्त्रीको न केवल घरका उचित प्रबन्ध ही आ जाय, बल्कि वह समाजमें अपना उचित स्थान भी ग्रहण कर सके।

अब जो शिक्षा दी जाती है, उसमें इस बातपर विशेष ध्यान रखा जाता है कि महिलाओंको निम्न-लिखित बातें आ जायँ :—

१. स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंका व्यावहारिक ज्ञान।

२. अपने समय और धनका सदुपयोग करनेकी योग्यता।

३. दैनिक जीवनमें सौन्दर्य उत्पन्न करना और उसका आनन्द लेना।

४. अन्य लोगोंके साथ सुन्दर सामाजिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी योग्यता।

इस विभागका कोर्स चार वर्षका है। गृह-प्रबंध-विभागमें काफ़ी विषय पढ़ाये जाते हैं, जिनके चुनावमें छात्राओंको पर्य्याप्त स्वतन्त्रता है। इस विभागमें कुछ
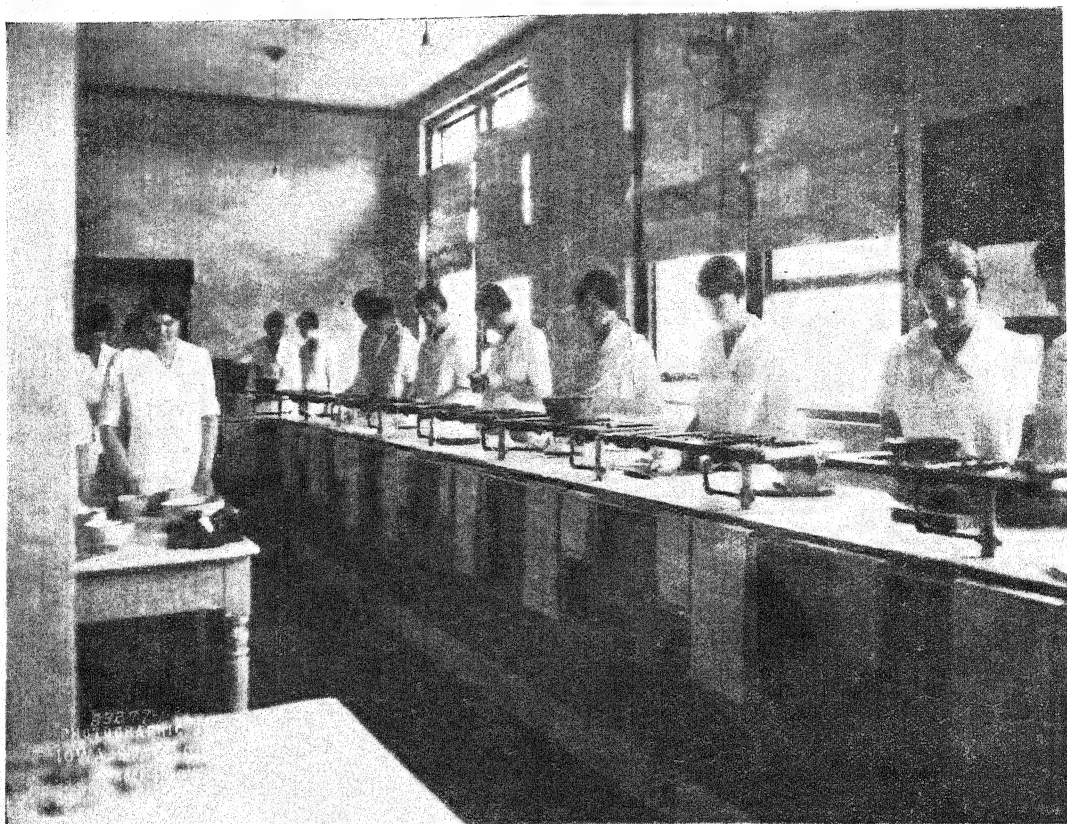
पाकशास्त्रकी शिक्षाका क्लास

मुख्य विषय हैं—विभिन्न प्रकारके भोजन बनानेकी विधि, भोज्य-पदार्थोंके रासायनिक और पौष्टिक गुण-दोष, विभिन्न प्रकारकी पाक-विधियाँ, धुलाई, कपड़ोंकी पहचान और चुनाव, सिलाई, मकानकी सजावट, पाकशाला तथा घरकी अन्य चीज़ोंका उचित इस्तेमाल, शरीर-गठन, सफाई, शरीरकी रक्षा, घरेलू खर्चका हिसाब-किताब आदि। जितनी भी बातें जीवनको सुन्दर और आनन्दप्रद बनाती हैं, उनकी वैज्ञानिक शिक्षाका ध्यान रखा जाता है।

इन विषयोंके अलावा अंगरेज़ी भाषा और साहित्य, अमेरिका तथा अन्य देशोंका इतिहास, मनोविज्ञान, शरीरशास्त्र, समाजशास्त्र, पत्रकार-कला तथा अन्य पेशोंकी शिक्षा भी दी जाती है। गणित, वनस्पतिशास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र और जीव-विज्ञानकी प्राथमिक शिक्षा तो अनिवार्य है।

चौथी श्रेणीकी लड़कियाँ आठ-आठ लड़कियोंकी टोली बनाकर डेढ़ मास तक अलग-अलग मकानोंमें, जो 'गृह-प्रबन्ध-भवन' कहलाते हैं, रहती हैं। आयोवा-कालेजमें इस प्रकारके चार भवन हैं। इन भवनोंमें लड़कियाँ अपने गृह-प्रबन्धकी योग्यताका परिचय देती हैं। किसी अनाथालयसे लाकर दो वर्षका एक बच्चा इन भवनोंमें रख दिया जाता है। यहाँ रहकर लड़कियाँ अपने गृह-प्रबन्ध, अतिथि-सत्कार, शिशु-पालन आदि बातोंकी व्यावहारिक परीक्षा देती हैं।

गृह-प्रबन्ध-हाल एक शानदार इमारत है, जिसमें गृह-प्रबन्ध-सम्बन्धी शिक्षाके अध्ययनके लिए सब

घरके भीतरकी सजावटकी शिक्षा

प्रकारके यन्त्र, चीज़ें और साज-सामान मौजूद हैं। यहाँ सब सामानोंसे युक्त अप-टू-डेट रसोईघर, चा-रूम आदि हैं। चाखानोंमें किस प्रकार ग्राहकोंसे बरतना चाहिए, ये बातें बतलाई जाती हैं। दोपहरमें छात्राओं और शिक्षिकाओंको थोड़े मूल्यमें यहाँका बना हुआ भोजन मिलता है। घर सजानेका सब सामान यहाँ रहता है, जिससे लड़कियाँ व्यावहारिक रूपसे घर सजाना सीखती हैं। प्राणिशास्त्रकी शिक्षाके लिए तथा पौष्टिक भोजनोंके गुण-दोष जाननेके लिए प्रयोगशालामें जानवर —विशेषकर खरगोश और और चीनी चूहे—पले हैं।

शारीरिक व्यायामका प्रबन्ध इसीसे संलग्न एक पृथक् इमारतमें है। इस कोर्सके अलावा, जो लड़कियाँ और भी ऊँची शिक्षा प्राप्त करना चाहती हैं, उनका भी ध्यान रखा गया है।

इतना ही नहीं, अपनी शिक्षिकाओंकी सहायतासे छात्राएँ 'आयोवा होम मेकर' नामक एक त्रैमासिक पत्र भी निकालती हैं। इस पत्रको पढ़कर अमेरिकन गृहणियाँ अनेकों लाभदायक घरेलू बातें सीखती हैं।

कालेजका अपना निजी रेडियो ब्राडकास्टिंग स्टेशन है, जहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल एक घंटा गृह-प्रबन्ध-विभागके लिए रिज़र्व रहता है। यहाँसे प्रतिदिन स्वास्थ्य, सफ़ाई, बच्चोंकी देख-रेख आदि विषयोंपर रेडियो-व्याख्यान होते हैं। इन रेडियो-व्याख्यानोंमें अकसर विदेशोंके विद्यार्थी अपने-अपने देशोंके घरेलू प्रबन्धकी बातें बताया करते हैं।

एक सहस्त्र लड़कियोंकी देख-रेख करनेमें यहाँके गृह-प्रबन्ध-विभागकी डीनको बहुत व्यस्त रहना पड़ता
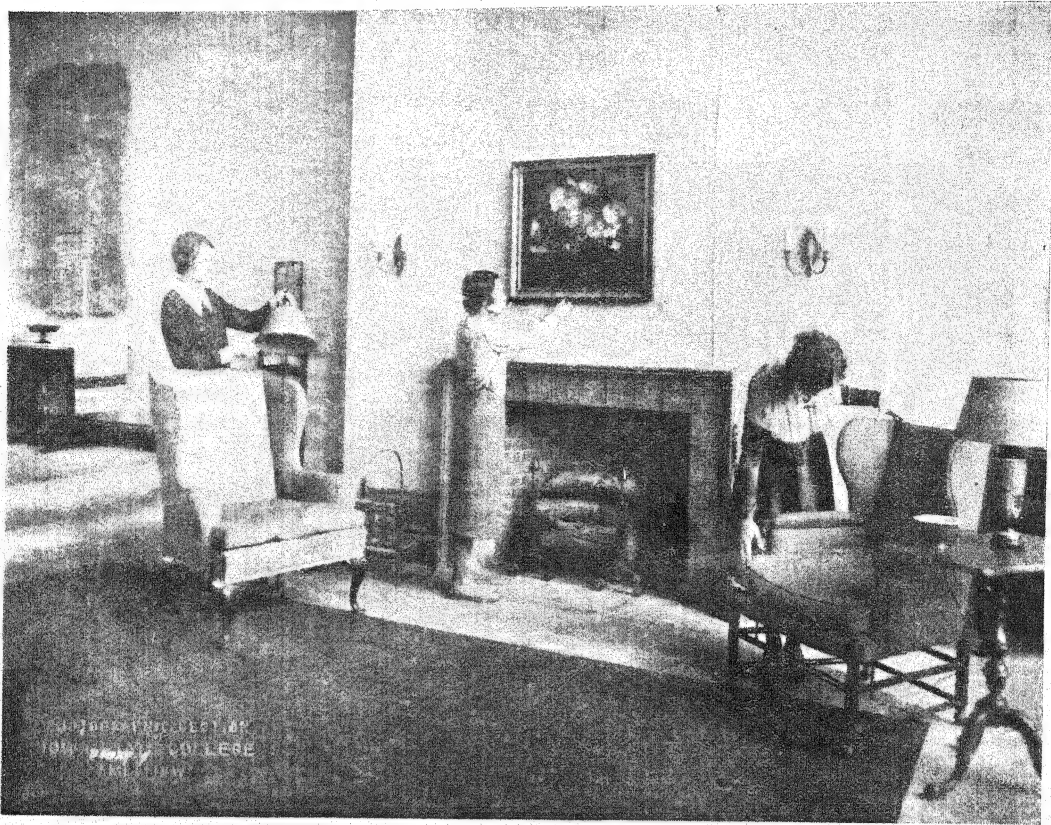
धुलाईकी शिक्षाका कमरा

है। जो लड़कियाँ अपने माता-पिताके साथ नहीं रहतीं, या बाहरकी हैं, उनके लिए छात्रावास बने हैं। यह छात्रावास बहुत आकर्षक और ऐसे सुन्दर हैं, जिनमें लड़कियोंको अपने घरों-जैसा सुख मिलता है। प्रथम वर्षके बाद लड़कियाँ अपने इच्छानुसार इन्हीं छात्रावासोंमें रहती हैं, या 'सोरोटी हाउसेज़' में रहती हैं। सोरोटी हाउस एक प्रकारके क्लब हैं, जिनमें लड़कियोंके रहने और खाने-पीनेका प्रबन्ध है। इन क्लब-घरोंका सारा प्रबन्ध लड़कियों ही के हाथमें है। इनकी अध्यक्षा, समाज-मन्त्रिणी, खेल-मन्त्रिणी और कार्यकारिणी-समिति आदिका निर्वाचन प्रतिवर्ष होता है। शुक्रवार और शनिवारको इन क्लबोंमें नाच और पार्टियाँ होती हैं, जिनमें लड़कियोंके पुरुष-मित्र भी निमन्त्रित होते हैं, मगर ये पार्टियाँ आदि डीनकी आज्ञा और अनुमतिसे ही होती हैं, और उनमें शिक्षिकाएँ उपस्थित रहती हैं।

आयोवा-कालेजके पुरुष-छात्रोंके लिए भी इसी प्रकारके पृथक क्लब-घर हैं, जो 'फ्रैटरनिटीज़' कहलाते हैं।

आयोवा-स्टेट-कालेज विदेशी छात्राओंको एक निश्चित संख्यामें छात्रवृत्तियाँ दिया करता है, मगर विदेशोंसे आनेवाली छात्राओंको ग्रेजुएट होना चाहिए। वे ग्रेजुएटके रूपमें भर्ती की जाती हैं, और शिक्षा समाप्त करनेपर उन्हें एम० एस० या पी-एच० डी०की डिग्री मिलती है।

हमारे देशकी जो छात्राएँ देशोद्धारके कार्यमें अपना जीवन लगाना चाहती हैं, उन्हें इस विद्यालयसे शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

स्वर्गवासी बाबू शिवनन्दन सहाय

श्री यशोदानन्दन अखौरी

बिहार-प्रान्तके प्रख्यात हिन्दी-लेखक और प्रतिभा-शाली कवि बाबू शिवनन्दन सहायका गत वैशाख शुक्ला दशमीको आरेके उनके निवासस्थानमें परलोकवास हो गया। हिन्दीमें आलोचनात्मक जीवन-चरित्र लिखनेकी शैली निकालकर वे अपना नाम अमर कर गये हैं। बाबू शिवनन्दन सहायकी गणना उन इने-गिने लेखकोंमें है, जिन्होंने साहित्यकी सेवा किसी प्रकारके व्यवसाय-विचारसे नहीं, बल्कि अपनी सच्ची साहित्यिक लगनसे सम्पूर्ण निष्काम और निःस्वार्थ-भावसे की है। उनके उठ जानेसे सचमुच विहारका एक रत्न खो गया, अथवा विहारके साहित्योद्यानका एक फलदार वृक्ष करालकालके झोंकेसे अकस्मात भूमिसात् हो गया। इनके जोड़का निःस्वार्थ हिन्दी-लेखक बिहारमें विरला ही कोई निकले। ऐसे विशेष गुणविशिष्ट व्यक्तिकी जीवनी हम 'विशाल-भारत' के पाठकोंकी भेंट करके अपनी वाणीको सफल और लेखनीको पवित्र करते हैं।

जन्म और वंशादि परिचय

उनका जन्म विक्रम संवत् १९१७ में आश्विन शुक्ला द्वितीयाको आरा नगरसे लगभग एक कोस पच्छिम अख़तियारपुर नामके अपने पैतृक गाँवमें श्रीवास्तव कायस्थ-कुलमें हुआ था। अख़तियारपुर कायस्थोंकी नामी और भारी बस्ती है। यहाँके कायस्थ विद्या और प्रतिष्ठामें बहुत गौरव प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे ही विद्या-मानसम्पन्न स्थानमें उन्होंने जन्म लिया। उनके पिताका नाम मुन्शी काली सहाय था। वे भी साहित्यानुरागी और फारसीके लेखक तथा कवि थे।

अध्ययन और छात्रावस्था

लगभग पाँच-छै बरसकी अवस्थामें आपके विद्याध्ययनका श्रीगणेश हुआ। उस समय बिहारमें आजकलकी तरह लड़के सर्वप्रथम अंगरेज़ी स्कूलमें पढ़नेके लिए नहीं भेजे जाते थे। तब यहाँ फ़ारसीका दौरदौरा कम न था। कायस्थोंके लड़के पहले-पहल मौलवी साहबोंके मकतबोंमें ही फ़ारसी पढ़नेके लिए भेजे जाते थे। उसी मकतबमें बालकोंकी विद्याका 'बिस्मिल्लाह' होता था। तत्कालीन उसी पारम्परिक प्रथाके अनुसार बाबू शिवनन्दन सहाय भी मौलवी साहबके मकतबमें फ़ारसी पढ़नेके लिए बैठाये गये। मकतब वस्तीमें ही था। इससे कहीं अन्यत्र जाना नहीं पड़ता था। मकतबसे आनेके बाद उनके पिता दिन-भरकी पढ़ाईके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करते और जो कुछ कमी होती, उसकी भी पूर्ति करते थे। इस प्रकार अपने विद्यानुरागी पिताकी देखरेखमें लगभग तेरह बरसकी अवस्था तक उन्होंने फ़ारसीका अध्ययन किया। इसके उपरान्त अंगरेजी पढ़नेके लिए वे पटने भेजे गये। वहाँ उन्होंने पटना-कालेजिएट स्कूलमें नाम लिखाया, और हर साल परीक्षामें उत्तम रूपसे उत्तीर्ण होते गये। अन्तमें सन् १८८० में वे एन्ट्रेन्स-परीक्षामें द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। इधर वे सफलमनोरथ होकर आगे अध्ययन करनेके उद्योगमें थे, और उधर उनके पिताको अपनी अस्वस्थताके कारण कामकाज छोड़कर घर बैठ जाना पड़ा। इससे उन्हें आगे अध्ययन करनेका विचार विवश होकर छोड़ देना पड़ा, और नौकरीकी तलाश करनी पड़ी।

नौकरी और गार्हस्थ्य जीवन

वे कर्मशील और उत्साही नवयुवक थे। उनको नौकरीकी तलाशमें बहुत दिन भटकना नहीं पड़ा। सौभाग्यवश तुरत ही वे पटनेके जजी आफिसमें सेकेंड क्लार्कके पदपर नियुक्त हुए। उस समय भी नौकरीके उम्मीदवारोंकी होड़ और चढ़ा-ऊपरी कम न थी। इस नियुक्तिमें बाबू साहबको भी होड़ और चढ़ा-ऊपरीका सामना करना पड़ा था। किन्तु उनकी विद्वत्ता और योग्यताने उन्हें सफल बना

दिया। इसी विद्वत्ता और योग्यताकी बदौलत उनकी क्रमशः पदोन्नति होती गई। कुछ ही वर्ष बाद वे एकाउराटेराटके पदपर नियुक्त हुए। इस पदके कार्य भी उन्होंने बड़ी उत्तमता और योग्यताके साथ सम्पादित किये। उसके बाद जजीके हेड क्लार्क नियुक्त हुए। फिर अन्तमें जजीके ट्रान्सलेटरके पदपर नियुक्त हुए, और पेन्शन पानेके समय तक—सन् १९१५ तक—उन्होंने बड़ी ख़ूबीके साथ उक्त पदके कार्योंका निर्वाह किया। बीच-बीचमें उन्होंने जजीकी शिरस्तेदारीके पदपर भी स्थानापन्न रूपसे काम किया था। अपनी विद्वत्ता, योग्यता और कार्यपटुताकी बदौलत वे स्थायी रूपसे शिरिस्तादार हो जाते, क्योंकि उनके ऊपरवाले अफ़सर उनके कामोंसे सदा सन्तुष्ट और प्रसन्न रहते थे, पर वे जन्मसे ही ऊँचे सुनते थे, इससे उपयुक्त अधिकारी होनेपर भी वे उक्त पदसे वंचित रहे। सन् १९१५ में लगभग सत्तर रुपये मासिक पेन्शन प्राप्तकर वे नौकरीसे विरत होकर घर बैठ गये।

साहित्यिक और सार्वजनिक सेवाएँ

बहुधा ऐसा देखा जाता है कि नौकरी पेशेवाले व्यक्तियोंका सम्बन्ध साहित्य और सार्वजनिक कार्योंके साथ छत्तीसका-सा रहता है। चाहे अन्यत्र न हो, पर बिहारकी दशा तो ऐसी ही है, और विशेषकर आजसे तीस-चालीस बरस पहले। इस प्रदेशमें बाज तो ऐसे भी होते हैं, जिन्हें अपना तो साहित्यादिसे कोई सरोकार ही नहीं, पर दूसरोंकी धूल उड़ानेसे बाज़ नहीं आते। किन्तु हमारे चरितनायक बाबू शिवनन्दन सहाय इस विषयके अपवाद थे। बचपनसे ही वे साहित्यानुरागी थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि उन्होंने लड़कपनमें पहले-पहल फ़ारसीका ही अध्ययन किया था। स्कूलमें भी उनकी 'दूसरी भाषा' (Second language) फ़ारसी ही रही। फ़ारसी और उर्दूमें उनकी व्युत्पत्ति अच्छी थी। छात्रावस्थासे ही उक्त भाषाओंमें लेख लिखते और कविता करते थे। अंगरेज़ीमें भी वे लेख लिखते थे। उनके अंगरेज़ी लेख समय-समयपर 'इंडियन क्रानिकल', पटनेके 'बिहारी' और कलकत्तेके 'लाइट आफ़ दि ईस्ट' नामके पत्रोंमें निकला करते थे।

अब तक उनकी अभिरुचि फ़ारसी, उर्दू और अंगरेज़ी साहित्यकी ही ओर थी। हिन्दी-साहित्यकी ओर उनका झुकाव न था। जिस समय वे पटनेकी जजी कचहरीमें काम कर रहे थे, उस समय हिन्दीके विख्यात व्याख्याता गोलोकवासी पं० अम्बिका-दत्त व्यास पटना-कालेजमें ही अध्यापक थे, और उसी समय पटनेके खड्गविलास प्रेसके मालिक और हिन्दी-साहित्यके संरक्षक स्वर्गवासी महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह और उनके उत्साही सहायक बाबू साहबप्रसाद सिंह बिहारमें हिन्दी-साहित्यका बगीचा लगानेमें तन-मनसे तत्पर थे। स्वाभाविक साहित्यिक अनुराग और अभिरुचिने बाबू शिवनन्दन सहायका पहले तो गोलोक-वासी पं० अम्बिकादत्त व्याससे और पीछे खड्गविलास प्रेसके उक्त दोनों सज्जनोंसे सम्मिलन कराया। इन हिन्दी-साहित्यिकोंके संसर्गसे उनका मन हिन्दीकी ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने उक्त व्यासजीकी 'गोसंकट नाटक' नामकी पुस्तकका अंगरेज़ीमें उल्था भी किया। कुछ दिन बाद तो वे हिन्दीकी तरफ़ इतने झुके कि फ़ारसी, उर्दू, या अंगरेज़ीमें लेखादि लिखना एक प्रकारसे बन्द ही कर दिया।

बाबू साहब जैसे-जैसे हिन्दीकी ओर झुकते गये, वैसे-वैसे खड्विलास प्रेसके मालिक बाबू रामदीन सिंहसे घनिष्ठता बढ़ती गई। बाबू रामदीन सिंह भी बड़े ही गुणग्राही और लेखकोंके उत्साहवर्द्धक थे। हिन्दीकी ओर उनकी प्रवृत्ति देखकर बाबू रामदीन सिंहने हिन्दी-साहित्यके ग्रन्थोंके अध्ययनका उन्हें यथेष्ट सुभीता दिया, और इस ओर उनका उत्साह ख़ूब बढ़ाया। इसीके परिणामसे उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और गोस्वामी तुलसीदासके ग्रन्थ पढ़ना आरम्भ किया। कुछ ही दिनोंमें इन दोनों कवियोंके ग्रन्थ उन्होंने बड़े ही अनुसन्धानके साथ पढ़ डाले। भारतेन्दुजीके नाटकोंसे प्रभावान्वित होकर

उन्होंने अपनी बस्ती अख़तियारपुरमें एक नाटक-मंडलीकी स्थापना भी की थी।

भारतेन्दु और गोस्वामीजीके ग्रन्थोंके अवलोकन, अध्ययन और मननसे उनकी प्रवृत्ति हिन्दीमें कविता करनेकी हुई। पटना सिटीमें 'हरमन्दिर' नामका नानकशाही पन्थका एकमन्दिर है। बाबू शिवनन्दन सहाय भी नानकशाही सम्प्रदायमें ही दीक्षित थे। इससे आप बहुधा हरमन्दिरमें जाया आया करते थे। मन्दिरके महन्त उस समय बाबा सुमेरसिंहजी थे। ये कोरे महन्त ही नहीं थे, बल्कि हिन्दीके अच्छे और प्रतिभावान कवि भी थे। बाबा सुमेरसिंहके सत्संगसे कविताकी ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ी। महन्तजीसे उन्होंने हिन्दीकी छन्दादि-सम्बन्धी पोथियोंका अध्ययन किया, और हिन्दीमें कविता करनी सीखी। इसी समय उनकी संस्कृत पढ़नेकी भी अभिलाषा हुई। उन्होंने पं० दामोदर शास्त्रीसे संस्कृतका अध्ययन किया। उस समय उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ता था। इधर कचहरीके कामोंका झमेला और उधर घरपर कविता और संस्कृतका अध्ययन, पर उन्होंने दोनों काम बड़ी ख़ूबीके साथ निबाहे।

कुछ ही दिनोंमें हिन्दी-कविता करनेमें उनकी अच्छी गति हो गई। समस्या-पूर्तिमें तो वे बड़ी ही उत्सुकता दिखलाते थे। अपनी पूर्त्तियाँ वे काशीके कविमंडल और कविसमाजकी पत्रिकाओंमें भेजा करते थे। पीछे उन्हींके तत्त्वावधानमें पटनेमें भी एक कवि-समाजकी स्थापना हुई, और उससे भी सामयिक रूपसे समस्या-पूर्त्तिकी एक पत्रिका निकलने लगी, जिसके सम्पादक उन्हींके होनहार नवयुवक सुपुत्र बाबू ब्रजनन्दन सहाय थे। कुछ दिनोंके बाद यह पत्रिका बन्द हो गई। उनकी कविताएँ पुस्तकाकार 'कुसुम-कुंज' के नामसे पटनेके खड्गविलास प्रेसमें छप चुकी हैं।

गोलोकवासी पं० अम्बिकादत्त व्यासके संसर्गसे शिवनन्दन सहायजीने हिन्दीमें व्याख्यान देना आरम्भ किया। उनके व्याख्यान बड़े ही मनोहर, विद्वत्तापूर्ण और हास्यरसमय होते थे। कई वर्षों तक वे पटनेके धर्मसमाजके सभापति रहे। सन् १९२१ में वे बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभाध्यक्ष निर्वाचित

स्वर्गीय बाबू शिवनन्दन सहाय

हुए। सन् १९२५ में प्रान्तीय कवि-सम्मेलनके भी सभापति बनाये गये थे। इनके सिवा बिहारमें समय-समयपर अन्यान्य सभाओंके सभापतिके पदपर भी वे निर्वाचित होते रहते थे।

पुस्तक-प्रणयन

हिन्दीके धुरन्धर विद्वानों और व्याख्यानदाताओंके संसर्गसे उन्होंने जो साहित्यिक ज्ञान प्राप्त किया, वह केवल उनके मन तक ही न रहा, बल्कि उससे हिन्दी-साहित्यका बड़ा उपकार हुआ। इसके पहले हिन्दीमें हिन्दीके लेखकों और कवियोंकी जीवनीका प्रायः अभाव ही था। उन्होंने इस अभावको संपूर्ण नहीं, तो कुछ अंशोंमें अवश्य पूरा किया। उन्होंने नीचे लिखी जीवनी-पुस्तकोंकी रचनाकर हिन्दी-साहित्यके भंडारकी वृद्धि की है :—

(१) भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जीवन-चरित्र—(इसके लिए आरा-नागरी-प्रचारिणी सभासे उन्हें पदक प्रदान किया गया था। पटना-विश्वविद्यालयकी बी० ए० परीक्षाकी यह पाठ्य-पुस्तक है)। (२) गोस्वामी तुलसी-

दासका जीवन-चरित्र—(यह भी पटना-विश्वविद्यालयकी बी० ए० परीक्षाकी पाठ्य-पुस्तक है, और बिहार, युक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा पंजाबके कितने ही प्रसिद्ध पुस्तकालयोंके लिए अनुमोदित है)। (३) गौरांग महाप्रभु—(यह बंगालके श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी जीवनी है) । (४) सिख-गुरुओंकी जीवनी। (५) श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादकी जीवनी । (६) बाबा सुमेरसिंहकी जीवनी—(पटना-हरमन्दिरके महन्त जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है) । (७) बा० साहबप्रसादसिंहकी जीवनी—(पटना-खड्गविलास प्रेसके आदि प्रबन्धकर्त्ता)

इन जीवनी-पुस्तकोंके सिवा निम्न-लिखित और भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें अधिकांश कविताकी ही पुस्तकें हैं :—(१) 'विचित्र-संग्रह'—(अंगरेज़ी पुस्तक Lackslay Hall और पोपकृत Pope's Illiad के छन्दोबद्ध अनुवाद) । (२) 'कविता-कुसुम'—(कई अंगरेज़ी कविताओंके छन्दोबद्ध अनुवाद)। (३) 'कुसुम-कुंज'—(फुटकर कविताओंका संग्रह) । (४) 'कृष्ण-सुदामा' । (५) 'सुदामा नाटक' ।

इन पुस्तकोंके सिवा सभापतिकी हैसियतसे दी हुई उनकी वक्तृताएँ कई जगह निकल चुकी हैं ।

चरित्र और स्वभाव

उनका चरित्र बड़ा ही उत्तम और अनुकरणीय था। स्वभाव भी बड़ा सरल और आडम्बरशून्य था। मिलनसारी तो उनमें परले दर्जेकी थी। वे छोटे-बड़े सबसे बड़े प्रेमसे मिलते थे। उनकी साहित्य-सेवा सम्पूर्ण निस्स्वार्थ थी। उन्होंने कभी इस सेवाके पलटे किसीसे कुछ भी लेनेकी परवा न की। उन्होंने जो कुछ लिखा, अपनी मनस्तुष्टिके लिए लिखा। गोस्वामीजीके शब्दोंमें उन्होंने समस्त साहित्य-सेवा 'स्वान्तस्सुखाय' की। जिस किसीने लेख या कविताके लिए उनसे कहा, उसे उनके उदार द्वारसे विमुख न होना पड़ा। बिहारमें लेखकों और कवियोंकी कमी नहीं है, किन्तु उनके शील-स्वभावके लेखक या कवि बिरले ही होंगे। वे बिहारके रत्न थे। नौकरी करके भी उन्होंने जो कुछ साहित्य-सेवा की, वह अनुकरणीय है।

अन्तिम जीवन और तदुपरान्त

इधर सोलह सत्तरह बरससे पेन्शन पाकर आप घर बैठे थे। ये निठल्ले कभी न बैठे रहते थे। पुस्तकें पढ़नेका उन्हें भारी व्यसन था। उनकी संगृहीत सैकड़ों पुस्तकें हैं, जिनसे एक ख़ासा पुस्तकालय तैयार हो गया है। उसकी सूची उन्होंने स्वयं तैयार की है। इधर कुछ दिनोंसे वे अस्वस्थ रहते थे, पर इस अवस्थामें भी कम काम न करते थे। अपने पौत्रोंसे अपनी कविताएँ तथा लेख लिखवाकर छपनेको भेजा करते थे। गत वैशाख शुक्ला दशमीको उन्होंने पक्षाघात रोगसे महाप्रस्थान किया। प्रस्थानके केवल तीन-चार दिन पहले ही वे पक्षाघातसे एकाएक आक्रान्त हुए। देखते-देखते वे अत्यन्त अशक्त और अवश हो गये। बोलना-चालना बन्द हो गया। अन्तको उक्त तिथिको सब परिवार और परिजनादिको रुलाते हुए परलोक पयान किया।

वे अपनी धवल साहित्य-कीर्त्तिको तो छोड़ गये ही हैं, इसके सिवा अपने पीछे अपने पुत्र और पौत्रोंको भी साहित्य-क्षेत्रके लिए उपयुक्त बनाकर रख गये हैं। उनके पुत्र बाबू ब्रजनन्दनसहाय हिन्दीके प्रख्यात उपन्यासकार हैं। इनके मौलिक उपन्यासोंके उल्थे कई प्रान्तीय भाषाओंमें हो चुके हैं। इनकी प्रतिभाशाली लेखनी भी कमाल करती है। पिताकी तरह इनकी साहित्य-सेवा भी निस्स्वार्थ है। जगदीश्वर आपको चिरंजीवी बनावे, जिससे हिन्दी-साहित्यका गौरव बढ़े, और साथ-ही-साथ बिहार-प्रान्तका भी मुख उज्ज्वल हो।

अन्तमें हमें निस्संकोच होकर कहना पड़ता है कि अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने बाबू शिवनन्दन सहायको सभापतिके पदसे वंचित रखकर एक प्रकारसे अपने कर्त्तव्य-पालनमें भारी प्रमाद किया है। इस प्रमादका प्रधान कारण वोटों और कनवैसिंगकी महिमा है, जिसके प्रभावसे शायद ही कोई संस्था अछूती हो।

स्वाभिमानी

तुर्गनेव

(गतांकसे आगे)

मैं मन-ही-मन यह आशा कर रहा था—मानव-प्रकृतिकी यह दुर्बलता है—कि वे मुझे अपने घरपर नहीं मिलेंगे, किन्तु इस बार भी मैंने धोखा खाया। दोनों घरपर ही मौजूद थे। गत तीन दिनोंके अन्दर उन लोगोंमें जो परिवर्तन हो चुका था, वह किसी भी व्यक्तिको खटके बिना नहीं रह सकता था। पूनिनका चेहरा प्रेत-जैसा सफेद और मैला कुचैला दीख पड़ता था। वह पहले-जैसा बातूनी अब बिलकुल नहीं रह गया था। वह लापरवाहीके साथ धीरे-धीरे पहले-जैसे ही अस्फुट स्वरमें बोला और कुछ घबराया-सा मालूम पड़ने लगा। उधर बैबूरिन संकोचशील सिकुड़ा हुआ-सा जान पड़ता था, और इतना काला हो गया था, जैसा वह पहले कभी नहीं था। वैसे तो अच्छे-से-अच्छे मौक़ेपर भी वह मौन रहता था, पर वह अब कभी-कभी कुछ शब्द उच्चारण करनेके सिवा और कुछ नहीं बोलता था। उसके चेहरेपर पत्थर-जैसी कठोरताका भाव जमा हुआ-सा मालूम पड़ता था।

मेरे लिए चुप रहना असम्भव हो गया, पर मैं कहता भी तो क्या ? मैंने पूनिनके कानमें चुपकेसे कहा—"मुझे कुछ भी पता नहीं चला, और मैं तुम्हें यही सलाह दूँगा कि उसकी कुछ भी आशा न रखो।" पूनिनने अपनी छोटी-छोटी फूली हुई लाल आँखोंसे—उसके चेहरेमें सिर्फ यही लाली रह गई थी—मेरी ओर दृष्टिपात किया, और अस्फुट स्वरमें कुछ बड़बड़ाया। फिर इसके बाद वहाँसे लँगड़ाता हुआ चला गया। मैं पूनिनसे जो कुछ कह रहा था, उसे शायद बैबूरिन अनुमानसे ताड़ गया, और अपने बन्द होठोंको—जो इस कदर कसकर बन्द थे, मानो लेईसे आपसमें सटे हुए हों—खोलते हुए सावधान स्वरमें कहा—"प्रिय महाशय, पिछली दफा जब आप हम लोगोंसे मिलने आये थे, उसके बाद हम लोगोंके यहाँ एक अप्रिय घटना हो गई है। हम लोगोंकी नवयुवती मित्र मानसीने हमारे साथ रहना असुविधाजनक समझकर हमें छोड़ देनेका निश्चय किया है, और इस सम्बन्धमें उसने हमें लिखित सूचना दे दी है। यह विचारकर कि हमें उसके ऐसा करनेमें रुकावट डालनेका कोई हक नहीं है, हम लोगोंने उसे अपने विचारानुसार जैसा वह सर्वोत्तम समझे, वैसा करनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया है। हमें विश्वास है कि वह सुखी होगी।"—अन्तिम वाक्य जोड़ते हुए उसने कुछ प्रयत्नके साथ कहा—"और मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि इस विषयका अब कोई ज़िक्र न कीजिए, क्योंकि इस प्रकारकी चर्चा व्यर्थ है और कष्टप्रद भी।"

"सो यह भी टारहोवके समान ही मुझे मानसीके सम्बन्धमें कुछ बोलनेसे मना करता है।" यही विचार मेरे मनमें उदित हुआ, और मन-ही-मन मैं इसपर आश्चर्य किये बिना न रह सका। तभी तो बैबूरिन ज़ीनोकी इतनी ज़्यादा कद्र करता है। मेरी इच्छा हुई कि उस तत्त्वज्ञानीके सम्बन्धमें कुछ बातें उसे बता दूँ, पर मेरी ज़बानसे कोई बात ही न निकली, और यह अच्छा ही हुआ।

फिर मैं जल्द ही वहाँसे अपने कामपर चला गया। विदा होते समय न तो पूनिनने और न बैबूरिनने ही फिरसे मिलनेकी बात कही। दोनोंने एक ही शब्दका उच्चारण किया—"विदा।"

पूनिनने 'टेलीग्राफ' पुस्तक—जिसे मैंने उसे ला दिया था, मुझे लौटा दी, मानो यह कहते हुए कि "मुझे अब ऐसी किसी चीज़की दरकार नहीं है।"

इसके एक सप्ताह बाद मुझे एक विचित्र ढंगका साक्षात्कार हुआ। वसन्तऋतुका सहसा आरम्भ हो चुका

था। दोपहरमें अठारह डिगरी तक गरमी पहुँच चुकी थी। पृथ्वीपर चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली नज़र आ रही थी। मैंने भाड़ेपर एक टट्टू लिया, और उसपर सवार होकर शहरके बाहर पहाड़की तरफ़ सैरके लिए निकल पड़ा। सड़कपर मुझे एक छोटी गाड़ी दिखाई पड़ी, जिसमें एक जोड़े तेज़ घोड़े जुते हुए थे। उनके कानों तक कीचड़ भरा था, पूँछे गुथी हुई थीं, और गरदन तथा आगेके बालोंमें लाल रंगके रेशमी कपड़े लिपटे हुए थे। उनका साज शिकारियोंके घोड़ों जैसा था। ताँबेका मंडल और झब्बे लटक रहे थे। एक चुस्त युवक कोचवान बिना आस्तीनके नीले रंगका कुरता, पीले रंगकी धारीदार रेशमी कमीज़ और मयूरके पंखोंसे सजी हुई एक फेल्ट टोपी पहने हुए उन घोड़ोंको हाँक रहा था। उसकी बग़लमें शिल्पकार या वणिक श्रेणीकी एक लड़की फूलदार रेशमी जाकेट पहने और एक बड़ासा लम्बा रूमाल सिरमें लपेटे बैठी थी। वह खुशीके मारे उछल रही थी। कोचवान भी हँस रहा था। मैंने अपने टट्टूको एक तरफ़ कर लिया, और तेज़ीसे जाते हुए उस प्रसन्न जुगल जोड़ीकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इतनेमें हठात उस युवकने घोड़ेको आवाज़ दी······

तब मुझे पता लगा—अरे, यह तो टारहोवकी आवाज़ जैसी मालूम होती है। मैं इधर-उधर देखने लगा······हाँ, वह टारहोव ही था—अवश्य वही था। किसानोंकी पोशाक पहने था, और उसकी बग़लमें मानसीके सिवा और कौन हो सकती थी?

किन्तु उसी क्षण उनके घोड़ोंने अपनी चाल तेज़ की, और एक मिनटके अन्दर ही वे मेरी दृष्टिसे ओझल हो गये। मैंने उनके पीछे टट्टू दौड़ाकर ले जानेकी कोशिश की, किन्तु वह एक बूढ़ा टट्टू था, जो चलते समय एक ओरसे दूसरी ओर मटककर चलता था, और यों अपनी चालसे चलनेकी अपेक्षा दौड़ाकर ले जानेमें वह और भी सुस्त हो जाता था।

"प्यारे दोस्तो! खूब जी-भरकर मौज कर लो!"—मैंने ज़ोरसे बड़बड़ाकर कहा।

यहाँपर मुझे यह भी बता देना चाहिए कि इस तमाम हफ़्ते-भरमें मैंने टारहोवको नहीं देखा था, यद्यपि मैं तीन बार उसके कमरेमें गया। वह घरपर कभी नहीं रहता था। बैबूरिन और पूनिन इन दोनोंमें किसीसे भी मेरी मुलाक़ात नहीं हुई······मैं उन लोगोंसे मिलने भी नहीं गया।

टट्टूपर सवार होकर बाहर जानेमें मुझे सर्दी लग गई थी। यद्यपि मौसम बहुत गर्म था, किन्तु हवा चुभती हुई-सी बह रही थी। मैं बहुत बीमार हो गया, और जब चंगा हुआ, तो अपनी दादीके साथ, डाक्टरकी सलाहसे, स्वास्थ्य लाभ करनेके लिए, देहात चला गया। फिर मैं मास्को नहीं आया। शरदऋतुमें मैं पीटर्सबर्ग-विश्वविद्यालयमें भर्ती हो गया।

[२]

१८४९

सात नहीं, बल्कि पूरे बारह वर्ष बीत गये थे, और मैंने अपने जीवनके बत्तीसवें वर्षमें पदार्पण किया था। मेरी दादीको मरे बहुत दिन हो गये थे, मैं पीटर्सबर्ग-स्वराष्ट्र-विभागके एक पदपर काम करता था। टारहोव मेरी दृष्टिसे दूर हो गया था। वह फ़ौजमें भर्ती होकर चला गया था, और प्रायः हमेशा प्रान्तोंमें ही रहा करता था। हम दोनोंमें दोबार मुलाक़ात हो चुकी थी, और पुराने दोस्तके रूपमें एक दूसरेको देखकर प्रसन्न भी हुए थे, पर बातचीतमें हमने पुरानी बातोंका कोई ज़िक्र नहीं किया था। आख़िरी बार जब हम दोनों मिले थे, उस समय वह—यदि मुझे ठीक स्मरण है—एक विवाहित पुरुष बन चुका था।

गरमीके मौसममें, एक दिन जब हवा बिलकुल बन्द थी, मैं गोरोहोव स्ट्रीटमें यों ही चक्कर लगा रहा था और अपने दफ़्तरके कामोंको कोस रहा था, जिसके कारण मुझे पीटर्सबर्गमें और शहरकी गरमी, दुर्गन्ध और धूलमें रहना पड़ता था, मार्गमें मुझे एक मुर्दा मिला। वह एक

टूटी-फूटी मुर्दा ढोनेवाली गाड़ीपर रखा हुआ था, जिसपर लकड़ीकी एक पुरानी ताबूत फटे-पुराने काले कपड़ेसे आधी ढकी हुई थी, और असम मार्गपर चलनेके कारण गाड़ीमें ज़ोर-ज़ोरसे जो झटका लगता जाता था, उससे वह ताबूत भी ऊपर-नीचे हिल-डोल रही थी। उस गाड़ीके साथ गंजे सिरवाला एक बूढ़ा आदमी जा रहा था।

मैंने उसकी ओर देखा···उसका चेहरा परिचित-सा मालूम पड़ा······उसने भी अपनी आँखें मेरी ओर कीं······अरे, यह तो बैबूरिन था।

मैंने अपनी टोपी उतार ली, उसके पास गया, अपना नाम बतलाया और उसके साथ-साथ चलने लगा।

"आप किसे दफनाने जा रहे हैं?"––मैंने पूछा।

उसने कहा—"निकेंडर विवेलिच पूनिनको!"

मुझे यह पहले ही अनुमान हो गया था कि वह इसी नामका उच्चारण करेगा, पर फिर भी उसके मुँहसे यह नाम सुनकर मेरा हृदय दु:खित हो उठा, दिल बैठ गया, फिर भी मुझे इस बातकी ख़ुशी अवश्य थी कि मुझे अपने एक पुराने दोस्तके प्रति अन्तिम बार सम्मान प्रदर्शित करनेका संयोग मिल गया······

"क्या मैं आपके साथ चल सकता हूँ पेरामन सेमोनिच?"

"जैसी आपकी मर्ज़ी······मैं इसके पीछे-पीछे अकेला ही जा रहा था, अब हम दो आदमी हो जायँगे।"

एक घंटेसे अधिक तक हम लोग चलते रहे। मेरा साथी आगे-आगे चल रहा था। चलते समय न तो उसकी आँखें ऊपरकी ओर उठती थीं, और न उसकी ज़बान ही हिलती थी। अन्तिम बार जब मैंने उसे देखा था, उस समयसे अब वह वृद्ध जान पड़ता था, उसके लाल चेहरेपर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और साथ ही उसके सफेद बाल अजीब विभिन्नता प्रकट कर रहे थे। बैबूरिनको अपने जीवनमें बराबर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था, परिश्रम और दु:ख झेलने पड़े थे, जिनके चिह्न उसकी सम्पूर्ण आकृतिसे परिलक्षित हो रहे थे। गरीबी और तकलीफ उसके जीवनके साथ बड़ी बेरहमीसे पेश आई थीं। अन्त्येष्टिक्रिया समाप्त होने और पूनिनका नश्वर शरीर सदाके लिए भूमिसात् हो जानेके बाद बैबूरिन दो मिनट तक उस नवनिर्मित मिट्टीके स्तूपके निकट खुले सिर और नतमस्तक खड़ा रहा, और फिर उसने अपने क्षीण एवं विकृत चेहरे और शुष्क कोटरगत नेत्रोंको मेरी ओर करके मुझे गम्भीरतापूर्वक धन्यवाद दिया, और वहाँसे चलनेके लिए तैयार हुआ, पर मैंने उसे रोक रखा।

"आप इस समय रहते कहाँ हैं पारामन सेमोनिच? मैं आपके घर आकर आपसे मिलना चाहता हूँ। मुझे इस बातका बिलकुल खयाल नहीं था कि आप पिटर्सबर्गमें रहते हैं। हम दोनों अपने पुराने दिनोंकी याद कर सकते हैं, और अपने पुराने दोस्तकी चर्चा भी कर सकते हैं।"

बैबूरिनने तुरन्त ही मुझे जवाब नहीं दिया।

मुझे पीटर्सबर्ग आये हुए दो वर्ष हो गये।"––आखिर उसने कहा––"मैं शहरके अन्तिम भागमें रहता हूँ, पर यदि तुम सचमुच मेरा घर देखना चाहते हो, तो आना।" उसने अपना पता-ठिकाना मुझे दिया––"सन्ध्याकालमें आना, उस समय हम बराबर घरपर ही रहते हैं······हम दोनों ही रहते हैं।"

"आप दोनों कौन?"

"मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी आज कुछ अस्वस्थ है, इसीलिए वह नहीं आई। यद्यपि इस निरर्थक रस्मको पूरा करनेके लिए एक आदमी ही काफ़ी है। इन बातोंपर विश्वास ही कौन करता है?"

मुझे बैबूरिनके अन्तिम शब्दोंपर कुछ आश्चर्य हुआ, पर मैंने कुछ भी न कहा, फिर एक गाड़ीवालेको बुलाया, और बैबूरिनसे उसपर सवार होकर उसके घर चलनेके लिए कहा, पर उसने अस्वीकार कर दिया।

उसी दिन सन्ध्याको मैं उससे मिलने गया। मार्गमें मैं बराबर पूनिनके सम्बन्धमें ही सोचता रहा। मुझे उस समयकी याद आ गई, जब मैं पहले-पहल उससे मिला था।

उन दिनों वह कितना उल्लासपूर्ण और प्रसन्नचित्त जान पड़ता था, और फिर इसके बाद मास्को आकर वह कितना संयमशील बन गया था—खासकर अन्तिम बार जब मैंने उसे देखा था—और अब तो वह अपने जीवनसे अन्तिम हिसाब-किताब कर चुका था। इससे तो यही मालूम पड़ता है कि जीवन अपना पावना पाई-पाई चुका लेनेके लिए उतारू हो जाता है। बेबूरिन विश्रोगस्की मुहल्लेके एक छोटेसे मकानमें रहा करता था। इस मकानको देखकर मुझे उसकी मास्कोकी झोपड़ीकी याद आ गई। पिटर्सबर्गमें वह जिस मकानमें रहता था, वह उससे भी अधिक भद्दा मालूम पड़ा। जब मैं उसके कमरेमें दाखिल हुआ, वह एक कोनेमें अपने हाथोंको घुटनोंपर रखे एक कुरसीपर बैठा था। चर्बीकी एक मोमबत्ती मन्द ज्योतिसे जल रही थी, जिससे उसका झुका हुआ सफेद सिर कुछ-कुछ प्रकाशित हो रहा था। उसने मेरे क़दमोंकी आहट सुनी, चौंककर उठ खड़ा हुआ और मेरा इस रूपमें हार्दिक स्वागत किया, जिसकी मुझे आशा न थी। कुछ मिनटोंके बाद उसकी स्त्री भी वहाँ आ गई। मैंने फौरन पहचान लिया कि यह मानसी है—और तब यह बात मेरी समझमें आई कि बेबूरिनने क्यों मुझे अपने घर आनेके लिए आमंत्रित किया था। वह मुझे यह दिखलाना चाहता था कि आखिर उसकी चीज़ उसे मिल ही गई है। मानसीमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था, उसका चेहरा, उसका स्वर, उसके तौरतरीके—सब कुछ बदले हुए-से मालूम होते थे, पर सबसे बड़ा परिवर्तन जो हुआ था, वह उसकी आँखोंमें! पहले ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वे द्रोहपूर्ण सुन्दर आँखें जीवन्तरूपमें नयनबाण चला रही हों; वे आँखें चुपकेसे चमक उठती थीं, किन्तु उनकी वह चमक प्रोज्ज्वल होती थी, उनके कटाक्षपात चुभते-से हुआ करते थे......किन्तु अब वे ही आँखें किसी वस्तुको सरल, शान्त एवं स्थिर-भावसे देखा करती थीं; उनकी पुतलियोंमें पहले जैसी कान्ति अब नहीं रह गई थी। उसकी कोमल एवं शिथिल दृष्टिसे ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह कह रही हो—"मैं अब पालतू बन गई हूँ, मैं अब भलीमानस हूँ।" उसकी अनवरत विनीत मुसकराहटसे भी यही भाव झलक रहा था। उसके कपड़े भी इसी भावके द्योतक थे, भूरा रंग और उसपर छोटे-छोटे छींटे। वह मेरे पास आई, और मुझसे बोली—"क्या आप मुझे पहचानते हैं?" उसके इस प्रकार पूछनेमें कुछ भी झिझक नहीं मालूम पड़ती थी, पर इसका कारण यह नहीं था कि उसमें लज्जाभाव नहीं रह गया था, अथवा अतीत कालकी उसकी स्मृति नष्ट हो चुकी थी, बल्कि इसका कारण यह था कि उसका क्षुद्र अहंभाव अब बिलकुल नष्ट हो चुका था।

मानसीने पूनिनके विषयमें बहुत कुछ बातें कीं। वह एक समान स्वरमें बातचीत करती थी, और अब उसके उस स्वरमें भी अब पहले-जैसा तेज नहीं रह गया था। मुझे उससे मालूम हुआ कि पूनिन अन्तिम कई वर्षोंमें बहुत कमज़ोर हो गया था, और उसकी प्रकृति बालक-जैसी हो गई थी। उसकी यह प्रकृति इस सीमा तक पहुँच गई थी कि यदि उसे खेलनेके लिए खिलौने नहीं मिलते थे, तो वह अत्यन्त दु:खित हो उठता था। लोग तो यही कहा करते थे कि वह रद्दी चीज़ोंसे खिलौने बनाकर बेचा करता है, मगर असलमें बात यह थी कि वह उन खिलौनोंसे खुद खेला करता था। कविताके लिए उसके हृदयमें जो व्यसन था, वह अन्त तक उसमें क़ायम रहा, और उसे अगर कोई बात याद थी, तो वह सिर्फ कविता ही थी। मृत्युसे कई दिन पूर्व उसने Rossiad की कुछ पंक्तियाँ पढ़कर सुनाई थीं, पर पुश्किनसे वह उसी तरह डरा करता था, जिस तरह बच्चे हौआसे डरा करते हैं। बेबूरिनके प्रति उसकी जो अनुरक्ति थी, वह अन्त तक एक समान बनी रही। बराबर एक रूपमें उसकी पूजा करता रहा, और अन्तकालमें भी जब कि वह मृत्युके अन्धकारपूर्ण आवरणसे आच्छादित हो रहा था, उसने कँपती हुई ज़बानमें 'उपकारकर्त्ता' शब्दका उच्चारण किया था। मुझे मानसीसे यह भी मालूम हुआ कि मास्कोकी घटनाके बाद भी

"विशाल-भारत"] *संथाल-बालकोंका खेल* [चित्रकार—श्री सुधांशु राय

बैवूरिनको दुर्भाग्यवश एक बार फिर सारे रूसकी खाक छाननी पड़ी थी, और वह लगातार एक कामसे दूसरे कामपर मारा-मारा फिरता रहा। पीटर्सबर्गमें ही उसे फिर एक प्राइवेट नौकरी मिल गई थी, पर अपने मालिकसे कुछ अनबन हो जानेके कारण कई दिन पहले उसने मजबूर होकर वह काम भी छोड़ दिया था। वजह यह थी कि बैवूरिनने मज़दूरोंका पक्ष ग्रहण करनेका साहस दिखलाया था।

मानसीके शब्दोंके साथ जो मुसकराहट बनी रहती थी, उससे चिन्तित होकर मैं सोचमें पड़ गया था। उसके पतिकी आकृतिको देखकर मेरे हृदयमें जो भावना उत्पन्न हुई थी, उसे उसकी मुसकराहटने बिलकुल पक्का कर दिया था। उन दोनोंको किसी प्रकार अपनी जीविकामात्र चलानेके लिए भी कठिन परिश्रम करना पड़ता था, इसमें तो कोई शक ही नहीं था। हम लोगोंके वार्तालापमें बैवूरिनने बहुत थोड़ा भाग लिया। वह जितना दु:खित जान पड़ता था, उससे कहीं अधिक व्यस्त मालूम पड़ता था······ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई चिन्ता उसे सता रही हो।

"पारामन सेमोनिच, यहाँ आओ,"—रसोइयेने एकाएक दरवाज़ेपर हाज़िर होकर कहा।

"क्या है ? क्या ज़रूरत है ?" उसने सशंकित होकर पूछा।

"यहा आओ,"—रसोइयेने फिर ज़ोर देते हुए अपनी बातोंको दुहराया। बैवूरिनने अपने कोटका बटन लगाया, और वहाँसे बाहर चला गया।

जब मैं वहाँ मानसीके साथ अकेला ही रह गया, तो उसने मेरी तरफ़ कुछ-कुछ बदली हुई दृष्टिसे देखा और बदले हुए स्वरमें ही, बिना मुसकुराहटके, कहा—"पीटर पेट्रोविच, मैं नहीं जानती कि तुम अब मेरे बारेमें क्या सोचते हो, पर इतना तो मैं अवश्य कहूँगी कि तुम्हें याद होगा कि मैं पहले क्या थी······उस समय मैं अत्माभिमानी और क्षुद्र हृदया थी······भलीमानस नहीं थी ; मैं सिर्फ अपने सुखके लिए जीना चाहती थी, पर मैं तुम्हें यह बता देना चाहती हूँ कि जब मैं परित्यक्ता होकर इधर-उधर मारी-मारी फिर रही थी और मृत्युकी बाट जोह रही थी, अथवा अपने इस जीवनका अन्त कर डालनेके लिए अपने दिलमें साहस लानेकी चेष्टा कर रही थी, ऐसे समयमें एक बार फिर मेरी मुलाक़ात पहलेकी तरह पारामन सेमोनिचसे हुई, और उसने मुझे फिर बचा लिया। उसके मुँहसे ऐसा एक शब्द भी नहीं निकला, जो मेरे दिलपर चोट पहुँचावे—निन्दा या उलाहनाका एक लफ्ज़ भी नहीं ; उसने मुझसे कुछ पूछा तक नहीं—मैं इस उदारतापूर्ण व्यवहारके योग्य नहीं थी, पर उसने मुझे प्यार किया, और मैं उसकी पत्नी बन गई। मैं करती भी तो क्या ? मैं मरनेमें भी कृतकार्य नहीं हुई थी, और अपने इच्छानुसार जी भी नहीं सकती थी······ऐसी स्थितिमें मैं अपनेको खुद क्या करती ? अस्तु, उसकी यह दया ही थी, जिसके लिए मुझे कृतज्ञ होना चाहिए। बस, यही मेरी रामकहानी है।"

इतना कहकर वह चुप हो गई, और एक क्षणके लिए मेरी ओरसे मुँह फिरा लिया······इस समय भी उसके होठोंपर विनीत मुसकराहट खेल रही थी। "मेरा यह जीवन सुखकर है या नहीं, यह सवाल पूछनेकी ज़रूरत नहीं," मुझे उसकी मुसकराहटमें यही अर्थ छिपा हुआ जान पड़ा।

इसके बाद हम दोनोंकी बातचीत साधारण विषयोंपर होने लगी। मानसीने मुझसे कहा कि पूनिन एक बिल्ली भी छोड़ गया है, जिसे वह बहुत चाहता था। उसके मरनेके बादसे वह बिल्ली छतके ऊपरके कमरेमें चली गई है, और वहीं रहा करती है, तथा बराबर म्याऊँ-म्याऊँ करती रहती है, मानो वह किसीको पुकार रही हो। पड़ोसके लोग उससे बहुत डरते हैं, और यह खयाल करते हैं कि पूनिनकी आत्मा बिल्लीके रूपमें प्रकट हुई है।

"पैरामन सेमोनिच किसी विषयको लेकर चिन्तितसे मालूम पड़ते थे।"—मैंने आखिर पूछा।

"आह ! तुमने यह बात आखिर ताड़ ली ?"—मानसीने एक लम्बी साँस ली—"चिन्तित होना उसके लिए अनिवार्य है।

मुझे तुम्हें यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि पेरामन सेमोनिच अब तक अपने सिद्धान्तोंपर स्थिर है······इस समय जो देशकी दशा है, उससे तो उसके सिद्धान्तोंकी और भी अधिक पुष्टि होती है। (पुराने जमानेमें जब वह मास्कोमें रहा करती थी, उस समयसे अबके उसके कहनेके ढंगमें विभिन्नता थी; उसके वाक्योंमें एक प्रकारकी साहित्यिक अभिरुचि-सी जान पड़ती थी) यद्यपि मैं यह नहीं जानती कि मैं आपपर विश्वास कर सकती हूँ या नहीं, और आप मेरी बातोंको किस रूपमें सुनेंगे······"

"आप यह क्यों खयाल करती हैं कि आप मुझपर विश्वास नहीं कर सकती ?"

"इसलिए कि आप सरकारी नौकर हैं, एक अधिकारी भी हैं।"

"तो, इससे क्या हुआ ?"

"इसका यह अर्थ है कि आप राजभक्त हैं।"

मानसीकी इस सरलतापर मैं अपने मनमें विस्मय करने लगा। मैंने कहा—"जो सरकार मेरे अस्तित्व तकसे अवगत नहीं है, उसके प्रति मेरा क्या रुख है, इस सम्बन्धमें मैं आपसे क्या कहूँ, पर आप अपने मनमें निश्चिन्त रहिये; मैं आपके साथ विश्वासघात नहीं करूँगा। जितना आप कल्पना करती हैं, उससे कहीं अधिक मैं आपके पतिकी भावनाओंके प्रति सहानुभूति रखता हूँ।"

मानसीने अपना सिर हिलाया।

"हाँ, आप ठीक कहते हैं,"—उसने कुछ हिचकिचाहटके साथ कहना शुरू किया—"किन्तु देखिये, बात दरअसल यह है कि पेरामन सेमोनिचकी भावनाओंके शीघ्र ही कार्यरूपमें परिणत होनेकी सम्भावना है। वे अब छिपाकर रखी नहीं जा सकतीं; हमारे ऐसे अनेक साथी हैं, जिनका अब हम परित्याग नहीं कर सकतीं।"—मानसीने एकाएक इस तरह बोलना बन्द कर दिया, मानो उसने अपनी ज़बान काट ली हो। उसके अन्तिम शब्दोंको सुनकर मैं चकित और कुछ-कुछ भयभीत सा हो उठा। शायद उस समयका मेरा आन्तरिक भाव मेरे चेहरेसे ही व्यक्त हो जाता था, और मानसी मेरे इस भावको ताड़ गई थी।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, हम दोनोंकी बातचीत सन् १८४९ में हुई थी। बहुतसे लोगोंको अब भी याद है कि वह ज़माना कितना विपत्तिपूर्ण एवं कठिन था और सेंट-पिटर्सबर्गमें किन घटनाओं द्वारा उसका निदर्शन हुआ था। बेबूरिनके चाल-चलनमें, उसके सम्पूर्ण हाव भावमें जो कुछ विलक्षणताएँ मालूम पड़ती थीं, उनसे मैं खुद विस्मित हो रहा था। उसने एक बार नहीं, बल्कि दो बार सरकारी कार्रवाईके सम्बन्धमें तथा उच्च अधिकारियोंके बारेमें इतनी घोर कटुता एवं घृणासे और इतनी नफरतसे ज़िक्र किया था कि मैं हक्काबक्का-सा हो गया।

"अजी!"—वह हठात् मुझसे पूछ बैठा—"यह तो बताइये कि आपने अपने किसानोंको स्वतन्त्र कर दिया या नहीं ?"

मुझे बाध्य होकर यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि मैंने अभी तक नहीं किया।

"क्यों ? मैं समझता हूँ कि तुम्हारी दादी मर चुकी है, है न ?'

मुझे मजबूर होकर यह भी स्वीकार करना पड़ा।

"यह बिलकुल ठीक है कि आप रईस लोग"—बेबूरिनने धीरेसे बड़बड़ाते हुए कहा······'दूसरोंके हाथोंसे अपना मतलब निकालना, अपना उल्लू सीधा करना, खूब जानते हैं।"

उसके कमरेके सबसे स्पष्ट स्थानमें बेलिनस्कीका सुप्रसिद्ध लिथो चित्र टँगा हुआ था, टेबुलपर बेस्टूज़ेव द्वारा सम्पादित 'Polar Star' नामक पत्रकी एक पुरानी जिल्द रखी हुई थी।

रसोइयेके पुकारनेपर बेबूरिन बाहर चला गया था, उसके बाद बहुत समय बीत जानेपर भी वह वापस नहीं लौटा। मानसी कुछ बेचैनसी होकर बारबार उस दरवाज़ेकी ओर देखती थी, जिससे होकर बेबूरिन बाहर गया था। आखिर

उसकी प्रतीक्षा मानसीके लिए असह्य हो उठी। वह उठ बैठी और मुझसे क्षमा याचना करते हुए उसी दरवाज़ेसे वह भी बाहर निकल गई। पन्द्रह मिनटके बाद वह अपने पतिके साथ फिर वापस लौटी। उन दोनों ही के चेहरेसे—जैसा मैंने समझा था—चिन्ताका भाव झलक रहा था, पर एकाएक बेबूरिनके चेहरेने एक विभिन्न, कटु, उन्मत्त जैसा भाव धारण कर लिया।

"आखिर, इसका अन्त क्या होगा ?"—उसने एकाएक झटकती हुई सिसकभरी आवाज़में, जो उसके लिए एक बिलकुल नई बात थी, अपनी भयानक आँखोंको इधर-उधर अपने चारों ओर बेचैनीके साथ दौड़ाते हुए कहना शुरू किया—"लोग इस आशामें दिन काट रहे हैं कि शायद एक दिन अवस्था सुधर जाय और हम स्वतन्त्रतापूर्वक रहते हुए स्वतन्त्र वायुमंडलमें स्वच्छन्दताके साथ साँस ले सकें, पर यहाँ तो बिलकुल विपरीत ही नज़र आता है—हर तरफ़ हालत दिनपर दिन बिगड़ती ही जा रही है। हम ग़रीबोंका शोषण करके धनवानोंने हमें बिलकुल खोखला बना डाला है ! अपनी जवानीमें मैंने धैर्यपूर्वक सब कुछ बर्दाश्त किया ; उन्होंने···शायद···मुझे पीटा भी···हाँ !" उसने इतना और कहा और फिर तेजीके साथ अपनी एँड़ीके बल घूमकर और मेरी ओर झपट्टा-सा मारते हुए मुखातिब होकर कहा—"मेरे जैसे वृद्ध पुरुषको शारीरिक दण्ड दिया गया······ हाँ ; और अन्य अत्याचारोंका मैं ज़िक्र नहीं करूँगा······किन्तु क्या सचमुच हमारे सामने इसके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है कि हम फिर उन पुराने दिनोंकी याद करें ? इस समय नवयुवकोंके साथ जैसा व्यवहार हो रहा है······ उससे तो धैर्यकी सीमाका भी अतिक्रमण हो जाता है······ उससे सहनशीलताकी सीमा भंग हो चुकी है। हाँ, ज़रा ठहरिये।"

मैंने बेबूरिनको इस दशामें पहले कभी नहीं देखा था। मानसी तो भयके मारे ऐसी हो रही थी कि काटो तो खून नहीं। बेबूरिनने एकाएक खाँसते हुए गला साफ किया, और फिर एक स्थानपर बैठ गया। अपनी उपस्थितिसे बेबूरिन या मानसीको तंग करना अच्छा न समझकर मैंने वहाँसे चल देनेका निश्चय किया, और उन लोगोंसे विदा माँगने ही जा रहा था कि एकाएक दूसरे कमरेका दरवाज़ा खुला, और एक आदमीकी शक्ल वहां दीख पड़ी······यह शक्ल उस रसोइयेकी नहीं थी, बल्कि बिखरे हुए बाल और भयानक चेहरेवाले एक नवयुवककी थी।

"मामला कुछ गड़बड़ है, बेबूरिन, कुछ गड़बड़ है !" उसने शीघ्रतापूर्वक कम्पित स्वरमें कहा, और मुझ अपरिचित व्यक्तिको वहाँ देखकर उस क्षण वहाँसे ग़ायब हो गया।

बेबूरिन उस नवयुवकके पीछे दौड़ा। मैंने मानसीसे हाथ मिलाया, और अपने हृदयमें अनिष्टकी आशंका करता हुआ वहाँसे चल दिया।

"कल पधारिये।" उसने चिन्तापूर्वक धीरेसे कहा।

"मैं अवश्य आऊँगा।"—मैंने जवाब दिया।

दूसरे दिन सुबह मैं बिछौनेसे उठा भी नहीं था, जब कि मेरे नौकरने मेरे हाथमें मानसीका एक पत्र दिया। उसने लिखा था—

"प्रिय पिटर पेट्रोविच ! आज रातमें पुलिस पेरामन सेमोनिचको गिरफ्तार करके ले गई है, क़िलेमें या और कहीं, यह मैं नहीं जानती ; उन लोगोंने मुझे कुछ बताया नहीं। पुलिसने हमारे कुल काग़ज़ातोंकी छानबीन कर डाली, बहुतोंपर मुहर लगा दी, और उन्हें अपने साथ लेती गई। हमारी पुस्तकों और पत्रोंकी भी यही दशा हुई है। कहते हैं कि शहरमें बहुतसे लोग गिरफ्तार किये गये हैं। आप अनुमान कर सकते हैं कि मुझपर इस समय कैसी बीत रही है। अच्छा ही हुआ कि निकेंडर वेवोलिच पूनिन यह सब देखनेके लिए जीवित नहीं रहा। बहुत ही उपयुक्त समयपर वह इस संसारसे महाप्रस्थान कर गया। अब मुझे बतलाइये कि मैं इस स्थितिमें क्या करूँ ? मैं अपने लिए भयभीत नहीं होती—मैं भूखी नहीं मरूँगी—किन्तु पेरामन सेमोनिचकी चिन्ता मुझे बेचैन बनाये डालती है। हमारी स्थितिके लोगोंके यहाँ आनेमें अगर आपको भय नहीं मालूम हो, तो यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिए।

आपकी विश्वस्त मानसी।"

इसके आध घंटेके बाद मैं मानसीके पास पहुँच गया।

अनुवादक—जगन्नाथप्रसाद मिश्र

[अगले अंकमें समाप्त

दानवीर स्वर्गीय लक्ष्मीनारायण

श्री नारायणकेशव बेहेरे, एम० ए०, बी० एस-सी०

सन् १९३० की ३० सितम्बरको रावबहादुर डी० लक्ष्मीनारायणका स्वर्गवास हो गया। मृत्युके समय उनकी आयु केवल ५३ वर्षकी थी। यह दुर्भाग्यका विषय है कि यूरोपियनोंके मुक़ाबले भारतीय सामान्यत: कम जीते हैं। ख़ासकर अत्यन्त कर्तव्यशील प्राणी तो अपने कर्तृत्व और अनुभवका लाभ अपने देशवासियोंको पूर्णरूपसे देनेके पहले ही चल बसते हैं। सरकारी नौकरीसे अलग होनेकी आयु-मर्यादा क़ानूनन ५५ वर्ष निश्चित की गई है। इस दृष्टिसे देखनेपर कहना पड़ेगा कि रावबहादुर लक्ष्मीनारायण अपनी आयुके मध्यकालमें ही चल बसे। यूरोपीय क्रियाशील पुरुषोंकी तुलनामें तो वे युवक ही समझे जायँगे।

मनुष्य एक दिन इस संसारमें आता है, और एक दिन इससे सदाके लिए 'अलविदा' कहकर चल देता है। यह चक्र अनादिकालसे चला आ रहा है, और सृष्टिके अन्त तक इसी प्रकार चलता रहेगा—

"मरता है जब एक, दूसरा उसका शोक मनाता है,
पर आगे चलकर वह भी तो सहसा जगसे जाता है।"

कविकी यह उक्ति यद्यपि पूर्णत: सत्य है, तथापि कुछ महापुरुष ऐसे भी होते हैं, जो इस दुनियासे यों ही नहीं चले जाते। वे अपने तेजस्वी जीवनसे संसारपर अपनी अमर छाप छोड़ जाते हैं, और लोगोंके जीवनको नवीन आदर्श प्रदान करते हैं। ऐसी महान विभूतियोंकी पुण्य-स्मृति देशके नौजवानोंके लिए मार्ग-दर्शक होती है, अत: ऐसे महात्माओंका गुण-कीर्तन राष्ट्रीय दृष्टिसे आवश्यकता है।

डी० लक्ष्मीनारायणका जन्म नागपुरके नज़दीक 'कामठी' नामके एक छोटेसे क़स्बेमें हुआ था। पूनाके पास जिस प्रकार 'खिड़की' नामक फ़ौजी छावनी है, उसी प्रकार नागपुरके पास कामठी, अत: मध्यप्रान्तमें यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान समझा जाता है।

लक्ष्मीनारायणके पिता श्रीपुलय्यागारु तैलंग ब्राह्मण थे, और जीविकाके लिए आन्ध्रदेशसे मध्यप्रान्तमें चले आये थे। वे घरके बहुत ग़रीब थे, और भिक्षावृत्ति ही उनकी जीविकाका आधार था। फलत: लक्ष्मीनारायणको बचपनमें काफ़ी स्कूली शिक्षा न मिल सकी। नाम लक्ष्मी-नारायण होनेपर भी बचपनमें उनके मस्तकपर लक्ष्मीका वरद हस्त न था—उलटे दरिद्रता महारानीकी कृपा थी। थोड़ीसी मराठी और चौथे-पाँचवें दर्जे तक अंग्रेज़ी—बस, यही उनकी स्कूली विद्याकी कुल जमा पूँजी थी। किन्तु स्कूलमें न सही, अपने पिताके साथ दुनियाके उतार-चढ़ावके बाज़ारमें ग़रीबोंको दिन-रात मिलनेवाले ताने-तिशने सहकर उन्होंने बहुतसा अनुभव प्राप्त कर लिया था, जो किताबी विद्यासे हर हालतमें बहुमूल्य हुआ करता है। बचपनसे ही से उन्हें पेटके लिए कठिन शारीरिक श्रम करना पड़ा, लेकिन एक बार उद्देश्यपर निगाह जमा लेनेपर ये सब कष्ट मनुष्यको फूलकी तरह कोमल मालूम पड़ते हैं। लक्ष्मीनारायणके पिता उनके बचपन ही में मर गये, और तभीसे माता तथा सारे कुटुम्बकी उदरपूर्तिका भार उन्हींपर आ पड़ा, मगर वे इस संकटसे विचलित न हुए। उन्होंने गाड़ीवानका पेशा अख्तियार किया, और कई एक बैल-गाड़ियाँ ख़रीदकर उनके द्वारा लोगोंका माल-असबाब इधर-से-उधर ढोना शुरू किया। इससे कुछ रुपये हाथमें आते ही उन्होंने अपने अकेलेकी हिम्मतपर छोटे-मोटे ठेके लेने शुरू किये।

फ़ुरसतके वक्त वे अपने घरपर अध्ययन भी करते रहते थे। विभिन्न उद्योग-धन्धोंकी पुस्तकें, व्यापार-विषयक अर्थशास्त्रके ग्रन्थ, देशकी खनिज-सम्पत्तिके विषयमें वैज्ञानिक अनुसन्धानोंसे पूर्ण प्रबन्ध तथा ऐसी ही अन्य अध्ययन-सामग्रीसे वे बराबर फ़ुरसतके वक्त लाभ उठाते रहे, और इस विस्तृत अध्ययनने ही उन्हें

सफलताका मार्ग दिखलाया। उनके पिताके एक ओवरसियर मित्र कामठीमें रहते थे। उन्हींके प्रोत्साहनसे गाड़ियोंमें पत्थर ढोनेवाला यह छोटासा मज़दूर एक दिन एक बहुत बड़े व्यापारीके रूपमें संसारके सम्मुख आया। उन्हींके कारण लक्ष्मीनारायणका ध्यान 'मैंगनीज़' के व्यापारकी ओर गया।

धीरे-धीरे लक्ष्मीनारायणको पता चला कि कामठीके आसपास अर्थात् समस्त 'रामटेक' प्रदेशमें अस्तव्यस्त फैला हुआ 'सतपुड़ा' पहाड़ एक खास किस्मके पत्थरका बना हुआ है। इसी पत्थरसे उनका सौभाग्योदय हुआ, इसीलिए लोगोंको सीधा-सादा काले और नीले रंगका दिखनेवाला यह पत्थर उनकी निगाहमें सोनेकी तरह तेजस्वी और मूल्यवान हो गया। उन्हें विश्वास हो गया कि लोहेसे फ़ौलाद बनानेमें जिस 'मैंगनीज़' धातुकी बहुत ज़रूरत पड़ती है, उसकी दुनिया-भरकी माँग सतपुड़ा पहाड़से बहुत-कुछ पूरी की जा सकती है, और उन्होंने इस दिशामें कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया। सतपुड़ा पहाड़के कई शिखर-के-शिखर 'मैंगनीज़'-मिश्रित पत्थरोंके बने हुए हैं। थोड़ीसी खुदाईके बाद ही यथेष्ट 'मैंगनीज़' अशुद्ध (ore) रूपमें अनायास उनके हाथ आने लगा, केवल उसे लादकर ले जानेही में कुछ खर्च पड़ता था। शीघ्र ही उन्होंने गाड़ीवानका पेशा छोड़ दिया, और खानोंसे स्वयं अपना मैंगनीज़ निकालना शुरू किया। धीरे-धीरे इस व्यवसायमें उनके पैर जमने लगे, और अपनी ज़बरदस्त लगन, व्यापारिक साहस और निरन्तर उद्योगके बलपर रावबहादुर डी० लक्ष्मीनारायण मध्यप्रान्तकी कई मैंगनीज़की खानोंके स्वामी बन गये, और यूरोप तथा अमेरिकाके लोहेके कारखानोंको कच्चे मैंगनीज़की 'सप्लाई' का ठेका उन्हें मिल गया। आगे चलकर तो लगभग १५ वर्षों तक संसारके मैंगनीज़के बाज़ारकी यह हालत रही कि लक्ष्मीनारायण कहें सो भाव और लक्ष्मीनारायण बेचें सो दर! मैंगनीज़के व्यापारमें वे 'सार्वभौम' बन गये। उन्होंने अपने जीवनके प्रारम्भिक दिन तो अवश्य ही अत्यन्त ग़रीबी और विपत्तियोंमें बिताये थे, पर अपने जीवनके अन्तिम कालमें तो वे सचमुच लक्ष्मीके नारायण ही बन गये। उनका नाम सार्थक हो गया। लक्ष्मी सचमुच उनके आगे हाथ बाँधे खड़ी रहती थी। नदीके उद्गमकी भाँति उन्होंने अपने व्यवसायका प्रारम्भ बहुत छोटे पैमानेपर किया था। एक छोटीसी पहाड़ीपर उन्होंने अपनी पहली खान खोदी थी, पर आगे चलकर तो उन्हें पहाड़के पहाड़ छोटे नज़र आने लगे।

५० वर्षकी उम्रमें उन्होंने अपने विस्तृत व्यवसायको समेटना शुरू कर दिया, और अपना शेष जीवन सम्पूर्णरूपसे सार्वजनिक कार्योंमें लगानेका निश्चय किया। इसके पहले भी उन्होंने किसी प्रकार समय निकालकर मध्यप्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा तथा अन्य सरकारी या नीमसरकारी कमेटियोंमें सभासद्की हैसियतसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। परन्तु उस समय द्रव्यार्जन ही उनका मुख्य काम था। उनके लिखे हुए लेखों और दिये हुए व्याख्यानोंकी छै-सात सौ पृष्ठोंकी एक अंग्रेज़ी पुस्तक आर्यभूषण प्रेससे पहले ही प्रकाशित हो चुकी है, पर ऐसे फ़ुरसतके समय सार्वजनिक कार्य करनेवाले व्यक्ति भारतवर्षमें बहुत हैं। सार्वजनिक कार्यके निमित्त सारा जीवन उत्सर्ग कर देना और ही बात है, क्योंकि सच्चा हिन्दू इस उम्रमें गृहस्थीका विस्तार समेटकर वानप्रस्थ-आश्रमकी तैयारी करता है, और परोपकारार्थ जीवन व्यतीत करना चाहता है। नागपुरके डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सभापतिकी हैसियतसे उन्होंने जो कार्य किया, वह आदर्श था। बोर्डके कार्यके लिए उन्होंने अपनी गाँठसे पचीस-तीस हज़ार रुपये खर्च कर डाले। मध्यप्रान्तकी ओरसे वे 'कौंसिल ऑफ़ स्टेट' में भी चुने गये थे, और आजकल ज़रा दुर्लभ होती जानेवाली 'माननीय' (honourable) पदवी भी उन्हें मिली थी। सार्वजनिक कार्यक्षेत्रमें उतरते ही उन्हें मृत्युने हम लोगोंसे छीन लिया, इसलिए

इस क्षेत्रमें उन्हें अपना कर्तृत्व दिखानेका अवसर ही नहीं मिला। फिर भी उन्होंने तीन-चार वर्षों ही में अपनी लगन और निःस्वार्थ भावनाका संसारको खासा परिचय दे दिया। उनके उदाहरणसे स्थानिक स्वराज्यके कंटकोंकी आँखोंमें तीव्र अंजन लग गया, जो सार्वजनिक संस्थाओंको बिना पूँजीके लाभदायक कारखाने तथा सार्वजनिक पदाधिकारोंको मुफ़्तका 'बड़प्पन' और स्वार्थपूर्तिका साधन समझते हैं।

लक्ष्मीनारायणजीका रहन-सहन बहुत सीधा-सादा था, और उनका स्वभाव अत्यन्त उदार। मध्य-प्रान्तके हज़ारों लोगों और सैकड़ों संस्थाओंने उनकी उदारतासे लाभ उठाया है। कोई भी याचक उनके द्वारसे कभी विमुख नहीं लौटा। वे इस बातका बहुत ध्यान रखते थे कि एक हाथसे जो दान दें, उसका पता दूसरे हाथको भी न चले, पर वे चाहे जितने गुप्त रूपसे दान देते हों, लेनेवालेकी कृतज्ञता कभी-कभी उनका भंडाफोड़ कर ही देती थी। छोटासा झरना लोगोंकी नज़रोंसे छिप सकता है, पर गंगाका प्रचंड प्रवाह कब तक गुप्त रह सकता है? उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध वसीयतनामा लिख तो मईमें ही दिया था, पर अत्यन्त गुप्त रखा। वह लोगोंको उनकी मृत्युके १४ दिन बाद अक्टूबरमें मालूम हुआ। हृदयमें कर्णकी-सी उदारता होते हुए भी उसका विज्ञापन करना, उन्हें सख़्त नापसन्द था। सम्पत्तिके साथ इतनी नम्रता वास्तवमें अत्यन्त प्रशंसनीय है।

धनिक होते हुए भी वे विद्याव्यासंगी थे। ग्रन्थ-वाचनका उन्हें अत्यधिक शौक़ था। अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, समाजशास्त्र, व्यापार, इतिहास तथा भौतिक-शास्त्र विषयक नित्य नये प्रकाशित होनेवाले उत्तमोत्तम ग्रन्थ उनकी मेज़पर अथवा अलमारीमें, उनके यहाँ आने-जानेवाले मित्रोंको, अकसर नज़र आया करते थे। उन्होंने अपना महान ग्रन्थ-संग्रह नवोदित आन्ध्र-विद्यापीठको दान देकर विद्यार्थियोंकी ज्ञान-पिपासाको अंशतः बुझानेका यत्न किया है। इतने ही से उनकी गणना भारतके प्रसिद्ध दानवीरोंमें हो गई होती, पर वे इतना ही करके नहीं रह गये। अपनी मृत्युके पाँच महीने पहलेसे उन्होंने जो वसीयतनामा लिख रखा था, उससे उनके जीवनकी भव्य और सुन्दर संगमरमरी इमारतपर चमकदार स्वर्ण-कलश चढ़ गया! जिस समय उन्होंने वसीयतनामा लिखा था, उस समय उन्हें इसका ख़याल भी न था कि उनकी मृत्यु इतनी जल्दी हो जायगी। किन्तु उन जैसे व्यापारिक झंझटोंमें फँसे हुए व्यक्तिके लिए यह स्वाभाविक था कि वे मृत्युके बहुत पहलेसे अपना वसीयतनामा तैयार कर रखें, जिससे उनकी मनोनीत योजनाएँ उनके बाद निर्विघ्न रूपसे पूर्ण हो सकें। उन्हें पहले सन्तान हुई थी, पर उसके छोटी उम्रमें ही मर जानेके कारण वे कुछ उदास रहते थे। फलित ज्योतिषपर उनका काफ़ी विश्वास था, और भविष्यवादियोंने उन्हें विश्वास दिया दिया था कि उन्हें शीघ्र ही एक लड़का होगा। फिर भी अपने ख़ुदके पसीनेकी सारी कमाई—अपनी सारी सम्पत्ति—उन्होंने जान-बूझकर मध्यप्रान्त और बरारके हिन्दू विद्यार्थियोंकी औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षाके लिए दान कर देनेका निश्चय किया। यह स्वार्थत्याग वास्तवमें अपूर्व है। कम-से-कम ब्राह्मण-वर्गमें तो इसका जोड़ मिलना मुशकिल है। यह जानते हुए भी कि अपने लड़के वज्रमूर्ख हैं, उनके हाथोंमें सम्पत्ति सौंपना सम्पत्तिको बरबाद करना है, क्योंकि वे सम्पत्तिको नष्ट करके भोग-विलासोंके गड्ढेमें गिर पड़ेंगे, प्रायः सभी धनिक अपने लड़कोंके लिए ही अपना सारा धन छोड़कर मर जाते हैं! कैसी मूर्खता है! लड़का नहीं होता, तो किसी 'दत्तक' को ज़बरदस्ती दुमकी तरह अपने पीछे लटका लेते हैं! लोक-कल्याणका ख़याल उनके दिमाग़ ही में नहीं आता। मनुष्यको धन जितना ही मिलता है, उतना ही उसका लोभ बढ़ता जाता है। मकान बनवाने, ज़मीन ख़रीदने, लड़के-बाले, नाती-पोते, कुटुम्ब-परिवारकी साम्पतिक व्यवस्था पहले ही से कर रखनेके लिए मनुष्य कितनी दौड़-धूप करता है। हम इस दुनियामें दिन-रात

यही देखते हैं। यह बात नहीं है कि केवल अशिक्षित धनिक ही पैसेकी मायामें फँसे रहते हैं। पढ़े-लिखे और समझदार समझे जानेवाले लोग भी इसी धुनमें रहते हैं। अपनी सम्पत्तिका उपयोग परोपकारके लिए करनेके बदले वे दिन-रात इस धुनमें लगे रहते हैं कि जीते जी वे खुद और मरनेके बाद उनके बाल-बच्चे निरन्तर इसी प्रकार मौज उड़ाते रहें—यही जगह-ज़मीन, यही ठाट-बाट, यही बँगले-बगीचे, यही बग्घी-मोटरें, यही गुलछर्रे सदा उड़ते रहें! यह बात अत्यन्त स्वाभाविक समझी जाती है, क्योंकि अपनी कमाई हुई सम्पत्तिपर केवल लोक-हितकी दृष्टिसे तुलसीदल रख जानेवाले महात्मा इस विश्वमें विरले ही हैं। मेहनतसे कमाई हुई सम्पत्तिका मोह छोड़ना वास्तवमें बड़ा कठिन है। बाप-दादोंकी कमाईकी अपेक्षा अपने हाथोंसे कमाया हुआ धन बड़ा क़ीमती—बड़ा प्यारा—होता है। जहाँ देखिये, वहीं धनिकोंका एक ही निश्चित मार्ग दृष्टिगोचर होता है। केवल लक्ष्मीनारायण सरीखा एकाध व्यक्ति इस नियमका अपवाद होता है, फिर उसपर लोगोंकी नज़र क्यों न ठहर जाय?

उन्होंने अपने ग़रीब आश्रितों, सम्बन्धियों और मित्रोंके लिए सहायता-स्वरूप डेढ़ लाखके क़रीब रुपया दान दिया। अपनी सहधर्मिणीके लिए केवल एक मकान और दो लाखका सूद (मूल नहीं) जब तक वह जिन्दा रहे, तब तक उसकी गुज़रके लिए निर्धारित किया। शेष सब ज़ायदाद नागपुर-विश्वविद्यालयको दान देनेका निश्चय किया। पत्नीके लिए सुरक्षित मकान भी बादमें नागपुर-विश्वविद्यालय ही को, उस वसीयतनामेके अनुसार, मिलनेवाला है। ज्योतिषके अनुमानके अनुसार यदि उन्हें कोई लड़का भी हो जाता, तो उसके लिए उन्होंने दो लाख रुपये अलग रखे थे। उन्होंने अपने 'विल'में यह योजना कर रखी थी कि इन सब रक़मोंको छोड़कर भी नागपुर-विश्वविद्यालयको उनकी ओरसे लगभग पैंतीस लाख रुपयोंकी रक़म एकमुश्त मिल जाय। भारतवर्षमें आज तक किसी एक व्यक्तिने किसी एक शिक्षा-संस्थाको इतनी बड़ी रक़मका दान नहीं दिया। डा० रासबिहारी घोषके समस्त दानका जोड़ पचीस लाखके अन्दर ही था, और दानवीर 'ताता'ने बँगलोरकी वैज्ञानिक अन्वेषणशालाको जो बड़ा दान दिया था, वह केवल तीस लाख ही का था।

उनके वसीयतनामेमें निर्दिष्ट विविध दानोंका उल्लेख यथासम्भव उन्हींके शब्दोंमें नीचे दिया जाता है। उनका यह वसीयतनामा वास्तवमें अद्वितीय है। महाराष्ट्रके किसी भी महापुरुषने आज तक ऐसा त्याग नहीं किया। मनुष्यकी महत्ता पुरुषार्थमें तो है ही, पर उससे भी अधिक वह त्यागमें है। मनुष्य अपने पराक्रमसे सम्पत्ति प्राप्त करे, और उसे अपने बाल-बच्चोंका मोह छोड़कर लोकहितके लिए दान कर दे, यही उसकी महत्ताका लक्षण है। उन्होंने अपने वसीयतनामेमें लिखा है:—

"सर्वेन्ट आफ् इंडिया सोसाइटीको नागपुरमें अपनी एक स्थायी शाखा चलानेके लिए एक लाख रुपये देता हूँ।

"मेरे अभी कोई सन्तान—लड़का या लड़की—नहीं है। सब मर चुके। अगर ईश्वर-कृपासे आगे चलकर मेरे लड़का हो और वह मेरी मृत्यु तक जीवित रहे, तो दो लाख रुपयोंकी रक़म अलग निकालकर सरकारी प्रामेसरी नोटोंमें लगा दी जाय, उससे आनेवाले ब्याजसे उसका खर्च चलाया जाय और उसे शिक्षा दी जाय। उसके बाद उसके बालिग़ हो जानेपर वह रक़म उसे सौंप दी जाय।

"दो लाख रुपयोंकी रक़म सरकारी प्रामेसरी नोटोंमें लगाकर उसका ब्याज मेरी पत्नीको अपने इच्छानुसार खर्च करनेको दे दिया जाय। उसकी मृत्युके बाद रक़म आगे उल्लिखित कार्यमें खर्च की जाय।

"मैं अपनी शेष सब स्थावर और जंगम सम्पत्ति नागपुर-विश्वविद्यालयको इसलिए देता हूँ कि उसका उपयोग मध्यप्रदेश और बरारमें कम-से-कम छै वर्ष तक स्थायी रूपसे निवास कर चुकनेवाले विद्यार्थियोंको

व्यावहारिक विज्ञान और रसायनशास्त्रकी शिक्षा देनेके कार्यमें किया जाय।"

× × ×

कितनी व्यापक और दूरदर्शी दृष्टि है यह ! उनके हृदयमें अपने निजी अनुभवसे यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि वैज्ञानिक शिक्षाकी औद्योगिक दिशामें प्रगति हुए बगैर देशकी उन्नति असम्भव है, और इसी कार्यमें अपनी सम्पत्तिका विनियोग करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता राजवाडेकी यह सम्मति मशहूर है कि मराठोंका राज्य इसीलिए गया कि वे वैज्ञानिक शिक्षामें अंगरेज़ोंके मुक़ाबले पिछड़े हुए थे। उनका ख़याल था कि हिन्दुस्तानकी वैज्ञानिक उन्नति हुए बिना गया हुआ राज्य वापस नहीं मिल सकता। रा० ब० लक्ष्मीनारायणको भी यह विश्वास हो चुका था कि वैज्ञानिक उन्नतिके बिना व्यापारिक समृद्धि दुर्लभ है, और इस आर्थिक युगमें व्यापार और आर्थिक उन्नतिके अभावमें स्वराज्यकी कल्पना व्यर्थ-सी है। मध्यप्रान्तमें वे पैदा हुए, वहीं बड़े हुए और वहीं ग़रीबसे अमीर हुए। इस बातको ध्यानमें रखकर उन्होंने इस प्रान्तका ऋण ब्याज समेत चुका दिया। इसमें शक नहीं कि नागपुर-विश्वविद्यालय तथा मध्यप्रान्तके अगली पीढ़ीके हिन्दू-विद्यार्थियोंपर लक्ष्मीनारायणके उपकारोंका जो ऋण चढ़ चुका है, वह कभी नहीं चुकाया जा सकता। फिर भी खेद है कि उनके इस निःस्पृह दानकी महाराष्ट्रने काफ़ी क़द्र नहीं की।

श्री लक्ष्मीनारायण कट्टर तैलंग ब्राह्मण थे, और वह भी पुरानी कर्मठ परम्परामें पले हुए। अतः यदि उन्होंने यह समझकर दत्तक लेनेकी इच्छा की होती कि मृत्युके उपरान्त हमें पिण्डदान मिलेगा तथा कुलक्षय न होगा, और उन्होंने अपनी इच्छाके अनुसार दत्तक ले भी लिया होता, तो उन्हें कोई बुरा नहीं कहता। वह एक सरल और स्वाभाविक बात समझी जाती। किन्तु उन्होंने अपना वंश चलानेके उद्देश्यसे दत्तक लेकर उसके लिए अपनी पसीनेकी कमाई छोड़ जानेके बदले अपने धनसे अगली पीढ़ीके होनहार सुशिक्षित हिन्दू-युवकोंपर अनन्त उपकार किया। अतः मध्यप्रान्तके हज़ारों हिन्दू-युवक उन्हें आगे चलकर कृतज्ञ हृदयसे निरन्तर स्मरण करेंगे। मध्यप्रान्तके हज़ारों तरुणोंका और उनके कारण हज़ारों कुलोंका उनके सक्रिय आशीर्वादसे उद्धार होगा, और स्वराज्योन्मुख हिन्दू-तरुण सदा-सर्वदा अभिमानपूर्वक उनका जय-जयकार करेंगे। भावी स्वतन्त्र भारतवर्ष आदरपूर्वक उनका स्मरण करेगा, और इस देशके वैज्ञानिक अन्वेषक उन्हें प्रतिदिन अर्घ्य देंगे।

रा० ब० डी० लक्ष्मीनारायण यद्यपि मूलके आंध्र ब्राह्मण थे, तथापि उनकी गणना प्रसिद्ध नेता बापूजी अणे अथवा श्री एम० भवानीशंकर नियोगीकी तरह महाराष्ट्रीयों ही में की जायगी। उनके उदाहरणसे प्रत्येक ब्राह्मण शिक्षा ले सकता है। ब्राह्मण पहले भी कभी धनिक न थे, और आज भी प्रायः नहीं हैं। सत्ताधारी क्षत्रिय और व्यापारी वैश्य ही इस देशमें पुराने ज़मानेमें धनिक श्रेणीमें थे, और आज भी हैं। ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता उनकी विद्या और त्यागपर अधिष्ठित थी। लोक-सेवा—और वह भी निरपेक्ष भावसे—करना ही ब्राह्मणोंका धर्म था। प्राचीन कालमें राजा लोग ब्राह्मणोंका निर्वाह-ख़र्च देते थे। आज यह बात सम्भव नहीं है, अतः ब्राह्मणोंको निर्वाहार्थ द्रव्यार्जन करना ही पड़ता है। इसके अतिरिक्त आजकलके व्यावसायिक वैश्ययुगमें द्रव्यार्जन पुरुषार्थका एक प्रमुख लक्षण भी समझा जाता है। फिर भी यदि ब्राह्मण द्रव्य-संग्रहका लोभ करने लगें, तो वे अपने महत्पदसे च्युत समझे जायँगे। मकान-बँगले, बाग़-बग़ीचे, जगह-ज़मीन ख़रीदना, बैंकोंमें रुपये जोड़-जोड़कर रखना और पहले ही से अपने बाल-बच्चोंके जन्म-भरके लिए इन्तज़ाम कर जानेका प्रयत्न करना ब्राह्मणोंका मार्ग कदापि नहीं है।

एक बार सम्पत्तिका लोभ उत्पन्न होते ही मनुष्यके उत्तम गुण मिट्टीमें मिल जाते हैं। उसकी निर्भय वृत्ति

नष्ट हो जाती है, और वह कायर बन जाता है। विद्या-शीलसम्पन्न ब्राह्मणके लिए तो यह लोभ और भी अनिष्ट है। ब्राह्मण यदि ग़रीब हो, तो वह उसका अपराध नहीं समझा जा सकता, पर यदि वह विद्वान न हो, त्यागी न हो और लोक-सेवा न करता हो, तो यह उसका सरासर अपराध है—और अक्षम्य अपराध है। ब्राह्मण यदि दरिद्र हो, तो कोई भी उसकी हँसी नहीं उड़ा सकता, पर यदि वह अमीरोंके आगे दुम हिलाता हो, टके-टकेपर उनका गुणगान करता हो, जिन गुणोंका उनमें नामोनिशान भी नहीं है, उन्हींकी उनके चरित्रमें ज़बरदस्ती स्थापना करके उनकी झूठी प्रशंसा करता हो, तो हरएक यही कहेगा कि उनके अधःपतनका समय आ गया है। इस देशके बहुतसे विद्वान वैसे तो बड़े निःस्पृह होते हैं। मामूली आदमियोंको अपनी निःस्पृहताके घमंडमें आकर अक्सर फटकार बताया करते हैं, पर इन महापुरुषोंकी महान निःस्पृहता बहुधा छोटे-मोटे राजा-रईसोंका भी सम्बन्ध आते ही लड़खड़ाने लगती है, और लँगड़ी पड़ जाती है। चाहिए तो यह कि ये विद्वान द्रव्य-संग्रहका लोभ दूर करके सांसारिक प्रपंचोंके माया-मोहसे अपनेको अधिक-से-अधिक दूर रखनेका यत्न करते हुए त्यागका व्रत स्वीकार करें। त्यागकी सहायताके बिना निःस्पृहता लँगड़ी पड़ जाती है। सत्यनिष्ठा ही ब्राह्मणका बाना, निरपेक्ष लोक-सेवा ही उसका स्वभाव और सर्वस्व दान ही उसका वसीयतनामा होना चाहिए। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि स्वर्गीय लक्ष्मीनारायणजी ऐसे ही ब्राह्मण थे।

(मराठी 'मनोरंजन'से) अनु०—'महाराष्ट्र-मधुकर'

रंगूनमें अन्तिम मुग़ल-सम्राट्

श्री अख्तरहुसेन रायपुरी

सन् १८५८ का ज़िक्र है। प्रभातवेला लाल क़िलेके आगे कुछ पालकियाँ और डोलियाँ आकर खड़ी होती हैं। अन्दरसे करुण-क्रन्दनकी आवाज़ उठती है, बाहर उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है, क्योंकि अन्तिम मुग़ल-सम्राटके अन्तिम दर्शनके लिए मैदानमें लोगोंकी रेलपेल है। कुछ देर बाद एक बूढ़ा, अंगरेज़ सन्तरियोंके पहरेमें, आकर एक पालकीपर बैठ जाता है; अपने प्रकाशहीन और अश्रुपूर्ण नेत्र क़िलेकी संगीन दीवारोंपर गड़ाता है—वह क़िला जहाँ मुग़लोंका वैभव दफ़न है, जहाँ भारतका गौरव हिचकियाँ भरता है। फिर राजघरानेके कुछ लोग और कुछ बेगमें सिरपर ख़ाक उड़ाती निकलती हैं। पालकियाँ रवाना हो जाती हैं; उनके साथ मुग़लोंका बुझता हुआ दीपक हमेशाके लिए ठंडा हो जाता है।

कहते हैं कि पराजितकी कहानी बालूकी ढेरीपर लिखी होती है, जिसे ज़मानेका एक झोंका मिटा देता है। यही हाल बहादुरशाहका हुआ। इतिहासको इतना याद है कि मुग़लोंका अन्तिम नामलेवा रंगून गया, वहीं मरा और गड़ा। पर उसके जीवनकी आख़िरी घड़ी कैसे बीती, उसके कुनबेका क्या हाल हुआ, इस कसक कहानीके कौन-कौनसे दाग़ अब तक बाक़ी हैं, अतीतने किन्हें बेनिशान कर दिया, यह हमें मालूम नहीं। मुग़ल-इतिहासका यह अध्याय अनलिखा पड़ा है, क्योंकि इसे सिर्फ़ आँसुओंकी बूँदें ही लिख सकती हैं। मैं यहाँ सिर्फ़ यह लिखूँगा कि रंगूनमें बहादुरशाहके कौन-कौन साथी थे, और उनकी सन्तानपर क्या बीती।

रंगूनमें आगमन

जब बहादुरशाह रंगून पहुँचे, तो उनके साथ लगभग ३० आदमी थे। इनमें से ११ तो उनके मरते दम तक साथ रहे, बाक़ीमें से कुछ भारत लौट गये और

कुछ बर्मामें ही रह-बस गये। साथियोंमें परमप्रिय पुत्र जवाँबख्त् और उनकी पत्नी शाहज़मानी बेगम, सुख-दुःखकी जीवन-संगिनी ज़ीनतमहल बेगम और दुलारा बेटा अब्बासशाह था। और भी कई नातेदार थे, जिनके घरानोंका पता बर्माके शहरोंमें चल जाता है। कहा जाता है कि ताजमहल बेगम और राजकुमारी राबिया बेगम भी साथ-साथ रंगून आई थीं, और सिरताजके उठ जानेके बाद भारत लौट आईं।

ज़फ़रके जो साथी बर्मा ही में रह गये थे, उनमें से अधिकतरने मोलमीनमें घर बसाया, और बर्मी औरतोंसे विवाह कर लिया। शाहज़ादा अब्बासशाहने भी मोलमीनमें एक बर्मी महिलासे ब्याह रचाया और उनके पुत्र प्रिंस रहमतसुल्तान अब तक वहीं जीते-बसते हैं। ज़फ़रके नातेदार शाहज़ादा निज़ामशाहने भी मोलमीनमें अड्डा जमाया, जहाँ उनके बेटे इंतिज़ामशाह जिन्दगीके दिन काट रहे हैं। बाक़ी लोगोंका कोई पता न चलने पाया, बर्मी समाजमें वे गुमसुम हो गये, और अधिक समय तक अपनी पुरानी आनबानको क़ायम न रख सके। इस प्रकार ले-देकर बन्दी-जीवनमें ज़फ़रके साथ केवल उनकी पत्नी ज़ीनतमहल, पुत्र जवाँबख्त और बहू शाहज़मानी बेगम रह गई। अँधेरे पाखमें तो छाया भी मनुष्यका साथ छोड़ देती है, फिर परायोंसे क्या उम्मीद?

मुग़ल-सम्राटका बन्दीगृह

बहादुरशाहको जहाज़से उतार कर गोरोंके कड़े पहरेमें सदरबाज़ारके एक दोमंज़िला बँगलेमें लाया गया। पुराने घुड़दौड़के मैदानके पास मौजूदा 'वायल रोड'के किनारे यह बँगला बना हुआ था। अब तो इसका कहीं पता भी नहीं। वहाँ अब कचहरी और पुलिसकी चौकी आबाद है। यह कुल अहाता मि० डासन नामक अंगरेज़की मिलकियत है, जिसमें अन्तिम मुग़ल-सम्राट अपनी पत्नीके साथ अनंत निद्रामें लीन है। ज़फ़रके जीते जी उस बँगलेके आसपास पहरेदार चीलके समान मँडराते रहते थे।

किसी प्रजापतिकी आत्माका ख़ून करना है, तो उसकी राजसी शानका अन्त कर दो। फिर देखो, वह किस प्रकार तड़पता है। उसकी हर साँस एक आह है, उसका हर बोल एक कराह है, उसकी मुसकराहट मौतकी हँसी है। १९ वीं सदीके ८० वर्षके पददलित मुग़ल-सम्राटके भावोंका चित्र खींचना, अपने बसकी बात नहीं। ३५० वर्षका प्रताप और गौरव कालकी एक ठोकरसे धूलमें मिलते हुए जिसने देखा हो, जिसकी आँखोंने अपने कलेजेके टुकड़ोंको ख़ूनमें तैरते हुए देखा हो, जिसके कानोंने अपनी बोटियोंकी चीख़ और नन्हें बच्चोंकी पुकार सुनी हो—फिर जो हमेशाके लिए दुनियासे अलग कर दिया गया हो, उसकी मनोवृत्तिका अन्दाज़ा लगाना कठिन है।

ज़फ़र अपने तंग और अँधेरे कमरेसे कभी बाहर नहीं निकले। चारपाईपर पड़े हुक्का गुड़गुड़ाते, अपने करुणापूर्ण शेरोंको गुनगुनाते और नमाज़ पढ़ते हुए दिन-रात बिता देते थे। कभी-कभी जवाँबख्तको इस नश्वर संसारकी असारता और अतीतकी कहानी सुनाने लगते थे। पिछली बातोंकी याद जलेपर नमकका काम करती थी। नीचे हम ज़फ़रके कुछ ऐसे शेर उद्धृत करते हैं, जो उन्होंने अपने बन्दी-जीवनमें लिखे थे। सच है, कविता हृदयका आईना है :—

"कौन नगरसे आये हम और कौन नगरमें बासे हैं,
जायेंगे हम कौन नगरको होते मनमें हिरासे हैं।
कैसा मुल्क है, कैसा रुपया, कैसी चाल और कैसी ढाल,
या ही मनको अंदेशे और या ही जीको सासे हैं।
देस नया है, भेस नया है, रंग नया है, ढंग नया,
कौन अनन्द करे है वाँ, और रहते कौन उदासे हैं।
क्या-क्या पहलू देखे पहले हमने इस फुलवारीमें,
अब जो फले इसमें फल हैं, कुछ और ही इनमें बासे हैं।
बादबन्दी सब है याँकी, बाँकी है कुछ और हवा,
कोई जताये ये उनको जो लड़ते लोग हवा से हैं।
दुनिया है एक रैन बसेरा बहुत गई रही थोड़ीसी,
उनसे कह दो, सो न जावें, नींदमें जो कि निंदासे हैं।"

कहते हैं कि दिल्लीसे रंगून जाते समय अभागे सम्राटने निम्न-लिखित ग़ज़ल कही थी—

"जलाया यारने ऐसा कि हम वतनसे चले,
बतौर शमअके रोते इस अंजुमनसे चले।
न बागबाँने इजाज़त दी सैर करनेकी,
ख़ुशीसे आये थे, रोते हुए चमनसे चले।
जो पायबन्दे सदाक़त[1] है क़ौलसे अपने,
कभी न ठोकरें खाए अगर चलनसे चले।
मेरे पे दामने सहरा[2]ने परदापोशी की,
बरहना[3] आए थे लिपटे हुए कफ़नसे चले।"

एक-एक शब्दसे उदासी टपकती है, और क्यों न हो, यह भग्नहृदयकी कहानी है। अफ़सोस है कि साहित्यके यह अनमोल रत्न हम तक न पहुँच सके। इस विषयमें एक अजीब किम्बदन्ती फैली हुई है। वह यह कि ज़फ़रने दीवारोंपर नाख़ूनसे अपने शेर लिख दिये थे। उनकी मृत्युके पश्चात्, इस बातका पता चलते ही किसीने कविताओंको नोट करके, कोई तीस-पैंतीस वर्ष पहले प्रकाशित कर दिया। मालूम नहीं, यह अफ़वाह कहाँ तक सच है, पर बहुत दिन पहले यह किताब मैंने भी देखी थी। दुःख है कि अब यह ढूँढ़ेसे भी कहीं नहीं मिलती। यह उर्दू साहित्यका दुर्भाग्य है कि ऐसे-ऐसे ग्रन्थरत्न विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाते हैं। ज़फ़रके बन्दी-जीवनपर अलग कुछ लिखनेका मौक़ा मिला, तो मैं इस विषयपर प्रकाश डालूँगा।

ज़फ़रकी मौत

ज़फ़रको कितनी पेंशन मिलती थी, इसके विषयमें कई अफ़वाहें फैली हुई हैं। मगर अब विश्वस्तरूपसे मालूम हुआ है कि दारुण यातनाएँ भोगनेपर भी शाही क़ैदीने अपनी टेक न छोड़ी, और ब्रिटिश सरकारसे कानी कौड़ी भी लेनेसे इनकार कर दिया। अन्तिम श्वास तक ज़फ़रने अपनी आनपर धब्बा न आने दिया, और हालाँकि कई-कई लंघन गुज़र गये, कपड़े तार-तार हो गये, बिछौनेकी जगह चीथड़ोंने ले ली, मगर यह आत्माभिमानी टससे मस न हुआ। सरकारने लाख पेंशन देना चाहा, मगर ज़फ़रकी 'नहीं' 'हाँ' में न बदली, और ज़ीनतमहलके बचे-खुचे आभूषणोंको बेचकर रोटियाँ चलाते रहे।

बहुत दिनोंसे उन्हें गुर्देके दर्दकी शिकायत थी। चिन्ता और दुःखने ख़ूनकी गर्मी इतनी बढ़ा दी कि दिमाग़की कोई नस फट गई, और सन्निपात हो गया। अन्तमें ७ नवम्बर सन् १८६२को आत्मारूपी पंछी इस पींजरेको तोड़कर आज़ाद हो गया। मृत्युशय्याके पास ज़ीनतमहल, जवांबख़्त, शाहज़मानी बेगम और उसकी दो महीनेकी बच्ची रौनक़ज़मानी बेगमके सिवा और कोई न था। एक अकबरकी मौत थी। मसीहा और धन्वन्तरिसे टक्कर लेनेवाले वैद्य-हकीम यमराजसे द्वन्द्व कर रहे हैं; रूपकुमारियाँ तलवे सुहला रही हैं; ऐसी मौत हो तो कौन न मर जाये, और उसके एकमात्र नामलेवाको देखो कि कोई नाड़ीपर हाथ रखनेवाला भी नहीं है, और—

"आज दो फ़लकको मोहताज है तुरबत मेरी।"

कहते-कहते दम तोड़ देता है।

ज़फ़रकी समाधि

अब वह धूलधूसरित बन्दीगृह नं० ६, थियेटर रोड कहलाता है। उसके अहातेमें बहुत ही मामूली ढंगसे अन्तिम मुग़ल-सम्राटकी मिट्टी दबा दी गई। ज़ीनतमहल रोज़ अपने अभागे पतिकी क़ब्रपर फ़ातिहा पढ़तीं, और घंटों बैठी आँसू बहाया करती थीं, मगर प्रारब्धको यह भी न सुहाया; शाही कुनबेको इस घरसे निकालकर एक दूसरे मकानमें रखा गया, जो अब तक 'बटलर इन्सटीट्यूट आफ़ पब्लिक हेल्थ' के आगे मौजूद है। कुछ दिनों बाद एक अंगरेज़ मि० डासनने उस पुराने अहातेको ख़रीद लिया। निजी सम्पत्ति हो जानेके कारण अब ज़फ़रकी समाधिपर फूल चढ़ाने और दीपक जलानेकी भी मना ही कर दी गई, और क़ब्रका रास्ता भी बन्द कर दिया गया। बेरका जो सूखा ठुंड मुग़ल-राजघरानेके समाधिस्थलका पता बतलाता था, वह भी काट दिया गया। उस समय रंगून एक छोटी जगह थी, और हिन्दुस्तानियोंका आना-जाना भी कम था, इसलिए धीरे-धीरे लोगोंने इस समाधिकी याद भुला

[1] सच्चे। [2] मरुभूमि। [3] वस्त्रहीन।

दी, और ज़फ़रकी यह भविष्यवाणी सच उतरी :—

"पसे मर्ग मेरे मज़ारपर जो दिया किसीने जला दिया,
उसे आह ! दामने बादने सरे शामही से बुझा दिया।"

आजसे बीस-पचीस वर्ष पूर्व जब मुसलमानोंने आन्दोलन आरम्भ किया, तो सरकारने एक संगमर्मरके टुकड़ेपर क़ब्रके पास यह शब्द खुदवा दिये :—
"Bahadur Shah Ex-King of Delhi died at Rangoon, November 7th 1862, and buried near this spot."

"इस स्थानके निकट"—इन शब्दोंसे प्रकट होता है कि असली क़ब्रपर यह शिलालेख नहीं लगा था, क्योंकि डासन साहबने क़ब्रका रास्ता ही बन्द कर दिया था। अब वर्षोंकी मुक़दमेबाज़ीके बाद रास्ता खुल गया है, क़ब्र पक्की बन गई है, और प्रत्येक बृहस्पतिवारको लोग इनकी क़ब्रपर पुष्पांजलि अर्पित करनेके लिए जमा होते हैं। मनुष्यकी भक्ति और श्रद्धाको कोई शक्ति नहीं रोक सकती। कविने भी कहा है—'शहीदोंकी चिताओंपर जुड़ेंगे हर बरस मेले,'—यही होता आया है, और यही होगा।

ज़ीनतमहल बेगमका जीवन और मृत्यु

ज़ीनतमहल अपने पुत्र और वधूके साथ नये मकानमें सिसकते-कसकते ज़िन्दगीके दिन पूरे करने लगीं। एक तो यों ही उनमें तपाक और हुकूमत थी, दूसरे अशिक्षा और आपत्तियोंने चिड़चिड़ापन पैदा कर दिया था। शाहज़मानी बेगम भी बहुत तर्रार और गुस्सावर थीं। आपसमें बराबर अनबन रहती थी, जिसके फलस्वरूप बापकी मृत्युके पाँच वर्ष बाद जवाँबख्त् अपनी पत्नी और पुत्रीको लेकर मासे बिछुड़ गये, और उस मकानमें रहने लगे जो सरकारने उनके लिए ख़रीद लिया था। यह मकान रंगून सेन्ट्रल जेलके सम्मुख न्यू-कमिश्नर रोडके सामने 'साहिबज़ादाका बँगला'के नामसे प्रसिद्ध है।

इस वियोग तक ज़ीनतमहल अपने पतिकी टेकको निबाह रही थीं, और सरकारसे एक पैसा भी न लिया था; पर इसके बाद उन्हें और जवाँबख्त्को पाँच-पाँच सौ रुपया मासिक पेंशन मिलने लगी। ज़ीनतमहल १८८६ तक इसी मकानमें साँस भरती रहीं। जिसकी सवारीके साथ 'महाबली बादशाह बेगम सलामत'के आकाशवेधक नारे उठते थे, क़दमोंपर लाल क़िलेका वैभव लोटता था, जिसका एक इशारा कितनी ही क़िस्मतोंको बना-बिगाड़ सकता था—१९ वर्ष तक वही मुग़ल-सम्राज्ञी इस हालतमें जीती है कि एकलौता बेटा आँखोंके आगे रहकर बात नहीं पूछता, वैधव्य और बुढ़ापा चुटकियाँ लेते हैं, गुज़रा हुआ ज़माना टहोके देता है, अगले दिन निराशा, विषाद और अन्धकारकी सम्पदा लिये मुँह बाये हुए हैं! सन् १८८४ में उसके जीवनका सहारा मोलमीनके एक मकानमें दम तोड़ रहा है, और यह बेबस दुखियारी उसके दर्शनोंकी प्याससे घुट-घुट मरती है। इस जानलेवा आघातने हतभागी बेगमका दिल तोड़ दिया, और दो वर्ष बाद उसने भी प्राण त्याग दिये, और ज़फ़रकी क़ब्रके पास दफ़न की गई। एक शिलालेख उस स्त्रीकी यादगार है, जिसकी एक पुरखिन ताज़महलके नीचे मौतकी नींद सोते हुए भी अमर है।

जवाँबख्त् और शाहज़मानी बेगम

ज़फ़रके जीतेजी और उनकी मृत्युके पाँच वर्ष बाद तक जवाँबख्त्पर कड़ी देखरेख रही, और अनुमति बिना वह घरके बाहर भी नहीं निकल सकते थे। मासे अलग होनेके बाद जब वे नये मकानमें रहने लगे, तो बन्धन ढीला कर दिया गया, और रंगूनके अन्दर घूमनेकी इजाज़त दी गई। उनके दो सन्तान हुईं—पुत्री रौनक़ज़मानी बेगम और पुत्र प्रिंस जमशेदबख्त्। जवाँबख्त् अच्छे दिन देख चुके थे, इसलिए दिल्लीकी याद उन्हें हमेशा उदास रखती थी। स्वदेश और बन्धु-बान्धवोंकी स्मृति बराबर सताती रहती थी। राजसी ठाट-बाट तबीयतसे दूर न हो सका। चार घोड़ोंकी बग्घीमें सैरको निकलते थे। पाँच सौ रुपये भला उन्हें क्या पूरे पड़ते! दूकानदारोंका ऋण कभी चुका न सके, मरनेके बाद सरकारने अदा किया। शराब मुँह लगी हुई थी। मृत्युके दो वर्ष पूर्व अपनी पत्नीसे सम्बन्ध विच्छेद

कर लिया, और एक नौ मुसलिम बर्मी युवतीसे शादी कर ली। उसके साथ मोलमीन चले गये, और वहीं सन् १८८४ में परलोक सिधारे। मरते दम न मा पास थी, न पत्नी, न बच्चे! ग़ालिब और ज़ौक़ जिसके शादीमें सेहरे लिखकर आपसमें उलझ जायँ, और जिसे राजगद्दीपर बिठलानेके लिए आकाश-पाताल एक कर दिये जायँ, वह मरता है, तो कोई अपना-पराया आँसू बहानेवाला भी नहीं है। वहींके क़ब्रस्तानमें दफ़नाये गये और अब कच्ची समाधि अपनी धरोहरके दुःखद अन्तपर ख़ाक उड़ा रही है।

शाहज़मानीको अपने पतिके दुर्व्यवहारसे उन्माद-सा हो गया था। पतिपर इतनी क्रुद्ध थीं कि जब उसके मरनेकी ख़बर मिली, तो जवाब दिया—"वह मेरे लिए दो साल पहले ही मर चुका था।" बुढ़ापेमें आँखें जाती रही थीं। बर्मियोंसे इतनी घृणा थी कि कोई मिलने आता, तो पहले पूछतीं कि बर्मन हो या हिन्दुस्तानी? एक यूरोपियन नर्स देख-भालके लिए रखी गई थी, मगर उससे बराबर चिलम भरवाती थीं। उसपर बराबर सन्देह रहता था, यहाँ तक कि हुक्केका पानी बदलनेके लिए एक मुसलमान नौकर था। जब रौनकज़मानी बेगम बड़ी हुईं, तो उनके व्यवहारने माके अन्तकालको अत्यन्त विषादमय बना दिया। सन् १८९० के आसपास देहान्त हुआ।

नीचे हम शाहज़मानी बेगमकी एक चिट्ठी ज्योंकी त्यों दर्ज करते हैं। एक-एक शब्द बेबसी और करुणामें शराबोर है। बहादुरशाहके जीवनकालमें यह पत्र उन्होंने रंगूनसे अपनी माताको दिल्ली भेजा था। ग़दरके इतिहासमें यह पत्र विशेष महत्त्व रखता है। दुःख है कि मूल पत्रका पता अब नहीं चलता; इसकी नकलके लिए मैं ख़्वाजा हसन निज़ामीका आभारी हूँ।

बहादुरशाह 'ज़फ़र'

निर्वासित राजकुमारीकी चिट्ठी

"अज रंगून, मुल्क बर्मा, दिल्लीके क़ैदी बादशाहका घर। अम्मां हजरतको आदाब! मैं आपकी बेटी कालेपानीमें हूँ, अपने वतन दिल्लीसे हजारों कोस दूर। मैकेसे जुदा और ऐसी जुदा कि अब जीते जी कभी किसी मैकेवालेसे मिलनेकी आस नहीं है। आपका खत साईं सबील शाह साहिब लेकर आये थे। जब वह हुजूर (बहादुरशाह) से बातें कर रहे थे, तो मैंने चिलमनमें से देखा, वह जार जार रो रहे थे और हुजूरकी आँखोंमें भी आँसू थे। बातें करके साईं साहब उनके (जवांबख़्तके) साथ मेरे कमरेमें आये और खत दिया। खत देते ही रोने लगे—मुझे भी वह वक्त याद आ गया, जब मेरी शादी हुई और ग़ालिब व जौकके सेहरोंका चर्चा हुआ, और मैंने आपके जरिये वह दोनों सेहरे मँगवाये तो यही साईं सबीलशाह साहब लेकर आये थे। उस वक्त मैं वलीअहद (युवराज) हिंदुस्तानकी मलका थी। साईं सबीलशाह सात

डेवढ़ियों और पहरेदारोंको उबूर करके मुझ तक आये थे। आज मैं एक जिलावतन (निर्वासित) क़ैदी हूँ, और एक क़ैदीकी बीवी हूँ। क़ैदी सास और ससुरेकी बहू हूँ। अब यहां न वह लालक़िला है, न सात डेवढ़ियां हैं, न पहरेदार। बस, लकड़ीका बना हुआ एक मकान है, जो बरसातमें टपकता है और जिसमें दो-चार कमरोंके सिवा ज्यादा गुंजायश नहीं है। एक कमरेमें हुज़ूर और मलकये आलम (ज़ीनतमहल) की ख्वाबगाह (शयनकक्ष) है। दूसरेमें मेरा और उनका बिस्तर है। तीसरेमें नौकर हैं। चौथेमें खाने, मिलने-जुलनेका इंतजाम है। मुझे यहांकी हवा रास नहीं आती। बारिश बहुत होती है, मच्छर भी बहुत हैं। मकान भी पुराना और बोसीदा है। अक्सर बुखार हो जाता है। हुज़ूर और मलकये आलम भी हमेशा बीमार रहते हैं। बस, .ख़ुदाके फ़ज़लसे यह (जवांबख्त) एक ऐसे हैं, जिनको यहाँकी हवासे कुछ नुक़सान नहीं हुआ। आपने दिल्लीकी तबाहीका जो हाल लिखा है, वह तो जब हम दिल्लीमें थे, अपनी आंखोंसे देखकर आए थे। हाँ, आकाभाई (बड़े भाई) की फांसीका हाल इस ख़तसे मालूम हुआ। वह तो ग़दरके दिनोंमें बनारस गये हुए थे। उनको किस ख़तापर फाँसी दी, यह बात आपने नहीं लिखी। साईं साहबसे मैंने पूछा था; कहने लगे, हजरत सैयदहसन अस्करीको फाँसी दी गई, तो किसीने कह दिया कि यह भी उनकी साजिशमें शरीक थे और शाह ईरानको जो ख़त गया था, उसमें इनका भी दख़ल था।* और बनारस इसी ग़रज़से गये थे कि बात छिपानेका एक बहाना हो जाय। मैंने आकाभाईका हाल सुना कि उनको बड़ी बेदर्दीसे फाँसी दी गई, और आप .ख़ुद फाँसीके वक्त मौजूद थीं, तो मुझे मारे ग़मके ग़श आने लगा। हम जब दिल्लीसे जिलावतन होकर चले हैं, उस वक्त तक तो वह बनारससे आये नहीं थे। उनकी छोटी लड़कीका बयान कर-करके रोना साईं साहबसे सुना, तो कलेजा मुँहको आने लगा। उसकी उम्र अभी चार बरसकी होगी। ग़रीबको क्या ख़बर कि बाप कहाँ चला गया। जब मैंने सईदाकी यह बात सुनी कि आकाभाईकी लाश घरमें आई, तो उसने आपसे कहा—"अब्बा हजरत हमसे ख़फ़ा हो गये, बोलते नहीं, आंख बंद किये लेटे हैं," तो मेरा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो गया। सईदा मुझे बहुत याद आती है, और जबसे आकाभाईके मारे जानेका हाल सुना है, सईदाका ख़याल रोज आता है। मुई मिट्टीकी निशानी है। मैं उसको देखती तो दिलके जख्मपर मरहम लग जाता, मगर मैं कहाँ और सईदा कहाँ! और मेरे माँ बाप कहाँ और दिल्ली शहर कहाँ!—अब तो कोई उम्मीद दिल्ली आ सकनेकी नहीं है! हमारे बजुर्गोंपर बहुत ही बुरे वक्त आ चुके हैं। हजरत बाबरपर हमसे ज्यादा मुसीबतें पड़ चुकी हैं, मगर वह उतने मायूस नहीं थे, जितने मायूस हम हैं; क्योंकि उनकी हिम्मतके सामने सारी दुनियाके दरवाजे खुले हुए थे। उनकी तलवारमें जोर था। वह जब चाहते थे, हजारों-लाखों आदमी उनकी हिमायतके लिए खड़े हो जाते थे, और उनकी मुसीबत दूर हो जाती थी, मगर हमारी हालत यह है कि इस शहरका एक आदमी भी हमारा हमदर्द नहीं मालूम पड़ता। दुनियामें हमदर्दी तभी होती है, जब हमदर्दी करनेवालेको किसीसे कुछ उम्मीद हो। हमसे किसीको भला क्या उम्मीद होगी? सब जानते हैं कि हमारी हुकूमत ख़तम हो चुकी, हमारे इक़बालका चिराग़ गुल हो चुका, हमारे सब हिमायती मर चुके। अब जो हमारी मददका इरादा करेगा, या हमसे हमदर्दी रखेगा, उसे क़ैद होगी, या फाँसी, और कोई इनाम व अकराम हम उसे न दे सकेंगे। हजरत इमाम हुसेनके क़ातिलोंको यजीदके दरबारसे बहुत कम गुजारा मिलता था, यानी फ़ी कस डेढ सेर जौ दिये जाते थे और क़ातिलोंने महज डेढ़ सेर जौके लिए रसूलिल्लाहके नवासोंको क़तल कर दिया। अगर हजरत इमामहुसेन डेढ सेर जौ शाही फौजके हर आदमीको दे सकते, तो वह क़ातिल उन्हींके साथ हो जाते। हमारा हाल भी ऐसा ही है कि आज हम अपने हमदर्दों और हिमायतियोंको डेढ़ सेर जौ भी नहीं दे सकते, फिर हमसे कोई क्यों हमदर्दी करे और हमारी हिमायतका ख़याल उसके दिलमें क्यों आये? यह दुनिया तो उम्मीदसे क़ायम है। जब हम किसीकी उम्मीद पूरी न कर सकें, तो वह हमारी मदद क्यों करे?

इस मुल्ककी जबान और है, मजहब और है। रहना-सहना, खाना-पीना, सब हमसे अजनबी है। वह जानते भी नहीं कि हम कौन हैं, और यहाँ हमको क्यों क़ैद किया गया है। अम्मा जी, हमारी यह क़ैद ऐसी क़ैद है कि न हम क़ैद हैं, न आजाद हैं, न जिंदा हैं, न मुर्दा हैं। अपने घरमें, अपने शहरमें, अपने मुल्कमें जा नहीं सकते, इसलिए क़ैदी हैं। तौक़-जंजीर गलेमें और पाँवमें नहीं है, इसलिए आजाद हैं। सब दोस्तों, क़राबतदारोंसे जुदा हैं, इसलिए मुर्दा हैं। बोलते-चालते, खाते-पीते हैं, इसलिए जिंदा हैं। कहां तक लिखूं, साईं सबीलशाहकी जबानी सब हालात मालूम हो जायँगे। सईदा सुलताना (बड़े भाईकी अनाथ बेटी) को गोदमें लेना, सीनेसे लगाना, मुँह चूमना और कहना कि फूफूका प्यार लो। अब्बा हजरतको याद न करो, हमें भी भूल जाओ। न वह मिलेंगे, न हम मिलेंगे। वह क़ब्रमें हैं, और हम भी क़ब्रमें हैं। उनकी क़ब्र वतनमें है, मगर हमारी क़ब्र परदेशमें है। जब तक हम जिंदा हैं, क़ब्रमें हैं। जब मर जायँगे, तब भी क़ब्रमें होंगे।

आदाब, अम्मांजानी। तसलीम।

ख़ाली गोदवाली—आपकी बेटी।"

प्रिन्स जमशेदबख्त

ये अन्तिम मुग़ल-सम्राट्के उत्तराधिकारी जवांबख्तके बहुत ही चहेते और लाड़ले बेटे थे। कमिश्नर रोडके मकानमें पैदा हुए, और आजीवन उसीमें रहे। सरकारी हाई स्कूलमें मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की। बहुत ही उद्दंड और उच्छृंखल प्रकृति पाई थी। यौवन-द्वारपर

---

* कहते हैं कि ग़दरके पहले बहादुरशाह और ईरान-नरेशमें पत्र-व्यवहार हो रहा था, और यही शाह अस्करी गुप्त दूत बने हुए थे। दिल्लीमें इनकी ईश्वरभक्तिके बड़े चर्चे थे। ग़दरके बाद फांसी हो गई।

पहुँचते-पहुँचते अपने आचरणके कारण बदनाम हो चुके थे। पतंगबाज़ी और घुड़सवारीका बड़ा शौक़ था। अच्छे-अच्छे घोड़े बँधे रहते थे, जिनपर बैठे दिन-दिन-भर रंगूनके बाहर मटरगश्त किया करते थे। उर्दू लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे, पर थी वह घरकी लौंडी। ज़फ़रके बन्दी-जीवनकी कविताओंका संग्रह रोमन-लिपिमें किया था, जो मरनेके बाद दूसरे सामानके साथ ज़ब्त कर लिया गया, और सम्भवतः ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी भेज दिया गया। लोगोंसे अधिक मेल-जोल न था। बहुधा घोड़ेपर बैठ ज़फ़रकी ग़ज़ल गाते हुए देखे जाते थे। अंगरेज़ीपर अच्छा अधिकार था, मगर अंगरेज़ बिलकुल न सुहाते थे। अंगरेज़ोंकी पार्टीमें न जाते थे, और न खुद बड़े-से-बड़े अधिकारीके आगे झुकते थे। इस अकड़ने एक बार सरकारके प्रकोपको सुलगा दिया। पेन्शन कम हो गई, और कुछ समय तक कड़ी देख-रेख रहने लगी। अपने 'मुग़ल-राजवंशकी अन्तिम झलक' में प्रिन्स जमशेदबख्त और उनके पुत्र बेदारबख्तपर बहुत कुछ लिख चुका हूँ, जिसे दोहराना व्यर्थ है। इस लेखमें वही बातें लिखी गई हैं, जिनका पता बादमें चला।

हालाँकि जमशेदबख्तकी जवानी अल्हड़पनमें गुज़री, मगर बादमें सँभल गये थे। अपने वंशपर उन्हें बड़ा अभिमान था, और बराबर दिल्लीके सिंहासनका सुख-स्वप्न देखा करते थे। ज़फ़रकी दो-चार टूटी-फूटी यादगारोंको गलहार बनाकर रख छोड़ा था, और जब कोई मिलने जाता, तो एक-एक चीज़ निकालकर दिखाते और गत गौरवका बखान करके घंटों अफ़सोस किया करते थे। अभिमान और निरंकुशताके कारण रंगूनमें लोकप्रिय तो न थे, पर अपनी देश-भक्ति, उदारता और राजसी ठाट-बाटके कारण जनसाधारणमें बड़ा आदर-सम्मान था। किशोरावस्थामें सरकारकी ओरसे १५०) मासिक मिलता था, जो शादीके बाद ३००) कर दिया गया। आगे चलकर ७००) माहवार मिलने लगे थे। देहान्तके पहले तो हज़ार रुपया पेन्शन मंज़ूर हो गई थी, पर जीते जी उसे न ले सके। ५५ वर्षकी अवस्थामें सन् १९२१ में रंगून ही में दम तोड़ा। यह खिलाफ़त-आन्दोलनका ज़माना था। लोगोंमें जोशकी लहर बह रही थी, इसलिए मुग़लोंकी इस अन्तिम यादगारका जनाज़ा ऐसे धूमधामसे उठा कि अब तक रंगूनमें इसकी चर्चा सुनाई देती है। यह सम्मान न अभागे ज़फ़रको प्राप्त हुआ और न जवांबख्तको। कफ़न-दफ़नके बारेमें जनता और अधिकारियोंमें बड़ी तनातनी हो गई, जिससे जनतामें ऐसा क्रोध फैला कि जनाज़ेके जुलूसमें एक गोरेका कचूमर निकाल दिया गया। मुक़दमेबाज़ीकी नौबत आ पहुँची, और कई आदमियोंको कड़ी सजायें हुईं।

टामवेके क़ब्रिस्तानमें हुमायूँ अकबरका यह अन्तिम नामलेवा एक कच्ची समाधिमें हमेशाके लिए सो रहा है। जमशेदबख्त ही वह एकमात्र मुग़ल राजकुमार थे, जिनकी धमनियोंमें विशुद्ध तैमूरी रक्त प्रवाहित था। उनके पिता दिल्लीके राजगद्दीके दावेदार थे, और माता भी राजघरानेमें से थीं। सच पूछो, तो इनके बाद कोई ऐसा मुग़ल न रहा, जो कह सके कि मेरी रगोंमें शाही घरानेका ही खून है। ऐसे तो कहनेको दिल्लीमें तैमूरी कुटुम्ब सैकड़ों आदमी बसते हैं।

रौनक़ज़मानी बेगमसे भेंट

अभी मई सन् १९३० में रंगूनमें इनकी मृत्यु हुई। जमशेदबख्तकी बड़ी बहन थीं, और शाह ज़फ़रके जीवनकाल ही में सन् १८६० में रंगूनमें जन्म ग्रहण किया। मा-बापकी अनबन और अस्वस्थ्याके कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा न हो सकी। बादमें मा-बापके अलगावका और भी बुरा असर पड़ा। चरित्र-निर्माणका कोई साधन न रहा, और इसका जो परिणाम होना चाहिए था, वही हुआ।

रौनक़ज़मानीकी शादी भी अजीब ढंगसे हुई। चीन और बर्माकी सीमाके पास 'टालीफ़ूर' नामक एक मुस्लिम रियासत थी। सन् १८७३ में वहाँके शासकने युद्धमें पराजित होनेके बाद आत्म-हत्या कर डाली, और

उसका युवराज प्रिंस हसन जान लेकर रंगून भाग आया। सन् १८८० में सरकारी अधिकारियोंने बीचमें पड़कर इन दोनोंका विवाह करा दिया, पर लालक़िलेकी राजकुमारी और मंगोलियन प्रिंसमें भला पटरी कैसे बैठ सकती थी ? कुछ दिनों बाद ही दोनोंमें झगड़ा हुआ, और रौनक़ज़मानी यह कहकर अपने मायके चली आई कि—"मुवेके बदनसे भेड़ोंकी-सी बू आती है।" प्रिंस हसन मर-खप गये, उनके भाई-बन्धु अब तक रंगूनमें रहते हैं। रौनक़ज़मानी अपने छोटे भाईको बहुत चाहती थीं, और उनके साथ जीवन-यापन किया। जमशेदबख़्तकी मृत्युके पश्चात् भी उनकी बर्मी स्त्रीके पुत्र सिकन्दरबख़्तके साथ सन् १९२९ तक उसी मकानमें पड़ी रहीं। अन्तकाल आन पहुँचा, तो सरकारने एक बँगला किरायेपर दिलाया, और एक 'सीडान' मोटर ख़रीद दी। मरते दम तक बड़े ठाट-ठस्सेसे आठ नौकरोंके साथ उसी बँगलेमें रहीं। उन्हें रंगूनसे बाहर जानेकी अनुमति न थी। दो बार लखनऊ हो आई थीं। स्वदेशसे हमेशा लौ लगी रहती थी, और भारत आकर जान देना चाहती थीं।

सन् १९२९ तक सरकारकी ओरसे ३००) मासिक मिलता था, और मकानके आसपासकी ज़मीनका कुछ किराया भी मिल जाता था। बादमें ४००) रुपया मासिक हो गया, मगर इससे भला क्या पूरा पड़ता ? ४५) पेट्रोलमें उड़ जाते थे, शोफ़रको इतना ही वेतन मिलता था। फिर भिश्ती, बावरची, मुख़्तार और ज़फ़रकी समाधिका रक्षक—यह सब कोई २५०) ले उड़ते थे। खाने-पहननेमें भी यही दरियादिली थी, और यह हाल था कि पाँव ढका तो सिर खुला। बात यह थी कि मा-बापके घर खाई-खेली हुईं, फिर वंशाभिमान और लालक़िलेकी आन-बान, एक-एक पोर विलासमें डूबा हुआ, चार सौ रुपये क्या बस आते ! उनके स्वभावका परिचय इस बातसे मिल सकता है कि ७१ वर्षकी अवस्थामें भी पैरोंमें झाँझन पड़े हुए थे। पासमें पानदान और हुक्का रखा रहता था, और ख़ुद गावतकियेके सहारे बैठी रहती थीं।

एक महाशयने मृत्युसे कुछ समय पहिले इनसे भेंट की थी। बातचीत बड़ी मज़ेदार थी, जिसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

प्रश्न—"आपके नानाका क्या नाम था ?"

उत्तर—"कुछ टेढ़ा-सीधा था ; मेरी अम्माँको नहीं आया, मुझे क्या आयेगा।"

प्रश्न—"आप हिन्दुस्तान जाना चाहती हैं ?"

उत्तर—"हमें कोई जेटी (बन्दर-स्थान) ले चले, तो आज जहाज़पर सवार होकर चले जायँ !"

इसी बीचमें एक मुँहलगे नौकरने बात काटकर कहा—"ठीक है बेगम साहब, यह एक घर है, यह भी चला जायेगा।"

बूढ़ी बेगमने बिगड़कर कहा—"अरे, बाप-दादेकी सल्तनत चली गई ! यह भड़वा घर चला जायेगा, तो अब क्या बिगड़ जायेगा ?"

बेगम अपने भांजे सिकन्दरबख़्तको बहुत चाहती थीं, पर उनके चाल-चलनके कारण मरते-मरते इतनी नाराज़ हुईं कि निकाल बाहर किया। पूछा गया—"सिकन्दरबख़्तसे आप क्यों नाराज़ हैं ?"

बेगमने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—"नंगी क्या नहाये, क्या निचोड़े। ख़र्च मेरे ही पूरा नहीं पड़ता, फ़ूफीके भतीजेको कहाँ तक रुपया दूँ !"

रौनक़ज़मानीकी मृत्युसे रंगूनमें मुग़ल-राजघरानेकी अन्तिम किरण भी ओझल हो गई। अब जो लोग हैं, वे सब बर्मी माताओंकी सन्तान हैं। न उनमें वंश-गौरव है, न स्वदेशाभिमान ! दिल्लीमें दो-चार बूढ़े शाहज़ादे अब भी बाक़ी हैं, जिन्होंने मुग़ल-घरानेके चल-चलावके दिन देखे थे। अब वे ख़ुद कमरमें कफ़न बाँधे बैठे हैं। इतिहासके कुछ अस्त-व्यस्त पृष्ठोंकी चमनबन्दी वही कर सकते हैं, वरना सवेरा हो गया, तो ये सपने किसे याद रहेंगे :—

"ख़बर लो अय साकिनाने साहिल,
हरएक नफ़स जानपर गराँ है !"

हज़रत मिर्ज़ा अली मुहम्मद 'बाब'

प्रोफेसर बेनीमाधव अग्रवाल, एम० ए०

ईरान देशमें, जहांके लोग प्रायः शिया-सम्प्रदायके मुसलमान हैं, उन्नीसवीं सदीके दूसरे चतुर्भागमें धर्मकी एक नई लहर उठी, जिसे बाबी मज़हब कहते हैं; क्योंकि उसके प्रवर्त्तक सैयद मिर्ज़ा अली मुहम्मदने 'बाब' (अध्यात्म-ज्ञानका द्वार) की उपाधि धारण की थी। यद्यपि इस्लामी मुल्लाओंने इस मज़हबका निर्दयतासे दमन किया और उसके माननेवालोंपर भीषण एवं वीभत्स अत्याचार किये, फिर भी यह निर्विवाद है कि उसमें बहुतसे महान एवं उदार तत्त्व थे, और वह इस्लामके अन्तर्गत एक सुधार-आन्दोलन था। क्रूर दमन तथा अन्ध-असहिष्णुताने बाबियों और मुसलमानोंके बीच किसी प्रकारके सहयोग और समझौतेको असम्भव कर दिया। इस नये मज़हबमें हज़ारों त्यागी तथा सुन्दर चरित्रवाले व्यक्ति हुए। शहीदोंके खूनसे यह पौधा सींचा गया। पशुबल उसके विकासको नहीं रोक सका। इस आन्दोलनकी कथा बड़ी रोचक, शिक्षाप्रद और रोमांचकरी है।

मिर्ज़ा अली मुहम्मदका जन्म ९ अक्टूबर १८२० में शीराज़ नगरमें हुआ था। वे सैयद घरानेके थे—अर्थात् नबी मुहम्मदके वंशज थे। उनके पिता सैयद मुहम्मद रज़ा कपड़ेका व्यापार करते थे। उनकी मृत्यु अली मुहम्मदके बाल्यकालमें ही हो गई, और उनके लालन-पालनका भार उनके मामा हाजी सैयदअलीपर पड़ा। बचपन ही से अली मुहम्मदकी बुद्धि प्रखर थी। उनके स्वभाव और बातचीतमें एक विचित्रता थी। जिन लोगोंको उन्हें अच्छी तरह देखने और जाननेका मौक़ा मिला, उन्हें बहुत जल्दी यह विश्वास हो गया कि यह बालक अत्यन्त होनहार है, और आगे चलकर कोई सिद्ध महात्मा होगा। जब उनकी अवस्था १५ वर्षकी हुई, तब वे अपने मामाको व्यापारमें मदद देनेके लिए बुशायर नामक प्रसिद्ध बन्दरस्थानको भेजे गये। कुछ दिनों तक वे अपने मामाके साथ काम करते रहे, और बादमें स्वतन्त्र रूपसे व्यवसाय करने लगे, पर व्यापार कर धनवान बनना उनके जीवनका उद्देश्य नहीं था। उनकी विचारधारा उन्हें दूसरी ओर बहाये ले जा रही थी। इस कच्ची उम्रमें भी उनके चरित्रमें अपूर्व गम्भीरता और तपस्विता आ गई थी। वे कठोर नियमोंका पालन करते और सदैव धार्मिक विचार-चिन्तनमें लीन रहते थे। बुशायरमें रहते हुए अली मुहम्मदका विवाह हुआ। उनके एक पुत्र भी हुआ, किन्तु वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा।

अन्तमें अली मुहम्मदने व्यापार छोड़ दिया, और तीर्थ-यात्रा करनेके लिए मक्काको प्रस्थान किया। इस समय उनकी आयु २२-२३ वर्षकी रही होगी। मक्कासे वे इमामोंके मक़बरे देखनेके लिए कर्बला गये। इस समय कर्बलामें हाजी सैयद काज़िम नामक एक प्रसिद्ध विद्वान और आचार्य रहते थे। लकीरके फ़क़ीर मुल्लाओंके विरोध करनेपर भी इस विद्वानका प्रभाव सारे ईरानमें फैल रहा था, और उनके शिष्योंकी संख्या बढ़ रही थी। मिर्ज़ा अली मुहम्मद भी कर्बला पहुँचकर इनके शिष्य बन गये, और लगभग दो महीने तक उनका व्याख्यान सुनते रहे। सैयद काज़िमका ध्यान शीराज़के इस शान्त गम्भीर युवकके प्रति आकर्षित हुआ, जिसकी विनयशीलता उसकी प्रतिभाको विभूषित करती थी। कितने ही विद्वान तथा धार्मिक पुरुष उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखने लगे।

मिर्ज़ा अली मुहम्मदकी अन्तर्दृष्टिने अपने समयके धार्मिक और सामाजिक अधःपतनको देखा, और यह समझ लिया कि उस युगको नवीन सन्देशकी बहुत ज़रूरत है। सदियोंसे लोग पुरानी रूढ़ियोंपर आँखें बन्द किये हुए चलते रहे हैं। समयके साथ जो उन्नति होनी चाहिए थी, वह रुकी हुई है। उन्हें यह विश्वास हो गया कि धार्मिक क्रान्तिके बिना लोगोंमें नवजीवनका संचार नहीं हो सकता। उनके हृदयमें यह भावना उठने लगी, और धीरे-धीरे बलवती होती गई कि ईश्वरने उन्हें ईरानके सुधार और उद्धारके लिए भेजा है। बहुत समय तक उनके हृदयमें उथल-पुथल और अन्तर्द्वन्द्व मचा रहा। अन्तमें मई १८४४ में उन्होंने अपनेको 'बाब' घोषित कर दिया। 'बाब' शब्दका अर्थ है 'द्वार'। तात्पर्य यह कि लोगोंके कल्याणके लिए नूतन आध्यात्मिक सत्यों और रहस्योंका ज्ञान उन्हें ईश्वरसे प्राप्त हुआ है, और उनके द्वारा उनका संसारमें प्रचार होगा।

नये मज़हबको समझानेके लिए बाबने अनेकों ग्रन्थ लिखे,

जिनमें 'बयान' मशहूर है। उन्होंने क़ुरानकी टीकाएँ क़ुरान ही की शैलीमें लिखीं। अपनेको बाब घोषित करने तथा शहीद होनेके बीच उनके जीवनके जो छै वर्ष बीते, उसका बहुत बड़ा हिस्सा उन्हें क़ैदीकी हैसियतसे काटना पड़ा, पर दुःखमें और शान्तिमें, क़ैदखानेके भीतर और बाहर, सब कहीं अद्भुत धैर्य और अध्यवसायके साथ वे अपने विचारों और उपदेशोंको लेखबद्ध करते रहे। उनकी हस्त-लिखित प्रतियाँ भक्तगणोंके पास पहुँचती रहीं। शीघ्र ही बाबियोंका घोर दमन प्रारम्भ हुआ, और अपनेको बाबी कहना मौतको बुलानेके समान हो गया। उस समय गुप्तरूपसे बाबी ग्रन्थोंका प्रचार होता रहा।

बाबका मत था कि ईश्वर एक ही बार समस्त आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्योंपर प्रकट नहीं करता। इसका क्रम उन्नतिशील है, अतएव मानव-जातिके पथ-प्रदर्शनके लिए समय-समयपर वह अपने पैग़म्बर भेजता रहता है। अब्राहाम, ज़रथोस्त, मूसा, ईसा तथा मुहम्मद ऐसे ही पैग़म्बर थे। बाबी लोग उनकी इज्ज़त करते और उन्हें सच्चा पैग़म्बर मानते हैं। बाबी मज़हबके उदार दृष्टिकोणका यह एक प्रधान कारण है, और इसी कारण हम उसमें पारसी, यहूदी, ईसाई तथा इस्लामी मज़हबोंके अनेक उत्तमोत्तम तत्त्वोंका समष्टकरण पाते हैं।

कट्टर मुसलमानोंकी तरह बाबी लोग ईसाइयोंको नजिस (अपवित्र) नहीं मानते। वे ईसाको सच्चा मसीह मानते हैं, और बाइबिलका अध्ययन भी करते हैं। ईसाइयों तथा बाबियोंकी पारस्परिक सहानुभूतिका एक और कारण यह है कि महात्मा ईसाके समान बाब भी शहीद हुए, और ईसाइयोंके समान बाबियोंको भी अपने धर्मके लिए मृत्यु तथा कठोर यन्त्रणाओंको सहन करना पड़ा। इसी प्रकार बाबियों और पारसियोंमें भी पारस्परिक सद्भाव है। दोनों मज़हबोंका दृष्टिकोण उदार है। वे कहते हैं कि साधु पुरुषोंका आदर करो, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो। दोनों मुसलमानोंकी धार्मिक असहिष्णुताके शिकार रहे। इसके अतिरिक्त बाबी लोग ज़रथोस्तको भी पैग़म्बर मानते हैं।

बाब किन सुधारोंके पक्षपाती थे, इसपर कुछ कहनेसे पहले बाबियों और मुसलमानोंके सम्बन्ध और मतभेदपर दो-चार शब्द कह देना ठीक होगा। बाबी लोग मुहम्मदको ईश्वरका एक बड़ा और सच्चा रसूल मानते हैं, किन्तु मुसलमानोंके समान उन्हें अन्तिम पैग़म्बर नहीं मानते। उनका विश्वास है कि जिस प्रकार भूतकालमें पैग़म्बर—मानव-जातिके पथ-प्रदर्शन और शिक्षाके लिए दिव्य-शक्तिका मनुष्यके रूपमें अवतार—हुए हैं, उसी प्रकार भविष्यमें भी होते रहेंगे। बाबी लोग क़ुरानकी सभी बातोंको सब कालके लिए लागू नहीं समझते, और यह भी नहीं मानते कि उनमें परिवर्तन हो ही नहीं सकता।

क़यामतके दिन मुर्दे जी उठेंगे—मुसलमानोंके इस सिद्धान्तसे बाबियोंका मतभेद है। बाबका मत है कि भौतिक शरीर फिर जीवित नहीं होता। जीवात्मा शरीरको छोड़ देती है, तब मौत हो जाती है, पर शरीरके साथ इस जीवात्माका अन्त नहीं होता। वह नवीन शरीर धारण करती है। आत्मा अनन्त है, मृत्युसे जीवनका अन्त नहीं होता, आध्यात्मिक उन्नति और पूर्णताके लिए आत्मा जन्म ग्रहण करती रहती है। बाबका यह सिद्धान्त हिन्दुओंके पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे मिलता-जुलता है। बाबी स्वर्ग और नरकका भौतिक अस्तित्व नहीं मानते। लोगोंका कहना है कि पुनर्जन्ममें यह विश्वास बाबियोंको मृत्युसे निर्भय रहनेकी प्रेरणा प्रदान करता था।

सदियोंके दलित महिला-समाजके लिए बाबने नवजीवनका मन्त्र सुनाया। उनका मत था कि आध्यात्मिक दृष्टिसे स्त्री-पुरुष दोनों बराबर हैं। स्त्रियोंको भी आत्मोन्नतिके साधन दिये जाने चाहिए। बहुविवाह तथा रखेलियाँ रखना निषिद्ध है, इससे स्त्रीत्वके गौरवका नाश होता है। तलाक़की प्रथाका उन्होंने घोर विरोध किया, क्योंकि इससे पुरुष तनिक भी अप्रसन्न होते ही स्त्रीको निकाल बाहर कर सकता था। तीन बार केवल इतना ही कहकर कि "मैं तेरा परित्याग करता हूँ"—पुरुष अपनी पत्नीसे सम्बन्ध तोड़ सकता था। बाबने कहा कि विवाहके पहले वर और कन्या दोनोंकी स्वीकृति ले लेना उचित है। समाजमें स्त्रियोंको अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। बाब परदेके पक्षमें नहीं थे, किन्तु यह कहना कठिन है कि वे किस हद तक इस कुप्रथाको मिटा देना चाहते थे। आज उन्नतिके ज़मानेमें ये सुधार भले ही हमारे हृदयमें जोश पैदा न करें, परन्तु जिन्हें इस बातका तनिक भी पता है कि उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भमें ईरानमें स्त्रियोंकी क्या दशा थी, वे अवश्य ही इनके महत्वको समझ सकेंगे। बाबकी प्रेरणाने कितनी ही महिलाओंमें

नवीन आशा और उत्साहका संचार किया। इनमें प्रसिद्ध कवियित्री विदुषी सुन्दरी कुरतुलऐनका नाम चिरस्मरणीय है। इस शहीद देवीकी जीवन-कथा किसी आगामी लेखमें कही जायगी।

बाबके सन्देश और व्यक्तित्वने लोगोंको आकर्षित करना प्रारम्भ किया। बहुतसे लोग ऐसे थे, जिनकी आत्मा स्वदेशके अध:पतनसे दु:खित थी। वे लोग मानो उनका स्वागत करनेके लिए तैयार ही बैठे थे। कुरान और हदीसके जो प्रमाण बाबने अपने पक्षमें दिये थे, उनसे सन्तुष्ट होकर कितने ही धर्मशील मुसलमानोंने उन्हें 'इमाम महदी' मान लिया। सूफ़ी लोगोंने बाबी मतमें अपने इस सिद्धान्तकी समानता पाई कि मनुष्यमें ईश्वरका अंश विद्यमान है जिसे विकसितकर, हम परमात्मामें लीन होकर, अपने विलग अस्तित्वको मिटा सकते हैं (फ़ना-फ़िल्ला), और मन्सूरके समान यह कह सकते हैं कि "मैं ही ईश्वर हूँ" (अनल-हक़)। सच्चे दिलसे देशकी उन्नति चाहनेवालोंमें से बहुतोंने यह देखा कि इस्लामकी रूढ़ियोंमें फँसे रहकर हम वह उन्नति और सुधार कदापि नहीं कर सकते, जो बाबी मज़हबके उदार सिद्धान्तोंके अनुसरणसे सुलभ है। शेख़-सम्प्रदायके कितने ही अनुयायियोंने बाबको उस पैग़म्बरके रूपमें अंगीकार किया, जिसकी बाट वे जोह रहे थे। आचार्य काज़िमके अधिकांश शिष्योंने अपने पुराने सहपाठी अली मुहम्मद--बाब—को अपना गुरु माना। बाक़ीने हाजी मुहम्मद करीमखानको अपना नेता चुना, और बाबियोंके विरोधी बन गये। बाबके प्रेमके वशीभूत हो, कितने ही लोग उनके भक्त हो गये।

इस प्रकार बाबके शिष्यों और अनुयायियोंकी संख्या बढ़ने लगी। उन्होंने उत्साहके साथ सारे ईरानमें अपने मज़हबका प्रचार प्रारम्भ किया। बाबकी कीर्ति देशमें गूँजने लगी, और लोग यह समझने लगे कि राष्ट्रके उद्धारके लिए नये मसीहने अवतार लिया है। बाबके अनुयायियोंमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। यहाँ भक्तगण प्रचार-कार्य कर रहे थे, वहाँ बाबने एक बार फिर तीर्थ-यात्रा करनेके लिए मक्काको प्रस्थान किया।

"उच्च-शिक्षा" न पाये हुए इस नौजवान सैयदने २४ वर्षकी आयुमें सहस्रों नर-नारियोंके हृदयमें एक नई लगन, नूतन आशा तथा हँसते-हँसते आत्म-बलिदान करनेवाली श्रद्धाका संचार कर दिया। सुधार, पवित्रता और उदारताके साथ-साथ बाबके उपदेशोंमें क्रान्तिकी वह चिनगारी मौजूद थी, जो आत्म-विश्वाससे प्रज्ज्वलित होकर अनुदार स्थितिपालकताके अस्तित्वको असंभव बना देती है। धर्मके ठेकेदार, अपनेको समाजका नेता समझनेवाले तथा लकीरके फ़कीर मुल्लाओंको भला ये विचार कब पसन्द हो सकते थे? मुल्लाओं अथवा मुफ़्तियोंकी रायपर अपनी धर्म-नीतिको निर्धारित करनेवाली तथा क्रान्तिकारी आन्दोलनोंसे घबरानेवाली ईरानी सरकार भी इन्हें कब सहन कर सकती थी? पहले तो उन्होंने इस नये आन्दोलनको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा, और समझा कि वह आप-ही-आप मर जायगा, इसलिए प्रारम्भमें किसीने भी—न मुल्लाओंने, और न सरकारने—उसपर ध्यान नहीं दिया, मगर जब लगनके पक्के बाबियोंने देशके कोने-कोनेमें उसका प्रचार किया, और उनका प्रभाव लोगोंपर पड़ने लगा, तब वे घबराये, और नये आन्दोलनको दबानेका उपाय करने लगे। मुल्लागण समझ गये कि यह नया मज़हब उनके सदियोंके एकाधिपत्यको मिटा देना चाहता है, इससे किसी प्रकारका समझौता हो ही नहीं सकता। उन्होंने फ़ारसके सूबेदार हुसेनखानसे कहकर बाबके अनेक प्रधान शिष्योंका खुलेआम अपमान कराया। हुक्म दे दिया गया कि जनसाधारणमें बाबके मज़हबका प्रचार और उसकी चर्चा न की जाय। इसी समय खबर पहुँची कि बाब मक्कासे वापस लौट रहे हैं। मुल्लाओंके अनुरोधसे हुसेनखानने बाबको बुशायर आते ही गिरफ्तार करा लिया। वे शीराज़ लाये गये। उन्हें वहाँके कोतवाल अब्दुलहमीद खानके घरमें रखा गया। इस नज़रबन्दीमें कोई खास सख़्ती नहीं थी। बाबके साथी यहाँ उनसे कभी-कभी मुलाक़ात भी कर लेते थे। यहाँ कई बार बाबका आलिमों और मुल्लाओंसे शास्त्रार्थ भी हुआ। मुल्ला लोग बाबको नीचा नहीं दिखा सके। उन्होंने कोशिश की कि वे अपने नये मज़हबको छोड़ दें, परन्तु इसमें भी वे असफल हुए।

बाब जानते थे कि इस क्रान्तिकारी आन्दोलनके प्रवर्त्तक होनेके कारण उन्हें संसारमें क्या पुरस्कार मिलेगा—शहादत। वे जानते थे कि नवीन सन्देशके प्रचारमें उनके भक्तोंको कितने दु:ख और दमनका सामना करना पड़ेगा। अपनेको बाब घोषित करते ही बाब तथा उनके अनुयायियोंकी कठिन परीक्षा प्रारम्भ होती है। बाबने पहले ही से कह दिया था—

'स्वर्गका मार्ग यन्त्रणाओंसे परिपूर्ण है।" दमनके साथ-साथ बाबियोंकी संख्या और उनका जोश भी बढ़ता गया। ईरानके बादशाह मुहम्मदशाहने बाबकी जाँच करनेके लिए एक मशहूर आलिम सैयद यहयाको शीराज़ भेजा। उसके ऊपर बाबका ऐसा असर पड़ा कि उसने निडर होकर बाबकी तारीफ़में एक लम्बी चिट्ठी बादशाहको लिख भेजी, और खुद घूम-घूमकर ईरानमें नये मज़हबका प्रचार करने लगा। वह मसजिदोंमें ऐसे जोशसे व्याख्यान देता और ऐसी श्रद्धासे बाबकी महानताका बखान करता कि लोग कहते, यह आपेमें नहीं है, बाबने इसपर जादू कर दिया है। ज़न्ज़नके प्रसिद्ध विद्वान और आचार्य मुल्ला मुहम्मदअलीने जब बाबका हाल सुना, तो वे भी जाँच करनेके लिए शीराज़ आये। वहाँ उन्होंने बाबकी लिखी हुई कुछ किताबें देखीं। उनको पढ़कर उन्हें यह इतमीनान हो गया कि अब आगे ज्ञानकी खोज निरर्थक है। अपने शिष्योंसे यह कहकर कि नये मज़हबको अपनाओ, मुल्ला मुहम्मदअली उत्साहके साथ उसके प्रचारमें लग गये।

शीराज़में बाब छै महीने तक रहे। वहाँ ज़ोरोंसे प्लेग शुरू हुआ। सूबेदार हुसेनखान नगर छोड़कर चला गया। बाब शीराज़से इस्फ़हान आये। वहाँके सूबेदार मिनूचिरखानने उनकी इज्ज़त की, और उन्हें रहनेके लिए अच्छा स्थान दिया। बाबके मनोहर व्यक्तित्वका इस सूबेदारपर भी गहरा प्रभाव पड़ा, और वह उनका शुभचिन्तक बन गया। उदारचेता मिनूचिरखानके कारण इस्फ़हानमें बाब अमन और आरामसे रहे।

सन् १८४७ में मिनूचिरखानका देहान्त हो गया। इस्फ़हानका नया सूबेदार मिनूचिरखानके समान बाबका शुभचिन्तक नहीं था। उसने शीघ्र ही हथियारबन्द सिपाहियोंके पहरेमें बाबको ईरानकी राजधानी तेहरान भेज दिया। देश-भरमें बाबकी चर्चा हो रही थी। लोग उन्हें देखनेके लिए उत्सुक थे, मगर सरकार यह नहीं चाहती थी कि जनता बन्दीकी इज्ज़त करे, इसलिए पहरेदारोंको हुक्म दे दिया गया था कि वे शहरोंके भीतरसे न जायँ। फिर भी कई स्थानोंपर लोगोंने बाबका स्वागत किया। खानलिक गाँवमें जो लोग बाबके स्वागतके लिए आये, उनमें मिर्ज़ा हुसेनअली भी थे, जो आगे चलकर बाबियोंके पथ-प्रदर्शक बने और बहाउल्लाके नामसे विख्यात हुए। रास्तेसे बाबने मुहम्मदशाहको एक पत्र लिखा, जिसमें अपने मज़हबी सिद्धान्तोंको समझाते हुए शाहसे भेंट करनेकी प्रार्थना की, पर वज़ीर हाजी मिर्ज़ा अवासीने शाहको यह सुझाया कि बाबके तेहरान आने तथा वहाँ रहनेसे उपद्रव खड़े होनेका डर है, इसलिए यह तय किया गया कि बाबको माकूके क़िलेमें भेज दिया। शाह तेहरानसे कहीं बाहर जा रहे थे, इसलिए उन्होंने बाबको लिखा कि 'अभी मुलाक़ात होना मुमकिन नहीं है। आप कुछ दिनों तक माकूके क़िलेमें आराम करें, फिर मौक़ा आनेपर मैं आपको बुलवा लूँगा।' माकूका क़िला ईरानकी पश्चिमोत्तर सीमाके पास एक दुर्गम पहाड़की चोटीपर बना हुआ था। सशस्त्र सैनिकोंके पहरेमें बाब वहीं भेज दिये गये। रास्तेमें ज़न्ज़न शहरके लोगोंने उनका बड़ा स्वागत किया। बाबने पहरेदारोंके सरदार मुहम्मद बेगपर ऐसी मोहनी डाली कि वह उनका भक्त और सेवक बन गया। इस यात्रामें कितने ही भक्त लुक-छिपकर उनके साथ चलते और मौक़ा पाकर उनसे बातचीत कर लिया करते थे। ज़न्ज़नमें यदि बाब तनिक भी इशारा कर देते, तो लोग बिना किसी कठिनाईके पहरेदारोंको मारकर उन्हें छुड़ा लेते, किन्तु बाबको धोखा अथवा बलप्रयोग इष्ट न था।

९ महीने तक क़िलेदार अलीखानकी देख रेखमें बाब माकूमें रहे। अलीखान भी बाबके व्यक्तित्वके आकर्षणसे न बच सका, जिसने हज़ारों लोगोंको उनका गुलाम बना दिया था, और जिसके जादूसे बचना एक प्रकारसे असम्भव था। अलीखान बाबकी इज्ज़त करता था, और जहाँ तक हो सकता, उनके आरामका ध्यान रखता। कितने बाबी माकू आते, और कभी-कभी उनके दर्शन अथवा उनसे भेंट करनेमें सफल हो जाते। दूरस्थ शिष्योंसे पत्र-व्यवहार चलता। यहाँपर भी बाब ग्रन्थ लिखते रहे। पत्रों तथा ग्रन्थों द्वारा गुप्तरूपसे बाबियोंका पथ-प्रदर्शन होता रहा। इस प्रकार नेताके नज़रबन्द रहनेपर भी बाबियोंका आन्दोलन बढ़ता ही गया। यह देखकर मुल्लाओंने फिर तूफ़ान उठाया। तेहरानसे हुक्म भेजा गया कि बाबपर सख्त पहरा रखो। अलीखानने जवाबमें लिखा कि लोगोंका जोश इतना अधिक है कि उन्हें रोकना मुमकिन नहीं। इसपर वज़ीर हाजी मिर्ज़ा अवासीने आज्ञा दी कि बाब माकूसे हटाकर चिहरीक़के क़िलेमें बन्द किये जायँ। वहाँके क़िलेदार यहयाखानको हुक्म दिया गया कि बाबपर सख्त पहरा रखा जाय। सन् १८४८ के

प्रारम्भमें बाब चिहरीक़ लाये गये। यहाँ उनके जीवनके अन्तिम ढाई वर्ष बीते, लेकिन मुल्लाओंके हज़ार रोकने और विरोध करनेपर भी नये मज़हबका प्रभाव बढ़ता ही गया।

आखिर मुल्लाओंने यह निश्चय किया कि या तो बाबको बहसमें हराकर उन्हें अपना मज़हब छोड़नेके लिए बाध्य किया जाय, या उन्हें धर्मद्रोही साबित कर दण्ड दिया जाय। दोनोंमें ही मज़हबके दमनका सामान मौजूद था। देश-भरके मुल्लाओं और आलिमोंने सरकारको लिखा कि मुबाहसेका इन्तज़ाम किया जाय, जिससे सब बातें तय हो जायँ, और लोगोंको यह मालूम हो जाय कि उन्हें क्या करना चाहिए। मुबाहसेमें जीत किसकी रही, इसका फैसला खुद सरकार करे। अज़रबैज़ान-प्रान्तके तब्रेज़ नगरमें मुबाहसा हुआ। सूबेदार शाहज़ादा नासिरुद्दीन अध्यक्ष बने। बाब चिहरीक़से तब्रेज़ लाये गये। वे अकेले थे। दूसरी तरफ़ बड़े-बड़े नामी शेख, सैयद, मुल्ला, उलमा आदि जमा हुए। उन्होंने बाबसे प्रश्न करना शुरू किया। बाबने कहा कि मैं इमाम महदी हूँ। विपक्षियोंने सबूत माँगे। बाबने धर्म-पुस्तकोंके प्रमाण दिये। उन्होंने बाबसे कहा कि तुम अपनेको पैग़म्बर कहते हो, परन्तु तुम्हारा व्याकरण अशुद्ध है। बाबने कुरानमें भी कई अशुद्धियाँ दिखलाईं, और कहा कि पैग़म्बरोंकी दिव्यवाणी व्याकरणके नियमोंसे परे है। आखिर सभा भंग हो गई। नतीजा कुछ भी नहीं निकला। शाहज़ादा नासिरुद्दीनने किसी ओर फैसला नहीं दिया, पर मुल्लाओंने फतवा निकलवाया कि बाबने इस्लामकी बेइज़्ज़ती की है, उसे बेंतकी सज़ा दी जानी चाहिए। कहते हैं फराशोंने एक सैयदको बेंत मारनेसे इनकार कर दिया, तब मिर्ज़ा अली असगरने बाबको खुद १८ बेंत मारे। इसके बाद वे फिर चिहरीक़ वापस भेज दिये गये।

मुल्ला परंपरागत मज़हबका पक्ष समर्थन करते, बाबी तर्क द्वारा उसका खण्डन करते; समझौता हो ही कैसे सकता था? आखिरकार देश-भरमें मुल्ला-मौलवियोंने ऐलान कर दिया कि बाबी मज़हब इस्लाम और सरकार दोनोंका दुश्मन है, इसलिए उसका दमन करना सब लोगोंका फ़र्ज़ है। उन्होंने लोगोंको भड़काया कि बाब इस्लामकी बुनियादको ढानेवाला है, इसलिए बाबियोंका माल मुसलमानोंके लिए हलाल और उनका ख़ून बहाना जायज़ है, पर बादशाह मुहम्मदशाहने इस अंधी और ख़ूनी नीतिसे काम नहीं लिया। उन्होंने कहा कि जब तक बाबी लोग प्रजाकी भलाई और अमन-चैनके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते, तब तक सरकारको उनके मज़हबी विचारोंमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। पर बादशाह गठियाके शिकार बन गये थे, और सारा राजकाज वज़ीरोंके हाथमें चला गया था। ये लोग मुल्लाओंकी तरफ़ थे। बाबियोंने जब अपने प्यारे पैग़म्बरकी सख्त क़ैद, बेइज़्ज़ती और सज़ाकी कहानियाँ सुनीं, तो वे भी गरम हो गये। अब बाबपर इतना सख्त पहरा था कि भक्तोंको उनसे मिलना और पत्र-व्यवहार करना बहुत मुश्किल हो गया था। मुल्लाओंकी दमन-नीतिका सामना बाबियोंने बड़े उत्साहके साथ किया। फिर भी जब तक मुहम्मदशाह जीवित रहे, तब तक सरकारने खुलेआम बाबियोंका दमन नहीं किया। दुर्भाग्यवश अक्टूबर १८४८ में मुहम्मदशाहकी मृत्यु हो गई, और भीतर ही-भीतर सुलगती हुई जिस आगको उन्होंने इतनी बुद्धिमानीसे दबाये रखनेकी कोशिश की थी, वह विकराल रूप धारणकर प्रज्ज्वलित हो उठी। नासिरुद्दीन बादशाह हुआ। नया वज़ीर मिर्ज़ा तक़ीखान बड़ा निर्दय था और ख़ूनी नीतिके पक्षमें था। शाह अभी नौजवान थे, इसलिए वज़ीरोंको मनमानी करनेका मौक़ा मिला। मुहम्मदशाहकी नीतिका अन्त हुआ। बाबियोंके विरुद्ध जिहाद बोल दिया गया। सरकारने मुल्लाओंकी मदद की।

ईरानी सरकार एवं मुल्लाओंकी संगठित शक्तिके साथ बाबियोंकी जो लड़ाई अब शुरू हुई उसकी समता इतिहासमें कम मिलती है। आत्म-रक्षाकी इस कठिन अग्नि-परीक्षामें बाबियोंने अद्भुत वीरता, दृढ़ता, कष्टसहन तथा साहसका परिचय दिया। बाबियोंके आत्म-बलिदानको देखकर कितने ही विद्वानोंने उनके मज़हबका अध्ययन प्रारम्भ किया, और बहुतसे लोगोंने उसे स्वीकार भी कर लिया।

मज़ान्दरान सूबेके मज़हबी नेता सईदुलउलमाकी मातहतीमें बरफ़रोश नगरके लोगोंने बाबियोंपर हमला किया। छै-सात बाबी मार डाले गये। उनके नेता मुल्लाहुसेनने अज़ान पुकारनेका हुक्म दिया। बाबी लोग भी हथियार लेकर इकट्ठे हो गये। यह देखकर सईदुलउलमाने बाबियोंसे इस शर्तपर समझौता कर लिया कि वे लोग मज़ान्दरान छोड़कर चले जायँ, किन्तु जब बाबी लोग शहरसे बाहर निकल गये और जंगलों तथा रास्तोंमें तितर-बितर हो गये, उस समय मुसलमानोंने उनपर धावा बोल दिया। मुल्ला

हुसेनने किसी तरह अपने बिखरे हुए साथियोंको जमा किया और शेख तबरसीके मक़बरेमें डेरा डाला। बाबियोंके प्रसिद्ध नेता मिर्ज़ा मुहम्मदअली बरफरोशी भी, जो पहले बाबके सहपाठी थे और बादमें उनके प्रमुख शिष्य बन गये थे, कुछ साथियोंको लेकर वहाँ पहुँच गये। इस तरह वहाँ लगभग तीन सौ बाबी जमा हो गये। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी एवं विद्वान थे, जिन्होंने तर्कके सिवा और किसी शस्त्रसे लड़ना सीखा ही नहीं था। फिर भी जोश और बहादुरीके साथ वे दुश्मनोंसे लोहा लेनेको तैयार हो गये। इन थोड़ेसे बाबियोंके विरुद्ध ईरानकी मुसलमान सरकारने अपनी फौज़ भेजी। मुल्लाओं द्वारा उत्साहित और लोग भी जिहादमें शामिल होकर पुण्य लूटनेकी इच्छासे वहाँ पहुँच गये। बाबियोंके पास न तो अच्छे हथियार थे, और न उन्हें चलानेकी आदत। उनके शत्रुओंके पास बम, तोपें तथा बन्दूकें थीं। फिर भी बाबियोंने हिम्मत न हारी। मज़हबके लिए वे ख़ूनकी नदियोंमें तैरनेको राज़ी थे। उन्होंने मज़बूत क़िलाबन्दी की, और ६ महीने तक (अक्टूबर १८४८ से जुलाई १८४६ तक) शत्रुओंको रोके रहे। अफ़ग़ानी और तुर्की फौजके साथ पहले अक़ा अबुल्ला बाबियोंके खिलाफ भेजा गया। मुल्ला हुसेनके नेतृत्वमें बाबियोंने उसपर धावा बोल दिया। अबुल्ला मारा गया, और उसके सिपाही भाग गये। नाराज़ होकर शाह नासिरुद्दीनने अब शाहज़ादा महदीकुलीखानको भेजा। मुल्ला हुसेनने इनको भी हरा दिया। इस युद्धमें हाजी मुहम्मदअली घायल हुए। तीसरी फौज़ अब्बास-कुलीखानकी मातहतीमें शेख तबरसीको भेजी गई। इसे भी बाबियोंने हरा दिया, परन्तु इस बार उनके यशस्वी नेता मुल्ला हुसेनने वीरगति पाई। बाबियोंका जोश कम नहीं हुआ। अब सरदार सुलेमानखान तोपखानेके साथ तेहरानसे आया। साथ-ही-साथ शाह ईरानने यह ऐलान कर दिया कि जो बाबी हथियार रख देगा, उसे माफ़ी दी जायगी। थोड़ेसे बाबी हथियार रखकर शत्रुओंसे जा मिले। जो रह गये, उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, किन्तु उनकी रसद कम होने लगी। घास-पत्ते तथा मरे घोड़ोंका मांस खाने तककी नौबत आ पहुँची। यहाँ तोपें क़िलेबन्दीको तोड़ रही थीं। सम्मानपूर्वक सन्धि करनेकी बात छिड़ी। सिपहसालार शाहज़ादा मिर्ज़ा कुलीखानने लिखकर और अपनी मुहर लगाकर यह वादा किया कि मैं क़ुरानकी कसम खाकर कहता हूँ कि यदि तुम लोग क़िला छोड़कर अपने-अपने घर लौट जाओ, तो हम तुम्हें नहीं सतावेंगे, अर्थात् तुमपर हमला नहीं करेंगे। वीर बाबी शाहज़ादेकी बातपर भरोसा रखकर क़िलेसे बाहर निकले और उसकी छावनीमें पहुँचे। वहाँ उन्हें भोजन परोसा गया। भूखे-थके बाबी लोग हथियार अलग रखकर खाना खा रहे थे कि सरकारी सिपाहियोंने उनपर धावा बोल दिया, और सबको क़त्ल कर डाला। बाबके प्रिय मित्र और शिष्य मुल्ला मुहम्मदअली, जिन्हें उन्होंने जनाब-ए-क़ुद्दुस (परमपवित्रात्मा) का खिताब दिया था, इस क़त्लेआममें शामिल नहीं किये गये। ४०० मुद्राएँ लेकर शाहज़ादेने उन्हें सईदुलउलमाको बेच दिया। वे बरफरोश ले जाये गये। वहाँ सईदुलउलमाने ख़ुद सब लोगोंके सामने उनका बध किया। पहले उसने उनके कान काटे, फिर फरसेसे वारकर उनके प्राण लिये। इसके बाद सिर काटकर उनके शरीरमें आग लगा दी। किसी-किसी लेखकका कहना है कि उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिये गये, परन्तु बाबी भक्तोंने उन्हें चुपचाप इकट्ठा कर दफ़ना दिया। शेखतबरसीका घेरा और क़त्लेआम बाबी इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उस स्थानको बाबी लोग अपना कर्बला कहते और तीर्थ मानते हैं। शेख तबरसीमें २१० बाबी मारे गये। मज़ान्दरानके सूबेमें सब मिलाकर १५०० बाबी शहीद हुए।

इसी प्रकार ज़न्ज़नमें सरकारी फौजने बाबियोंपर हमला किया। मुजतहिद मुल्ला मुहम्मदअली यहाँके बाबियोंके नेता थे। यह प्रसिद्ध आचार्य किस प्रकार बाबका भक्त बना, यह हम बतला चुके हैं। इनके प्रयत्नसे कितने शिक्षित लोग नये मज़हबमें दीक्षित हुए। शाही फौजोंने बाबियोंको घेर लिया। मुट्ठी-भर बाबी इन बहुसंख्यक सैनिकोंसे ऐसी बहादुरीसे लड़ते रहे कि देखनेवाले दंग रह गये। आखिर वहाँ भी शेख तबरसीकी कहानी दुहराई गई। शाही सिपहसालारने क़ुरानकी क़सम खाकर प्रतिज्ञा की कि यदि बाबी हथियार रख देंगे, तो उनपर हाथ नहीं उठाया जायगा। किन्तु जब उन्होंने हथियार रख दिये, तब वे क़त्लआम कर डाले गये।

इस प्रकार कई स्थानोंपर बाबियों तथा शाही फौजोंमें मुठभेड़ हुई। थोड़ेसे बाबियोंने ईरानकी सरकारी सारी

ताक़तको हिला दिया। बाबी इतिहासकार लिखता है कि शेख़ तबरसीके बाबी वीर स्वच्छ सफ़ेद वस्त्र धारणकर 'या साहिबुज़-ज़मां' (हे इस युगके स्वामी) के नारे लगाते हुए लड़नेको निकलते थे। आख़िरकार छल-बलसे बाबियोंकी हार हुई, और उनका संहार किया गया। हज़ारों बाबी मार डाले गये, उनकी सम्पत्ति लूट ली गई तथा उनकी स्त्रियों और बच्चोंपर वीभत्स अत्याचार किये गये। दो साल तक यह रक्तपात जारी रहा। फल क्या हुआ? Traveller's Narrative में लिखा है—

"इन दो वर्षोंमें (१८४९-५०) समस्त ईरानमें बाबियोंपर वज्रपात हुआ। बाबी होनेका तनिक भी सन्देह होते ही लोग जहाँ मिलते, वहीं मार डाले जाते थे। ४०००से अधिक लोग मार डाले गये। वज़ीर मिर्ज़ा तक़ीने सोचा था कि इससे बाबी तितर-बितर हो जायँगे, अथवा उनकी हस्ती मिट जायगी, परन्तु नतीजा बिलकुल उल्टा हुआ। बाबियोंकी संख्या बढ़ने लगी। पहले तो यह मज़हब केवल ईरानमें ही सीमित था, बादमें सारे संसारमें भी फैलने लगा। त्रास और व्यथा धीरता और दृढ़तामें परिणत हो गई। दुःसह दुःख और दण्डका फल यह हुआ कि लोग नये मज़हबके प्रति आकर्षित हुए, और उसे अपनाने लगे। इन घटनाओंने लोगोंपर असर डाला। असरके कारण लोग मज़हबकी बातोंका अन्वेषण करने लगे। अन्वेषणके फलस्वरूप उसके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ी। वज़ीरकी इस विवेकहीन नीतिने इस भवनको और भी दृढ़ और सुरक्षित बना दिया— उसकी नींवको और भी पक्का और मज़बूत कर दिया। पहले तो सब लोग इसे (नये मज़हबको) साधारण चीज़ समझते थे, बादमें उसने उनकी दृष्टिमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर लिया।"

पाशविक बलपर भरोसा रखनेवाली ईरान-सरकारने समझा कि दमन-नीतिको ढीला करनेसे बाबी आन्दोलन फिरसे प्रबल हो उठेगा। इस कारण आगको पूरी तरह बुझानेकी आशासे तथा बचे बाबियोंके तथा उनसे सहानुभूति रखनेवालोंके दिलोंपर आतंक जमानेके लिए ईरान-सरकारने यह क्रूर निश्चय किया कि नये मज़हबके जन्मदाता बाबका जनसाधारणके सामने बध किया जाय। हुक्म दिया गया कि बाब तब्रेज़ भेजे जायँ। वज़ीर मिर्ज़ा तक़ीख़ानने तब्रेज़में अपने भाईको लिखा कि 'वहाँके नामी आलिमोंसे फ़तवा ले लो कि बाब धर्मद्रोही है, उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए। फिर अर्मियाकी ईसाई फौजको बुलाकर बाबको सब लोगोंके सामने लटकाकर सिपाहियोंको गोली चलानेका हुक्म दे दो।' चिहरीक़से बाब तब्रेज़ लाये गये। रास्तेमें उन्हें सरकारी अफ़सरों, मुल्लाओं तथा आम लोगोंके हाथों तरह-तरहके दुःख और अपमान सहन करने पड़े। न्यायका नाटक भी हो गया। मुल्ला मुर्तज़ाकुली, हाजी मिर्ज़ा बाक़िर तथा मुल्ला मुहम्मदने बाबको इस्लामके विरुद्ध विद्रोह करनेका अपराधी ठहराया, और प्राणदण्डकी आज्ञा दी। इससे बाबको तनिक भी दुःख और आश्चर्य न हुआ। न दुःखमें, न अपमानमें—कभी भी उनके हृदयमें दुश्मनोंके प्रति क्रोध उत्पन्न न हुआ। न मुँहसे आह निकली, न दुर्वचन। चिहरीक़की कष्टप्रद क़ैदमें वे दुर्बल हो गये थे, और चिन्ताकी कुछ रेखाएँ उनके सहज सुन्दर गम्भीर मुखपर अंकित हो गई थीं। बध-आज्ञाके बाद तीन दिन तक वे तब्रेज़के क़ैदख़ानेमें रखे गये, और वहाँ परमात्माके भजन-चिन्तनमें लीन रहे।

बाबके साथ दो और बाबियोंको मृत्यु-दण्डकी आज्ञा दी गई थी। एकका नाम था आक़ा सैयदहुसेन, जो चिहरीक़में बाबके साथ क़ैदी रहा था। दूसरा तब्रेज़का नवयुवक सौदागर था मुहम्मदअली। इन दोनोंसे कहा गया कि यदि तुम बाबी मज़हब छोड़ दो, तो तुम्हें माफ़ी दे दी जायगी। बाबी इतिहासकार लिखता है कि बाब अपने अनुयायियोंके पास आवश्यक सन्देश और समाचार भेजना चाहते थे, और यह इन दो साथियोंमें से एकके द्वारा ही सम्भव था। सैयद हुसेनको उन्होंने कितने ही धार्मिक सिद्धान्त समझाये थे, जिनका भक्तों तक पहुँचना ज़रूरी था, इसलिए बाबने सैयद हुसेनको आज्ञा दी कि तुम अपनी जान बचाओ, और भक्तों तक मेरे अन्तिम सन्देशको पहुँचाकर अपना कर्तव्य पूरा करो। सैयद हुसेनने इसे शिरोधार्य किया, और बाब तथा बाबी मज़हबको, जिसके लिए उसने बहुत त्याग किया था और अनेक यातनाएँ सही थीं, त्याग देना स्वीकार किया। वह छोड़ दिया गया। मुसलमान इतिहासकार कहते हैं कि उसने मौतके डरसे ऐसा किया। सत्यता बाबियोंके कथनमें स्पष्ट है, क्योंकि जिस मृत्युके डरसे सैयद हुसेनने जिस मज़हबको छोड़नेका बहाना सन् १८५० में तब्रेज़में किया था, उसी मृत्युको, उसी मज़हबके वास्ते, उसने १८५२ में तेहरानमें हँसते-हँसते गले लगाया।

९ जुलाई १८५० में बाबकी शहादतकी तारीख थी। मृत्यु-दण्डका दृश्य देखनेके लिए हज़ारों लोग जमा हुए। क़ैदखानेके बाहर सीढ़ीके खम्भेमें एक मेख गाड़ी गई, जिससे दो रस्सियाँ लटकाई गईं। बध-स्थलपर भी कोशिश की गई कि युवक मुहम्मदअली, अपने साथीके समान, बाबका परित्यागकर अपने प्राण बचा ले। उसकी युवती स्त्री और नन्हें-नन्हें बच्चे उसके सामने लाये गये। उन्होंने रो-रोकर उससे विनती की कि हमारे लिए अपनी जान बचाओ, किन्तु मुहम्मदअली विचलित नहीं हुआ। तब सिपाहियोंने एक रस्सीसे बाबको और दूसरीसे मुहम्मदअलीको बाँधकर लटका दिया। बाबके मुखमंडलपर वही शान्ति, वही तेज और मधुरता विराज रही थी। उनके जीवनके इस अन्तिम दृश्यमें उनकी इस भव्यमूर्तिको देखकर कितने ही लोगोंको उनमें श्रद्धा और विश्वास हो गया। शिष्यका मस्तक गुरुकी छातीपर था। लोगोंने मुहम्मदअलीको यह कहते सुना— "गुरुदेव, आप मुझसे सन्तुष्ट तो हैं ?" ईसाई फ़ौजकी तीन टुकड़ियाँ की गईं। सबोंने गोलियाँ चलाईं। धुआँ उठा, जिससे क्षण-भरके लिए बाब और मुहम्मदअली दर्शकोंको न दिखलाई दिये। धुआँ दूर होनेपर लोग क्या देखते हैं कि शिष्यके शरीरसे बहुतसी गोलियाँ आरपार हो गई हैं, और उसकी प्राणहीन देह लटक रही है, परन्तु बाबका पता नहीं। लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। सब लोग—सिपाही तक—घबरा गये। बात यह हुई कि गोलियाँ बाबको नहीं लगीं, परन्तु उनसे वह रस्सी कट गई, जिससे वे बँधे थे। बन्धनसे मुक्त हो, वे अपनी क़ैदकोठरीमें पहुँच गये थे। सहसा एक सैनिकने उन्हें देख लिया। वे पकड़कर पहलेकी तरह बाँध दिये गये, पर पहलेवाले सिपाहियोंने गोली चलानेसे इनकार कर दिया। उसी वक्त दूसरे सिपाही बुलाये गये। उन्होंने गोलियाँ चलाईं। वे शीराज़के नौजवान पैग़म्बरकी सुन्दर देहको विदीर्णकर आरपार हो गईं। शहादतके समय उनकी अवस्था तीस वर्षसे भी कम थी। लोगोंने मृत देह तकका अपमान किया। वे उसे सड़कोंपर से घसीटते हुए शहरके बाहर ले गये, और कुत्ते तथा सियारोंसे खाये जानेके लिए वहाँ फेंक दिया, पर दूसरे दिन रातको भक्तगण चुपचाप उसे उठा ले गये, और सफ़ेद रेशममें लपेटकर तेहरान भेज दिया। बाबके उत्तराधिकारी मिर्ज़ा यहयाके हुक्मसे वह इमाम-ज़ाद-ए-मासूम नामक एक छोटेसे मक़बरेमें दफ़न कर दिया गया।

बाबके बाद अपनेको पैग़म्बर घोषित करनेवाले मिर्ज़ा हुसेनअली (हज़रत बहाउल्ला) ने बाबके विचारोंको परिवर्द्धित और संगठितकर नये मज़हबके उद्देश्योंको निर्धारित किया, और उनके सन्देशको दूर-दूर तक पहुँचाया। बहाई (बहाउल्लाको पथ-प्रदर्शक माननेवाले बाबी) लोगोंके कथनानुसार उन्होंने निम्न-लिखित उपदेश दिये :—

(१) मनुष्यमात्रकी एकता, (२) सत्यकी स्वतंत्र खोज, (३) सब धर्मोंका आधार एक है, (४) धर्मको एकताका कारण बनाना चाहिए, (५) धर्मको बुद्धि, विवेक और विज्ञानसे अनुरूपता रखना चाहिए, (६) स्त्री-पुरुषको समान अधिकार, (७) सब प्रकारके पक्षपातको दूर करना चाहिए, (८) विश्व-मैत्री, (९) विश्व-शिक्षा, (१०) विश्वके लिए एक ही भाषा, (११) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और (१२) आर्थिक समस्याका आध्यात्मिक समाधान।

ये उच्च उदार आदर्श हैं, और कौन कह सकता है कि भविष्य उनके साथ नहीं है ? बहाउल्लाके उदयके साथ बाबियोंका इतिहास बहाई-इतिहासका नाम ग्रहण कर लेता है। आजकल नये मज़हबके अनुयायियोंकी संख्या संसारमें लगभग २० लाख है। विदेशोंमें भी उनका आन्दोलन फैल रहा है—खासकर अमेरिकामें उनका बहुत ज़ोर है।

बाब सुधार-आन्दोलनके प्रवर्त्तक थे। उनके अनुयायी सदैव सुधारोंके पक्षमें रहे, परन्तु राजनीतिक दलबन्दी उन्होंने नहीं की। समयने पलटा खाया। लोगोंने आँखें खोलीं, और आधुनिक युगकी आवश्यकताको देखा। ईरानमें आज महान परिवर्तन हो रहे हैं। देश नवयुगके द्वारपर खड़ा है। बाबके बतलाये हुए कितने ही सुधारोंका आज लोग उत्साहके साथ समर्थन कर रहे हैं।

———

एक भैंसकी कहानी

श्री कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी

जाड़ेका एक प्रातःकाल था। मैं अपने मालिकको दूध दे चुकी थी, और बाहर घाममें बैठी मज़ेमें रौंद करती हुई, संसार-क्षेत्रकी समस्याओंपर विचार कर रही थी। मेरी बछिया मुझसे दूरपर प्रसन्नतासे इधर-उधर नाच-कूद रही थी। मेरे छोटे मालिक देवेन्द्रकुमार छुट्टियोंमें घरपर आये हुए थे। वे अपने मित्र और पड़ोसी राजारामके साथ बैठकर गप्पें हाँक रहे थे। उनकी बातोंका विषय मेरी समझसे बाहर था, लेकिन एक बार जब राजारामने कहा—"अच्छा, तुम बड़े शास्त्री हो, तो पहले यह बतलाओ कि अक़्ल बड़ी है कि भैंस?" तब तो मैं भी उठके खड़ी हो गई, और ध्यानपूर्वक उन लोगोंकी बातचीत सुनने लगी।

बुद्धिमान देवेन्द्रनाथ बुद्धिको बड़ी बतला रहा था, और राजाराम 'जब तक भैंसका दूध न मिलेगा, बुद्धि किस प्रकार तेज़ होगी' इस प्रमाणको पेश कर रहा था। मैं मन-ही-मन हँस रही थी कि ये बालक कैसे मूर्ख हैं, जो बड़े-छोटेका सवाल बहस-मुबाहिसेसे हल करना चाहते हैं; अरे, यह तो अपेक्षाकृत बातें है; जिसकी अक़्ल छोटी है, उसके लिए भैंस ही क्या, एक कुत्ता और चुहिया भी बड़ी है, किन्तु जिन्होंने अपनी अक़्लको तेज़ बना लिया है, उनके लिए संसारकी सभी चीज़ें छोटी हैं—वे तो अक़्लके जहाज़पर चढ़के आकाशमें घूमा करते हैं, और चाँद-सूरज तकके पेटका हाल जान लेते हैं।

मेरे मालिक बाबू सुरेन्द्रनाथ एक साधारण स्थितिके गृहस्थ थे। उन्हें हम लोगोंसे बड़ा प्रेम था। सुबह उठनेके साथ वे सबसे पहले हम लोगोंसे मिलते थे, अपने सामने हम लोगोंको खिलाते थे, और गरमीमें हमारे पानीकी और बरसातमें हमारे घरोंकी निरन्तर देखरेख करते थे। इसी कारण हम सब भी बड़ी खुशी-खुशी उनको दूध दिया करती थीं। कभी-कभी मेरे नीचे आकर तो ग्वालेका बर्तन ही छोटा पड़ जाता था, तब वे प्रसन्न होकर दूसरा बर्तन लानेका हुक्म देते हुए कहते थे, आज तो हमारी भूरीने कमाल कर दिया। फिर वे मेरे पास आकर मेरी पीठ थप-थपाके मुझे शाबासी देते। बस, मैं निहाल हो जाती। मेरे मालिककी अच्छी ज़मींदारी थी, सुन्दर बाग़-बग़ीचे थे, बड़ी खेती-पाती थी, कितने ही नौकर-चाकर थे, और बहुतसे गाय, बैल, घोड़े बहेलियाँ थीं। उनका गाँवमें खूब मान था, क्योंकि वे सीधे स्वभावके थे और सबसे मिल-जुलकर रहते थे। उनमें बातका बतंगड़ बनानेकी आदत नहीं थी। वे मौक़ेपर सबसे थोड़ा-बहुत दब जानेको हर घड़ी तैयार रहते थे। यही कारण था कि दूसरे लोग उनका इस क़दर मान करते थे और हमेशा उनसे दबते रहते थे।

राजारामके पिता गुरुरामसे मेरे मालिककी बहुत मित्रता थी। दोनों पड़ोसी थे और बर्तावसे एक आत्माके दो शरीर मालूम देते थे। कितने ही बार मैंने देखा था कि मेरा दूध ग्वालेके हाथसे लेकर मेरे मालिकने सबका सब गुरुरामको दे दिया था। मुझे ऐसे मौक़ेपर क्रोध हो आता था कि आज मैं स्वामी-सेवासे विमुख रह गई, किन्तु जब वे मेरी ओर देखकर, कदाचित मेरे मनोभाव ताड़कर, हँसकर अपने मित्रसे कहते—"देखो, तुमने अपनी कारीका दूध तो पिया ही है, आज भूरीका भी देखो। क्या स्वाद देता है।" तब तो मैं फूलकर कुप्पा हो जाती।

दोनों मित्रोंने अपने समवयस्क पुत्रोंको एक साथ खूब पढ़ाया-लिखाया था। गाँवके वे ही दो लड़के थे, जो गाँवके बाहर महीनों तक पढ़नेके लिए बने रहते थे, और जब कभी बहुत दिनों बाद दो-चार दिनको आते भी थे तो, किताबोंका बड़ा गट्ठर साथमें ले आते थे। गाँववाले उनकी पढ़ाई देखकर दंग रह जाते थे और अपनी-अपनी कल्पनाकी दौड़के अनुसार उनकी भविष्यकी आशाएँ बाँधा करते थे। नन्हें मिसुरने एक बार मेरे मालिकसे पूछा था कि अब देवेन्द्रके जज या डिप्टी बननेमें के दर्जे बाक़ी रह गये हैं, और मेरा नौकर गंगरमा एक बार अपने साथी घनुकासे चिलम पीते समय कह रहा था, यह दोनों लड़के खूब पढ़ गये हैं, ज़रूर किसी दिन दरोगा या कोतवाल बन जायँगे। आख़िर मेरे नौकरकी बात ही सच्ची निकली। मेरे मालिकके यहाँ एक दिन मिठाई बँटनेपर मुझे ज्ञात हुआ कि देवेन्द्र सचमुच दरोगा बन गये हैं, और उनके मित्र राजाराम मुख़्तार हो गये हैं।

(२)

एक जाड़ेकी रातकी बात है। मैं अपने झोपड़ेके भीतर सोनेकी तैयारी कर रही थी। मेरे पासमें ही एक कम्बलपर एकदम चार साधु लेटे हुए थे। वहीं मेरा नौकर गंगरमा भी अपनी दोहर ओढ़े सिकुड़ा-सिमटा लेट रहा था। जाड़ेके मारे किसीको नींद न आ रही थी, और कदाचित इसीलिए साधू बाबा बंगाले और सिंहलद्वीपकी कहानी कह रहे थे। गंगरमा बड़े आश्चर्यके साथ वहाँके काठके घोड़े, ख़ूबसूरत राजकुमारी, तथा उड़नेवाले वीरोंकी बात सुन रहा था।

जाड़ेने और भी ज़ोर किया। मेरे नौकरने मेरे पास आकर पुआल जलाया। मैं भी आराममें आकर थोड़ीसी आगकी ओरको सरक गई, लेकिन बाबा लोग अपनी जगहसे टस-से-मस न हुए। इसपर मेरे नौकरने ताज्जुबके साथ उनसे पूछा—"बाबा, क्या तुम लोगोंको जाड़ा नहीं लगता? भला, एक कम्बलमें तुम चार जने किस प्रकार गुजर कर लेते हो?" एक बाबाने हँसकर कहा—"बेटा, हम चार क्या, चार और भी आ जायँ, तो इसी कम्बलमें समा जायँगे। जगह तो दिलमें होनी चाहिए। क्या तुमने यह कहावत नहीं सुनी है कि एक कम्बलमें दस साधु रह सकते हैं, किन्तु एक देशमें दो राजाओंका निर्वाह नहीं होता।"

मेरा नौकर बाबाकी बातका ऐसा क़ायल हुआ कि वह तो एकदम झूमने लगा, और कहने लगा—"बात तो बाबा आपने बिलकुल सची कही। असलमें दिलमें ही जगह होनी चाहिए। यहींपर न देख लो! अभी बड़े मालिक और गुरुरामके सामने उन लोगोंकी कैसी पटती थी, किस प्रकार दोनों दो भाइयोंके समान रहते थे, लेकिन उनकी आँखें बन्द होते ही दोनोंके बेटे एक दूसरेके कट्टर दुश्मन हो रहे हैं।"

एक बाबाने उचककर पूछा—"ऐं बेटा, तो उसकी कोई वजह भी तो होगी।"

"वजह! वजह क्या! वही बात, जो आपने अभी कही। अब दोनोंके पास पैसा ज़रा ज्यादा हो गया है, इसीलिए ईर्ष्या भी ज़ोर पकड़ रही है। पहलेकी दिलोंकी गुंजाइश ग़रीबीके साथ विदा हो गई। अब तो दोनोंको बड़े मकान चाहिए, बड़े बाग़ चाहिए, बड़ी-बड़ी ज़मींदारियां चाहिए। बस, इसी बड़ाबड़ीमें दोनोंके दिल फटते जाते हैं।"

"लेकिन यह तो बहुत बुरी बात है। पड़ोसी और इस तरहका वैर भाव?"

"लेकिन बाबा, ये बातें अच्छी हैं या बुरी, इसको उनको कौन समझाये? उन दोनोंको तो अपने-अपने धन और विद्वत्ताका घमंड है। एक दरोग़ा हैं, तो दूसरे वकील। दोनोंने मुफ्तमें रक़में मारी होंगी, सो बाबा, इसी तरह जायँगी। गाँववाले भी ताली पीट-पीटके तमाशा देख रहे हैं।"

मुझे यह दुश्मनीकी बात सुनकर बड़ा रंज हुआ। अपने बल या वैभवके घमंडमें किसीपर ज़ोर-ज़ुल्म कर गुजरनेसे अपने दिलपर क्या बीतती है, यह मैं भुगत चुकी थी। मैं जेठ-वैशाखमें एक बार तालाब किनारे बची हुई थोड़ी हरी-हरी दूब खा रही थी कि एक भूखी गाय भी उधरसे आकर उसपर मुँह चलानेकी कोशिश करने लगी। मेरे सामने और ऐसा दुःसाहस! मैंने क्रोधमें भरकर उसे सींगोंपर उठाकर तालाबमें पटक दिया। गिरनेको वह मेरे सामने भला ठहर ही क्या सकती थी, किन्तु गिरनेके बाद जब उसने कातर-दृष्टि मेरे अभिमान-भरे चेहरेपर डाली थी, तब तो मैं बिलकुल कट गई थी। उसके आँखोंके गुप्त भावने कि तुमने मुझे व्यर्थका कष्ट दिया है, मेरे हृदयको टुकड़े-टुकड़े कर दिया। मेरा ही मन टूटने लगा। मुझे अपने ऊपर क्रोध आने लगा। मेरा शरीर शिथिल हो गया, और दो दिन तक मेरे दाँतोंतले तिनका नहीं गया। बस, कहीं ऐसे ही अभिमानमें ऊबकर मेरे मालिक भी कोई वैसा ही काम कर बैठेंगे, जिससे सिवा उम्र भर पछतानेके और कुछ हाथ न आयगा।

(३)

गाँवके बाहर, तालाबके किनारे, मेरे मालिकका एक खेत था, और उससे लगा हुआ बाबू राजारामका बाग़ था। मैंने इस बाग़में घूम-घूमकर वर्षों हरी-हरी घास, आमोंके छिलके और अधकचरे अमरूद खाये थे, लेकिन ये बातें तबकी हैं, जब बाबू गुरुराम मुझे अपने बाग़में हवाखोरी करते देखकर भी थपथपा दिया करते थे। जबसे इन दोनों घरोंमें दुश्मनी हुई थी, मैंने उस बाग़की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा,

इस डरसे कि कहीं मन-ही-मन सुलगनेवाली इस आगके लिए मैं ही चिनगारी न बन जाऊँ।

उस दिन भी मैं अपने खेतके किनारेकी हरी-हरी घास खा रही थी। मेरा नौकर तालाबमें मल-मलकर नहा रहा था। उसी समय राजाराम बाबू अपने बाग़में गये, और उसके थोड़ी ही देर पीछे उनका एक नौकर आकर मुझे बाग़में लिवा ले गया। मैंने मन-ही-मन खुश होकर सोचा, "वकील साहबको बचपनमें पिये मेरे दूधकी आज याद हो आई है, इसलिए प्यार करनेको बुला रहे हैं। मैंने भी दिलमें सोचा, मैं भी प्रेमपूर्वक उनका सत्कार स्वीकार करके बतला दूँगी कि यद्यपि तुम दोनों होशियार होकर लड़ने लगे हो, पर मेरे दिलमें तो तुम्हारे प्रति वैसा ही प्रेम-भाव बना हुआ है। इसीलिए मैं जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाती बाग़के भीतर चली गई। राजारामने मेरी ओर देखकर मुस्कराकर कहा—"बाँध दे इसको। अब दरोग़ा साहबकी दरोग़ाई ज़रा देरमें निकाले देता हूँ।"

मेरा इस प्रकार स्वागत होगा, यह मैंने कभी न सोचा था। अब तो मैं वहाँ आनेके कारण पछताने लगी। गाँवके परले सिरेके फ़सादी नन्हें मिसुर वहीं बैठे थे। मैं समझ गई कि मामला आज कुछ टेढ़ा है। 'हाय! अन्तको मैं ही चिनगारी बनी'—मैं इसी विचारमें परेशान हो रही थी कि गंगरमाने तालाबसे आकर मुझे अपने स्थानपर न पाकर 'भूरी' 'भूरी' करके मुझे बुलाना शुरू कर दिया। मैंने भी तुरन्त ऊँची डकारके साथ अपने वहाँ क़ैद होनेकी ख़बर उसके कानों तक पहुँचाई। गंगरमाने बग़ीचेके एक कोनेमें से झाँककर मुझे वकील साहबके कड़े पहरेमें खड़े देखा, तो उसके नीचेकी धरती खसकने लगी। इसी समय वकील साहबने कहा—"सरऊ! खूब मेरे बग़ीचेको अपने बापका समझके बरबाद करवाते हो। अब भई! भूरी ऐसे नहीं आनेकी। अपने मालिकको भी बुला ले। वे भी आके ज़ोर अजमा लें।"

गंगरमाने गिड़गिड़ाकर कहा—"हुज़ूर, मेरे लिए जैसे मालिक वे हैं, वैसे आप। आप लोगोंके बीचमें मैं ग़रीब नाहक पिस जाऊँगा, इसलिए इस बार तो भूरीको छोड़ दीजिए।"

इतना कहकर बिना मंजूरीके लिए इन्तज़ार किये, उसने अपना एक पैर बग़ीचेमें रखा ही था कि वकील साहबने गरजकर कहा—मैकुआ, देखता क्या है! तोड़ दे पैर बदमाशके।"

ग़रीब गंगरमा बिना पीछे देखे सिरपर पैर रखके भागा। मैं वहाँसे बहुत देर पीछे पूरे बारह आदमियोंके हथियारबन्द पहरेमें वकील साहबके घर लाई गई। पहले तो वकील साहबका विचार मुझे काँजीहौस भेजकर मेरे ऊपर डाकेजनीका इलज़ाम लगानेका था, लेकिन जब होशियार दरोग़ाजीने गंगरमासे सब हाल मालूम करके अपने हाथों कड़ी मरम्मतके द्वारा उस ग़रीबके हाथ-पैर तोड़कर थानेमें यह रिपोर्ट लिखवानेको अपने आदमी भेज दिये कि राजारामने मेरे आदमीको मारकर मेरी भैंस छीन ली है, तब तो वकील साहबने लड़ाईका पहलू बदल दिया। वे बड़ी देर तक चश्मेमें से घूर-घूरकर इधर-उधर और मेरी ओर देखते हुए कुछ सोचते-विचारते रहे। तदनन्तर एकदम उछलकर बोले—"बस, मिसुरजी, मैंने तरकीब सोच ली, मैं भी भूरीको घर ले चलता हूँ, और यह साबित कर दूँगा कि यह भैंस ही मेरी है।"

मिसुरजी 'वाह-वाह' करके वकील साहबकी पीठपर थप-थपाकर कहने लगे—"बस, इलम इसी दिनके लिए होता है। कैसा पेच सोचा है कि अपने ही दाँवपर वे चारों खाने चित्त गिर पड़ेंगे। बस, गवाहोंकी तुम फ़िक्र मत करना।"

मैं और मेरे जैसे चार-छै गँवार कहानेवाले आदमी इन विद्वानोंकी यह बात सुनकर आँखें फाड़-फाड़कर इनकी ओर देखने लगे, इस आशंकासे कि क्या अक़्ल नामकी कोई ऐसी ही चीज़ है, जिससे सरासर स्याह दीखनेवाली चीज़को भी सफ़ेद साबित किया जा सकता है।

(४)

लड़ाई किस पहलूपर चल रही है, ये बातें तो मुझे वर्षों तक पता नहीं लगीं। मैं तो अपने दुःखमें दिन-रात एक कोनेमें पड़ी रहती थी। मेरे दाने-घासकी न अब मुझे ख़्वाहिश रह गई थी, न वहाँ कोई मेरी फ़िक्र ही करनेवाला था। हाँ, जब कभी बुढ्ढा देबिया ज़रूर मेरी हालतपर तरस खाकर एक मुट्ठी घास मेरे आगे डाल देता था। मैं भी भलीभाँति जानती थी कि वकील साहब मुझे तो लड़ाईका एक साधन बनाके घरमें डाले हुए हैं कुछ मेरे प्रेमके कारण थोड़े ही मुझे लाये हैं, जो उनके यहाँ मेरी ख़ातिर-ख़ुशामद होगी।

लड़ाईके परिणाम अलबत्ता मुझे भी प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहे थे। अब नौकरोंकी तादाद बढ़ गई थी, और वे हर वक्त मोटे-मोटे लट्ठ लिये इधर-से-उधर घूमा करते थे। गाँववाले तथा आसपासवाले अब अधिक बार मालिकोंके घरपर आने-जाने लगे थे। उनकी आवभगत भी पहलेसे ज्यादा होने लगी, और वे भी जलती आगमें दो आहुति छोड़ जाते थे। सिपाही-दरोगा भी गाँवकी अब ज्यादा खैर-खबर लेने लगे थे, गाँवकी हिफ़ाज़तके खयालसे, या जमाई जैसा आदर कुछ दिन प्राप्त कर लेनेके लिए, यह मुझे नहीं मालूम। मालिक लोग दिन-दिन-भर घरके बाहर पड़े रहते थे। लड़ाईके वक्त यह लक्षण तो मैं दिन-रात देखा करती थी। हाँ, मुकदमेकी कार्रवाई मुझे उस दिन ज्ञात हुई, जब वकील साहब मेरे पासमें बैठकर नन्हें मिसुरसे इस विषयमें बातचीत कर रहे थे।

वकील साहबने कहा—"मिसुरजी, आपकी कृपासे मैजिस्ट्रेटके यहाँसे भी अपनी ही जीत रही और जजके यहाँसे भी अपने ही बाज़ी मारी। अब सुनते हैं, वे त्रिवेनीजी स्नानका और हौसला कर रहे हैं। सो उनको अभी पता नहीं है कि वहाँके पंडोंके पल्ले पड़नेपर घरकी ईंट-ईंट बिक जायगी। ज़मींदारी और बाग़-बगीचोंपर तो अभीसे दस्तावेज़ें लिखी जा चुकी हैं।"

मिसुरजी—"सो तौ हुई, सो तौ हुई।"

वकील साहब—"लेकिन अपना क्या है? न बाप रईस थे, न अपनको रईस बननेकी साध है। अपन तो वकालत करके खाने-भरको कहीं-न-कहींसे कमा ही लेंगे, लेकिन एक बार बच्चूजीको ज़मीनमें लोट-पोट कर देना है।"

मिसुरजी—"इसमें क्या शक है? इसमें भला क्या शक है?"

वकील साहब—"लेकिन जजके यहाँसे जीत जानेका मुझे स्वयं ताज्जुब हो रहा है। मेरा मामला तो जैसा था, हम आप सभी जानते हैं, इसीलिए मैंने एक बढ़िया डाली अपने मित्रकी मारफत जज साहबके यहाँ भेज दी थी। बस, दूसरे ही दिन फैसला सुना दिया गया। भूरीपर मेरा कब्ज़ा क़ायम रहा।"

मिसुरजी—"खूब किया बेटा! पैसेमें सब बल होते हैं, लेकिन मेरी भी कैसी गवाही हुई। गंगासागरके मेलेसे जिस तरह जिस-जिस रास्ते भूरीको मैं लाया था, मैंने केसे बिना संकोचके सुना डाले कि जज साहब भी मेरा मुँह देखते रहे।"

"वाह मिसुरजी! और मैं कह क्या रहा था? आपकी गवाहीके कारण ही तो तख्ता पलटा है, पर इस बार मामला और सम्हालना है। अगर प्रयागराजकी ठहरी, तो कुछ रुपयेकी ज़रूरत मुझे भी पड़ जायगी। कोई महाजन ठीक-ठाक कर लेना, ब्याजकी तो परवा ही क्या?"

मिसुरजी—"यह सब ठीक हो जायगा, उससे तुम निश्चिन्त रहो।"

मैं तो आश्चर्यमें पड़ गई। यह लोग पढ़े-लिखे और विद्वान होकर भी अपना-अपना घर फूँककर तमाशा देख रहे थे, और मुझ बूढ़ी ठंठके लिए सोनेकी नालियाँ बहा रहे थे। किन्तु सबसे अधिक क्रोध अब मुझे उस न्यायाधीशपर हो रहा था, जिसके यहाँसे मैं वकील साहबकी करार दे दी गई थी। यह न्याय था, या न्यायका खून! भला, जब जज साहबको मेरे विषयमें फैसला करना था, तो क्या मुझे भी सामने बुलाकर मुझसे पूछनेकी यह बात नहीं थी? मैं तुरन्त ही अपने छोटे बाबूके पीछे लगकर बतला देती कि मेरे मालिक कौन हैं?

(५)

प्रयागराज स्नान करते-करते भी कई वर्ष बीतनेको आये। एक-दो बार तो वकील साहबने भी हौंसलेसे पंडोंके पैर पूजे, फिर तो वे भी लथड़ियाने लगे। घरपर भी वे ठाट-बाट दिन-पर-दिन ढीले पड़ने लगे, मगर आगके बुझनेकी कोई आशा ही नहीं दिखलाई देती थी। "अभी तो यहींसे नहीं निबटे हैं—इसके बाद भी विलायत है, अपने घरमें जब तक धन-दौलत है, उसे जलाकर इस तमाशेको देखो। तुम थक जाओगे, लेकिन यहाँके इन्साफका पता नहीं लगनेका। आखिर ईश्वरका भी तो खयाल करो। कुछ बाल-बच्चोंकी ओर भी तो देखो, इस बूढ़ी भैंसके पीछे सब घर तो फुँक चुका है। अब भी सँभल जाओ"—आदि बातें एक दिन अपढ़ मालकिनने अपने विद्वान वकील पतिसे कहीं।

थोड़ी देरको तो वकील साहबका हृदय भी परामर्शकी सचाईकी ओर खिंचने लगा, पर विद्वान पुरुषने तुरन्त उस खिंचावको जहाँका तहाँ रोककर, बनावटी हेकड़ी जतलाकर, कहा—"तो क्या मैं अकेला थोड़ी बरबाद हो रहा हूँ, वे भी तो सत्यानाश हो रहे हैं।"

"किन्तु उनके सत्यानाश होनेसे भी तो तुम्हारी बरबादी

नहीं रुक रही है। वे और तुम दोनों ही भरे-पूरे घरवाले हो, फिर भी बिना बातके एक दूसरेकी इस प्रकार क्यों जड़ें खोद रहे हो—फिर न-जाने यह सरकार भी कैसी है, जिसके यहाँसे एक भैंसका फैसला होनेमें वर्षों लग रहे हैं, और फैसला भी हुआ तो कैसा? कि सरासर देवाकी भूरी तुम्हारे सुपुर्द कर दी गई।"

"चलो तो, अब मैं तुम्हींको सरकार माने लेता हूँ, और तुम्हारे ही कोर्टमें मामला पेश करूँगा, तब तुम तो न्याय कर दोगी?"—वकील साहबने हँसकर अपनी भोलीभाली पत्नीका मज़ाक उड़ाते हुए कहा।

"हाँ मैं तो करूँगी ही, और मैंने उसका उपाय भी कर लिया है। मेरे मँझले भाई डिप्टी कलक्टरी छोड़कर, सुना है, गान्धी बाबाके साथमें हो गये हैं। महात्माजीने सरकारके यहाँ जाकर मुकदमे लड़नेको मना कर दिया है। मेरे भाईने बीचमें पड़कर अभी हालमें कई बड़े-बड़े मामले फैसले करवा दिये हैं। मैंने भी उन्हें यहाँ आकर तुम्हें समझानेको बुलाया है।"

वकील साहब पत्नीकी बात सुनकर पहले तो सन्नाटेमें आ गये, फिर मुस्कराने लगे। यह मुस्कराहट पत्नीकी बेसमझीपर थी, या सच्चा सहारा पा जानेकी वजहसे खुशीकी थी—यह मैं उस समय कुछ न समझ पाई। मेरे मनमें तो उन गान्धी बाबा और उनके चेलोंके दर्शनोंकी लगन लग गई, जो इस प्रकार बिगड़ते घरोंको बिना लिये-दिये बीचमें पड़कर बनानेका प्रयत्न करते हैं।

आखिर एक दिन दो दिन बाद ही गांधी बाबाके वे चेले वकील साहबकी ड्योढ़ीपर आ धमके। उनके सफेद कपड़े उनके हृदयकी सचाई बतला रहे थे। उनकी सादगी उनके स्वभावकी सरलता प्रकट करती थी। उनके साथ ही मानो गाँवमें पवित्रताका वायुमंडल उत्पन्न हो गया। विलायती कपड़ेवाले अपने-अपने कपड़े छिपा रहे थे, मैले मनवाले अपना मैल धोकर साफ दिखाई देनेका प्रयत्न कर रहे थे। बस, लड़कोंने एक बार 'बोल महात्मा गान्धीकी जय" कहा कि लगभग सारा गांव तिरंगे झंडेके नीचे आकर खड़ा हो गया।

उन महात्माको कच्चा चिट्ठा तो मालूम ही था, फिर भी वे मुसकराकर खोद-खोदकर वकील साहबसे सब बातें पूछ रहे थे। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि उस एक मूर्तिने आकर गाँव-भरकी इस प्रकार ज़रा देरमें ही काया पलट कर दी थी। जिन लोगोंने सदा ही उन दोनों मित्रोंकी फूटको हरा-भरा रखनेके लिए स्वयं बोझों भर-भरकर भी पानी ढोया था, वे भी आज अपना रंग बदल रहे थे। सबसे पहले नन्हें मिसुरने ही बड़े गर्वके साथ बुजुर्गी जतलाते हुए कहा—"महात्माजी, ज़रा वकील साहबसे यह तो पूछिये कि वे उस बूढ़ी भैंसके कारण कितना रुपया बहा चुके हैं।"

उन्होंने मुसकराकर वकील साहबकी ओर देखा, और उन्होंने शरमाकर गरदन नीची करके कहा—"महात्मन्, ५०००) से कम तो न होगा, चाहे कुछ बढ़ भले ही जाय।"

"और दरोगाजीका ७०००) से कम न खर्च हुआ होगा। यह मैं छाती ठोंक कर कहता हूँ"—यह एक दूसरेने पासमें खड़े नतमस्तक दरोग़ाजीकी ओर देखकर कहा।

"अहा, यही तो हम लोगोंकी बेवकूफियाँ हैं। क्या अब भी आप लोग इन इन्साफोंका तमाशा देखा करेंगे? क्या अब भी आपकी आँखें नहीं खुल रही हैं?"—महात्माजीने गरजकर समस्त उपस्थित जनताके समक्ष बार-बार राजाराम और देवेन्द्र बाबूको लक्ष्य कर करके कहा।

न-जाने उस वाणीका कैसा प्रभाव था। सच्चे हृदयसे निकली वे सच्ची बातें सीधी हृदयको भेद रही थीं। वकील साहबने तुरन्त ही सिर झुकाकर कहा—"महात्मन! क्षमा कीजिए। मेरी आँखें खुल चुकी हैं। मैं आपके हुक्ममें हाज़िर हूँ।"

"और मैं भी आपकी आज्ञानुसार निबटारा करनेको हर घड़ी तैयार हूँ।"—आगे बढ़कर दरोग़ाजीने कहा।

महात्माजीने मुसकराकर तुरन्त ही दरोग़ाजीका हाथ वकील साहबके हाथमें रखते हुए कहा—"मुझे मालूम है कि आप दोनों बाल्यकालके मित्र हैं, और मुझे खुशी है कि मैं उस पुराने मित्रता-बन्धनको आज फिर जोड़े देता हूँ। आप लोगोंका कोई असल झगड़ा तो है ही नहीं, जिसका मैं निपटारा करूँ।"

न-जाने समयकी बलिहारी थी, अथवा उस पवित्रात्माका प्रभाव था कि दोनों मित्र हाथ मिलनेके साथ ही एक दूसरेसे मिलकर फूट-फूटकर रोने लगे। समस्त दर्शकोंमें करुणरस उमड़ पड़ा। मैं भी चुपचाप खड़ी-खड़ी रो रही थी। हाय, समझ तो गये, लेकिन बिलकुल बरबाद होकर समझे!

महात्माजीने चलते-चलते अपनी अनुपम बुद्धिसे एक

और चमत्कार दिखला दिया। उन्होंने मेरी ओर निगाह डालकर तुरन्त समझ लिया कि यद्यपि मेरे कारण हज़ारोंपर पानी फिर चुका है, फिर भी मेरे दाने और पानीकी ओर किसीने कभी ध्यान नहीं दिया है। "यह बूढ़ी ज़रूर भूखी-प्यासी यहां मर जायगी," कदाचित् यह सोच-समझकर चलते समय वे मुझसे दारोग़ाजीसे मांगकर अपनी गौशालामें ले आये।

अब मेरा बुढ़ापा मज़ेमें कट रहा है। कभी-कभी पुरानी बातोंकी याद आ जाती है। आज अपनी रामकहानी आपको सुना दी।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'भारतभूमि और उसके निवासी'—लेखक, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार; पृष्ठ-संख्या २४+४१०; मूल्य २); रत्नाश्रम आगरासे प्राप्य।

विज्ञान और वैज्ञानिक ढंगपर लिखे दूसरे विषयोंके ग्रन्थोंकी हिन्दीमें कितनी कमी है, यह हिन्दीके पाठक जानते ही हैं, बल्कि इसीका सभी जगह विलाप भी सुनाई देता है। हर्षकी बात है कि हिन्दी-संसारने वर्षोंसे जिस अभावका रोना शुरू किया था, वह अब फल लाने लगा है, और जहाँ-तहाँ कुछ ग्रन्थ अब ऐसे निकलने लगे हैं, यद्यपि उनकी संख्या और गति इतनी कम है कि उसपर सन्तोष नहीं किया जा सकता। पंडित जयचन्द्रकी उपर्युक्त पुस्तक एक ऐसी ही कमीको पूरी करनेवाली है। पंडितजीने इसका पहला संस्करण 'भारतीय इतिहासका भौगोलिक आधार'के नामसे लिखा था, किन्तु द्वितीय संस्करणमें यही नहीं कि प्रायः १५० पृष्ठकी 'भारतभूमिके निवासी' नामक दूसरा खंड नया जोड़ दिया है, बल्कि प्रथम खण्डको अधिक परिवर्धित और परिमार्जित कर दिया है, इसलिए यद्यपि पाठकोंको वही सुपरीक्षक दृष्टि यहाँ भी देखनेमें आयगी, किन्तु प्रथम संस्करणसे इसका मुकाबला नहीं किया जा सकता। दरअसल देश और काल दो ऐसी चीज़ें हैं, जिनकी जानकारी बिना आदमी किसी चीज़का सच्चा ज्ञान नहीं पा सकता, क्योंकि दुनियामें सभी चीज़ोंकी स्थिति सापेक्ष है। आदमी उसमें अपने ही देश और कालको तुला मानकर उसीकी अपेक्षासे वस्तुओंको तौलता है, और इससे भयंकर भूल कर बैठता है। समयके भेदसे उन्हीं भौगोलिक संज्ञाओंमें कितना भेद हो जाता है, इसके उदाहरण लीजिए। ईसापूर्व छठीं शताब्दीमें अन्धकोंका * देश औरंगाबाद (निज़ाम, हैदराबाद) के आसपास पड़ता था, और उनकी अश्मक (पाली—अस्सक) और मार्यक (पाली—मल्लक) दो जातियोंमें एककी राजधानी पतिट्ठान (प्रतिष्ठानपुर), औरंगाबादसे सीधे दक्षिण गोदावरीके तटपर, आधुनिक पैठन थी। लेकिन वही अन्धक देश गोदावरीकी धारके साथ नीचे उतरता हुआ पूर्वीय समुद्रतटपर पहुँच गया, और आज आन्ध्र इसी प्रदेशका नाम है। यही अवस्था सिंधकी हुई, जो पिंडदादन खांकी नमककी पहाड़ियोंको छोड़कर—जिससे उसका नाम भारतमें आबालवृद्ध प्रसिद्ध हुआ—सिंधुकी धारके साथ नीचे उतरता हुआ सौवीरको भी हजम करते समुद्रतटपर पहुँच गया। अब कालके अनुसार हुए इन परिवर्तनोंपर जो ध्यान नहीं देगा, क्या उसे बहुतसी इतिहासकी भौगोलिक घटनाएँ समझमें आ सकेंगी? देशके बारेमें तो इससे भी अधिक सावधानीकी आवश्यकता है। हमारे संस्कृतके कवियोंके लिए इनसे

* अन्धक यद्यपि संस्कृतमें स्वीकृत शब्द था (पाणिनी ४:१:११४), किन्तु कितनोंको इसमें प्राकृतकी गंध आई, और उन्होंने इसे संस्कृत करके आन्ध्रक या आन्ध्र बना दिया, ठीक वैसे ही, जैसे कमंडलुका करमंडल।

भली प्रकार परिचित होना एक आवश्यक बात मानी गई है। यहाँ सिंहलके लोग कवि कुमारदासको सिंहलका कवि बतलाते हैं, जिसके लिए न तो यहाँका पुराना इतिहास साक्षी देता है, और न कुमारदास नामक कोई राजा ही यहाँ हुआ है; खींचातानी करके ये लोग राजा कुमारसेनको कुमारदास बनाते हैं। मैं तो कितनी ही बार कह देता हूँ—कुमारदासने वर्णन किया है—"अयि विजही हि दृढोपगूहन, त्यजतुः संप्रवदन्ति कुक्कुटाः।" भला, लंकामें जहाँ सर्दीकी ऋतु है ही नहीं, वहाँ दृढोपगूहनकी क्या आवश्यकता होगी? यह कहनेसे इतना ही मतलब है कि देशोंकी भिन्न-भिन्न प्राकृत अवस्थाएँ तथा उनकी भौगोलिक स्थितियोंका यथार्थ ज्ञान हुए बिना आदमी कितनी ही बार भूलें कर बैठता है। पंडित जयचन्द्रकी यह पुस्तक इस दृष्टिको तेज़ करनेके लिए बड़ी ही उपयोगी चीज़ है, और रायबहादुर हीरालालका यह कहना इसके बिलकुल अनुरूप है—

"पंडित जयचन्द्र विद्यालंकारकी यह नई सूझ है, जो भूगोलको शास्त्रका रूप दे रही है। अभी तक भूगोलोंके ग्रन्थकार किसी देशके विभाग, पर्वत, नदी, नाले इत्यादिका वर्णन देकर सन्तोष कर लेते थे, परन्तु भौगोलिक स्थितिसे इस देशके इतिहासपर क्या प्रभाव पड़ा, इसका विवेचन जहाँ तक मुझे ज्ञात है, पहले-पहल पंडित जयचन्द्रने ही किया है।"

पुस्तककी और भी कितनी ही विशेषताएँ हैं, उनमें एक तो शब्दोंका उनके बोलनेवालोंके उच्चारणके अनुसार लिखना। आजकल लोग बेधड़क अंगरेज़ीमें उलटे-पलटे लिखे हुए उच्चारणोंको ही ले लेते हैं, यद्यपि हरएकसे आशा नहीं रखी जा सकती कि वह असल उच्चारणका खोज करे, तो भी दायित्वपूर्ण लेखकोंको तो इस बातपर अवश्य ध्यान देना चाहिए। आशा है, और लोग भी अनुकरण करेंगे। इस पुस्तकमें भी कहीं-कहीं उच्चारणकी गलतियाँ रह गई हैं, लेकिन वे उतनी अधिक और बुरी नहीं हैं, जितना अंगरेज़ीसे लेनेपर। उदाहरणार्थ, किरङ-जोङ (पृ० १५५), जिसे उच्चारणके अनुसार के-रङ-जोङ लिखना चाहिए। इसी प्रकार पृष्ठ १५७ पर उट्-चु है, जिसमें उट्का ठीक न लिखा जाना तो नागरी-लिपिकी अपूर्णताके कारण है, और 'चु' की जगह 'छु' होना चाहिए। पंडितजीने नागरी अक्षरोंमें कुछ अक्षरोंकी वृद्धिके लिए सिफारिश की है, और मैं तो इसकी आवश्यकता १९१५ से अनुभव कर रहा हूँ, जब मैंने कुरानके दो अध्यायोंका नागरीमें मूलसहित अनुवाद आगरेके एक प्रकाशकके लिए लिखा था। उस समय अरबीके कुछ विशेष उच्चारणोंका मैंने संकेत किया तो था, किन्तु अब स्मरण नहीं, वह कैसे छपे। तिब्बती और चीनी उच्चारणोंमें भी ऐसे कुछ विशेष उच्चारण हैं। भारतीय लिपिको अपनाते वक्त तिब्बतमें इसपर ध्यान दिया गया था, और उनके लिए अलग संकेत नियत किये गये थे। उदाहरणार्थ, अंगरेज़ीमें जिस उच्चारणका संकेत Tsa, (उच्चारण 'च' और 'स'के बीचका है) उसे भोटियामें 'च' के सिरपर एक कलगी लगाकर जाहिर करते हैं; नागरीमें 'च' के नीचे बिन्दी देकर मैं भी इसे लिखता हूँ। इसी प्रकार Tsh है, जिसका उच्चारण 'छ' और 'स' के बीचका है, और उसे 'छ' के नीचे बिन्दु देकर लिखा जा सकता है। 'ए' 'ओ' के ह्रस्व रूपकी आवश्यकता तो भारतीय भाषा और स्वयं हिन्दीकी स्थानीय भाषाओंके लिए भी है। पंडितजीने जिस उच्चारणको 'उट्' द्वारा संकेतित किया है, उसके भी अलग चिह्नकी ज़रूरत है। इसका उच्चारण जर्मनके ü और फ्रेंचके Du के 'उ' के समान हैं, इसे 'उ' के ऊपर दो छोटी-छोटी बिन्दियाँ देकर प्रकट किया जा सकता है। यहाँ प्रसंगवश कुछ बातें लिख दी जाती हैं, जिनका तीसरे संस्करणमें उपयोग किया जा सके।

१. पाणिनिने प्राचां और उदीचां शब्दोंको प्राची और उदीची (उत्तरापथ) देश-विभागोंके लिए ही किया है, यद्यपि आजकल हमारे व्याकरणके पंडित पाणिनिकी संग्रहीत और भौगोलिक आदि सामग्रियोंकी भाँति इसे भी मीमांसकोंका अर्थवाद बनाकर 'पूजार्थं' कर डालते हैं। एङ् प्राचां देशे (१:१:७५) सूत्रपर काशिकामें उत्तर और पूर्वके देशों अथवा उत्तरापथ प्राचीके विभागपर एक कारिका दी है—

"प्रागुदञ्चौ विभजते हंस: क्षीरोदके यथा।
विदुषां शब्द-सिद्ध्यर्थं सा न: पातु शरावती ॥"

यह शरावती उत्तरापथ और प्राचीकी सीमा थी, और सरस्वतीका ही दूसरा नाम है।

२. दशार्णको पंडितजीने आधुनिक ढसान, पूर्वी मालवा कहा है (पृष्ठ ७५)। पश्चिमी बुंदेलखण्ड या जालोन और झाँसीके भाग भी इसमें शामिल थे। सुत्त-पिटकके खुद्दक निकायके 'पेतवत्थु' (२:७) ग्रन्थमें आया है—

"नगरं अत्थिपराणानं एटकच्छन्ति विस्सुतं।"

(एरकच्छ नामसे प्रसिद्ध पणर्णोंका एक नगर है)। अट्ठकथा (टीका) में दशार्णोंका एरकच्छ नगर लिखा है। एरकच्छ आजकलका झांसी ज़िलेका एरच् क़स्बा है। यद्यपि 'मेघदूत' से विदिशाका दशार्णमें होना मालूम होता है, किन्तु त्रिपिटककी पालीमें वैसा उल्लेख मुझे नहीं मिला।

३. कारुषको (पृ० ७६,२७५) पंडितजीने बघेलखंड कहा है। बिहारके आरा ज़िलेको भी कारुष कहते हैं। पाणिनिके "न प्राच्य-भर्गादि-यौधेयादिभ्य:" (४:१:१७८) सूत्रमें भर्गादिगणके उदाहरण भार्गी, कारुषी, कैकेयी दिये हैं। इससे कारुषका भर्ग और केकयके साथ होना प्रतीत होता है, और प्राच्यको अलग भी सूत्रमें करनेसे उसका पूर्वके देशोंमें ग्रहण करना उचित नहीं मालूम होता, किन्तु यदि पाणिनिकी विचित्र सूत्र-रचनाका खयाल करके उसे उत्तरापथमें न मानकर प्राच्यमें माना जाय, तो कारुष आरा ज़िलाके लिए उपयोगी मालूम होता है। उस समय भर्गसे टोंस, सोन, विन्ध्याचल गंगासे घिरा, विन्ध्य-पर्वतमें घुसा हुआ देश लिया जा सकता है। पालीमें भर्ग (भग्ग) में सुंसुमारगिरि नगर कहा गया है, जो कौशाम्बीके अधीन था। मैंने उसे चुनारसे मिलाया है। ऐसी हालतमें आरेका कारुष होकर भर्गके भीतर भी आ जाना ठीक है; यद्यपि केकय और प्राच्यकी समस्या कड़ी है, तो भी पालीके कथनसे प्राग्देशमें—विशेषकर मध्यमंडलमें—भर्गदेश था ज़रूर।

४. पृष्ठ १६६ पर लिखा है—"सिंहल द्वीपमें जो आर्य-उपनिवेश-स्थापक गये, उनका नेता विजय और उसके साथी मूलत: वंग-राज्यके थे।" प्राय: एक शताब्दी पूर्व उस समय अपर्याप्त सामग्रीके अनुसार प्रिन्सप्ने विजयके देश लालको, राढसे मिलाकर, वंग सिद्ध किया था, किन्तु अब थोड़ेसे बंगाली विद्वानोंको छोड़ दूसरे उसके माननेवाले नहीं हैं, क्योंकि पालीमें विजयका अपने स्थान सिंहपुरसे भरुकच्छ (भड़ोंच) वहांसे सुप्पारक (सुपारा, जिला ठाना, बम्बई), और वहांसे ताम्रपर्णी (लंका) जाना लिखा है। कैसे वंग देशसे यह यात्रा नाव द्वारा भरुकच्छ आदि होकर हो सकती है? विजय इतना ही बंगाली था कि उसकी दादी वंग देशके राजाकी लड़की थी।

५. पृष्ठ २७१ पर सिंहलवालोंका पारिभाषिक तथा दूसरे नई आवश्यकताके शब्दोंको पालीसे लेना लिखा है, लेकिन वहाँ लोग पालीके उन्हीं शब्दोंको लेते हैं, जो धर्म या दर्शनके लिए उपयोगी हैं, अथवा इसी अर्थमें पहले भी व्यवहृत होते रहे हैं। पिछलेका उदाहरण 'छन्द' शब्द है (जो भारतीय गणराज्योंमें उनकी बनावटपर बने भिक्षुसंघमें वोट (vote) के लिए होता था)। अन्यथा यहांके लोग भी नये शब्दोंको संस्कृतसे ही बनाते हैं, पालीके शब्दोंको भी संस्कृतसे ही बनाते हैं और पालीके शब्दोंको भी संस्कृत रूपमें व्यवहृत करते हैं।

६. पृष्ठ ३०४ ३०५ पर लिखा है—"पिछली शताब्दीके उत्तरार्द्ध तक आधुनिक भूगोलवेत्ता निश्चयसे न जानते थे कि तिब्बतकी चाङ्-पो ब्रह्मपुत्रकी ऊपरली धारा है, या साल्वीनकी।" किन्तु तिब्बतीय और भारतीय विद्वान आठवीं शताब्दीमें सम्-ये (ल्हासासे तीन दिनके रास्तेपर चाङ्-पोकी घाटीमें बौद्ध मठ) को स्थापित करते हुए जानते थे कि वह लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) की उपत्यकामें उस मठको स्थापित कर रहे हैं।

पंडितजीके इस परिश्रमके लिए हिन्दी-संसारको आभारी होना चाहिए। यह पुस्तक तो उस ग्रन्थ-रत्नकी भूमिकामात्र है, जिसे उन्होंने 'भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा' के नामसे लिखा है, जो उनके वर्षोंकी गम्भीर गवेषणाका सुफल है।

—राहुल सांकृत्यायन

'गीतोक्त-साधना'—"गीता-शिक्षाके विषयमें जितने भाष्य और टीकाएँ आज तक हो गई हैं, यदि उन सबोंकी तुलना और आलोचनाकर गीताका अर्थ निकाला जाय, तो हम लोगोंकी बुद्धि विभ्रान्त हो जायगी, और हम लोग भाष्य और टीकारूपी गहन अरण्यके मध्यमें गीताका अर्थ समझनेका सहज पथ खो देंगे।

"गीता-पाठ तभी सार्थक होता है, जब लोग गीताके कर्म और साधन-शिक्षाको समझते हैं, ग्रहण करते हैं और उसी प्रकार अपने जीवनको गठित करनेकी चेष्टा करते हैं......

"साधारण भावसे हम लोग जब गीता-पाठ करते हैं, तब मालूम होता है, जैसे गीतामें अनेक स्थलोंमें पारस्परिक मत-वैभिन्न्य हो, गीता एक स्थानमें एक बात कहती है, और दूसरे स्थानपर दूसरी बात।

"भगवानको प्राप्त करना होगा, इसीमें मानव-जीवनका परम कल्याण है। प्रत्येक युग और प्रत्येक देशमें मनुष्य जानकर या अनजानमें भगवानकी ही खोज कर रहा है। परन्तु भगवान कौन हैं? कैसे मिल सकते हैं? मिलनेपर क्या होता है—इन बातोंको बहुत कम लोग जानते हैं।

"......लेकिन भगवानको केवल उनके विश्वातीत, अचल, अक्षर सत्तामें जाननेसे (कल्याण) नहीं होगा। इस संसारके मध्यमें जन्म ग्रहणकर वे किस भावसे कर्म करते हैं, यह भी जानना होगा। इसी दिव्य जन्म और कर्मके आदर्शके अनुसार अपने जीवनका गठन करना होगा।...... श्रीकृष्णके दिव्य जन्म और दिव्य कर्मका निगूढ़ रहस्य क्या है?"

उपर्युक्तमें ही कुछ प्रधान बातें हैं, जिनको ध्यानमें रख श्री अरविन्द-योगाश्रम पांडीचेरीके श्री अनिलवरण रायने (१) कर्मयोग और सांख्ययोग, (२) गीतामें भगवत्प्राप्ति और (३) श्री कृष्णका जन्म-रहस्य शीर्षक हिन्दीमें तीन लेख लिखे हैं, और इनके द्वारा पूर्वोक्त समस्याओंका पूर्णरूपेण समाधान करते हुए गीतोक्त साधना क्या है, इसे स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है। इन्हीं तीनों लेखोंका संग्रह 'गीतोक्त-साधना' नामक पुस्तक है। तीनों लेख बड़े ही सुन्दर, उच्चकोटिके और और उपयोगी हुए हैं। कम-से-कम एक बार इन्हें ध्यान-पूर्वक पढ़ लेनेसे गीताका वास्तविक मर्म समझनेमें पर्याप्त सहायता मिल सकती है, ऐसा हमारा ध्यान है। पुस्तक अरविन्द-लाइब्रेरी, २०६, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ताके पतेपर केवल छै आनेमें मिल सकती है। इसकी छपाई, कागज़ आदि भी उत्तम हैं। हाँ, यत्र-तत्र प्रूफ-सम्बन्धी एक-आध भूलें अवश्य रह गई हैं, जो नगण्य हैं।

—एक गीता-प्रेमी

'जादूगरनी'—लेखक, श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक, भारती प्रकाशन-मन्दिर, अजमेर; पृष्ठ-संख्या, १०३; मूल्य बारह आने।

'जादूगरनी' एक कविता-पुस्तक है। मायामयकी जिस मायाके वशीभूत समस्त संसार है, कविने उसको 'जादूगरनी'के नामसे सम्बोधन करके उसके विविध रूपोंके वर्णन करनेका प्रयास इस छोटीसी पुस्तकमें किया है। मायाके रूप अनन्त हैं, उसकी शक्ति अपरिमेय है, उसकी सत्ता दुर्निवार है, उसकी व्यापकता सारी सृष्टि है। हमारे तत्त्वज्ञानके ग्रन्थोंमें इस मायाका विशद विवेचन किया गया है। भगवानने गीतामें कहा है—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मममाया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।"

इस प्रकार त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको ही भगवान अपनी माया कहते हैं। नारदको विश्वरूपका दर्शन कराके भी भगवानने यही बात कही है—

"माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवत्वं ज्ञातुमर्हसि॥"

ऐसी मायाविनी मायाका सम्यक् परिचय लोकोत्तरानन्द-दायी काव्यमें देना लौकिक प्रतिभाका काम नहीं। फिर भी

इस क्षेत्रमें 'प्रेमी'जीका प्रयत्न प्रशंसनीय है। उन्होंने इस छोटीसी पुस्तकमें, मायाका नारी-रूप कल्पित करके, अपने दृष्टिकोणके अनुसार, उसके गुण-कर्म-स्वभावका प्रशंसात्मक वर्णन करके हुए, बहुतसी तथ्यकी बातें कही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनका दृष्टिकोण कहीं-कहीं अत्यन्त संकीर्ण हो गया है, पर वैसे स्थल अधिक नहीं हैं। वर्णन-शैली सरल और रोचक है। भाषा यत्र-तत्र निरंकुश है, पर उसमें प्रवाह है। भाव कहीं-कहीं बड़े ही सुन्दर हैं। दो-एक उदाहरण देखिये—

"भोले-भाले विहगोंसे उर
बन्धनमें सुख पाते हैं।
तेरे दो दानोंपर अपना
सब कुछ भेंट चढ़ाते हैं।
× × ×
आँखोंपर परदा पड़ता
तू उसपर चित्र बनाती है
× × ×
निराकार निर्लेप ब्रह्मको
करती तू आकृतिवाला।
सूने नभका हृदय सजाती
पहना इन्द्रधनुष-माला।
× × ×
अपनी माया तू अनन्तके
ऊपर भी फैलाती है।
निर्गुणके गुण-कर्मोंकी
सीमा रेखा बन जाती है।
× × ×
जब तू होती अन्तर्धान
महाशून्यमें बैठ अकेला
'शेष' बहुत पछताता है,
आकुल हो आह्वान-गान वह
नीरव स्वरमें गाता है।
रह जाता है अवनीतलमें
अश्रु-सिन्धु, नभमें उच्छ्वास,
इसी अश्रु-सागरपर करता
एक कल्प तक ब्रह्म निवास।"

हम इस पुस्तकका सहर्ष स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि कविता-प्रेमी पाठक इसका आदर करेंगे।

—श्यामसुन्दर खत्री

—

'नवीन शिल्पमाला'—लेखिका, श्री हेमन्तकुमारी चौधुरानी; ६, चन्द्ररोड डालनवाला देहरादून; मूल्य २॥) कपड़ेकी मज़बूत सुनहरी जिल्द बँधी हुई; पृष्ठ-संख्या २२२, डबल क्राउन अठपेजी। पुस्तक लेखिकासे प्राप्त।

श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधुरानी हिन्दीकी पुरानी लेखिका हैं। जन्मसे बंगाली होते हुए भी आपने राष्ट्र-भाषाकी प्रशंसनीय सेवा की है। प्रस्तुत पुस्तक महिलाओं और लड़कियोंको ऊनकी दस्तकारी सिखानेके उद्देशसे लिखी गई है। क्रोशिया और सलाईसे ऊनके मोज़े, गुलूबन्द कोट, जम्पर, जाकेट, फ्राक, टोप, सूट-पाजामा, जूता, पेटीकोट आदिका बुनना इस पुस्तककी सहायतासे बहुत आसानीसे सीखा जा सकता है। समझमें सहूलियत हो, इसलिए स्थान-स्थानपर चित्र देकर विषयको स्पष्ट और बोधगम्य बनाया गया है। इस विषयपर अंगरेज़ीमें बीसियों पुस्तकें हैं, परन्तु हिन्दीमें इस प्रकारकी पुस्तकोंका प्रायः सर्वथा अभाव है। कम पढ़ी-लिखी महिलाओंकी सुविधाके लिए पुस्तक मोटे टाइपमें छपी है। काग़ज़ भी चिकना है। यह इसका दूसरा संस्करण है, इससे जान पड़ता है कि पुस्तक काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। प्रत्येक पढ़ी-लिखी लड़कीके पास ऐसी पुस्तक होना आवश्यक है। पुस्तक महिलाओं और लड़कियोंको उपहारमें भेंट करने-योग्य है। क्या ही अच्छा हो, यदि चौधुरानीजी इसी प्रकारसे रेशम और सूतसे कसीदा आदि काढ़नेपर भी कोई पुस्तक प्रकाशित करें।

—

'इग्लैंडमें महात्मा गांधी'—लेखक, श्री महादेव देसाई ; अनुवादक, श्री शंकरलाल वर्मा ; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल अजमेर ; मूल्य १॥) ; पृष्ठ-संख्या ३१७, डबल क्राउन १६ पेजी ; कागज़की जिल्द ।

'राष्ट्र-वाणी'—दूसरी गोलमेज़ कानफरेंसमें महात्माजीके भाषण ; अनुवादक और प्रकाशक, उपर्युक्त ; मूल्य १) ; पृष्ठ-संख्या २०५ डबल क्राउन १६ पेजी ; कागज़की जिल्द ।

'नवजीवन'-कार्यालयसे चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और अध्यापक जे० सी० कुमारअप्पाके सम्पादकत्वमें अंगरेज़ीमें 'Nation's Voice' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी । इस पुस्तकमें दूसरी गोलमेज़ कानफरेंसके अवसरपर दिये हुए महात्माजीके भाषण तथा श्री महादेव देसाईका लिखा हुआ महात्माजीके इंग्लैंड-प्रवासका मनोरंजक वृत्तान्त दिया गया था । उपर्युक्त दोनों पुस्तकें इसी एक पुस्तकका हिन्दी-अनुवाद हैं । अनुवादक महोदयने महात्माजीके भाषणों और महादेव भाईके वृत्तान्तको दो अलग-अलग पुस्तकोंके रूपमें निकला है ।

महात्माजी समूचे भारतीय राष्ट्रके प्रतिनिधिके रूपमें गोलमेज़-कानफरेंसमें गये थे, अतः उनकी वाणी समस्त राष्ट्रकी वाणी है । इसीलिए पुस्तकका नाम 'राष्ट्र-वाणी' रखा गया है । समाचारपत्रोंके पाठक महात्माजीके भाषणोंका सार और महादेव भाईका यात्रा-वृत्तान्त बहुत-कुछ पढ़ चुके होंगे, मगर समाचारपत्र एक दिन पढ़नेके बाद दूसरे ही दिन फेंक दिये जाते हैं, और महात्माजीके भाषण ऐसी चीज़ हैं, जो हिफ़ाजतसे रखे जाने और मनन किये जाने चाहिए, इसलिए इन दोनों पुस्तकोंका हम हृदयसे स्वागत करते हैं । इन पुस्तकोंके प्रकाशनसे अंगरेज़ी न जाननेवाले हिन्दी-पाठकोंके लिए महात्माजीकी विलायत-यात्राका सम्पूर्ण वृत्तान्त आसानीसे प्राप्त हो जायगा । अनुवाद अच्छा हुआ है । दोनों पुस्तकें पठनीय, संग्रहणीय और मनन-योग्य हैं ।

—ब्रजमोहन वर्मा

चित्र-चयन

नागार्जुन-कुंड

दक्षिण-भारतमें कृष्णा नदीके तटवर्ती जंगलके बीचमें एक प्राचीन स्तूप मिला है, जिसमें भारतके प्राचीन मास्कर्य-शिल्पका अनोखा परिचय मिलता है । इसमें जो लेख आदि मिले हैं, उनके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि यह ईसाकी दूसरी या तीसरी शताब्दीमें बना था, और उस समय यहाँ काश्मीर, गांधार, चीन, तोषालि, अपरान्त, वंग, वनवासी, ताम्रपर्णि आदि सुदूर स्थानोंसे यात्रीगण आते थे ।

भग्नावशेष देखनेसे जान पड़ता है कि यहाँ एक चैत्य (विहार) था । इसका निर्माण-कौशल और खास-खास हिस्सोंकी कारीगरी बड़े ऊँचे दरजेकी है ।

यहाँ जो चीज़-वस्तुएँ बाक़ी बच रही हैं, उनमें मटरके बराबर भगवान बुद्धकी हड्डीका टुकड़ा है । यह अनेक स्वर्ण-फूलोंसे मंडित है ।

यहाँ नागार्जुन-कुंडके कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं, जिनसे उसकी कारीगरीका आभास मिलेगा । ये चित्र भारतीय पुरातत्त्व-विभागके सौजन्यसे प्राप्त हुए हैं ।
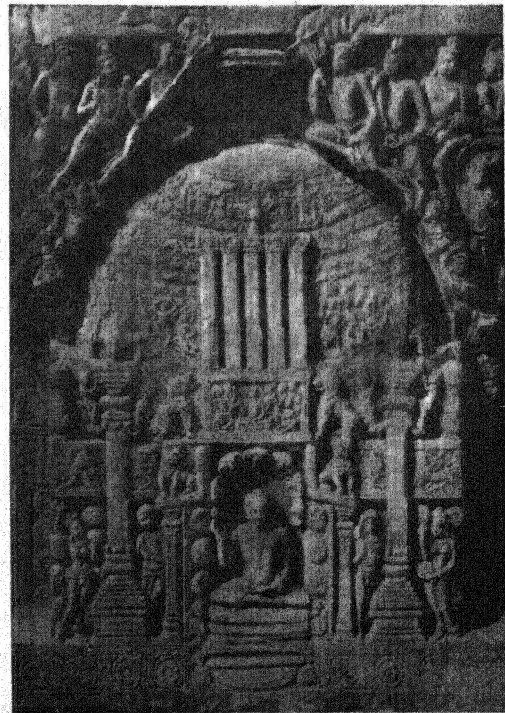
खुदा हुआ फलक (?) इसमें बुद्ध भगवानके जीवनकी घटना चित्रित है
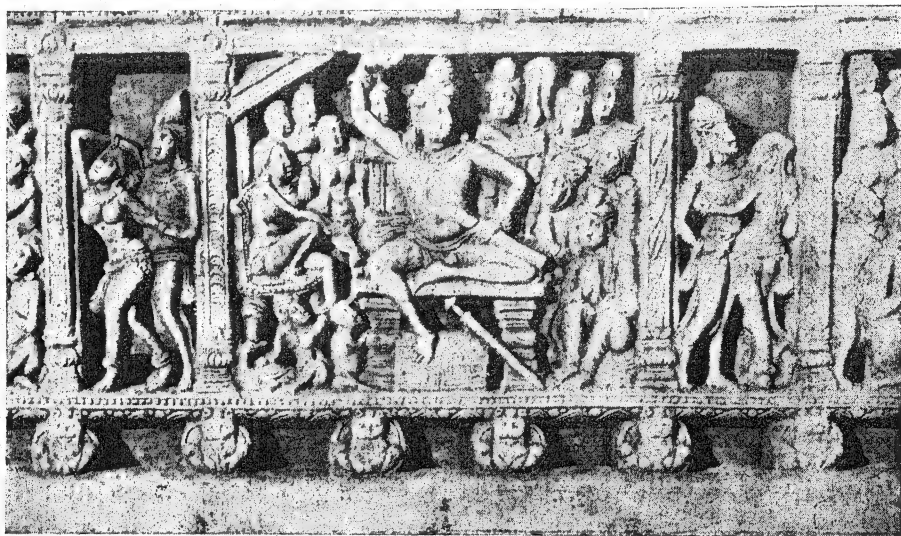
नागार्जुन-कुंडमें प्राप्त भास्कर्य-शिल्पका एक नमूना, जिससे नागार्जुन-कुंडकी कलाकी शैली ज्ञात होगी

ग्रीक या रोमन मूर्ति

नागार्जुन-कुंडकी मूर्ति-कलाका एक और उदाहरण
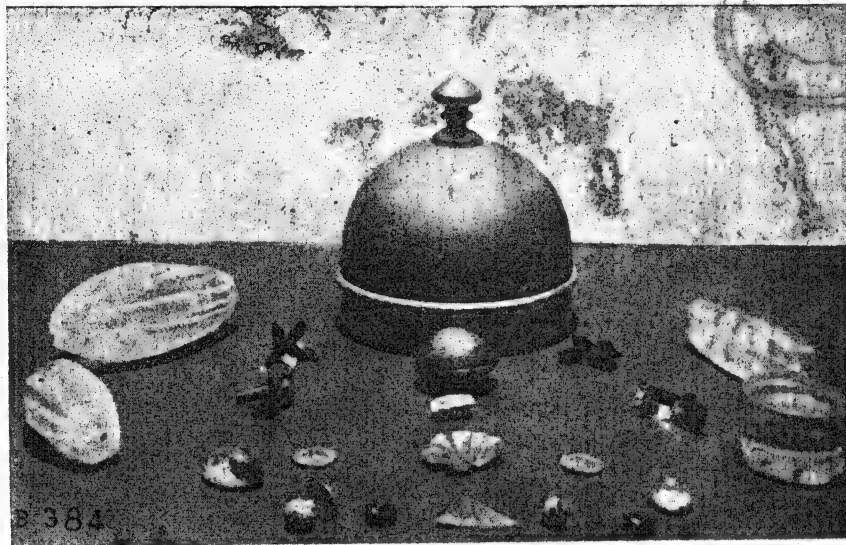
नागार्जुन-कुंडमें प्राप्त भगवान बुद्धकी हड्डी, डिब्बी, स्वर्ण-फूल तथा अन्य वस्तुएँ

बच्चोंके लिए चिड़ियाख़ाना

हिन्दुस्तानमें कलकत्ता, बम्बई मदरास, लखनऊ आदि

शिम्पैंजी एक बच्चेकी गाड़ी चला रहा है

एक लड़का और एक लड़की भालूके तीन बच्चोंको शीशीसे दूध पिला रहे हैं। एक कुत्तेका पिल्ला भी दूधमें हिस्सा बँटानेकी कोशिश कर रहा है
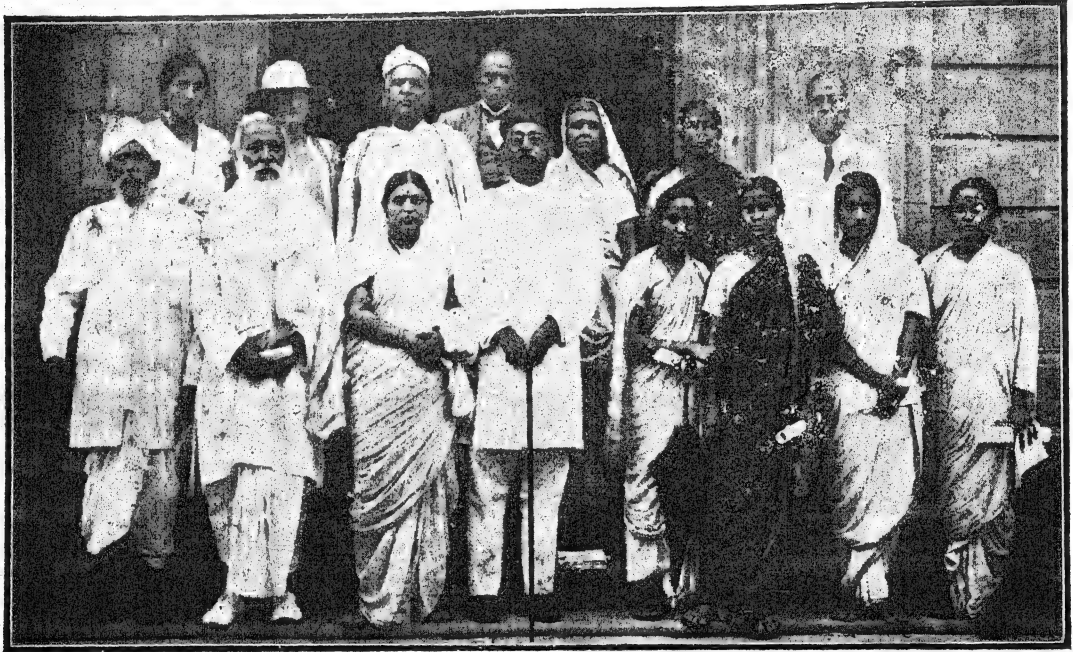
हालमें पूना-महिला-विश्वविद्यालयका उपाधि-वितरण श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायके हाथसे हुआ था। ऊपरके चित्रमें श्री रामानन्दजी, श्रीयुत कर्वे, जस्टिस पाठक, श्रीमती पाठक तथा महिला ग्रजुएटोंके साथ, खड़े हैं

स्थानोंमें चिड़ियाखाने हैं। इन चिड़ियाखानोंमें जानवर प्राय: पिंजड़ोंमें बन्द रखे जाते हैं। लखनऊमें वे पिंजड़ोंमें बन्द तो नहीं हैं, मगर दीवार और खाईसे घेरकर रखे जाते हैं। जर्मनीके बर्लिन नगरके चिड़ियाखानेमें एक शिशु-विभाग खोला गया है। डा० लूट्स फान हेक उसके प्रबन्धकर्ता हैं। इस विभागमें यह इन्तज़ाम किया गया है कि छोटे लड़के-लड़कियाँ बिना किसी बाधाके जानवरोंसे परिचय और उनके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त कर सकें। यह परिचय कितना घनिष्ट होगा, यह बात साथके चित्रोंसे ही मालूम होगी।

—

यूरोपमें प्रथम जापानी राजदूत

आजकल जापानके राजदूत तथा अन्य सरकारी अधिकारी पेरिस और लन्दनके सिले हुए अप-टु-डेट फैशनके कपड़े पहना करते हैं, मगर सिर्फ़ पचहत्तर वर्ष पहले सन् १८५८में जापानने जो सर्वप्रथम राजदूत यूरोप भेजा था, उसका क्या वेश था, यह साथकी तसवीरमें मुलाहज़ा कीजिए। उस समय तक जापानियोंने पुरानी समुराई पोशाक नहीं छोड़ी थी।

यूरोपमें प्रथम जापानी राजदूत

आजकल स्त्रियोंमें शिक्षा-प्रचारके लिए अनेकों प्रयत्न हो रहे हैं। कलकत्तेके ८० बी लैन्सडाउन रोडमें स्थित नारी-शिक्षा-प्रतिष्ठान भी इस प्रकारका एक प्रयत्न है। इस संस्थाकी कार्यकर्त्रीगण विश्वविद्यालयकी उच्च उपाधिधारिणी महिलाएँ हैं। इनमें से दोने लन्दन-विश्वविद्यालयमें आधुनिक शिक्षा-प्रणालीका अध्ययन भी किया है, और एक डाक्टर भी हैं।

इस संस्थाका मुख्य उद्देश्य है प्राप्त वयस्का स्त्रियों—गृहिणियों—में आवश्यक विषयोंकी शिक्षाका प्रचार करना।

नारी-शिक्षा-प्रतिष्ठानकी कार्यकर्त्रीगण

उनकी सुविधाके लिए ही विद्यालयका समय दोपहरमें १२ बजेसे ३ बजे तक रखा गया है। इसमें अन्यान्य विषयोंके साथ सन्तानपालन, स्वास्थ्यतत्त्व, बच्चोंको मनोविज्ञानके अनुसार शिक्षा देना आदि बातें भी पढ़ाई जाती हैं। यहाँ माताएँ अपने बच्चोंके साथ आ सकती हैं; बच्चोंको रखनेके लिए यहाँ विशेष प्रबन्ध किया गया है।

श्रीमती सुरभि सिंहने रंगून-विश्वविद्यालयसे क़ानूनकी परीक्षा पास की है। बर्मा-प्रवासी भारतीय महिलाओंमें आप ही सबसे पहली महिला हैं, जिन्होंने क़ानूनकी परीक्षा पास की है।

श्रीमती सुरभि सिंह

श्रीमती मायालता सोम और मैडम मान्तेसोरी

श्रीमती जाहांनारा चौधुरी

श्रीमती मायालता सोमने विलायतमें रहकर मान्तेसोरी-शिक्षा-पद्धतिका अध्ययन किया है। वे आजकल कलकत्ता-ब्राह्म-बालिका-विद्यालयके मान्तेसोरी-विभागमें शिक्षणका कार्य करती हैं। यहाँ चित्रमें वे मैडम मान्तेसोरीके साथ दीख पड़ती हैं।

—

हालमें कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-इंस्टीट्यूटमें एक कला-प्रदर्शिनी हुई थी, इस प्रदर्शिनीमें मुख्यतः कालेज और स्कूलोंकी छात्र-छात्राओंकी कला-कृतियोंका प्रदर्शन किया गया था। चित्रों तथा लकड़ीकी ...ी हुई चीज़ोंके अलावा सुईके कामकी जापानियोंका एक पृथक् विभाग भी था, जिसमें कपड़ोंपर रेशम तथा सूत आदिसे कसीदेके कलापूर्ण उदाहरण प्रदर्शित किये गये थे। इस विषयकी प्रतियोगितामें श्रीमती जहाँनाराको अपनी शिल्प-कृतियोंपर पुरस्कार मिला था।

वसन्तकुमारी-विधवाश्रमकी निवासिनी

लाहोर हाईकोर्टके जज जस्टिस सर अतुलचन्द्र चटर्जीकी स्वर्गीय धर्मपत्नी वसन्तकुमारी देवीने पुरीमें जो 'वसन्तकुमारी-विधवाश्रम' खोला था, आजकल उसका संचालन श्रीमती हेमलता देवीके हाथमें है। प्राय: डेढ़ वर्ष पहले श्रीमती हेमलता देवीने उसका कार्य-भार ग्रहण किया था। उस समय पुरीमें बालिकाओंकी शिक्षाकी कोई अच्छी व्यवस्था न थी, इसलिए उन्होंने विधवाश्रमके साथ-साथ एक 'नूतन बालिका-विद्यालय' भी खोला। आजकल यही विद्यालय यहाँकी बालिका-शिक्षाका मुख्य केन्द्र है।

स्त्रियाँ बागमें काम कर रही हैं

जिस समयसे विद्यालयका आरम्भ हुआ था, तभीसे उसे चारों ओरसे आर्थिक कठिनाइयाँ घेरे हुई हैं। इन कठिनाइयोंके होते हुए भी विद्यालयने जो सफलता प्राप्त की है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। हालमें इस स्कूलका वार्षिक पारितोषिक वितरण बड़े समारोहके साथ हुआ था।

—

श्रीमती सौदामिनी देवी बरहमपुर (मुर्शिदाबाद) में आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

श्रीमती हेमलता देवी
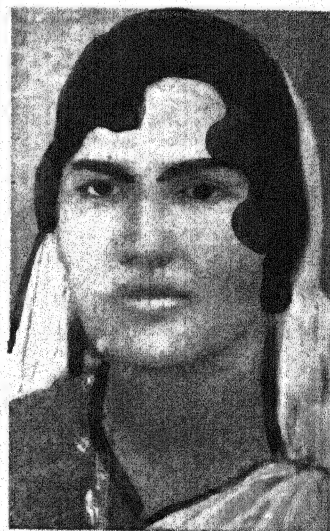
श्रीमती सौदामिनी देवी

डाक्टर थिलयम्बालम, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, लखनऊके इसाबेला थाबर्न कालेजमें जीवतत्त्व-विभागकी

अध्यापिका तथा लखनऊ-विश्वविद्यालयकी रीडर थीं। वे अमेरिकाके सुप्रसिद्ध वेलसली-महिला-कालेजमें एक वर्षके लिए विनिमय अध्यापिका नियुक्त हुई हैं। उनके स्थानमें वेलसली-कालेजके अध्यापक डा० आस्टीन लखनऊ आवेंगे। इन दोनोंने ही कोलम्बिया-यूनिवर्सिटीसे पी-एच० डी०की उपाधि प्राप्त की थी। डाक्टर विलयम्बालमने गत ८ अप्रैलको भारतसे अमेरिकाके लिए प्रस्थान किया है।

—

कुमारी डेना कूका और कुमारी भिकू बाटलीवाला नामक दो पारसी महिलाओंने इंग्लैंडमें बैरिस्टरीकी परीक्षा पास करके वकालत करनेका अधिकार प्राप्त किया है।

कुमारी डी० कूका

कुमारी भिकू बाटलीवाला

—

इस वर्ष काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयसे बी० ए० की परीक्षामें श्रीमती इन्दुमती बक्सीने ससम्मान सफलता प्राप्त की है। परीक्षार्थी स्त्रियोंमें उनका प्रथम स्थान रहा है। वे हिन्दू-विश्वविद्यालयकी पार्लामेंटकी कैबिनेटकी सदस्या भी निर्वाचित हुई हैं।

श्रीमती इन्दुमती बक्सी

सम्पादकीय विचार

साम्प्रदायिक निर्णय

साम्प्रदायिक निर्णय-सम्बन्धी वक्तव्यके दूसरे पैरेमें मि० मैकडानल्ड कहते हैं—

"हम शुरूसे ही जानते थे कि हम जो कुछ भी निर्णय करेंगे, प्रत्येक सम्प्रदाय कम-से-कम अपनी सम्पूर्ण माँगोंकी दृष्टिसे उसकी कड़ी आलोचना करेगा।"

इस वाक्यसे निर्णयका सबसे बड़ा दोष, या उसमें भरी हुई शरारत, अथवा उसका अनिष्टकारी भाव प्रकट नहीं होता, इसलिए आलोचकोंको उससे बहकना न चाहिए। इस निर्णयको इस दृष्टिसे बुरा कहना ठीक नहीं है कि वह किसी सम्प्रदायविशेषके स्वार्थोंके प्रतिकूल है, बल्कि इस दृष्टिसे उसपर आलोचना करनी चाहिए कि वह समस्त भारतीयोंके हितोंके प्रतिकूल है। वह ब्रिटेनके पक्षमें और भारतके विरुद्ध है।

जनतन्त्रवादी उत्तरदायित्वपूर्ण शासनकी सबसे आवश्यक बात यह है कि जो पार्टी या दल आज अल्प संख्यामें है, वह कल अपने विरोधियोंको अपने मतमें परिणत करके, या अन्य कारणोंसे, बहुसंख्यक बन सकें। इस प्रकार सभी दलोंको यह मौक़ा मिल सकेगा कि वे राष्ट्रको अपनी बुद्धिमत्ता, योग्यता और देशभक्तिका परिचय दे सकें। मगर यदि विधान किसी धार्मिक सम्प्रदायविशेषको ही एक बहुसंख्यक दल बनाकर स्थायी रूपसे उसके हाथमें शासन दे देता है, या यों कहिये कि उन्हें वास्तविक विदेशी शासकोंके हाथकी कठपुतली बना देता है, तो देशमें जनतन्त्रवादी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित नहीं हो सकता, और उत्तरदायित्वपूर्ण शासनसे होनेवाले सम्पूर्ण लाभ ही नष्ट हो जाते हैं। मैकडानल्डका साम्प्रदायिक निर्णय उत्तरदायी शासनके इस मूल सिद्धान्तपर ही कुठाराघात करता है, और यदि वह भारतमें परिचालित किया गया, तो भारत उत्तरदायी शासनकी समस्त सुविधाओंसे वंचित रह जायगा।

निर्णयमें हिन्दुओंके साथ अत्यन्त उपेक्षणीय और अपमानजनक अन्याय किया गया है—शायद इसका कारण यह है कि उत्तरदायी शासनकी प्राप्तिके लिए उन्होंने सबसे अधिक काम किया है। इस निर्णयके अनुसार उनकी स्थिति किसी भी प्रान्तमें नहीं सुधरी। हाँ, कई प्रान्तोंमें कमज़ोर हो गई है। इस बातसे प्रत्येक सच्चे देशभक्तको चिन्ता होगी, क्योंकि इससे देशमें न तो शान्ति ही हो सकेगी, और न उन्नति। अहिंसाके प्रेमी अपने सिद्धान्तसे गिर जायँगे, यदि वे सहयोग देकर इस साम्प्रदायिकतापूर्ण विधानको स्वीकार कर लेंगे, या इस निर्णयको दुरुस्त करनेमें कोई शान्तिपूर्ण और वैध उपाय बाक़ी छोड़ेंगे। बाक़ी रहे हिंसावादी और पशु-शक्तिमें विश्वास रखनेवाले, सो इस निर्णयसे उनपर क्या असर पड़ेगा, यह पता लगाना मेरे लिए असम्भव है।

यद्यपि इस निर्णयसे अत्यधिक चिन्ता उत्पन्न होगी, फिर भी निराश होनेका कोई कारण नहीं है। कठिनाइयाँ हमारे पुरुषार्थ और शक्तिकी परीक्षाके लिए ही हैं, और होती हैं, तथा उनके हल करनेमें ही हमारा पुरुषार्थ सिद्ध होता है। हिन्दू तथा अन्य राष्ट्रवादी—आमतौरपर हिन्दू—दबेंगे नहीं—वे कुचले नहीं जा सकते।

साम्प्रदायिक निर्णय केवल साम्प्रदायिक ही नहीं है। वह और भी कुछ है। साम्प्रदायिक निर्णयके यह मानी होना चाहिए कि वह व्यवस्थापिका सभाओंमें विभिन्न सम्प्रदायोंका यथोचित स्थान निर्धारित करता, मगर यह उससे कहीं आगे बढ़ा हुआ है। स्त्रियोंका कोई विशेष धार्मिक सम्प्रदाय नहीं है, और न यूरोपियन, ऐंग्लो-इंडियन, ज़मींदार, मज़दूर और दलित जातियों आदिका ही कोई पृथक् सम्प्रदाय है। मगर निर्णयमें इनको अलग सीटें प्रदान की गई हैं—शायद नौकरशाहीके इच्छानुसार उसके स्वार्थके लिए विभिन्न दलोंमें सामंजस्य (बैलेन्स) रखनेके लिए ऐसा किया गया है।

ब्रिटिश कैबिनेट भारतको जो विधान देना चाहती है, उसमें वह वह काम करना चाहती है, जिसे कोई भी स्वतन्त्र जाति, या स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए उत्सुक जाति बरदाश्त नहीं कर सकती। ब्रिटिश कैबिनेट भारतके वोटरों और जनताको—क्योंकि वोटर जनताके ही अंश हैं—ऐसा बाँट देना चाहती है, जिससे उनके लिए कोई सामूहिक या राष्ट्रीय काम करना असम्भव हो जाय। बिना सामूहिक और सम्मिलित शक्तिके न तो स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है, और न बनाये रखी जा सकती है। ऐसे सम्मिलित कार्यके बिना स्वतन्त्रताकी सीमाका विस्तार भी नहीं हो सकता। स्त्रियोंको पुरुषोंके विरुद्ध, एक जातिको दूसरीके विरुद्ध, एक वर्गको दूसरे वर्गके विरुद्ध और एकके हितको दूसरेके हितके विरुद्ध खड़ा करना ही इस निर्णयका मूल सिद्धान्त जान पड़ता है ; वैसे तो इस निर्णयके अन्तर्गत कोई ठीक सिद्धान्त है ही नहीं—वह विषमताओंसे भरा है। वह राष्ट्र-विरोधी है।

यह निर्णय जनसत्तावादके खिलाफ़ है। यह बात एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगी। इस निर्णयके अनुसार मुसलमान मुसलमानको, देशी ईसाई देशी ईसाईको और हिन्दू हिन्दू उम्मीदवारको ही वोट दे सकेगा। यदि कहीं, किसी मुसलमानकी दृष्टिमें कोई हिन्दू, ईसाई या अन्य ग़ैर-मुसलिम उम्मीदवार सबसे उपयुक्त और जनताका हितैषी है, तो वह उसे वोट देनेसे क्यों रोका जाय ? अथवा वह ग़ैर-मुसलिम उम्मीदवार मुसलमानोंकी सहायता पानेसे क्यों वंचित रहे ? अथवा यदि किसी हिन्दूकी दृष्टिमें कोई मुसलमान या ईसाई व्यक्ति ही चुनावके क़ाबिल है, तो हिन्दू वोटरको उस अहिन्दू उम्मीदवारके समर्थनसे और उम्मीदवारको हिन्दू वोटरकी सहायतासे क्यों रोका जाय ? भारतमें जिस थोड़े परिमाणमें प्रतिनिधि-संस्थाओंका परिचालन हुआ है, उसके इतिहाससे प्रकट है कि सैकड़ों हिन्दू वोटरोंने मुसलमान या ईसाई उम्मीदवारोंको और मुसलमान या ईसाई वोटरोंने हिन्दू उम्मीदवारोंको वोट दिये हैं, और इसका फल भी सदा अच्छा हुआ है। ठेठ सम्प्रदायवादी तो यही चाहेंगे कि १०० फीसदी हिन्दू या १०० फी-सदी मुसलमान, या १०० फीसदी ईसाई ही चुने जायँ ; मगर राजतन्त्रका हित तो इसीमें है कि उसके व्यवस्थापक और शासक विशाल हृदय और उदार व्यक्ति हों, जो प्रत्येक बातको विभिन्न मतों, सम्प्रदायों और दलोंकी दृष्टिसे देख सकें, न यह कि वे उसे धर्मान्धतापूर्ण तमसाच्छन्न संकीर्ण दृष्टिसे देखें।

विधानकी उन्नतिके नामपर और विदेशी शासनके समर्थनके लिए, सम्प्रदायवादियोंकी सहायता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे, स्वतंत्र नागरिकोंसे—जाति, धर्म और सम्प्रदायके विचारके बिना—उनकी दृष्टिमें सबसे योग्य व्यक्तिको वोट देनेका अधिकार छीना जा रहा है। दूसरी ओर उम्मीदवारसे उन वोटरोंके समर्थनका अधिकार छीना जा रहा है, जो उसे सबसे योग्य समझते हैं।

सम्मिलित निर्वाचन-पद्धतिमें अधिकांश मेम्बर चाहे जिस धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, या जातिके हों, वे सबके सम्मिलित मतसे निर्वाचित होंगे, और यह कहा जायगा कि वे सभी सम्प्रदायोंकी सहायतासे चुने गये हैं। इस प्रकार मेम्बरोंको भी सभी सम्प्रदायोंके प्रति अपना उत्तरदायित्व ज्ञात होगा, और उन्हें समझ पड़ेगा कि वे ऐसे काम करें, जिसमें सभीका हित हो। मगर पृथक निर्वाचनमें कुछ सूबोंमें अधिकांश मेम्बर केवल हिन्दुओं द्वारा चुने हुए हिन्दू होंगे, या मुसलमानों द्वारा चुने हुए मुसलमान होंगे, अथवा बंगालमें अपने-अपने सम्प्रदायों द्वारा निर्वाचित मुसलमान और अंगरेज़का सम्मिलित बहुमत होगा। इस प्रकार प्रत्येक प्रान्तमें बहुमतके द्वारा वास्तवमें विदेशी नौकरशाही ही शासन करेगी (क्योंकि अंगरेज़ोंका आधिपत्य रहेगा ही)। चूँकि इस बहुमतके चुनावके लिए सब लोग उत्तरदायी नहीं है, इसलिए साधारणतया ये मेम्बर भी सब सम्प्रदायोंके प्रति अपना उत्तरदायित्व महसूस न करेंगे। यह अत्यन्त अवांछनीय बात है। यह स्वायत्त या प्रतिनिधि-शासन नहीं है। यह शासन

ऐसे लोगोंके द्वारा होगा, जिनके चुनावमें सब दलोंका कोई सम्पर्क नहीं। इससे विभिन्न सम्प्रदायों और दलोंकी सेवा भी अपूर्णरूपसे होगी। उन्हें सभी मेम्बरोंकी सेवा प्राप्त करनेका हक्क न होकर केवल अपने दलविशेषके मेम्बरोंकी सेवा मिल सकेगी। जो लोग चुने भी जायँगे, वे अच्छे-से-अच्छे और योग्य-से-योग्य न होंगे। पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचनसे सम्प्रदायोंकी उन्नति और शक्तिमें भी वृद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि बाहरी प्रतियोगिता मिट जाती है।

पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन, सीटोंका रिज़र्व करना और संरक्षण (Weightage) देना मि० मैकडानल्डकी सुनिश्चित घोषणाके और लीग आफ़ नेशन्स द्वारा स्थापित अल्पसंख्यकोंकी रक्षा-सम्बन्धी संधियोंके मूल सिद्धान्तके भी विरुद्ध है। गत वर्ष राउण्डटेबुल कानफरेन्सके सम्बन्धमें बोलते हुए इन्हीं मि० मैकडानल्डने कहा था—

"यदि प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र किसी सम्प्रदाय या स्वार्थविशेषके लिए पृथक कर दिया जायगा, तो जिसे हम विशुद्ध राजनैतिक संगठन कहते हैं, उसके पनपनेके लिए जगह ही न रह जायगी...... हमें इसी समस्याका सामना करना है, क्योंकि यदि भारतमें स्वस्थ राजनैतिक जीवनका विकास करना है, तो राष्ट्रीय राजनैतिक पार्टियोंके लिए स्थान होना चाहिए—जो पार्टियाँ समस्त भारतके स्वार्थकी भावनापर अवलम्बित हों; ऐसे स्वार्थोंकी भावनापर अवलम्बित न हों, जिनका क्षेत्र समस्त भारतसे कुछ भी कम हो।"

इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश प्रधान मन्त्री पृथक निर्वाचनके खिलाफ़ थे। इसी स्पीचमें उन्होंने कहा था—

"इन भलेमानसों (सम्प्रदायवादियों) को यह विश्वास दिलाना बहुत कठिन है कि यदि आप किसी सम्प्रदायविशेषको संरक्षण (weightage) देंगे, तो सरक्षण शून्यसे नहीं आयेगा, उसे किसी दूसरे सम्प्रदायसे छीनकर ही देना पड़ेगा। जब वे यह देखते हैं, तो बौखला जाते हैं, और उन्हें मालूम होता है कि वे पक्की दीवारमें टक्कर मार रहे हैं।"

मगर अब जान पड़ता है कि निर्णय देनेमें यह पक्की दीवार ग़ायब हो गई! यह मैकडानल्ड साहबकी कल्पनाकी उड़ान-भर थी, क्योंकि सम्प्रदायवादियोंको संरक्षण प्राप्त करनेमें और ब्रिटिश कैबिनेटको संरक्षण देनेमें—मुसलमानोंको हिन्दुओंके मत्थे और बंगालमें अंगरेज़ोंको हिन्दू-मुसलमान दोनोंके मत्थे—किसी प्रकारकी दिक्क़त नहीं हुई।

कुछ लोग मि० मैकडानल्डकी सचाईमें शक करेंगे, और उन्हें रंग बदलनेका दोष देंगे; मगर यह ग़लत है। वे मौक़े-मौक़ेपर जैसी मजलिस देखते हैं, वैसा राग अलापते हैं। बस। फिर इसके लिए उनके सामने एक पुराना उदाहरण भी मौजूद है, क्योंकि मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-रिपोर्टमें पृथक निर्वाचनके खिलाफ़ दुनिया-भरकी दलीलें देकर फ़ैसला उसके पक्षमें ही दिया गया था।

मैंने हमेशा इस बातपर ज़ोर दिया है कि भारतके अल्पसंख्यकोंकी समस्या लीग आफ़ नेशन्स द्वारा अल्पसंख्यकोंकी रक्षाके सिद्धान्तोंके अनुसार हल होनी चाहिए। ये सिद्धान्त संसार-भरके बुद्धिमान-से-बुद्धिमान राजनीतज्ञोंकी सम्मिलित अक़्ल और राजनीतिज्ञताके परिणाम हैं। ये सिद्धान्त संसारके बीस देशोंकी अल्पसंख्यक समस्याके लिए व्यवहार किये जाते हैं, और ब्रिटिश तथा भारत-सरकार भी उन्हें मानती है। यह समस्या विशेषकर भारतके लिए ही नहीं है, वह यूरोपके अनेक देशोंमें बड़े उग्ररूपमें मौजूद है, और गत यूरोपियन युद्धके कारणोंमें से एक कारण भी थी।

ये सिद्धान्त लीगके समस्त सदस्योंके लिए लागू हैं, और लीगकी एसेम्बलीमें अनेक बार दोहराये गये हैं। लीगकी एसेम्बलीके तीसरे अधिवेशनमें यह प्रस्ताव पास हुआ था—

"यह एसेम्बली आशा करती है कि जो देश अल्पसंख्यकोंके सम्बन्धमें लीगसे किसी प्रकारके क़ानूनी नियमोंसे बँधे नहीं हैं, वे भी अपने यहाँके जातीय, धार्मिक या भाषा-सम्बन्धी अल्पसंख्यकोंके साथ कम-से-कम न्याय और सहिष्णुताका वह उच्च आदर्श बर्तेंगे, जो लीगसे बँधे हुए देशोंके लिए अल्पसंख्यक सन्धिके अनुसार निर्धारित है।"

मगर भारतके बारेमें इन सिद्धान्तोंसे काम नहीं लिया गया। ब्रिटिश पर-राष्ट्र-सचिव मि० आर्थर

हैंडरसनने जनवरी १९३१ में लीगकी कौंसिलके सभापतिकी हैसियतसे कहा था—"अल्पसंख्यकोंकी रक्षाके निमित्त लीग आफ़ नेशन्सने जो पद्धति चलाई है, वह अब यूरोपके तथा संसारके पब्लिक क़ानूनका अंश बन गई है।" मगर भारतवर्ष संसारके बाहर है! इसलिए उसके लिए "न्यायका उच्च आदर्श"—या वास्तवमें न्यायका कोई भी आदर्श—लागू नहीं होता।

लीग आफ़ नेशन्सकी संधि जातीय, धार्मिक और भाषा-सम्बन्धी भेदोंपर अवलम्बित अल्पसंख्यकोंको उनकी जातीय संस्कृति, रीत-रवाज, भाषा तथा इसी प्रकारकी अन्य बातोंके लिए संरक्षण देती है। उसमें किसी दलविशेषके पृथक् व्यापारिक, आर्थिक या राजनैतिक स्वार्थ (जैसे, चार दिनके लिए रुपया कमानेकी गरज़से आये हुए अंगरेज़ व्यापारी, या ज़मींदार और देशी व्यापारियोंके स्वार्थ) स्वीकार नहीं किये जाते, और न अब्राह्मणों या अछूतोंकी भाँति सामाजिक दल ही अल्पसंख्यकोंमें शुमार किये जाते हैं, इसीलिए यूरोपके किसी भी देशके—टर्की तकके—विधानमें पृथक निर्वाचन नहीं मिलता।

प्रत्येक भारतीयको चाहे वह बहुसंख्यक सम्प्रदायका हो, या अल्पसंख्यक सम्प्रदायका, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि किन बातोंकी पूर्तिके लिए और किन दोषोंके बचावके लिए लीग आफ़ नेशन्सने यह अल्पसंख्यक संधि बनाई है। ९ दिसम्बर १९२५ को ग्रेट ब्रिटेनके प्रतिनिधि सर आस्टेन चैम्बरलेनने लीगकी कौंसिलमें कहा—

"अल्पसंख्यकोंकी रक्षाके लिए जो पद्धति निकाली गई है, उसका यह मंशा नहीं है कि किसी राष्ट्रके भीतर एक ऐसा सम्प्रदाय बना दिया जाय, जो स्थायी रूपसे राष्ट्रीय जीवनसे उदासीन रहे। उसका मंशा यह है कि अल्पसंख्यकोंको उस परिमाणमें रक्षा और न्याय मिलता रहे, जो धीरे-धीरे उन्हें देशके राष्ट्रीय सम्प्रदायमें घुल-मिलकर एक होनेके लिए तैयार करे।"

इससे यह स्पष्ट है कि लीग आफ़ नेशन्सने जिन दोषोंको दूर करनेकी कोशिश की है, ब्रिटिश कैबिनेटके साम्प्रदायिक निर्णयमें भारतमें उन्हीं दोषोंको उपजानेकी कोशिश की गई है।

सम्प्रदायोंकी माँगोंके बारे मैकडानल्ड साहबने कहा है कि किसी भी सम्प्रदायकी सब माँगें पूरी न होनेसे हरएक सम्प्रदायवाले उनके निर्णयको बुरा कहेंगे। इस विषयमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि सम्पूर्ण हिन्दुओंने अपने लिए कभी कोई विशेष अधिकार या हक़ नहीं माँगा। हिन्दू-महासभाने इस बातको लगातार घोषित किया है। समस्त भारत या किसी भी प्रान्तके हिन्दुओंने तभी प्रतिवाद किया है, जब उन्होंने देखा कि निर्णय राष्ट्रके जनसत्तात्मक आदर्शके विरुद्ध है, या उनके मत्थे अन्य दुलारे सम्प्रदायोंको संरक्षण दिया जा रहा है। निर्णयके सम्बन्धमें मेरा विरोध इसलिए नहीं है कि हिन्दुओंको कोई विशेष अधिकार नहीं मिले, क्योंकि हिन्दू तो विशेष अधिकार माँगते ही न थे। मेरा विरोध इसलिए है कि प्रथमतः ब्रिटिश शासकों और ब्रिटिश व्यापारियोंके स्वार्थके लिए और द्वितीयतः भारतके अन्य सम्प्रदायोंके एक स्वार्थलोलुप खुशामदी अंशके स्वार्थके लिए हिन्दुओंके ही नहीं, वरन समस्त भारतके स्वार्थोंका ख़ून कर दिया गया है।

मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-योजनामें प्रथक निर्वाचनके साथ जो सम्प्रदाय, दल या गुट बनाये गये थे, उनकी संख्या मदरासमें १० और अन्य सब प्रान्तोंमें १०से कम थी। मगर शायद ब्रिटिश कैबिनट यह समझती है कि विधानकी उन्नतिके साथ-साथ देशमें फूट भी बढ़नी चाहिए, इसीलिए उसने अब पूरे डेढ़ दर्जन पृथक निर्वाचनवाले गुट (ग्रूप) बना डाले हैं। यद्यपि सभी प्रान्तोंमें ये समस्त गुट न मिलेंगे, फिर भी अधिकांशमें उनकी अधिकांश संख्या मिलेगी।

मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-योजनामें कहा गया था कि दस वर्षके बाद सुधारपर पुनः विचार करके उसकी उन्नति की जायगी। जो लोग अंगरेज़ोंके राजनैतिक स्वभावकी सर्वांगपूर्णतामें असीम विश्वास रखते थे, वे समझते थे कि दस वर्षके बाद ही हिन्दुस्तानमें एकदम राम-राज्य स्थापित हो जायगा। उन्हें इस निर्णयसे इस राम-राज्यका कुछ स्वाद मिल जायगा। मि० मैकडानल्ड

कहते हैं कि सम्प्रदायोंकी रज़ामन्दीसे दस वर्ष बाद इस निर्णयपर पुनर्विचार होगा। सन् १९३३ के पुनर्विचारमें तो भारतके १० टुकड़ेसे १८ टुकड़े कर डाले गये, अब १९४३ के पुनर्विचारमें देखिये कितने अधिक टुकड़े बढ़ते हैं।

भारतके तीन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत है—सीमान्त-प्रदेश, बंगाल, पंजाब। सीमान्त-प्रदेशमें हिन्दुओं तथा अन्य नाम-विहीन सम्प्रदायोंको अवश्य ही कुछ संरक्षण (weightage) दिया गया है। बाकी दोनों प्रान्तोंमें अल्पसंख्यक हिन्दुओंको संरक्षण (weightage) मिलना तो दूर रहा, अपनी संख्याके अनुपातके अनुसार वे जितनी सीटोंके हक़दार हैं, उनमें भी कमी कर दी गई! और यह इसलिए कि यूरोपियन और ऐंग्लो-इंडियनोंको संरक्षण दिया जाय! यद्यपि मुसलमानोंको भी संख्याके अनुसार जितनी सीटें मिलनी चाहिए थीं, उतनी नहीं मिलीं; उनके हिस्सेमें से भी काट-छाँट की गई है, मगर इस कटौतीका अधिक भाग हिन्दुओंके मत्थे मढ़ा गया है। फिर मुसलमानोंको यह विश्वास है कि यह कटौती उनके मित्र यूरोपियनों और ऐंग्लो-इंडियनोंको, जिन्होंने उन्हें अपना खिलौना बना रखा है, मिल रही हैं।

बंगालमें हिन्दुओंको, २५० में से कुल ८० सीटें मिलेंगी, जिनसे १० दलित जातियोंके लिए निकल जायँगी। यदि हिन्दू मज़दूर, यूनिवर्सिटी, ज़मींदार आदिके लिए रिज़र्व सभी सीटें पा जायँ, तो भी उनकी संख्या १०० से अधिक न होगी। मगर यह बात सभी जानते हैं कि देशकी सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा और व्यापार-सम्बन्धी उन्नतिके लिए सबसे अधिक प्रयत्न और त्याग हिन्दुओं ही ने किया है।

ईसाइयों या मुसलमानोंमें भी दलित जातियाँ या अंश मौजूद हैं, मगर उनके लिए पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया।

अंगरेज़ोंको जो अत्यधिक संरक्षण दिया गया है, उसके लिए कहा गया है कि बंगालमें उनके बहुत बड़े स्वत्त्व (Stakes) हैं, मगर बंगालमें हिन्दुओंके स्वत्त्व मुसलमानोंकी बनिस्बत बहुत ज्यादा हैं; क्योंकि ७० प्रतिसैकड़ा टैक्स हिन्दू लोग ही देते हैं। मगर हिन्दुओंके राजनैतिक विचार खलनेवाले हैं, इसलिए उनके स्वत्त्वका कोई विचार नहीं किया गया। अतः अब बंगालमें हिन्दू पैसा देंगे, और मुसलमान पैसा खर्च करेंगे।

बंगालकी ५,०१,२२,१५० की जनसंख्यामें यूरोपियन, ऐंग्लो-इंडियन और देशी ईसाइयोंकी सम्मिलित संख्या १,८०,५७२ यानी ⅓ फीसदी है, और इसपर उन्हें सब मिलाकर (यूरोपियन व्यापारी सीटों समेत) १३ प्रतिसैकड़ा सीटें दी गई हैं, यानी उन्तालीस गुणा संरक्षण। कैसा न्यायपूर्ण बँटवारा है! इसमें से अधिकांश यूरोपियनोंको मिलेंगी। यूरोपियनोंकी संख्या सम्पूर्ण आबादीका ५०/१०० है, जिसपर उन्हें १० प्रतिसैकड़ा सीटें दे डाली गई हैं—यानी अपनी वास्तविक संख्यासे दो सौ गुना ज्यादा भाग उनको दिया गया है। ब्रिटिश कैबिनेटके न्यायपूर्ण बँटवारेका इससे अच्छा क्या उदाहरण होगा?

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

ओटावा-कानफ़रेन्सका परिणाम

भारत-सरकारकी ओरसे जो प्रतिनिधि-मंडल ओटावा-कानफ़रेन्समें सम्मिलित होनेके लिए भेजा गया था, उसने ब्रिटिश प्रतिधिनियोंके साथ एक व्यापारिक समझौता किया है। यह समझौता भारत और ब्रिटेनके बीच व्यापार और टेरिफके सम्बन्धमें है। इस व्यापारिक समझौतेको भारत-सरकारने मंजूर कर लिया है। अब इसे व्यवस्थापिका-परिषद्के आगामी अधिवेशनमें उपस्थित करके उसकी स्वीकृति लेने-भरकी देर है। ब्रिटेनने सिर्फ़ भारतके साथ ही नहीं, बल्कि अन्य उपनिवेशोंके साथ भी व्यापारिक समझौता किया है; किन्तु उपनिवेशोंके समझौतेमें और भारतके समझौतेमें बहुत अन्तर है। स्वराज्यभोगी उपनिवेशोंके

प्रतिनिधियोंने अपने देशके सर्वोत्तम स्वार्थोंपर ध्यान रखकर ही समझौता किया है ; किन्तु भारतके प्रतिनिधियोंने भी ऐसा ही किया है, यह कहना सन्देहसे रहित नहीं है। यदि यह बात नहीं होती, तो विलायतके बहुतसे समाचारपत्र इस बातपर खेद प्रकट नहीं करते कि ब्रिटेनने अपने निर्यात-व्यापारके आंशिक लाभके लिए उपनिवेशोंको बहुत-कुछ सुविधाएँ प्रदान की हैं। इसके फलस्वरूप ब्रिटेनको कई तरहकी खाद्य-सामग्रियोंका अधिक मूल्य देना पड़ेगा ; किन्तु जहाँ उपनिवेशोंके सम्बन्धमें यह बात है, वहाँ भारतके सम्बन्धमें सबके सब समाचारपत्र चुप हैं। किसीने भी इस व्यापारिक समझौतेकी शिकायत नहीं की! क्यों? इसलिए कि यदि समझौतेकी शर्तोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय, तो मालूम होगा कि इससे भारतकी अपेक्षा ब्रिटेन ही अधिक लाभान्वित हुआ है, और भारतको यदि कुछ लाभ भी है, तो उसकी अपेक्षा उसकी क्षति ही अधिक होनेकी सम्भावना है। भारतके प्रायः सभी प्रमुख व्यापारियोंने इस समझौतेको आपत्तिजनक बताया है। सर पुरुषोत्तमदासके मतसे—"भारतीय किसानोंके लिए यह समझौता हानिकारक हो सकता है।" श्रीयुत बिड़लाजीकी रायमें इसे—"एक उचित व्यवहार कहना कठिन है।" बम्बईके एक प्रमुख अर्थशास्त्री मि० मन्नू सूबेदारके शब्दोंमें—"भारतके लिए इम्पीरियल प्रेफरेन्सका सम्पूर्ण सिद्धान्त ही हास्यास्पद है।" यह तो प्रमुख व्यापारियोंकी राय हुई। अब इसकी शर्तोंकी परीक्षा कीजिए।

ब्रिटेनने अपने यहाँ बाहरसे आनेवाली चीज़ोंपर १० फी-सदी कर लगाया है। इस समझौतेके अनुसार भारतसे इंग्लैंड जानेवाली बहुतसी चीज़ें इस करसे बरी समझी जायँगी। यदि भारत यह समझौता न करता, तो आगामी १५ नवम्बरसे उसे उन सब चीज़ोंपर सैकड़े १० कर देना पड़ता, जो चीज़ें यहाँसे इंग्लैंड रफ्तनी हुआ करती हैं। इसके बदलेमें भारतके प्रतिनिधियोंने यह कबूल कर लिया है कि वे ब्रिटेनकी चन्द क़िस्मकी मोटर-यानोंपर ७॥ सैकड़ा और अन्य बहुतसी वस्तुओंपर सैकड़े १० प्रेफरेन्स प्रदान करेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रिटेनसे जो मोटरगाड़ियाँ आवेंगी, उनपर अन्य देशोंकी मोटरगाड़ियोंकी अपेक्षा सैकड़े ७॥ कम कर लगेगा। इसके अलावा और जितने विलायती माल इस देशमें आवेंगे, उन सबपर अन्य विदेशी मालकी अपेक्षा सैकड़े १० कम कर लगेगा। भारतका निर्यात-व्यापार यदि एकमात्र ब्रिटिश साम्राज्यको ही लेकर परिमित रहता, तब तो यह व्यवस्था ठीक कही जा सकती थी ; किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यकी अपेक्षा सारे संसारका व्यापार भारतके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। भारतके निर्यात-व्यापारमें ब्रिटेनका हिस्सा सैकड़े २४ के लगभग है ; दूसरे शब्दोंमें ग्रेट-ब्रिटेन तथा साम्राज्यके अन्य देश भारतीय निर्यात-व्यापारका $\frac{2}{5}$ भाग ख़रीद करते हैं। बाक़ी $\frac{3}{5}$ भाग अन्य देश। अतएव विलायती मालको प्रेफरेन्स देनेका अर्थ है अपने इन ख़रीददारोंको दुश्मन बनाना और उन्हें बदला लेनेके लिए उत्तेजित करना। हमारे इन विदेशी ख़रीदारोंमें जापान, अमेरिका, जर्मनी, बेलजियम आदि मुख्य हैं। भारतके कच्चे मालके ये बहुत बड़े ख़रीददार हैं। सन् १९३०-३१ में इन देशोंने भारतसे ७० करोड़ रुपयेका माल ख़रीदा था। एक ओर यह ७० करोड़ है, और दूसरी ओर इस व्यापारिक समझौतेसे लगभग ५४ करोड़के मालपर हमें ब्रिटेनने सुविधा प्रदान की है। यदि इस व्यवहारको हम भारतके लिए लाभप्रद कहें, तो फिर हानिकारक क्या हो सकता है, यह हमारी समझमें नहीं आता?

असल बात तो यह है कि गत कई वर्षोंसे विलायती मालकी आमदनीमें जो क्रमशः ह्रास हो रहा है, उस ह्रासकी गतिको रोकनेके लिए ही ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने इम्पीरियल प्रेफरेन्सका यह उपाय ढूँढ़ निकाला, और आख़िर इसे भारतके गले मढ़ ही तो दिया। नहीं तो अभी कुछ वर्ष पहले जिस 'इम्पीरियल प्रेफरेन्स' की नीतिको 'फ़िस्कल कमेटी' की रिपोर्टमें

भारतके लिए अग्राह्य बतलाया गया था, वही आज भारतके लिए ग्राह्य क्योंकर हो गई ? यदि ब्रिटेन और भारतके बीच यह समझौता समान लाभालाभकी दृष्टिसे होता, तो ब्रिटेन अमेरिकाके कपासपर ड्यूटी लगाकर भारतीय कपासको प्रेफरेन्स देता ; किन्तु ब्रिटेनकी ओरसे इस प्रकारका कोई वचन नहीं दिया गया है ।

इस प्रकार यदि विशुद्ध व्यापारिक दृष्टिसे देखा जाय, तो भी यह समझौता भारतके लिए लाभजनक नहीं कहा जा सकता । राजनीतिक दृष्टिसे तो यह सर्वथा असंगत है ही, क्योंकि जिस साम्राज्यमें भारतका स्थान एक पराधीन एवं परवश देश-जैसा हो, उस साम्राज्यके साथ व्यापारिक समझौता कैसा ? राजनीतिक दासता और आर्थिक मित्रता ये दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं । जब तक भारत परतन्त्र है, तब तक इस प्रकारका कोई समझौता करना उसके लिए अपमानजनक है, यदि भारत-सरकारका यह विश्वास है कि यह समझौता भारतकी हित-दृष्टिसे उचित है, तो उसे देशकी व्यापारिक संस्थाओंका मत संग्रह करना चाहिए । अथवा यदि यह नहीं, तो व्यवस्थापिका परिषद्के केवल निर्वाचित सदस्योंका ही मत इस विषयपर लेना चाहिए। लोकमतकी कसौटी इससे बढ़कर और क्या हो सकती है ? किन्तु सरकार यह सब करेगी थोड़े ही । वह व्यवस्थापिका परिषदके सरकारी और नामज़द सदस्योंके वोटपर इसे पास कराकर निश्चिन्त हो जायगी।

विदेशी सूती कपड़ेपर करवृद्धि

पाठकोंको मालूम होगा कि जापानी वस्त्र-व्यवसायकी अनुचित प्रतियोगिताके कारण भारतीय वस्त्र-व्यवसायियोंको अभूतपूर्व संकटका सामना करना पड़ रहा है । इस संकटसे परित्राण पानेके लिए उन्होंने भारत-सरकारके पास आवेदन किया था, जिसके फलस्वरूप टेरिफ बोर्डके ऊपर भारतीय वस्त्र-व्यवसायकी अवस्थाका अनुसन्धान-कार्य सौंपा गया । गत फरवरी माससे जापानी कपड़ेकी आमदनीमें वृद्धि होने लगी है, और जूनमें तो इतनी अधिक आमदनी हुई कि भारतका सारा बाज़ार ही जापानी कपड़ेसे एकबारगी पट गया । जापानी कपड़ेके सस्तेपनके सामने भारतीय मिलोंके कपड़ेका टिकना असम्भव हो गया । जापानी कपड़ेके इस सस्तेपनका कारण जापानी सिक्का येनकी दरमें क्रमशः ह्रास बताया जाता है । रुपयेके मूल्यके हिसाबसे येनके मूल्यमें इस समय १०० और ८६ का अन्तर है । टेरिफ बोर्डने भी अपनी जाँचके फलस्वरूप इस बातको स्वीकार किया है कि जापानी कपड़ेके सस्तेपनका मुख्य कारण जापानी सिक्का येनके मूल्यमें ह्रास है । टेरिफ बोर्डकी सिफारिशोंको मानकर सरकारने विलायतीके सिवा और सभी विदेशी सूती कपड़ेपर इस समय जो कर लगता है, उसे बढ़ाकर सैकड़े ५० कर दिया है । अर्थात् प्रति पाउण्ड ३½ आनेसे ड्यूटी बढ़ाकर ५¼ आना कर दी गई है । इस समय विदेशी कपड़ेपर सैकड़े २० ड्यूटी लगती है । इसके अलावा ११¼ सैकड़ा अतिरिक्त कर 'सरचार्ज' सन् १९३१ के 'फाइनेंस ऐक्ट'के अनुसार लगता है । इस सैकड़े ५० करवृद्धिपर अतिरिक्त कर 'सरचार्ज' नहीं लगेगा, इसलिए असलमें विदेशी कपड़ेपर १८¾ सैकड़ा ही करवृद्धि हुई है । यह करवृद्धि फौरन कार्यरूपमें परिणत कर दी गई है, और इसकी मियाद ३१ मार्च सन् १९३३ तक रहेगी ।

इस करवृद्धिसे भारतीय वस्त्र-व्यवसायको यथेष्ट लाभ हो सकेगा या नहीं, इसमें पूरा सन्देह है ; क्योंकि येनके मूल्यमें क्रमशः ह्रास ही होता जा रहा है । यही कारण है कि भारतीय वस्त्र-व्यवसायी इस निर्णयको असन्तोषजनक समझते हैं । हाँ, इसका एक परिणाम यह अवश्य होगा कि इससे जापानी कपड़ेकी प्रतियोगितामें विलायती कपड़ेको भारतके बाज़ारमें सुविधाएँ मिलेंगी ।

साम्प्रदायिक निबटारा और हमारा कर्तव्य

साम्प्रदायिक निबटारेने भारतके विचारशील आदमियोंके सामने एक जटिल समस्या उपस्थित कर दी है। प्रधान मन्त्रीने यह निबटारा किस उद्देश्यसे किया है, इस प्रश्नपर वाद-विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं, मुख्य प्रश्न यह है कि इसका परिणाम क्या होगा? इसका उत्तर केवल एक ही हो सकता है, यानी यह भारतवर्षको भिन्न-भिन्न भागोंमें विभाजित कर देगा, राष्ट्रीय जीवनको नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, साम्प्रदायिकताके विषको दूर-दूर तक और अथाह गहराई तक पहुँचा देगा, फूटके बीज बो देगा, और हिन्दुओंको हिन्दुओंसे, हिन्दूको मुसलमानोंसे, सिखोंको मुसलमानोंसे, हिन्दुओंको ईसाइयोंसे, ज़मींदारोंको किसानोंसे तथा स्त्रियोंको स्त्रियोंसे आपसमें भिड़ा देगा। कट्टर धार्मिकता या धर्मान्धताकी जड़को यह निपटारा अधिक मज़बूत कर देगा, और यदि किसीका इससे हित होगा, तो साम्राज्यवादियोंका; क्योंकि इसके द्वारा वे भारतमें चाहे जब गृह-कलह उत्पन्न करा सकेंगे। ऐसी स्थितिमें हमारा क्या कर्तव्य है? यह बात तो निश्चित ही है कि कांग्रेस इस निपटारेको हर्गिज़ न मानेगी, लेकिन केवल न मानना ही पर्याप्त नहीं है। उसे कोई रचनात्मक कार्य भी ऐसा करना चाहिए, जो इस साम्प्रदायिकताकी बीमारीको बढ़नेसे रोके। हमारी समझमें सर्वोत्तम उपाय यही है कि कांग्रेस अब अपना कार्यक्रम ज़ोरोंके साथ साम्यवादका प्रचार करना बना ले। जब तक कांग्रेस अपना कोई आर्थिक प्रोग्राम नहीं बनाती, तब तक इस प्रकारके झंझट बराबर उठ खड़े होते रहेंगे। धर्मान्धताका नाश करना भी कांग्रेसका मुख्य कर्तव्य होना चाहिए।

आप किस धर्मके अनुयायी हैं, मन्दिरमें पूजा करते हैं, या मसजिदमें नमाज़ पढ़ते हैं; वेदोंपर विश्वास रखते या कुरानपर; मांसाहारी हैं, या शाकाहारी; छानके पानी पीते हैं, या बिना छना हुआ—ये सब आपकी प्राइवेट बातें हैं। इनसे राष्ट्रीयतासे क़तई ताल्लुक़ नहीं। आपका और आपके परमात्मा या ख़ुदाका सम्बन्ध निजी है—प्राइवेट है—और उसे पब्लिक बनाकर आपसमें सिर फुड़ौवल करानेका आपको कोई अधिकार नहीं। कांग्रेसको एक निश्चित प्रोग्राम बना देना चाहिए कि हम किसानों तथा मज़दूरोंके लिए यह करना चाहते हैं, स्वाधीनता मिलनेपर हम उनके लिए यह कार्य करेंगे, और इसका सन्देश प्रत्येक किसान और मज़दूरके कान तक पहुँचा देना चाहिए। भारतमें यदि कोई संस्था सच्चा स्वराज्य स्थापित करना चाहती है, तो वह किसानों और मज़दूरोंको बिना अपने साथ लिये ऐसा नहीं कर सकती, और ग़रीब किसान और मज़दूर अपना हित अच्छी तरह पहचानते हैं। न तो अम्बालाल साराभाई अपनी मिलमें काम करनेवाले किसी हिन्दू मज़दूरको अधिक वेतन दे देंगे, और न फज़लभाई क़रीमभाई किसी मुसलिम मज़दूरको ज्यादा मज़दूरी। मज़दूरोंके लिए दोनों समान हैं। यही हाल किसानोंका भी है। 'भूखे भजन न होइ गुपाला'। किसान और मज़दूर भूखे हैं; जो आदमी उन्हें यह विश्वास दिला सकेगा कि तुम्हें पेट-भर भोजन देंगे, और तुम्हारे अधिकारोंकी रक्षाके लिए लड़ेंगे, वही उनके हृदयको ग्रहण कर सकेगा। भूखकी बीमारी ऐसी है कि उसका इलाज न तो डा० मुंजे कर सकते हैं, और न यह गज़नवी और इक़बालके ही बूतेका रोग है। वह तो पुष्टिकारक भोजनसे ही जा सकता है। साम्प्रदायिक निपटारेका सबसे अधिक घातक परिणाम यह होगा कि इससे साम्प्रदायिक नेताओंका बल बढ़ेगा, और यह बात दरअसल वांछनीय नहीं है। हमारा कर्तव्य है कि सर्वसाधारणकी शक्तियोंको ठीक दिशामें ले जायँ। यदि ये शक्तियाँ साम्प्रदायिक नेताओंके कब्ज़ेमें आ गईं, तो तो फिर यह देश, बक़ौल पं० पद्मसिंह, मौलवीनुमा आतिशफ़िशाँओंका क्रीड़ास्थल बन जायगा, जो लगातार साम्प्रदायिक लावा उगला करेंगे, और ख़िरमने-अमनको फूँक देंगे।

देशके नवयुवकोंका कर्तव्य है कि वे इस साम्प्रदायिकताके विषको कदापि आगे न बढ़ने दें। झूठी धार्मिकताके विरुद्ध आन्दोलन करना हम सबके लिए अब नितान्त आवश्यक हो गया है। इस अंकमें अन्यत्र श्रीयुत इन्द्रका लेख प्रकाशित किया जाता है। उनके विचारोंसे हम सर्वथा सहमत हैं, और यदि हमारे पास साधन होते, तो उसकी लाखों ही प्रतियाँ सर्वसाधारणमें बँटवा देते। श्रीयुत इन्द्रजीने रोगका निदान बिलकुल ठीक ढंगसे किया है, और यद्यपि इस ढंगसे इलाज करनेमें दक़ियानूसी आदमियोंका बहुत-कुछ विरोध सहना पड़ेगा, पर अन्तमें यही उपचार कारगर होगा। अन्य प्रकारकी चिकित्सासे अन्य उपद्रवोंके उठ खड़े होनेकी आशंका है।

संक्षेपमें हम यही कहना चाहते हैं कि प्रधान मंत्रीके साम्प्रदायिक निपटारेका हमें एक ही जवाब देना चाहिए—"जनाब, आपका यह निपटारा पारस्परिक असमानता और सत्यानाशी धर्मान्धताके उन कीटाणुओंको बढ़ायेगा, जिनको साम्यवादकी रामवाण औषधि द्वारा नष्ट करनेका हमने निश्चय कर लिया है।"

—

श्रीमान नरसिंह चिन्तामणि केलकरका सम्मान

लोकमान्य तिलकके सुयोग्य सहकारी श्रीमान नरसिंह चिन्तामणि केलकरकी इकसठवीं वर्षगाँठके अवसरपर समस्त महाराष्ट्रमें उनके सम्मानार्थ सभाएँ की गईं, बीसियों सभा-समितियोंके ओरसे उनको अभिनन्दनपत्र दिये गये, कितने पत्रोंने अपने केलकर-अंक निकाले और एक सुन्दर ग्रन्थ भी, जिसमें मुख्यतया उन्हींके विषयके लेख हैं, उन्हें भेंट किया गया। इस अवसरपर केलकर महोदयने अपनी ओरसे १०-१२ हज़ार रुपयेके दानकी भी घोषणा की। वे उच्चकोटिके राजनीतिज्ञ तो हैं ही, पर साथ-ही-साथ बहुत अच्छे साहित्यिक भी हैं, और जो लोग मराठी जानते हैं, वे उनकी लेख-शैलीकी अत्यन्त प्रशंसा करते हैं। सार्वजनिक प्रश्नोंका उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है, और उनके लेख उपयोगी बातों और आवश्यक अंकोंसे परिपूर्ण रहते हैं। ३६ वर्षसे वे 'केसरी' द्वारा महाराष्ट्र जनताकी सेवा कर रहे हैं, और यदि 'केसरी'का आज सम्पूर्ण महाराष्ट्रमें अद्वितीय प्रभाव तथा अद्भुत सम्मान है, तो उसका कारण मुख्यतया केलकरजीका परिश्रम ही है। बिना 'केसरी' पढ़े महाराष्ट्र पाठकको सन्तोष नहीं होता; चाहे वह कितने ही दूसरे पत्र पढ़ ले। इधर हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंमें तो श्रद्धेय गणेशजीका 'प्रताप' ही एक ऐसा पत्र रहा है, जिसने कुछ अंशोंमें हिन्दी-पाठकोंके लिए 'केसरी'का पोज़ीशन पाया था। गणेशजीकी लेख-शैली भी बड़ी सजीव थी; उसमें ओज था, प्रवाह था और अपनी उल्लेखयोग्य विशेषता थी, पर हम लोगोंके दुर्भाग्यसे भरे यौवनमें उनके जीवनका अन्त हो गया। अब हमारे प्रान्तमें जो राजनैतिक नेता, या कार्यकर्ता हैं, उनमें शायद ही कोई ऐसा हो, जिसे उच्चकोटिका साहित्यिक कहा जा सके।

बंगाल तथा महाराष्ट्रमें साहित्य-सेवियोंके सम्मान करनेकी जो प्रथा है, वह हम हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए भी अनुकरणीय है, पर हमारे नवयुवक लेखक तो "स्वयं प्रतिभात् वेद" हैं, और वे बुज़ुर्गोंका अदब करनेके बजाय, उन्हें 'साहित्यिक ठूँठ' कहनेमें ही अपना गौरव समझते हैं!

अस्तु, इस शुभ अवसरपर 'विशाल-भारत' भी श्रद्धेय केलकर महोदयके चरणोंमें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, और उनके शतायु होनेके लिए प्रार्थना करता है।

—

पूर्व-अफ्रिकामें कुँवर महाराजसिंहका स्वागत

'विशाल-भारत'के पाठक इस बातको जानते होंगे कि कुँवर महाराजसिंहको भारत-सरकारने अपना प्रतिनिधि बनाकर दक्षिण-अफ्रिका भेजा है। गत १३ जुलाईको उन्होंने बंबईसे दरबनके लिए प्रस्थान किया था, और तीसरी

अगस्तको वहाँ पहुँच भी गये। मार्गमें पूर्व-अफ्रिकाके बन्दरगाहोंपर उनका और उनकी धर्मपत्नी कुँवरानी साहिबाका भारतीय जनताने अच्छा स्वागत किया। पूर्व-अफ्रिका कुँवर साहबके लिए कोई नवीन जगह नहीं थी। सन् १९२७ में वे मि० यूबैंकके साथ केनिया, युगाण्डा, टांगानिक्या और जंज़ीबारकी यात्रा कर आये थे। उस समय भारत-सरकारने उन्हें वहाँ इसलिए भेजा था कि वे वहाँके प्रवासी भारतीयोंको हिल्टन-यंग-कमीशनके सामने अपना मामला पेश करनेमें सहायता दें। तब उन्होंने जो उपयोगी कार्य वहाँके भाइयोंके लिए किया था, उसकी प्रशंसा अब भी पूर्व-अफ्रिकावाले किया करते हैं। कुँवर साहब बड़े सुसंस्कृत व्यक्ति हैं, मिलनसार हैं, और आफ़ीसरीकी उनमें बू तक नहीं। साथ ही प्रवासी भाइयोंके प्रश्नोंमें भी उनकी रुचि है, और सबसे बड़ी बात यह है कि उनमें सेवा-भाव भी है। मोम्बासा, जंज़ीबार और दार-ऐस्सलाममें जितनी देर जहाज़ ठहरा, उतनी देरमें ही उन्होंने वहाँके भारतीयोंसे मिल-जुलकर उनकी कठिनाइयोंका वृत्तान्त पूछा, और जो कुछ उनसे बन सका, उन लोगोंकी सहायताके लिए किया भी। चूँकि वे सारे मामलेको पहलेसे समझे हुए थे, इसलिए उन्हें प्रवासी भारतीयोंको परामर्श देनेमें भी संकोच नहीं हुआ। यदि उनकी जगहपर कोई अनुभवहीन आदमी, साम्प्रदायिक तिकड़मबाज़ीके अनुसार, भेज दिया जाता, तो सारा रंग फीका पड़ जाता। अभी जब हम 'केनिया डेलीमेल', 'टांगानिक्या हेराल्ड', 'टांगानिक्या आपीनियन' और 'जंज़ीबार वायस' नामक पत्रोंमें कुँवर साहबके स्वागतका वृत्तान्त पढ़ रहे थे, तो हमारे दिलमें यह ख़याल आया कि देखो, भारत-सरकार भी क्या ज़बरदस्त ग़लती करने जा रही थी। सर मुहम्मद इक़बाल या जस्टिस वज़ीर हसनने कभी स्वप्नमें भी प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंकी ओर ध्यान नहीं दिया होगा, मगर सुना जाता है कि पहले सरकारने दक्षिण-अफ्रिकाके एजेंटका काम उन्हें ही सौंपना चाहा था। धन्यवाद है मिस्टर सी० एफ० ऐण्डूज़को, जिनके निरन्तर प्रयत्नके कारण भारत-सरकार यह भूल करते-करते बची—सवेरेका भूला हुआ शामको घर आ गया।

मोम्बासामें श्रीयुत जे० पी० पाण्डयाने कुँवर साहबके सम्मानमें एक प्रीति-भोज दिया, जिसमें भिन्न-भिन्न जातियोंके २०० आदमी एकत्रित हुए। भारतीय व्यापार-संघमें भी उनका स्वागत हुआ, और वहाँ उन्होंने व्यापारियोंके पक्षको सुनकर भारत-सरकारको तार दिया। इंडियन स्पोर्ट्स क्लबमें भी उनको भोज दिया गया और वहाँ उन्होंने अपने भाषणमें कई बातें बड़े मार्केकी कहीं। उन्होंने कहा—"आप लोग आपसकी फूट छोड़कर मिल जाइये। पारस्परिक सहयोग कीजिए। मतभेद तो आपसमें हुआ ही करते हैं, पर इन मतभेदोंको फूटकी सीमा तक न बढ़ने दीजिए। अगर आप लोग आपसमें समझौता न कर सकें, तो मैं भारतीय महिलाओंसे कहूँगा कि वे मेल स्थापित करें।"

कुँवरानी साहबाने भी इस बीचमें स्थानीय हाई स्कूलका निरीक्षण किया और 'इंडियन मेटरनिटी होम' भी देखा।

जंज़ीबारमें भी उनका ख़ूब स्वागत हुआ। वहाँ कुँवर साहबने हिन्दू-व्यायामशालामें माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके चित्रका उद्घाटन किया, और स्थानीय नेताओंसे बातचीत की। ब्रिटिश रेज़ीडेन्टसे उन्होंने अनुरोध किया कि वे भारतीयोंके लिए वहाँ एक हाई स्कूलकी स्थापना करें।

दार-ऐस्सलाम (टांगानिक्याकी राजधानी) में उन्होंने गवर्नरसे मिलकर भारतीयोंकी शिकायतों तथा कठिनाइयोंका ज़िक्र किया, और वहाँके गवर्नरसे यह वचन लिया कि वे व्यापार-सम्बन्धी आर्डिनेन्सका इस प्रकार प्रयोग न करेंगे, जिससे विशेषतः भारतीयोंके ही हितोंको हानि पहुँचे। कुँवरानी साहबाके साथ वे आर्य-कन्या-पाठशालामें भी गये, जो डेढ़ लाख शिलिंगके चन्देसे चल रही है, जिसमें से पचास हज़ार तो उसके भवनमें ही व्यय हुए हैं। यहाँ अन्य विषयोंके साथ संगीत और व्यायामका भी प्रबन्ध है। इस संस्थाको

देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ, और यहाँके कार्यकर्ताओंको उन्होंने प्रोत्साहित भी किया।

बम्बईसे दरबन बीस दिनका मार्ग है। कुँवर साहबने अपने इस समयको नष्ट नहीं जाने दिया, और जो कुछ सेवा उनसे प्रवासी भारतीयोंकी बन पड़ी, उन्होंने की। अब वे अपने निश्चित स्थानपर पहुँच गये हैं। दक्षिण-अफ्रिकामें उनके सामने जो प्रश्न हैं, वे वास्तवमें अत्यन्त कठिन हैं। उनके हल करनेमें वे सफल हो सकेंगे या नहीं, यह तो उनके हाथकी बात नहीं, पर इसमें हमें सन्देह नहीं कि प्रयत्न करनेमें वे अपनी ओरसे कोई कोर-कसर न रखेंगे। फिर इससे अधिक वे कर ही क्या सकते हैं? किसी स्वाधीन देशके प्रतिनिधि तो वे हैं ही नहीं!

औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघ

कामच्छा, काशीसे औपनिवेशिक विद्यार्थी-संघके मंत्री श्री बी० डी० विशाल भारतीने हमें अपने संघकी वार्षिक रिपोर्ट भेजी है। खेद है कि हम स्थानाभावसे उसे इस अंकमें स्थान नहीं दे सके। अगले अंकमें उसके आवश्यक अंश उद्धृत करेंगे, पर उस रिपोर्टकी एक बात ऐसी है, जिसकी ओर भारतीय जनता तथा प्रवासी भारतीयोंको भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। संघके मंत्री महोदय लिखते हैं—"संघकी कठिनाइयाँ वही हैं, जो प्रत्येक औपनिवेशिक विद्यार्थीको आज सहनी पड़ती हैं। सर्वप्रथम तो जलवायुका प्रश्न है, जो विशेष प्रबन्धसे दूर हो सकता है। रुग्णावस्थामें और अन्य छोटी-छोटी तकलीफ़ोंमें भी सहायता पहुँचाई जा सकती है। बहुत कम आयुके विद्यार्थियोंके आ जानेसे और भारतवर्षमें उनकी देख-रेखका कोई प्रबन्ध न होनेके कारण कितने ही औपनिवेशिक विद्यार्थियोंको अपनी पढ़ाई बिना समाप्त किये ही वापस चला जाना पड़ा है, और यदि सुधार-कार्य जल्दी ही हाथमें न लिया गया, तो भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होता है। जो लोग भारत और विशाल भारतमें सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, उन्हें इस प्रश्नपर ख़ास तौरसे विचार करना चाहिए। जब यह कोमल पौधा सहायता-रूपी जलके अभावसे सूख गया, तो सिवा पछतानेके क्या हाथ आवेगा?"

मंत्री महोदयने अपने अनुभवकी और पक्की बात कही है। कितनी उम्र तकके विद्यार्थीको उपनिवेशसे यहाँ आना चाहिए, यह प्रश्न भी विचारणीय है। हमारी समझमें ख़ास-ख़ास हालतोंको छोड़कर मामूली तौरसे स्कूली शिक्षा प्राप्त करनेके लिए किसी भी औपनिवेशिक विद्यार्थीको यहाँ न आना चाहिए। हाँ, कालेजकी शिक्षाके लिए वे यहाँ आ सकते हैं। जलवायुकी दृष्टिसे कौनसा स्थान उनके लिए अधिक उपयुक्त है, इस प्रश्नका फ़ैसला स्वयं विद्यार्थी ही कर सकते हैं। काशी, प्रयाग इत्यादि स्थानोंमें तो इतनी अधिक गरमी पड़ती है कि औपनिवेशिक विद्यार्थियोंको गरमीकी छुट्टियोंमें अन्यत्र जाना अनिवार्य-सा हो गया है। जिन संस्थाओंमें प्रवासी विद्यार्थी अधिक संख्यामें पढ़ते हों, उनके संचालकोंका कर्तव्य है कि वे इन विद्यार्थियोंकी ओर ख़ास तौरसे ध्यान दें। उदाहरणार्थ, यदि हिन्दू-विश्वविद्यालयमें ऐसे विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक है, अथवा वह अधिक औपनिवेशिक विद्यार्थियोंको अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है, तो उसके अधिकारियोंको प्रवासी विद्यार्थियोंकी सुविधा-असुविधाके प्रश्नपर विशेषरूपसे विचार करना चाहिए; पर बड़े खेदकी बात तो यह है कि इस प्रकारके रचनात्मक कार्यके प्रति हमारे नेताओंका ध्यान इस समय नहीं है, और इसमें हम उन्हें दोषी नहीं मानते। देशकी अधिकसे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्याएँ—जीवन-मरणके प्रश्न—उनके सामने हैं, और उनका सम्पूर्ण समय इन उलझनोंको ही सुलझानेमें व्यतीत हो जाता है, इसलिए समयाभावके कारण इन प्रश्नोंकी उपेक्षा उनसे हो जाती है, पर यदि कोई समझदार आदमी समय-समयपर उन लोगोंकी सेवामें उपस्थित होकर उनके सम्मुख अपने प्रश्न

उपस्थित करता रहे, तो थोड़ा-बहुत काम अवश्य हो सकता है। हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उपनिवेशोंसे भारतीय विद्यार्थियोंका यहाँ आवागमन बराबर जारी रहे। ये सिलसिला टूटने न पावे। सुप्रसिद्ध देशभक्त राजा महेन्द्रप्रतापके शब्दोंमें ये उपनिवेश हमारी भारतीय संस्कृतिके फैलानेके लिए अड्डे हैं, और उनके द्वारा हम सम्पूर्ण संसार तक अपनी संस्कृतिका सन्देश पहुँचा सकते हैं। औपनिवेशिक विद्यार्थी उस सूत्रको जो भारत और विशाल भारतको बाँधे हुए है, दृढ़तर बनाते हैं, अतएव उनको सहायता पहुँचाना हमारा कर्तव्य है।

—

भिक्षु उत्तमको पासपोर्ट

हमें यह जानकर अत्यन्त खेद और आश्चर्य है कि महाबोधि सोसाइटीकी प्रार्थनापर भी बर्मा-सरकारने भिक्षु उत्तमको पासपोर्ट देनेसे इनकार कर दिया। भिक्षु उत्तम बौद्धधर्मके प्रचार और अपने स्वास्थ्य-सुधारके लिए यूरोप जाना चाहते हैं। मालूम नहीं कि सरकारको इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। भिक्षु उत्तमके विरुद्ध अधिक-से-अधिक जो बात कही जा सकती है, वह यह है कि उन्हें राजद्रोहात्मक वक्तृता देनेके सम्बन्धमें सज़ा हुई थी। यदि सरकारका पासपोर्ट देनेसे इनकार करनेका यही कारण है, तो यह अत्यन्त हास्यास्पद बात है। इस कारणसे तो उन्हें पासपोर्ट फौरन दे देना चाहिए, ताकि वे न भारतमें रहें, और न राजद्रोह फैलायें। यदि उत्तम महोदय विलायत पहुँच जायँगे, तो इंग्लैंड अपनी जगहपर ही बना रहेगा ; हमें पूरा विश्वास है कि वह अटलांटिकके गर्भमें न समा जायगा। इसके सिवा वहाँ उनकी विद्रोही प्रवृत्तिका भी कुछ असर न होगा, क्योंकि वहाँ चर्चिल और रिटायर्ड आई० सी० एस० वालोंके फैलाये हुए ज़हरको एक क्या, सैकड़ों उत्तम भी नहीं मिटा सकते।

—

भिक्षु उत्तमके कार्यपर एक जर्मनका मत

अनागारिक ब्रह्मचारी गोविन्द नामक जर्मन बौद्धने भिक्षु उत्तमके कार्यके सम्बन्धमें १५-७-३२ को लिखा है—

"मुझे यह सुनकर बड़ा सन्तोष हुआ कि बर्माके सुप्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु उत्तम जर्मनी जानेका विचार रखते हैं। जर्मनी जानेका उद्देश वहाँ बौद्धधर्मका प्रचार करना तथा अपना स्वास्थ्य सुधारना है, जिससे वे बौद्धधर्मके प्रचारमें और अधिक शक्ति लगा सकें। उनका पहला लक्ष्य यह है कि जर्मनीमें डा० डह्ल्के द्वारा स्थापित सुप्रसिद्ध 'बौद्ध भवन' को जारी रखा जाय। यह भवन बर्लिनके समीप जर्मनीकेके एक अप-टू-डेट बगीचोंके शहरमें स्थित है। इस भवनमें यूरोपका सर्वप्रथम बौद्ध आश्रम स्थापित है, जिसके साथ मन्दिर, पुस्तकालय और संसारसे अलग रहकर आत्म-चिन्तनमें निरत होनेवालोंके लिए विहार भी संलग्न है। डाक्टर डह्ल्केकी आकस्मिक मृत्युसे इस भवनका विकास रुक गया है।

"जर्मनीके बौद्धोंको अत्यन्त प्रसन्नता होगी, यदि पूर्वीय देशोंके उनके धर्म-भाई अपने व्यावहारिक सहयोगसे उन्हें सहायता दें। साथ ही वे बर्मा-सरकारके अत्यन्त कृतज्ञ होंगे, यदि वह भिक्षु उत्तमको जर्मनी जानेकी अनुमति प्रदान करे, ताकि वे अपने मिशनको—जिससे पूर्व और पश्चिममें सद्भाव स्थापित होगा—शीघ्र ही पूरा करें।"

—

कविवर शंकरजीका स्वर्गवास

गत अप्रैल मासमें जब हमने 'हिन्दुस्तान-टाइम्स'में साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्माकी आकस्मिक मृत्युका दुःखद समाचार पढ़ा, तो सबसे पहले जो ख्याल दिलमें आया, वह यह था कि कविवर शंकरजीके लिए यह दुर्घटना विघातक सिद्ध होगी। शर्माजीपर शंकरजी अत्यन्त स्नेह करते थे। जब उन्होंने शर्माजीकी

मृत्युकी खबर सुनी, तो केवल इतना कहा—"हा! सम्पादकजी भी चले गये!" शंकरजीको अपने जीवनमें असह्य पारिवारिक कष्टोंका सामना करना पड़ा था। उनके दो जवान पुत्रोंकी मृत्यु हो चुकी थी। एकके बाद एक इस प्रकार कई कुटुम्बियोंके वियोगका दुःख उनको सहन करना पड़ा था, और इन वज्रपातोंके कारण उनकी देह जर्जर हो गई थी, जैसे-तैसे जीवन यापन कर रहे थे, तिसपर यह ज़बरदस्त धक्का आकर लगा! इसे वे सहन न कर सके। कई वर्ष पहले शंकरजीने 'मनकी' और 'चली गई' समस्याओंकी जो पूर्तियाँ की थीं, उनसे उनकी मानसिक दशापर बहुत-कुछ प्रकाश पड़ता है।

"देवी शंकराने देवलोकमें निवास पाया
पीर पतिकी-सी न सहारी बूढ़ेपनकी;
शारदा कुमारी बूढ़ी दादीके समीप गई
माँसे महाविद्या मिली राख त्याग तनकी।
माता सुता भगिनीकी ओर उमाशंकरने
कूच किया ओढ़कर चादर कफनकी;
हाय! शोक-मूसलसे कालने कुचल डाली
कोमल कवित्व-शक्ति शंकरके मनकी!

× × ×

बूढ़ी सती शंकरा बिसार सेवा शंकरकी
त्याग तन स्वर्गको भलाई ले भली गई;
जीवन बिताया बिन ब्याही पोती शारदाने
शोक स्याही धीरताके मुखमें मली गई।
बेटी महाविद्या परिवार और पीहरको
छोड़ मरी दुःख दाल छातीपै दली गई,
हाय! निज माता सुता भगिनीके पास
प्यारे पुत्र उमाशंकरकी चेतना चली गई!"

शंकरजी अत्यन्त प्रेमी स्वभावके थे। स्वर्गीय पं० पद्मसिंहके शब्दोंमें उनका सारा शरीर ही प्रेमके परिमाणुओंसे बना हुआ था। दो बार हरदुआगंजमें उनकी सेवामें उपस्थित होनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। उस समयका उनका स्नेहपूर्ण चेहरा अब भी हमारी आँखोंके सामने है। उनका आतिथ्य भी अद्भुत होता था। उनकी सेवामें पहुँचकर किसी साहित्य-सेवीका वहाँसे जल्दी आना कठिन था। उनके प्रेमपूर्ण आग्रहसे एक दिनके बजाय, चार दिन ठहरना पड़ता था। निरन्तर चालीस वर्ष तक हिन्दी-साहित्यकी सेवा करके शंकरजी स्वर्गवासी हो गये, पर हम हिन्दी-वालोंने उनके लिए क्या किया? न हम लोग उनका यथोचित सम्मान कर सके, और न किसी अन्य प्रकारसे ही उनकी सेवा कर सके। आर्यसमाजसे तो कुछ आशा करना ही व्यर्थ था, क्योंकि न तो आर्यसमाजका ध्यान ही स्थायी साहित्यकी ओर है, और न वह साहित्य-सेवियोंके गौरवको ही समझता है। शंकरजीकी कविताके प्रेमियोंसे हमारी यह विनम्र प्रार्थना है कि वे सुन्दर टाइपमें शंकरजीके समस्त ग्रन्थोंका संग्रह प्रकाशित करें, और साथ ही उनका विस्तृत जीवन-चरित भी। संग्रह तथा जीवन-चरितका ज़िक्र आते ही फिर स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माजीकी याद आती है। यदि किसीको इस कार्यके लिए सबसे अधिक चिन्ता थी, और कोई आदमी यह कार्य सुचारु रूपसे कर सकता था, तो वे शर्माजी ही थे, और इसके लिए मसाला इकट्ठे करनेको उन्होंने इन पंक्तियोंके लेखकको कई बार लिखा भी था। अपनी अनेक चिट्ठियोंमें उन्होंने आदेश किया था—"सब काम छोड़कर महीने दो महीने हरदुआगंज रह आओ। शंकरजी अधिक दिन नहीं चलेंगे। इस मौक़ेको हाथसे न जाने दो।" पर दुर्भाग्यवश मैं उनकी आज्ञाका पालन न कर सका, और मेरे अक्षम्य प्रमादके कारण शंकरजीके चालीस वर्षके अनुभव, पं० प्रतापनारायण मिश्र, सम्पादकाचार्य रुद्रदत्त शर्मा इत्यादिके उनके संस्मरणोंसे हिन्दी-जनता वंचित रह गई। इसका पछतावा मुझे जीवन-भर रहेगा।

श्री हरिशंकरजीसे हमारी हार्दिक सहानुभूति है। वे सुयोग्य पिताके सुयोग्य पुत्र हैं। जहाँ वे शंकरजीके ढंगपर सुन्दर कविता कर लेते हैं, वहाँ साथ-ही-साथ सम्पादकजी (पद्मसिंहजी) की स्टाइलपर गद्य भी लिख

सकते हैं। आशा है कि वे अपने पूज्य पिताजीके अपूर्ण कार्यको पूर्ण करेंगे।

कलकत्तेका इंडियन जर्नलिस्ट ऐसोसियेशन

कलकत्तेमें भारतीय पत्रकारोंकी एक संस्था इंडियन जर्नलिस्ट एसोसियेशनके नामसे गत आठ-नौ वर्षसे स्थापित है। हमारे पत्र देशको संगठित होनेका बराबर उपदेश दिया करते हैं, परन्तु खेद है कि 'चिरागतले अँधेरा' की उक्तिके अनुसार वे स्वयं अपना दृढ़ संगठन करनेमें अभी तक पूर्णरूपसे सफल नहीं हो सके। हिन्दी-पत्रकारोंके संगठनका काम कई बार उठाया गया, मगर मामला टाँय-टाँय फिस होकर ही रह गया। कलकत्तेके इस इंडियन जर्नलिस्ट ऐसोसियेशनके कार्यसे हिन्दी-पत्रकारोंको शिक्षा लेनी चाहिए। यद्यपि पत्रकारोंकी उदासीनताके कारण इस समितिको भी वैसी सफलता नहीं मिली, जितनी आशा की जाती थी ; फिर भी अब उसका विकास उस अवस्थाको पहुँच गया है, जब लोगोंको उसका अस्तित्व महसूस होने लगा है। ऐसोसियेशनको इस योग्य बनानेका अधिकांश श्रेय ऐसोसियेशनके मन्त्री श्री मृणालकान्ति बोस और श्री किशोरीमोहन बनर्जीको है। ऐसोसियेशनके सदस्योंमें अंगरेज़ी, हिन्दी, बंगला, उर्दू, चीनी आदि भाषाओंके पत्रकार हैं। जून १९३१ के अन्तमें सदस्योंकी संख्या १२२ थी, जो इस वर्ष जून १९३२ के अन्तमें बढ़कर १७३ हो गई है। गत वर्ष ऐसोसियेशनकी आय ५९९॥=) थी, जो इस वर्ष ८६०) हो गई है। गत वर्ष इस ऐसोसियेशनने जो कार्य किये, उनमें सबसे उल्लेखनीय वी०पी०की मियाद बढ़ाना, साम्प्रदायिक कटुताको कम करना और यूनिवर्सिटीमें पत्रकार-कलाकी शिक्षाके लिए आयोजना तैयार करना था। पहले वी० पी०की हुई चीज़ दस दिन तक डाकखानेमें रहती थी। सरकारने इस मियादको घटाकर तीन दिन कर दिया था। फलस्वरूप वी० पी० बहुत अधिक वापस आने लगीं। ऐसोसियेशनने इस नवीन नियमके विरुद्ध ज़ोरदार आन्दोलन किया, जिसके परिणामस्वरूप यह मियाद अब फिर एक हफ्ता हो गई है। ऐसोसियेशनने कलकत्तेके पत्रकारोंका एक साम्प्रदायिक बोर्ड बनाया, जो सब समाचारपत्रोंपर निगरानी रखता था, और यदि किसीमें कोई ऐसी बात प्रकाशित होती, जो साम्प्रदायिक कटुता बढ़ानेवाली होती, तो बोर्ड फौरन उसके सम्पादकका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करता है। इस देख-रेखकी वजहसे समाचारपत्रोंकी कटुतामें बहुत सुधार हुआ। ऐसोसियेशनने कलकत्ता-यूनिवर्सिटीको सलाह दी है कि वह अपने यहाँ पत्रकार-कलाकी शिक्षाका भी प्रबन्ध करे। यूनिवर्सिटीने इसपर ऐसोसियेशनसे एक सर्वांगपूर्ण आयोजना माँगी। ऐसोसियेशनने प्रमुख पत्रकारों और विद्वानोंकी एक सब-कमेटीके द्वारा यह आयोजना बनवा कर प्रदान की, जो आजकल यूनिवर्सिटीके विचाराधीन है।

इस वर्ष ऐसोसियेशनकी स्थिति ऐसी हो गई है कि अब उसे सरकार और देशकी अन्य संस्थाएँ ही नहीं, बल्कि अनेक विदेशी संस्थाएँ और लीग आफ नेशन्स तक मनाने लगी हैं।

प्रेस-बिल बनते समय ऐसोसियेशनने जो प्रतिवाद किया था, उसका समर्थन भारत और बर्माके प्रायः सभी समाचारपत्रोंने किया था। ऐसोसियेशनके निर्णयके अनुसार इस बिलके प्रतिवादमें ३१ सितम्बर १९३१ को समस्त भारतवर्षके पत्रोंने हड़ताल की थी। ऐसोसियेशनने कागज़पर चुंगी और रजिस्टरी-फीसकी वृद्धिपर भी प्रतिवाद किया था। धीरे-धीरे ऐसोसियेशनका कार्य बढ़ रहा है, उसकी कई योजनाएँ बनी तैयार हैं।

इन्दौरमें हिन्दी-पत्रकारोंका सम्मेलन होनेवाला है। क्या ही अच्छा हो कि यह सम्मेलन कलकत्तेके इस जर्नलिस्ट ऐसोसियेशनके संगठन और कार्य-पद्धति आदिका मनन करके उसके अनुसार कार्य करे।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

अगहन १९८९ :: नवम्बर १९३२

भाग १०, अंक ५. पूर्ण-अंक ५९.

इटलीमें मज़दूरोंके समयका सदुपयोग

ब्रजमोहन वर्मा

स्रष्टाने मनुष्यको जो जीवन दिया है, उसकी अवधि बहुत थोड़ी—आमतौरसे कुल साठ-सत्तर वर्ष ही—है। परन्तु इस कालमें से भी अधिकांश भागको मनुष्य बेकार ही गुज़ारता है। वास्तवमें यदि काम-काजका समय ही जोड़ा जाय, तो मानव-जीवनकी अवधि बीस-पचीस वर्षसे अधिक न होगी। साधारणतः कामकाजी मनुष्य छै घंटेसे लेकर दस-बारह घंटे प्रतिदिन तक मेहनत करता है। सभ्य संसारमें कल-कारखानोंके नये नियमोंके अनुसार प्रत्येक मज़दूरसे सात घंटेसे अधिक काम नहीं लिया जा सकता। दिन-रातके चौबीस घंटोंमें सात-आठ घंटे काम-काजमें व्यय हुए, दस घंटे सोने और खाने-पीने आदि आवश्यक कार्योंमें निकल गये। जो पाँच-छै घंटे बाक़ी बचे, उनका उपयोग किस प्रकार किया जाता है? साधारण तौरपर अधिकांश लोग इस समयको ऊँघने, गप-शप लड़ाने, ताश खेलने आदिमें व्यय किया करते हैं। शारीरिक परिश्रम करनेके बाद थोड़ा-बहुत आराम और मनोरंजन स्वास्थ्यके लिए आवश्यक और लाभदायी है, लेकिन ताश या शतरंज सरीखे मनोरंजन व्यर्थ हैं। मनोरंजन या खेल-कूद इस प्रकारके होने चाहिए, जिससे शारीरिक अथवा मानसिक उन्नति हो, ज्ञानकी वृद्धि हो, सुरुचिको प्रोत्साहन मिले और आत्मा विकसित हो। इटलीकी वर्तमान फैसिस्ट सरकारने मज़दूरोंके फ़ुरसतके समयका सदुपयोग करनेके लिए ऐसा सुन्दर और महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध किया है, जिसके अनुसार कार्य करके कोई भी राष्ट्र लाभ उठा सकता है।

मज़दूरोंके फ़ुरसतके समयका उपयोग करनेके लिए सरकारने Opera Nazionale Dopolavoro (मज़दूरोंके ख़ाली समयका सदुपयोग करनेवाली राष्ट्रीय संस्था) नामक एक पृथक संस्था ही स्थापित कर रखी है। 'दोपोलावोरो' का शाब्दिक अर्थ फ़ुरसतका समय है। संस्थाका उद्देश उसके नामसे ही प्रकट होता है। फैसिस्टोंके मूल सिद्धान्तोंके अनुसार इटेलियन राष्ट्र एक नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक इकाई है। अतः राष्ट्रीय दृष्टिसे सब प्रकारका उत्पादन भी एक सामाजिक
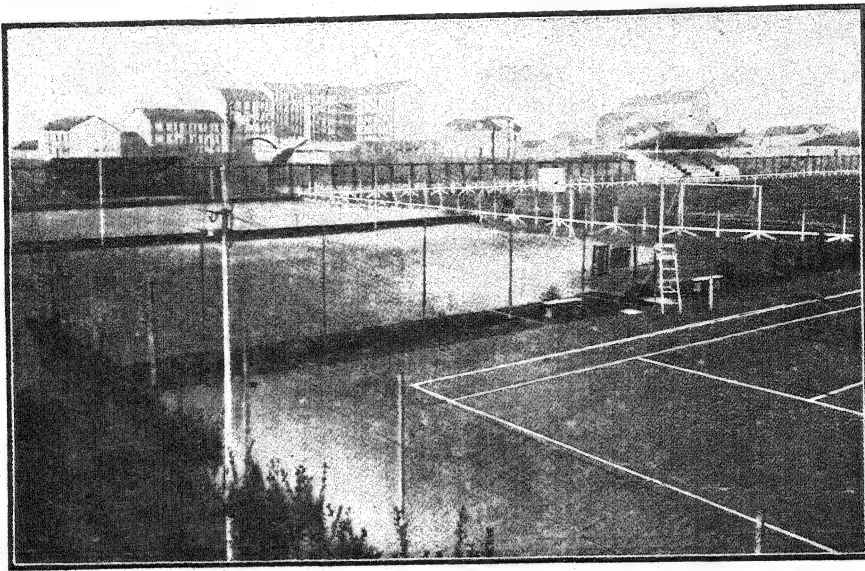
दोपोलावोरोका एक फुटबाल, टेनिस और बास्केट बाल खेलनेका मैदान

कर्तव्य है। राष्ट्रीय दृष्टिसे जनसाधारणका सम्मिलित उत्पादन (mass production) भी कामकी एक इकाई है, जिसका एकमात्र लक्ष्य उत्पादकोंके सुख, समृद्धि तथा राष्ट्रीय शक्तिका विकास है। इस सिद्धान्तके अनुसार मज़दूर अब उत्पादनका एक औज़ार ही नहीं है, बल्कि वह उत्पादनका सहायक अंग है, इसलिए मज़दूरोंकी आर्थिक, शारीरिक और सांस्कृतिक अवस्था केवल उसकी निजी बात नहीं रही, वह अब समस्त राष्ट्रके हितकी बात हो गई है।

परिणामस्वरूप मज़दूरोंकी आर्थिक, शारीरिक तथा शिक्षा, संस्कृति, सफ़ाई और स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करना, उनकी दशाको सुधारना कोई सामाजिक उदारता या दानकी बात नहीं है, वह एक राष्ट्रीय कर्तव्य है। फैसिस्ट सरकार इस राष्ट्रीय कर्तव्यको पाँच-छै विभिन्न संस्थाओं द्वारा पूरा करती है, जिनमें Opera Nazionale per la protezione delle Madri e dei Minorenni (माता और शिशुओंकी रक्षाके लिए); Opera Nazionale Balilla (लड़कोंकी शारीरिक और नैतिक शिक्षाके लिए); Patronato Nazionale (सामाजिक बीमेके काममें मज़दूरोंकी सहायताके लिए) और Opera Nazionale Dopolavoro (मज़दूरोंकी नैतिक शिक्षा और उन्नतिके लिए) आदि हैं।

फैसिस्टोंका संघवाद (Syndicalism) लोगोंको परिश्रमके प्रति सम्मान सिखलाता है, तो 'दोपोलावोरो' उन्हें जीवनके प्रति सम्मानका पाठ पढ़ाता है, और यह बतलाता है कि किस प्रकार रहना चाहिए। दोपोलावोरो उनमें अपने घरोंके प्रति प्रेम उत्पन्न करता है, उन्हें दुर्गुणों और बुराइयोंसे दूर रखता है। वह शिक्षा-सम्बन्धी और शारीरिक खेल-कूद तथा मनोरंजक प्रदर्शनों आदिका प्रबन्ध करके उनके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकासमें सहायता देता है।

इस प्रकार सरकारका मुख्य उद्देश मज़दूरों और श्रमजीवियोंकी उन्नति करना है। फैसिस्ट सरकार स्वीकार करती है कि मज़दूरोंकी दो मुख्य आवश्यकताएँ हैं। पहली आवश्यकता है कामकी, जिसके द्वारा वे अपनी जीविका उपार्जन कर सकें। दूसरी आवश्यकता है दोपोलावोरोकी, जिसके द्वारा वे अपने नित्य-प्रतिके जीवनको उन्नत बना सकें। दोपोलावोरोका सम्पूर्ण
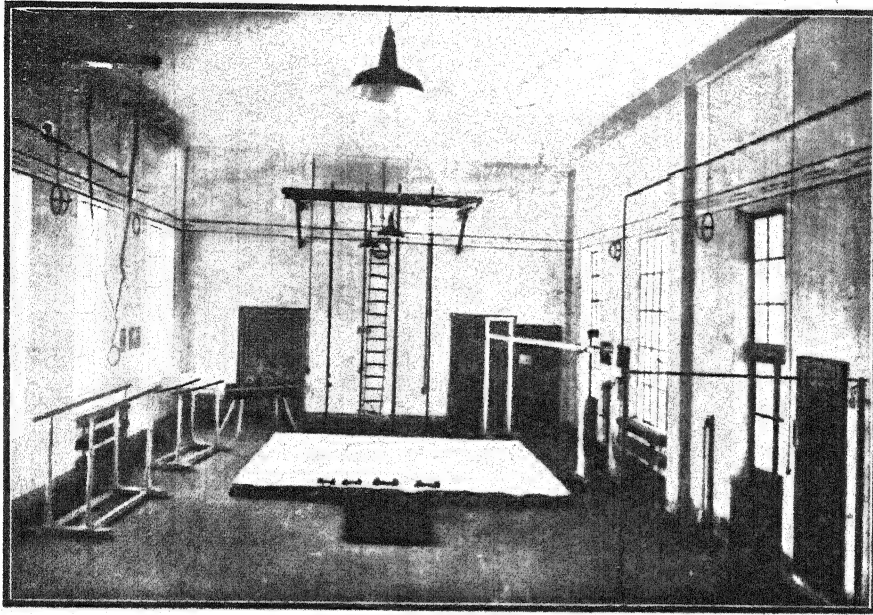
दोपोलावोरोकी एक व्यायामशाला (जिमनासियम)

महत्त्वपूर्ण कार्य फैसिस्ट सरकार द्वारा चलाये हुए 'मज़दूरोंके अधिकार-पत्र' के अनुसार ही होता है।

'दोपोलावोरो' के इस काममें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक और राष्ट्रीय सिद्धान्त निहित है। वह यह कि फैसिज़्म राष्ट्रके नामपर केवल लोगोंके परिश्रमकी ही रक्षा करके उसका उपयोग नहीं करता, वरन वह लोगोंके फालतू समयकी भी रक्षा करके उसका सदुपयोग करता है ; उसे बेकारीमें व्यर्थ नहीं जाने देता। वह उस फालतू समयको लोगोंकी शारीरिक, नैतिक और ज्ञान-सम्बन्धी उन्नतिका एक साधन समझता है।

मज़दूरों और उनके मालिकोंके पारस्परिक सद्भावपर ही प्रत्येक प्रकारके उत्पादन तथा राष्ट्रकी उन्नतिका सारा दारमदार है। इस सद्भावको बढ़ानेके लिए दोपोलावोरोके कार्योंसे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता। अच्छा, अब यह देखिए कि दोपोलावोरोका संगठन और कार्य किस प्रकारका है।

फैसिस्ट पार्टीके मंत्री हिज़ एक्सलेंसी आनरेबिल आगस्तो तूराती इस संगठनके प्रधान हैं, और मि० इनरिको बेरेटा, डाइरेक्टर जनरल, उनके इस कार्यमें सहायक हैं। प्रत्येक प्रान्तमें संगठनकी शाखाएँ और प्रत्येक परगने (Commune) में उसकी उपशाखाएँ हैं, जहाँ फेडरल सेक्रेटरी और पोलिटिकल सेक्रेटरी उनके कार्योंकी देखभाल करते हैं।

ओपेरा दोपोलावोरोका प्रोग्राम मोटे ढंगपर चार भागोंमें विभक्त है—(१) शिक्षा (लोगोंको संस्कृति तथा पेशोंकी शिक्षा देना), (२) कलाओंकी शिक्षा (नाटक-मंडलियाँ, समितियाँ, गान-वाद्य, सिनेमेटोग्राफी, रेडियो, ग्राम-गाथाएँ), (३) शारीरिक शिक्षा (सब प्रकारके शारीरिक खेल-कूद, व्यायाम और सैर-सपाटे) और (४) स्वास्थ्य-सम्बन्धी सफ़ाई तथा समाज-कल्याण (मकानोंकी बनावट, सजावट, भविष्यका प्रबन्ध तथा सहायक पेशे) आदि।

दोपोलावोरोके कार्यक्रममें सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान खेल-कूदको है, जो स्वाभाविक है, क्योंकि दिन-भर काम-काजमें थका हुआ व्यक्ति स्वतः ही कुछ-न-कुछ मनोरंजन चाहेगा। फिर वर्तमान युगमें पुरुषत्त्वपूर्ण
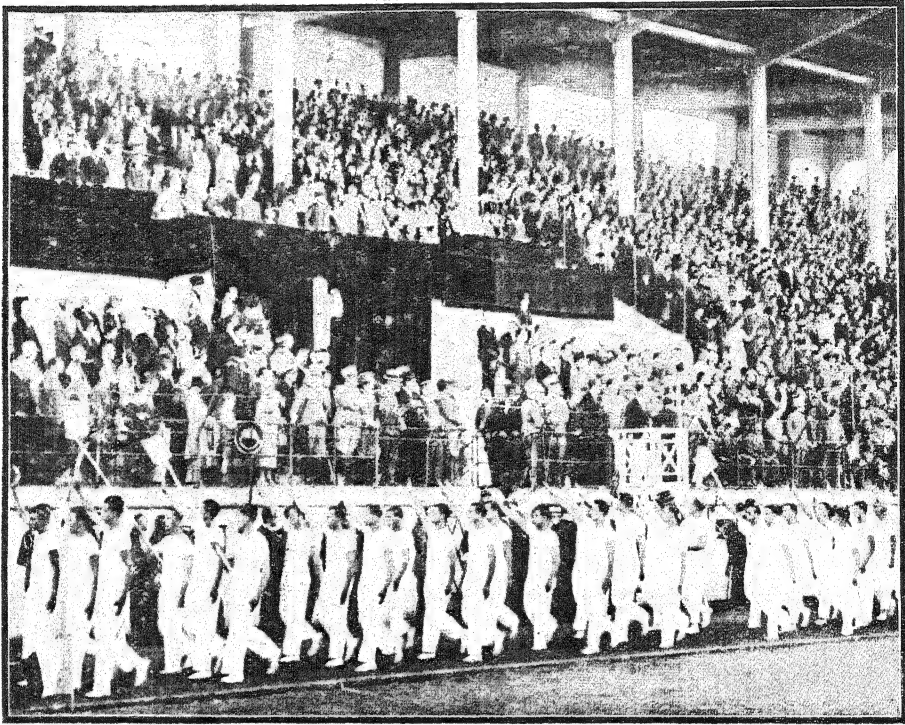
रोमके स्टैडियममें मुसोलोनीके सामनेसे खेलकी टीमें गुजर रही हैं

खेलोंकी ओर नवीन पौधका विशेष आकर्षण है। चूँकि ये खेल-कूद खुले मैदानोंमें और ताज़ी खुली हवामें होते हैं, इसलिए फैक्टरियों और कारखानोंकी बन्द गन्दी हवामें अधिक समय व्यतीत करनेवालोंकी तन्दुरुस्तीपर उनका लाभदायक प्रभाव पड़ता है। साथ-ही-साथ बहुतसे खेलोंमें नवयुवकोंको अपनी व्यक्तिगत क्षमता और दक्षता प्रदर्शित करके नाम कमानेका अवसर मिलता है। दोपोलावोरोने इन खेलोंको राष्ट्रीय रूप प्रदान किया है।

देश-भरमें दोपोलावोरोके क्लब और व्यायामशालाएँ खुली हैं। उग्र, खतरनाक खेल, जिनमें भाग लेनेके लिए विशेष शिक्षा और दक्षताकी ज़रूरत होती है, दोपोलावोरोके कार्यक्षेत्रके बाहर हैं। दोपोलावोरोका सम्बन्ध केवल उन खेलों और कसरतोंसे है, जिनसे सदस्योंका शारीरिक विकास हो, उनकी तन्दुरुस्ती सुधरे तथा उनमें खेलोंके प्रति आकर्षण पैदा हो। इसके लिए दोपोलावोरो खेलोंके दंगल, लोकप्रिय मेले-तमाशे और प्रदर्शनोंका संगठन करता है, और अपनी व्यायाम-शालाओंके साज-सामान और संगठनकी उन्नति करता है। बहुत थोड़े समयमें ही दोपोलावोरोका आन्दोलन कितना लोकप्रिय हो गया है, इसका अन्दाज़ इस बातसे लगता है कि सन् १९२६ में इसके सदस्योंकी संख्या २,८०,५८४ थी, जो सन् १९३० में बढ़कर १६,२२,१४० हो गई। सदस्योंकी वृद्धिके साथ-साथ देश-भरमें जिमनासियम (व्यायामशालाओं), खेलके मैदानों और अखाड़ोंकी संख्यामें भी ऐसी ही वृद्धि हुई है। देशके प्रत्येक परगनेमें अखाड़े और व्यायाम-शालाएँ बनाई गई हैं।

सन् १९२६ में १४९७ संस्थाओंका सम्बन्ध दोपोलावोरोसे था, जिनमें से ४६७ केवल खेल-कूद

ग्राम-गाथा। सिसलीकी स्थानीय पोशाक और गान

सम्बन्धी थीं। इन संस्थाओंने साल-भरमें १५६३ खेल-कूद, प्रदर्शन और दंगल आदि संगठित किये थे। सन् १९२९ में दोपोलावोरोसे संलग्न संस्थाओंकी संख्या बढ़कर ११,०८४ पहुँच गई, जिनमें से ३,५५४ केवल खेल-कूद-सम्बन्धी थीं, जिन्होंने साल-भरमें ५३,४३८ खेल, दंगल और प्रदर्शन संगठित किये थे। इन खेलोंमें फुटबाल, हाकी, रस्साकशी, तैराकी, समुद्री खेल, तरह-तरहकी दौड़ें, साइकिल, मोटर-साइकिलके खेल आदि हैं। खेलोंको अधिक लोकप्रिय बनानेके लिए खेलोंकी परीक्षाएँ प्रचलित की गई हैं, जिनमें उत्तीर्ण होनेवालोंको 'खेलोंकी उपाधि' (एथलेटिक डिप्लोमा) दिया जाता है। सन् १९२८ में ३९९२ तैराकोंको 'तेज़ तैराकी' का डिप्लोमा मिला था। इन डिप्लोमोंको प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक खेलकी कम-से-कम योग्यता निर्धारित कर दी गई है, जिसे प्राप्त करनेपर परीक्षार्थी उपाधि पानेके योग्य समझा जाता है। इस परीक्षामें पास होनेपर खेलकी उपाधि और उसका बैज (चिह्न) मिलता है। उदाहरणके लिए साइकिल चलानेकी उपाधिमें प्रथम श्रेणीकी उपाधि उन्हें मिलती है, जो साइकिलपर अधिक-से-अधिक साढ़े आठ घंटेमें कम-से-कम १५० किलोमीटर (लगभग ९३ मील) की दूरी तै करते हैं, और द्वितीय श्रेणीकी उपाधि वे पाते हैं, जो साढ़े पाँच घंटेमें १०० किलोमीटर (लगभग ६२ मील) की दूरी तै करते हैं। सन् १९२९ में ५००० खिलाड़ियोंने साइकिल-प्रतियोगितामें भाग लिया था, जिनमें १११८ का प्रथम श्रेणीकी और १०३३ को द्वितीय श्रेणीकी उपाधि मिली थी।

बहुत पुराने समयसे ही अनुभवी लोग कहते आये हैं कि संसारकी व्यावहारिक शिक्षा और ज्ञानवृद्धिके लिए यात्रा सबसे अच्छी चीज़ है। दोपोलावोरोके शिक्षण-कार्यमें यात्राओं और सैर-सपाटोंको विशेष स्थान दिया गया है। जंगलों, मैदानों, पहाड़ों और समुद्रोंकी सैरसे लोगोंके ज्ञानकी वृद्धि होती है। उनमें प्राकृतिक दृश्योंका प्रेम उत्पन्न होता है, जिससे उनकी आत्मामें सोई हुई कलाकी कोमल भावनाएँ जाग उठती हैं। इस प्रकार इन यात्राओंसे उनकी आत्मा और शरीर दोनोंको वह ताज़गी मिलती है, जो उन्हें आधुनिक कारखानोंके जीवनके दुष्परिणामोंसे बहुत दिन तक सुरक्षित रखती है। दोपोलावोरोके अन्तर्गत एक 'इटालियन यात्रा-संघ' का संगठन किया गया है, जो इन सैर-सपाटोंका
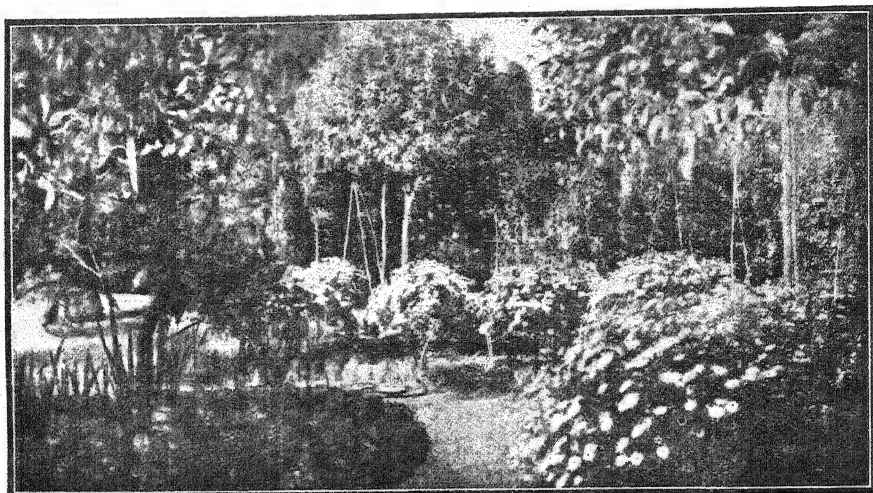
दोपोलावोरोके एक सदस्य-द्वारा लगाया हुआ बाग़

प्रबन्ध करता है। पिछले पाँच-छै वर्षोंमें इस संघने इस प्रकारका सहस्रों यात्राओं और प्रदर्शनोंका संगठन किया है। वह मज़दूरोंका दल बनाकर उन्हें बड़ी-बड़ी फैक्टरियोंकी सैर कराता है, कलाशालाएँ, ऐतिहासिक स्थान, तीर्थ-स्थान, पिछले महायुद्धके रणक्षेत्र आदि दिखलाता है। यही संघ बर्फ़पर 'स्की' के सहारे फिसलने, पैदल चलने और बाइसिकिल आदिकी प्रतियोगिताका संगठन करता है।

ग़रीब-से-ग़रीब मज़दूर भी इन यात्राओंका आनन्द उठा सकें, इसलिए संघ उन्हें रेल, मोटर और जहाज़ आदिके किरायेमें विशेष सुविधा दिलाता है। कमसे कम पाँच आदमियोंके दलको समस्त सरकारी रेलोंपर तीसरे दर्जेके वीक एण्ड (हफ्तेवारी) वापसी टिकट आधे दामोंमें मिलते हैं। पचास आदमियोंके दलको वापसी टिकट आधे दामोंमें तो मिलते ही हैं, मगर उनके लिए समयकी—एक ही हफ्तेमें लौटनेकी—क़ैद नहीं होती। अन्य सब दर्जोंके टिकटोंपर ३० प्रतिसैकड़ाकी रियायत मिलती है। ट्राम और मोटर-बस-सर्विसमें तथा समुद्र और झीलोंमें चलनेवाले स्टीमरोंपर भी उनके साथ ख़ास रियायत की जाती है। दोपोलावोरोके घुमक्कड़-दलोंको म्यूज़ियम, अजायबघर और कलाशालाओंमें प्रवेश-फीस नहीं देनी पड़ती। सैकड़ों होटलोंके साथ ऐसा प्रबन्ध किया गया है, जिससे दोपोलावारोके दलोंके साथ उनमें ठहरनेमें विशेष रियायत की जाय। इन सैर-सपाटोंमें यदि कोई दुर्घटना हो जाय, तो उसके लिए मुफ्तमें या नाममात्रकी प्रीमियमपर यात्रियोंका बीमा कर दिया जाता है। सन् १९२६ में इस प्रकारकी ९७५ यात्राएँ और प्रदर्शन हुए थे, मगर सन् १९२९ में उनकी संख्या बढ़कर २८,१२४ जा पहुँची! इस वर्ष २१ अप्रेलको, जो रोम-नगरका जन्म-दिन माना जाता है, पहाड़ोंपर, रणक्षेत्रों और इटलीकी सुप्रसिद्ध झीलोंकी यात्राओंमें भाग लेनेवाले मज़दूरोंकी संख्या ५,००,००० थी। पहले चार वर्षोंमें इस प्रकारकी ४२,३४३ संगठित यात्राएँ हुई थीं।

दोपोलावोरो शारीरिक विकासके साथ-साथ जनसाधारणको कलाकी शिक्षा देने और उनमें सौन्दर्य और कला-सम्बन्धी सुरुचि उत्पन्न करनेका काम भी करता है। इसके लिए उसने नाटक, संगीत, सिनेमा, रेडियो और ग्राम्य कहानियोंके साधन ग्रहण किये हैं। शरीर-विज्ञानके विशेषज्ञोंका कथन है कि कलाके विभिन्न
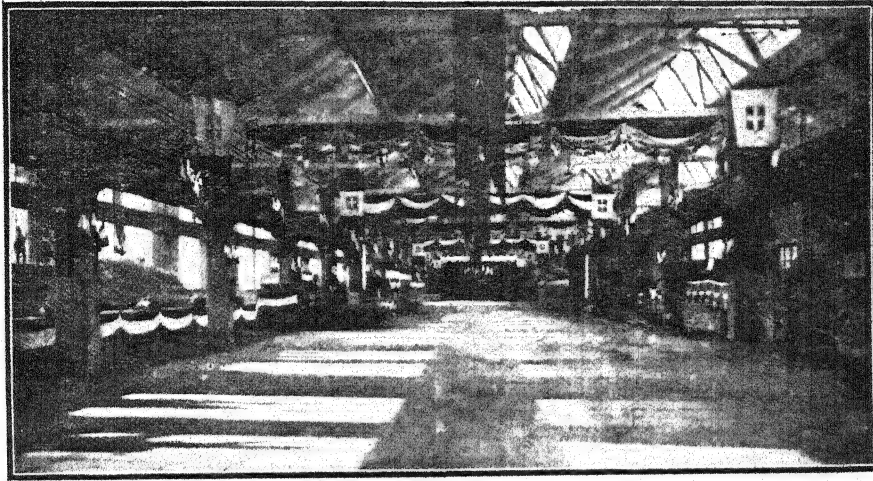
दोपोलावोरोकी एक रंगशाला

अंगोंका हमारे रग-पुट्ठोंपर ऐसा प्रभाव पड़ता है, जो शारीरिक परिश्रमसे उत्पन्न हुई थकावटको सरलतासे दूर कर देता है। कला नवीन शक्ति उत्पन्न करती है, और हमारी व्यय की हुई शक्तिको पुनर्जीवित करती है। दोपोलावोरो मज़दूरोंको कलापूर्ण मनोरंजन प्रदान करनेका प्रयत्न करता है, और साथ ही जिन मज़दूरोंमें कलाके किसी भी अंशके उत्पादनकी निहित शक्ति मौजूद है, उसे विकसित करनेका अवसर और सहायता देता है। दोपोलावोरोने नौसिखुओंकी अनेक नाटक-मंडलियाँ स्थापित की हैं। वह सिनेमा-कलाकी शिक्षा देता है, रेडियो द्वारा गान-वाद्य सुनाता है, और संगीत तथा ग्राम्य कथाओंके अध्ययनकी सुविधा प्रदान करता है।

इस प्रकारके मनोरंजन में निस्सन्देह नाटक-मंडलियाँ सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। इन नाटक-मंडलियोंसे मनोरंजनके अतिरिक्त दो लाभ और हैं। एक तो यह कि अच्छे शिक्षाप्रद नाटकोंके द्वारा लोगोंकी सामाजिक अवस्था सुधरती है, दूसरे यह कि धीरे-धीरे इन नौसिखुये नटोंमें से कुछ लोग इस कलाके पारंगत हो जाते हैं, और इस प्रकार देशमें नाटक-कलाके उच्चकोटि कलाकारोंका एक दल तैयार हो जाता है। इन नाटकोंमें भाग लेनेवाले बिना फीसके संघके सदस्य बनाये जाते हैं, और उनकी सहायता और उन्नतिके लिए दोपोला-वोरोने स्कूल क़ायम कर रखे हैं, जिनमें नाटकीय वक्तृता देना, रंगमंचकी सजावट और प्रबन्ध तथा नाटक-सम्बन्धी अन्य कौशल सिखाये जाते हैं। दोपोलावोरोकी ओरसे नाटक-सम्बन्धी साहित्यके पुस्तकालय और प्रयोगात्मक नाटकशाला भी है। उसने साहित्यिकोंका एक कमीशन मुक़र्रर कर रखा है, जो नवयुवक नाटककारोंकी नई रचनाओंकी परीक्षा करता और उन्हें उन्नत बनानेके लिए परामर्श देता है। इस प्रकार कम-से-कम ख़र्चमें मज़दूर लोग छोटे, परन्तु अच्छे, नाटकोंका आनन्द ले सकते हैं।

इसी प्रकार दोपोलावोरो नौसिखुओं द्वारा कोरस गान, बेंड, ओपरागान तथा अन्य प्रकारके गान-वाद्यका संगठन भी करता है। जिसमें लोगोंका मनोरंजन हो, उनकी संगीत-सम्बन्धी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन और ट्रेनिंग मिले, इसके लिए उसने संगीत-पाठशालाएँ स्थापित की हैं। सन् १९२८ में बेंड बजानेवालोंका रोमके स्टेडियममें चालीस हज़ार दर्शकोंके सामने जो विशाल प्रदर्शन हुआ था, उसमें ३००० बजानेवालोंने भाग लिया था।

लोगोंकी नैतिक अवस्था सुधारनेके लिए

दोपोलावोरोको सबसे अच्छा साधन सिनेमा मिला है। प्रत्येक दोपोलावोरोके केन्द्रमें बहुत थोड़े दामोंमें सिनेमाके तमाशे दिखलाये जाते हैं। फ़िल्में विशेषकर शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्द्धक होती हैं। उनमें राष्ट्रीय खेतोंके और वास्तविक जीवनके—विशेषकर औद्योगिक और कला-सम्बन्धी—दृश्य दिखलाये जाते हैं। देशके कईएक नाटक और सिनेमा-संघोंसे ऐसा प्रबन्ध किया गया है, जिससे दोपोलावोरोके सदस्योंके साथ २५ प्रतिशतसे ३५ प्रतिशतकी रियायत हो सके। सन् १९२६ में देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें दोपोलावोरोके हालोंमें सिनेमाकी २६ मेशानें थीं, मगर सन् १९२९ में इन मेशीनोंकी संख्या ७३३ हो गई।

रेडियो द्वारा लोगोंके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धनके लिए यह प्रबन्ध किया गया है कि मज़दूरोंको दोषहीन, परन्तु कम ख़र्चवाले, रेडियो-सेट सस्तेमें मिल सकें, जिनके दामोंको वे छोटी-छोटी किश्तोंमें अदा कर सकें। दोपोलावोरोके सदस्योंको रेडियोका वार्षिक टैक्स या माहवारी चन्दा कुछ नहीं देना पड़ता।

ग्राम्य कथाओंके अन्तर्गत दोपोलावोरो देशके प्राचीन ग्रामीण रहन-सहन, पोशाक-पहनावा और नाच-गान आदि बातोंको जीवित रखनेका प्रयत्न करता है। सन् १९२७ में वेनिसमें एक बड़ा भारी जुलूस निकाला गया था, जिसमें इटलीकी प्राचीन और नवीन देशी पोशाकोंका प्रदर्शन किया गया था। स्थानीय बोलियोंके गीत, स्थानीय ढंगके गान, नैपोलियनके समयके गीत आदिको जीवित रखनेके लिए समय-समयपर और स्थान-स्थानपर अनेक प्रदर्शन और जुलूस आदि संगठित किये जाते हैं। जनवरी १९३० में इटेलियन युवराजके विवाहके अवसरपर देशी पोशाकोंका एक विशाल जुलूस निकाला गया था, जिसमें इटलीके प्रत्येक भागकी देहाती पोशाक पहनकर लोग युवराज-युवराज्ञीके सामने निकले थे।

यह तो हुई शारीरिक उन्नति और मनोरंजनकी बात। अब ज्ञानवर्द्धन तथा उद्योग-धन्धा-सम्बन्धी शिक्षाकी बात सुनिये। इसके लिए दोपोलावोरो स्कूल, व्याख्यान, पुस्तकालय, मासिक तथा समाचारपत्रोंका व्यवहार करता है।

दोपोलावोरोके साधारण सांस्कृतिक स्कूल अन्य स्कूलोंसे इस बातमें भिन्न हैं कि उनका उद्देश लिखने-पढ़नेकी योग्यता बढ़ाना नहीं है, बल्कि उनका लक्ष्य मज़दूरोंके जीवनकी वास्तविक दशा सुधारना है। वे राजनैतिक तथा सामाजिक शिक्षा देते हैं, परन्तु उनकी परिधि उन्हीं विषयों तक परिमित है, जिनका मज़दूरोंके दैनिक जीवनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

पुस्तकालयोंकी उपयोगिताका क्षेत्र स्कूलोंके क्षेत्रसे कहीं विस्तृत है। उनका उद्देश मनोरंजन, शिक्षा और ज्ञानवर्द्धन है, इसलिए उनमें गल्प, उपन्यास, नाटक, कला, विज्ञान और नीति-विषयक तथा रेफरेंसकी ऐसी पुस्तकें रहती हैं, जो सब अवस्थाके लोगोंके लिए उपयोगी हों। उसमें मज़दूरों-सम्बन्धी विशद व्याख्यासहित नये क़ानूनोंकी पुस्तकें भी रहती हैं।

पुस्तकोंसे अधिक लोगोंका ध्यान समाचारपत्रोंकी ओर रहता है, इसलिए उनका विशेष प्रबन्ध किया गया है। फिर मज़दूरोंमें बहुतोंको स्वयं लेखक या पत्रकार बननेकी लालसा रहती है, और कुछमें इन बातोंके आवश्यक गुण भी उपलब्ध होते हैं। पत्रकारोंमें से भविष्यमें देशके लिए राजनैतिक नेता मिलनेकी भी सम्भावना है। इटलीका विधाता मुसोलीनी स्वयं भी पत्रकार था। इसलिए समय-समयपर दोपोलावोरो प्रदर्शिनी किया करता है, जिनमें मज़दूरोंके फ़ुरसतके समयमें लिखे हुए लेख और चित्रादि प्रदर्शित किये जाते हैं।

मज़दूरोंकी उत्पादनशक्ति बढ़ानेके लिए दोपोलावोरोने उद्योग-धन्धोंकी शिक्षा देनेके लिए स्कूल खोले हैं, जो रातको दो-तीन घंटे और रविवारको लगा करते हैं। इन स्कूलोंमें शार्टहैंड, टाइपराइटिंग, बही-खाता, हिसाब-परीक्षा, मेशीन-ड्राइंग, प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, इटेलियन साहित्य, विदेशी भाषाएँ, बढ़ईगीरी, हवाई-जहाज़की इंजीनियरी, रेशमके कीड़ोंकी खेती आदि

बातें सिखाई जाती हैं। सन् १९२६-२७ में एक गल्प-लेखन-प्रतियोगिता की गई थी, जिनमें बहुतसे मज़दूरोंने भाग लिया था। इस प्रतियोगितामें आई हुई कहानियोंमें १४ कहानियाँ प्रकाशन-योग्य समझी गईं, और उन्हें दोपोलावोरोने एक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया।

सामाजिक क्षेत्रमें दोपोलावोरोका कार्य बहुत विस्तृत और बहुत पेचीदा है। अभी तक मज़दूरों और किसानोंमें फ़ुरसतका अधिकांश वक्त शराबख़ानोंमें अड्डेबाज़ी करनेमें व्यय होता है। इसका जो परिणाम होता था, उसकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है। अब दोपोलावोरोके क्लब-घरोंमें उन्हें बैठने-उठनेकी सुविधा होती है। साथ ही दोपोलावोरो इस बातकी बड़ी चेष्टा कर रहा है कि लोगोंको अपने घरोंके प्रति प्रेम पैदा हो। इसके लिए सबमें आवश्यक बात यह है कि मज़दूरोंके घर साफ़-सुथरे, स्वास्थ्यप्रद और आकर्षक हों। देश-भरके मज़दूरों और किसानोंके लिए इस प्रकारके घरोंकी व्यवस्था करनेमें कितना अधिक धन और समय चाहिए, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। दोपोलावोरोके पास इतना धन नहीं है, और उसे स्थापित हुए कुल जमा छै वर्ष हुए हैं, इसलिए अभी वह इस सम्बन्धमें प्रोपोगेंडा कर रहा है। वह मज़दूरोंके मालिकोंको बतलाता है कि मज़दूरोंकी शारीरिक, नैतिक और मानसिक उन्नतिके लिए वेतनके अलावा अच्छा हवादार मकान भी ज़रूरी है, और मकानोंकी उन्नतिपर मज़दूरों द्वारा तैयार किये हुए मालका परिमाण और अच्छाई-बुराई निर्भर है। अतः उन्हें मज़दूरोंके लिए अच्छे मकानोंकी व्यवस्था भी करनी चाहिए। कुछ कारख़ानोंके मालिकोंने इस प्रकारके घरोंकी व्यवस्था भी की है। इसके अतिरिक्त मज़दूरोंको अपने निजी मकान बनानेके लिए कम सूदपर ऋण लेनेकी सुविधा दी गई है, जिसे वे अपने वेतनसे थोड़ा-थोड़ा करके चुका दें। दोपोलावोरोने प्रदर्शिनियों द्वारा इस बातकी प्रतियोगिताका संगठन भी किया है कि मज़दूरों और किसानोंके लिए किस प्रकारके मकान सबसे उपयोगी और सस्ते होंगे, और उन्हें किस प्रकार कम-से-कम ख़र्चमें अच्छे-से-अच्छा सजाया जा सकता है। सस्तेमें मकान सजानेकी प्रतियोगिताके लिए जो प्रदर्शिनी हुई थी, उसमें केवल १५ दिनमें ३,००,००० लिरेसे अधिककी चीज़ोंकी बिक्री हुई। इस प्रकारकी प्रदर्शिनियाँ और प्रतियोगिताएँ देशमें अनेक स्थानोंमें की गईं, और जिन कम्पनियोंने सबसे सस्तेमें मकान सजानेका सामान प्रदर्शित किया, उन्हें पारितोषिक दिया गया। बहुतसी दूकानोंसे इस प्रकारका प्रबन्ध किया गया है कि दोपोलावोरोके सदस्योंको वे सस्ते दामोंमें चीज़ें दें। सरकारी कारख़ानोंमें बनी हुई चीज़ें सदस्योंको कम दाम और किश्तपर मिलती हैं।

फ़ुरसतका वक्त काटनेके लिए फूलों और तरकारियोंकी बाग़बानी बड़ा अच्छा साधन है। इसमें लोगोंका वक्त खुली हवामें कटता है, कसरत—मेहनत—भी मज़ेकी हो जाती है, साथ ही उन्हें खानेके लिए ताज़ी-से-ताज़ी—पेड़के टूटी हुईं—तरकारियाँ मुफ्त मिल जाती हैं। इसलिए दोपोलावोरो इस बातकी चेष्टा किया करता है कि उसके सदस्योंको उनके घरोंके पास या थोड़ी दूरीपर इस प्रकारकी बाग़बानीके लिए ज़मीनके टुकड़े आसानीसे मिल सकें। साथ ही वह प्रोपोगेण्डा द्वारा उन्हें यह बताता है कि कैसी ज़मीन चुनना चाहिए ; उसे कैसे तैयार करना चाहिए ; बीज और औज़ार कैसे चाहिए ; क्या चीज़ कब बोना चाहिए, और किस प्रकार उनकी हिफ़ाज़त करनी चाहिए। सदस्यों द्वारा उपजाई हुई चीज़ोंकी प्रतियोगिता और प्रदर्शिनी होती है।

दोपोलावोरो समय-समयपर व्याख्यानों और फ़िल्मों द्वारा लोगोंको स्वास्थ्य-सफ़ाई, रोगोंसे बचनेका उपाय, शिशु-पालन आदि बातोंकी शिक्षा भी देता है। अनेक स्वास्थ्यशालाओं और दवाख़ानोंमें दोपोलावोरोके सदस्योंको विशेष रियायत दिलाई जाती है। सदस्योंको पहाड़पर आरोग्यप्रद स्थानोंमें तथा

गर्म पानीके सोतोंमें स्नान द्वारा रोग-निवारणकी सुविधाएँ भी प्रदान करनेकी व्यवस्था की गई है।

काम करते समय, या फुरसतके वक्त किसी दुर्घटनासे मृत्यु हो जाने, या घायल होकर बेकार हो जानेके लिए मज़दूरोंका बीमा करनेका विशेष प्रबन्ध किया गया है।

दोपोलावोरोका कार्यक्षेत्र केवल शहरके कल-कारख़ानों तक ही परिमित नहीं है। वह यह अनुभव करता है कि देशका बहुत बड़ा भाग देहातोंमें रहता और कृषिपर निर्भर करता है। देहातोंके मैले-कुचैले, रहन-सहन और नीरस कष्टप्रद जीवनसे ऊबकर तथा शहरोंकी बाहरी तड़क-भड़क और विलासितापूर्ण जीवनसे आकर्षित होकर, यूरोप-अमेरिकामें नई पौधके सैकड़ों देहाती युवक शहरोंको भाग खड़े होते हैं। फैसिस्ट सरकारकी नीति इसके बहुत ख़िलाफ़ है, और वह देहातोंको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहती है। इसलिए वह देहाती कृषकोंके जीवनको अधिक सुखप्रद और आकर्षक बनानेकी चेष्टा कर रही है। इस क्षेत्रमें दोपोलावोरोका कार्य यह है कि लोगोंका जीवन-निर्वाहका स्टैंडर्ड उन्नत किया जाय, उन्हें जीवनके आवश्यक सुख अपने ग्रामोंमें ही उपलब्ध हों, और कृषि सम्बन्धी ऐसी शिक्षा मिले, जिससे वे कम परिश्रमसे अधिक उत्पादन कर सकें।

इस सम्बन्धमें सबसे पहली बात है देहाती मकानोंकी समस्या। देहाती मकानोंमें आधुनिक वैज्ञानिक ढंगकी उन्नति करके, उन्हें स्वच्छ, हवादार और आकर्षक बनानेके लिए दोपोलावोरोने 'देहाती मकानों'की एक प्रतियोगिता निकाली थी, जिसके द्वारा कृषकोंको भिन्न-भिन्न प्रकारके मकान बनानेका ढंग ज्ञात हो सके। इन मकानोंके तैयार करनेमें देशके भिन्न-भिन्न भागोंके रहन-सहन, रीति-रिवाज, ज़रूरतों और कृषि-सम्बन्धी आवश्यकताओंपर विशेष ध्यान रखा गया है। प्रतियोगितामें उन लोगोंको भी पुरस्कार दिया गया था, जो मौजूदा मकानोंको उन्नत करके उन्हें स्थानीय रहन-सहनके अनुसार वैज्ञानिक ढंगसे स्वच्छ और आवश्यकताओंके अनुकूल बनायें। मवेशीख़ानोंके निर्माणमें विशेष कौशलकी ज़रूरत है। उनके निर्माणकी प्रतियोगिता भी की गई थी। साथ ही इस बातका ध्यान रखा गया था कि इन मकानोंको बनानेमें जो सामान लगे, वह सस्ता हो और यथासम्भव देहातोंके आसपास ही मिल सके। देहातोंमें लोगोंको फल-फूल और तरकारीके बाग़ लगानेमें भी प्रोत्साहन दिया जाता है; उन्हें आवश्यक औज़ारोंकी सुविधा प्रदान की जाती है, और इस बातकी देखरेख की जाती है कि उनकी पैदा की हुई चीज़ें आसानीसे बिक सकें।

इटलीके ७००० परगनों (Commune) में से ५११० परगनोंमें दोपोलावोरोकी शाखाएँ हैं। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि दोपोलावोरोका देहातोंमें भी काफ़ी प्रचार है। बेपढ़े तथा अधपढ़े कृषकोंकी शिक्षाके लिए रात्रि-पाठशालाएँ तथा छोटे-छोटे पुस्तकालय खोले गये हैं, जिनमें कृषि, इतिहास और भूगोल-विषयक पुस्तकें रखी जाती हैं। देहातोंमें भी संगीत तथा नाटक-मंडलियाँ खोली गई हैं, और सिनेमा दिखाये जाते हैं। ग्राम-कथाओं आदिके सम्बन्धमें पहले ही कहा जा चुका है। स्वास्थ्य और सफ़ाईके लिए व्याख्यानों और फिल्मोंके अतिरिक्त ७६,००० से अधिक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ मुफ़्तमें बाँटी जा चुकी हैं। २० नये देहाती अस्पताल खोले गये हैं।

देहातोंमें दोपोलावोरोकी प्रतियोगिताएँ दूसरे ही ढंगकी होती हैं। जैसे गाड़ी भरनेकी प्रतियोगिता, हल जोतनेकी प्रतियोगिता, निरानेकी प्रतियोगिता आदि। कृषकोंको कृषिविषयक शिक्षा देनेपर विशेष ध्यान दिया जाता है। फैसिस्ट सरकारने एक गश्ती कृषि-विद्यालय खोल रखा है, जो घूम-फिरकर कृषकोंको कृषि-सम्बन्धी बातें बतलाता है। रेशमके कीड़े पालना इटलीका एक ख़ास धन्धा है। दोपोलावोरो अपने सदस्योंमें इस धन्धेको आरम्भ करनेके लिए रेशमके कीड़े मुफ़्त बाँटता है। रेशमके कीड़े शहतूतकी पत्तियाँ

खाते हैं, इसलिए शहतूत उपजानेपर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। घरेलू जानवरों और मधुमक्खी आदिको बढ़ानेके लिए प्रयोग किये जा रहे हैं। दक्षिणी इटलीमें फलोंके उत्पादनकी वृद्धिमें सहायता दी जाती है, तथा अन्य सैकड़ों छोटे-छोटे घरेलू धन्धोंको प्रोत्साहित किया जाता है।

पुरुषोंके दोपोलावोरोके साथ-साथ स्त्रियोंके भी दोपोलावोरोका विकास हुआ है। स्त्रियोंके दोपोलावोरोमें विशेषकर वही विषय रखे जाते हैं, जिनका सम्बन्ध केवल स्त्रियोंसे है, जैसे मातृ-मंगल, सिलाई, कटाई, क़सीदा काढ़ना आदि।

सरकारी विभागोंमें—जैसे रेलवे, पोस्ट-आफ़िस, तारघर तथा सरकारी कल-कारख़ाने—काम करनेवालोंके दोपोलावोरो अलग हैं।

दोपोलावोरोका कार्य इटली तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अब वह ट्रिपोली, शुमालीलैंड आदि उपनिवेशोंमें जहाँ-जहाँ इटलीका राज्य है, बढ़ाया जा रहा है।

हमारे देशके ३५,००,००,००० आदमियोंके बेकार समयके सहस्रांशका भी यदि इस प्रकार निर्माणात्मक कार्योंमें सदुपयोग हो, तो दस-पाँच वर्षमें ही यह भारतवर्ष पुनः स्वर्णभूमि बन जाय, मगर यह तभी सम्भव है, जब देशका शासन उत्तरदायित्वपूर्ण सच्चे, कर्मठ देशभक्तोंके हाथमें हो। देखें, वह दिन कब आता है।

जीवन-संगीत

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', बी० ए०

कंचन-थाल सजा सौरभसे
ओ फूलोंकी रानी!
अलसाई-सी चली कहो
करने किसकी अगवानी?

वैभवका उन्माद, रूपकी
यह कैसी नादानी!
उषे! भूल जाना न ओस
की करुणामयी कहानी।

ज़रा देखना गगन-गर्भमें
तारोंका छिप जाना;
कल जो खिले आज उन फूलों
का चुपके मुरझाना।

रूप-राशिपर गर्व न करना,
जीवन ही नश्वर है;
छविके इसी शुभ्र-काननमें
सर्वनाशका घर है।

सपनोंका यह देश सजनि!
किसका क्या यहाँ ठिकाना?
पाप-पुण्यका व्यर्थ यहाँ
बुनते हम ताना-बाना।

प्रलय-वृन्तपर डोल रहा है
यह जीवन दीवाना;
अरे, मौतका निःश्वासोंसे
होगा मोल चुकाना।

सर्वनाशके अट्टहाससे
गूँज रहा नभ सारा;
यहाँ तरी किसकी छू सकती,
वह अमरत्व-किनारा।

एक-एककर डूबो रहा
नावोंको प्रलय अकेला;
और इधर तटपर जुटता है
वैभव-मदका मेला।

सृष्टि चाट जानेको बैठी
निर्भय मौत अकेली ;
जीवनकी नाटिका, सजनि !
है जगमें एक पहेली ।

यहाँ देखता कौन कि यह
नतमस्तक, वह अभिमानी ?
उठती एक हिलोर, डूबते
पंडित औ' अज्ञानी ।

यह संग्रह किस लिए हाय,
इस जगमें क्या अक्षय है ?
अपने क्रूर करोंसे छूता
सबको यहाँ प्रलय है ।

लो, वह देखो, वीर 'सिकन्दर'
सारी दुनिया छोड़ ;
दो गज़ ज़मीं खोजनेको
चल पड़ा क़ब्रकी ओर ।

'सोमनाथ'-मंदिरका सोना
ताक रहा है राह ;
ओ 'महमूद' क़ब्रसे उठकर
पहनो ज़रा सनाह ।

सुनते नहीं रूससे लन्दन
तककी यह ललकार ?
'बोनापार्ट' ! 'हेलना'* में
सोये क्यों पाँव पसार ?

और डालके फूलोंपर
क्यों तू भूली अलबेली ?
बिना बुलाये ही आती
होगी वह मौत सहेली ।

सुन्दरतापर गर्व न करना,
ओ स्वरूपकी रानी !
समय-रेतपर उतर गया
कितने मोतीका पानी !

रंथी रथसे उतर चिताका
देखोगी संसार ;
ज़रा खोजना उन लपटोंमें
इस यौवनका सार ।

प्रिय-चुम्बित ये अधर और
उन्नत उरोज सुकुमार सखी !
आज न तो कल श्वान-शृगालों
के होंगे आहार सखी !
दो दिन प्रियकी मधुर सेजपर
कर लो प्रणय-विहार सखी !
चखना होगा तुम्हें एक दिन
महाप्रलयका प्यार सखी !

जीवनमें है छिपा हुआ
पीड़ाओंका संसार सखी !
मिथ्या-राग अलाप रहे हैं
इस तंत्रीके तार सखी !
जिस दिन माँझी आयेगा
ले चलनेको उस पार सखी !
यह मोहक यौवन देना
होगा उसको उपहार सखी !

जीवनके छोटे समुद्रमें
बसी प्रलयकी ज्वाला ;
अमिय यहीं है, और यहीं
वह प्राणघातिनी हाला ।
इस चाँदनी बाद आयेगा
यहाँ विकट अँधियाला ;
यही बहुत है छलक न पाया
जो अब तक यह प्याला ।

हरा-भरा रह सका यहाँपर
नहीं किसीका बाग़ सखी !
यहाँ सदा जलती रहती है
सर्वनाशकी आग सखी !

---

* नेपोलियन अब पेरिसमें सोता है । —सम्पादक

काश्मीरमें हाथकताई-बुनाईका उद्योग

श्री रामस्वरूप गुप्त, एम० ए०

काश्मीरकी जगद्व्यापक प्रसिद्धिका एक कारण तो उसका प्राकृतिक सौन्दर्य है, और दूसरा कारण उसकी कताई और बुनाईका कलापूर्ण उद्योग है। यह हमारे लिए अभिमानकी बात है कि ऊनी वस्त्रके उद्योग-व्यवसायमें संसारमें काश्मीरका स्थान सर्वोच्च है, और जिस प्रकार एक समय ढाका और मुसलोपट्टम आदिके सूती वस्त्रोंका व्यवहार करके यूरोपकी कुलीन महिलाएँ तक अपनेको कृतकृत्य मानती थीं, उसी प्रकार आज भी संसारके सभी सभ्य देशोंमें काश्मीरके ऊनी वस्त्रोंको वैसा ही आदर प्राप्त है। आज भी काश्मीरके निर्धन कारीगरोंकी इस हस्तकलाका मुक़ाबला इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया आदिके न कारीगर ही कर पाये हैं, और न उनकी समुन्नत पेचीदा मशीनें ही। यद्यपि जर्मनीने सस्ते मेलके दुशाले और रफलकी चादर बनाकर भारतवर्षके बाज़ारपर कब्ज़ा जमाया है और इंग्लैंडने ऊनी कोटिंग आदि बनाकर, परन्तु सस्तेपनके पीछे न दौड़कर जो वस्तुके गुण (Quality) और उसके टिकाऊपनकी क़दर करते हैं, वे काश्मीरके बने हुए शाल और पश्मीनेको ही पसन्द करते हैं। काश्मीरकी कालीनोंके लिए तो अमेरिका और फ्रांस तकसे आर्डर आते हैं। ये सब चीज़ें काश्मीरके कारीगर अपने सीधे-सादे औज़ारों और स्त्रियाँ उसी पुराने चरखोंसे तैयार करती हैं। हाँ, काश्मीरकी स्त्रियाँ जो सुईका काम करती हैं और फूल-पत्तियोंके जैसे सुन्दर नमूने वस्त्रोंपर काढ़ती हैं, वे भी चित्तको लुभाने और प्रतिद्वन्द्विताके भावोंको शिकस्त देनेवाले हैं।

काश्मीरकी जिस जलवायु और प्रकृतिपर बाहरसे आये हुए यात्री मुग्ध रहते हैं, वह भी स्वदेशके इस उद्योगमें सहायक है। यानी काश्मीरके ऊनमें उष्णता, मुलायमियत और विविध प्रकारके सुन्दर रंग जो प्रत्येक भेड़के ऊनमें पृथक् होते हैं और जिसकी भिन्नता (Shades) की संख्या गिनना असम्भव है, वे यहाँकी प्राकृतिक जलवायुके कारण ही उत्पन्न होते हैं, और काश्मीरी ऊनमें वह विशेषता पैदा कर देते हैं, जो प्रायः अन्य देशों और मैदानोंमें पलनेवाली भेड़ोंके ऊनमें नहीं मिलती। दूसरी बात यह है कि वर्षके कई महीनों तक अत्यन्त शीतके कारण जब खेती-बारी और वाणिज्य-व्यवसायके और काम असम्भव हो जाते हैं, तब यहाँके निवासी घरमें बैठे हुए ऊनके इस उद्योग द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। प्रकृति माताने जहाँ जीविकोपार्जनके अन्य मार्गोंको कई मासके लिए बन्द कर रखा है, वहाँ इस मार्गको खुला छोड़ दिया है। यदि मिलोंकी होड़के कारण कहीं काश्मीरके इस उद्योगको धक्का पहुँचे, तो यह काश्मीरके निर्धन निवासियोंपर घातक आक्रमण होगा, इसका अनुमान सहजमें किया जा सकता है, और मुसलमानोंके गत दंगेके समय इसका उदाहरण भी मिल गया था। यद्यपि उस समय काश्मीरके ऊनी वस्त्रके उद्योग और व्यवसायपर जो आघात हुआ, और जिसका असर इस समय भी बाक़ी है, उसका कारण विदेशोंकी अथवा हिन्दुस्तानमें ही स्थित ऊनी मिलोंकी प्रतिस्पर्द्धा (Competition) नहीं थी, किन्तु राजनैतिक उपद्रवोंके कारण वहाँके कारबारके नियमित संचालनमें रुकावटें पड़ीं, और थोड़े ही समयमें वहाँके निवासियोंको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, उसे वही समझ सकते हैं, जो उस समय काश्मीरमें थे। बाहरवाले तो व्यापारकी मंदी और उसके कारण काश्मीर-राज्यकी आमदनीमें कमीका हाल जानते हैं, परन्तु उन ग़रीबोंके संकटका—उनके दाने-दानेके मुहताज होनेका—शायद हम लोगोंको अनुमान भी नहीं है, जो ऊन कात-बुनकर तथा इनके सहायक काम करके अपना गुज़र-बसर करते हैं। काश्मीर-चरखा-संघके

मन्त्री श्री कोटकजीने दंगेके समय श्रीनगरके निर्धन निवासियोंकी आर्त्तदशाका वर्णन करते हुए जो पत्र 'खादी-पत्रिका' में भेजा था, उसमें बिलकुल ठीक कहा था—ईश्वर ही उनपर रहम कर सकता है, या साबरमतीका सन्त ही उनकी दशापर तरस खा सकता है—बाज़ार और सड़कें तक उपद्रवके कारण बन्द थीं। ऊन और पश्मीनेका धागा लेनेवाला कोई न था। घरमें स्त्रियाँ और कारीगर बिना पैसेके भूखे रह रहे थे। याद रखिये कि काश्मीरमें इस धंधेपर गुज़र करनेवालोंकी संख्या ऐसी ही है, जैसे देशके अन्य भागोंमें कृषिजीवी लोगोंकी। अतएव इस धंधेके रुकते ही काश्मीरमें वही हालत पैदा हो जाती है, जो हमारे यहाँ दुर्भिक्ष पड़नेसे। इतना महत्त्वपूर्ण उद्योग होनेपर भी राज्यको जितनी उसकी रक्षा और सहायता करनी चाहिए, उसका शतांश भी नहीं की जाती! विदेशोंसे—ख़ासकर जर्मनीसे—काश्मीरकी नक़लके शाल और रफलकी ऊनी सफेद चादरें और उनका धागा बहुतायतसे आने लगा है। राज्यकी ओरसे उसपर कदाचित् वह चुंगी नहीं लगाई गई है, जिसको संरक्षक चुंगी (Protective duty) कह सकें। लेखकने यह भी सुना था कि शायद विदेशोंसे आये हुए सूती और ऊनी शालपर भी राज्य उसके अलावा कोई चुंगी नहीं लगा सकता, जो बन्दरगाहोंपर ब्रिटिश सरकार लगा लेती है। अस्तु, यदि कई वर्ष पूर्व चरखा-संघ काश्मीरमें कार्य आरम्भ न करता, तो ऊनके इस गृह-उद्योगका भी उसी प्रकार ह्रास होना आरम्भ हो गया होता, जैसा सूतकी हाथकताई-बुनाईका देशमें सर्वत्र हो चुका है। उसपर भी जब राज्यने काश्मीर-चरखा-संघके साइन बोर्डपर बने हुए राष्ट्रीय झंडेको हटानेका आदेश दिया, तो चरखा-संघकी ओरसे यह उत्तर दिया गया कि झंडा हटानेकी अपेक्षा वे काम बन्द करके चला जाना पसन्द करेंगे। इसपर राज्यको चुप हो जाना पड़ा।

इसी प्रकार जो वस्त्र देहातसे श्रीनगरसे बिकने आता है, उसपर भी राज्यकी ओरसे आध आना फी रुपया चुंगी ली जाती है, और चूंकि धुलाई तथा विक्रीके लिए भी अधिकांश वस्त्र श्रीनगरमें आता है, इस कारण यह चुंगी लगभग सभी वस्त्रोंपर पड़ जाती है। पुरानी लोइयोंको—जो पट्टू बनानेके लिए बिकने आती हैं—ओढ़े ग्रामीणोंको श्रीनगरसे आते हुए लेखकने प्रायः देखा है, ताकि इस प्रकार उनपर चुंगी न देनी पड़े।

काश्मीरमें जाड़ा

जो लोग स्वास्थ्यके लिए अथवा मनोरंजनके लिए काश्मीर आते हैं, वे काश्मीरकी ग्रीष्मऋतुका आनन्द लूटते हैं; परन्तु बाहरके यात्रियोंमें ऐसे बहुत थोड़े हैं, जो काश्मीरके जाड़ेकी ऋतुका अनुभव रखते हों। जिस समय सारे पर्वत हिमाच्छादित हो जाते हैं और अत्यन्त शीतल पवन चलती है, तब बाहर रहना असम्भव हो जाता है, और प्रत्येक किसान अपने घरमें पर्याप्त भोजन, गरम कपड़े और ऊन जमा कर लेता है। भेड़ें जो छै महीने पहाड़ोंमें रही हैं, उन्हें किसान घर ले आता है, और केवल चरखा और करघा ही उसके समय बिताने तथा जीविकोपार्जनका साधन रह जाता है। केवल यही नहीं, ऋतुकी कठोरतासे रक्षाका साधन भी इन्हींसे मिलता है, और जाड़ेकी ऋतुमें उसको निष्क्रिय बना देनेके बजाय ये उसको अधिकतर कार्यशील बनाते और उत्साह तथा शक्ति प्रदान करते हैं—ऐसी शक्ति कि जो मनुष्य ऋतुके प्रारम्भमें क्षीण और कृशतनु थे, वे ऋतु व्यतीत होते-होते हृष्टपुष्ट हो जाते हैं। नीचेवाले प्रदेशोंके यात्री यहाँ ग्रीष्ममें अपना स्वास्थ्य सुधारते हैं, परन्तु काश्मीर-निवासियोंके लिए जाड़ेकी ऋतु स्वास्थ्यप्रद सिद्ध होती है।

चरखेके नाम

ऐसे प्राणप्रद साधनको काश्मीर-निवासी कितनी श्रद्धासे देखते हैं, यह उन नामोंसे प्रकट हो जायगा, जो चरखे और उसके भागोंके काश्मीरमें प्रचलित हैं—

चरखा	इन्द्र या सम्मानपूर्वक इन्द्र राजा
तकुवा	इन्द्रतुल
माल	योन्य (बोलचालकी भाषामें इसके अर्थ यज्ञोपवीतके हैं)
पँखिया	पद्म
हथिया	चक्र
चमरख	प्रजापति

क्यों न हो, संसार उसी वस्तुकी पूजा करता है, जिससे उसका हित होता है। भारतवर्षमें गायके महात्म्य और पूजाका भी यही कारण है, जो सर्वथा उचित है। अस्तु, काश्मीरका चरखा पंजाबी चरखेकी भाँति ही होता है, और उसकी पंखियाका व्यास लगभग २२ इंच होता है।

काश्मीरी ऊन और उसकी कताई

ऊनकी सबसे बढ़िया किस्मको पश्म कहते हैं, और उसके बने हुए कपड़ेका नाम पश्मीना है। यह ऊन मध्यएशियाके यारकन्द प्रदेशमें होता है, और वहाँसे लद्दाक होकर काश्मीर आता है। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, और पश्म लानेवाले सौदागरोंको अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। श्रीनगरके छोटे-छोटे दुकानदार इन सौदागरोंसे पश्म खरीद लेते हैं, और उसको कातनेवाली स्त्रियोंको बेचते और उनसे कता हुआ धागा ख़रीदते हैं। श्रीनगरमें ऐसी छोटी-छोटी दुकान प्रत्येक मुहल्लेमें हैं।

साधारण किस्मका ऊन काश्मीरकी भेड़ोंसे आता है, और उसमें विभिन्न रंग होते हैं। ऊनके काटनेका काम देहातोंमें बड़े उत्सवके साथ वर्षमें दो बार—चैत्र और आश्विनमें—किया जाता है।

दुकानदारोंसे ऊन खरीदकर उसकी धुनाई स्त्रियाँ स्वयं करती हैं। पश्मको धुनना बड़ी कारीगरीका काम है। यह बालोंसे ढकी रहती है, जिन्हें अलग किये बिना वह काती नहीं जा सकती। यह लगभग उतनी ही मुलायम होती है, जितनी कि रुई। पश्मीना धुनकीसे नहीं धुना जाता, यह कंघीपर साफ़ किया जाता है। कंघी करते समय फिर इसमें महीन और ज़रा नम चावलका आटा मिलाया जाता है। फिर साफ़ की हुई पश्मसे पोनी बनाई जाती और काती जाती है। यह कते हुए धागे बँटकर बेचनेके बजाय क़रीब २२ इंच लम्बे और ३५ धागे फिरकीमें लपेटकर ताने और बानेके रूपमें दुकानदारोंको बेचे जाते हैं, जैसे दक्षिण-प्रदेशमें सूतको भी ताना और बाना बनाकर ही स्त्रियाँ बेचती हैं। कच्ची रुई और ऊनसे अधिकसे अधिक मजूरी कमानेका यह तरीक़ा है।

काश्मीरी वस्त्र

काश्मीरी ऊनी वस्त्रके अनेक प्रकार हैं। काश्मीरके बुनकारोंकी कारीगरी सराहनीय है। शालकी बुनाईमें लगभग डेढ़ साल लगते हैं। यहाँ साड़ी तथा शालपर दोरुखा निकासीका काम इतना सुन्दर कलापूर्ण होता है कि वैसा पेरिसमें भी नहीं होता। ६३ इंच चौड़े थान इतने बारीक आज भी बुने जाते हैं कि अंगूठेके छेदसे निकल जायँ, और ये रेशमसे भी अधिक मुलायम होते हैं। पुराने समयसे अमीर घरानों और दरबारसे इन उद्योगोंको प्रोत्साहन मिलता रहा है, और कहीं भी कला तथा कारीगरी प्रोत्साहन बिना नहीं चल सकती। पश्मीने और ऊनसे नीचे लिखी मुख्य वस्तुएँ काश्मीरमें बनाई जाती हैं।

पश्मीनेसे—खुदरंग और सफेद अलवान, ताफ्ता, तूश, शाहतूश, शाल और कोटिंगका कपड़ा। सफेद अलवान १२ गज़ लम्बा तथा ५० इंच चौड़ा और खुदरंग अलवान तथा ताफ्ता ७ गज़×५८ इंच होता है। ताना दोनोंमें दुसूती तथा बाना अलवानमें एक सूती होता है। तूश भूरा या तम्बाकूके रंगका होता है। इसका ताना बँटे हुए पश्मीनेका होता है, और इकहरे बानेमें पश्मीनेकी सर्वश्रेष्ठ किश्म तोशका सम्मेलन होता है, जिसके कारण तूश और चीज़ोंसे अधिक नरम होता है। शाहतूश बिलकुल तोशका बना होता है। इसका ताना-बाना भी बँटा हुआ होता है, जिसके कारण यह बहुत क़ीमती, यानी दो सौ रुपयेसे लेकर पाँच सौ

रुपये तकका, होता है। ७ गज़ लम्बे थानका वज़न तीन पावके लगभग होता है। काश्मीरके शालका ताना रेशमका होता है और बढ़िया बुनाई तथा सुन्दर सुईके कामके कारण शाल अत्यन्त चित्ताकर्षक होते हैं। पश्मीनेका बना हुआ कोटिंगका कपड़ा बारीकी और नफ़ासतमें इंग्लैंड आदिके बढ़िया-से-बढ़िया कपड़ेसे भी बाज़ी ले जाता है, और गर्म तो वह उनसे अत्यधिक होता है। इसके अलावा पश्मका रोयाँ बहुत महीन और लसदार होनेके कारण पश्मीना अधिक टिकाऊ और सदा नया रहता है। लोग अपने अनुभवसे बतलाते हैं कि अंगरेज़ी ऊनी वस्त्रकी कमीज़ें दो साल चलती हैं, और पश्मीनेकी चार साल। काश्मीरी शाल तो पचास-साठ वर्षके उपयोगके बाद भी ऐसे सुन्दर और चमकदार बने रहते हैं कि बिलकुल नये दीखते हैं।

साधारण ऊनकी ख़ासकर निम्न-लिखित चीज़ें काश्मीरमें बनती हैं—लोई, पट्टू, ट्वीड और कम्बल। लोई और कम्बल ओढ़नेके और ट्वीड प्रायः कोटके काममें आते हैं। काश्मीरमें चारख़ानेदार रगका नाम भी कम्बल है, जैसे यहाँ ऊलेन मिल्समें बनते हैं। काश्मीरके पट्टूके विषयमें प्रायः लोग अनभिज्ञ होते हैं कि किस प्रकार पुरानी इस्तेमाल की हुई लोइयोंको रफ़ू और मलीदाकी क्रियाओंसे कोटके योग्य बिलकुल नया वस्त्र तैयार कर लिया जाता है। मलीदा उस क्रियाको कहते हैं, जिसके द्वारा पुराने या नये कपड़ेको धुलाकर उसमें काश्मीरी साबुन लगाया जाता है, और फिर उसको कठौतानुमा बर्तनमें पैरोंसे ख़ूब रौंदते हैं। जितना मोटा करना होता है, उतना ही वह रौंदा जाता है। यदि ५४ इंच अर्ज़के कपड़ेको ४० इंच बनाना है, तो लगभग छै घंटे उसको रौंदना पड़ता है। काश्मीरी पट्टू इसी प्रकार नई और पुरानी लोइयोंसे तैयार किया जाता है। पुरानी लोईका पट्टू अधिक चमकदार और मुलायम होता है।

पश्मीनेके पुराने फटे हुए कम्बल और धुस्से आदिसे भी इसी प्रकार कोटिंगका कपड़ा तैयार किया जाता है।

ख़ासकर ऊपर लिखी हुई चीज़ें और फलालेन काश्मीरमें तैयार किया जाता है, परन्तु जो ऊनी कपड़ा काश्मीरा कहलाता है, वह प्रायः विदेशी होता है। सस्ते दुशाले जो काश्मीरी कहकर बिकते हैं, वे भी जर्मनीके बने होते हैं। सस्तेपनने टिकाऊपन और कलाका नाश कर दिया है। हाथ-कताईका उद्योग किस प्रकार देहातमें, स्वच्छ वायुमें, रहते हुए, अपने बच्चों और घरके कामके बीचमें भी, ग़रीब-से-ग़रीब परिवारोंके लिए जीविकोपार्जनका एक सुलभ साधन है, और उसकी रक्षा करनेसे कितना पुण्य है, यह ऊपर दिये हुए वृत्तान्तसे प्रकट होता है।

बौद्धोंका अनात्मवाद

'महापंडित' त्रिपिटिकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायन

बुद्धका सारा दर्शन अनित्य, दु:ख और अनात्म—इन तीन सिद्धान्तोंपर अवलम्बित है। सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं। इस नियमको बिना अपवादके सभी देश, काल, व्यक्तिमें मानना बुद्धकी शिक्षाकी सबसे बड़ी विशेषता है। यह नियम सिर्फ़ बाह्य वस्तुओंपर ही लागू नहीं, बल्कि आभ्यन्तर आत्मा तक इसके शासनके बाहर नहीं है। वस्तुत: बुद्धके मतमें अनित्यता ही एक नित्य नियम है। वस्तुएँ अनित्य—क्षणिक—हैं, अत: किन्हीं दोका सदा एक साथ रहना हो नहीं सकता। प्रिय वस्तुओं, प्रिय प्राणियोंका संयोग ही तो सुख कहा जाता है। अनित्यताके सार्वभौमिक नियमके कारण वह सदा रह नहीं सकता। सभी प्रियोंका वियोग अवश्यम्भावी है। प्रिय-वियोग ही तो दु:ख है। जहाँ वियोगका तीर इतनी तेज़ीसे चल रहा हो, वहाँ प्रिय-समागमके आनन्दको पेट-भर कैसे लूटा जा सकता है। यहाँ तो अत्यन्त प्यासेको चुल्लू भर पानी देकर तड़पाना है, इसीलिए सभी सुखोंकी तहमें दु:ख उसी तरह छिपा हुआ है, जैसे दीपकके नीचे अन्धकार।

दु:खकी भाँति अनात्मता (आत्माकी अनित्यता) भी अनित्यताके नियमके निरपवाद प्रयोगका फल है। यही तीनों अनित्यता, दु:ख और अनात्मता बुद्धकी शिक्षाकी आधारशिला हैं। दु:ख ही दु:खद सत्य है; दु:खके कारण, विनाश और उपायको मिलाकर चार आर्य सत्य होते हैं। दु:ख हटानेका उपाय आर्य अष्टांगिक मार्ग है, जिसके भीतर बुद्धकी शेष शिक्षाएँ आ जाती हैं। इस प्रकार आर्य अष्टांगिक मार्ग चार आर्य सत्योंमें सम्मिलित है, और चार आर्य सत्य अनित्यता, दु:ख, अनात्मतासे सम्बद्ध हैं। यहाँपर हम अनात्मतापर विचार करेंगे।

बुद्ध-निर्वाणके बाद, इन ढाई हज़ार वर्षोंमें, बौद्धोंके भीतर बहुतसे विचार-भेद हुए। १८ पुराने निकायोंके अतिरिक्त अनेक अंधक सिंहल-निकाय, महायान और वज्रयान—सभीने बुद्धके दर्शनके कितने ही अंशोंमें फेरफ़ार किया, किन्तु अनात्मता ही एक विषय है, जिसपर मतभेद कभी नहीं हुआ।

यहाँ पहले हमें यह समझ लेना है कि बौद्ध अनात्मता कैसे मानते हैं। बुद्धके समय ब्राह्मण, परिव्राजक तथा दूसरे मतोंके आचार्य मानते थे कि शरीरके भीतर और शरीरसे भिन्न एक नित्य चेतनशक्ति है, जिसके आनेसे शरीरमें उष्णता और ज्ञानपूर्वक चेष्टा देखनेमें आती है। जब वह शरीर छोड़कर कर्मानुसार शरीरान्तरमें चली जाती है, तो शरीर शीतल, चेष्टारहित हो जाता है। इसी नित्य चेतनशक्तिको वे आत्मा कहते थे। सामीय धर्मोंका भी, पुनर्जन्मको छोड़कर, वही मत है। इनके अलावा बुद्धके समयमें दूसरे भी आचार्य थे, जिनका कहना था—शरीरसे पृथक आत्मा कोई चीज़ नहीं; शरीरमें भिन्न-भिन्न परिमाणमें मिश्रित रसोंके कारण उष्णता और चेष्टा पैदा हो जाती है, रसोंके परिमाणमें कमी-बेशी होनेसे वह चली जाती है। इस प्रकार आत्मा शरीरसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। बुद्धने एक ओर आत्माका नित्य कूटस्थ मानना, दूसरी ओर शरीरके साथ ही आत्माका विनाश हो जाना—इन दोनों चरम बातोंको छोड़ मध्यका रास्ता लिया। उन्होंने कहा—आत्मा कोई नित्य कूटस्थ वस्तु नहीं है, बल्कि खास कारणोंसे स्कन्धों (भूत, मन) के ही योगसे उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतोंकी भाँति क्षण-क्षण उत्पन्न और विलीन हो रही है। चित्तके क्षण-क्षण उत्पन्न होने और विलीन होनेपर भी चित्तका प्रवाह जब तक इस शरीरमें जारी रहता है, तब तक शरीर सजीव

कहा जाता है। हमारे अध्यात्म-परिवर्तन और शरीरके परिवर्तनमें बहुत समानता है।

हमारा शरीर क्षण-क्षण बदल रहा है। चालीस वर्षका यह शरीर वही नहीं है, जो पाँच वर्ष और बीस वर्षकी अवस्थामें था, और न साठवें वर्षमें वही रह जायगा। एक-एक अणु, जिससे हमारा शरीर बना है, प्रतिक्षण अपना स्थान नवोत्पन्नके लिए खाली कर रहा है; ऐसा होनेपर भी हरएक विगत शरीर-निर्मायक परमाणुका उत्तराधिकारी बहुतसी बातोंमें सदृश होता है। इस प्रकार यद्यपि हमारा पहले वर्षवाला शरीर दसवें वर्षमें नहीं रहता, और बीसवें वर्षमें दस वर्षवाला भी ख़तम हुआ रहता है, तो भी सदृश परिवर्तनके कारण मोटे तौरपर हम शरीरको एक कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा भी क्षण-क्षण बदल रही है, लेकिन सदृश परिवर्तनके कारण उसे एक कहा जाता है। आप अपने ही जीवनको ले लीजिए। दो वर्ष पूर्व दूरसे भी आपको सिगरेटका धुआँ नागवार था, और अब उसे चावसे पीते हैं। दो वर्ष पूर्व चिड़ियोंको स्वयं मारकर फड़फड़ाते देखना, आपके लिए मनोरंजनकी चीज़ थी, लेकिन अब आप दूसरे द्वारा मारी जाती चिड़ियाको फड़फड़ाते देख स्वयं फड़फड़ाने लगते हैं। यदि आपको अपने मनके झुकाव और उसकी प्रवृत्तियोंको लिखते रहनेका अभ्यास है, तो आप अपनी पिछली दस वर्षोंकी डायरी उठाकर पढ़ डालिये। वहाँ आपको कितने ही विचार ऐसे मिलेंगे, जिन्हें दस वर्ष पूर्व आप अपना कहते थे, किन्तु दस वर्ष बाद आज यदि कोई आपके ही शब्दोंमें आपके पूर्व विचारोंको आपके सामने रखे, तो आप साफ़ इनकार कर देंगे कि 'यह मेरा विचार नहीं है, न मेरा विचार कभी ऐसा था।' वस्तुतः आपका ऐसा कहना ठीक भी है, क्योंकि आपके पिछले दस वर्षके अनुभवोंने आपको बदल दिया है।

आप कह सकते हैं—मन बदलता है, आत्मा थोड़े ही बदलती है। हमारा कहना है, मनसे परे आत्मा कोई चीज़ नहीं। चित्त, विज्ञान, आत्मा—एक ही चीज़ हैं। जिस प्रकार चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और त्वक् इन्द्रियोंको हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वैसे मनको नहीं। हमें मनकी सत्ता क्यों स्वीकार करनी पड़ती है? आँखें इमली देखती हैं, और जिह्वासे पानी टपकने लगता है। नाक दुर्गन्ध सूँघती है, और हाथ नाकपर पहुँच जाता है। आप देखते हैं, आँख और जिह्वा एक नहीं हैं, न वे एक दूसरेसे मिली हुई हैं। इसलिए इन दोनोंको मिलानेके लिए एक तीसरी इन्द्रिय चाहिए, और वह मन है। पाँचों ही इन्द्रियाँ अपने-अपने ज्ञानको जहाँ पहुँचती हैं, और जहाँसे शरीरके भिन्न अंगोंकी गतिका अनुशासन मिलता है, वह मन है। वही ग्रहण, चिन्तन और निर्णय करता है। वह ग्रहण आदि कैसे करता है? फ़ौजके कमाण्डरकी तरह अलग बैठकर नहीं, बल्कि जैसे पाँच ट्यूबोंमें लाल, पीले, हरे, नीले, काले रंगका चूर्ण पड़ा हुआ हो, और नीचे एक ऐसी काँचकी नलीसे पानी बह रहा हो, जिसमें पाँचों ट्यूबोंके मुँह मिले हुए हों, और ट्यूबोंका मुँह बारी बारीसे खुल रहा हो। जिस समय जो रंग पानीपर पड़ेगा, पानी उसी रंगका हो जायगा। इसी तरह जब आँख काले साँपकी ओर लगती है, तो काले साँपका हमें दर्शन होता है। फिर यह ज्ञान तुरन्त मनमें पहुँचता है। उस क्षणका मन, जो अपने कारणभूत पुराने मनोंके अनुभवोंका बीज अपनेमें रखता है, इस नये ज्ञानरूपी चूर्णके गिरनेसे तदाकार हो, भयके रंगमें रँग जाता है। यदि एक क्षण ही साँपको देख हमें रुक जाना हो, तो भी हिलाकर छोड़ दिये पहियेकी भाँति कई क्षण तक एक-एकके बाद उत्पन्न होनेवाला मन उस रंगमें रँग जायगा; यद्यपि हर द्वितीय क्षणके मनपर उसका असर फीका पड़ता जायगा। और यदि साँप कई क्षणों तक दिखाई देता रहा, और आपकी तरफ़ भी आता रहा, तो क्षण-क्षण उत्पन्न होनेवाले मनपर भयका संचार अधिक होता जायगा। जो बात भयप्रद विषयोंके बारेमें है, वही प्रीतिप्रद तथा दूसरे विषयोंके बारेमें भी समझनी चाहिए।

अस्तु, उक्त कारणसे चक्षु आदि इन्द्रियोंके अतिरिक्त हमें उनके संयोजक एक अभ्यन्तर इन्द्रियको माननेकी ज़रूरत पड़ती है, जिसे मन कहते हैं। इससे परे आत्माकी क्या आवश्यकता? यदि कहें कि पुराने अनुभवोंको स्मृतिके रूपमें रखनेके लिए, क्योंकि मन तो क्षणिक है (यद्यपि यह बात वे नहीं कह सकते, जिनके मतसे मन क्षणिक नहीं), तो हम कहेंगे, मन क्षणिक है, किन्तु वह अपने परवर्ती मनका कारण भी है। आनुवंशिक नियमके अनुसार जैसे माता-पिताकी बहुतसी बातें पुत्र-पौत्रमें आती हैं, उसी प्रकार पूर्व मनके अनुभवोंका बीज या संस्कार मनके लिए विरासतमें छोड़ जाता है, और वही स्मृतिका कारण है। वस्तुतः संस्कारका ठप्पा तो क्षणिक वस्तुपर ही लग सकता है। आत्माको यदि कूटस्थ नित्य मानें, तो वह अनन्त काल तक एक रस रहनेवाली होगी। भला, सदाके लिए एक रस रहनेवाली आत्मापर अनुभवोंका ठप्पा कैसे पड़ सकता है? यदि पड़ सकता है, तो ठप्पा पड़ते ही उसका रूप-परिवर्तन हो जायगा। आत्मा कोई जड़ पदार्थ नहीं है, जिसके सिर्फ़ वाह्य अवयवपर ही लांछन लगेगा। वह तो चेतनमय है, इसलिए ऐसी अवस्थामें इन्द्रिय-जनित ज्ञान उसमें सर्वत्र प्रविष्ट हो जायगा। फिर वह राग, द्वेष, मोह नाना प्रकारोंमें से किसी एक रूपवाली हो जायगी। तब फिर वह वही आत्मा नहीं हो सकती, जो ठप्पा लगनेसे पहले थी। अतएव वह एक रस भी नहीं हो सकती। फिर आत्मा नित्य है कैसे? यदि थोड़ी देरके लिए मान भी लें कि ठप्पा लगता है, तो वह अभौतिक संस्कार भी नित्य आत्मामें लगकर अविचल हो जायगा। तब फिर शुद्धि या मुक्तिकी आशा कैसे की जा सकती है?

यदि कहें—कोई नित्य आत्मा नहीं है, तो मनके क्षणिक होनेसे, शरीरके नष्ट हो जानेपर अच्छे-बुरे कर्मोंका विपाक कैसे होगा? यहाँ पहले यह समझ लें कि बौद्ध विपाक कैसे मानते हैं। वे यह नहीं मानते कि हम जो कुछ भले-बुरे काम करते हैं, उसे लिखनेके लिए ईश्वरने हमारे पीछे द्रुत लेखक लगा दिये हैं। हम अच्छे या बुरे जैसे भी कायिक-वाचिक कर्म करते हैं, सभी कर्मोंका उद्गम हमारा मन है। अतः द्वेषयुक्त काम करनेके लिए मनको द्वेषयुक्त बनना पड़ता है; रागयुक्त काम करनेके लिए मनको रागयुक्त बनना पड़ता है। मनकी उस बनावटकी, उस ध्वनिकी गूँज तब तक जारी रहती है, जब तक वह व्ययसे या विरोधी ध्वनिके आकर टकरानेसे नष्ट नहीं हो जाती। आदमी क्रूर एक दिनमें नहीं बन जाता। आपरेशन करनेवाले डाक्टरको भी धीरे-धीरे अपने मनको कड़ा करना पड़ता है, फिर ख़ूनीकी तो बात ही क्या? जब किसी असहाय, निरपराध बालिकाको पीटते देख दर्शकोंका मन प्रभावित हुए बिना नहीं रहता (यद्यपि वह दूसरी दिशामें—करुणकी ओर), तो स्वयं मारनेवालेका मन सख्त हुए बिना कैसे रह सकता है? सुतराँ हम जो काम करते हैं, उसका असर तत्काल मनपर पड़ता है। जितना ही मन कड़ा होता जाता है, उतना ही उसमें सूक्ष्म मानसिक चिन्तन और विकासकी योग्यता कम होती जाती है।

अच्छे-बुरे मनोभाव धन और ऋणकी तरह हैं। यदि धनकी राशि अधिक रही, ऋणकी कम, तो धनका पलड़ा भारी रहेगा। यह हिसाब मनकी क्षण-क्षणकी बनावटमें स्वयं होता रहता है। यहाँ हिसाबका टोटल महीनों, हफ्तों, दिनोंके बाद नहीं, बल्कि तुरन्त-का-तुरन्त होता रहता है। मनुष्य क्या है, अपने पिछले भले-बुरे अनुभवोंका पूर्ण योग। दूसरे क्षण उत्पन्न होनेवाली मनको बहुतसी बातें अपने-जनक मनसे विरासतमें मिलती हैं। यह विरासतका सिलसिला हमारे लड़कपनसे बृद्धपन तक रहता है। इसे समझनेमें आज अड़चन नहीं होगी। लेकिन बुद्धकी शिक्षाके अनुसार यह सिलसिला जन्मसे पहले भी था, और मृत्युके बाद भी रहेगा। अपने पिछले अनुभवोंसे बने हुए मनकी उपमा, मृत्यु-क्षणमें जिस वक्त इस शरीरको छोड़नेके लिए तैयार रहता है, उस तप्त लौह-धारसे

दी जा सकती है, जो एक ऐसी नालीके सहारे नीचे बहती चली आई हो, जो एक टीलेके पास आकर रुक जाती हो। उस टीलेके दूसरी ओर एक ऐसी दूसरी नाली है, जिसके आरम्भपर पर्याप्त चुम्बक-राशि है, तो वह ज़रूर इस धारको नई नालीमें डालनेके लिए समर्थ होगी। इसी प्रकार मृत्युके समय चित्त-प्रवाह अपनी संस्कार-राशिके साथ इस जीवनके छोरपर खड़ी रहती है। वह संस्कार-राशिरूपी चुम्बक समान धर्मवाले समीपतम शरीरमें खींचकर फिर उसकी वही पुरानी कार्रवाई शुरू करा ही देता है। यही क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक तृष्णाके क्षयसे यह सन्तति विशृंखलित हो, निर्वाणको नहीं प्राप्त हो जाती। इस प्रकार कर्म, कर्म-फल और जन्मान्तर होता है।

जीवको नित्य माननेमें बहुतसे दोष होते हैं। यदि आप उसे नित्य मानते हैं, तो उसे सिर्फ अमर ही नहीं, अजन्मा भी मानना होगा। फिर सामीय धर्मोंमें भी तो, जहाँ पुनर्जन्म नहीं मानते, यह मानना होगा कि जीव अरब-खरब वर्ष नहीं, अरब-खरब प्रकाश वर्ष भी नहीं, बल्कि अनादि कालसे आज तक चुपचाप निश्चेष्ट पड़ा रहा। अब एक, पचास, या सौ वर्ष तकके लिए, बिना किसी पूर्व कर्मके, इस दुनियामें जन्मान्ध या नेत्रवान, जन्मरोगी या स्वस्थ, मन्दबुद्धि या प्रतिभाशाली बनकर उत्पन्न हो गया है, तो मरनेके बाद फिर अनन्त काल तकके लिए अपने कुछ वर्षोंके बुरे-भले कर्मोंके कारण स्वर्ग या नर्कमें डाल दिया जायगा। क्या इस तरहकी नित्यता बुद्धियुक्त मानी जा सकती है? जो लोग पुनर्जन्म भी मानते हैं, और साथ-साथ आत्माको नित्य भी, उनकी ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं। जब वह नित्य है, तो कूटस्थ भी है, अर्थात सदा एक रस रहेगी; फिर ऐसे एक रस वस्तुको यदि परिशुद्ध मानते हैं, तो वह जन्म-मरणके फेरमें कैसे पड़ सकती है? यदि अशुद्ध है, तो स्वभावतः अशुद्ध होनेसे उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? नित्य कूटस्थ होनेपर संस्कारकी छाप उसपर नहीं पड़ सकती, यह हम पहले कह चुके हैं। यदि छापके लिए मनको मानते हैं, तो आत्माको माननेकी ज़रूरत ही क्या रह जाती है?

प्रश्न हो सकता है कि यदि मन तथा आत्मा एक है, और वह क्षणिक है, तो अनेकतामें पहले था, मैं अब हूँ—ऐसी एकताका भान क्यों होता है? इसका उत्तर है कि दुनियाका यह सार्वभौमिक नियम है समुदायमें एकाकी बुद्धि। हम संसारकी जिस किसी चीज़को ले लें, सभी हज़ारों अणुओंसे बनी हैं, जिनके बीच काफ़ी अन्तर है। यह बात लोहे, प्लेटिनम, हीरे—सभी ठोस-से-ठोस वस्तुकी है।

यदि हमारी दृष्टि उतनी सूक्ष्म होती, तो हम उन्हें ऐसे ही अलग-अलग देखते, जैसे पास जानेपर जंगलके वृक्ष। इस प्रकार दुनियाके सभी दृश्य पदार्थोंके मूलमें अनेकता होनेपर भी एकताका व्यवहार किया जाता है। अनगिनत टुकड़ोंके बने हुए शरीरको एक शरीर कहते हैं। अनेक वृक्षोंके बने जंगलको एक जंगल कहते हैं। अनेक तारोंके झुरमुटको एक तारा कहते हैं। हाँ, एक फ़र्क ज़रूर है। जहाँ शरीर, वन, तारोंमें अंशी और अंश एक कालमें और एक देशमें मौजूद रहते हैं, वहाँ मन प्रतिक्षण एकके बाद एक उत्पन्न होता रहता है। इसके लिए अच्छा उदाहरण बनेठी, चलते वायुयानका पंखा, या चलती बिजलीका पंखा ले सकते हैं। बनेठीकी रोशनी, या पंखेका पंख जल्दी-जल्दी इतने सूक्ष्म कालमें उस स्थानपर पहुँचता है कि हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते, और काल एक स्वतन्त्र मान बन उसे चक्करके रूपमें ला रखता है। इसी प्रकार मन भी इतना शीघ्र अपनी जगहपर दूसरे मनको उपस्थित कर रहा है कि बीचके अन्तरको हम नहीं ग्रहण कर पाते, और हमें चक्रकी एकताका भान होने लगता है। नदीकी धाराको भी तो आप एक कहते हैं, किन्तु क्या वह जल हज़ारों बिन्दुओंसे, और बिन्दु अगणित उद्रजन, ओषजनके परमाणुओंसे, और परमाणु अनेक धनऋण विद्युत्कणोंसे (जिनके भीतर चक्कर काटनेके

लिए काफ़ी अन्तर है), और वह फिर सूक्ष्मतम अनेकों न्यूट्रनोंसे नहीं बने हैं? वस्तुतः संसारमें सभी जगह समुदाय ही को एक कहा जा रहा है। जब हमारी भाषाका यह एक सार्वभौमिक प्रयोग है, तब क्षणिक मनकी सन्तति (प्रवाह) को साधारण दृष्टिसे हम एक कहने लगें, तो आश्चर्य क्या? आश्चर्य तो यह है कि सारी दुनियामें एक कही जानेवाली चीज़ोंको समूहित देखते हुए भी पूछने लगते हैं—समूहित है, तो आत्मा क्यों एक मालूम होती है? सवाल हो सकता है—जब आत्मा क्षणिक है, दूसरे क्षण वह रहता ही नहीं, तो उसकी पूर्णता और परिशुद्धि कैसे? उत्तर यह है कि हम मनको क्षणिक मानते हुए भी मनकी सन्ततिको क्षणिक नहीं मानते। गंगाका पानी, उसका आधार, दोनों कूल और बालू सभी बराबर बदल रहे हैं, तो भी सबका प्रवाह बना रहता है, जिसे हम एक मान गंगा कहते हैं। इसी चित्त-सन्ततिकी परिशुद्धि और पूर्णता करनी होती है। जितनी ही चित्त-सन्तति राग, द्वेष, मोहके मलोंसे मुक्त होती है, उतना ही उस पुरुषके कायिक, वाचिक, मानसिक कर्म परिशुद्ध होते जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अपने-परायेका उपकार करनेमें समर्थ हो सकता है। जब उसमें राग-द्वेषका गंध नहीं रह जाता, तो व्यक्तिगत स्वार्थके केन्द्रपर केन्द्रित तृष्णा क्रमशः परिवार, ग्राम, देश, भूमंडल प्राणिमात्रके स्वार्थको अपना बना अपनी परिधिको अन्त तक पहुँचा देती है। उस वक्त अनन्त परिधिवाली वह तृष्णा बन्धनरहित हो तृष्णा ही नहीं रह जाती, और उसके लिए निर्वाणका मार्ग उन्मुक्त हो जाता है, और वह दुःखके फंदेसे छूट जाता है। मुक्ति तक पहुँचनेके लिए पुरुषको निजी स्वार्थकी सीमा पारकर लोकहितार्थ सब कुछ उत्सर्ग करना पड़ता है (आप जातककी सुन्दर कहानियोंमें देखेंगे, पूर्णताके लिए सत्त्वको कितना उत्सर्ग करना पड़ता है)। तृष्णाको छोड़ना दुःखके मार्गको रोकना है, क्योंकि दुनियाका अधिकांश दुःख तृष्णा और स्वार्थके कारण ही तो है?

इस प्रकार मनके क्षणिक होनेपर, चूँकि चित्त-सन्तति क्षणिक नहीं है, इसलिए उसकी पूर्णता और परिशुद्धि करनी पड़ती है। वस्तुतः यदि आत्माको नित्य कूटस्थ आत्मा न मान, उसके स्थानपर क्षण-क्षण उत्पन्न होनेवाले चित्तोंकी सन्ततिको माना जाय, तो शब्दपर हमारा कोई आग्रह नहीं है। चूँकि आत्म शब्द नित्य चेतन वस्तुके लिए व्यवहार होता था, इसलिए बुद्धने अन्-आत्म शब्दका प्रयोग किया।
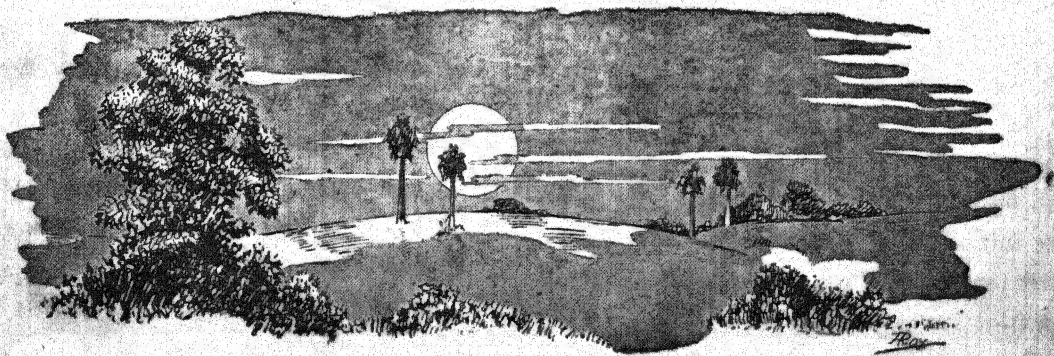
'प्रव्रज्या'

श्री मोहनलाल महतो

महारानीने कहा—"बेटा······!"

तरुण राजकुमारने कहा—"मा, मैं विवाह नहीं कर सकता।"

महारानी वाष्परुद्ध कंठसे बोली—"मेरी इतनी साध पूरी कर।"

× × ×

सावनकी सजल सन्ध्या थी। रोहिताश्व-दुर्गके खुले हुए झरोखेके सामने महान मगधका राजकुमार खड़ा था। स्वर्णभद्रा मटमैले जलकी तुंग-तरंगोंसे खेल रही थी। मेघाच्छन्न धूमिल आकाश और जलमग्ना धरित्रीके बीच सन्ध्याकी अरुण-विभा क्षितिजपर एक विभाजक रेखाकी तरह चमक रही थी; विश्व-विमोहिनी प्रकृतिके माँगकी सिन्दूर-लीक-सी जान पड़ती थी।

सावनकी सजल सलोनी सन्ध्या थी। मगधेश्वरी साश्रु नयनोंसे राजकुमारके गम्भीर मुखमंडलको देख रही थी। झरोखोंसे होकर सन्ध्याकी स्वर्णनिभ विभा दोनोंपर बरस रही थी, मानो स्वर्गसे पवित्र प्रकाशकी धारा भूतलपर गिर रही हो।

महारानी बोली—"लाल! वत्स! मेरी बूढ़ी आँखोंकी यह अन्तिम साध है।"

राजकुमारने कहा—"भला, देखो तो मा, यह स्वर्णभद्रा अपने इस सपनेके धनपर इतना क्यों इतरा रही है। कल तक इसकी सूनी गोदमें ज्येष्ठका प्रभंजन अनन्त बालुका-राशिके साथ 'धू-धू' करके तांडव-नर्तन कर रहा था।"

मगधेश्वरीने आँचलसे अपनी भीगी पलकोंको पोंछकर प्रस्थान किया। हृदयका अतल जल क्षुद्र आँचलके एक छोरको भी न भिंगा सका।

स्वर्णभद्राके विशाल हृदयपर संकल्प-विकल्पोंके प्रलयकी तरह तरंगमालाओंका उत्थान-पतन हो रहा था। उस पारकी वन-श्रेणी लाल क्षितिज-रूपी सन्ध्याकी सारीकी हरी किनारी-सी जान पड़ती थी।

[२]

राजकुमारकी पांचालदेशीया नवयौवन-मदोन्मत्ता भाभी बोली—"अजी, तुम बड़े नीरस हो।"

राजकुमार 'धम्मपद' का पाठ कर रहा था। भगवान तथागतकी महिमा-मंडित प्रशान्त तपोमग्न मूर्ति उसके सुकुमार हृदय-शतदलपर विराजमान थी। राजकुमार एक अनिर्वचनीय सुखानुभूतिके पालनेपर हौले-हौले झूल रहा था। मदमाती चैतकी बयार वन-कुसुमोंकी भीनी महक लेकर उस एकान्त शान्त घरमें आलस्य बिखेर रही थी। बाहर, दुर्गके प्राचीरपर बैठकर दो कपोत परस्पर चंचु-सम्मेलन कर रहे थे। लाल-लाल तुनुक लुभावने कोयलोंसे और मधुपानमत्त मधुपोंके गुंजारसे सारा वन भर गया था। प्रकृतिने अपने-आपको लुटा दिया था।

राजकुमारीने अपने अन्यमनस्क देवरकी गोदसे खुली हुई पुस्तकको उठाकर दूर फेंक दिया।

एक दीर्घ निश्वास त्यागकर राजकुमारने खिड़कीके बाहरकी ओर दृष्टि डाली। यद्यपि उसकी आँखोंके साथ मनका योग नहीं था, पर इधर अभिमानिनी राजकुमारीका हृदय बाणविद्ध मृगीकी तरह आहत हो गया। भुवनमोहन रूपका इतना अपमान—उफ़!

थके हुए स्वरमें कोयल बोल रही थी, और ईषत गरम तथा शीतल समीरके विक्षिप्त झोंकोंसे राजकुमार अलसा रहा था; उसकी पलकें भारी हो रही थीं।

रूखे स्वरमें राजकुमारीने पूछा—"विवाह नहीं करोगे कुमार?"

राजकुमारीकी ओर बिना दृष्टि-निक्षेप किये राजकुमारने दृढ़ता-व्यंजक स्वरमें उत्तर दिया—"नहीं, प्रव्रज्या लूँगा।"

राजकुमारीने पूछा—"क्यों?"

राजकुमारने कोई उत्तर नहीं दिया। वसन्तकी बयारने दबे-पैरों घरमें प्रवेश किया। राजकुमारीके मस्तकपर से, वसन्तके पीले पत्तेकी तरह, अपने-आप आँचल खिसक पड़ा। हवामें कुंचित अलकें लहराने लगीं।

इतनी उपेक्षा! नारी-हृदय क्या इतना उपेक्षणीय है? भामिनीने कुछ ठहरकर प्रस्थान किया। गम्भीर चरण-पातकी ध्वनिसे वायुमंडल क्षुब्ध हो उठा।

वसन्तके मलयानिलने राजकुमारके गालोंपर दो हल्के थपेड़े जमाते हुए कहा—"मूर्ख!"

चौंककर राजकुमारने भी अपने हृदयपर हाथ रखकर अपने-आपको कहा—"मूर्ख !"

आम्र-कुंजसे मदमाती कोयल बोल उठी—"कुहूँ।"

[३]

राजकुमारीने अपनी सास—मगधेश्वरी—से कहा—"माताजी, मुझे सवामन सोना चाहिए। अपनी प्रतिमा बनवाऊँगी।"

राजकुमारीकी इच्छाका तत्काल पालन किया गया। चतुर स्वर्णकारोंके दलके हथौड़ोंके प्रहारोंसे दुर्गका वायुमंडल विक्षुब्ध हो उठा। राजकुमारीकी आज्ञा थी—"यदि प्रतिमा मेरे-जैसी न बन सकेगी, तो स्वर्णकारोंके हाथ कटवा लिए जायँगे।"

देखते-देखते स्वर्णकारोंकी कलाने राजकुमारीकी स्वर्ण-प्रतिमाके रूपमें अपने आपको व्यक्त कर दिया ; नयनगोचर कर दिया ; साकार कर दिया ; सत्य कर दिया ! दर्शक चित्रवत रह गये।

स्वर्णकारोंके दलपर पुरस्कारोंकी वर्षा हो गई—हाथी, घोड़े, स्वर्ण, रत्न, वस्त्राभूषण !

स्वर्ण-प्रतिमा राजकुमारीके एकान्त कक्षमें पहुँचा दी गई। मुखरा दासीने कहा—"गंगासे घर तक नहर खोदकर मेरी स्वामिनीने अपने आँगनमें घड़ियाल बुलाया है।"

राजकुमारीने उसे मीठी फटकार और सोनेके हारसे पुरस्कृत किया।

स्वर्ण-प्रतिमाका शृंगार किया गया। फिर आईनेके सामने उसे खड़ी करके राजकुमारी उसके पार्श्वमें स्वयं खड़ी हो गई। फिर एक क्षण बाद आत्म-विभोर होकर राजकुमारीने उसे ढकेलते हुए कहा—"दूर कलमुँही ! मुझसे स्पर्द्धा !"

अपूर्व सफलताके लिए स्वर्णकारोंको पुनः पुरस्कृत किया गया, और स्वर्ण-प्रतिमाको चुपचाप भावी-भिक्षु राजकुमारके शयन-गृहमें पहुँचा दिया गया।

[४]

शयन-मन्दिरकी रत्नखचित सैयापर बैठा राजकुमार स्वर्ण-प्रतिमाको उदास दृष्टिसे देख रहा था। 'धम्मपद' 'त्रिपिटक' एक ओर तिरस्कृतावस्थामें पड़े थे, और पड़ी थी फ़र्शपर अपने भीतर सप्तस्वरोंको छिपाये धूलि-विमंडित राजकुमारीकी एकान्त संगिनी मुखरा वीणा। बुद्धदेवकी मूर्तिपर सूखी माला हिल रही थी।

फागुनकी मध्यनिशा थी। रजनीगंधाकी महकका भार लादे मलयानिल धीरे-धीरे उस एकान्त शयन-मन्दिरमें प्रवेश कर रहा था। शशिसंभवा विभा मानो प्रतिमासे सौन्दर्यकी भीख लेनेके लिए प्रत्येक झरोखासे झाँक रही थी। लज्जित कलाधर वृक्षोंके झुरमुटसे झाँक रहा था।

सुखके सपनेकी तरह राजकुमारीने घरमें प्रवेश किया। पद-शब्दके प्रहारसे राजकुमारीकी एकाग्रताका तंतुजाल, योगीकी मायाकी तरह, छिन्न-भिन्न हो गया।

राजकुमारीने विषभरी मुसकानके साथ पूछा—"कब तक प्रव्रज्या लेनेका विचार है साधकप्रवर !"

प्रतिमापर से दृष्टि हटाते हुए, दीर्घ निश्वास त्यागकर, राजकुमारने कहा—"अब व्याह करूँगा।"

राजकुमारीने आनन्दविह्वल स्वरमें पूछा—"किसे सौभाग्य प्रदान करोगे ?"

राजकुमारने स्वर्ण-प्रतिमाकी ओर चुपचाप उँगली उठा दी।

× × ×

राजकुमारीकी अगरू-धूप-सुवासित कुंचित अलकोंसे खेलकर मलयानिलने उस घरकी दीपशिखाको व्याकुल कर दिया। वह अभागी दो-चार बार सिर पटककर अन्धकारके हृदयमें जा छिपी। कुंडलीकृत धूमराशि छतकी ओर बढ़ी।

फाल्गुनकी ज्योत्स्नास्नात रजनीकी नीरवतामें घर्माक्त कलेवर राजकुमार अपराधीकी तरह सिर झुकाये बैठा था, तथा उसके सम्मुख खड़ी थी महान महिमामयी देवीकी तरह विजयिनी-रूपगर्विता-पांचालदेशीया राजकुमारी 'शैवाल'।

—

भारतवर्षसे सिंह क्यों मिट गया ?

श्रीराम शर्मा

भारतवर्षमें अब सिंह नहीं पाया जाता। सुना है और पढ़ा भी है कि जामनगरके निकट दो-चार सिंह पाये जाते हैं; पर काठियावाड़ी और अफ्रिकन सिंहमें मुख्य भेद ये हैं कि काठियावाड़ी सिंह आकारमें अपने अफ्रिकन भाईसे बहुत छोटा होता है, और अफ्रिकन सिंहकी भाँति उसके केसर—आयल—नहीं होते। सिंहको केसरी शायद केसरके कारण ही कहते हैं। हिन्दुओंकी पुरानी संस्कृतकी पुस्तकोंमें 'केसरी', 'गजराज', 'सिंह', 'बनराज' इत्यादि शब्द ही आते हैं। 'रघुवंश'में वर्णित महाराज दिलीपकी कथामें केसरवाले सिंह (Loin) का ज़िक्र है—शेर (Tiger) का नहीं।

सिंहका शिकार भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे होता आया है: पुराने समयमें वीर शिकारी पैदल सिंहका आह्वान करके—तलवार और भालेसे—शिकार खेलते थे; पर अब भारतवर्षमें सिंह (Lion) नहीं पाया जाता, वरन शेर (Tiger)। यों मिटनेको तो संसारसे अनेक जीव मिट गये। इतिहास पूर्वकालीन युग (Pre-historic age) में ८०-९० फ़ीट लम्बे एक प्रकारके मगर (Dinosaur) पाये जाते थे। अब उनका कहीं पता नहीं। सोलहवीं सदी तक गैंडा सिन्ध नदीके किनारे पाया जाता था। बाबर अपनी आत्म-कथा (Memoirs) में गैंडेके शिकारका वर्णन सिन्ध नदीके किनारे करता है; पर आजकल तराईको छोड़कर—और सो भी गिनी-चुनी संख्यामें—भारतवर्षमें और कहीं गैंडा नहीं पाया जाता। अब प्रश्न यह है कि भारतवर्षसे सिंह क्यों मिट गया? इस प्रश्नको हल करनेसे पूर्व एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है। भारतवर्षमें पहले सिंह था, या शेर?

इन पंक्तियोंके लेखकका मत है कि भारतवर्षमें पहले शेर था ही नहीं। सिंह ही था। प्रमाण? प्रमाण अनेक प्रकारके होते हैं। शेक्सपियरके नाटकोंकी तारीख निर्णय करनेके लिए जैसे वाह्य प्रमाण (External evidence) और आन्तरिक प्रमाण (Internal evidence) से काम लिया जाता है, उसी प्रकार इस बातको सिद्ध करनेकी चेष्टा की जायगी कि भारतवर्षमें शेर कहीं बाहरसे आया। उसके आगमनसे पूर्व यहाँका वनराज सिंह था।

यदि कोई हमसे पूछे कि जौ और गेहूँमें पहलेका कौन है, तो सहसा कहना पड़ेगा कि जौ। या फिर यह कहना पड़ेगा कि गेहूँकी अपेक्षा जौ अधिक पवित्र, शुभ और सात्वकी है, क्योंकि हिन्दुओंके अनेक संस्कारोंमें चावल, जौ और दूबका ही प्रयोग किया जाता है। सम्भव है, गेहूँ जंगली अवस्थामें रहा हो, अथवा उसकी गणना महत्त्वपूर्ण धान्यमें न रही हो; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि जौका प्रयोग आर्य लोगोंके समयमें होता था। यह मैं मानता हूँ कि जौ और गेहूँ सम्बन्धी ऊपरकी दलील कोई बढ़िया दलिल नहीं है; केवल अनुमानमात्र है। अब इसी प्रकारकी दलील—शायद इससे कुछ बढ़िया—शेर और सिंहके बारेमें है।

यहाँपर यह लिखना कुछ अनुचित न होगा कि सिंहकी अपेक्षा शेर कहीं अधिक बलवान और लड़ाकू होता है। एक ही अवस्थामें पले हुए सिंह और शेरको भिड़ा दिया जाय, तो शेर बात-की-बातमें सिंहको मार डालता है। यद्यपि सिंहको अपने केसरोंसे लड़ाईमें बड़ी सहायता मिलती है, तो भी शेर अपनी अद्भुत शक्तिसे सिंहकी बगलें फाड़कर उसे मार डालता है। जब सिंह और शेरमें शेर अधिक बलवान होता है, तब प्राचीन काल और मध्यकालीन युगमें शेरके शिकारका रिवाज अवश्य रहता; पर उस समय सिंहके शिकारका ही अधिक प्रचार था। मार्को पोलो तककी यात्राके समय भी सिंहके शिकारका—'आखेट' शब्द उचित रहेगा—प्रचार था, यद्यपि उस समय भारतवर्षमें शेर भी पाया जाता था। कोई यह भी कह सकता है कि

शेर सिंहके लिए उर्दू शब्द है। ठीक है; पर व्याघ्र शब्दका प्रयोग संस्कृत-भाषामें कबसे हुआ? क्या व्याघ्र सिंहका पर्यायवाची है? शायद नहीं? आशा है, संस्कृतके विद्वान, मर्मज्ञ और भाषाशास्त्र (Philology) के विद्वान इस विषयपर अपनी सम्मति देंगे। इन पंक्तियोंका लेखक संस्कृतसे अनभिज्ञ है। उसने दो-चार संस्कृतकी पुस्तकोंको केवल अनुवाद-रूपमें पढ़ा है; पर उसका अनुमान है—जो ग़लत हो सकता है—कि संस्कृतमें Tiger के लिए कोई शब्दविशेष नहीं। संस्कृतसे अनभिज्ञ होते हुए लेखकका यह अनुमान धृष्टता हो सकती है। हो, पर वह इस बातको माननेको तैयार नहीं कि व्याघ्र और बाघ शब्द केवल Tiger के बोधक हैं। बोलचालकी भाषामें बाघ शब्द Tiger के लिए आता ज़रूर है; पर बाघ शब्दका प्रयोग Leopard के लिए भी होता है। सिंहको बाघ कोई नहीं कहता। यदि शेर—मैं Tiger को शेर ही कहता हूँ, और Lion को सिंह या शेर-बब्बर कहता हूँ—भारतवर्षमें प्राचीन कालमें भी पाया जाता था, तो फिर इसके शिकारका वर्णन कहीं क्यों नहीं आता?

मेरी निजी राय यह है कि शेर भारतवर्षमें मध्य-एशिया या साइबीरियाकी ओरसे आया, और भारतवर्षमें आकर उसने सिंहको च्युत ही नहीं किया, वरन उसको मारकर मिटाना भी प्रारम्भ कर दिया। सिंह और शेर एक-सी भूमिमें नहीं रहते। सिंह घासके मैदानों और झाड़ीदार रेतीले मैदानोंका जीव है, जैसा उसके रंगसे प्रकट होता है, और शेर घने जंगलोंका। शेर धूपसे बहुत घबराता है। दिनमें वह इसलिए घने धूपरहित स्थानोंमें सोया करता है, या पानीके किनारे रहता है। सिंह घना जंगल पसन्द नहीं करता। अफ्रिकामें आजकल भी सिंह घने जंगलोंमें नहीं रहता—घासके मैदानोंमें रहता है, जहाँपर उसको अपना भोजन भी मिल जाता है। यों भोजनकी खोजमें वह जंगलोंमें भी चला जाता है। वहाँ जानेको कोई रोक थोड़े ही है; पर प्रकृतिसे वह घने जंगलका प्राणी नहीं है। तब फिर शेरने भारतवर्षसे सिंहको कैसे मिटाया? भारतवर्षसे सिंहके मिटनेका मूल कारण शेरका आगमन नहीं है, वरन एक सहायक कारण अवश्य है। आबादीके बढ़नेसे घासके मैदानोंकी कमी हुई। फिर शिकारकी प्रवृत्ति—अन्धाधुन्ध मारनेकी प्रवृत्ति—अधिक-से-अधिक और शेरको मारकर मोरी (Champion) बननेकी लालसा और बारूदके आविष्कारके कारण सिंहोंकी संख्या बेहद कम हो गई। घबड़ाकर और स्थान न पाकर सिंह जंगलोंकी ओरको गया होगा। वहाँपर अपने भयंकर प्रतिद्वन्द्वी—शेर—के सामने उसकी एक न चली। या तो वह मार डाला गया, या जंगलसे निकाल बाहर किया गया, और भूखों मरा। रातके समय जंगलसे निकलकर जब शेर आता होगा, तब सिंहसे मुठभेड़ हो जाती होगी, और सिंह-शेर-भिड़न्तमें विजयश्री सर्वदा शेरके हाथ रहती होगी। एक अंगरेज़ी समाचारपत्रमें पढ़ा था, और कुछ मास पूर्व इंग्लैण्डके प्रसिद्ध विद्वान और प्राकृतिक इतिहासके (Natural History) के विशेषज्ञ टॉमसन साहबने लिखा था कि कुछ वर्ष पूर्व महाराज ग्वालियरने गूनाके समीप कुछ सिंह छोड़े थे। गूना और राघोगढ़के समीप शेर होते हैं। शेरोंके कारण सिंहोंका जंगलमें रहना मुहाल हो गया। शायद दो-एक तो मारे गये, और शेष शेरोंके आतंकसे, जंगलके बाहर, गाँवोंके समीप आ गये, और मनुष्यों द्वारा मारे गये।

अपना वश चले, तो आज़मानेके लिए, दो-तीन जोड़े शेरके अफ्रिकामें छोड़े जायँ, और यह देखा जाय कि शक्तिके पुंज शेर और सिंहकी अफ्रिकामें कैसी पटती है। अस्तु, लेखककी उपर्युक्त बातें उसके अनुमानमात्र हैं। शायद उनसे हिन्दी-भाषा भाषियोंका कुछ हित हो, और सत्यकी कुछ खोज हो सके, इसीलिए लेखकने सूक्ष्मरूपसे अपने विचार प्रकट किये हैं। जिनको इस विषयमें रुचि हो, या जो इस विषयमें जानकारी रखते हों, वे भी अपने विचार प्रकट करें।

स्वामी रामानन्दजी महाराज

श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव, एम० ए०

श्रीरामावत वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक, हिन्दी-साहित्य-प्रख्यात भक्त-कवि-द्वय कबीरदास एवं रैदासके धर्म-गुरु आचार्य रामानन्दजी उच्चकोटिके एक आध्यात्मिक महापुरुष थे। ये महात्मा इस भारतीय धरापर उस समय आविर्भूत हुए थे, जब दिल्लीके सिंहासनपर पठान बादशाह आरूढ़ हो शासन कर रहे थे, और जब हमारे धार्मिक जगतमें भक्तिरसका स्रोत उमड़ चला था। भारतीय इतिहासके मध्यकालीन युगमें भक्ति-मार्गके प्रतिपादक आचार्योंमें स्वामी रामानुज, आचार्य रामानन्द, श्री विष्णु स्वामी, स्वामी वल्लभाचार्य, स्वामी माधवाचार्य, चैतन्य महाप्रभु तथा निम्बार्क आदि मुख्य थे। इन महानुभावोंने तत्कालीन सभ्यता-संस्कृतिपर पर्याप्त प्रभाव डाला था, और अपने-अपने सम्प्रदाय स्थापित किये थे। स्वामी रामानन्दजी महाराज, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, श्रीरामावत अथवा रामानन्दीय वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। उन्होंने राममन्त्रका प्रचार लगभग सम्पूर्ण भारतवर्षमें किया था। उत्तरी भारतमें आज भी श्रीरामावत सम्प्रदाय बड़ा प्रबल तथा अत्यन्त व्यापक है। स्वामी रामानन्दजीको केवल इसी बातका श्रेय नहीं है कि वे एक बड़े सम्प्रदायके प्रवर्तक थे, अपितु अन्य दृष्टि-विन्दुओंसे भी उनका जीवन-चरित्र तथा कार्य-कलाप बड़े महत्वका प्रतीत होता है।

स्वामी शंकराचार्य अथवा स्वामी रामानुजकी भाँति स्वामी रामानन्द महाराजने अपने उपदेशोंका प्रचार करनेके लिए संस्कृत-भाषाका ही आश्रय नहीं ग्रहण किया, प्रत्युत प्रान्तीय भाषाओंको ही विशेषत: अपना माध्यम बनाया। स्वामीजी तथा उनके अनेक शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा हिन्दी-भाषाका बड़ा उपकार हुआ। वेदान्तके गूढ़ोपगूढ़ सिद्धान्त, अध्यात्म-विद्या एवं दर्शनशास्त्रके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार इसी प्रचलित भाषाके साहाय्यसे साधारण-से-साधारण पठित समाजके लिए सुलभ तथा बोधगम्य हो गये। कबीरदासने अनेक ग्रन्थ रचे, और उनके पद अशिक्षित लोगोंको भी याद हैं। इससे सिद्ध होता है कि किसी समय उनके उपदेशोंका प्रचार बहुत रहा होगा। स्वामीजीने न केवल ब्राह्मणों अथवा द्विजातियोंको ही अपने सम्प्रदायमें सम्मिलित किया, वरन् नाऊ, जाट, जुलाहे तथा चमार तकको भी उपयुक्त पात्र पाकर दीक्षित किया। धार्मिक क्षेत्रमें उनकी नीति बड़ी उदार थी। भगवत्पथके सब पथिकोंके साथ उनकी समान सहानुभूति थी। वे किसीसे द्वेष-भाव नहीं रखते थे। उनके प्रचारित तारकमन्त्रसे दीक्षित हो, जो कोई भी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी तथा जगज्जननी श्री जानकीजीकी शरणमें आया, स्वामीजीकी कृपाका भाजन बना। ब्राह्मण-अब्राह्मण, ऊँच-नीचका भेद उन्होंने अधिक नहीं रखा। यवन-शासन-कालके द्वारा उपस्थित नई परिस्थितिका विचार करके आचार्य रामानन्दजीने शूद्र लोगोंको भी अपनाया, और इस प्रकार उन्होंने हिन्दू-समाजको अक्षुण्ण बना रखनेका एक प्रबल साधन प्रस्तुत किया।

खेदका विषय है कि ऐसे परमप्रतापी, लोक-कल्याणकारी मेधावान महापुरुषका दिव्य जीवन-चरित्र आज हमें उपलब्ध नहीं, और जो कुछ लभ्य है, उसका उपयोग कर—प्रचलित जनश्रुतियोंकी छान-बीनकर, 'वाल्मीकिसंहिता', 'अगस्त्यसंहिता', 'भविष्यपुराण' इत्यादि ग्रन्थोंका मथन करके—हिन्दी-भाषामें आज तक कोई अच्छा ग्रन्थ भी प्रकाशित नहीं किया गया है। जो कुछ लिखा भी गया है, वह साम्प्रदायिक क्षेत्रसे बाहर सर्वसाधारण पठित समाजके सम्मुख नहीं आ सका है। क्या कबीरदास एवं रैदासकी कविताओंपर गर्व करनेवाले हम हिन्दी-साहित्य-प्रेमियोंके लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्राप्त पुस्तकोंका मथनकर स्वामीजीका जीवन-चरित्र तथा जीवन-सम्बन्धिनी अन्य घटनाओंको संकलित एवं प्रकाशित करायें। हमारी सम्मतिमें तो केवल रामानन्दीय साम्प्रदायके अनुयायियोंको ही नहीं, अपितु समाज-सुधारकों, हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों तथा साधु-साहित्यके रसिकोंके लिए भी उनका जीवन-चरित्र और कार्य-कलाप पठनीय है।

पाठकोंको यह सुनकर हर्ष होगा कि अभी हाल ही में श्री चेतनदास नामक किसी साधु-कवि द्वारा विरचित 'प्रसंग-पारिजात' शीर्षक एक विशाल काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। इस पद्यात्मक पुस्तकमें कुल १०८ अष्टपदियाँ हैं, और प्रत्येक अष्टपदीमें, जैसा उसके नामसे ही विदित है, आठ पद अथवा ३२ चरण हैं। इस प्रकार समग्र ग्रन्थमें कुल

मिलाकर ८६४ पद और ३४५६ चरण हैं। ग्रन्थ आद्योपान्त अदना छन्दोंमें रचा गया है। 'प्रसंग-पारिजात' की अन्तिम अष्टपदीसे प्रतीत होता है कि श्री चेतनदासजीने इस ग्रन्थको वि० सं० १५१७ (१४६० ई०) में समाप्त किया था। देशवाड़ी प्राकृत भाषामें, पैशाची भाषाके शब्दोंकी सहायतासे, यह ग्रन्थ लिपिबद्ध किया गया था। इस स्थलपर संक्षेपतः यह जान लेना आवश्यक है कि गत शताब्दीके चतुर्थ चरणमें गोरखपुरके एक मौनी बाबाने, जिनका मौन-व्रत-अनुष्ठान समाप्त हो चुका था, स्थानीय स्कूलके एक विद्यार्थीको थोड़ा-थोड़ा करके हिन्दी-टीकासहित मूल 'प्रसंग-पारिजात' लिखवाया था। पाठकोंके मनोरंजनार्थ मूल भाषाका नमूना प्रस्तुत करनेके लिए नीचे मैं 'प्रसंग-पारिजात' की अन्तिम अष्टपदीसे पाँच पद उद्धृत करता हूँ—

"थिप जिम चुणाचू चेम ग्रुर
णिप हासु चेतणदास णुर
वित्तान्त वारिष लेष अर
ढिग मरसिया ले पम्भद्दुर
    वसुवीर किम्मर्रस भुके
    पघिवेड़ु खुर भामत रुके
    उचहां चुरुण जांगुके
    हिचहुर हिमरथाणुं पुकै
पलु पंभिरा सपचा लुली
मक्कुवेहरा गिण वाकुली
अम्मणे वुम्मर्रा छामुली
मक्कमिद कुपाट्टद घामुली
    अंजाम मणवासी लुपू
    देशवाड़ि प्राकृत सुभुपू
    पेशाचि छवदा चिधु छुपू
    छंदाणु अदणा लिभुणुपू
वासपटिसित्र भासिणवुणी
दिति औरसा हिम मिद्दचुणी
छुप संग पारी जातुगी
हिदरेपु रामचु पातुगी।"

अर्थात्—(१) उस महती समागममें बुद्धि-विवेकसे ही इस चेतनदासको आज्ञा हुई कि संघमें रहकर जो वृत्तान्तका समूह चयन किया है, उसे सुनाऊँ, सो सुनकर सब परमानन्दको प्राप्त हुए—यह आश्चर्य।

(२) तब सन्तोंकी आज्ञा हुई कि इन गुप्त प्रकट वृत्तान्तोंको लिखा जाय, विचित्र छन्द और विचित्र भाषामें, जिसे बिना समझाये कोई समझ न सके, सिद्ध आनुक द्वारा रक्षित रहे।

(३) क्योंकि उसमें कुछ वृत्तान्त ऐसे हैं, जिनको उस समय तक छिपाना है, जब तक वह घटना घटित न हो जाय। उसका निश्चय तत्कालीन सिद्ध ही करेगा।

(४) इसी विचारसे यह वृत्तान्तमाला देशवाड़ी प्राकृतमें पिशाच भाषाके सांकेतिक शब्दोंके योगसे, अदना छन्दमें, संग्रथित की गई।

(५) ज्ञानभूमिका चन्द शिवमुख सच्चिदानन्द अर्थात् १५१७ गुरु जन्म दिन माघ कृष्णा सप्तमी भृगुवारको यह 'प्रसंग-पारिजात' राम नाम लेकर समाप्त हुआ।

इन पदोंमें चेतनदासजीने अपनी ग्रन्थ-रचनाका समय, कारण तथा रहस्य कथित किया है। ऊपर जिस महती समागमकी ओर इंगित किया गया है, वह स्वामी रामानन्दजीकी शिष्य-प्रशिष्य-मंडली है, जो गुरुके अवसानके पश्चात एकत्रित हुई थी। यह सब पूर्ववर्ती पदोंमें स्पष्टतया वर्णित है।

'प्रसंग-पारिजात' के प्रारम्भमें कविने स्वामीजीके दिव्य-जन्म, बाललीला, विद्याभ्यास इत्यादिका वर्णन बड़े चित्ताकर्षक ढंगसे किया है। भगवान रामचन्द्रजीने प्रयागमें त्रिवेणी तटस्थित एक कान्यकुब्ज कुलमें अवतार लिया था। भगवानने ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा-तपस्यासे प्रसन्न हो, बारह वर्षके लिए उनके पुत्र-रूपसे उत्पन्न होनेका बरदान दे रखा था। उसीके अनुसार स्वामी रामानन्दजीका जन्म हुआ। जन्म-संवतका उल्लेख नहीं किया गया है। कुल-पुरोहित श्री वाराणसी अवस्थीने शिशुके माता-पिताको यह उपदेश किया कि तीन वर्ष तक बालकको घरसे बाहर न निकलने देना, उसके प्रत्येक रुचिका पालन करना, दूधका ही पान कराना और कभी दर्पण न दिखाना। चतुर्थ वर्षमें श्रीपंचमी पुण्य-तिथिके अवसरपर अन्नप्राशन-संस्कार सुसम्पादित हुआ। कुछ समयके पश्चात महाशिवरात्रिके अवसरपर कर्णवेध-संस्कार हुआ। ब्राह्मण पिता वेद, व्याकरण तथा योग आदिके पूर्ण ज्ञाता थे। उन्होंने एक समय जब श्रीमद्रामायण-पाठका अनुष्ठान प्रारम्भ किया, तो देखा कि जो कुछ वे पाठ करते जाते हैं, समीपस्थ बालकको समग्र कण्ठस्थ होता जाता

है। बालककी श्रवणशक्ति एवं धारणाशक्ति पूर्णरूपसे विकसित थी। पंडित तथा विद्वानोंकी मंडलीमें बालककी दिव्य प्रतिभाकी ख्याति फैल गई। बालक कण्ठस्थ पाठके सस्वर गानसे विद्वत्समाजको आश्चर्य-चकित कर देता। इस प्रकार आठ वर्षकी अवस्था तक बालकको कई ग्रन्थ कण्ठस्थ हो गये।

आठवें वर्ष उपनयन-संस्कार किया गया। उपनीत ब्रह्मचारी जब पलाशदण्ड धारणकर काशी विद्याध्ययनके लिए चला, तो आचार्य एवं सम्बन्धियोंके आग्रह करनेपर भी नहीं लौटा। विवश हो, माता पिता भी साथ हो लिये, और बालकके मामाके स्थानपर काशीमें ठहरकर विद्याध्ययन होता रहा। बारह वर्षकी अवस्था तक बालक ब्रह्मचारीने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन समाप्त कर दिया। विवाहकी चर्चा हुई। बालकने अस्वीकार कर दिया। फिर स्वामी राघवानन्दजीसे दीक्षित हो, पंचगंगा घटपर जाकर एक घाटवालकी झोंपड़ीमें तप करने लगे। लोगोंने ऊँचेपर पर्ण कुटीर तैयार करके जब बालक तपस्वीसे अनुनय-विनय किया, तब वे उसमें जा विराजे, और उसीमें जीवन-पर्यन्त पूजा-तपस्या करते रहे। उनके अलौकिक साधु-प्रभावके कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई। बहुतसे लोग वहाँ एकत्रित होने लगे, उसी घाटपर सब स्नान करने लगे। उत्तरोत्तर जैसे-जैसे उनकी प्रसिद्ध सुदूर स्थानोंमें पहुँची, बड़े-बड़े साधु-विद्वान आश्रमपर आने लगे।

पर्ण कुटीरमें प्रवेश करनेके पश्चातसे स्वामीजीकी जीवन-कथाका क्रमिक इतिहास हमें 'प्रसंग-पारिजात'में उपलब्ध नहीं। स्वामीजीके आश्रमपर जो साधु-सत्संग होते थे, उन्हीं प्रसंगोंका अधिकांशमें वर्णन है। अन्तमें अपने आश्रमसे उठकर जब वे अपनी साधु-मंडलीसहित भारत-भ्रमण करने निकले थे, उसका वर्णन दिया हुआ है। वहाँसे लौटकर आश्रमपर आनेके पश्चात भंडारा इत्यादि हुआ। कुछ समयके पश्चात स्वामीजीने अपने शिष्य-समाजको सम्बोधित कर कहा कि 'सब शास्त्रोंका सार भगवत्स्मरण है, जो सब सन्तोंका जीवनाधार है। शिखा-सूत्रके आधार पादज और अन्त्यज हैं। भाई पैरोंको कटाकर समाजको पंगु मत बनाना। कल श्रीरामनवमी है, अयोध्याजी जाऊँगा, किन्तु मैं अकेले ही जाऊँगा, और सब यहीं रुककर उत्सवादि मनायेंगे। कदाचित मैं लौट न सकूँ, क्योंकि उद् चिद्ध्यानमें जो जाता है, वह लौटता नहीं। आप लोग मेरी त्रुटियों एवं अविनय आदिको क्षमा कीजिएगा।' यह सुनकर सबके नेत्र सजल हो गये। वास्तवमें यह कथा बड़ी मर्मस्पर्शनी है। दूसरे दिन स्वामीजी कुटीरसे अपना शंख ले, अन्तर्द्धान हो गये, और इस प्रकार संवत् १५०५ (१४४८ ई०) में उनका अवसान हुआ। जब शिष्योंने गुरुकी चरण-पादुका ले तटपर गये और गंगाजलसे स्पर्श कराया, तब वे काष्ठ पाषाण-रूपमें परिवर्तित हो गये। शिष्योंने रिक्त-कुटीरमें उस पद-पीठकी स्थापना कर दी।

'प्रसंग-पारिजात' में कई ऐसे प्रसंग भी आये हैं, जिनका ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्व है। एक प्रसंगमें यह कथा वर्णित है कि किसी शुभ पर्वके अवसपर जब काशीमें विभिन्न प्रान्तोंसे लोग आये, तब आश्रमपर आकर उन्होंने मुसलमानोंके अत्याचारकी शिकायत की। तैमूरलंगके नर-हत्या तथा लखनौतीके उपद्रवकी ओर भी लोगोंने संकेत किया। स्वामीजीके साधु-प्रतापके प्रभावसे अजानके समय मुल्लाओंका कण्ठ अवरुद्ध होने लगा, और सब मुसलमान बड़े धर्म-संकटमें पड़े। इब्ननूर, तकी आदिने यह निश्चय समझा कि यह किसी सिद्ध महात्माकी करामात है। काशी आये, और कबीरजीको साथ लेकर स्वामीजीके आश्रमपर आये। उन सबको सम्बोधित कर स्वामीजीने कहा कि 'हे भाई! जब उत्पन्न, पालन तथा संहारका करनेवाला एक ही परमात्मा है, और उसी एकको सब अनेक नामोंसे भजते हैं, तब केवल पूजाके विधानमें भेद होनेसे दूसरोंपर जज़िया कर लगाना बड़ा ही अनुचित कार्य है। जैसे भोजन-वस्त्र शरीर धारण करनेके लिए आवश्यक हैं, उसी तरह उपासना करनेका स्थान भी सबके लिए आवश्यक है, इसलिए हिन्दुओंके द्वारा मन्दिर बनवानेमें जो प्रतिबन्ध उपस्थित किया जाता है, उसे दूर कर देना चाहिए। बलपूर्वक किसीको धर्म-भ्रष्ट करना निन्द्य कार्य है। मसजिदके सामनेसे जाते हुए दूल्हेको पालकीसे उतारकर पैदल चलनेके लिए विवश न किया जाय। गो-हत्या बन्द कर देनी चाहिए। आचार्यने अपनी तृषा शान्तकर प्राण-रक्षाके निमित्त भी गोमांस नहीं ग्रहण किया था, अतएव तुम लोगोंको गायकी कुरबानी न करनी चाहिए। राम-नामके प्रचारमें रुकावटें न डालनी चाहिए। धर्म-ग्रन्थ अग्नि-प्रदाहसे भस्मसात् न किये जायँ, और न किसीका हृदय ही दुःखित किया जाय। पहलेसे बने हुए हिन्दुओंके

मन्दिरोंका विध्वंस न किया जाय। बलपूर्वक किसीको सुन्नत न दिया जाय, और न मुहर्रममें, पर्व-त्योहारादि उत्सवोंके मनानेमें, कोई प्रतिबन्ध ही उपस्थित किया जाय। किसी स्त्रीका सतीत्व नष्ट न किया जाय, और न शंख बजानेका ही निषेध किया जाय। कुम्भादि पर्वोंपर यात्रियोंसे कर न लिया जाय। यदि कोई हिन्दू श्रद्धापूर्वक किसी फ़कीरके पास जाय, तो उसे उसीके धर्मानुसार उपदेश दिया जाय। यदि इन द्वादश प्रतिज्ञाओंमें से किसीका उल्लंघन किया जायगा, तो राज्य भ्रष्ट हो जायगा।' बुजुर्ग तथा विचारवान मुल्लाओं और पीरोंने इन शर्तोंको स्वीकार किया, और लिपिबद्ध करके बादशाहसे मुहर-दस्तखत कराया। ऐसी व्यवस्था हो जानेपर अजान-निमाज़का कार्य तुरन्त पूर्ववत् चलने लगा।

इसी प्रकार एक दूसरे प्रसंगमें अयोध्यासे श्री गजसिंह-देव स्वामीके आश्रमपर आये, और यह निवेदन किया कि 'महाराज! मैं अयोध्याधिपति हरिसिंहदेवका भतीजा हूँ, और सूर्यवंशी हूँ। मेरे चचा वैशाख सुदी दशमी दिन सोमवार संवत् १३८१ को जूना खां तुग़लकके भयसे तराईमें भगवद्भजनके मिस भाग गये, तबसे अयोध्याके राजसिंहासनपर कोई नहीं बैठा। छलपूर्वक खड़े किये हुए शिविरमें अपने पितासे मिलते समय तम्बू गिराकर पिताका घात करनेवाले जूना खांने बीसों हज़ार प्राणियोंको बड़ी क्रूरताके साथ धर्म-भ्रष्ट किया। तबसे अब तक पचास वर्षके भीतर धर्म-भ्रष्टोंकी संख्या बढ़ती ही गई है। मैं भी म्लेच्छ-स्पर्शसे भ्रष्ट हो गया हूँ। प्रायश्चित्तके लिए पंडितोंकी शरण ली, किन्तु ऊँची पगड़ी बाँधनेवाले हमारे पंडित अधिक समय व्यतीत हो जानेका बहाना करके हमारी भ्रष्टता दूर करनेसे इनकार करते हैं। हे दयानिधान! आप ही हम सबका उद्धार कीजिए।' स्वामीजी शिष्योंसहित अयोध्या गये, और सबको शुद्ध कर लिया।

इसके अतिरिक्त विजयनगरके राजा बुक्काराय, यूद्वीपमें अग्नि-पूजक आर्योंके गुरु करोबियाँजी, गंगू ब्राह्मण और ज़फ़र खाँ, राजकुमारी शमी तथा राणा हम्मीरका विश्वासपात्र सदस्य पुहकरसी, साधु अन्तोलियो, कबीरदास, सेननाऊ, पीपाजी, दक्षिणमें शैवों और वैष्णवोंका विद्वेष, मुनिपुंगव पावरजी, काशीके त्रियम्बक शास्त्रीकी पुत्री जाम्बवन्ती, विद्यारण्य स्वामी, पिनर व्यवपारी तथा सारिका पक्षीके रूपमें उषा नारी इत्यादि अनेक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण प्रसंग हैं। कबीरदासका जन्म-संवत् १४५५ दिया हुआ है। एक प्रसंगमें महात्मा गांधी (मोहण) का नाम भी आया है। स्वामीजीने भविष्यवाणी की है कि एक वणिक्-कुलमें वे प्रकट होंगे, और चरखेका प्रचारकर राम-नामके प्रतापसे सब दुःख-दरिद्र भगावेंगे। उसी स्थलमें और भी भविष्यवाणियाँ इस प्रकार हैं कि पुराकालमें दिये हुए हनुमानजीके शापके प्रभावसे महामुनि बाल्मीकि आविर्भूत होंगे। पीछे स्वयं हनुमानजी भी अवतार लेंगे। पंचक देशमें, विदेहमें और वंगप्रान्तमें यादवराज अवतरित होंगे—इत्यादि।

भ्रमण करनेके लिए स्वामीजी जब अपनी शिष्यमंडली और साधु-समाजके साथ बाहर निकले थे, तो गगरौनगढ़, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, विजयानगर, कांची, रंगम, पद्मनाभ, जनार्दन, द्वारिका, मथुरा, वृन्दावन, मायापुरी, चित्रकूट, प्रयाग आदि अनेक स्थलोंका दर्शन तथा विश्राम लेते काशी अपने आश्रमपर लौट आये थे। 'प्रसंग-पारिजात' में इन स्थानोंकी अवस्थाका भी वर्णन किया गया है, और स्वामीजीके सम्बन्धमें जो-जो घटनाएँ हुई, सबका उल्लेख है। आश्रमपर ही, जैसा ऊपर एक स्थलपर कहा गया है, उनका अवसान संवत् १५०५ (सन् १४४८) में हुआ।

स्वामी चेतनदासके इस अलौकिक विशाल ग्रन्थसे हमें तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक बातोंका अच्छा आभास मिलता है। आचार्य रामानन्दजीका समय निश्चय करनेके लिए भी प्रचुर सामग्री इसमें प्रस्तुत है। स्थल-स्थलपर दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंका निरूपण बड़े रोचक तथा आकर्षक ढंगसे किया गया है। काव्य एवं साहित्यकी दृष्टिसे भी 'प्रसंग-पारिजात' एक बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है, यद्यपि हमारा यह मत केवल हिन्दी-टीकापर ही अवलम्बित है। मुझे विश्वास है कि 'प्रसंग-पारिजात' के पढ़नेसे पाठकोंका पूर्ण मनोरंजन होगा, और इससे स्वामी रामानन्दजीके जीवन-चरित और उनकी दिव्य साधु-प्रतिभाका अच्छा परिचय मिलेगा।

नौकर

जेरेसिम ऐसे समयमें मास्कोको लौटा, जब नौकरी मिलना बहुत कठिन था। क्रिसमससे पहले, कैसी भी नौकरी क्यों न हो, लोग अपना काम नहीं छोड़ते; क्योंकि आनेवाले त्योहारपर उन्हें इनाम मिलनेका निश्चय होता है। बेचारा ग्रामीण जेरेसिम दिसम्बरके पिछले तीन सप्ताह निरन्तर दौड़-धूप करता रहा, परन्तु नौकरी नहीं मिली।

वह अपने ग्रामके परिचितों और रिश्तेदारोंके साथ ठहरा। यद्यपि अभी तक उसे कोई खास मुश्किल नहीं पेश आई थी, फिर भी यह सोचकर कि 'मुझ-जैसे युवकको यों ही बेकार नहीं फिरना चाहिए', कुछ परेशानी महसूस होती थी।

जेरेसिम बचपनसे ही मास्कोमें रहता था। जब वह लड़का था, तब शराबके कारखानेमें बोतलें धोनेके कामपर जाया करता था। बादमें उसे एक छोटी नौकरी मिली। गत दो वर्षोंसे वह एक व्यापारीके यहाँ था, और अब तक भी वहीं ही होता, यदि ग्रामसे आवश्यक कार्यके लिए उसे बुलावा न आता। वह अपने गाँव गया तो सही, पर दिल न लगा। उसे वहाँके वायुमंडलमें रहनेका अभ्यास न था। वह फिर मास्को लौटा, परन्तु तब तक उसकी जगह भर चुकी थी!

प्रतिक्षण उसे अपनी अवस्थापर चिन्ता होती थी, कब तक वह बेकार घूमता रहेगा। उसने अपनी दृष्टिसे सब प्रयत्न कर लिये थे। कोई भी रिश्तेदार या जान-पहचानवाला उसने न छोड़ा था। यहाँ तक कि रास्ते जाते लोगोंको कई बार ठहराकर उसने पूछा—"क्यों जनाब! क्या आप किसी ऐसी खाली जगहको जानते हैं, जहाँ मैं काम कर सकूँ?" परन्तु सब जगह एक ही जवाब मिला—"नहीं।" मानो सबने मिलकर उसके खिलाफ़ साज़िश कर रखी हो!

आखिरकार वह अपने रिश्तेदारोंपर निरन्तर भारस्वरूप होकर रहना सहन न कर सका। कुछ उसके प्रतिदिनके आनेसे तंग थे, और कईके मालिक इस बेकार आदमीको रोज़ देखना पसन्द न करते थे। जेरेसिमको कुछ नहीं सूझता था। वह कई-कई दिन सर्वथा निराहार बिता देता था।

× × ×

एक दिन जेरेसिम अपने ग्रामके मित्रके पास गया, जो मास्कोकी सीमापर रहता था। वह येरोव नामक स्वामीके यहाँ बरसोंसे कोचवान था। उसने अपनी मीठी ज़बानसे मालिकको इतना खुश किया कि येरोव उसे बहुत मानने लगा। वह प्रायः दूसरे नौकरोंकी शिकायतें किया करता और अपनी शेखियाँ बघारा करता।

जेरेसिमका उसने स्वागत किया। उसे चाय-पानी पिलाकर पूछा—"क्यों क्या समाचार है?"

"बहुत बुरा; कई हफ़्तोंसे बेकार घूम रहा हूँ।"

"तुमने अपने पुराने मालिकको फिर कामपर लेनेके लिए नहीं कहा?"

"कहा क्यों नहीं?"

"क्या जवाब देता है?"

"जगह भर गई है।"

"यही तो तुम नौजवानोंकी हालत है। तुम अपने मालिकसे ऐसा सलूक करते हो कि जब तुम जाते हो, वह शुक्र करता है। तुम्हें ऐसा काम करना चाहिए कि जब तुम एक बार छोड़कर फिर वापस आओ, तो तुम्हारा मालिक ना करनेके बजाय, फौरन दूसरे आदमीको निकालकर तुम्हें धन्यवादपूर्वक उसके स्थानपर नियुक्त कर दे।"

"यह कैसे हो सकता है? आजकल न तो ऐसे मालिक ही हैं, और न नौकर-चाकर ही बिलकुल फ़रिश्ते।"

"फ़िज़ूल बातें करनेसे क्या फ़ायदा? मैं तुम्हें अपनी ही मिसाल दूँ। यदि मैं एक बार घर चला जाऊँ, और फिर वहाँसे वापस आऊँ, तो मुझे निश्चय है कि न-केवल मेरा मालिक मुझे फिरसे कामपर रखेगा, बल्कि इससे उसे दिली खुशी होगी।"

जेरेसिम सिर झुकाकर बैठ गया। उसने देखा कि कोचवान आत्म-प्रशंसामें अत्युक्तिसे काम ले रहा है। उसने भी अपने मतलबसे खुशामद करनेकी ठानी।

"मैं जानता हूँ;" उसने कहा—"परन्तु प्रिय डेनिलिच! तुम-जैसे मास्कोमें हैं कितने? यदि तुम भी हमारे समान एक मामूली नौकर होते, तो तुम्हारी भी यही हालत होती।"

डेनिलिच हँसा। उसे अपनी प्रशंसा अभीष्ट थी।

"यह बात है! यदि तुम भी मेरे समान समझ-बूझकर रहो, तो तुम्हें बेकार फिरनेकी ज़रूरत न होगी।"

जेरेसिम चुप रहा। इतनेमें डेनिलिचको मालिकने बुला भेजा।

"क्षण-भर प्रतीक्षा करो। मैं अभी आता हूँ।"

"बहुत अच्छा।"

डैनिलिच वापस आया। आध घंटेमें उसे गाड़ी जोतकर मालिकको शहर ले जाना होगा। उसने अपनी चिलम भरी, और धुआँ छोड़ते हुए कमरेके तीन-चार चक्कर काटे। फिर वह जेरेसिमके सामने आकर रुका।

"देखो भाई !"—उसने कहा—"यदि तुम चाहो, तो तुम्हें रखनेके लिए मैं अपने मालिकसे कह सकता हूँ।"

"क्या उसे किसी नौकरकी ज़रूरत है ?"

"एक नौकर है, परन्तु वह वृद्ध हो चला है, और वह अपना काम भी बराबर नहीं कर पाता। इतना शुक्र है कि हम शहरसे बाहर रहते हैं, नहीं तो पुलिस नाकमें दम कर देती।"

"ज़रूर, भाई डैनिलिच ! मेरे लिए अपने मालिकसे ज़रूर कहो। मैं आजन्म तुम्हारा ऋणी रहूँगा। यह बेकार घूमना अब अधिक नहीं देखा जाता।"

"अच्छा, मैं मालिकसे तुम्हारा ज़िक्र करूँगा। तुम कल फिर इसी वक्त आना। यह लो दस कोपक (रूसी सिक्का)। तुम्हारे काम आयेंगे।"

"धन्यवाद, डैनिलिच ! धन्यवाद ! मेरी सिफ़ारिश ज़रूर करना। मैं कल ठीक वक्तपर आ जाऊँगा।"

"अच्छा, अच्छा......"

"जेरेसिमके जानेके बाद डैनिलिचने घोड़े जोते, अपनी पोशाक पहनी और हाज़िर हुआ। उसका मास्टर शैरोव गाड़ीपर चढ़ा। घोड़े सरपट दौड़े। मालिकने शहर पहुँचकर अपना काम खत्म किया, और लौटने लगा। वापस आते हुए डैनिलिचने मालिकको प्रसन्न देखकर चर्चा छेड़ी—"स्वामिन् ! आपसे एक प्रार्थना है ?"

"क्या ?"

"मेरे ही ग्रामका एक युवक बहुत दिनोंसे बेकार और बहुत परेशान है।"

"फिर ?"

"क्या आप उसे किसी कामपर ले सकेंगे ?"

"किस कामपर ?"

"पहरेदारी, आँगनकी सफ़ाई वग़ैरह सब कामोंपर ?"

"पोलिकार्पिच जो है ?"

"उसका होना न होना बराबर है। अच्छा हो, यदि आप उसे रुखसत दे दें।"

"यह मुनासिब न होगा। वह वर्षोंसे मेरे पास है, और बिना कारण अलग करना अच्छा नहीं।"

"मान लीजिए कि उसने वर्षों काम किया है। परन्तु मुफ्त तो नहीं किया। उसे तनख्वाह मिली है। उसने बुढ़ापेके लिए अवश्य एक अच्छी रक़म बचाई होगी।"

"क्या बचाया होगा ? उसके स्त्री-बच्चे हैं, वे भी उसी तनख्वाहमें पलते हैं।"

"उसकी स्त्री तो कमाती है, शायद उससे भी अधिक।"

मालिकने कोई जवाब नहीं दिया।

"आपको पोलिकार्पिच और उसकी स्त्रीकी क्या चिन्ता है ? सच बात तो यह है, वे अपना काम भी बराबर नहीं करते। जब तक बारबार कहा न जाय, आँगन कभी साफ़ नहीं होता। रातको पहरेपर तो आप सदा उसे सोता पायेंगे। मुझे इतना ही भय है कि कहीं उसकी लापरवाहीसे कभी आपको नुक़सान न उठाना पड़े। ऐसे लापरवाह नौकरको रखनेसे क्या फायदा ?"

"फिर भी यह कठिन है। वह पिछले पन्द्रह वर्षोंसे मेरे पास है। अब बुढ़ापेमें उसे रुखसत करना अधर्म होगा।"

"अधर्म ? इसमें अधर्म क्या है ? वह भूखों थोड़े ही मरेगा। वह किसी दान-गृहमें जायगा, जहाँ उसे मृत्यु-पर्यन्त मुफ्त भोजन-वस्त्र मिलेगा।"

शैरोव सोच रहा था। "अच्छा ! तुम अपने मित्रको कल लाओ। मैं देखूँगा कि उसके लिए क्या किया जा सकता है।"

"अवश्य उसे काम दीजिए, बेचारा बहुत समयसे बेकारीका शिकार है। आप देखेंगे कि कितना मेहनती और कितना फर्माबरदार है। ग्राममें बूढ़े पिताकी बीमारीके कारण नौकरी छोड़ गया था। फिर आजकल आप जानते ही हैं..."

× × ×

अगले दिन जेरेसिम फिर आया। उसने पूछा—"क्या आपने मेरे लिए कुछ किया ?"

"आशा तो है। पहले चाय पी लें, फिर मालिकके सामने हाज़िर होंगे।"

आज चाय भी जेरेसिमके लिए स्वादिष्ट नहीं थी। वह बहुत जल्दी मालिकका फैसला सुनना चाहता था। जैसे-तैसे उसने दो प्याले चढ़ाये, और फिर दोनों मालिकके कमरेमें पहुँचे।

शैरोवने जेरेसिमसे यह पूछकर कि वह कहाँ-कहाँ रहा है, और उसने क्या-क्या काम किया है, उसे नौकर रखना स्वीकार किया, और अगले दिन आकर काम सम्हालनेका हुक्म दिया।

जेरेसिम अपने भाग्यके पलटनेपर इतना प्रसन्न था कि उसके पैर ज़मीनपर न पड़ते थे। वह कोचवानके साथ उसके कमरेमें गया। वहाँ डेनिलिचने कहा—"देखो भाई! अब तुम्हें काम तो मिल गया, परन्तु इस होशियारीसे करना कि मालिक प्रसन्न हो, और मुझे शर्मिन्दा होनेका मौका न आये। तुम जानते हो, मालिक कैसे होते हैं? एक बार तुमसे ग़लती हुई नहीं कि हमेशा सिर पड़ जायँगे, और छोटे-छोटे क़ुसूर भी उनकी निगाहोंमें बड़े दीखने लगेंगे।"

"भाई, डेनिलिच! उसकी फ़िक्र न करो। मैं जी-जानसे मालिकको और तुम्हें प्रसन्न कर दूँगा।"

"अच्छा, देखें।"

जेरेसिम विदा हुआ। बँगलेके एक किनारेपर पोलिकार्पिचका कमरा था, जहाँसे खिड़कीके रास्ते प्रकाशकी एक धारा बाहर घासपर पड़ रही थी। उसे इच्छा हुई कि वह अपने भावी कमरेको देखे। नज़दीक पहुँचनेपर उसने देखा, बर्फ़के कारण धुन्ध जमा है, इसलिए अन्दर दिखाई नहीं देता, परन्तु उसे वहाँ खड़े हुए भीतरकी बातचीत स्पष्ट सुनाई देती थी।

"अब हम क्या करेंगे? स्त्रीकी-सी आवाज़से किसीने कहा।

"ख़ुदा जाने!"—पुरुषकी आवाज़—पोलिकार्पिच ही होगा—सुनाई दी—"शायद भीख माँगनी पड़ेगी। और तो कोई चारा नहीं दीखता।"

"ओह! हम ग़रीब आदमियोंकी कितनी बुरी अवस्था है। सारी उम्र दिन-रात एक करके मालिककी गुलामी करते हैं, पर ज्यों ही बूढ़े होते हैं, नौकरीसे जवाब मिल जाता है!"—स्त्रीने दुःख-भरी आवाज़में कहा—"क्या करें? हमारा मालिक हममें से नहीं है। उसे हमारी अवस्थाका कैसे पता लगे! कहनेसे कुछ लाभ नहीं!"

"एक नहीं, सभी मालिक ऐसे ही होते हैं। हम अपनी उम्रका बड़ा हिस्सा उनकी सेवामें गुज़ारते हैं। फिर भी ज्यों ही बुढ़ापा आया, वह हमें निकाल फेंकते हैं, चाहे हममें अभी तक वैसी ही काम करनेकी ताक़त मौजूद हो। यदि ताक़त न होगी, तो हम ख़ुद ही बस कर देंगे।"

"मेरी समझमें हमारे मालिकका इतना क़सूर नहीं। यह काम कोचवान डेनिलिचका है। वह अपने एक मित्रके लिए नौकरी चाहता है।"

"हाँ! सचमुच वह बड़ा शैतान है। वह कुत्तेकी तरह हमेशा मालिकके आगे-पीछे अपनी पूँछ हिलाता रहता है। बच्चूको अभी मालूम हो जायगा। मैं सीधा मालिकके पास जाऊँगा, और उसका कच्चा चिट्ठा सुनाऊँगा। कैसे वह चारा और दाना चुराकर बेचता है और पैसे खरे करता है। अगर मालिकने चाहा, तो उसे कोचवानकी सब झूठी शिकायतोंका भेद भी मालूम हो जायगा।"

"नहीं, ऐसा पाप मत करो।"

"पाप? यह बिलकुल सत्य है। इसमें ज़रा भी अत्युक्ति नहीं। मैं सब कुछ मालिकसे कह दूँगा। जब वह हमारे साथ इस प्रकारका बर्ताव करता है, तो हमें सच छिपानेकी क्या ज़रूरत है?"

बुढ़िया फूट-फूटकर रोने लगी।

जेरेसिमने यह सब सुना, इन बेचारे बूढ़ोंको मेरे आनेसे कितनी तकलीफ़ होगी, यह सोचकर उसका हृदय फटने लगा। वह कुछ देर तक सुन्न-सा खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे हिला और कोचवानके कमरेमें पहुँचा।

"कुछ भूल गये क्या?"

"नहीं डेनिलिच!.......मेरे लिए तुमने जितनी तकलीफ़ उठाई है, उसके लिए धन्यवाद देने आया हूँ। मैं तुम्हारे मालिककी नौकरी नहीं करूँगा।"

"क्या नौकरी नहीं करोगे?"

"नहीं, मैं उस बूढ़े पोलिकार्पिचको निकलवाकर यहाँ नहीं रहना चाहता। मैं कोई और जगह तलाश कर लूँगा।"

डेनिलिच अत्यन्त क्रोधसे बोला—"क्या तुम मुझे बेवक़ूफ़ बना रहे थे? पहले तो नौकरी दिला दो, अवश्य नौकरी दिला दोका शोर था, और जब मिल गई, तो ये नख़रे! बदमाश कहींका, यहाँसे अभी निकल जाओ। तुम्हारी वजहसे मुझे भी शर्मिन्दा होना पड़ेगा।"

जेरिसिमको कोई जवाब न सूझा। चुपचाप सिर नीचा किये खड़ा रहा।

डेनिलिचने घृणासे पीठ फेरी। जेरिसिम अपनी टोपी उठाकर आँगन लाँघता हुआ सड़कपर पहुँचा। उसकी आत्मा प्रसन्न थी।*

अनुवादिका—श्रीमती शान्तादेवी

* एक रशियन कहानी।
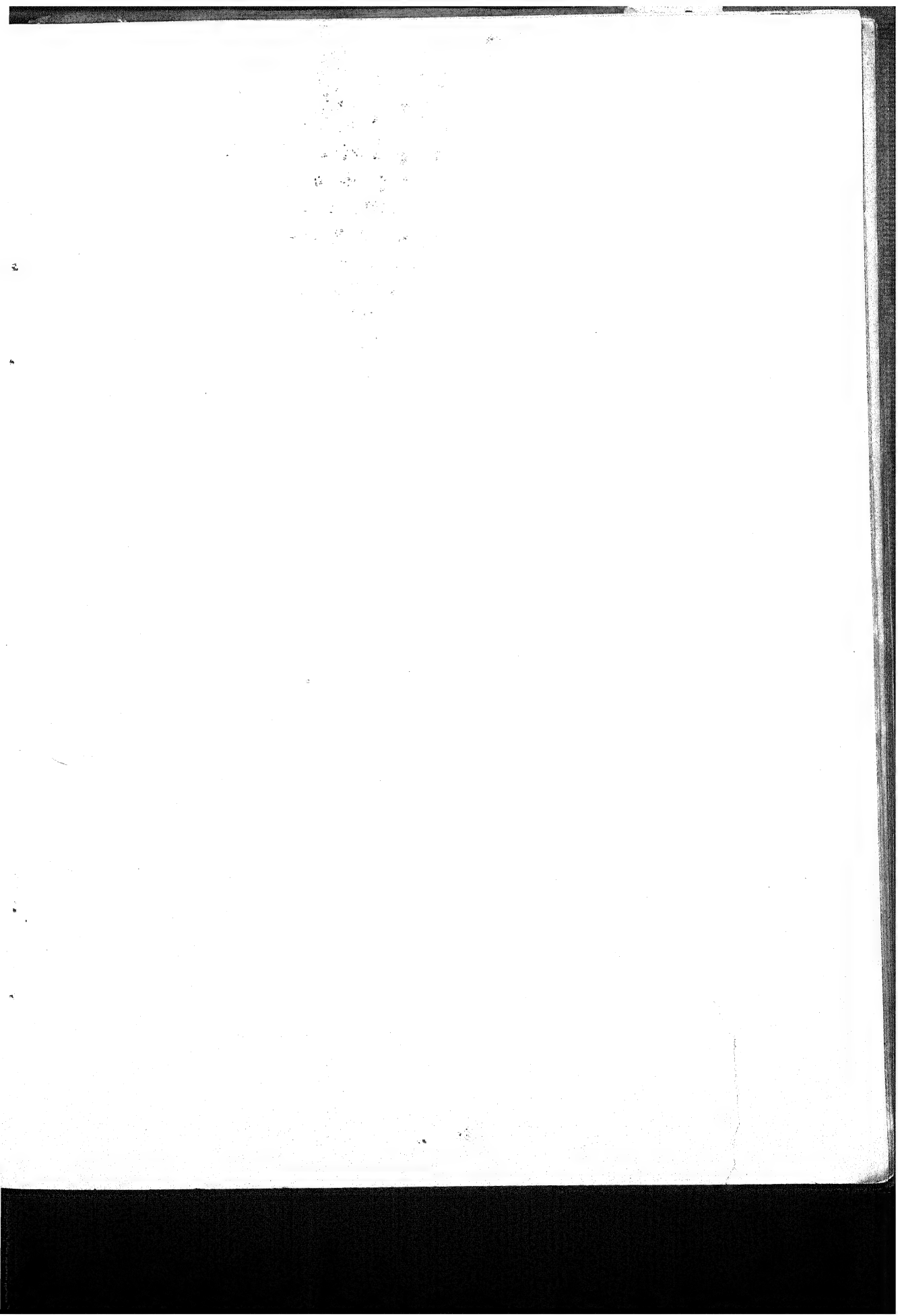
‘विशाल-भारत’] सान [चित्रकार—श्री सुधीररंजन खास्तगीर

सहिष्णुताकी सीमा

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

Every man has the right to utter what he thinks the truth, and every other has the right to knock him down for it.

Dr. Johnson.

विचारोंकी स्वाधीनता

अच्छे क़ानूनका चिह्न यही है कि वह सबके लिए समानरूपसे लागू हो सके। मनुष्य विचारनेमें स्वाधीन है—इस नियमका अभिप्राय यह है कि मैं भी विचार करनेमें स्वाधीन हूँ, और संसारका प्रत्येक अन्य मनुष्य भी विचार करनेमें स्वाधीन है। जहाँ तक मेरे विचारसे किसी दूसरेका अधिकार नहीं छिनता, वहाँ तक कोई दूसरा मेरे विचारपर रुकावटें भी नहीं डाल सकता। यह विचार-स्वातन्त्र्यका असूल है।

शेष पशु-संसारसे मनुष्यमें यह भिन्नता है कि उसे बहुत-कुछ सीखना पड़ता है। वह माता-पिता, अध्यापक और पड़ोसीके अतिरिक्त अनगिनत लेखनियों और जिह्वाओंका आभारी बनकर थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त करता है। यह मनुष्य-जातिका ही सौभाग्य है कि वह अपने भावोंको दूसरों तक पहुँचानेके लिए नियमबद्ध भाषाका प्रयोग कर सके। इससे प्रत्येक मनुष्य अपने और दूसरोंके लिए अधिक उपयोगी हो सकता है। भाषा मनुष्य-जातिकी उन्नतिका एक मुख्य साधन है। भावोंके परस्पर विनिमयसे ही दर्शन, तत्त्वज्ञान और विज्ञानका विकास होता है।

मनुष्य-जातिकी मानसिक और व्यावहारिक उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अन्य मनुष्यों तक अपने विचारोंको पहुँचाये, और अन्योंके विचारोंको सुने; तभी तो मनुष्य-जातिका ज्ञान-कोष पूर्णरूपसे बढ़ सकेगा। एक-एक बूँद मिलकर नाला बनता है, नालोंके मिश्रणसे बड़े नद बन जाते हैं, और वही नद समुद्रमें मिलकर उसकी विशालताको क़ायम रखते हैं। समुद्रकी विशालताको क़ायम रखनेके लिए उस हरएक बूँदका शामिल होना ज़रूरी है, जो नालेमें टपकी थी, जिसने पहाड़की दरारमें पड़कर अन्य बूँदोंके साथ निर्झरका रूप धारण किया था। दूसरोंके विचारोंको सुने और अपने विचारोंको प्रकट करे, यह प्रत्येक मनुष्यका अधिकार है। यह अधिकार केवल मनुष्यके स्वार्थके लिए ही नहीं, मनुष्यमात्रके कल्याणके लिए भी आवश्यक है।

मतभेदका कारण

प्रत्येक मनुष्य सोचता है, परन्तु शायद कोई दो मनुष्य एक विषयपर ठीक एक ही तरहपर नहीं सोच सकते। दोनोंके विचारनेमें कुछ-न-कुछ भेद रहता ही है। वह भेद चाहे कितना ही सूक्ष्म हो—एक रेखाका, या बिन्दीका ही हो—परन्तु भेद अवश्य रहेगा। कोई दो मनुष्य देखनेमें बिलकुल एक-से नहीं होते। हो सकता है कि वे साढ़े निन्यानवे फी-सदी एक-से हों, परन्तु उनकी आकृतिमें आधा फी-सदी भिन्नता तो अवश्य ही मिलेगी। इसी प्रकार मनकी भी दशा है। दो मन बिलकुल एक तरह—सौ फी-सदी एक तरह—नहीं सोच सकते।

मध्यमें एक विशाल बुत खड़ा है। उसके चारों ओर हज़ारों दर्शकोंकी भीड़ है। सब उस बुतको देख रहे हैं। क्या उनमें से कोई दो आदमी बुतके ठीक उसी भागको देख सकते हैं? स्पष्ट है कि नहीं; क्योंकि कोई दो आदमी ठीक एक ही जगह खड़े नहीं हो सकते, और बुतका कौनसा हिस्सा कितना दिखाई दे, यह देखनेवालेकी परिस्थितिपर अवलम्बित है। देखनेवालेके स्थान-परिवर्तनसे दिखाई देनेवाले हिस्सेमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य आ जायगा।

यही दशा विचारनेवालोंकी भी है। प्रत्येक मनुष्यका मन जुदा-जुदा संस्कारोंसे भरपूर है। एकके

अनुभव और संस्कार दूसरेसे नहीं मिलते। उसका शिक्षण भी कुछ-न-कुछ जुदा होता है। मनकी विचारशक्ति कई दशाओंपर निर्भर है। वह जन्मसे तीव्र थी, या मन्द ? उसपर इर्द-गिर्दके कैसे असर पड़े ? उसने गुरुसे क्या सीखा ? उसकी जीवनचर्या कैसी रही ? इन सब प्रश्नोंके पूरे-पूरे उत्तर मिल जानेपर भी यह नहीं कहा जा सकता कि हमने मननशक्तिके विकासकी सब शर्तोंको जान लिया है। हरएक मनुष्यकी परिस्थितिमें कुछ-न-कुछ भिन्नता रहती है। इसी कारण एक ही विषयपर दो मनुष्य एक प्रकारसे नहीं सोचते। वे प्रायः एक ही बुतके भिन्न-भिन्न पहलुओंको देखते हैं। यदि दिखाई देनेवाली वस्तु एक ही हो, तो भी वह सर्वांशमें दृष्टिके सामने नहीं आ सकती। इसीसे मनुष्योंमें मतभेद पैदा होता है। जब तक मनको बिलकुल नपुंसक बनाकर ही न बिठा दिया जाय, तब तक थोड़ा-बहुत मतभेद आवश्यक है।

मतभेदकी उपयोगिता

मतभेद भी उपयोगी है। प्रत्येक मनुष्यकी जाननेकी शक्ति परिमित है, जीवन परिमित है, और जीवनका वह भाग, जिसमें वह विवेकसे काम ले सकता है, और भी कम है। यह भी आवश्यक नहीं कि उसे जो ज्ञान हो, वह ठीक हो। वह आधा ठीक या बिलकुल ग़लत भी हो सकता है। ऐसी दशामें मनुष्य-जातिके ज्ञान-कोषको भरनेके लिए यह आवश्यक है कि सब दिमाग़ लगकर उसे बढ़ानेकी चेष्टा करें। ज्ञानकी बूँदें मिलकर सागर बना सकेंगी, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्यका ज्ञान एक-सा नहीं होगा। उसमें दो न्यूनताएँ अनिवार्य हैं। एक न्यूनता तो यह कि वह अधूरा होगा, और दूसरी यह कि वह कई अंशोंमें अर्द्ध सत्य या मिथ्या भी हो सकता है। पहली न्यूनताका इलाज तो यह है कि लेख द्वारा और गुरु-परम्परा द्वारा गुज़रे हुए और विद्यमान मनुष्योंके ज्ञान-बिन्दुओंको इकट्ठा किया जाय, और दूसरी न्यूनताका उपाय यह है कि प्रत्येक विचारको परीक्षाकी कसौटीपर कसकर परखा जाय। एक मनुष्यके विचारपर दूसरा मनुष्य बुद्धि लड़ाये, और उसकी कमियोंको प्रकाशित करे। एक दूसरेके विचारोंकी परीक्षा और उसकी कमियोंकी पूर्ति तभी सम्भव है, जब मतभेदका अधिकार स्वीकार कर लिया जाय। यदि दो मनुष्य दो प्रकारसे विचारनेका अधिकार ही न रखते हों, तो न ज्ञानका भंडार बढ़े और न भ्रममूलक विचार दूर हों। शायद किसी भी विषयपर पर्याप्त विचार न हो सके। व्यक्तिकी शक्ति इतनी परिमित है कि वह छोटी-से-छोटी चीज़को भी पूरा नहीं देखता। थोड़ासा देखता है—शेषका अनुमान लगाता है। जब तक कई आदमी भिन्न-भिन्न पहलुओंपर विचार करनेमें सहयोग न देंगे, तब तक सचाईपर पहुँचना असम्भव है। एक दूसरेकी कमियोंकी पूर्ति और भूलोंका संशोधन ही सबसे बड़ा सहयोग है।

अल्प शक्तिवाली मनुष्य-जातिको भूलसे बचानेके लिए कुदरतने सबसे बड़ा उपहार यही दिया है कि मनुष्य वस्तुओंको देख सकते हैं, भाषा द्वारा एक दूसरेके विचारोंकी न्यूनताको पूरा कर सकते हैं, और भ्रान्त विचारको मिटा सकते हैं। मतभेदकी यही उपयोगिता है। मतभेद न हो, तो मानसिक संसार एक वीरान रेतीला मैदान ही रह जाय, जिसमें न हरियाली हो, और न पानी।

व्यवहार-भेद

विचार-भेदसे व्यवहार-भेद पैदा होता है। विचारोंकी भाँति व्यवहारपर भी मनुष्यके संस्कारों, अनुभवों और विचारोंका असर होता है। स्थान, समय तथा अन्य परिस्थितिके भेदसे भी व्यवहार और रीति-रिवाजमें भिन्नता पैदा होती है। गर्म देशके लोग कम कपड़े पहनेंगे, सर्द मुल्कके लोग अधिक। बहुत उपजाऊ भूमिपर रहनेवाले लोग आलसी होंगे, और कठोर और परिश्रमसाध्य भूमिके निवासी परिश्रमी होंगे। समुद्र-तटके निवासियोंमें साहसिकता अधिक रहेगी। मरुस्थलके रहनेवालोंमें बर्दाश्तकी प्रधानता होगी। इस प्रकार परिस्थिति-भेदसे मनुष्यके व्यवहारमें भेद आता है,

जो आहिस्ता-आहिस्ता पककर जातीय स्वभावके रूपमें परिणत हो जाता है। यही कारण है कि देशों, जातियों और कुलों तकके आचार-व्यवहार एक दूसरेसे अलग दिखाई देते हैं। वह स्थान और समयकी आवश्यकताके अनुसार जन्म लेते हैं, और धीरे-धीरे परिपक्व हो जाते हैं। सामाजिक सदाचार और धर्म-सम्बन्धी रीति-रिवाज इसी कोटिके होते हैं।

परिस्थितिके भेदसे व्यवहार-भेद पैदा होता है। कभी-कभी व्यवहार-भेद आकस्मिक भी हो जाते हैं। जिस परिस्थितिमें मनुष्य या कोई मनुष्य-समुदाय निवास करता है, उसीके अनुसार, उसीकी समस्याओंको हल करनेके लिए, वह अपने चाल-चलनको गढ़ता है। तब हम कह सकते हैं कि व्यवहार-भेद जहाँ स्वाभाविक है, वहाँ परिस्थितिके अनुसार होनेपर उपयोगी भी है। प्राय: रीति या रिवाज तभी हानिकारक होते हैं, जब वे अपनी आवश्यकता या उपयोगितासे अधिक ज़िन्दा रह जाते हैं। यह मनुष्य-प्रवृत्तिकी कमज़ोरी है कि वह पड़ी हुई आदतको नहीं छोड़ना चाहती। जो व्यवहार एक समय उपयोगी होता है, वही दूसरे समय त्याग कर देना चाहिए। ऋतु-परिवर्तनके दिनोंमें प्राय: लोग क्यों रोगी होते हैं? उनकी आदतें एक ऋतुके अनुसार बनी हुई होती हैं। परिवर्तनके अनुसार वे शीघ्र ही अपनेको नहीं ढाल सकते, इस कारण दु:ख उठाते हैं। इसमें व्यवहार-भेदका दोष नहीं, प्रत्युत व्यवहारमें शीघ्र ही भिन्नता न पैदा करनेका दोष है।

विचार-भेदकी तरह व्यवहार-भेद भी स्वाभाविक और उपयोगी है—जब तक वह परिस्थितिके अनुसार रहे।

सहिष्णुताका अभिप्राय

जब किसी एक ही वस्तुके सम्बन्धमें दो व्यक्ति सर्वथा भिन्न तरीक़ोंपर सोचते हों, तब तीन सम्भावनाएँ हो सकती हैं। या तो उनमें से एकका विचार बिलकुल ठीक होगा, और दूसरेका बिलकुल ग़लत; अथवा दोनोंके विचारोंमें थोड़ा सत्य और थोड़ा असत्य होगा। एक तीसरी परिस्थिति भी सम्भव है कि दोनोंका विचार सर्वथा असत्य हो। अँधेरी रात है। रास्तेमें रस्सीका एक टुकड़ा पड़ा है। एक उस रस्सीको रस्सी ही समझता है। दूसरेको वह साँप दिखाई देता है। तीसरेको उसमें लकड़ीके टेढ़े टुकड़ेकी भ्रान्ति होती है। पहले और दूसरेमें भी मतभेद है, और दूसरे और तीसरेमें भी; परन्तु इन दोनों मतभेदोंमें भेद है। एक तो सत्य और असत्यका मतभेद है, और दूसरा असत्य और असत्यका। परन्तु उन तीनोंसे पूछो, तो तीनों ही अपने-अपने विचारको सत्य कहेंगे, और ख़ुदाको हाज़िर-नाज़िर जानकर गवाही दे देंगे। गवाहीमें पहला कहेगा—वह रस्सी थी; दूसरा कहेगा—मैंने अपनी आँखोंसे देखा, वह साँप था; तीसरा उसी विश्वाससे कहेगा—मैं निश्चयसे कहता हूँ, वह लकड़ीका मुड़ा हुआ टुकड़ा था। तीनों अपनेको सच्चा और दूसरेको झूठा कहेंगे, जब तक उन्हें यह विश्वास नहीं कि मनुष्य भूल भी कर सकता है—वह सर्वज्ञ नहीं है; परन्तु ज्यों ही मनुष्यकी समझमें यह बात आ जाय कि वह भूल भी कर सकता है, त्यों ही वह सोचने लगता है कि मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ—सम्भव है, मैंने जो देखा या सोचा है, वह पूरा सत्य न हो। मैंने देखे हुए पदार्थका केवल अधूरा ही रूप देखा हो। यह भी सम्भव है, मेरी भ्रान्ति ही हो। तब वह दूसरेके विचारको सुनकर अपने विचारकी परीक्षा करता है। वह दूसरेके विचारको सुन लेता है—बर्दाश्त कर लेता है। मतभेदको बर्दाश्त कर लेनेका नाम सहिष्णुता है। विचार-भेद और कार्य-भेद दोनोंमें ही सहिष्णुताका एक रूप है। अपनी तरह दूसरेके भी विचार करने और कार्य करनेके स्वाधीन अधिकारको मान लेना सहिष्णुताका बीज है।

असहिष्णुताके फल—कलह

जो मनुष्य हमसे किसी प्रकारका मतभेद रखता है, हम समझें कि मतभेद रखनेका वह अधिकारी है। यह आवश्यक नहीं कि सब हमारी ही रायके हों। हम अपने विचारको प्रकट कर सकते हैं, यह यत्न भी कर

सकते हैं कि दूसरेको अपने विचारका बनायें, परन्तु दूसरेके विचारोंकी स्वाधीनताको हम नहीं छीन सकते। यह सहिष्णुता है। किसी कार्यको हम एक प्रकारसे करते हैं, दूसरा दूसरे प्रकारसे करता है। जब तक हमारा या दूसरेका वह कार्य अन्योंपर कोई असर नहीं डालता, उन्हें कोई कष्ट नहीं देता, या उनके किसी अधिकारका नहीं छीनता, तब तक उसमें दख़ल देनेका किसीका कोई अधिकार नहीं है। इससे उल्टी असहिष्णुता है। उसके कई रूप हैं। असहिष्णुताका मानसिक फल घृणा है। वह असहिष्णुताके करिश्मोंका जन्मस्थान है। जिसकी राय हमसे नहीं मिलती, या जो किसी कार्यको—दृष्टान्तके तौरपर ईश्वरकी उपासनाको—हमारी तरहसे नहीं करता, उससे हम घृणा करते हैं, उसे नीच समझते हैं—यह असहिष्णुताका पहला रूप है।

घृणाका फल द्वेष है। हम अपनेसे भिन्न राय रखनेवालेसे द्वेष करने लगते हैं—उसे दुश्मन समझते हैं। दुश्मनीका फल लड़ाई है। वह लड़ाई कई तरह की जाती है—ज़बानसे, हाथसे, लाठीसे, या तलवारसे—लड़ाई तो लड़ाई ही है।

यदि ज़रा ठंडे दिमाग़से सोचें, तो आश्चर्य होता है कि मनुष्य केवल विचार-भेदसे, या किसी निज कार्यको अलग ढंगपर करनेके कारण, एक दूसरेकी जानका दुश्मन कैसे बन जाता है; परन्तु जिसे हम आश्चर्य कहते हैं, वही प्रायः सत्य होता है। वह आश्चर्य केवल इसलिए मालूम होता है कि संसार प्रायः भावनापर चलता है, और उसके आश्चर्योंकी सूची बनाते हुए हम दिमाग़से काम लेते हैं। हम स्वयं भावुकतामें बहकर वह काम कर डालते हैं, जिन्हें विवेककी दशामें हम आश्चर्यजनक कहते हैं। इतिहासके पृष्ठ मनुष्य-जातिकी असहिष्णुताके कारण उत्पन्न हुए युद्धोंसे लाल हुए पड़े हैं। कहा जाता है कि संसारमें ज़न (स्त्री), ज़र (धन) और ज़मीन लड़ाईकी जड़ हैं, परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि यह दुनियवी झगड़े मात हो जाते हैं, जब हम 'पवित्र धर्म' और 'पाक मज़हब'के नामपर किये गये झगड़ोंपर दृष्टि डालते हैं। धर्म-सम्बन्धी लड़ाई-झगड़ोंकी बुनियादमें असहिष्णुता ही है।

असहिष्णुताके फल—उन्नतिमें रुकावट

जो आदमी अपनी रायसे भिन्न राय सुननेको उद्यत नहीं है, वह अपनी भूलको कभी नहीं सुधार सकेगा। यदि कोई हुकूमत अपनी आलोचना न सुने, और समालोचकोंकी ज़बानपर ताला लगा दे, तो वह ग़लती-पर-ग़लती करेगी; यहाँ तक कि फिर वह ग़लतियोंके जालमें से निकल ही न सकेगी। उसका विनाश अवश्यम्भावी है। जो धार्मिक सम्प्रदाय या मत असहिष्णुताके असूलपर क़ायम है, वह संसारके लिए अमृत न होकर विषका प्याला सिद्ध होता है, वह मनुष्य-जातिकी मानसिक उन्नतिका शत्रु बन जाता है। या तो वह समयकी चोटें खाकर बदल जाता है—और सहिष्णुताको अंगीकार कर लेता है, अथवा उन्नतिका झंझावात उसे उखाड़कर ऐसे फेंक देगा कि अणुओंकी भी तलाश करना कठिन हो जायगा। जो मनुष्य मज़बूत है, वह दूसरोंके छोटे-मोटे धक्कोंकी परवा नहीं करता। पहाड़की चट्टान सैकड़ों तूफ़ानोंको सह लेती हैं, तो भी कभी शिकायत नहीं करतीं। असहिष्णुता निर्बलताका चिह्न है, और उससे निर्बलता बढ़ती ही जाती है। शरीर कुश्तीसे, रगड़से और मालिशसे मज़बूत होता है। विचार भी व्यायामसे ही परिपक्व होते हैं। सब मनुष्य अपने-अपने ढंगपर विचार करें, और फिर अपने-अपने विचारोंकी बूँदोंको घड़ेमें डाल दें, तो मनुष्य-जातिका ज्ञान-कोष भर सकता है। यदि सबको सोचनेकी स्वाधीनता ही नहीं है, तो ज्ञान-घट कैसे भरेगा? जब तक एक मनुष्यका विचार दूसरे मनुष्यकी बुद्धिकी शाणपर नहीं चढ़ाया जाता, तब तक वह पैना कैसे हो सकता है—उसमें चमक कैसे पैदा हो सकती है। असहिष्णुता मनुष्य-जातिकी उन्नतिका प्रतिबन्धक है।

सहिष्णुताकी सीमा

सहिष्णुता और कमज़ोरीमें भेद है। जो मनुष्य इच्छाशक्तिसे हीन है, वह अपने-आपको सहिष्णु नहीं कह सकता। सहिष्णुताके स्वरूपको ठीक रूपमें समझनेके लिए उसकी सीमाको समझ लेना उचित है। मैं चाहता हूँ कि मुझे विचारने और कार्य करनेकी स्वाधीनता मिले। मेरा कर्तव्य है कि मैं हरएकके लिए यह अधिकार देनेको तैयार रहूँ। मेरा यह अधिकार नहीं है कि मैं किसी दूसरेको कष्ट पहुँचाऊँ, या दूसरेका माल उठाकर अपनी जेब भरूँ। मैं किसी दूसरेको भी यह अधिकार नहीं दे सकता कि वह अकारण या स्वार्थवश मुझे कष्ट दे, और मेरे मालको चोरी या डकैतीसे ले भागे। मैं यदि इस अन्यायको सहन करता हूँ, तो वह मेरी निर्बलता है—सहिष्णुता नहीं। दूसरेके अधिकारमें बाधा न डालना सहिष्णुता है, तो अपने अधिकारमें अनुचित बाधा पड़ने देना निर्बलता और नपुंसकता है। जब तक कोई व्यक्ति अपने अधिकारोंको ऐसे ढंगपर बर्ते कि उससे किसी दूसरे व्यक्ति या समाजके अधिकारोंपर आघात न पहुँचता हो, तब तक उसे सहन करना व्यक्ति और समाजका कर्तव्य है; परन्तु ज्यों ही वह इस सीमाका उल्लंघन करे, त्यों ही उसकी चेष्टाओंपर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो जाता है। एक व्यक्तिके अधिकारोंके उपयोगसे दूसरे व्यक्तिके अधिकारोंपर आघात न पहुँचे, यह सहिष्णुताकी सीमा है।

निजी जीवनमें सहिष्णुता

उदारता घरसे ही शुरू होनी चाहिए, परन्तु प्रायः लोग बाहर बड़े उदार होते हुए भी घरमें ज़ालिम और अनुदार होते हैं। समझ लो कि उनकी उदारता दिखावेकी है—असली नहीं। एक परिवारको सुखी और शान्त रखनेके लिए सहिष्णुताकी आवश्यकता है। जब कोई मेशीन चलती है, तो उसके पुर्जे आपसमें संघर्ष करते हैं। यदि उनमें तेल न डाला जाय, तो वह कामके योग्य न रहेंगे, घिसकर-टूट जायँगे। कई जगह तो आग लगकर अनर्थ होनेकी भी सम्भावना रहती है। परिवार भी एक छोटीसी मेशीन है। उसमें सहिष्णुता तेलका काम देती है। पिता और युवा पुत्रमें, माता और जवान लड़कीमें, पति और पत्नीमें तथा अन्य सम्बन्धियोंमें घोर मतभेद होते रहते हैं। मतभेदोंके रहते भी परिवार चलाना पड़ता है। जहाँ परिवारके सब टुकड़े सहिष्णुतासे काम लेते हैं, वहाँ परिवार सुखसे चलता है; परन्तु जहाँ असहिष्णुताका राज्य है, वहाँ परिवार नरक बन जाता है। पिताको पुत्रकी बहुतसी बेहूदगियाँ बर्दाश्त करनी पड़ती हैं। पति-पत्नीको एक दूसरेकी रायको ग़लत मानते हुए उसका आदर करना पड़ता है। जहाँ बर्दाश्त नहीं रहती, वहाँ महाभारत-संग्राम मच जाता है। हरएक गृहस्थ सहिष्णुताके मूल्यको खूब समझता है। पिता सनातनी है—पुत्र आर्यसमाजी है, फिर भी निर्वाह होता है। चीनमें पिता चीनी धर्मको मानता है, और पुत्र ईसाई, या मुसलमान बन गया है, तो भी परिवारकी एकता नष्ट नहीं होती। पति सुधारक है, और स्त्री पुराने विचारोंमें डूबी हुई है, तो भी घर चलता है। इसका नाम सहिष्णुता है। सबका विचारोंकी स्वाधीनता है, परिवारके प्रति अपना-अपना कर्तव्य पालन करनेमें सब एक हैं। यह सहिष्णुताका उत्कृष्ट नमूना है।

धर्ममें सहिष्णुता

प्रायः सभी धर्माचार्योंका दावा है कि वे मनुष्योंको उदार और प्रेमी बनाने आये हैं, मनुष्य-जातिके झगड़ोंको मिटाने आये हैं, परन्तु आश्चर्य है कि धर्म ही आजकल असहिष्णुताका गुरु बना हुआ है। मुल्ला, पंडित और पादरी शब्द जनूनीके पर्यायवाची समझे जाते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सब मुल्ला, पंडित या पादरी अनुदार ही होते हैं, परन्तु अधिकांशकी यही दशा है। मज़हबी लोग अपने बताये हुए रास्तेकी ओर उँगली उठाकर कहते हैं—'नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय', अर्थात् मोक्षका दूसरा मार्ग नहीं है, केवल यही

है, जो मैं बतलाता हूँ। फिर मुल्ला, पंडित और पादरी समझते हैं कि वे संसार-भरको मोक्ष दिलानेके लिए पैदा किये गये हैं। वे सबको ठोंक-पीट वैद्यराजकी तरह मुक्त पुरुष बनाना चाहते हैं। कोई जन्नतमें न जाना चाहेगा, तो वे पीट-पीटकर भेजेंगे। सब मज़हबोंमें यह धींगाधींगी मोक्ष भेजनेका विचार समानरूपमें विद्यमान नहीं है। हिन्दू-धर्ममें इसका अभाव था, परन्तु पहले जन्मकृत जात-पाँतकी प्रथाने, और फिर दूसरे मज़हबोंके टक्करने, उसे अनुदार दिया। ईसाईपन भी शुरूमें बहुत उदार था, परन्तु उसपर जो अत्याचार हुए, उन्होंने ईसाई प्रचारकोंके हृदयमें प्रतिहिंसाकी वासना पैदा की, और फिर शक्तिने प्रतिहिंसाका अवसर दिया। धीरे-धीरे ईसाई मज़हब अनुदारताका पुतला बन गया। इसलामका जन्म तलवारकी धारपर हुआ, इस कारण उसमें बलात्कारका थोड़ा-बहुत अंश पहलेसे था। शस्त्रोंकी कामयाबीने उस बीजको वृक्ष-रूपमें परिणत कर दिया। आश्चर्य यह है कि कुछेक बौद्ध राजा भी हुए, जिन्होंने अबौद्धोंपर अत्याचार करनेकी कोशिश की; फिर भी उनकी संख्या बहुत कम है। बौद्धोंपर अबौद्धोंने जो अत्याचार किये, उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। असहिष्णुता मज़हबका एक आवश्यक अंग-सा बन गई है। उन्नतिशील संसारमें मज़हबके विरुद्ध जो तूफ़ान पैदा हो रहा है, उसका बड़ा कारण यही है कि अनुदारता और असहिष्णुताके कारण मज़हब मनुष्य-जातिकी शक्ति और उन्नतिका शत्रु बना हुआ है।

मुझे मोक्ष चाहिए या नहीं—यह मेरी स्वाधीन इच्छापर निर्भर है। मुझे मज़हब चाहिए, या नहीं? चाहिए, तो कौनसा चाहिए? इन प्रश्नोंका उत्तर मैं स्वयं दे सकता हूँ। दूसरा मुझे समझाना चाहे, तो समझा सकता है, परन्तु निर्णय करना मेरे हाथमें है। केवल धर्म-भेदके कारण द्वेष करना मनुष्यतासे गिरा हुआ है, और बलात्कार द्वारा धर्मका प्रचार करना तो राक्षसताके नामसे ही पुकारा जा सकता है। 'जिओ और जीने दो' का असूल इस विषयमें सर्वोत्कृष्ट है। प्रत्येक व्यक्तिको मज़हबके मानने और न माननेका पूर्ण अधिकार है।

धर्म और मज़हब शब्दोंसे यहाँ हमारा अभिप्राय व्यक्तिगत सदाचार और उस क्रिया-कलापसे है, जो मत, या पन्थके नामसे पुकारे जाते हैं। सामाजिक सदाचार और समाजके संचालक नियमोंकी चर्चा दूसरे निबन्धमें करेंगे।

समालोचनाका अधिकार

सहिष्णुताका अभिप्राय हमने यह माना है कि हम अपनी तरह दूसरेके भी विचार और कार्य करनेके अधिकारको स्वीकार करें। इस अधिकारसे इनकार करनेवाली और उनपर आघात करनेवाली दो संस्थाएँ ऐसी हैं, जो असहिष्णुताके लिए बदनाम हो चुकी हैं—एक दीन, दूसरा राज्य। किसी मज़हबके चलाने या प्रचार करनेवाली संस्थाको दीन या 'चर्च' कहते हैं। सभी बड़े-बड़े पन्थोंके चर्च हैं। वे प्राय: समालोचनाके शत्रु हो सकते हैं। वे अपनी कड़ी आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकते। यदि उनके हाथमें क़ानून हो, तो वे उसे आलोचनाका गला घोंटनेके काममें लाना चाहते हैं, और यदि उनके हाथमें क़ानून न हो, तो गिड़गिड़ाकर, डराकर, धमकाकर राज्यको बाधित करनेका यत्न करते हैं कि वह आलोचनाके मुँहको बन्द करे। सदियों तक ईसाई चर्चने आलोचनाके द्वारोंको बन्द रखा, जिससे ईसाईपनकी सड़ाँद शुद्ध हवाके लगने और धूपके तपानेसे नष्ट न हो सकी। इसलाममें अब तक असहिष्णुता अपने उग्रतम रूपमें विद्यमान है। किसी समय कुछ हिन्दू राजाओंने बौद्धोंके विरुद्ध भी कड़ाईका व्यवहार करके असहिष्णुताका परिचय दिया था। हर्षकी बात है कि धीरे-धीरे आलोचनाका अधिकार सभी देशोंमें स्वीकार किया जाने लगा है। इसलामी दुनियामें गत वर्षोंमें जो परिवर्तन हुए हैं, उनसे आशा है कि उसमें भी मतभेद रखने और उसे प्रकट करनेके अधिकारको स्वीकार कर लिया जायगा।

आश्चर्य है कि जो राज्य प्रजाके अधिकारोंकी रक्षाके लिए स्थापित किये जाते हैं, वे प्रजाको सम्मति प्रकट करनेका पूरा अधिकार नहीं देना चाहते ! जहाँ तक समालोचक राज्यका समर्थक रहे, वहाँ तक वह समालोचनाका पूर्ण अधिकार रखता है, परन्तु ज्यों ही उसने विद्यमान शासनकी आलोचना की, त्यों ही वह क़ानूनके शिकंजेमें आया ! जो राज्य अपनी उदारताका डंका पीटते हैं, वे भी आलोचनासे ऐसे डरते हैं, जैसे गुलेलसे बन्दर ! रूस, इटली और भारतमें सर्वथा भिन्न-भिन्न प्रकारकी शासन-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, परन्तु राज्यसे मतभेद रखने तथा प्रकट करनेके अधिकार तीनों देशोंमें छीन लिये गये हैं ! भयानक-से-भयानक जंज़ीरें उन लोगोंकी ज़बानोंपर कसी जाती हैं, जिनसे आलोचनाका डर हो, और फिर भी कोई विद्यमान राज्यकी मौजके विरुद्ध सम्मति प्रकट कर ही दे, तो उसे कठोर दण्ड भुगतना पड़ता है। यह मनुष्यकी बर्बरताके नमूने हैं। हृदयकी निचली तहमें अब भी उसके जंगली आदमी छुपा बैठा है, जो शक्तिके प्राप्त होते ही निकल आता है।

मनुष्य-जातिकी मानसिक और सामाजिक उन्नतिके हितमें आवश्यक है कि उसे राज्य, पन्थ, समाज और व्यक्तियोंकी असहिष्णुताके अत्याचारसे बचाया जाय। मनुष्योंको 'स्वयं जीवित रहो, और दूसरोंको जीने दो' के सुनहरे असूलपर चलना चाहिए।

दो पंजाबी गीत

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

सन् १९२८ की बात है। मैं गर्मियोंमें मँसूरी गया हुआ था। स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी उस समय गुरुकुल-कांगड़ीमें थे। बहुत दिनोंसे मुझे उनके दर्शन नसीब न हुए थे। सोचा कि लौटती बार हरद्वार उतरकर गुरुकुल चला जाऊँ, उनसे मिल लूँ। चिट्ठी लिखकर अपनी इच्छा प्रकट की। उत्तर मिला—"आजकल कनखलसे कांगड़ी गुरुकुलका मार्ग दुर्गम हो जाता है। गंगा बीचमें पड़ती हैं। रास्तेमें तीन पुल थे, वे अब टूट गये। दो जगह नावसे पार होना पड़ता है, और तीन जगह पैदल पानी पार करना पड़ता है। कनखलसे कांगड़ी दो मील इधर जंगलमें है। पास ही बीहड़ वन है, पहाड़ है। यथासमय सूचना मिलनेपर मैं हरद्वार या कनखल आकर आपसे मिल लूँगा। फिर आप कांगड़ी गुरुकुल भी देखना चाहेंगे, तो मेरे साथ आ सकेंगे ; कुछ विशेष प्रबन्ध कर लिया जायगा। आशा है, इस यात्रामें आपसे भेंट अवश्य होगी। आनेकी सूचना अवश्य दीजिए।"

गरज़ यह कि मैं वहाँ न जाऊँ, आप ही रास्तेकी सारी कठिनाइयाँ झेलकर हरद्वार अथवा कनखल मुझसे मिलने आयेंगे ! मुझे यह स्वीकार न हुआ ; विरोध लिख भेजा, पर कोई असर न हुआ, गुरुकुल जानेकी इजाज़त न मिली। अन्ततः उनके आज्ञानुसार ही चलना पड़ा। तार दे दिया कि मैं अमुक तारीख़को हरद्वार पहुँच रहा हूँ।

बाढ़ आई हुई थी, गंगामें ख़ूब ज़ोरोंका प्रवाह था, पर पंडितजीने इसकी कुछ परवा न की। पैदल सारे कष्ट झेलकर आ पहुँचे। दुर्भाग्यवश मैं जिस ट्रेनसे चलनेवाला था, वह छूट गई। पंडितजीने ट्रेनमें मेरी बहुत तलाश की। अन्तमें जब मुझे न पाया, तो लौटकर कनखल पं० राजचन्द्रजीके घरपर जा टिके।

मैं देहरादून एक्सप्रेससे उतरकर रात्रिमें क़रीब १०-११ बजे कनखल पहुँचा। पंडितजी सड़कके किनारे कुरसी डाले प्रतीक्षामें बैठे थे। बड़े प्रेमसे

मिले। पं० रामचन्द्रजी भी वहीं थे। फिर उस वक्तसे बातोंका जो सिलसिला बँधा, वह तब तक समाप्त न हुआ, जब तक मैं उनसे विदा लेकर घरके लिए रवाना न हुआ। पं० पद्मसिंहजीको कविताएँ सुनानेका बड़ा शौक़ था। कविताएँ सुनाते समय आवेशकी-सी दशामें जा पहुँचते, एक समाँ बँध जाता, सुननेवाला कुछ कालके लिए मंत्रमुग्ध-सा हो जाता था। हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा संस्कृतकी कविताओंका उनके पास अक्षय भंडार था। उन दो-तीन दिनोंमें उनसे न-जाने कितनी कविताएँ सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पूज्य पंडितजीके साथ एक दूसरे सज्जन भी, जो कांगड़ी गुरुकुलके अध्यापक थे, आये थे। बड़े ही साहित्यिक और सहृदय व्यक्ति थे। अफ़सोस है कि उनका शुभनाम भूल रहा हूँ। श्रद्धेय शर्माजीके विशेष आग्रहपर उन्होंने दो पंजाबी गीत सुनाये। मुझे वे गीत बहुत पसन्द आये, और इस यात्राके पूरे एक वर्षके बाद मैंने पंडितजीसे उन गीतोंकी याचना की। पत्र लिखनेके एक सप्ताहके अन्दर ही वे गीत मेरे पास आ पहुँचे। पंडितजीने लिखा—"वे पंजाबी गीत भेज रहा हूँ, पर अफ़सोस है कि वह सुरीला गला इसके साथ नहीं भेजा जा सकता, जिसमें से निकलकर इन्होंने वह समाँ बाँध दिया था।"

कुछ दिनोंके बाद मुझे इन गीतोंकी स्मृति जाती रही, पर आज अकस्मात् एक काग़ज़ ढूँढ़ते वक्त स्वर्गीय पंडितजीका यह पत्र तथा उसके साथ भेजे हुए वे गीत पत्रोंके पुलिन्देसे बाहर निकल आये। इन्हें देखते ही उस कनखल-यात्राकी स्मृति जाग उठी, और स्वर्गीय शर्माजीकी उस सौम्य मूर्तिकी, जिसने सजल नेत्रोंसे मुझे विदा दी थी, यादने तड़पा दिया—

'हा हन्त हन्त क गतानि दिनानि तानि!'

ऊपर जिन दो पंजाबी गीतोंका उल्लेख है, वे शर्माजीको अत्यन्त प्रिय थे। आशा है, 'विशाल-भारत' के पाठक इस लम्बी भूमिकाके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

"घूँघट खोल सज्जणा! हुण शरमां केहियां रक्खियां वे;
जे जाणां तूँ ऐवें करनी, मैं मूल न लादी अक्खियां वे।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे।

दो नैना दा तीर बनाया, मैं आजिज दे सीने लाया;
घायल करके मुक्ख छपाया, ऐ घाताँ किन दस्सियां वे।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे।

जुलफ कुंडलने घेरा पाया, बिछुअर बणके डंग चलाया;
कह खाँ! तेरे की हथ आया, ऐ प्रीतां कित्थों सिक्खियां वे।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे।

मैं अयानी नेहड़ाकी जाणां, तिंजन बैठी मौजां माणां;
इश्क तेरा मैं नू सौंण न दें दां, मैं डर दी आख न सक्कियां वे।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे।

हस-रसके मैं लाइयां आवे, रोशन हुई नु झिड़कन मां पे;
ऐस इश्क दे बड़े सियापे, तू भुवा बैठा अक्खियां वे।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे।

मैं बन्दी दा जे तूँ साईं, कदीं ताँ आवीं फेरा पाईं;
मिहर करीं ते मुख दिखलाईं, मैं काग उड़ाँ दी थक्कियां वे।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे।

घूँघट खोल सज्जणा=हे प्यारे! घूँघट खोल दे, परदा उठा दे; हुण=अब; शरमां=लज्जा; केहियां=किसकी; रक्खियां=रखता है; वे=संबोधन है।

मैं आजिज दे सीने लाया=मुझ ग़रीब निर्बलकी छातीमें मारा; ऐ घातां किन दस्सियां वे=ये घातें तुझे किसने सिखाई हैं?

जुलफ कुंडलने घेरा पाया=सर्पाकार अलकावली; बिछुअर०=बिच्छू बनके डंक चलाया; कह खां०=कह तो सही, तेरे क्या हाथ आया? ऐ प्रीतां०=यह प्रीति कहांसे सीखी है?

मैं अयानी०=मैं भोली बाला; नेहड़ा०=स्नेह क्या जानूँ! तिंजन बैठी०=सखियोंके संग बैठी चर्खा कातती थी, और मौज करती थी; इश्क तेरा०=प्रेम तेरा मुझे सोने नहीं देता; मैं डरदी०=मैं डरती हूँ, (किसीसे) कह भी नहीं सकती।

हस-रस०=हँसी-खुशीमें मैं प्रेम लगा बैठी, अर्थात् प्रेमका रोग लगा बैठी; रोशन०=जाहिर होनेपर मा-बाप झिड़कते हैं; ऐस इश्क दे=इस प्रेमके; सियापे=रोना-कलपना; भुवा०=आँखें फिरा बैठा।

कदीं०=कभी आ, फेरा लगा; मिहर करीं०=मेहरबानी करके मुँह दिखला; मैं काग०=मैं (तेरी प्रतीक्षामें) काग उड़ाती-उड़ाती थक गई। (बड़ा ही सुन्दर भाव है!)

'बुल्लेशाह' नूँ ना तरसावीं, करीं अनाएत मैं बल आवीं ;
'शाह अनाएत' ! गलनाल लावीं, तेरी हो हो नच्चियां वे ।
हुण शरमां केहियां रक्खियां वे ।

(२)

केती हजाराँ आलम है तां तू केहड़ी, तां तू केहड़ी, कुड़े, नी ?
तेरे जेहियां लक्ख हजारां, वाह-वाह पट्टियां फिरन बजारां ;
इस फिरने सिर लक्ख पजारां, तां तू आये ई इल्लत सहेड़ी कुड़े ।
(तां तू०)

सुरमा पा मटकैनी हैं, तो तूँ सब दी वल्लुत कैनी हैं ;
मिरगां वांग रपैनी हैं, तेरे मगरेई फिरदा लैहेड़ी कुड़े ।
(तां तू०)

जद तू ओथों आई सी, तेरी सूरत-शकल इलाही-सी ;
तेरी चुनड़ी नूं दाग न स्याही-सी, हुण तैं आये ई चिक्कड़ लबेड़ी कुड़े । (तां तू०)

उमर गँवा लई मार पंज गिटड़ा, एह जगतैं नूं लगदा मिठड़ा ;
एथे रहण किसे दाण दिस्स दा, आ चढ़ 'हुसैना' दी बेड़ी कुड़े ।
(तां तू०)

बुल्लेशाह=बुल्लाशाह पंजाबका प्रसिद्ध सूफी साधु था, क़सूर (लाहौर) में उसकी समाधि है। इनायतशाह उसका गुरु था। स्वयं सखी-भावसे अपने प्रियतम—गुरु—को लक्ष्य करके ये पंक्तियां कही गई हैं ; ना तरसावीं=मत तरसाओ ; करीं अनाएत=कृपा करो ; मैं बल आवीं=मैं बलिहारी जाऊँ ; गलनाल लावा०=गले लगा लो ; मैं तेरी०=मैं तेरी होकर नाची हूँ ।

केती हजारां०=कितने हजार—असंख्य—सृष्टि है ; तां तू०=हे बालिके ! उसमें तू कौन है ?

तेरी जेहियां०=तुझ-जैसी हजारों-लाखों लड़कियाँ ; वाह-वाह०=मांग-पट्टी करके बाजारोंमें घूमती हैं ; इस फिरने०=इस फिरनेने ही लाखोंको (प्रेमकी अग्नि) में जला दिया ; तां तू आये०=तूने यह आफ़त अपने-आप ही सरपर ली है ।

सुरमा पा०=सुरमा डालकर मटकती है और सबकी ओर देखती है ; मिरगां वांग०=मृगा (मृगी) की तरह छलांगें भरती है ; तेरे मग०=तेरे पीछे घातमें शिकारी (प्रेमी, मौत) भी फिरता है ।

जद तूँ······चिक्कड़ लबेड़ी=जब तू वहांसे आई थी, तेरी सूरत-शकल ईश्वरके समान दिव्य थी, तेरी चादरपर न तो दाग था, न स्याही थी। अब तूने उसे अपने ही आप कीचड़में सान ली है ।

उमर गवाँ······गिटड़ा=कंकरके खेलमें तूने अपनी उम्र गँवा दी ; एह जग०=यह दुनिया तुझे प्यारी लगती है ; एथे रहण०=यहां किसीका रहना नहीं नजर आता ; आ चढ़०=इसलिए हे लड़की ! आ, हुसैन (एक फकीर कवि) के बेड़ेपर सवार हो जा, उसकी उपदेशरूपी नावपर सवार होकर संसार-सागरसे पार हो जा ।

कैसी भावपूर्ण उच्चकोटिकी कविताएँ हैं ।
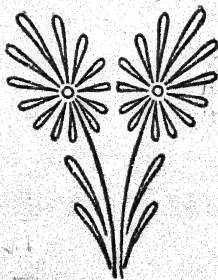
रक्षाबन्धन

श्री जगमोहन गुप्त

सावित्री अपने कसीदेपर ध्यान जमाये एक बूटी निकाल रही थी। उसकी सप्त वर्षीया बालिका राधाने पास आकर उसका आँचल पकड़ लिया और बोली—"हुँक्, हुँक्, माँ!"

मा—"क्या है, अलग क्यों नहीं बैठती?"

राधा—"युगुल अभी तक नहीं आया।"

सावित्रीने रोषपूर्ण दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए कहा—"क्या फिर तूने युगुल कहा?"

राधा—"हाँ, तो और क्या कहूँ?"

सावित्री—"तुझसे बीस बेर कह दिया कि उसे भैया कहा कर, वह तुझसे बड़ा है, कुछ छोटा नहीं।"

राधा—"हूँ, उसे कोई भैया कहता है कि मैं ही कहूँ?"

सावित्री—"भला, और कौन उसे भैया कहे?"

राधा—"क्यों, तुम कहो, पिताजी कहें, तब मैं भी कहूँगी।"

सावित्री हँस पड़ी और बोली—"पगली कहींकी।"

फिर किसीके पैरोंकी आहट सुनाई दी। राधाने तुरन्त कान खड़े किये, और ताली पीटती और "युगुल आ गया", "युगुल आ गया"—चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी।

युगुल आया, दो घंटेसे कुछ अधिक समय तक राधाके साथ खेलता रहा और चला गया, परन्तु हठीली राधाने उसे एक बार भी भैया कहकर नहीं पुकारा।

संध्या हो चली थी। सावित्री मिश्रानीको ब्यालूकी सारी व्यवस्था देकर पतिकी प्रतीक्षामें मौन बैठी थी। हठात् राधा आकर गोदमें लेट गई। सावित्रीने उसे अपनी छातीसे दबा लिया। राधाने उसके गलेमें बाहें डालकर कहा—"माँ!"

सावित्री—"हूँ।"

राधा—"युगुल अपने घर क्यों जाता है, यहीं क्यों नहीं रहता?"

सावित्री—"तू ही उसके घर जाकर क्यों नहीं रहती?"

राधा—"तुम भेजती ही नहीं हो।"

सावित्रीने उसे अपनी गोदसे उठाते हुए कहा—"अच्छा, तो जा, अभी जा, रह जाकर उसीके घर।"

सावित्री—"हाँ, उसके घर ऐसा मुफ्तका खाना रखा है न, जो सारा मुहल्ला तेरे साथ जाकर उसके यहाँ बस जाय।"

इतनेमें राधाके पिता बाबू वेणीप्रसाद आ गये, और बोले—"सुनती हो?"

सावित्री—"हाँ, क्या है?"

वेणी०—"मेरी तो बदली हो गई।"

सावित्री—"कहाँको?"

वेणी०—"अलीगढ़को।"

× × ×

इस घटनाके दो सप्ताह बाद एक दिन सावित्री रेलवे स्टेशनपर बैठी थी। बाबू वेणीप्रसाद तथा युगुलके पिता बाबू गयाप्रसाद सामानकी बिल्टी बनवा रहे थे, और युगुल राधाका हाथ अपने हाथमें लिये प्लैटफार्मपर टहल रहा था। कुछ मिनटोंके बाद ट्रेन आई। राधा अपने माता-पिताके साथ गाड़ीपर चढ़ गई। बाबू गयाप्रसाद वेणी बाबूसे हँस-हँसकर बातें कर रहे थे, परन्तु युगुल हतबुद्धिकी भाँति चुपचाप खड़ा राधाके मुखकी ओर देख रहा था। गाड़ीने सीटी बजाई, रेलवे इंजनने भी सीटी दी, और गाड़ी चल दी। देखते-देखते प्लैटफार्म साफ़ हो गया। बाबू गयाप्रसाद भी फाटककी ओर चल दिये, परन्तु कुछ दूर चल चुकनेके बाद, उन्होंने पीछे फिरकर देखा, युगुल वहीं खड़ा है। उन्होंने आवाज़ दी—"युगुल!"

युगुल चौंक पड़ा, और पिताकी ओर चल दिया।

बाबू गयाप्रसादके आफिस जानेका समय हो चला था। वे घर पहुँचते ही शीघ्रतापूर्वक भोजन करने बैठ गये, और पुकारा—"युगुल, चल जल्दी।"

युगुल नहीं आया। उन्होंने दो-तीन-चार आवाज़ें दीं, परन्तु युगुलकी कोई खबर नहीं मिली। युगुलकी मा पार्वती चिन्तित-भावसे इधर-उधर देखने लगी। एकाएक उसकी दृष्टि भीतरके कमरेकी ओर पड़ी। युगुल पीठ फेरे खड़ा था। उसने पुकारा—"युगुल!" परन्तु युगुल फिर भी नहीं आया। वह लपककर उसके पास गई। युगुल अपने दोनों हाथोंसे अपना मुँह छिपाये खड़ा था। पार्वतीने

हाथ पकड़ उसके मुँहपरसे हटा दिया, और उसे बलपूर्वक अपनी ओर घुमा लिया। युगुल ज़ोरसे रो पड़ा। साथ ही उन्हीं विकृत स्वरोंमें उसके मुखसे निकल पड़ा—"माँ, राधा चली गई !"

[२]

आठ वर्ष बाद एक दिन सायंकाल बाबू वेणीप्रसादने आफिससे घर आते ही एक लम्बी साँस ली, और बोले—"महाविपदके पश्चात् आज छुट्टी मंजूर हुई।"

सावित्री—"तो फिर अब कब चलनेकी सलाह है ?"

वेणी—"मैं स्वयं यहाँसे बाहर जानेके लिए व्याकुल हूँ। ओफ-ओह ! पाँच वर्ष बीत गये, जबसे न तो गयाप्रसादकी सूरत देखी और न अन्य मित्रोंकी ! नौकरी क्या हुई, कारावास हो गया। बस, दो-एक दिनमें ज़रा चार्ज दे दूँ, फिर चल दूँगा।"

एक दिन प्रातःकाल बाबू गयाप्रसादके द्वारपर एक गाड़ी रुकी, जिसपर से एक पुरुष और दो स्त्रियाँ उतरीं। पुरुष तो गृह-स्वामीकी भाँति मरदानी बैठकमें जा डटा, और दोनों स्त्रियाँ सीधी घरके भीतर चली गईं। बाबू गयाप्रसादके घरमें एक नवीन जीवनका संचार हो गया। चारों ओर एक धूम-सी मच गई। युगुल बगलके कमरेमें था, और कालेज जानेकी तैयारीमें व्यस्त था। घर-भरके हर्षावेगसे उत्पन्न कोलाहलकी ध्वनि उसके कानोंमें भी पड़ी। वह भी झटपट अपने कमरेके बाहर आ खड़ा हुआ, और एकाएक उसके मुखसे निकल पड़ा—"क्या, राधा !"

पास ही खड़ी एक त्रयोदश वर्षीया बालिकाने गरदन घुमाकर देखा। वह आनन्दावेगसे उछल पड़ी, और किलककर हँसती हुई बोली—"हाँ, युग……"

परन्तु शब्द उसके गलेमें अटक गये, पैर जहाँ-के-तहाँ बँध गये, नेत्र धरतीकी ओर झुक गये, और लज्जा उसके सारे शरीरसे फूट निकली। उसके मनमें कुछ ऐसा भाव उदय हुआ, मानो यह युगुल उसका वह पुराना युगुल नहीं है।

युगुलपर भी, राधाको एक दृष्टि-भर देखते ही, एक विचित्र विस्मरण-सा छा गया। उसे एक ठेस-सी लगी जान पड़ी। उसका हृदय नीचेकी ओर धसकने-सा लगा। वह स्तम्भित-सा हो गया। एकाएक उसके मनमें एक विचित्र संकोच—ऐसा संकोच उसने पहले कभी न अनुभव किया था—जाग्रत हो उठा। उसका भी सिर झुक गया, और मनमें ऐसा ही बोध हुआ, मानो यह राधा उसकी वह पुरानी राधा नहीं है।

राधाकी मा बोल उठी—"कहो बेटा युगुल, तुम अच्छे तो रहे ?"

युगुलकी विस्मृत बुद्धि कुछ ठिकाने आई। उसने तुरन्त उत्तर दिया—"हाँ, चाची, तुम्हारे आशीर्वादसे। कहो, तुम तो अच्छी रहीं ? आज बहुत दिनों बाद दर्शन मिले हैं।"

सावित्री बोली—"क्या करें बेटा, आत्मा तो बहुत तड़पी, परन्तु पराई ताबेदारीमें जब छुट्टी मिली, तब आये।"

पार्वतीने कहा—"आओ बहन, चलो, भीतर बैठें।"

युगुल बोला—"अच्छा, अब मैं भी कालेज जा रहा हूँ, लौटकर आपसे बातें करूँगा।"

चलते-चलते युगुलने, सबकी दृष्टि बचाकर, एक दृष्टि राधाके मुखपर डालनी चाही। सबकी दृष्टि वह बचा भी गया, परन्तु राधा पहले ही से उसकी ओर देख रही थी। दोनोंके नेत्र एक दूसरेके सामने-सामने हो गये। एक पल दोनोंने एक दूसरेको देखा, और दूसरे ही पल दोनोंकी पलकें पृथिवीकी ओर झुक गईं। राधा अपने पैरोंकी उँगलियाँ देखने लगी, और युगुल अपने कोटका दामन सम्हालने लगा।

युगुल कालेज चला गया, परन्तु उस दिन न तो किसी प्रोफेसरका लेकचर उसकी समझमें आया और न कोई डेमॉन्स्ट्रेशन ही।

[३]

केवल दो मास वहाँ रहकर राधा तथा उसके माता-पिता चले गये। इस घटनाको भी पूरे दो वर्ष बीत गये, परन्तु युगुलके हृदय-पटसे उस दिनकी स्मृति न गई। प्रत्येक दस-पन्द्रह दिनके अन्तरमें कोई-न-कोई ऐसा प्रसंग अवश्य आ जाता, जब उस दिनका ध्यान बिजलीके प्रकाशके समान उसके मनमें कौंध जाता, उसके हृदयमें एक प्रकारकी मीठी-मीठी टीस होने लगती, और उस समय, दस-पन्द्रह मिनट तक, सारा काम-काज भूलकर—यहाँ तक कि अपनी अवस्था और परिस्थिति भी भूलकर—निश्चेष्ट बैठ रहनेके अतिरिक्त और कोई उपाय न रह जाता।

अपनी पढ़ाईमें पहलेकी अपेक्षा अब वह अधिक परिश्रम करना चाहता, परन्तु बहुधा पढ़नेके समय कोई-न-कोई ऐसा

कारण आ खड़ा होना, जब उसकी दृष्टि बाह्यरूपसे तो पुस्तकपर पड़ी रहती, परन्तु मन बन्दूककी गोलीकी भाँति उसके हाथसे निकल जाता, और घटोंका मनन किया हुआ, क्षण-भरमें उसकी स्मृतिसे उतर जाता। अपनी मानसिक अवस्थामें इतना विकट परिवर्तन देखकर युगुल अत्यन्त व्याकुल हो उठता। कालेजकी परीक्षामें किसी प्रकार भी उत्तीर्ण हो सकना, उसे सन्दिग्ध जान पड़ने लगता। और यह सोचकर उसके दुखकी थाह न रहती कि इस प्रकार उसके पिताका पेट काट-काटकर उसकी शिक्षामें व्यय किया हुआ धन व्यर्थ हुआ जाता है।

एक दिन प्रात:काल युगुल इसी प्रकारके विचारोंके दलदलमें फँसा हुआ भूख तक खो बैठा। वह मातासे अस्वस्थताका बहाना करके बिना भोजन किये ही कालेज चला गया। उस दिन वह अपनी कुशंकाओंके महानदमें बड़ी बुरी तरह उब्रूब रहा था कि प्रिंसिपलने उसकी कक्षामें प्रवेश किया। समस्त विद्यार्थी सचेत और गम्भीर हो गये। प्रिंसिपलने कहा—"सरकारको रणक्षेत्रपर काम करनेके लिए कुछ डाक्टरोंकी आवश्यकता है, अत: मुझे अधिकार मिला है कि तुममें से जो इस अवसरपर सरकारका हाथ बँटाना चाहें, उन्हें तुरन्त नौकरी दिला दूँ। वहाँ जानेवालोंको कार्यशीलताका इतना बड़ा क्षेत्र मिलेगा कि उनके लिए शेष पढ़ाईकी भी आवश्यकता नहीं रह जायगी। उन्हें पासका डिप्लोमा भी अभी दे दिया जायगा। वेतन, भत्ता आदि सब मिलाकर ७००) मासिक मिलेगा। पद लेफ्टिनेन्टका होगा। सुविधाएँ और सम्भावनाएँ अनेक हैं। भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। बोलो, तुममें से कौन आगे आता है?"

अनेक छात्रोंके होठोंपर मुसकराहट प्रस्फुटित हो पड़ी। युगुलके हृदयमें एक नवीन प्रकाशका संचार होने लगा। प्रिंसिपल यह निमन्त्रण देकर अपने कमरेमें चला गया। युगुल बाहर निकलकर घासके लानपर टहलने लगा। उसके मुखपर एक ज्योति-सी झलकती चली आ रही थी, मानो उसके हृदयमें किसी विलक्षण देवी ज्ञानका आभास हो रहा हो। धीरे-धीरे उसकी गतिमें स्फूर्तिका संचार हुआ। नेत्रोंमें चमक और मुखपर कान्ति बढ़ती गई। एक बार वह रुका। उसने क्षणभर कुछ विचार किया, फिर प्रिंसिपलके कमरेकी ओर बढ़ा।

प्रिंसिपलने सिर ऊपर उठाते हुए कहा—"वेल युगुलकिशोर, कहो, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?"

युगुल—"कृपाकर आप मुझे बतायें कि स्वीकृति देनेके कितने समय बाद रणक्षेत्रमें जाना पड़ेगा?"

प्रि०—"तुरन्त।"

युगुल—"तो क्या आप मेरी भी सिफारिश कर सकेंगे?"

प्रि०—"नि:सन्देह।"

युगुल—"अच्छा, तो मुझे स्वीकार है।"

प्रि०—"ईश्वर तुम्हारे पुरुषोचित साहसका तुम्हें पुरस्कार दें।"

युगुल—"परन्तु एक बात बड़ी आवश्यक है।"

प्रि०—"वह क्या?"

युगुल—"बात इतनी गुप्त रहे कि मेरे घरवाले न जान पावें, नहीं तो मेरा जा सकना असम्भव हो जायगा।"

प्रि०—भला, इसका मैं क्या प्रबन्ध कर सकता हूँ, यदि दफ्तरका क्लार्क ही किसीसे कह दे?"

युगुल—"नहीं 'सर', कृपाकर इसका कुछ प्रबन्ध अवश्य कर दीजिए।"

प्रिन्सिपलने कुछ सोच-विचारकर उत्तर दिया—"अच्छा, तो क्लार्की भी मुझे ही करनी पड़ेगी......जाओ, यह फार्म भरकर ले आओ।"

उसने कुछ छपे हुए फार्म निकालकर युगुलके हाथमें दे दिये। युगुल उन्हें लेकर बाहर चला।

[४]

युगुलको मनोवांछित नौकरी मिल गई। उसका सारा प्रबन्ध ठीक हो गया। साथ ही उसे १५००) भी पेशगी मिले।

प्रात:कालका समय था। बाबू गयाप्रसाद अभी-अभी पूजा-पाठसे निवृत्त हुए थे। युगुलने उनके पास पहुँचकर, १०००) के नोट उनके हाथमें देते हुए कहा—"बम्बईके एक अस्पतालमें मेरी नियुक्त हो गई है। वेतन ५००) मासिक मिलेगा। सरकारने खर्चके लिए मुझे जो रुपये दिये हैं, उनमें से इन रुपयोंकी मुझे ज़रूरत नहीं है, अत: आप इन्हें रख लें।

बाबू गयाप्रसादका मुख आनन्दसे खिल उठा, परन्तु उनके मनमें एक आशंका जाग उठी। उन्होंने शीघ्रतासे

प्रश्न किया—"परन्तु इस नौकरीसे तुम्हारी पढ़ाईपर तो कोई बुरा प्रभाव न पड़ेगा ?"

युगुल—"बिलकुल नहीं, उलटा मुझे लाभ होगा।"

बाबू गयाप्रसादका मुख खिल उठा। वह हर्षावेशमें उठकर खड़े हो गये, और वहींसे ज़ोर-ज़ोरसे पुकारने लगे—"ओ, ओ, ओ युगुलकी मा ! अरे, ओ युगुलकी मा !"

युगुलकी माने अपने कमरेसे ही उत्तर दिया—"क्या है ?"

गयाप्रसादने पुनः उसी प्रकार हँसते हुए कहा—"अरे, चल जल्दी, देख, तेरा पूत कमाऊ हो गया है।"

पार्वती ठीक समझी नहीं, उसने पास आकर कहा—"क्या शोर मचा रहे हो ?"

बाबू गयाप्रसादने हँसते-हँसते सारी बातें उसे बता दीं, और वह नोट उसके हाथमें दे दिये।

"पार्वती हज़ारके नोटोंको लाखकी भाँति देखती हुई बोली—"इन्हें अलग रखूँगी, मेरे बच्चेकी पहली कमाई है। कल सत्यनारायणकी कथा कराऊँगी।"

उस दिन प्रातःकाल आफिस जानेके लिए कपड़े पहनते हुए बाबू गयाप्रसादने कहा—"युगुलकी अम्मा, इतनी मेहनत अब मुझसे होती नहीं है, अब मैं पेंशन ले लूँगा।"

× × ×

इस घटनाके चौथे दिन, बम्बईके एलेकज़ड्रा डाकके चौथे प्लैटफार्मपर, जब बालाकुप्पीने कर-कर शब्द करते हुए 'एरिनपुरा' जहाज़की सीढ़ी उठाई थी, मज़दूरोंने 'गैंगवे (Gangway) खिसकाई थी, पानीपर उतराते हुए ब्वायज़ (Buoys) के कड़ोंसे उनकी ज़ंजीरें खोल दी गई थीं, डाकपर जड़े लोहेके खूँटोंसे उसकी रस्सीके फंदे निकाल दिये गये थे, जहाज़की सबसे ऊँची छतपर खड़ा कप्तान अपने मुखमें हार्न लगाकर जहाज़के खलासियोंको ताबड़तोड़ आज्ञाएँ दे रहा था, जहाज़ अपना भोंपू बजाकर तथा लंगर उठाकर 'रोज़बड़' नामके 'पाईलट' की पथ-प्रदर्शितामें डाकका किनारा धीरे-धीरे छोड़ने लगा था, उस समय जहाज़के द्वितीय डेकके पिछले खंडमें ठीक किलोमिटर (Kilometer)के पास, जहाज़की रेलिंग पकड़े, फौजी वस्त्र पहने, नंगे सर एक नवयुवक खड़ा, निराशा और ममता भरी दृष्टिसे, बिछुड़ती हुई भूमिकी ओर देख रहा था। धीरे-धीरे जहाज़ जल-लोककी ओर कुछ और अग्रसर हुआ। बम्बईकी पर्वताकार हवेलियाँ, बाल-विनोदके छोटे-छोटे खिलौनोंके समान, दिखाई पड़ने लगीं, परन्तु वह नवयुवक उसी प्रकार टकटकी बाँधे उसी ओर देखता रहा।

जब जहाज़ अधिक दूर निकल गया और पृथिवीके किनारेका असली स्वरूप केवल क्षितिजकी रेखाके समान जान पड़ने लगा, तब उस युवकने अपनी जेबसे रूमाल निकालकर अपनी आँखोंको ढक लिया। वायरलेस केबिनके पास पहुँचकर उसने द्वार खोला, और भीतर चला गया।

× × ×

बाबू गयाप्रसाद अभी सोकर उठे ही थे कि उन्हें एक तार मिला। उन्होंने काँपते हुए हाथोंसे उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

एरिनपुरा जहाज़, १२-६-१९१५

"सरकारी आज्ञासे बसरा जा रहा हूँ। बिलकुल निश्चिन्त रहना। कोई भय नहीं। पत्रकी प्रतीक्षा करना।

—युगुल।"

गयाप्रसादका तारवाला हाथ निर्जीवकी भाँति उनकी जाँघपर गिर पड़ा। पार्वतीने समाचार सुनकर अत्यन्त वेदना भरे कंठसे कहा—"हाय !"

[५]

मैसोपोटामिया-प्रदेशके उत्तर-पश्चिमकी ओर, फरात नदीके किनारे, नसीरिया नगरपर अंगरेज़ी तथा तुर्की सेनाओंके मोरचे डटे थे। परन्तु गत दो माससे एक भी आक्रमण नहीं हुआ था, अतः वहाँ कुछ ऐसा वातावरण हो गया था कि शत्रुके सम्मुख और रणक्षेत्रके अग्रिम भागमें रहते हुए भी लोग निश्चिन्त घूमा-फिरा करते थे। उनके जीवनका कार्यक्रम कुछ ऐसी बँधी गतिसे चलने लगा था, मानो दिन-रातके २४ घंटोंमें से १८ घंटे वहाँके लोग अपनी परिस्थितिकी भयंकरता भूले-से रहा करते थे। परिस्थितिकी भयंकरताका जो कुछ आभास मिलता था, वह रातमें जब सर्चलाइटोंके तीव्र प्रकाशमें सामनेकी ओर देखना मानुषिक नेत्रोंकी शक्तिके बाहर था।

यहाँ पूरे दो ब्रिगेड पड़े थे। उन्हींमें वह ऐम्बुलेंस भी था, जिसमें सम्मिलित होकर युगुलकिशोर अथवा लेफ्टिनेन्ट किशोरने कार्यक्षेत्रमें प्रवेश किया था। उसे यहाँ पूरा एक वर्ष बीत चुका था। किसी समय यहाँ उसने भीषण अग्निपरीक्षा दी थी, किन्तु अब काम कम होनेके कारण

समय काटना कठिन हो रहा था। आजकल वह 'रेडक्रास गिफ्ट' में आये हुए नावेलोंकी पढ़ाईमें जुटा रहता था।

एक दिन 'गिफ्ट' का एक नया पार्सल आया। लेफ्टिनेन्ट युगुलने उसमें से एक नया उपन्यास लेकर पढ़ना आरम्भ किया। एकाएक उसने पुस्तक रख दी, और अपनी जेबसे एक पत्र निकालकर, उसपर अपनी दृष्टि जमाकर कुछ सोचने लगे। उसमें लिखा था—

"......नहीं कह सकता कि तुम्हें सुख होगा, अथवा दुख। राधाका ब्याह हो गया, परन्तु अभागी लड़कीके ब्याहके दो मास भी पूरे न हो पाये थे कि उसका पति लड़ाईपर चला गया। उसका अभी तक कोई पत्र नहीं आया। इसपर दूसरा वज्रपात यह है कि आज दस दिन हुए बेणी बाबूका हैजेसे शरीरान्त हो गया! राधा सूखकर काँटा हो गई है।"

कई मिनट व्यतीत हो गये, परन्तु इन पंक्तियोंपर से उसकी दृष्टि नहीं हटती। क्रमश: उसकी पलकें बन्द हो गईं, और उनसे आँसुओंकी दो बूँदें पत्रपर टपक पड़ीं। उसके मुखसे एक ठंडी स्वास निकली। फिर उसने उस पत्रको तह करके ऊपरवाले पाकेटमें रख लिया।

थोड़े दिन और बीते। केन्द्रीय डिपोंसे नवीन सेनाओं तथा बारबरदारीवालोंका आगमन आरम्भ हो गया। सारे रणक्षेत्रमें यह चर्चा फैल गई कि आक्रमणके दिन अब दूर नहीं।

एक दिन चिकित्सा-विभागकी नई टोली आई। उसके साथ एक नया डाक्टर भी आया। उन डाक्टर महोदयका नाम था लेफ्टिनेन्ट प्रकाश। लेफ्टिनेन्ट किशोरकी सहायतामें उसकी नियुक्ति हुई, और वह रहने भी किशोर-शिविरमें लगा। दोनों समवयस्क और समशिक्षा-प्राप्त थे। थोड़े ही दिनोंमें दोनों खूब घुल-मिल गये।

एक दिन प्रकाशने किशोरसे कहा—"भाई किशोर!"

किशोर—"हाँ, भाई!"

प्रकाश—"भला, एक बात पूछूँ, बताओगे?"

किशोर—"यदि बता सका।"

प्रकाश—"बात तो कोई 'प्राइवेट' ही है।"

किशोर—"तो भी पूछ देखो, हानि ही क्या? किन्तु यदि मैंने न बताया, तो बुरा न मानना।"

प्रकाश—"अरे नहीं, वाह! इसमें बुरा माननेकी क्या बात है? मैंने कई बार तुम्हें देखा है कि बहुधा तुम अपनी जेबसे एक पत्र निकालकर देखा करते हो, और देखते-देखते उसीमें तन्मय हो जाते हो। उस समय तुम्हारी सूरत ऐसी करुणाजनक हो जाती है कि मुझे बड़ा दुख होता है। क्या तुम मुझे बता सकते हो कि यह क्या बात है? सम्भव है, मैं तुम्हें कुछ सान्त्वना दे सकूँ।"

किशोर—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, यदि कुछ हुई भी, तो फिर किसी दिन बताऊँगा।"

प्रकाश—"मित्र, यदि कहीं दिल दिये बैठे हो, तो बता देना; क्योंकि मैं भी इसी व्यथासे पीड़ित हूँ—

'खूब निबटेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो!'"

किशोर—"अभी मैं विवाहित नहीं हूँ।"

प्रकाश—"दिल देनेके लिए विवाह आवश्यक नहीं।"

किशोर—"क्या अपने अनुभवकी बात कह रहे हो?"

प्रकाश—"मैं तो विवाहित हूँ।"

किशोर—"फिर दिलको कहीं और छोड़कर यहाँ दीवाना बननेके लिए क्यों आये?"

प्रकाश—"सच कह दूँ? तुम मुझे नीची दृष्टिसे तो न देखने लगोगे?"

किशोर—"सत्य उच्चताका लक्षण है। भला, किसकी मजाल है, जो इसके आश्रितको नीची दृष्टिसे देख सके।

प्रकाश—"तो भाई बात तो यह है कि मैं केवल अर्थ-लोभसे यहाँ आया हूँ, परन्तु मेरे हृदयमें सदा यह शंका लगी रहती है कि लोभसे विनाश होता है, कहीं मेरी भी दशा यही न हो।"

वाक्य पूरे होते-होते प्रकाशका गला भर आया, और नेत्र डबडबा आये। किशोरने मुसकराकर प्रकाशकी हँसी उड़ानी चाही, परन्तु उसके हृदयने इसकी स्वीकृति नहीं दी, और समवेदनाके पूरे चिह्न उसकी मुखाकृतिसे व्यक्त होने लगे। किशोरके मुखपर इन दो विरोधी भावोंके चिह्नोंका सम्मिश्रण देखकर प्रकाशने फिर कहा—"भाई किशोर, तुम मुझे कायर न समझना। यह न समझना कि प्रकाश मृत्युसे भय खाता है। मेरी आँखोंके ये अश्रु इस शरीरसे मोहके कारण नहीं उबल रहे—कदापि नहीं। मेरी सारी घबराहट और चिन्ताका कारण है उस सरल, अबोध अबलाका ध्यान, जिसके जीवनके समस्त सुख-दुखका अवलम्ब इसी शरीरपर निर्भर है, और जिसकी रक्षा करने तथा सुखी रखनेकी शपथ मैंने विश्वके समस्त देवताओंके सम्मुख, अभी थोड़े ही दिन हुए, ग्रहण की थी।"

प्रकाशके नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंका वेग और भी बढ़ गया। किशोरका हृदय भी स्थिर न रह सका। किशोरने प्रकाशकी बाँह थामते हुए कहा—"सावधान, प्रकाश सावधान, हृदयमें इतनी दुर्बलता किसलिए ? मृत्यु कोई हँसी-खेल नहीं है। जीवनमें भी तो कोई स्थिरता है, उसका भी तो कोई अस्तित्व है, तुम उसीपर विश्वास रखो।"

प्रकाश हिचकियां ले-लेकर रोने लगा, और कहने लगा—"किशोर, मैं क्या करूँ, मेरा हृदय किसी प्रकार सम्हलता ही नहीं। मुझे रह-रहकर उसका वह अश्रु-आच्छादित करुण मुख तथा उसके वे करुणापूरित भिक्षार्थी नेत्र याद आ जाते हैं, मेरी आँखोंके सामनेसे घूम जाते हैं, और हृदयमें एक ऐसी कसक उठती है, मानो कोई कटीली वस्तु उसमें बिंधकर रह गई हो।"

किशोरने प्रकाशकी बगलमें हाथ डालकर उसे सान्त्वना देनेके लिए अपनी छातीकी ओर खींचना चाहा। अचानक वालियोंके दगनेकी आवाज़ आने लगी। दोनों मित्र सचेत हो गये। क्षण-भर इस नादको ध्यानपूर्वक सुनकर किशोरने फुर्तीके साथ कहा—"अच्छा, मैं मोरचेपर जा रहा हूँ, तुम यहाँका काम देखना।" और लपककर बाहरकी ओर चल दिया।

प्रकाशने उसे रोकनेकी चेष्टासे आगे बढ़ते हुए कहा—"किशोर, किशोर, तुम......"

परन्तु किशोर निकल गया। प्रकाशने तम्बूकी छतकी ओर अपना मुख उठा और दोनों भुजाएँ फैलाकर कहा—"आह! किशोर, प्यारे किशोर, मेरे प्राणोंको जोखिमसे बचानेके लिए ही तुम स्वयं जोखिममें चले गये। तुम्हारी इस उदारताका बदला मैं कभी न चुका सकूँगा।"

[६]

पूरे तीन दिन और तीन रातें बीत गईं, परन्तु उस दिन जो भीषणता बन्दूकोंकी 'वाली'के साथ आरम्भ हुई थी, वह घटी नहीं, बराबर बढ़ती ही गई। गोलियोंकी सनसनाहट, तोपोंके गर्जन और बमके धड़ाकोंसे मनुष्य तो क्या, विशालकाय धरतीकी भी छाती काँप रही थी। काल विकरालतासे नाच रहा था। हताहतोंका ताँता बँधा था। सिपाहियोंकी टुकड़ियोंकी टुकड़ियां एक साथ कालके गालमें विलीन हो रही थीं। सिपाहियोंके शरीर फट-फटकर राईके समान छोटे-छोटे कणोंमें विभक्त होकर विलीन हो रहे थे। कानोंके परदे फटे जा रहे थे।

रातकी भयंकरताका कोई पारावार न था। अन्धकारमें छूटनेवाली तोपों और बन्दूकोंकी नलीसे निकली हुई लपकोंमें उनसे दगी हुई गोले-गोलियाँ ठीक अपने ही ऊपर आती-सी जान पड़ती थीं। समय-समयपर चित्र-विचित्रके राकेट (Rocket) छूटते और आकाशपर स्थित होकर रंग-विरंगा प्रकाश फैलाते थे, और आकाशपर विविध प्रकारके आकार-प्रकार बनाकर संकेतका काम किया करते थे।

ऐसे समय और परिस्थितमें ले० किशोर मोरचोंपर घूम-घूमकर आहतोंको प्रथम सहायता (Frist aid) पहुँचाता और ले० प्रकाशके पास भेजता जाता था। अकस्मात आकाशपर मँडराते हुए ऐरोप्लेनोंने कुछ संकेत किया। सिगनल-कम्पनीने विविध प्रकारसे झंडियाँ हिलानी आरम्भ कीं, और मोरचोंमें लगीं टेलीफोनोंकी घंटियाँ बजने लगीं। पूरी लाईन 'एडवांस' 'एडवांस'की ध्वनिसे गूँज उठी। सिपाही मोरचोंके ऊपर चढ़-चढ़कर शत्रुकी ओर दौड़ने लगे।

ले० किशोरने पीछे फिरकर देखा, उसका अस्पताल भी आगे बढ़ आया था। प्रकाश अपने घोड़ेपर सवार था, और किशोरका घोड़ा कसा-कसाया साथ आ रहा था। किशोर तुरन्त उसी ओर चल दिया, और अपने घोड़ेके पास पहुँचकर सवार हो गया। 'एडवांस' बराबर जारी था। शत्रुपक्ष बराबर भागता जा रहा था, परन्तु शत्रुपक्षकी वह टुकड़ी जो उसकी 'रिट्रीट' पर परदा डाल रही थी, बन्दूकों और मेशीनगनोंसे अविरल अग्नि-वर्षा कर रही थी। एकाएक ले० प्रकाशके मुखसे एक आह निकली, और वह लुढ़ककर घोड़ेकी पीठपर से ज़मीनपर आ गिरा। किशोर भी अपने घोड़ेसे कूदकर फुर्तीके साथ प्रकाशकी चिकित्सामें लग गया। गोली प्रकाशके फेफड़ेमें लगी थी।

लगभग १५ मिनटके पश्चात् प्रकाशका मुख फीका पड़ने लगा। किशोरके अविरल उपचारसे प्रकाशको कुछ होश हुआ। उसने किशोरकी ओर देखकर हाथसे अपनी जेबकी ओर संकेत किया, और फिर मूर्छित हो गया। किशोरने उसकी जेबमें हाथ डाला। उसमें दो पत्र मिले, जिन्हें उसने अपनी जेबमें रख लिया, और फिर उसके उपचारमें संलग्न हो गया। लगभग दस मिनट और बीते, परन्तु प्रकाशकी अवस्था बराबर गिरती ही गई। पाँच मिनट

और बीते। प्रकाशको दो-तीन गहरी हिचकियाँ आईं, और देखते-देखते उसके प्राण अनन्त वायुमें लीन हो गये! किशोरके नेत्रोंसे आँसुओंकी धार बह निकली।

अस्पतालका अधिकांश भाग बहुत आगे बढ़ गया था। किशोर कर्तव्यके अनुरोधमें प्रकाशका शव वहीं छोड़कर, अपने हृदयके दुखको हृदयमें ही छिपाये हुए, आगे बढ़ा। अपने घोड़ेको अत्यन्त तीव्र गतिसे भगाकर वह शीघ्र ही अस्पतालसे जा मिला। वहाँ पहुँचकर उसने अपनी जेबसे दोनों पत्र निकालकर उनका पता पढ़ा। एक पत्रपर लिखा था—"भाई युगुलकिशोर!" और दूसरेपर—"मिसेज प्रकाश, ७२ भाईसीवाँ, अमृतसर।" किशोरने अपने नामके पत्र खोल पढ़ना आरम्भ किया। पत्र इस प्रकार था—

"भाई किशोर,

मेरे मनमें भरे हुए सन्तापको तुम एक बार जान चुके हो। मेरी वह चिन्ता किसी प्रकार कम होती ही नहीं, और बार-बार वही प्रश्न मेरे सामने आ जाता है। कदाचित मैं न रहा? मैं फिर दोहराता हूँ कि मुझे अपनेपर मोह अपने लिए नहीं है। जिसने जन्म लिया है, वह एक न एक दिन मरेगा अवश्य, परन्तु आह! मेरी स्त्री—रूप और गुणोंकी वह प्रतिमा, सरलता, विश्वास और आत्म-समर्पणकी वह मूर्ति—जिसके—यदि मैं न रहा—भविष्यकी कल्पनासे मेरी स्वाँस रुक जाती है, और हृदय किसी गहरे गर्तमें गिरने लगता है। उसने कहा था, मुझे 'धन नहीं चाहिए, तुम ही मेरे धन हो; तुम मेरे पास बने रहो, यही बस है।' वह अनेक भाँतिसे रोई, बिलखी और गिड़गिड़ाई थी। उसने अपना आँचल फैलाकर मेरे यहाँ न आनेकी भिक्षा माँगी थी, परन्तु मैं—चाँदीके टुकड़ोंका दास—आह! उसकी क्या दशा होगी?

"मेरे नाते-रिश्तेदार—सगे-सम्बन्धी और मित्र-आशना—सब ही तो हैं, परन्तु ऐसा कोई नहीं, जिससे उस हृदयकी मणिके यत्नपूर्वक सम्हाले जानेकी आशा की जाय। आत्म-सेवा और आत्म-सुखके लिए तो सभी सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु इस प्रकार उसकी क्या दशा होगी, उसे कितना क्लेश होगा! यह सोचकर छाती फटने लगती है।

"भाई, तुम्हारी सहृदयता और उदारताने मेरे हृदयमें तुम्हारे लिए एक भक्ति उत्पन्न कर दी है। तुमपर मेरे विश्वासकी सीमा नहीं रही। जब तुमने मेरे प्राणोंकी रक्षाके लिए अपने प्राणोंको बार-बार जोखिममें डाला, तब—यदि मैं न रहा—उसकी रक्षा, जिसके लिए मेरे प्राण इस शरीरमें बने रहने आवश्यक हैं—तुम अवश्य करोगे। यह सोचकर—इसी विश्वासपर—यदि मैं न रहा, यह महान भार तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। तुम मेरी स्त्रीकी सहायता और रक्षा करना। तुम ही भरसक प्रयत्न कर उसे उचित पेन्शन दिला देना, और जिस सहायता और संरक्षताकी उसे आवश्यकता पड़े, वह सब तुम ही करना।

"एक बात और—बस, केवल एक बात। यद्यपि इस सम्बन्धमें मैं तुम्हारे विचार नहीं जानता, और न तुम्हारे गुरुजनोंके ही, तो भी यह अवश्य कह देना चाहता हूँ, और वह भी इस प्रार्थनाके साथ, कि जहाँ तक सम्भव हो, मेरी यह इच्छा भी पूरी करना। तुम सुन्दर, सुयोग्य, युवा और अविवाहित हो। यदि तुम मेरी स्त्रीके मनको इतना आकर्षित कर सको कि वह तुम्हारे साथ विवाह करनेकी इच्छुक हो जाय, तो तुम अवश्य उसके साथ विवाह कर लेना। निश्चय मानो, तुम्हें पछतावा कभी न होगा। यदि तुम ऐसा कर सके, तो तुम दोनोंका जीवन सुखसे कट जायगा, और मेरी आत्माको भी शान्ति मिलेगी। मेरे मित्र, मेरे सुहृद और मेरे भाई, तुम एक ऐसी महान आत्मा हो—तुम्हारे लिए मेरे हृदयमें इतना स्थान हो गया है कि यदि मैं न रहा, तो भी मेरी आत्मा सदा तुम्हारे चरण स्पर्श करती रहेगी।

—प्रकाश।"

पत्र पढ़ते-पढ़ते किशोरकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने लपेटकर अपनी जेबमें रख लिया, और रूमालसे अपने आँसू पोंछने लगा।

[७]

एक दिन प्रातःकाल बाबू गयाप्रसाद तख्तपर बैठे हुक्का पी रहे थे। पार्वती पास ही बैठी एक बक्सके कपड़े सम्हाल रही थी। एकबारगी वह बोल उठी—"तुम कुछ प्रयत्न नहीं करते।"

गया—"क्या?"

पार्वती—"यही युगुलको बुलानेका।"

गया—"लाट साहब तक तो अर्ज़ी भेज चुका हूँ, और क्या करूँ ? युगुलने लिखा है कि उसने भी छुट्टीकी अर्ज़ी दी है ।"

पार्वती—"तो बस, प्रयत्न पूरा हो गया, अब और कुछ नहीं करना है ? अर्ज़ियाँ भेज दीं, बस, छुट्टी हो गई !"

गया—"तो और क्या करूँ ? क्या किसीको लाठी मारूँ ?"

पार्वती—"नहीं, तुम कुछ न करो, यों ही चुपचाप रहो । क्या कहूँ, स्त्री-जाति हूँ, नहीं तो बता देती कि कैसे प्रयत्न होता है ।"

गया बाबूने कुछ रूखेपनसे कहा—"स्त्री-जाति हो, तो क्या हुआ ? अब स्त्रियाँ क्या नहीं करतीं ? कहाँ नहीं जातीं ? तुम भी जहाँ जाती हो, जाओ ; जो करती हो, करो न, मना कौन करता है ?"

पार्वती—"तुम्हारे बैठे मैं दौड़-धूप करूँ । संसार तुम्हें थूकेगा नहीं ? मैं तो तुम्हारी लाजको ही मरती हूँ ।"

गया—"अच्छा, यदि सवेरे-सवेरे लड़ना है, तो वैसी कह दो ।"

इतनेमें बाहरका द्वार खुला । दोनोंने उसी ओर झाँका । एक फ़ौजी अफ़सरने प्रवेश किया । गयाप्रसाद चकित-से कुछ आगे बढ़ आये । अफ़सर पास आकर बाबू गयाप्रसादके पैरोंपर झुक पड़ा । बाबू गयाप्रसादने एकबारगी उसे पकड़कर ज़ोरसे छातीसे चिपका लिया, और उनके अर्द्ध अवरुद्ध कंठसे निकला—"अरे दुष्ट ! ओ पाषाण हृदय !......बस, गला भर गया, आँखोंसे आँसुओंकी धार बह निकली ।"

पार्वती दौड़कर उस फ़ौजी अफ़सरसे लिपट गई और चीख पड़ी—"मेरा पुत्र, मेरा पुत्र !" उसने उसका मुँह पकड़कर अपने कंधेपर रख लिया, और धाड़ें मार-मारकर रोने लगी ।

रोनेकी आवाज़ सुनकर पास-पड़ोसके कुछ और स्त्री-बच्चे भी जमा हो गये ।

× × ×

सायंकाल भोजनके उपरान्त गपशप करते हुए बाबू गयाप्रसादने कहा—"युगुल, वेणी बाबू नहीं रहे, मैंने तुमको लिखा तो था न ?"

युगुल—"जी हाँ, यह बहुत ही बुरा हुआ । चाची अब कहाँ है ?"

गया—"चाची अपने मायके चली गई । बेचारी क्या करती ? यहाँ उसका अब कौन था ?"

युगुल—"क्यों, राधा कहाँ ब्याही है ?"

गया—"अमृतसरमें, पर वह भी तो विधवा हो गई !"

युगुलके पैरोंके नीचेसे धरती खिसक गई । वह घबराहटके साथ बोल उठा—"अरे, यह कब ?"

गया—"वह भी तेरे ही समान मूर्ख था । वह भी डाक्टर था । मैंने तुम्हें लिखा तो था कि वह लड़ाईपर चला गया । थोड़े दिन हुए सरकारसे तार आया कि वह मारा गया ।"

युगुलकी घबराहट और भी बढ़ गई । उसने बड़ी फुर्तीसे साथ प्रश्न किया—"उसका नाम क्या था ?"

गया—"चन्द्रप्रकाश ।"

युगुलके मस्तिष्कमें आश्चर्यकी एक आँधी-सी आ गई । वह अत्यन्त आवेगके साथ बोल उठा—"अरे, यह प्रकाश तो बराबर मेरे ही साथ रहा । यह मेरे साथ ही था, जब इसकी मृत्यु हुई । फेफड़ेमें गोली लगी थी । २० मिनटमें प्राणान्त हो गया । मैंने बड़ी चेष्टा की, परन्तु कुछ न कर सका ।"

बीचमें पार्वती एक ठंडी साँस लेती हुई बोल उठी—"बेचारी रधियाका सत्यानाश हो गया !"

युगुलके हृदयमें विचारों और आवेशोंका एक तूफान आ गया, और कई मिनट तक उसके मुँहसे एक बात भी न निकली । जब फिर अपनी वाक्शक्तिपर उसका शासन हुआ, तब वह बोला—"प्रकाश मरते समय मुझे राधाके लिए एक पत्र दे गया है, और उसकी देखभालका काम मुझको ही सौंप गया है ।"

गया—"अच्छा, बेटा तू जा, और उस दुखियाको ढाढस बँधा । हो सके, तो उसे यहीं लेता आ । साक्षात लक्ष्मी-स्वरूप गुण और रूप होते हुए भी बेचारीका भाग्य कैसा खोटा निकला !"

बीचमें पार्वती बोल उठी—"इसमें तो थोड़ा-बहुत दोष सावित्रीका भी है । उसकी मेरी बातें युगुलके लिए हो चुकी थीं, परन्तु यह अकस्मात यहाँसे चला गया, और उसने फिर इसकी प्रतीक्षा भी नहीं की ।"

अपनी माताके यह वाक्य सुनकर युगुलकी छातीसे एक मर्मान्तक हाय निकल पड़ी । वह सोचने लगा कि अरे, उसने इस प्रकार रणक्षेत्रमें जाकर यह क्या कर डाला ?

युगुलने सोच-विचारकर कहा—"अच्छा, तो मैं कल सवेरेकी गाड़ीसे जाऊँगा।"

पार्वती—"कल नहीं, त्योहारके बाद जाना।"

गयाप्रसाद बोले—"नहीं, इसे जाने दो। त्योहार उस अभागिनीके लिए भी तो है, जहाँ यह जा रहा है, इसके वहाँ पहुँच जानेसे कुछ तो उसका मन बहलेगा।"

[८]

युगलका सारा दिन गाड़ीपर बीत चुका था, और अभी सारी रात उसीपर बितानी थी। ११ बज चुके थे, अँधेरे जंगलके बीचमें डाकगाड़ी आँधीके समान उड़ती चली जा रही थी। गाड़ीके समस्त डब्बोंके यात्री या तो सो रहे थे, अथवा सोनेकी चेष्टा कर रहे थे, परन्तु सेकेंड क्लासके एक कम्पार्टमेंटमें अकेला वह अपनी सीटपर बैठा विचारोंकी गंगामें बहता चला जा रहा था। नींद अभी उसके पास फटकी तक न थी। वह सोच रहा था—'ठीक, ठीक यह राधाका ही प्रेम था, जिसके कारण मुझे इस प्रकार भागना पड़ा था, परन्तु अफ़सोस! मैंने अपनी इसी हरकतसे राधाको अपने हाथसे खो दिया, और साथ ही उसके भी असीम दुःखका कारण बना। ठीक है, मैं ही उसका कारण हूँ—कदाचित मैं न भागता······ प्रकाश······प्रकाश······मुझे इस नामसे अब वह प्रेम नहीं अनुभव हो रहा······सम्भवतः यह मेरे हितके लिए हुआ, जो वह मारा गया······अच्छा हुआ।'

यह विचार मनमें आते ही युगुलने अपनी जीभ अपने ही दाँतोंसे काट ली, और फिर सोचने लगा—'ऐ मनुष्यके दुर्बल हृदय! तू कितना नीच है; यदि ऐसा स्वार्थी हृदय सड़कर, कटकर, गलकर गिर जाय, तो भी कोई हानि नहीं। प्रकाश, प्रकाश, प्यारे प्रकाश! तुम मुझे क्षमा करना। मेरी इस अधोगतिके लिए तुम मुझपर तरस खाना और मुझे माफ़ कर देना। आह! प्रकाश, अब तुम मेरे सहयोगी प्रकाश अथवा मित्र प्रकाश नहीं, अब तो तुम मेरे वह प्रकाश हो, जिसने मेरी खोई हुई राधा मुझे दिखलाई है।'

उसने जेबसे प्रकाशका पत्र निकालकर उसकी यह पंक्तियाँ······"तो तुम अवश्य उसके साथ विवाह कर लेना······तुम दोनोंका जीवन सुखसे कट जायगा, और मेरी आत्माको भी शान्ति मिलेगी······" पढ़ीं, और उनपर विचार करने लगा—'कितना स्पष्ट लिखा है, मानो प्रकाश मेरे मनोभावोंको जानकर मुझे आज्ञा दे रहा हो······नहीं, नहीं, यह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। वास्तवमें उसने राधाका यथार्थ मोल जान लिया था, इसीलिए उसकी व्याकुलता इतनी पराकाष्ठाको पहुँच गई थी। मैं ऐसी भूल न करूँगा—कभी न करूँगा। एक बार अपनी राधाको पाकर फिर मैं उसे कभी न छोड़ूँगा। परन्तु एक बात······राधा विधवा है······ क्या मेरे माता-पिता मुझे ऐसा करनेकी अनुमति देंगे······ दे भी सकते हैं, और नहीं भी दे सकते हैं, परन्तु अब मैं दुधमुँहा बच्चा नहीं हूँ······जब मैं उनसे अपने मनका हाल खोलकर कह दूँगा, तब फिर वे 'नाहीं' न करेंगे। हाँ, मा ज़रा देरमें मानेगी······उसे समाजकी बड़ी चिन्ता रहा करती है। समाज भी तो विरोध करेगा—सब नहीं, तो कुछ लोग अवश्य हो-हल्ला मचायेंगे। मचाने दो। गोपी बाबूकी कन्याका विधवा-विवाह हो गया; शंकरलालकी बहनका विधवा-विवाह हो गया—समाजने उनका क्या बिगाड़ पाया? हूँ हूँ हूँ हूँ यह सब तो मैं सोच गया, परन्तु यह नहीं सोचा कि राधा स्वीकार भी करेगी। हाँ, करेगी, ज़रूर करेगी। मैं जानता हूँ कि वह मुझे बहुत प्यार करती है। फिर उसके पतिकी यह अन्तिम अभिलाषा और आदेश······सब ठीक है······आह! मुझे कुछ चैन मिलेगा। राधा मेरे जीवनकी एकमात्र चाह है, उसे पाकर मुझे इस जीवनमें और कोई अभिलाषा न रहेगी। आह! राधा, यदि तू ही मुझे कभी ख़बर दे देती कि तेरी माताका इरादा यह था, तो हम दोनोंके हज़ारों संकट बच जाते। आह! मैं भी कितना बड़ा मूर्ख हूँ। राधाके समान लज्जाशीला स्त्रीसे किन समाचारोंके सुननेकी इच्छा प्रकट कर रहा हूँ। नहीं, राधा, मेरी ही भूल है···मुझे क्षमा करना।'

इन्हीं विचारोंमें लीन युगुलकी आँख लग गई।

[९]

सवेरेके आठ बजे थे। स्त्री और पुरुषोंकी भीड़से अमृतसरके बाज़ार भरे हुए थे। युगुल एक ताँगेपर सवार उसीके बीचमें चला जा रहा था। ताँगेवाला 'टुरजा भाई टुरजा, टुरजा मुँडे टुरजा' की आवाज़ें लगता आगे बढ़ता चला जा रहा था। सहसा उसने एक सड़ककी मोड़पर अपना ताँगा रोक दिया। युगुलने पूछा—"क्या यही मकान है?"

ताँगेवालेने उत्तर दिया—''हाँ जी, यही है।''

युगुलने उतरकर द्वार खटखटाया। एक वृद्धाने पहले ऊपरकी खिड़कीसे झाँका, और फिर नीचे आकर द्वार खोलकर पूछा—''क्या है जी?''

युगुलने प्रकाशका पत्र वृद्धाके हाथमें देते हुए कहा—''यह तुम राधारानीको दे दो, और कह दो कि युगुल आया है।''

वृद्धाने बगलकी बैठक खोल दी, युगुलको उसमें बैठनेका आदेश किया और पत्र लेकर भीतर चली गई।

लगभग दस मिनटके पश्चात् वृद्धा एक बार फिर आई, और पूछा—''आप बाबू गयाप्रसादके लड़के हैं न?''

युगुलकिशोरने उत्तर दिया—''हाँ, कह दो कि मैं वही पुराना युगुल हूँ।''

वृद्धा भीतर चली गई। युगुल कमरेमें लगे चित्र देखने लगा। सामने उसे प्रकाश और राधाके चित्र लगे दिखाई दिये। वह उन्हें देखनेमें तल्लीन हो गया, और विविध प्रकारके विचार उसके मस्तिष्कमें घुमँड़ने लगे। उसका हृदयमें भरा हुआ राधाका प्रेम बड़े वेगके साथ उमँड़ आया। सहसा कमरेका भीतरी द्वार खुला। एक युवती अलंकारोंसे शून्य, केवल एक सफेद साड़ी पहने हुए, संगमरमरकी मूर्तिके समान उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

युगुल चौंक पड़ा, उसकी ज़बान बन्द-सी हो गई और शरीर बँध-सा गया। वह न तो कुछ बोल सका और न हिल ही डुल सका—चुपचाप बैठा रहा।

युवतीकी विशाल पलकें नीचेकी ओर झुकी हुई थीं। वह एक बार हिली और देखते-देखते उनसे आँसुओंकी झड़ी लग गई। युवती युगुलके पैरोंपर बैठ गई।

युगुलने सान्त्वनाके रूपमें अपना दाहना हाथ उसकी पीठपर रख दिया। युगुलके सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई। उसके शरीरमें एक प्रकारकी झंझनाहट सी होने लगी, और हृदय अत्यन्त तेजीसे धड़कने लगा। उसने अपना हाथ उठा लिया। युवतीने युगुलके दोनों पैर पकड़ लिये।

युगुलके मनमें एक भयंकर तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। उसकी इच्छा हुई कि यह उसे समेटकर उठा ले और अपनी छातीसे लगा ले। आवेश अपनी पराकाष्ठापर था, परन्तु युगुलके सभ्यता-ज्ञानने उसकी रक्षा की। उसके नेत्रोंसे भी आँसू बह निकले और कंठ रुधने लगा। वह बोला—''रोकर क्या करोगी, अब शान्ति धारण करो रा……''

परन्तु राधाका पूरा नाम उसमें मुँहसे न निकल पाया था और उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

राधाने उसी प्रकार रोते और हिचकियाँ मारते हुए बाएँ हाथसे युगुलका दाहना हाथ पकड़ लिया और अपना क्लान्त अश्रु-आच्छादित मुख उसके मुखकी ओर ऊपर उठाकर, अपनी बड़ी-बड़ी पलकें मिच-मिचाती हुई, बोली—''भाई…… भाई……मेरा अब इस संसारमें तुम्हारे सिवा कौन है? आज राखीके दिन तुम्हारी यह……अभागी बहन…… राखीका एक धागा बाँधकर तुमसे इस पहाड़ ऐसे जीवनकी संरक्षाका दान माँगती है।''

और उसने अपनी जाकेटकी जेबसे एक पीला धागा निकालकर युगुलकी कलाईमें बाँध दिया।
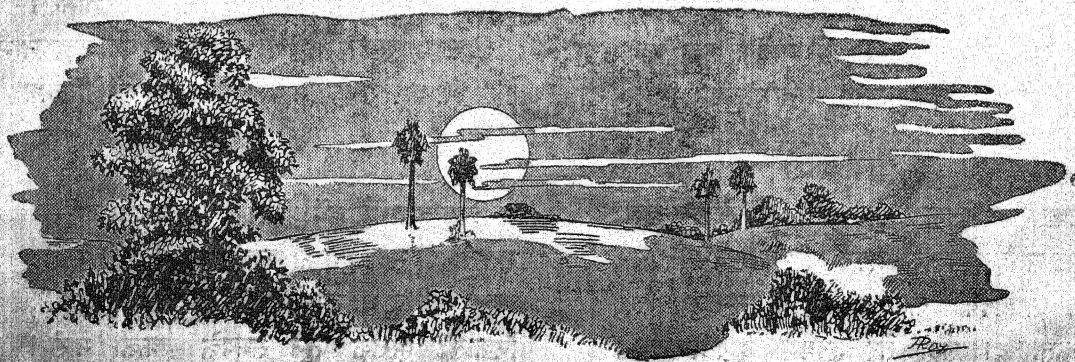
आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा

श्री श्यामसुन्दर खत्री

(१)

महासन्तापकी काली घटा घनघोर छाई है,
दृगोंने अश्रुधाराकी झड़ी अविरल लगाई है;
न कल पड़ती घड़ी-भरको विकलता यों समाई है,
अचानक धीरता सारी सुहृदयोंने गवाँई है।
अरे, ओ उस जगतके पान्थ! तेरी ही जुदाई है;
दशा हिन्दी-जगतकी आज यह जिसने बनाई है।

(२)

सवाँरा यत्नसे तूने विशद उद्यान हिन्दीका,
तुझे अभिमान हिन्दी-हेतु, तू अभिमान हिन्दीका;
न त्यागा एक क्षणको भूलकर भी ध्यान हिन्दीका,
किया गुण-गान हिन्दीका, बढ़ाया मान हिन्दीका।
न वर्णन योग्य है तेरा अतुल अनुराग हिन्दीका;
बिलखती हैं दिशाएँ—आज फूटा भाग हिन्दीका।

(३)

न था वह भाल तेरा, उच्चता वह आप शोभित थी,
न थे दृग, शील औ' संकोचकी वह मूर्ति जीवित थी;
न थी रसना, अमृत-मन्दाकिनी मानो प्रवाहित थी,
न था वह हाथ, वाणीकी सफल सेवा उपस्थित थी।
हृदय तेरा न था, वह तो गुणोंका एक आकर था;
अमित सद्भावनाओंका तरंगोत्तुंग सागर था।

(४)

छलकती थी रसिकता काव्यकी प्रतिरोमसे छल-छल,
लगन साहित्य-सेवाकी प्रकट प्रति साँसमें प्रतिपल;
बना सौहार्दकी कमनीय मट्टीसे सु-तनु निर्मल,
धधकता था सदा तेरे हृदयमें देश-प्रेमानल।
गुणोंने मिल स्वयं तुझको सजाया यों सवाँरा यों;
जगतके जीवसे हर बातमें तू हो न न्यारा क्यों!

(५)

अगम कविता-कलाका तू विवेचक था बड़ा भारी,
तुझे करतल-सुगत थी भावकी दुर्बोधता सारी;
पहुँच गंभीरतम तह तक, निरख बारीकियाँ न्यारी,
दिखाता तू रहा रस-आत्मिकाकी झाँकियाँ प्यारी।
प्रखर पाण्डित्यकी वह हाय! प्रतिभा आज है सोई;
न सच्चा काव्यका मर्मज्ञ अब तुझ-सा रहा कोई।

(६)

सदा सत्पात्रको सम्मान देना काम तेरा था,
हृदयको लख हृदयका दान देना काम तेरा था;
छिपी प्रतिभा रहे, पर जान लेना काम तेरा था,
रतनको धूलमें पहचान लेना काम तेरा था।
सचाई खोजनेमें खूब तेरी दृष्टि चोखी थी;
हृदयका जौहरी तू था, परख तेरी अनोखी थी।

(७)

सुविस्तृत थी विमल तेरे सुयशकी कौमुदी सुन्दर,
विबुध-जनमें रहा तेरा परमश्रद्धा-सहित आदर;
वरप्रद हाथ अपना शारदाने था धरा तुझपर,
नहीं पर था तुझे कुछ गर्व या अभिमान रत्तीभर।
सदय समुदार औ' था नम्र कितना वह बड़प्पन भी;
कि था तेरा कृपाभाजन, भला मुझ-सा अकिंचन भी।

(८)

न विस्मृति-गर्भमें डूबें किसीके कृत्य उपकारी—
सताती थी सदा तुझको यही चिन्ता बड़ी भारी;
सहन होती न थी तुझसे किसी सद्ग्रन्थकी ख्वारी,
निकालीं पुस्तकें तूने समयके चक्रकी मारी।
सुयशके हेतु अपने तो, जिसे देखो, वही पागल;
पराई कीर्ति-रक्षाके लिए पर तू रहा विह्वल।

(९)

नये भूषण विरच तूने किया श्रृंगार हिन्दीका,
रुचिर बहुमूल्य रत्नोंसे भरा भंडार हिन्दीका;
प्रदर्शक नव्य पथका बन किया उद्धार हिन्दीका,
रहेगा सर्वदा तेरा ऋणी संसार हिन्दीका।
सकल साहित्य-सेवीके गलेका हार ही था तू;
नहीं सन्देह, हिन्दीके लिए अवतार ही था तू।

(१०)

समुत्सुक थे सुकवि तव चित्तमें कुछ राह पानेको,
ललकते थे सभी तुझसे तनिक उत्साह पानेको;
समझते थे—मिली निधि, छत्रकी तव छाँह पानेको,
न आतुर कौन रहता एक तेरी 'वाह' पानेको?
सुकवियोंके लिए इस कालमें तू भोज विक्रम था;
विभव उन-सा न था तो क्या? हृदय उनसे नहीं कम था।

(११)

कभी सुन काव्य कोई, भावमें तल्लीन यों होना,
कि तनकी सुध, न मनकी सुध, न खाना है, न है सोना;
कभी सुनकर करुण कविता हृदयके धैर्यको खोना,
बहाकर अश्रु पहरों तक कलेजा थामकर रोना।
सुधी देखे, रसिक देखे, परख देखी, ललक देखी;
सुभावोन्मत्तताकी पर न तेरी-सी झलक देखी।

(१२)

सदा ही तू समझता पाप था परछिद्र-अन्वेषण,
किसीका जी दुखाना जानता ही था न तेरा मन;
जहाँ तक हो सका, तूने किया उपकार-व्रत साधन,
सभीका स्नेहसे करता रहा उत्साह-संवर्द्धन।
गुणोंपर दृष्टि तेरी थी, नहीं वह अवगुणोंपर थी;
विवेकी हंसकी-सी नीति तेरी लोकहितकर थी।

(१३)

कहीं अनरीति देखी, फिर न तू चुपचाप रहता था,
यही था रोग तुझमें—तू नहीं अन्याय सहता था;
खरी बातें अनूठे ढंगसे क्या ख़ूब कहता था,
कि तेरी भाव-गंगा बीच विद्वद्वृन्द बहता था।
न जाना बख़्शना तूने, कहे कोई तुझे निर्दय;
समालोचक-मुकुट तू था, बड़ा कट्टर, बड़ा निर्भय।

(१४)

अनय अविचार स्वेच्छाचारपर आक्रोश वह तेरा,
विकट हुंकार वह तेरी, तुमुल निर्घोष वह तेरा;
प्रकृत उद्गार निर्भयता भरा निर्दोष वह तेरा,
अटल आवेश वह तेरा, भयावह जोश वह तेरा।
मचाते एक हलचल एक आँधी-सी उठाते थे;
कठिन हठ औ' दुराग्रहके कलेजे काँप जाते थे।

(१५)

किसी विद्वानके संस्थानको लख सिर नवाता था,
कबरपर तो किसी कविकी सुमन लेकर चढ़ाता था;
कहीं ब्रजकी सुरजमें लोटकर आँसू बहाता था,
उठी कुछ भक्तिकी लहरी कि आपा भूल जाता था।
हृदय-मन-प्राणको तू प्रेम-वेदीपर चढ़ाता था;
अजब तेरी कहानी है, अकथ तेरी अमर गाथा।

(१६)

निठुर उस कालने दुष्कालमें हमसे तुझे छीना,
बिलखती छटपटाती हाय! जनता शोकमें लीना;
हमारी मातृभाषा हो गई शोभा-विभाहीना,
विकल हो बन्द कर दी आज वीणापाणिने वीणा।
अभागे हम, हमारी खो गई वह निधि अनूठी है;
अरे! साहित्यकी सौभाग्य-विधना आज रूठी है।

———

आजकलके कोल

श्री कालिकाप्रसाद मोहिते, एम० ए०

भारतके इतिहासके आरम्भमें ही कोलोंका ज़िक्र आता है। ये भारतके मूल निवासी हैं। आर्योंके भारतमें पदार्पणके समय इनकी स्थिति वही थी, जो आजकल मध्य-अफ्रिकामें रहनेवाले जंगली हब्शियोंकी है। सदियाँ बीत आनेपर भी आज इन कोलोंकी दशा क्या है, मैं इस लेखमें अपने व्यक्तिगत अनुभवसे पाठकोंको यही बतलानेका प्रयत्न करूँगा।

कोल बिन्ध्याचलकी पहाड़ियों तथा जंगलोंमें बसे हुए हैं। मिर्जापुरके दक्षिण-पूर्व आप सैकड़ों कोस तक चले जाइये, आपको प्रत्येक तीन-तीन चार-चार कोसकी दूरीपर इनके गाँव मिलते जायँगे। गाँवोंके समीप केवल एक या दो फर्लांगके बाद ही चारों ओर घनघोर भयानक जंगल नज़र आते हैं। इन गाँवोंमें उच्च वर्णके हिन्दुओंकी संख्या कोलोंकी संख्याकी ८ या १० फी-सदी होगी। गाँवके इन निवासियोंका मुख्य पेशा ढोरोंका पालना है। अन्न वे अपने खानेमात्रको ही उपजाते हैं। अधिकतर कोल अपनी जीविकाके लिए ढोरोंपर ही निर्भर रहते हैं।

रहन-सहन

कोल बाँस और पत्तोंकी झोपड़ियोंमें रहते हैं, अथवा कभी-कभी मिट्टीकी दीवारें खड़ी करके उनके ऊपर फूस छा लेते हैं। झोपड़ियों और घरोंमें तीन फीट ऊँचे एक दरवाज़ेको छोड़कर शुद्ध हवा आनेका और कोई द्वार या खिड़की नहीं होती। शिक्षा इनमें नाममात्रको भी नहीं है। साधारणतः इन जंगली गाँवोंमें पाठशालाओंका बड़ा अभाव है। जहाँ है भी, वहाँ ये अछूत होनेके कारण प्रवेश नहीं कर पाते।

जीविकाके साधन

९९ फी-सदी कोल इतने गरीब होते हैं कि इनके पास प्रतिदिन सपरिवार आधा पेट भोजन करनेको पर्याप्त अन्न भी नहीं रहता। इनकी जीविकाका मुख्य साधन गाँवके किसानोंके यहाँ हरवाही-चरवाही तथा अन्य खेतीके काम करना है। समूचे दिन-रातकी मज़दूरी एक सेर रब्बीका अथवा दो सेर ख़रीफ़का गल्ला होता है। इसके अतिरिक्त उन्हें सालमें १) नक़द और फ़सल तैयार होनेपर खलिहानमें भूसे-भूसीमें अन्नका जो अंश दुबा-छिपा रह जाता है, मिलता है। कोलोंकी संख्या अधिक और हरवाही-चरवाहीके काम कम होनेके कारण यह पद भी उन्हें बड़े भाग्यसे मिलता है। इस मजूरीमें इन्हें अपने बड़े कुटुम्बका भरण-पोषण करना पड़ता है। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि इनकी दशा कैसी शोचनीय होगी। काम न मिलनेके कारण वे बहुधा दो-दो तीन-तीन दिन लंघन कर काट देते हैं, या फिर वनस्पतिसे अपने पेटकी आगको शान्त करते हैं। बोआई-कटाईके समय तो इन्हें कामकी कमी नहीं रहती, किन्तु उसके बाद भादों और माघ जैसे महीनोंमें इन्हें काम ढूँढ़े नहीं मिलता। उस समय इनकी दशा वर्णनके बाहर है।

किसानोंके यहाँ काम करनेके अतिरिक्त कभी-कभी ये लोग लकड़ी काटकर भी कुछ पैसे कमा लेते हैं। जाड़ेके दिनोंमें जंगल बिक जाते हैं, और ठेकेदार इन्हीं कोलोंसे उन्हें कटवाते हैं। इस काममें गोंड़ और भीलोंको छोड़कर कोल-सी प्रवीण शायद ही कोई अन्य जाति हो। सघन-से-सघन और भयानक-से-भयानक वनको ये लोग कुछ ही दिनोंमें काटकर चिकना-चौरस मैदान कर डालते हैं। काम ठेकेपर या रोज़ाना मज़दूरीपर होता है। एक दिनकी मज़दूरी चार आना होती है। इस नक़द मज़दूरीकी सहायतासे ये अपना ऋण चुकाते तथा अपने परिवारका तन ढकनेके लिए वस्त्र ख़रीदते हैं। यदि कुछ बचा, तो गृहिणी या बच्चोंके लिए काँसेके कड़े-छड़े मोल ले लिये। जिस साल समीपवर्ती जंगलोंमें लकड़ीकी कटाईका काम न हुआ,

उस साल इनके दिन बड़े संकटसे कटते हैं। जाड़ेके दिनोंमें एक धोतीको छोड़कर इनके पास प्राय: वस्त्र कही जाने योग्य कोई वस्तु नहीं होती। रात काटनेके लिए ये लंगोट पहनकर धोती ओढ़ लेते हैं। ठंडके मारे ये बेचारे ठीकसे सो भी नहीं पाते। जंगलकी लकड़ी ही इनके शीत-निवारणका मुख्य सहारा है।

जंगलसे सहारा और प्रेम

कोलोंको जंगलसे केवल लकड़ी ही नहीं मिलती, बल्कि वह उन्हें पेट-पालनमें भी सहायता करता है। जंगलोंमें कुछ चीज़ें ऐसी हैं, जिन्हें प्रकृति देवीका बिना मूल्य दान कहना चाहिए। साधारणत: विन्ध्याचलके जंगलोंमें ऐसे पदार्थ बेर, महुवा, चिरौंजी, हर्र, बहेरा, खेखसा, ढाक, सिद्ध, साखूके पत्ते, टेसू तथा अन्य फूल इत्यादि हैं। प्रत्येक कोलको अपनी प्राप्तिमें से कुछ हिस्सा ज़मींदारको देना पड़ता है, बाक़ीको वे खा सकते हैं, या बेंचकर फ़ायदा उठा सकते हैं। उदाहरण-स्वरूप जंगलमें चिरौंजी तोड़नेके बदलेमें प्रत्येक कोल-परिवारको एक सेर चिरौंजी ज़मींदारको देनी पड़ती हैं। इसी तरहसे अन्य चीज़ोंके विषयमें भी ज़मींदारका भाग निर्धारित है। कोल अपना भाग कोसों चलकर शहरोंमें या गाँवमें ही बनियेके हाथ बेंच देते हैं। दोनों हालतोंमें इनकी चीज़ कौड़ीके मोल बिकती है। इसका मुख्य कारण इनकी अज्ञानता और ग़रीबी है।

जंगल इनके 'गाढ़े' दिनोंका मित्र है। जाड़ेके दिनोंमें जब कहीं ढूँढ़नेपर भी काम नहीं मिलता, तब बेर ही इनकी मेवा होती है। हफ़्तों अकेले बेर ही से सन्तोष करना पड़ता है। चैत या बैशाखमें दिन-भर बरगद या पीपलके पके गूलरोंको ही खाकर मस्त रहते हैं। इन्हीं दिनों ये महुवा बीन लेते हैं, और बरसात-भर इसी 'वैशाखी मेवा' को बड़े चावसे खाते रहते हैं। कभी-कभी तो महुवेकी खीरके लिए मुझे भी निमन्त्रित करते थे।

शिकार

कोल मांसाहारी होते हैं, और इन्हें जंगलोंसे बड़ी मुहब्बत होती है। शिकार खेलनेके ये बड़े शौक़ीन होते हैं, और निपुण भी वैसे ही हैं। बिना लाइसेन्स बन्दूक़ न रखनेके क़ानूनसे लाचार हैं, किन्तु तो भी गाँवमें एक या दो बिना लाइसेन्सके पुरानी चालकी बन्दूक़ें रहती हैं। इनकी सहायतासे वे शिकार खेला करते हैं। निशाना इनका बड़ा सच्चा होता है। मुश्किलसे वार चूकता है। कोलोंको जीविकोपार्जनके कार्यसे तनिक भी छुट्टी मिली कि लट्ठ और बन्दूक़ लेकर वनको चल पड़े। आमतौरसे या 'हाँका' से शिकार नहीं करते। ये जंगलके कोने-कोनेसे, साथ ही साथ जानवरोंके रहनेके स्थानोंसे भी, भलीभाँति परिचित होते हैं। वहाँ जाकर ये छिपकर इन्हें मार लेते हैं। गरमीके दिनोंमें किसी झरने या तालाबके किनारे बैठते हैं, और पानी पीते जानवरको अपनी गोलियोंका निशाना बनाते हैं। खरगोश, मोर आदिको तो ये घेरकर ही मार लेते हैं। लेखकको इनके साथ शिकारके अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं। यदि पाठकोंकी इच्छा होगी, तो इस विषयपर एक स्वतन्त्र लेख ही लिखा जायगा। जिस दिन ये शिकार मारकर लाते हैं, उस दिन 'कोलाने' में बच्चेसे बूढ़ा तक गद्गद दिखाई पड़ता है, और ये घर-घरसे मसाला इत्यादि इकट्ठे करते फिरते हैं।

सामाजिक स्थिति

यदि कोलोंको वर्तमान युगके 'ग़ुलाम' कहें, तो अनुचित न होगा। जो दशा डेढ़ सौ वर्ष पहले अमेरिका आदि देशोंमें ग़ुलामोंकी थी, वही दशा इनकी आजकल आप अपनी आँखोंसे देख सकते हैं। वास्तवमें ऊँची जातिके लोगोंने ही इनकी यह दशा कर रखी है। कोल हरवाहा किसी-न-किसी कारणसे अपने किसानका ऋणी हो जाता है। परिणामवश ऊपर बतलाई हुई मज़दूरीपर उसे किसानके यहाँ अपना जीवन बिताना पड़ता है। पेट-भर अन्न नहीं मिलता, क्योंकि रोज़ाना

मज़दूरीके गल्ले आदिमें से भी पुराने ऋणका ब्याज कटता रहता है। मुश्किलसे उसे जीवित रहने-भरको अन्न छोड़ दिया जाता है। अगर वह ज़रा गरदन उठाता है, तो निर्दयताके बर्तावके साथ-साथ नालिश और सज़ाकी धमकी दी जाती है। ये अत्याचार इस हदको पहुँचते हैं कि कोल आख़िर एक पीढ़ीसे अधिक गाँवमें नहीं रह सकता। ज़मींदार इत्यादिके अत्याचारोंसे पीड़ित, हो वे गाँव छोड़कर भाग जाते हैं, और किसी ज़बरदस्त ज़मींदारके यहाँ जाकर बस जाते हैं। अगर आसपासके ज़मींदारोंमें एकता हुई, तो यह भी मुमकिन नहीं। जिस ज़मींदारके यहाँ वह आश्रयके लिए जाता है, वह उसे पुराने मालिकके पास अपने सिपाहियों द्वारा पहुँचवा देता है, और वहाँ उसकी इतनी मरम्मत की जाती है कि भविष्यमें वह भागनेकी कोशिश तक न करे। अपना जीवन इन्हें यहाँ तक भार हो जाता है कि ये अपनी जन्मभूमि त्यागकर हज़ारों कोसकी दूरीपर चायबगानों या कोयलेकी खानोंमें अपने दुखी जीवनकी शेष घड़ियाँ गुज़ारने लगते हैं।

रीति-रिवाज

आजकल तीज-त्योहार, उत्सव और ब्याह-शादी ये सब पैसेकी शोभा हैं। कोलोंसे लक्ष्मी रुष्ट हैं, इस कारण इन्हें तीज-त्योहारसे भी कोई रुचि नहीं। सालमें नागपंचमी, मकर-संक्रान्ति और होलीको छोड़कर वे कोई उत्सव नहीं मनाते। नागपंचमीके दिन किसान इनकी दावत करते हैं। मकर-संक्रान्तिको स्नान तथा शरीरकी सफ़ाईपर ये विशेष ध्यान देते हैं। होलीको ये ख़ूब गाते, बजाते और नाचते हैं।

लड़केका मूँड़न तथा यज्ञोपवीत इनके यहाँ नहीं होता। ब्याह पहले पूर्णावस्था प्राप्त होनेपर हुआ करते थे, किन्तु लगभग दस वर्षसे बाल-विवाहकी ज़हरीली प्रथाने घर कर लिया है, और इन्हें जर्जरित कर रही है। दुष्परिणाम प्रत्यक्ष है। अनमेल विवाह, निर्बल संतान, व्यभिचार इत्यादि जो पहले सुने न जाते थे, अब प्रचलित हैं।

इनके यहाँ ब्याहमें ऊँची जातियोंकी तरह आडम्बर नहीं होता। ब्याहवाली रात्रिको सायंकाल बारात बधूके मकानको प्रस्थान करती है, और रातों-रात विवाहादि सब क्रिया समाप्तकर वरके मकानके लिए प्रस्थान कर देती है। कुल १५) या २०) में बड़ी सुन्दरतासे ब्याह निबट जाता है। केवल बारातियोंके लिए एक रात्रिका भोजन, वर या वधूके लिए कपड़े और पंडितजीके लिए दक्षिणाकी आवश्यकता है।

आज जब भारतके कोने-कोनेमें अछूतोद्धारकी लहर फैल रही है, क्या भारतके मूल निवासी कोलोंके भूखे नंगे बच्चे उच्च जातिके हिन्दुओंसे सहारेकी उम्मीद कर सकते हैं? शहरोंमें, क़स्बोंमें और बड़े-बड़े गाँवोंमें तो सभाएँ हुईं, और अछूतोंको दिलासा भी दिया गया, किन्तु दुर्गम जंगलके वासी कोलोंको पूछनेवाला अब भी कोई नहीं! यदि ये पंक्तियाँ कुछ कार्यकर्ताओंका ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकीं, तो लेखकका एक बहुत दिनोंका मनोरथ पूरा हो जायगा।

कवीन्द्रके साथ ईरानको

श्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय

बसन्त—बहार—के आगमनके साथ-साथ हम लोग शीराज़ पहुँचे थे। अर्क (राजभवन) के जिस कमरेमें कवीन्द्रकी ख़्वाबगाह थी, उसकी खिड़कीके नीचे सन्तरेके पेड़ फूलना शुरू हुए थे। बाग़में चिनारोंकी छटी हुई डालोंपर हरे-हरे नये पत्ते लहलहा रहे थे। नरगिस, गुलेमुहम्मदी (शीराज़ी गुलाब-जलवाला गुलाब), बनफ़्शा, अनारकली वग़ैरहके फूलोंसे क्यारियाँ और रविशें जगमगा रही थीं। हवा ख़ूब ठंडी थी, मगर सर्दीकी अधिकताकी तीक्ष्णता उसमें नहीं थी। बुलबुलोंने गज़लें अलापना शुरू कर दिया था। शहरके बाहर चारों तरफ़ पीले रंगके, घास-पातसे ख़ाली नंगे पहाड़ोंकी दीवारोंसे घिरे हुए सब्ज़ खेत हैं, और दूरीपर पर्वत-दुहिता 'दुख़्तरजान' की सफेद चोटी हीरे-जैसे तुषारका किरीट पहने हुए धूपमें चमचमा रही थी।

× × ×

जो शीराज़ बुलबुल और गुलाबकी लीलाभूमि था; जो शीराज़ साक़ीके प्यालोंसे ढुलकी हुई 'शीराज़ी'से सिंचा रहता था; जो शीराज़ गुलाबकी सुगन्धिसे सुरभित तथा सुरम्य महलों, मस्जिदों और कारवाँ-सरायोंसे सज्जित था; जो शीराज़ सोने, चाँदी, क़ालीन और लकड़ीकी कारीगरीकी भूमि था; जो शीराज़ हाफ़िज़ और सादीके हृदयोंका आनन्ददाता था; वह जगतविख्यात शीराज़, मुस्लिम साहित्यकी स्वप्नमयी स्वर्गपुरी शीराज़ आज कहाँ है? आज शाह चिराग़ (दरगाह) की रोशनी धीमी पड़ रही है, बाग़े-दिलकुशाकी हालत दर्दनाक है, और क़रीमख़ां ज़िन्दके बड़े अरमानोंसे रच-रचकर बनाया हुआ बाज़ारे-वकील आज जराजीर्ण और टुटपुँजही विलायती चीज़ोंसे भरा हुआ है। शीराज़की वह पुरानी शान-शौक़त, वह धन-सम्पदा अब इतिहासमें ही दीख पड़ती है। प्रसन्नताकी बात यही है कि ईरानके पुनर्जन्मके नवीन अध्यायमें शीराज़का नया जीवन भी आरम्भ हुआ है।

× × ×

ईसाकी सातवीं शताब्दीके अन्तमें ईरानमें मुसलमान-युगका आरम्भ हुआ। उसी समय मुहम्मद-बिन-यूसुफ थाकेफीके द्वारा शीराज़ नगरी फार्स प्रान्तकी राजधानीके रूपमें प्रतिष्ठित हुई। उसके बाद अपने साहित्य, शिल्प और कारीगरी इत्यादिकी बदौलत यहाँके नागरिकोंकी प्रतिभा, यश और ऐश्वर्य समस्त प्रदेश-भरमें परिपूर्ण हो उठा। ईसाकी अठारहवीं शताब्दीमें सफ़ावी राजवंशके पतनके बाद करीमख़ां ज़िन्दके शासनकालमें शीराज़ सम्पूर्ण ईरानकी राजधानी हो गया। इस करीमख़ां ज़िन्दने सफ़ावी राजाओंके पतनके बाद बहु-कालव्यापी राज-विप्लवके अनेकों जय-पराजयोंके उतार-चढ़ावको पार करके अपनी बुद्धि और बाहुबलसे प्रायः सम्पूर्ण ईरानपर अधिकार जमा लिया, परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि एक बहुत मामूली क़बीलेके सरदारसे बढ़कर समस्त ईरानका अधिपति बननेपर भी उसमें अहंकारका लेशमात्र भी नहीं आया। उसने सम्राट् या शाहकी उपाधि भी नहीं ग्रहण की, बल्कि अपनेको 'देशका वकील' (देशका प्रतिनिधि) कहकर ही सन्तुष्ट किया। उसने अपने देशकी बहुत भलाई की थी। शीराज़में सादीके मक़बरेकी मरम्मत, हाफ़िज़ियेका निर्माण, शीराज़के सुप्रसिद्ध बाज़ारे-वकीलका निर्माण और प्रतिष्ठा करीमख़ांके ही प्रयत्नोंका फल है।

अबसे पहले शीराज़ अरब, मुग़ल, तुर्क और तुर्कोमान आदि शत्रुओंके हमलोंसे अनेक बार विध्वंस हो चुका है। एक बार तो शीराज़की सुन्दरियोंके रूप-लावण्यने विजेताओंके क्रोधसे नागरिकोंकी रक्षा की थी! इन सब लड़ाई-झगड़ों, लूट-मार, ख़ून-ख़राबी और बग़ावत आदिसे त्रस्त शीराज़का पुनर्निर्माण

करीमख़ां ज़िन्दने किया। लेकिन यद्यपि ज़िन्दने शत्रुओंके क्रोधसे शीराज़की रक्षा तो की, मगर विधनाके क्रोधसे वह भी उसे न बचा सका। सन् १८१२ में १८२४ में और सबसे बढ़कर सन् १८५३ में ऐसे ज़ोरके भूकम्प हुए, जिन्होंने करीमख़ांके रच-रचकर बनाये हुए शीराज़को एकदम तहस-नहस कर दिया। इस भूकम्पके बाद बहुत रद्दी ढंगसे इस टूट-फूटकी मरम्मत और दुरुस्ती की गई। आजकल मौजूदा शाहके शासनमें कुछ नई ख़ूबसूरत सड़कें तैयार की गई हैं, साथ-साथ दो-चार अच्छे मकान भी बन गये हैं, जिनसे शहरकी रौनक कुछ-कुछ फिरी है। देशमें शान्ति स्थापित हो जानेसे कृषि और शिल्पमें भी धीरे-धीरे उन्नति आरम्भ हुई है।

शीराजके बाहरका दृश्य। यहाँ पुरुषोंकी पोशाक अब तक दूसरी तरहकी है

× × ×

मिट्टीकी नीची कच्ची शहरपनाह और सूखी हुई खाईसे घिरे हुए शीराज़ शहरकी परिधि प्रायः चार मील है। समुद्रसे अन्दाज़न ५,००० फ़ीट ऊँची घाटीमें स्थित होनेके कारण शीराज़की आबहवा पूरे साल-भर अच्छी रहती है। पहाड़ी चश्मोंकी बदौलत बाग़-बग़ीचे, फल-फूलोंसे लदे हुए, सुन्दर वृक्षोंसे भरे रहते हैं। अतीत गौरवके चिह्न-स्वरूप आज भी शीराज़में अनेक मस्जिदें, दरगाहें, पन्द्रह-बीस कारवाँ-सरायें और करीमख़ां ज़िन्दका बनवाया हुआ विशाल बाज़ार थोड़ी-बहुत जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें वर्तमान हैं। इनमें अताबेग जंगीकी बनवाई हुई मस्जिदे-नौ (ईसाकी तेरहवीं शताब्दीकी), करीमख़ां ज़िन्दकी मस्जिद जामा-ए-वकील (१७६६ ई०) और ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध इमामज़ादा सैयद अमीर अहमदशाह चिराग़की दरगाह विशेष उल्लेखनीय हैं। बाज़ारे-वकील क़रीब आध मील जगह घेरे हुए है। इसके भीतर हाट-बाट, गली-चौरस्ता, दूकान आदि सभी कुछ ऊँची डाँटकी नक़्क़ाशीदार छतसे पटा हुआ है। बाज़ारमें हर तरहकी जिन्सकी अलग-अलग पट्टियाँ हैं। मगर क़ालीन, लकड़ी और धातुकी नक़्क़ाशीकी चीज़ोंके सिवा दूकानोंमें जो कुछ दीख पड़ता है, वह प्रायः सबका सब विदेशी है—विदेशीमें भी अधिकांश रूसी है।

शीराज़की प्रसिद्धि विशेषकर उसके मदरसों और बाग़ोंके कारण थी। आज भी शीराज़ 'दाबर-उल-उलूम' (ज्ञानपीठ) के नामसे परिचित है। मदरसोंमें चार मदरसे बहुत मशहूर हैं। इनमें से 'मंसबियेह' को सन् १४७८ में सैयद सदरुद्दीन मुहम्मद दश्तक़ीने स्थापित किया था। 'हाशिमियेह' और 'निज़ामियेह' की स्थापना सत्रहवीं शताब्दीमें हुई थी। चौथा मदरसा 'मदरसा-ए-आग़ाबाबा' को करीमख़ां ज़िन्द और आग़ाबाबाख़ां मजिन्दरानी द्वारा स्थापित हुआ था। बाग़ोंमें बाग़-ए-जहाँनुमा, बाग़-ए-नौ, बाग़-ए-तख़्त-ए-काजर और बाग़-ए-दिलकुशा आदि प्रसिद्ध हैं। सादीकी क़ब्र बाग़-ए-दिलकुशाके पास है, और हाफ़िज़की समाधि—हाफ़िज़ियेह—शहरके उत्तरी भागमें है।

शीराज़से दो मील उत्तर पहाड़के एक दर्रेसे समूची

घाटी पड़ती है। इस जगहका नाम है 'टांग-ए-अल्लाहो-अकबर' (ईश्वर अति महान घाट)। इस नामका कारण यह है कि इस दर्रेसे पथिकको शीराज़ नगर और समूची उपत्यकाका ऐसा अपूर्व सौन्दर्य दिखाई देता है कि उसके मुखसे सहसा 'ईश्वर अति महान है'—ये शब्द निकल पड़ते हैं।
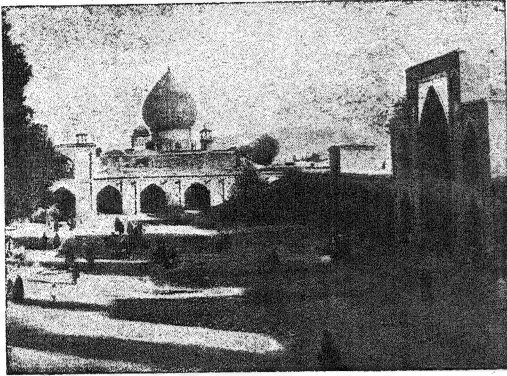
शीराजकी मस्जिद

पिंगल और धूसर वर्ण पर्वतमालासे घिरे हुए सब्ज़ खेत, बेशुमार, सीधे, ख़ूबसूरत और शानदार दरख़्त, बीच-बीचमें पीली ईंटोंके घरोंके मुहल्ले, नीली पालिश किये हुए खपड़े (टाइल्स), धूपमें चमचमाते हुए गुम्बद, कहीं-कहींपर नक्काशीदार विराट डाटवाली छतोंका अस्पष्ट आकार—इन सबके विचित्र सम्मिश्रणसे शीराज़का दृश्य इतनी दूरीसे अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है।

× × ×

दो दिन गवर्नरके महलमें रहकर हम लोग बाग़-ख़लीलिये नामक एक बग़ीचेवाले मकानमें उठ आये। गवर्नरके महलमें राजसी भोजन करने और शाही हम्माममें नहानेका जितना आराम था, राजकर्मचारियोंकी भीड़ और सन्तरी तथा पहरेदारोंकी निगरानीमें हर वक्त वज़आ-क़तअ-दुरुस्त और अदब-क़ायदा ठीक रखते-रखते उतनी ही हर वक्त नाकमें दम थी। हर क़दमपर 'आक़ा ब फर्मे' (हुज़ूर क्या हुक्म ?), 'नाश्ता-हाज़िरे' (नाश्ता हाज़िर है), 'नहा हाज़िरे' (दोपहरका खाना हाज़िर है), इत्यादि सुनते-सुनते और भोजनके समय चारों तरफ़से तस्लीम-आदाब और टूटी-फूटी फ्रेंचमें बातचीत करनेकी कोशिश करते-करते हम लोग अत्यन्त ऊब उठे थे। बग़ीचेवाले घरमें आनेपर इन सब दिक़्क़तोंसे नजात मिली। अब शहर घूमने और देखने-सुननेका मौक़ा मिला। मकानके मालिक बड़े मिलनसार ख़ूबसूरत नौजवान थे।

इस देशके बाग़ोंमें पेड़ोंकी संख्या ही ज़्यादा होती है। फलों, पत्तोंकी ख़ूबसूरती और छायाके लिए दरख़्त लगाये जाते हैं। पेड़की हरएक डाल—टहनी—बहुत हिफ़ाज़तसे छाँटी-सँवारी जाती है। बाग़के भीतरसे पानीका चश्मा बहता है। दो-एक ख़ूबसूरत पक्के छोटे तालाब या हौज़ भी होते हैं।
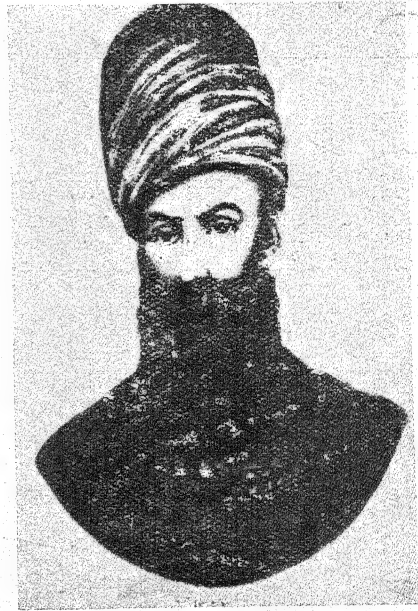
करीमख़ां जिन्द

बीच-बीचमें दो-चार जगह फूलोंके तख़्ते या क्यारियाँ रहती हैं, जिनके फूलोंका रंग सम्पूर्ण बाग़की सजावटमें एक प्रकारका सामंजस्य ला देता है, मगर बाग़की भीतरी शोभा बाहरसे देखना सम्भव नहीं, क्योंकि सभी बाग़-बग़ीचे मिट्टीकी ऊँची दीवारोंसे घिरे रहते हैं।
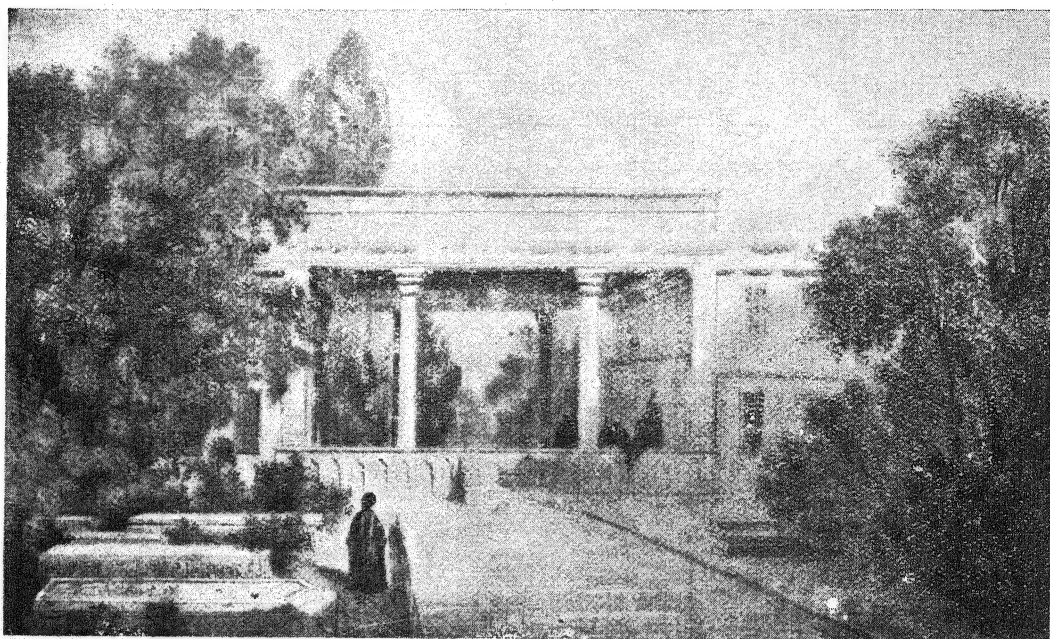
हाफ़िजियेह

शीराज़में श्रीयुत अब्दुल्लाखां नामक एक नये हिन्दुस्तानी बन्धुसे मुलाक़ात हो गई। इसके बाद शीराज़की सैर और देखना-सुनना सब उन्हींकी कृपासे हुआ। श्री अब्दुल्लाख़ांका घर गुजरातमें है, मगर उन्होंने बहुत दिनों तक कलकत्तेमें क़ासिमबाज़ारके स्वर्गीय महाराज मुनीन्द्रचन्द्र नन्दीके पास काम किया था, और उसी दाता कर्णकी सहायतासे यहाँ विदेशमें आकर अब अपना निजका रोज़गार (मोटर चलानेका) चलाते हैं।

शीराज़के हाट-बाटमें स्त्री-पुरुष समानरूपसे घूमते फिरते हैं। यहाँपर पर्देका रिवाज मौजूद है, मगर हिन्दुस्तानी मुसलमानोंकी बनिस्बत बहुत कम। औरतोंके दलके दल पैदल और खुली गाड़ियोंपर घूमते नज़र आते हैं। हाँ, उनके सिरसे लेकर ऐंडी तक—मुँह छोड़कर—सारा शरीर उसी एक काली चादरमें लिपटा रहता है। यह चादर भौंहोंके ऊपर काले फीतेसे बँधी रहती है, उसी फीतेके साथ अटका हुआ घोड़ेकी दुमका बना हुआ एक लम्बा आयताकार जाल, बनियेकी दूकानके टट्टरकी भाँति, लटका रहता है। इस जालके नीचे भौंहें, नेत्र, मुख, नाक, ओठ—सभी कुछ दिखाई पड़ता है। केवल माथा और ठुड्डी ढकी रहती हैं। शीराज़की ललनाएँ अपने सौन्दर्य और रसिकताके लिए मशहूर हैं। नये शाहके शासनमें यद्यपि अनेक बातोंमें बहुत उन्नति हुई है, मगर पोशाक-पहनावमें बड़ा बेतुका एकसापन हो गया है। एक तो सभी औरतें उसी काली चादरमें लिपटी रहती ही हैं, दूसरे अब नये क़ानूनके मुताबिक़ हर आदमी एक ही ढंगकी पहलवी कुलाह (फ्रांसके सैनिकोंकी केपीकी भाँति) और कोट-पतलून पहननेके लिए मजबूर हैं। परिणामस्वरूप देशसे कपड़ोंकी बहार और वेश-भूषाकी विचित्रता एकदम ही ग़ायब हो गई है। बड़ी सड़कोंके किनारे-किनारे दूकानोंमें भी विदेशी ढंगकी छतें पड़नी शुरू हो गई हैं, इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि इस देशके बाहरी आकार-प्रकारका वैचित्र्य भी धीरे-धीरे लोप हो जायगा।
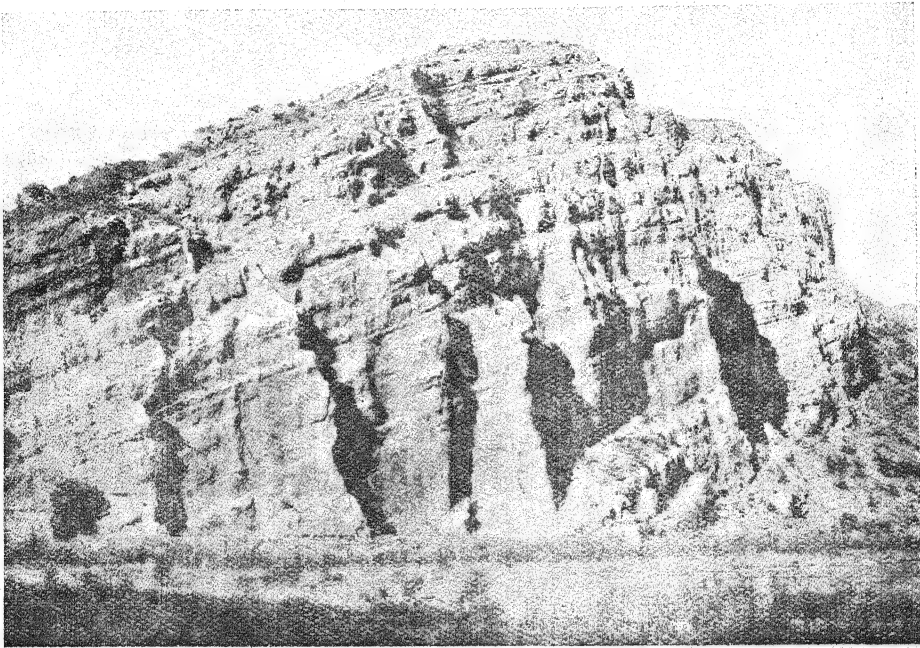
नक्श-ए-शापुर-चित्रावलीके स्थानका प्राकृतिक दृश्य

शीराज़में पहले-पहल ईरानी बुलबुल और ईरानी संगीतका परिचय मिला। बुलबुल हार्टस पर्वतके कैनरी (Canary) पक्षीकी भाँति सीटी देकर बोलती है, मगर सुर उससे कहीं ज़्यादा मीठा और झंकार बहुत ज़्यादा होती है। यहाँका गाना तो हमारे कलावँतोंकी तरह कुश्ती लड़ना है,—तबलचीके साथ तालयुद्ध, कर्कश गिटकरी ; गमकका फेर बहुत ज़्यादा नहीं होता। सुर प्रायः सभी करुणरसात्मक होते हैं। साधारण तौरपर प्रत्येक गान तीन भागोंमें विभक्त रहता है। पहले भागमें केवल सुर खींचकर गान होता है, और प्रत्येक पदके अन्तमें लम्बा योडेलिंग (स्विस और टिरोलियोंकी तरह) होता है। दूसरा भाग ह्रस्व, दीर्घ प्लुत स्वरोंमें मन्त्रोचारणकी भाँति होता है, और तीसरे भागमें ख़ूब भावके साथ करुण गान होता है, जिसमें सुर-स्वर, तान और लयके बहुत फेर होते हैं। मगर गमक और गिटकिरीकी जगह योडेलिंग (तीन-तीनके बाद सुरोंके द्रुत फेर ; जैसे—रे,ग,म,—म,ग,रे) बीचबीचमें हमारे कानोंको कर्कश मालूम पड़ता था। प्रथम अंश—माहुर—हम लोगोंको ज़्यादा भला मालूम हुआ। तालकी बला इन लोगोंको ज़्यादा नहीं सताती। ताल और पद्धतिको छोड़ देनेपर इन लोगोंके प्राचीन सुर और हम लोगोंके प्राचीन सुरोंमें बहुत-कुछ समता है। तेहरानमें एक सज्जनने बेहलेपर प्राचीन ईरानी "हुमायूँ" सुर सुनाया था। मैंने कभी यह कल्पना भी न की थी कि इस सुदूर फ़ारस देशमें भी भैरव रागका इतना सुन्दर आलाप सुननेको मिलेगा।

× × ×

सादीके मक़बरेके बाग़में कवीन्द्रको नागरिकोंकी ओरसे अभिनन्दन देते समय ईरानी साहित्य-परिषदके सभापति श्रीयुत फर्रुख़ीने (ईरानके वैदेशिक मन्त्रीके भाईने) अपने व्याख्यानमें बतलाया था कि आर्य-रक्तके सम्बन्धसे ईरानी और भारतीयोंमें आत्मीयता है, और इसी कारणसे कविके गौरवमें ईरानका भी गौरव है। यह बात कहनेके लिए शीराज़ ही उपयुक्त स्थान है,
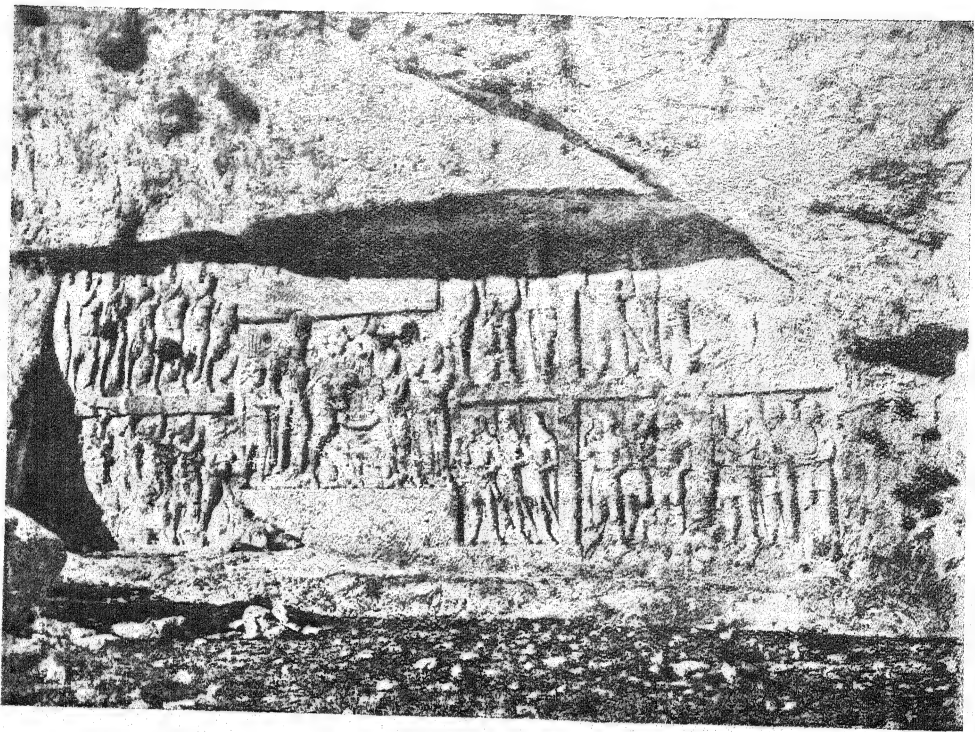
नक़्श-ए-शापुर। राजा शापुर सम्राट् सिरियाडिसको रोमन सेनाका अधिपति कर रहे हैं

क्योंकि सेमेटिक मुस्लिम धर्ममें जिस परिमाणमें ईरानमें आर्यभाव संचारित हुए, उनमें सादी और हाफ़िज़की बहुत-कुछ कीर्ति है। इसके अलावा शीराज़ आर्य-ईरानके प्रसिद्ध ध्वंसावशेषों—पार्सिपोलिस, शापुर, पासारगाडाई नक़्श-ए-रुस्तम इत्यादि—से घिरा हुआ है।

इतिहासके आरम्भिक उषाकालमें आर्योंकी पितृभूमि कहाँ थी, इस बातका अभी तक निर्णय नहीं हो सका। उत्तरी ध्रुवप्रदेश, बाल्टिक समुद्र, कैस्पियन समुद्रका किनारा, आर्मीनिया, कोहकाफ (काकेशश पर्वत), एशियाई रूसके दक्षिणमें घासके मैदान (स्टेपीज़) इत्यादि स्थानोंके सम्बन्धमें नाना व्यक्तियोंमें नाना प्रकारके मतोंको लेकर अब तक तर्क-वितर्क चल रहा है। किन्तु भारतीय आर्योंकी देव-भूमि अथवा वेन्दिदाके "आर्यानेम व्याजो" कहाँ थी, यह अभी तक स्थिर नहीं हुआ है। पारसियोंकी पुरानी किम्बदन्तीके अनुसार आर्योंका आदि स्थान "आर्यानेम व्याजे" है। सर्दीकी अधिकताके कारण आर्य लोग इस भूस्वर्गको छोड़कर सुवदा और मुरु देशमें (बोख़ारा और मर्व ?) आ बसनेके लिए बाध्य हुए। वहाँसे वे क्रमशः बाखधि (बलख़), बाखधिसे निशय, हारयू (हिरात) और वैकेरेता (काबुल) की ओर पहुँचे। इसी समयके बादसे ही आर्य-जाति दो भागोंमें विभक्त हो गई। एक भाग पूर्वकी ओर आरावैती, हयेतुमन्त और हप्तहिन्दू (सप्त सिन्धु, भारतवर्ष) देशकी ओर आया, और दूसरा पश्चिममें ऊर्ब, बहरकन राग, वरेण आदि देशोंकी ओर गया।

पुराणोंकी कथाओंके सम्बन्धमें जो चाहे कहा जाय, परन्तु यह निश्चित है कि ईसाके बीस शताब्दीसे चौदह शताब्दी पूर्व तक बहुतसी ऐसी जातियोंने अज्ञात देशोंसे इतिहासज्ञात देशोंमें—जैसे, बाबुल-साम्राज्य, हिटाइट या खट्टि देश, भारतवर्षके पंचनद आदिमें—प्रवेश किया था, जिनके देवी-देवता (और शायद
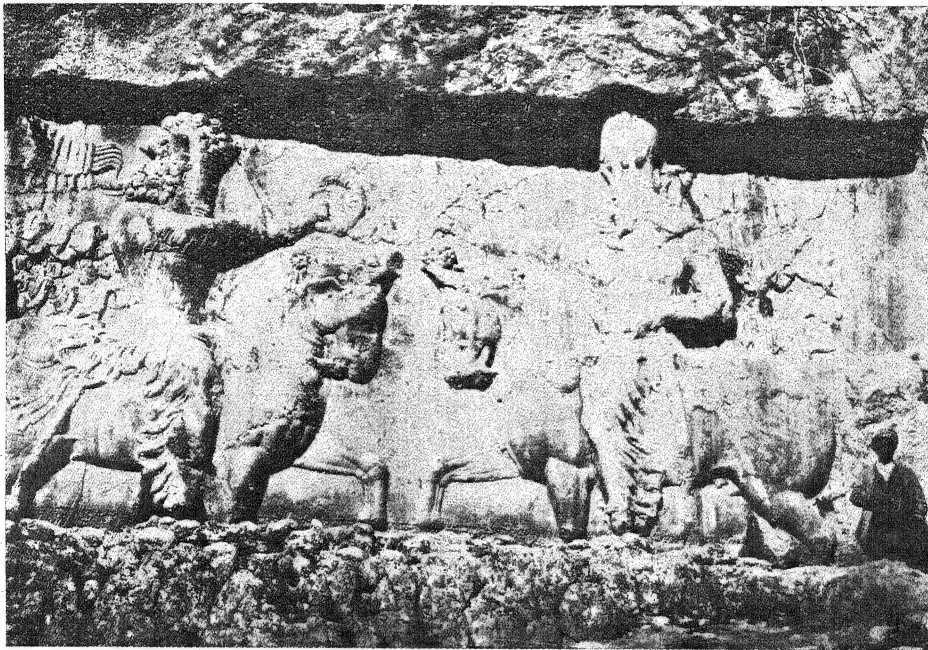
नक्श-ए-शापुर । भगवान अहुरमजदा शापुर पिताके राजा नार्सीको जयमाल दे रहे हैं

भाषा भी) एक ही प्रकारके थे, और वे ही बादमें आर्य-जाति या आर्य-भाषा-भाषी जाति-समष्टिके रूपमें प्रसिद्ध हुए। ईसासे पूर्व बीसवीं शताब्दीमें खामुराब्बी वंशके राजत्व कालमें इसी प्रकारकी काश्याइट नामकी एक जातिने बेबिलन-साम्राज्यपर आक्रमण किया था, और ईसासे पूर्व १७६० में गंडाश या गद्दाश नामी सरदारकी अधीनतामें इन लोगोंने बेबिलनको विजय किया था। इनके प्रधान देवता सूर्यश (सूर्य) थे। ईसासे पूर्व पन्द्रहवीं शताब्दीमें असुर देशके साथ इन काश्याइटोंकी सन्धि स्थापित होनेकी कथा भी हमें उन देशोंके इतिहासमें मिलती है। प्राचीन हिटाइटोंकी राजधानी प्टेरियामें (आधुनिक बोग़ाजकोईमें) कीलक लिपिमें लिखे हुए जो अनुशासन मिले हैं, उन सबमें हिटाइट और मित्तानी जातियोंके बीच कईएक संधियोंकी बात मिलती है। जान पड़ता है कि यह मित्तानी-जाति आर्य-वंशकी ही थी, क्योंकि एक संधिपत्रमें इन लोगोंने इन्द्र, वरुण, नासत्ययुगल (अश्विनीकुमार) आदि समस्त वैदिक देवताओंकी शपथ ग्रहण की है। इस घटनासे अनुमान होता है कि उस समय (ईसासे पूर्व १३५०) तक ईरान और भारतके आर्योंका धर्म एक ही था। बादमें ऋषि जरतउष्ट्र (ज़ोरोयास्टर) ने तूरानी मैगिकी धर्म-पद्धतिके साथ समन्वय करके

ईरानमें ज़रथुष्ट्री (पारसी) धर्मकी स्थापना की। उसके और भी बादके ईरानी आर्य राजवंशों तथा धर्म-ग्रन्थोंकी भाषा और संस्कृत भाषा एक ही जातिकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय ईरान और भारतवर्षके बीच आदान-प्रदान ख़ूब था। यहाँ तक कि हखामनिष्य (या अक्कमनिष्य) और शाशानीय वंशोंके राजाओंके समयमें पारसी सेनामें अनेक भारतीय सैनिकोंने सुदूर पश्चिम-एशिया तक—ग्रीस तक—अनेक देशोंमें, अनेक युद्धोंमें, रक्तदान किया था। ये सब बातें अब ऐतिहासिक सत्य प्रमाणित हो चुकी हैं। मगर कालचक्रके फेरसे दोनों देशोंका सम्बन्धविच्छेद हो गया—यहाँ तक कि लोग इस बात तकको भूल गये

कि 'ईरान' शब्द आवस्ताका ऐरिय (आर्यभूमि) शब्द ही है।

× × ×
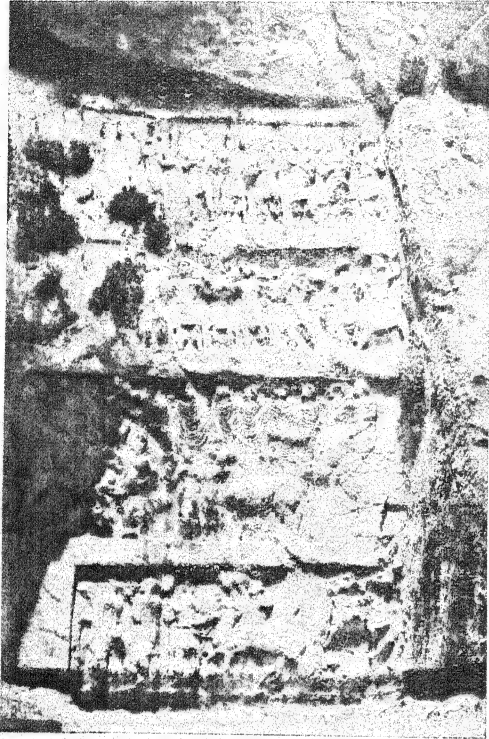
नक्श-ए-शापुर-राजा शापुरकी विजयका दृश्य, पराजित रोमन सेना

बड़ी कोशिशोंके बाद शीराज़से शापुर देखने जानेका प्रबन्ध किया। नायक महाशयकी एक गाड़ी समूचे दिनके लिए जाने-आनेको (प्रायः १८० मील) ४५ तूमान (६० रु०) में ठीक की थी। यह निश्चय हुआ कि मैं अकेला ही जाऊँगा। हम लोगोंके कर्णधार श्रीयुत कैहानने एक हथियारबंद रक्षक और एक दुभाषियेका इन्तज़ाम कर दिया।

हम लोग सवेरे मुँह-अँधियारे, सोते हुए शीराज़को पार करते हुए, रवाना हुए। फारसके प्राचीन कीर्ति-चिह्नोंमें मैं यह पहला ही स्थान देखने जा रहा था, इसलिए मनमें काफ़ी उत्साह था। काजरूनसे जिस राह होकर शीराज़ आये थे, इस बार फिर उसी राहसे लौटकर, काजरूनसे आगे अन्य राहसे जाना था।

प्रातःकालीन उषाके आलोकमें पहाड़ों और उपत्यकाका अस्पष्ट दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता था। दुख्ततरजानके शरीर और मस्तकपर जमी हुई बर्फ़ सवेरे धूपकी पहली किरन पड़नेसे लाल और सुवर्ण आभायुक्त हो रही थी। नीचेके अंशमें धूसर, नीले और बैंगनी रंगोंकी अनेक छटाएँ दीख रही थीं। हवा ख़ूब ही ठंडी थी। इधर मोटर तीरकी तरह तेज़ीसे जा रही थी, इसलिए मारे सर्दीके ख़ून जमनेकी नौबत आ गई।
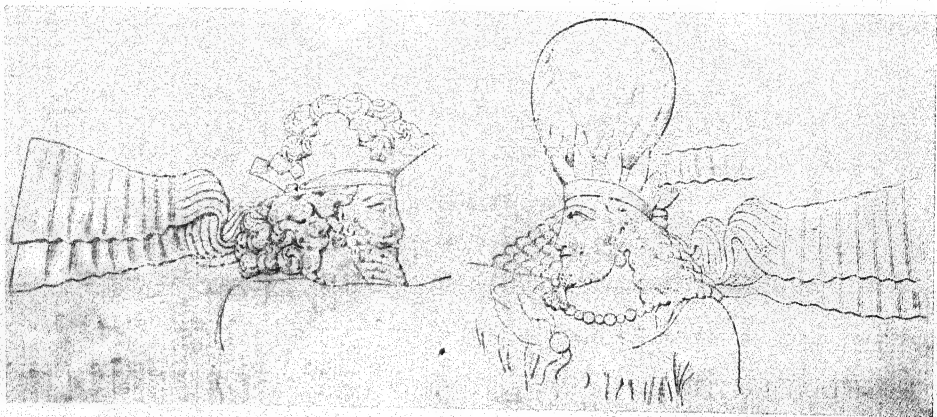
नक्श-ए-शापुर। नक़शेका नमूना, अहुरमज़दा और राजा नार्सी

चश्मे-सालमिनके झरने तक पहुँचनेके पहले ही धूप निकल आई। देखा कि मेरे पहलेके अनुमानके अनुसार पहाड़में अनेक गुफाएँ और दरारें हैं। कुछमें कृत्रिम बनावटके चिह्न स्पष्टरूपसे दिखाई पड़ते थे। कुछके सामने चढ़ने-उतरनेके रास्तोंके लुप्तप्राय: चिह्न जान पड़ते थे। इसमें सन्देह नहीं कि इन गुफाओंकी परीक्षा करना इस देशके प्रत्नतत्त्व तथा नृतत्त्वविदोंके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

इस घाटीसे पार होनेके बाद ही काजरूनके पास पहाड़की तलेटीमें एक प्राचीन क़ब्रिस्तान है। उसकी कई क़ब्रोंपर सिंहकी मूर्ति बैठी है, पासमें कुछ प्राचीन भग्नावशेष हैं, और पहाड़के पार्श्वपर किसी कज्जार राजाके दरबारका दृश्य खुदा हुआ है।

काजरूनकी एक सरायमें चाय पीकर रास्तेकी ज़रूरतके अनुसार रसद-पानी लिया। बुशायरसे काजरून आते वक्त शापुरकी बात ज्ञात थी, इसलिए रास्ते-भर गौरसे देखता आया था, किन्तु प्राचीन नगरी अथवा गढ़के उपयुक्त कोई भी जगह नज़र नहीं आई थी। बात यह है कि वह मार्ग पहाड़की पीठ, नदी और उर्वरभूमि इन तीनों अत्यावश्यक चीज़ोंसे दूर होकर गया है। इस बार उस मार्गको छोड़कर नये मार्गसे हम लोग क्रमसे पहाड़की ओर बढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर नदी और उर्वर उपत्यका—दोनों ही दिखाई दी; पहाड़ भी सीधा और ऊँचा अर्थात् दुर्गम था। जान पड़ा कि इस बार ठीक स्थानपर पहुँचे हैं।

और कुछ दूर जाकर देखा कि नदी उपत्यकाको छोड़कर, पहाड़ोंकी श्रेणीको भेदकर, जा रही है। जिस स्थानपर नदी गिरिसंकटमें घुसी है, उसकी दाहनी ओर नदीके पारसे पहाड़से ऊपरकी ओर एक प्राचीन पथके चिह्न दीख पड़ते हैं, और उसी जगह पहाड़पर कईएक आकृतिहीन स्तूप पड़े हुए हैं। पहाड़में अगणित प्रस्तरखंड पड़े हैं, जिनमें से अधिकांश कृत्रिम (ईंटके) आकारके हैं। प्रसिद्ध डुनबला-दुर्ग और विशापुरकी (शापुरकी सुकीर्तिकी) इस समय यही अवस्था है।

नदीके दाहने तटपर पहाड़में खुदे चित्रोंमें एक ही इस समय अपेक्षाकृत अच्छी अवस्थामें है। दूसरे तटके नक़्शे धर्मान्ध कीर्तिनाशकोंके हाथसे बहुत थोड़े ही बच पाये हैं। इस जगहका आधुनिक नाम नक्श-ए-शापुर है।
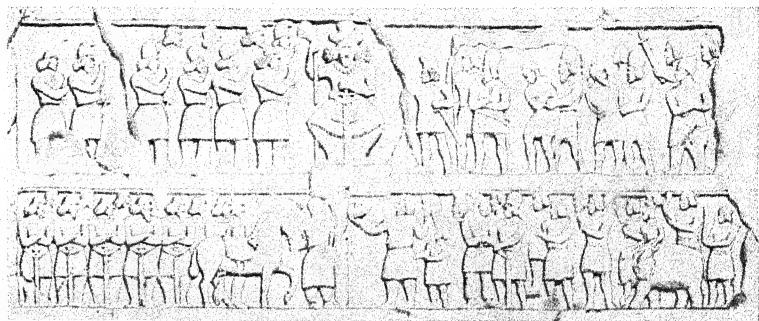
नक्श-ए-शापुर-नक़्शेका नमूना, युद्ध-विजयके बाद राजदरबार

दूसरे तटके नक़्शोंको देखना ख़तरनाक और जीवटका काम है। पहली बात तो यह है कि सीधे नदी पार करनेके लिए जानेपर मालूम हुआ कि किनारा बहुत ऊँचा है, और नदीका पानी भी गहरा है। ख़ैर, दो मील पीछे जाकर किसी तरह नदी पार होनेका रास्ता मिला, मगर वहाँ भी धारमें इतनी बड़ी-बड़ी पत्थरकी बटियाँ थीं कि उसमें से गाड़ी ले जाना असम्भव था, क्योंकि गाड़ीको बहुत घुमा-फिराकर गहरे स्थानको बचाना पड़ता था। गाड़ी तो नदीमें के जलमें एक डुबकी खाकर रुक गई। सिपाहीरामने आसपासके खेतोंसे आदमियोंको पकड़कर उसका उद्धार किया। मैंने भी जूता-मोज़ा उतार दिया, और किसी तरह धारके ज़ोरका सामना करते हुए पैदल ही नदी पार की। पतलून प्राय: कमर तक भींग गई। उस पार जाकर देखा कि नक्शे पहाड़पर बहुत ऊँचाईपर अंकित हैं (शायद कीर्ति-नाशकोंसे बचानेके लिए इतनी ऊँचाईपर खोदे गये हैं)। वहाँ तक पहुँचनेका
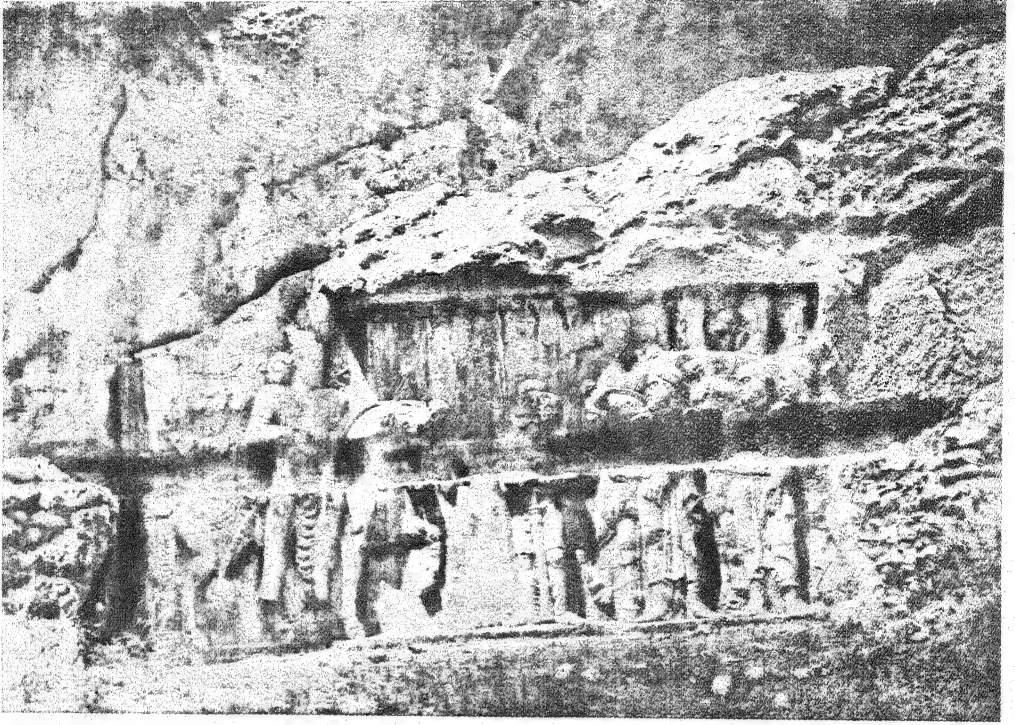
नक्श-ए-शापुर। राजा द्वितीय बहरामकी शीस्तानपर चढ़ाई

एकमात्र रास्ता एक पतले जलमार्गकी एक ओरकी दीवारकी मुँडेरपर से है। जलमार्गकी दूसरी ओरकी दीवारके स्थानपर सीधा खड़ा पहाड़ है। भीतर पानी कहीं-कहीं आदमी-डुबानसे ज़्यादा है, इसलिए भीतर होकर नहीं जाया जा सकता। दीवार कहींपर भी एक हाथसे ज़्यादा चौड़ी नहीं है, उसपर भी जगह-जगह पानी पड़नेसे फिसलन हो गई है। दीवारके दूसरी ओर आठ-दस फ़ीटसे लेकर साठ-सत्तर फ़ीट तक गहरे खड्डे हैं। इस प्रकार वहाँ 'इधर कुँआ' 'उधर खाई'वाली मसल बिलकुल ठीक उतरती है।

ख़ैर, जो भी हो, इस मार्गपर आध मील चलकर नक्शोंको देखा। बड़ी-बड़ी मूर्तियोंके मुख, नाक आदि छेनी-बटालीसे नष्ट कर दिये गये हैं। बाक़ी अन्य सब प्रायः ठीक हैं। समयके प्रकोपसे जो कुछ हानि हुई है, वही हुई है। मगर आजकल इस जलमार्गका जल नक्शेकी कुछ मूर्तियोंको धोता हुआ बहता है, इसलिए यदि कोई इन्तज़ाम न किया गया, तो पानीकी प्रक्रियासे ये मूर्तियाँ लोप हो जायँगी।

सन् २४० में शाशानीय वंशके नृपति प्रथम शापुर ईरान-साम्राज्यके अधिपति हुए। सन् २४१ से २४४ तक और २५८ से २६० तक रोमन साम्राज्यके साथ उनका युद्ध हुआ। पहली चढ़ाईमें शापुरने भूमध्यसागरके तटपर ऐन्टीयोख तक हस्तगत कर लिया, परन्तु थोड़े ही दिन बाद रोमन सेनाने पारसी सेनाको हराकर समस्त प्रदेश फिरसे छीन लिया। शापुरकी दूसरी चढ़ाईमें रोमन सेना तहस-नहस हो गई, और रोमन सम्राट् वैलेरियन बन्दी हो गया। पारसी सेना एशियाके पश्चिम प्रान्त तक सारे रोमन साम्राज्यको लूट-मार और नष्ट-भ्रष्ट कर लौट आई।

नक्श-ए-शापुरमें खुदी हुई चित्रावली मुख्यतः शापुरकी इसी दूसरी विजयकी स्मारक है, यद्यपि यहाँ अन्य शाशानीय राजाओंके चित्र भी हैं।

शुस्तर। राजा शापुरका बनवाया हुआ कारून नदीका बाँध, "बन्द-ए-क़ैसर"

ये नक्श हमारे देशकी इसी प्रकारकी खुदाईके समान गहरे कटे हुए नहीं है, इसलिए मूर्तियोंकी गठन भारतकी खुदी हुई मूर्तियोंकी भाँति सुडौल नहीं हैं—मॉडलिंग बहुत कम है। यहाँकी कारीगरीमें भरहुत या साँचीकी तरह महीन काम भी नहीं है। नक्शोंके साँचे आसुरीय आदर्शके अनुसार ही हैं, मगर ऐसा जान पड़ता है कि उनमें ग्रीक प्रणालीका प्रभाव अधिक है। इस मूर्तियोंके साथ इसी कालकी, अथवा इससे पहलेकी, भारतीय मूर्तियोंसे तुलना करनेपर समझ पड़ता है कि ललित-कलाओंके क्षेत्रमें भारत कितना आगे बढ़ा हुआ था।

अभागा वैलेरियन बहुत दिनों तक बन्दी रहकर मर गया। कहा जाता है कि उसकी मृत्युपर उसकी खाल खींचकर भुस भरवाकर जनसाधारणको दिखलाया जाता था। शापुरने रोमन बन्दियोंके द्वारा फारसके दक्षिण-पश्चिम, शुस्तर नगरके समीप, कारुन नदीके ऊपर एक बाँध तैयार कराया था। वह बाँध आज तक मौजूद है। यहाँ उसका नाम बन्द-ए-क़ैसर है। इस प्रकार वह अब तक क़ैसर (सीज़र) वैलेरियनकी स्मृति-रक्षा कर रहा है।

१६वीं एप्रिलको हम लोग शीराज़ पहुँचे थे। छै दिन वहाँ रहकर २२वीं एप्रिलको सुबह हम लोग इस्फहानकी तरफ़ रवाना हुए। पार्सेपोलिस, नक्श-ए-रुस्तम, मशद मुरग़ाब (पासारगाडाई) रास्ते ही में पड़ते हैं।

इस बार प्राचीन गौरवमय फारसके साथ परिचय होगा, इसलिए उत्सुकतासे यात्रा आरम्भ हुई। शीराज़की स्मृति-चिह्नके रूपमें कुछ लकड़ी, चाँदी और पीतलकी चीज़ें तथा कुछ क़ालीन आदि संग्रह किये। दो-एक पुरानी मोहरें तथा एक छोटी चित्रित पुस्तक भी ख़रीदी। यहाँपर मोल-भाव बहुत करना पड़ता है, लेकिन फारस देशमें मेहमानकी ख़ातिर सभी कहीं होती है, फिर नायक महाशय भी साथ थे, इसलिए बहुत ज़्यादा दाम नहीं देने पड़े।

रत्नाकरजी और पन्तजी

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

स्वर्गीय रत्नाकरजीके साथ ब्रजभाषाके पिछले कई सौ वर्षोंका इतिहास पूरा हो जाता है। यही नहीं, उनके साथ हिन्दी-कविताका एक युग समाप्त हो जाता है। भारतेन्दु बाबूके बाद स्व० सत्यनारायण कविरत्नने ब्रजभाषाको सँवारा था। उनके चले जानेके बाद हम लोगोंकी उत्सुक दृष्टि रत्नाकरजीपर पड़ी; अब रत्नाकरजीके बाद ब्रजभाषाका भविष्य कैसा होगा, समय इसके उत्तरके लिए अभी कुछ-कुछ मौन है।

'जागरण' के शब्दोंमें—"ब्रजभाषाके पुराने कवियोंका जैसा राजसी टाटबाट सुना जाता है, ईश्वरकी दयासे ब्रजभाषाके अन्तिम कवि माने जानेवाले रत्नाकरजीको भी वही ठाटबाट नसीब था। उनका अधिकांश अयोध्याके राजदरबारमें ही बीता। ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, यश, सांसारिक सुखभोग—सबने मिलकर उनके कवि-जीवनको सन्तोष प्रदान किया।"

सचमुच, जिस आनबानके साथ उनका जीवन व्यतीत हुआ, वह इस युगमें शायद ही किसी अन्य हिन्दी-कविको प्राप्त हो।

रत्नाकरजीकी रुचि और संस्कृति भी ब्रजभाषाकी तरह ही पुरानी थी। उनकी वेश-भूषा और भाव-भाषा—सब कुछ प्राचीन मर्यादाके भीतर ही था।

जिस प्रकार रत्नाकरजी ब्रजभाषाके आधुनिकतम रूप थे, उसी प्रकार पन्तजी खड़ी बोलीके नूतनतम रूप हैं। दोनोंके रंग-रूप और चित्रमें जो अन्तर है, वही दोनोंकी कवितामें भी।

मुझे रत्नाकरजी और पन्तजी दोनों ही महानुभावोंके एकत्र दर्शनका सौभाग्य दो बार प्राप्त हुआ है—पहली बार, मार्च सन् ३१ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी (प्रयाग) के वार्षिक कवि-सम्मेलनके अवसरपर। दूसरी बार, पिछले जाड़ोंमें मान्यवर बा० श्यामसुन्दरदासजीके साहित्य-पुनीत गृहपर। उस समय रत्नाकरजी और पन्तजीके अतिरिक्त ये लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक भी उपस्थित थे—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्रद्धेय बा० श्यामसुन्दरदासजी, बा० जयशंकरप्रसाद, कलाविद् रायकृष्णदास, प्रो० केशवप्रसाद मिश्र और बा० रामचन्द्र वर्मा। यह साहित्यिक समाज केवल पन्तजीकी कविता सुननेके लिए जुड़ा था। पन्तजीने वहाँपर अपनी 'गुंजन'में प्रकाशित नई कविताएँ पढ़ी थीं; लोग बड़ी देर तक उनके सुरीले कंठसे निकली हुई मधुर मनोहर कविताओंका आनन्द लेते रहे। उस दिन बा० श्यामसुन्दरदासजीके सौम्य मुखमंडलपर जो गम्भीर प्रसन्नता दीख पड़ी थी, वह वैसी ही थी, जैसी किसी वात्सल्यपूर्ण पिताके हृदयमें अपनी ही सन्तानकी सुन्दर कृति और कीर्त्ति देखकर होती है।

वहाँ रत्नाकरजी और पन्तजीको एक ही जगह पास-पास बैठे हुए देखकर मेरे कौतूहल-प्रिय हृदयने सोचा—समयने यहाँपर, हिन्दी-कविताके प्राचीन और नवीन युगको देखो, किस भाँति सजीव और साकार कर दिया है, दोनोंको किस भाँति एक ही जगह मिला दिया है!

प्राचीनताका भविष्य नवीनतामें है, और नवीनताका भविष्य प्राचीनतामें। जैसे, वार्द्धक्यके बाद यौवन आता है, और यौवनके बाद फिर वार्द्धक्य, उसी भाँति आज समाज और साहित्यका जो युग प्राचीन है, कल उसका स्थान नवीनता ले लेती है, और वह नवीनता भी परसों प्राचीन हो जाती है। प्राचीनता और नवीनताका यह क्रम व्यर्थ नहीं है, बल्कि वह साहित्य और समाजके भिन्न-भिन्न समयोंकी कड़ियाँ परस्पर जोड़ता जाता है।

जैसे शरीरका वाह्य परिवर्तन होनेपर भी आत्मा अमर रहती है, उसी भाँति साहित्यके वाह्य रूप—भाषा, छन्द, शैली—के परिवर्तित होते रहनेपर भी आत्मानुभूति

चिरस्थायी रहती है। इस आत्मानुभूतिका प्रवाह पुरातन होनेपर भी नित्य नवीन है। उसका सनातन स्रोत नई-नई इन्द्रियों और नये-नये हृदयोंसे होकर चिरनवीन बना रहता है। रत्नाकरजीके हृदयमें कविताका जो पुरातन स्रोत बह रहा था, वही स्रोत पन्तजीके नवीन शरीर और नवीन हृदयमें आज सर्वथा नवीन है।

रत्नाकरजी पन्तजीको बहुत प्यार करते थे। प्राय: प्रसंग चलनेपर बड़ी ममतापूर्वक उन्हें याद किया करते थे। पिछले दो वर्षोंके भीतर रत्नाकरजीकी सेवामें उपस्थित होकर मुझे कई बार काव्य-चर्चाका सुयोग प्राप्त हुआ था। एक दिन मैंने उन्हें अपनी एक रचना दिखाई। उसे पढ़नेके बाद, उन्होंने ख़ूब हँसकर कहा—"इसमें एक दोष है, यह समझमें आ जाती है!" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वे छायावादकी दुर्बोध कविताओंसे बहुत घबराते थे। फिर भी, वे कभी-कभी आनन्द पानेकी आशासे, नये कवियोंकी कविताएँ ध्यानपूर्वक पढ़ते थे। मेरे अनुरोधसे उन्होंने रविबाबूकी 'गीतांजलि' का अध्ययन एक बंगाली अध्यापक द्वारा किया था। पन्तजीकी भी बहुतसी कविताएँ उन्होंने पढ़ी थीं, और पढ़कर कई बार वे भाव-मुग्ध हो उठे थे।

रत्नाकरजी ब्रजभाषाकी जिस मधुरता और कोमलताके प्रतिनिधि थे, वही मधुरता और कोमलता पन्तजीके नवीन हृदयसे नि:सृत होकर खड़ी बोलीमें भी ओतप्रोत हो उठी है। आज हिन्दी-कविताका भविष्य पन्तजी-जैसे कवियोंकी लेखनीमें ही अन्तर्हित है।

(२)

यहाँपर प्राचीन और नवीन इन दो युगोंके इन दो विशेष कवियोंके कविता-सम्बन्धी विचार और शैलीपर दृष्टिपात कीजिए—

'पल्लव' की भूमिकामें पन्तजीने लिखा है—"अब ब्रजभाषा और खड़ी बोलीके बीच जीवन-संग्रामका युग बीत गया।" सचमुच आज खड़ी बोली और ब्रज-भाषाके बीच मतभेद और पक्षपातका समय नहीं। पिछले हज़ार वर्षों तक हिन्दी-कविता कुछ सीमित भावनाओंकी संकीर्ण परिधिमें पर्याप्त घूम चुकी, अब यह
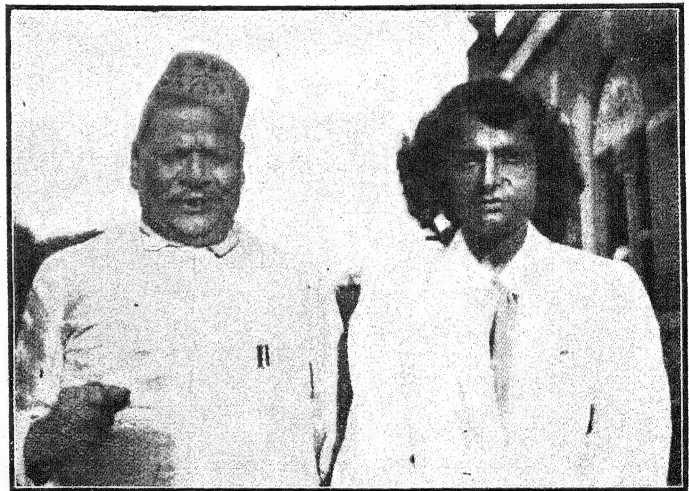
रत्नाकरजी और पन्तजी

समय विश्व-साहित्यकी गतिमें गति मिलाकर चलनेका है। आज तो समाज और साहित्यमें चारों ओर अरुणोदय हो रहा है। प्रकाश फैल रहा है।

सन् २५ के अखिल भारतीय हिन्दी-कवि-सम्मेलनके सभापति-पदसे रत्नाकरजीने कहा था—"ब्रजभाषाके कवियोंका कर्तव्य है कि वे अपनी कविताके रंग-ढंग तथा रचना-प्रणालीमें समयकी आवश्यकता तथा समाजकी रुचिके अनुसार कुछ परिवर्तन आरम्भ करें, और केवल नायिका-भेद-वर्णन तथा पुरानी बातोंका पिष्टपेषण न करके राष्ट्रीय और सामाजिक दृष्टिसे उपयोगी विषयोंकी

ओर ध्यान दें, जिससे सर्वसाधारणका मनोरंजन ही नहीं, उपकार भी हो। ब्रजभाषाकी कवितापर यह एक मुख्य लांछन लगाया जाता है कि उसकी भाषा सर्वथा मनमानी तथा उच्छृंखल होती है। विचारपूर्वक देखनेसे, किसी अंश तक, यह लांछन निर्मूल भी नहीं ज्ञात होता। इसका कारण यह है कि ब्रजभाषाका अभी कोई उत्तम व्याकरण नहीं मिलता, और न उसके अधिकांश कवि, जो ब्रजवासी नहीं हैं, ब्रजमें जाकर उसे सीखने ही का प्रयत्न करते हैं। अतः उसके कवियोंको केवल पूर्ववर्ती कवियोंके काव्योंसे ही उसका स्वरूप-ज्ञान संचित करना पड़ता है, और पूर्ववर्ती कवियोंमें भी प्रयोग-वैषम्य होनेके कारण उनको एक निश्चित परिपाटी स्थिर करनेमें बड़ी कठिनता पड़ती है।"

इस कथनमें रत्नाकरजीने ब्रजभाषाकी विभिन्नता और असामयिकताके विषयमें जो निर्देश किया है, उसीसे ज्ञात हो जाता कि अब उसमें साहित्यिक सौंदर्य लाना अत्यन्त कठिन हो रहा है। अतएव हिन्दी-कविताको नवीन भाषा और नवीन भावोंकी आवश्यकता है। आज खड़ी बोलीकी कविता इस आवश्यकताकी पूर्ति कर रही है। पन्तजीके शब्दोंमें—"खड़ी बोली आगेकी सुवर्णाशा है, उसकी बाल-कलामें भावीकी लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाशकी स्वर्गंगा है, जिसके अस्पष्ट ज्योतिपुंजमें न-जाने कितने जाज्ज्वल्यमान सूर्य, शशि, असंख्य ग्रह-उपग्रह, अमन्द नक्षत्र तथा अनिन्द्य लावण्यलोक अन्तर्हित हैं।"

यहाँ रत्नाकरजी और पन्तजीके काव्य-साहित्यकी तुलना नहीं की जा सकती। दोनों ही कवियोंकी भाषा, भाव और शैलीमें उतना ही अन्तर है, जितना मस्तिष्क और हृदयमें। रत्नाकरजीकी कविताका उद्गम मस्तिष्क है, उनकी रचनाओंमें उक्तिकी प्रधानता है। पन्तजीके उद्गारोंका उद्गम उनका हृदय है, उनकी रचनाओंमें भावकी प्रधानता है।

मेरी समझमें कविता केवल कला नहीं है। जहाँ तक उसका सम्बन्ध भाषा और शैलीकी साजसज्जासे है, वहाँ तक तो वह कलात्मक है; परन्तु कविता जिस वस्तुसे प्राणान्वित होकर कविता कहलाती है, वह विशेष वस्तु भाव है। भावका सम्बन्ध मस्तिष्कसे नहीं, केवल हृदयसे है; परन्तु जब हम भाषा और शैलीकी तरह भावको भी मस्तिष्कसे जोड़ना चाहते हैं, तब भाव भाव न रहकर उक्ति बन जाता है। ऐसी दशामें कविता सोलहो आना कलाकी वस्तु हो जाती है, उसमें चमत्कार-ही-चमत्कार रह जाता है। ऐसी कविताएँ हमारे दुःख-सुखकी साँसोंमें समाकर तद्रूप नहीं हो जातीं, बल्कि वे हमारी जिह्वापर बैठकर हमारा यथेष्ट मनोरंजन करती हैं। ब्रजभाषा-कालकी प्रायः सभी कविताएँ मस्तिष्कप्रधान हैं, उनमें उक्ति और चमत्कार पूर्ण मात्रामें है।

मस्तिष्क एवं उक्तिप्रधान कविताओंका क्रीड़ाक्षेत्र वस्तुजगत है, परन्तु हृदयप्रधान कविताएँ कोयलकी तरह अन्तर्जगतके उद्यानमें ही कूजती हैं। वस्तुजगतका कवि वस्तुओंको केवल उनके बाहरी रंग-रूपमें ही अपनाता है, उनमें कवि-हृदयकी चेतना मिलाकर उन्हें अपनी ही अन्तरात्मा जैसा सचेतन नहीं बना लेता। परन्तु अन्तर्जगतकी कविताएँ ठीक इसकी दूसरी दिशामें अपने सौन्दर्यका रहस्योद्घाटन करती हैं। हृदयका भावुक कवि वस्तुजगतके जड़ और चेतन दोनों ही को अपनी सजीवतासे सुस्पन्दितकर उन्हें नवीन रूप, नवीन शोभा, नवीन प्राण दे देता है। रविबाबूने भी अपनी 'साहित्य'—नामक पुस्तकमें लिखा है—

"वाह्यजगत हमारे मनके अन्दर प्रवेश करके एक दूसरा जगत बन जाता है। उसमें केवल वाह्यजगतके रंग, आकृति तथा ध्वनि आदि ही नहीं होते, अपितु उनके साथ हमारा अच्छा-बुरा लगना, हमारा भय-विस्मय, हमारा सुख-दुःख भी मिला रहता है—वह (वाह्यजगत) हमारी हृदय-वृत्तिके विचित्र रसमें नाना प्रकारसे आभासित होता है।"

अतएव हृदयके रसमें सनी हुई नवीन युगकी

कविताओंको हमें भी हृदयकी ही सूक्ष्मदृष्टिसे पढ़ना पड़ेगा, केवल इन बाहरी चर्मचक्षुओंसे नहीं।

हिन्दीमें पिछले हज़ार वर्षोंका एक विस्तृत युग, मस्तिष्कप्रधान कविताओंका था, जिसमें वस्तुजगतकी ही भावनाएँ छन्दोबद्ध हुई थीं। यह युग मानो अन्तर्जगतकी कविताओंके उद्भवके लिए एक लम्बा उपक्रममात्र था। अब उस युगका कार्य समाप्त हो गया। नये युगका प्रारम्भ अन्तर्जगतकी कविताओंसे हो गया है। प्रत्येक साहित्यमें ऐसी ही कविताएँ चिरस्थायी होती हैं, क्योंकि हृदयको हृदयके भावोंकी ही आवश्यकता है, उसीसे आत्माको मधुर शान्ति मिलती है। मस्तिष्कप्रधान कविताएँ तो विज्ञानकी तरह ही असन्तोषकर हैं।

विज्ञानकी तरह ही, जब-जब, कविता भी भौतिक भारसे दब गई है, तब-तब साहित्यमें अन्तर्जगतके कवियोंने अपने हृदयका स्वर ऊँचा किया है एवं कविताको नवजीवन दिया है। ब्रजभाषाके श्रृंगारप्रधान युगमें भक्त कवियोंने इसी स्वरको साधना द्वारा गगन-मंडल तक गुँजा दिया था, आज वही स्वर मानव और प्रकृति-प्रेमके रसमें सनकर हमारे नवीन कंठोंमें गूँज रहा है। यही स्वर, यही भाव, कवियोंके हृदयका चिरपरित सखा है, वह भिन्न-भिन्न युगोंमें बिछुड़े हुए साथीकी तरह फिर-फिर अपने कविसे आ मिलता है। इसीलिए तो हृदयके उसी चिरन्तन स्वर चिरन्तन भावको सम्बोधितकर पन्तजीने 'गुंजन' में कहा है—

"तुम मेरे मनके मानव,
मेरे गानोंके गाने;
मेरे मानसके स्पन्दन,
प्राणोंके चिर पहिचाने!
....

मैं नव-नव उरका मधु पी
नित नव ध्वनियोंमें गाऊँ,
प्राणोंके पंख डुबाकर
जीवन-मधुमें घुल जाऊँ।"

परन्तु हृदयका वह स्वर, वह भाव, चिरन्तन होकर भी नित्य-नूतन है, प्राचीन होकर भी नवीन है। पन्तजीके ही शब्दोंमें—

"तुम सहज, सत्य, सुन्दर हो,
चिर आदि, और चिर अभिनव।"

हाँ तो, हिन्दीके इस चिरन्तन, किन्तु नूतन युगके पन्तजी ही प्रमुख कवि हैं।

साथ ही, 'गंगावतरण' द्वारा, रत्नाकरजी हमारे साहित्यमें ब्रजभाषाकी जो अन्तिम प्रशस्त धारा छोड़ गये हैं, वह भी अत्यन्त अभिनन्दनीय है। उससे रत्नाकरजीकी कवित्त्वशक्तिका ओजपूर्ण परिचय ही नहीं मिलता, बल्कि ब्रजभाषाके पिछले कवियोंकी श्रृंगार-कालिमाका भी मार्जन हो जाता है।
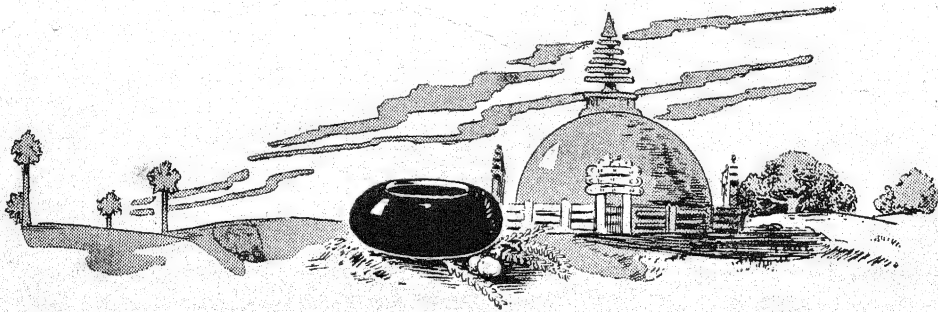
सरिता

श्री गोपालसिंह नेपाली

यह लघु सरिताका बहता जल
कितना शीतल, कितना निर्मल

हिमगिरिके हिमसे निकल-निकल
यह विमल दूध-सा हिमका जल
कर-कर निनाद कलकल-छलछल
बहता आता नीचे पल-पल
तनका चंचल, मनका विह्वल
यह लघु सरिताका बहता जल

निर्मल जलकी यह तेज़ धार
करके कितनी श्रृंखला पार
बहती रहती है लगातार
गिरती-उठती है बार-बार
रखता है तनमें इतना बल
यह लघु सरिताका बहता जल

एकान्त प्रान्त निर्जन-निर्जन
यह वसुधाके हिमगिरिका वन
रहता मंजुल मुखरित छन-छन
लगता जैसे नन्दन-कानन
करता है जंगलमें मंगल
यह लघु सरिताका बहता जल

करके तरु-मूलोंका सिंचन
लघु जल-धारोंसे आलिंगन
जल-कुण्डोंमें करके नर्तन
करके अपना बहु परिवर्तन
आगे बढ़ता जाता केवल
यह लघु सरिताका बहता जल

ऊँचे शिखरोंसे उतर-उतर
गिर-गिर गिरिके चट्टानोंपर
कंकड़-कंकड़ पैदल चलकर
दिन-भर, रजनी-भर, जीवन-भर
धोता वसुधाका अन्तस्तल
यह लघु सरिताका बहता जल

मिलता है इसको जब पथपर
पथ रोके खड़ा कठिन पत्थर
आकुल, आतुर, दुखसे कातर
सिर पटक-पटककर, रो-रोकर
करता है कितना कोलाहल
यह लघु सरिताका बहता जल

हिमके पत्थर वे पिघल-पिघल
बन गये धराकी वारि विमल
सुख पाता जिससे पथिक विकल
पी-पीकर अंजलि-भर मृदु जल
नित जलकर भी कितना शीतल
यह लघु सरिताका बहता जल

कितना कोमल, कितना वत्सल
रे जननीका वह अन्तस्तल
जिसका यह शीतल करुणा-जल
बहता रहता युग-युग अविरल
गंगा, यमुना, सरयू निर्मल
यह लघु सरिताका बहता जल

पुण्य-पर्व

श्री सियारामशरण गुप्त

(शेषांश)

तीसरा अंक

[१]

(निर्जनमें एक विशालकाय वट वृक्षके नीचे एक शिलापर नीचे पैर लटकाये हुए ब्रह्मदत्त बैठा है। दाँईं ओर दूसरी शिलापर रस्सीसे बँधे हुए सुतसोम अचेतावस्थामें पड़े हैं। प्रातःकालका प्रकाश फैल रहा है।)

ब्रह्मदत्त—अभी चेत नहीं आया ?

किंकर—वह जड़ी साधारण न थी। यदि राजेश्वरको अधिक सुँघा दी जाती, तो उन्हें कभी सचेत होनेका कष्ट ही न उठाना पड़ता। (ब्रह्मदत्त सहसा विरक्त हो उठता है)

ब्रह्मदत्त—देखो किंकर, तुम मेरे सामने 'राजेश्वर-राजेश्वर' न कहा करो। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। तुम्हें कई बार रोक दिया है, परन्तु तुम मानते नहीं।

किंकर—अभ्यास-दोषसे भूल हुई महाराज ! यदि हमसे भूल न हो, तो हम हीन कुलमें ही क्यों होते ?

ब्रह्मदत्त—(किंकरकी स्वीकारोक्तिसे प्रसन्न होकर भी तुरन्त अपनी प्रसन्नता प्रकट नहीं करना चाहता) हीन या उच्च कुलसे हमें कोई प्रयोजन नहीं। बस, अब हमारे सामने ऐसी भूल न होनी चाहिए।

किंकर—न होगी महाराज !

ब्रह्मदत्त—अरे, क्या चेत आ गया ! (किंकर मुड़कर सुतसोमकी ओर बढ़नेके लिए उद्यत होता है) नहीं, वह कुछ नहीं; वायुसे केश हिल रहे थे, इसीसे मुझे भ्रम हो गया।

किंकर—ठीक तो महाराज, मुझे भी ऐसा ही भ्रम हो गया था। (मुँहपर सन्तोषका ऐसा भाव प्रकट करता है, मानो महाराजके ऐसा भ्रम होना भी बड़े सौभाग्यकी बात है !)

ब्रह्मदत्त—किंकर, आजका दिन मेरे लिए बड़े आनन्दका है ! आज रातको वट देवताके उद्देशसे नर-यज्ञ होगा। सुतसोमके रक्तसे रँगकर एक सौ एक पताकाएँ वृक्षकी शाखा-प्रशाखाओंपर फहरा दूँगा। देवताने मेरे हृदयमें जो प्रेरणा की थी, समयपर वह उसीकी कृपासे पूरी हो गई।

किंकर—(अपने कर्तृत्वकी चर्चा उठानेके उद्देशसे) यदि सुतसोमको चत्वरपर बैठे हुए देखनेमें उस दिन मुझसे भूल न हो जाती, तो यह काम और पहले हो जाता।

ब्रह्मदत्त—नहीं किंकर, तुमसे कोई भूल नहीं हुई। तुम उस समय तक सुतसोमको पहचानते ही न थे, पकड़ते कैसे ? मेरा स्वभाव है कि सेवकके किसी कामसे मुझे प्रसन्नता नहीं होती, उसका तो काम ही काम करना है। परन्तु नहीं, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।

किंकर—यह महाराजका अनुग्रह है। हाँ, मुझे एक बातका खेद रह गया।

ब्रह्मदत्त—नहीं, आज आनन्दका दिन है।

किंकर—मैं चाहता था कि ऐसा कोई प्रसंग आता, जब मैं बता सकता कि महाराजके कामके लिए मैं अपने प्राण भी निस्संकोच-भावसे दे सकता हूँ।

ब्रह्मदत्त—प्राणके आने-जानेसे मुझे हर्ष-विषाद नहीं होता। जो हुआ, वही बहुत है।

किंकर—मैं तो महाराजके ऋणसे प्राण देकर भी उऋण नहीं हो सकता। आपने यह जानकर भी कि मैं सन्धिच्छेदक हूँ, और वह भी वेण, मुझसे घृणा नहीं की; मुझे देखकर क्या, छूकर भी स्नान करनेकी आवश्यकता नहीं समझी, तभी मैं समझ गया कि इसी सुखके लिए मुझे

प्राणदंड होकर भी नहीं हो सका। आपकी सेवाके लिए मुझे ये प्राण दे देने पड़ें, तो मैं उसे भी अपना पुरस्कार समझूँगा।

ब्रह्मदत्त—सो तो समझना ही चाहिए। परन्तु मुझे इससे कुछ नहीं कि तुम वेण हो। मनुष्यमात्रमें एक-सा रक्त होता है और एक-सा मांस। खड्ग जिस प्रकार खप-से सुतसोमका सिर धड़से अलग कर देगा, उसी तरह पुक्कस, वेण, या चाण्डालका। कोई हो, मुझे तो मनुष्य चाहिए।

किंकर—देवकृपासे मनुष्य मिल भी एक सौ एकसे अधिक गये हैं। सबसे बड़ी प्रसन्नता तो इस बातकी है कि सुतसोम भी पकड़ लिये गये। और बन्दियोंने तो अपना रक्त-मांस अपने-आप पचाकर देवताके लिए हड्डियाँमात्र छोड़ी हैं, परन्तु सुतसोमकी वलि वे तत्काल तोड़े गये फूलकी तरह रुचिके साथ ग्रहण करेंगे। (अचेत सुतसोमपर वह और ब्रह्मदत्त दृष्टि डालते हैं)

ब्रह्मदत्त—देखो, एक-एक करके सब बन्दियोंको भूगर्भसे निकालकर आज पर्वस्नान कराओ, और इच्छा-भोजनका प्रबन्ध करके तृप्त करो। सन्ध्याके पहले ही यह सब हो जाना चाहिए, रातके लिए कोई झंझट न रहे।

किंकर—खाया तो आज किसीसे क्या जायगा; और भोजन शरीर-धारणके लिए ही किया जाता है, वह भी नहीं रहेगा; परन्तु जो महाराजकी आज्ञा है, वही होगा। हाँ, आजके उत्सवमें एक कमी रह गई।

ब्रह्मदत्त—क्या ?

किंकर—यह कि रसक हम लोगोंसे विरुद्धाचरण करके भी भाग गया। आप अपने अनर्घपदलक्षण मन्त्रका प्रयोग करते, तो ऐसा कभी न होता। उसे पकड़ पाते, तो आज उसकी भी वलि दे दी जाती। परन्तु यह तो उसके अपराधका दंड न होकर पुरस्कार ही हो जाता। (सुतसोमकी ओर देखकर सहसा चौंक पड़ता है) अरे !

ब्रह्मदत्त—क्या चेत आ गया ? (उठकर उस ओर बढ़ता है। तब तक सुतसोम एक बार आँखें खोलकर फिर बन्द कर लेते हैं)

किंकर—(धीरेसे) मैं समझता हूँ कि इन्हें बड़ी देरका चेत आ गया। बातें सुननेके लिए बहाना किये पड़े हैं।

ब्रह्मदत्त—(किंकरकी बातपर ध्यान दिये बिना) जाकर तनिक हिलाओ-डुलाओ तो। (किंकर जाकर उन्हें जगानेके लिए हिलाता है। सुतसोम आँखें खोलकर चारों ओर दृष्टि डालते हैं। ब्रह्मदत्त एक बार आनन्दसे कुछ उछल जाता है, फिर शिलापर छाती तानकर इस भावसे बैठ जाता है, मानो बन्दीका भाग्य-निर्णय करनेके लिए न्यायासनपर विराजमान हो। सुतसोम इधर-उधर दृष्टि डाल चुकनेपर ब्रह्मदत्तको एकटक देखने लगते हैं। वह पहले कुछ गम्भीर होनेकी चेष्टा करता है, फिर मुसकिराकर व्यंगपूर्वक कहता है) नमस्कार पृष्ठाचार्य !

सुतसोम—बन्धु, तुम्हारा कल्याण हो ! मुझे प्रसन्नता है कि तुम अपने बाल्य बन्धुको भूले नहीं हो।

ब्रह्मदत्त—(कुछ खीझकर) सुनो सुतसोम, मुझे बन्धुत्वका लोभ मत दो। आज मेरा कोई बन्धु नहीं।

सुतसोम—यह मैं अपने बन्धन देखकर ही समझ रहा हूँ। परन्तु तुम्हारी नहीं, मैं अपनी बात कह रहा हूँ।

ब्रह्मदत्त—क्या बन्धनसे बहुत कष्ट हो रहा है ? मुक्त होना चाहते हो ?

सुतसोम—मुक्ति तो प्राणिमात्र चाहते हैं। (हँसकर) परन्तु उसके लिए दूसरेकी नहीं, अपनी ही वलि देनी पड़ती है।

ब्रह्मदत्त—(भौंह चढ़ाकर) अब भी तुम मुझे उपदेश देनेका साहस करते हो। क्या मुझे

चिढ़ानेका फल भूल गये ?

सुतसोम—तुम्हारे जिन घूँसोंके लिए सहाध्यायी तुम्हें जान-बूझकर चिढ़ाया करते थे, उन्हें कैसे भूल सकता हूँ ? परन्तु जान पड़ता है, तुम मेरी प्रकृति भूल गये।

ब्रह्मदत्त—क्या ?

सुतसोम—यही कि तुम्हारे घूँसोंके डरसे मैं कभी सच्ची बात कहनेसे नहीं रुका।

ब्रह्मदत्त—किन्तु घूँसा छोड़कर अब मैंने खड्ग ग्रहण किया है।

सुतसोम—ब्रह्मदत्त, मुझे कहने दो कि यह तुमने अच्छा नहीं किया।

ब्रह्मदत्त—हूँ! 'अच्छा नहीं किया'। अपने बचनेके लिए तुम ऐसा तो कहोगे ही। (एकाएक किंकरको निविष्ट चित्तसे वार्तालाप सुनते देखकर) क्यों किंकर, तुम गये नहीं ? (कठोर पड़कर) अच्छा जाकर अपना काम करो। सुतसोमसे बात करनेके लिए मैं बहुत हूँ।

किंकर—जो आज्ञा।

(जाता है)

सुतसोम—क्या यही किंकर वेण है ? अब तो यह सन्धिच्छेदक न होगा ?

ब्रह्मदत्त—(हँसीमें) हो तो क्या हानि है ? यह कहा करता है कि चोरीको महापाप पहले-पहल उस ब्राह्मणने घोषित किया होगा, जिसके पास अपने अपार धनकी रक्षाका उपाय इसे छोड़ दूसरा न था।

सुतसोम—तब तो ब्रह्मदत्त, तुम्हें बड़ा भारी सत्संग प्राप्त हुआ है ; अब क्या है, तुम्हारे उद्धार होनेमें विलम्ब नहीं !

ब्रह्मदत्त—मैं समझ गया सुतसोम, हीन जाति वेणने तुम्हें छू लिया है, इसीसे तुम अप्रसन्न हो रहे हो। क्या स्नान करोगे ?

सुतसोम—स्नान, तड़ाग-जलसे, या खड्गकी धारसे ?

ब्रह्मदत्त—खड्गकी धारके लिए आधी रात तक रुकना पड़ेगा। इस समय मैं तड़ाग-जलकी ही बात कह रहा था।

सुतसोम—वेण या चाण्डाल छू ले, तो स्नान करनेकी बात मेरे मनमें कभी नहीं आती। यह दूसरी बात है कि मैं इस समय तक स्नान कर लिया करता हूँ।

ब्रह्मदत्त—स्नान तो करना चाहते हो, परन्तु इसलिए नहीं कि वेणने छू दिया! (हँसकर) अच्छा, बुलाऊँ उसीको स्नान करानेके लिए। नेत्र धोकर पवित्र होनेके लिए वह गन्धोदक भी ले आ सकता है। सुतसोम, आज न जाने कितने दिनोंके अनन्तर मुझे हँसी आ रही है। (फिर हँसता है)

सुतसोम—यह मेरे लिए आनन्दकी बात है कि मैं तुम्हें हँसा सकता हूँ। अब तो मैं तुमसे और भी बहुतसी बातें करना चाहूँगा।

ब्रह्मदत्त—हाँ, हाँ, अच्छी तरह करो। अभी तक मैं जिस कामके लिए दिन-रात प्रयत्नमें रहता था, तुमने उसे भलेमानसकी तरह अनायास पूरा कर दिया है।

सुतसोम—वे बन्दी दिखाई न दिये, जिनका भाग्य मेरे भाग्यके साथ सम्बद्ध है ?

ब्रह्मदत्त—वे ऐसे गुप्त स्थानमें हैं कि यदि कोई राजशक्ति मुझे किसी तरह पकड़ ले, तो भी उनका पता न चले, और बिना बलिके ही उनकी बलि हो जाय। आधी रातको जब उनकी आवश्यकता होगी, वे यहीं आ जायँगे। परन्तु इस समय इधर-उधरकी ही बातें कर लो, फिर तो तुम्हें समय ही न मिलेगा।

सुतसोम—मुझे इसकी चिन्ता नहीं। बन्दीके लिए बन्दीकी ही चर्चा सुखकर है।

ब्रह्मदत्त—मैंने देवबलिके लिए जिन लोगोंको पकड़ा है, वे सभी बहुत रोये-गाये हैं, और उनमें से

अधिकतर आप ही मेरे जा रहे हैं। परन्तु आश्चर्य है कि तुम्हारी मुख-मुद्रामें मलिनताकी क्षीण रेखा भी नहीं दिखाई देती, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

सुतसोम—और मुझे भी इस बातका आश्चर्य है कि उन निरपराधोंके कातर रुदनने भी तुम्हारे मनमें दयाका संचार नहीं किया। उन सबकी हत्या तुम किस तरह करोगे? क्या तुम्हें कुछ भी ग्लानि न होगी?

ब्रह्मदत्त—(क्रुद्ध होकर) हत्या मत कहो, वह बलि है। और सुनो, यह काम मैं उसी तरह करूँगा, जिस तरह एक राजा दूसरेके राज्यपर चढ़कर सहस्रोंका संहार कर देता है, और गर्व करके कहता है कि मेरे क्षात्र-कृत्यसे संसारका कल्याण होगा। क्षत्रियकी संहार-लीला तो धर्म-विधि है, और मेरा यह धर्म-कृत्य हत्याकांड!

सुतसोम—जिस प्रकार निरीहोंका यह बलि-कांड पाप है, उसी प्रकार क्षत्रियकी वह संहार-लीला भी पाप है, जो दुष्टोंके दमनकी भावनासे नहीं, अपने राज्य और वैभवकी वृद्धिके ही उद्देश्यसे की जाती है।

ब्रह्मदत्त—क्या पाप है और क्या नहीं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इस सम्बन्धमें तुमसे सम्मति लेनेकी मुझे आवश्यकता नहीं।

सुतसोम—भाई, मैंने किशोरावस्थामें तुम्हारे अनेक घूँसे खाये हैं, क्या आज तुम अपने प्रतिकूल मेरी एक बात भी सुननेका साहस नहीं रखते?

ब्रह्मदत्त—(धीरे-धीरे स्वाभाविक स्वरमें आकर) देखो सुतसोम, अन्त समयमें मैं तुम्हारे साथ अच्छा बर्त्ताव करना चाहता हूँ, परन्तु तुम उलटी-सीधी बातें करते हो। समझते ही नहीं, बात कर किससे रहे हो।

सुतसोम—गुरुकुलमें मैं जिसके संग बरसों एक साथ खेला-कूदा, जिसके साथ कितने ही छोटे-मोटे प्रणय-कलह किये, और जिसकी उच्छृंखलतासे सैकड़ों बार रीझा और खीझा, अपने सहाध्यायी उसी ब्रह्मदत्तसे मैं बात कर रहा हूँ, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। और तुम्हारे धर्ममें क्या ऐसी ही विधि है कि तुम जिसे कुछ समयके भीतर ही निहत करना चाहते हो, उसे अपनी दो बातें भी न कहने दोगे?

ब्रह्मदत्त—जब तुम ऐसा कहते हो, तो अब मैं तुम्हें न रोकूँगा, परन्तु इस तरहकी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। क्या तुम यह चाहते हो कि मैं तुम्हें मुक्ति दे दूँ?

सुतसोम—मुझे नहीं, अपनेको।

ब्रह्मदत्त—तुम्हें मेरे लिए इतनी चिन्ता है, अपने लिए कुछ नहीं?

सुतसोम—मैं तो यही चाहता हूँ कि हम परस्पर एक दूसरेके लिए चिन्ता करें, परन्तु मेरे लिए चिन्ता करने, न करनेकी बात तुम्हारी इच्छापर है, तथापि तुम विश्वास करो कि अपनी रक्षाकी अपेक्षा मुझे तुम्हारे परित्राणकी ही अधिक चिन्ता है।

ब्रह्मदत्त—विश्वास तो मैं किसीका नहीं करता।

सुतसोम—हम लोग बरसों परस्पर साथ रह चुके हैं। क्या तुमने मुझमें किसी दिन कोई अविश्वासकी बात पाई है?

ब्रह्मदत्त—न पाई हो, इससे क्या? मुझे तो विश्वास करनेकी अपेक्षा अविश्वास ही निरापद जान पड़ता है। जानते हो, किंकरका विश्वास करके तुमने क्या पाया?

सुतसोम—यही न कि तुमने मुझे पकड़ लिया, परन्तु यदि मैं किंकरपर अविश्वास करता, और कहीं उसकी स्त्रीको सचमुच कोई पकड़े लिये जाता होता, तो तब हानि अधिक होती, या अब?

ब्रह्मदत्त—हो जाती एक मनुष्यकी मृत्यु, तुम तो बच जाते।

सुतसोम—एक मनुष्य मेरे रहते मर जाता, तो मेरे अस्तित्त्वका मूल्य ही क्या? फिर वह तो पुरुषकी नहीं, स्त्रीकी बात थी।

ब्रह्मदत्त—तुम्हारे आदर्शकी बातें तुम्हारे पास रहें। यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि तुम्हारे इस विश्वासने ही तुम्हारे साथ विश्वासघात किया।

सुतसोम—नहीं, विश्वासघात तो इसे मैं तब मानता, जब इससे मेरी कोई हानि होती। इससे तो मुझे लाभ ही हुआ है।

ब्रह्मदत्त—आश्चर्य है, अपनी इस समझपर तुम्हें लज्जा नहीं आती। एक वेणने तुम्हें ठग लिया, और उसपर तुम गर्व करते हो?

सुतसोम—मैं ठग लिया गया, परन्तु मैंने तो किसीको नहीं ठगा, यही मेरे लिए यथेष्ट है। और यदि मैं यह कहूँ कि किसी प्रकार भी सही, मैं तुम तक पहुँचना चाहता था, तब?

ब्रह्मदत्त—(क्षण-भर सन्नाटेमें रहकर अपना भाव छिपाता हुआ) तब? तब मैं तुम्हारी बात बनानेकी बड़ाई करूँगा।

सुतसोम—झूठी बात बनानेकी?

ब्रह्मदत्त—तुम्हीं समझ लो।

सुतसोम—ब्रह्मदत्त, तुम जानते हो कि मैं झूठ नहीं बोलता, फिर भी तुम ऐसा कहते हो? इस प्रकार अपनेको वंचित किये बिना भी तो तुम्हारा सब काम अच्छी तरह चल सकता है। (ब्रह्मदत्त कुछ अप्रतिभ-सा होता है) देखो, मैं अभिमानसे फूल रहा हूँ। तुम्हारे बन्धन टूट जायँ, तो तुम दूसरा प्रबन्ध कर लो।

ब्रह्मदत्त—नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हारे बन्धन स्वयं काटे देता हूँ। यह तो तुम जानते ही होगे कि तुम मुझसे अधिक नहीं भाग सकते।

सुतसोम—भलीभाँति। स्थलकी तो बात ही क्या, जलमें भी हम सबसे तुम्हीं आगे रहते थे। आचार्य कहा करते थे कि शास्त्रमें न सही, शस्त्रमें ब्रह्मदत्तका सामना कोई नहीं कर सकता। परन्तु हम लोग तुम्हें पलायनपटु कहकर चिढ़ाया करते थे।

ब्रह्मदत्त—(अचानक एक निःश्वास लेता है, परन्तु तुरन्त सँभलकर) तुम्हें मेरा बन्धन स्वीकार है?

सुतसोम—मल्लशालामें तुम्हारे साथ लड़कर यद्यपि इस बन्धनको मैं स्वयं तोड़नेका साहस कर सकता हूँ, फिर भी मैं इसे स्वीकार करता हूँ। परन्तु केवल शरीरसे।

ब्रह्मदत्त—मुझे उसीकी आवश्यकता है। (बन्धन तलवारसे काटता है) अब तुम चाहो, तो इधर-उधर घूम-फिर सकते हो।

सुतसोम—मैं तुम्हारे विश्वासका अनुचित लाभ नहीं उठाया चाहता।

ब्रह्मदत्त—तुम्हारा बन्धन मैंने तुम्हारे विश्वासके कारण नहीं, अपने आत्म-विश्वासके कारण काटा है। तुम्हें कोई आवश्यक कार्य हो, तो तुम उसे कर सकते हो।

सुतसोम—मैं तुम्हारे विश्वासका दुरुपयोग नहीं किया चाहता। क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम यह बलि-कार्य किस सिद्धिके प्रलोभनसे कर रहे हो?

ब्रह्मदत्त—अपने देवताको प्रसन्न करनेसे बढ़कर और सिद्धि कौन होगी? हाँ, यह बात मैं तुमसे और कह देना चाहता हूँ कि तुमसे मेरी कोई शत्रुता नहीं है। तुम उदार और सदाचारी हो, इसलिए मेरा विश्वास है कि तुम्हारी बलि देनेसे मेरे देवता अत्यधिक तृप्त हो जायँगे।

सुतसोम—यदि तुम्हारा ऐसा विश्वास है, तो मैं प्रसन्नतासे प्रस्तुत हूँ। मुझे यह देखकर हर्ष है कि तुममें एक विश्वास तो निकला। आत्म-विश्वास ही सबसे बड़ा विश्वास है।

ब्रह्मदत्त—इससे तो मैं नहीं मुकर सकता।

सुतसोम—भगवानसे मेरी प्रार्थना है कि तुम अपने

विश्वासके अनुसार आचरण कर सको। एक बात और। यदि तुम मुझ-जैसे मनुष्यकी वलि देकर अपने देवताकी प्रसन्नताका विश्वास रखते हो, तो फिर उन अभागोंको तुम्हें छोड़ देना चाहिए, जिन्हें तुम मेरे साथ वलि देना चाहते हो।

ब्रह्मदत्त—'अधिकस्याधिकं फलम्।'

सुतसोम—परन्तु जब व्यंजन मिल गया तब, रूखा-सूखा परोसना क्या?

ब्रह्मदत्त—(गर्वपूर्वक मुसकराते हुए) तुम्हारा आवेदन सुन लिया गया, आदेश यथासमय सुना दिया जायगा।

सुतसोम—तुम्हारी न्याय-सभामें मैं अपना आवेदन विनयपूर्वक उपस्थित कर रहा हूँ। उसपर विचारपूर्वक अपना आदेश देना।

ब्रह्मदत्त—(क्षण-भर मौन रहकर) दूसरोंकी बात रहने दो। तुम अपने विषयमें तो कुछ कहो। मैं आज जिनकी वलि देना चाहता हूँ, उन्हें इच्छा-भोजन देनेकी मेरी इच्छा है।

सुतसोम—तुम्हारे इस दानको भी मैं स्वीकार करूँगा। मैं तो इसके लिए स्वयं याचना किया चाहता था। परन्तु मेरी क्षुधा शान्त करना तुम्हारे लिए कुछ कठिन हो सकता है।

ब्रह्मदत्त—फिर भी कह डालो।

सुतसोम—कल मैंने एक ब्राह्मणको वचन दिया था कि आज मैं उसकी गाथाएँ सुनूँगा। मैं नहीं चाहता कि मेरा यह वचन पूरा न हो। अतएव यदि तुम अनुचित न समझो, तो मुझे अपना वचन पूरा करनेका अवसर दो।

ब्रह्मदत्त—अर्थात्, गाथाएँ सुननेके लिए मैं तुम्हें घर जाने दूँ?

सुतसोम—यही मेरी प्रार्थना है। मेरे मृगचिराके विश्रान्त-भवनसे यह वट चार-पाँच गव्यूतिसे अधिक न होगा। एक दिन तुम्हें खोजता हुआ मैं इस वृक्षके नीचेसे निकल चुका हूँ। मैं यहाँ सन्ध्या तक अवश्य आ जाऊँगा। तुम्हारा काम तो आधी रातसे आरम्भ होगा।

ब्रह्मदत्त—अध्ययन कालमें तो तुम कूटनीतिके विरुद्ध रहा करते थे, और राजनीति और साधारणनीतिका अन्तर्विरोध मिटाकर उन्हें एक कर देना चाहते थे?

सुतसोम—अब भी मेरा वही मत है।

ब्रह्मदत्त—तब तुम्हारी इस याचनामें कोई अभिसन्धि नहीं, इसे तुम स्वीकार करते हो?

सुतसोम—इसे स्वीकार करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। सत्यके साथ किसी प्रकारकी प्रवंचना असम्भव है।

ब्रह्मदत्त—अच्छी बात है, मैं भी देख लूँ, सत्यके साथ तुम्हारी अप्रवंचना। मैं तुम्हें अवकाश देता हूँ। जाकर प्रतिज्ञात समयके भीतर मरनेके लिए आ जाओ।

सुतसोम—मरनेके लिए नहीं, अपना वचन पूरा करनेके लिए। सुनो ब्रह्मदत्त, अपनी मनस्तुष्टिके लिए राज्य भी छोड़ दिया जा सकता है, इसे तो तुम भी जानते हो। यदि अपनी वलि देकर मैं तुम्हारे अन्य बन्दियोंकी रक्षा कर सका, तो मेरे लिए सन्तोषकी इससे बढ़कर और बात नहीं हो सकती। मैं एक बात और कह दूँ। मैंने जैसा कहा था, मैं तुम्हारे बन्धन तोड़नेका साहस कर सकता था, और अपनी रक्षाके लिए तुमसे लड़नेकी क्षमता भी रखता था। विशेषकर उस दशामें, जब तुम मुझे मारनेको उद्यत हो रहे हो। परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया।

ब्रह्मदत्त—क्यों नहीं किया?

सुतसोम—इसलिए कि सद्विचारोंके प्रचारका यह उपाय मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हें या तुम मुझे मार डालते, तो क्या इससे अभीप्सित

फलकी प्राप्ति हो जाती ? जब हम मनुष्यको जिला नहीं सकते, तो हमें उसकी हत्या करनेका भी अधिकार नहीं है। और साथ ही मैं चाहता था कि यदि सम्भव हो, तो मैं तुम्हारे मत-परिवर्तनका प्रयत्न भी करूँ।

ब्रह्मदत्त—परन्तु क्या तुम ऐसा कर सकते हो ? मूर्ख !

सुतसोम—कम-से-कम प्रयत्न तो कर सकता हूँ। भाई, तुम मुझे मूर्ख कहो, और मेरा चाहे जो कुछ करो, मैं तुमसे कातर प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरे आवेदनकी उपेक्षा न करो। यदि तुम चाहो तो उनकी रक्षाके लिए मैं अपनेसे भी अधिक उदार और 'सदाचारी' एक अन्य व्यक्ति अपने साथ तुम्हारे देवताकी वलिके लिए तुम्हें भेंट कर सकता हूँ।

ब्रह्मदत्त—(निरुत्साहपूर्वक) कौन है वह ?

सुतसोम—मेरी पत्नी।

ब्रह्मदत्त—(घृणापूर्वक) तुम मेरी अपेक्षा भी निर्दय और क्रूर हो। हटो मेरे सामनेसे।

सुतसोम—नहीं भाई, मैं उसपर इससे अधिक दया कर ही नहीं सकता।

ब्रह्मदत्त—हम स्त्रीकी वलि नहीं देते।

सुतसोम—यह मेरी स्त्रीका दुर्भाग्य है।

ब्रह्मदत्त—तुम्हें जानेके पहले वचन देना होगा कि इस सम्बन्धमें तुम उससे कुछ न कहोगे।

सुतसोम—कदाचित् तुम उसके प्रति अधिक सहृदय हो।

ब्रह्मदत्त—सहृदयताको तो मैं एक दुर्बलता समझता हूँ। परन्तु मेरी इच्छा है कि उसे तुम्हारी मृत्युका निश्चित समाचार न मिले। मिथ्या ही सही, मैं उसके लिए एक आशा रहने देना चाहता हूँ।

सुतसोम—तो इसका भार तुम्हारे ऊपर रहा।

ब्रह्मदत्त—मेरे ऊपर ? तुम मेरे ऊपर विश्वास कर सकते हो ?

सुतसोम—मुझे तो अन्तमें मनुष्यमात्रकी सद्भावनामें विश्वास है।

ब्रह्मदत्त—(शीघ्रतापूर्वक, मानो सुतसोमको अपनी बात पूरी नहीं करने देना चाहता) बस, अब मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुना चाहता। तुम यहाँसे शीघ्र चले जाओ।

सुतसोम—जाते-जाते मैं यह और कहना चाहता हूँ कि यदि मेरा आवेदन स्वीकृत न हो, तो सबसे पहले मेरी ही वलि दी जाय।

(वेगसे प्रस्थान)

(ब्रह्मदत्त यथा स्थान ज्योंका त्यों बैठा रहता है।)

[२]

(स्थान—मृगचिराका विश्रान्त-भवन। समय—दिनका पहला पहर। एक चौकीपर व्यग्र-भावसे विशाखा बैठी है।)

विशाखा—(उच्च स्वरसे) ओ पूर्णा !

(नेपथ्यमें कुछ दूरसे)

देवि, आई मैं।

(पूर्णाका प्रवेश)

विशाखा—तुझसे कहा था कि शीघ्र-शीघ्र संवाद दे। परन्तु तू जाती है, तो लौटना ही नहीं जानती। क्यों, क्या समाचार है ?

पूर्णा—अभी तक तो अत्रभवान् नहीं पधारे।

विशाखा—(निराश-भावसे) और आर्य यशोधन ?

पूर्णा—कुछ समय हुआ, उस बन्दीको लेकर वे राजेश्वरकी खोजमें कहीं गये हैं।

विशाखा—वह बन्दी बहुत भयंकर है, पूर्णा ?

पूर्णा—मैंने उसे दूरसे देखा था। बहुत भयंकर तो नहीं जान पड़ता। जैसे और लोग, वैसा ही वह। मैं समझती हूँ, वह कोई पागल है, तभी ऐसी बातें कहता है। नहीं तो भला राजेश्वरपर कोई संकट आ सकता है, लोक जिन्हें ईश्वरकी विभूति बताता है।

विशाखा—परन्तु मेरा मन बहुत अकुला रहा है।

पूर्णा—लोगोंने बीसों तरहकी बातें बनाकर खड़ी कर दी हैं, उन्हींके विचारसे आपको आशंका हो रही है। राजेश्वर प्रायः इसी तरह बाहर रहते हैं, परन्तु कभी तो आप इस तरह नहीं अकुलातीं।

विशाखा—नित्यकी बात दूसरी है, पूर्णा! आज जब वह बन्दी ऐसी बातें कह रहा है, तो समझमें नहीं आता, मैं कैसे धैर्य धरूँ।

पूर्णा—मैं कहती हूँ, आप अकुलाइये नहीं, भगवान सब मंगल करेंगे।

विशाखा—बता सकती है पूर्णा, तेरे राजेश्वर सबके प्रति इतने सदय होकर भी मेरे प्रति इतने निर्दय क्यों हैं?

पूर्णा—राजेश्वरपर निर्दय होनेका अभियोग न लगाइये। आपके प्रति उनकी सदयता कितनी है, यह मैं जानती हूँ, सब जानते हैं, और आप स्वयं जानती हैं। इस समय चिन्ताके कारण ही अधीर होकर आप ऐसा कह रही हैं।

(दूरसे किसीके दौड़कर आनेका शब्द सुनाई देता है। दोनों उन्मुख होकर उस ओर देखती हैं)

विशाखा—(दूरसे ही देखकर) क्या है री उत्पला?

(विशाखा प्रायः उसे हँसीमें उपला कहा करती है, परन्तु इस समय उत्पला कहकर ही पुकारती है। वह दौड़ती हुई प्रवेश करती है)

उत्पला—आ गये, राजेश्वर आ गये!

विशाखा—(हड़बड़ाकर खड़ी हो जाती है) आ गये आर्यपुत्र? (अब उसकी आँखोंके पुंजीभूत अश्रु विगलित होकर कपोलोंपर बहने लगते हैं) उत्पला, तूने बड़ा अच्छा संवाद दिया, क्या दूँ तुझे? (गलेमें से एकावली उतारकर देती है) ले पूर्णा, तू भी ले। (उँगलीमें से मुद्रिका उतारकर देती है। दोनों विनीत भावसे पुरस्कार ग्रहणकर माथेसे लगाती हैं) क्यों उत्पला, आर्यपुत्र थे कहाँ?

उत्पला—सुना है, आर्य यशोधन उन्हें खोजनेके लिए एक वनमें झपटे जा रहे थे। पीछेसे राजेश्वरने हँसकर उन्हें पुकारा, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि राजेश्वर तो यहाँ प्रातःकालीन वायुका सेवन कर रहे हैं।

पूर्णा—(नेपथ्यकी ओर देखकर) अत्रभवति, राजेश्वर पधार रहे हैं।

(दासियोंका प्रस्थान और सुतसोमका प्रवेश)

विशाखा—आर्यपुत्रकी जय!

सुतसोम—(सहास्य) और अत्रभवती विशाखा देवीकी जय!

विशाखा—(कुछ रोषभंगीसे) बस, आप इसी तरह हँसते हुए आते हैं। यह नहीं देखते कि किसीको रुला कितना चुके हैं। आज मैं आपसे लड़ूँगी।

सुतसोम—लड़ देखो, जीत मेरी ही होगी। तुम अभी अभी मेरा जयोच्चार कर चुकी हो।

विशाखा—आर्यपुत्र, हम नारियोंको तो विधाताने पहले ही हरा दिया है, इन चरणोंमें सदैव स्थान दिये रहो, मेरी इतनेमें ही विजय है।

(नीचे झुककर उनके पैर पकड़ लेती है। सुतसोम झटसे उसे उठाकर देखते हैं कि उसकी आँखोंमें आँसू हैं। एकाएक इस तरह उच्छ्वसित होनेका कोई प्रत्यक्ष कारण न पाकर वे विस्मित हो उठते हैं)

सुतसोम—यह क्या देवि, यह क्या! (उसके सिरपर हाथ फेरते हुए नाममात्रके बल-प्रयोगसे उसे चौकीपर बिठा देते हैं, और उसे अपने आगे किये हुए उसके दाएँ कन्धेसे टिककर एवं उसके ऊपर अपने दोनों हाथ रखकर स्वयं बैठ जाते हैं) देवि, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट पहुँचाया, क्षमा करो।

विशाखा—(सँभलकर) नहीं आर्यपुत्र, दोष मेरा ही है, जो मैं आपको तुच्छ बन्धनमें बाँध रखना चाहती हूँ। आज आप वनमें दोपहर तक प्रातःकालीन वायुका ही सेवन करते रहे, इसीसे मैं कुछ चिन्तित हो गई थी; क्षमा कीजिए।

सुतसोम—(विशाखाको हँसानेके लिए हँसकर) मैं क्षमा नहीं करूँगा। तुम मुझे अपने बन्धनमें बाँधना चाहती हो, मैं तुम्हें अपनेमें बाँधूँगा। (दोनों भुजाओंमें उसे भर लेते हैं। विशाखा आँखें मींच लेती है। कुछ क्षण तक सन्नाटा। फिर गम्भीर होकर) जानती हो प्रिये, निरन्तर काममें लगे रहनेकी यह शक्ति मुझे कहाँसे मिलती है ? यहाँसे—(विशाखाके हृदयकी ओर संकेत करके)—तुम्हारे हृदयके अविच्छिन्न प्रेमसे।

विशाखा—लज्जित न कीजिए नाथ !

सुतसोम—नहीं, मैं ठीक कह रहा हूँ। जब मैं देखता हूँ कि तुम मुझे इतना प्रेम करती हो, तब मेरी दृष्टि विशाल जन-समूहपर पड़ती है, और मुझे वहाँ भी प्रेमकी वही अविरल धारा बहती दिखाई देती है। तभी स्वभावत: मेरी इच्छा होती है कि संसारमें यह धारा अटूट बहती रहे, और यदि मेरे प्रयत्नसे एक जन भी अपने प्रेमको विशाल करके सुखपूर्वक रह सके, तो मैं अपना जीवन सार्थक समझूँ।

विशाखा—नहीं आर्यपुत्र, अब मैं आपके कर्तव्यमें बाधक न हूँगी, आप मुझे जो शिक्षा देंगे, मैं उसका पालन करूँगी।

सुतसोम—हाँ, एक झक मुझमें निस्सन्देह है। मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्यको मृत्युके स्वागतके लिए सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। मैं जो काम करता हूँ, इस विचारसे कहता हूँ कि इसे अभी पूरा कर लूँ, न-जाने फिर उसे पूरा करनेका अवसर मिले या नहीं। इस समय मैं तुमसे इसीलिए इतने आवेगके साथ मिल रहा हूँ कि क्या जाने, यही अन्तिम भेंट हो। मैं ऐसे ही तुम्हारे प्रेमकी भी प्रत्याशा करता हूँ।

विशाखा—इस तरहकी बातें न करिए आर्यपुत्र, मुझे डर लगता है।

सुतसोम—यदि मेरी बात ठीक न होती, तो तुम मेरे कुछ समय तक अदृश्य रहनेसे इतना न डर जाती। मनुष्य अपने जीवनकी क्षणिकतासे परिचित है, इसीलिए दुर्बलता उसे प्राय: शंकित किये रहती है। परन्तु हमें निर्भय बनना चाहिए।

विशाखा—तो चलिए, पर्वस्नान किया जाय। आपने ही देर कर दी, और आप ही मुझे समझाते हैं कि सब काम यथासमय करने चाहिए।

सुतसोम—हाँ, चलो प्रिये, पर्वस्नानसे भी पवित्र आर्य नन्दकी गाथाएँ आज तुम्हें सुननेको मिलेंगी।

विशाखा—चलिए आर्यपुत्र, उन 'सहस्राई'-'सहस्राई' क्या अमूल्य गाथाओंके सुननेके लिए मैं भी बहुत उत्सुक हूँ।

(दोनोंका प्रस्थान)

[३]

(वनमें पूर्वोक्त वट वृक्षके नीचे ऊँची शिलापर ब्रह्मदत्त बैठा है। समय—सायंकाल। किंकर शीघ्रगतिसे प्रवेश करता है)

किंकर—सुतसोम आ रहे हैं, महाराज !

ब्रह्मदत्त—आ रहे हैं तो आने दो। (समाचारसे प्रसन्न हुआ नहीं जान पड़ता)

किंकर—मैं समझता था, अब वे क्या आयेंगे। परन्तु इतना साहस किसमें है, जो आपकी आज्ञा टाल सके। सम्भव है, छूटनेके लिए अब वे कोई नई चाल चलें। आप उन्हें फिर छोड़ देंगे तो—(बात पूरी नहीं करता)

ब्रह्मदत्त—(अप्रसन्न होकर) हमें छोड़ना होगा, छोड़ देंगे, और बन्दी करना होगा, बन्दी कर लेंगे। तुझे इन बातोंमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं है।

किंकर—(ब्रह्मदत्तकी बात अनसुनी करके) मैं समझता हूँ, वे अपने साथ कुछ सैनिक लाये होंगे।

मैं देख न आऊँ, उन्हें उन्होंने कहाँ छिपा रखा है ?

ब्रह्मदत्त—जा !

(किंकर वेगसे जाता है)

(सुतसोमका प्रवेश)

सुतसोम—मैं आ गया, ब्रह्मदत्त !

ब्रह्मदत्त—(चिढ़ते हुए स्वरमें) मैं कुछ अन्धा नहीं हूँ, मुझे भी दिखाई दे रहा है कि तुम आ गये। तुम-जैसा डरपोंक और करता ही क्या ?

सुतसोम—(हँसकर) तुम ऐसे ही साधु तो हो ब्रह्मदत्त, कि डरपोंकको छोड़कर तुम्हारे पास और कोई नहीं आ सकता।

ब्रह्मदत्त—(गम्भीरतापूर्वक) सुनो सुतसोम, मैं नहीं जानता था कि तुम ऐसे भयंकर व्यक्ति हो। जबसे तुम गये, मैं तुम्हारा ध्यान क्षण-भरके लिए भी न भुला सका। तुम्हारे संसर्गके कारण आज मुझमें भी कुछ दुर्बलता आ गई है !

सुतसोम—कैसी दुर्बलता ?

ब्रह्मदत्त—आज प्रातःकाल तुम्हारी बातोंमें आकर मैंने तुम्हें चले जाने दिया। यह ऐसी बात है, जो मैं इससे पहले कभी न करता।

सुतसोम—इससे तुम्हारी कुछ हानि हो गई हो, तो मुझसे कहो।

ब्रह्मदत्त—(संकोचपूर्वक) हानि तो कुछ नहीं हुई—किन्तु मुझे आश्चर्य है कि उस समय मैं अपने वलि-यज्ञकी बात भी कुछ देरके लिए क्यों भूल गया।

सुतसोम—परन्तु अब तुम चाहो, तो अपना कार्य यथासमय कर सकते हो।

ब्रह्मदत्त—क्या इस सम्बन्धमें तुम्हें वक्तव्य कुछ नहीं है ?

सुतसोम—है क्यों नहीं ? मैं चाहता हूँ, एक बार तुम मेरी बातें विचारपूर्वक सुन लो। करना तुम वही, जो तुम्हें रुचे।

ब्रह्मदत्त—तो फिर यहाँ बैठ जाओ। (हँसकर) वलि-पुरुषका यथासाध्य सत्कार करना चाहिए।

सुतसोम—(बैठकर) ब्रह्मदत्त, मुझे यही निवेदन करना है कि तुम जैसे राजकुल-सम्भूत और सुशिक्षा-प्राप्त जनके लिए यह नृशंस व्यापार उचित नहीं है। जितने लोगोंको तुमने पकड़ा है, उन सबको छोड़कर उनका आशीर्वाद लो, और सदाके लिए इस कार्यसे हाथ खींच लो।

ब्रह्मदत्त—सुतसोम, तुमने तो सुन ही लिया होगा कि मैंने इसके पीछे राज-पाट छोड़ दिया, किन्तु यह कार्य नहीं छोड़ा। फिर क्या तुम आशा करते हो कि मैं तुम्हारे इतने ही कहनेसे मान जाऊँगा ?

सुतसोम—सन्तोषकी बात है कि तुमने मेरे ऊपर यह आरोप नहीं किया कि मैं अपने छूटनेके लिए नई चाल चल रहा हूँ। सुनो, यह कोई बात नहीं कि यदि एक बार तुमसे भूल हो गई, तो तुम बार-बार भूल ही करते जाओ।

ब्रह्मदत्त—नहीं सुतसोम, मैं कोई भूल नहीं कर रहा हूँ। सम्भवतः मुझे समझनेमें भूल तुम्हीं कर रहे हो। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, यदि उसमें सार न होता, तो उसके लिए सब तरहके कष्ट उठाकर वन-वन न भटकता।

सुतसोम—तुम अपने कार्यके लिए वन-वन भटककर कष्ट उठा सकते हो, इससे तुम्हारी अपनी ही योग्यता प्रकट होती है, तुम्हारे कार्यकी नहीं। यों तो कहनेको किंकर भी कह सकता है कि मैं योगियोंकी तरह रातोंकी रातें जागकर निद्राको अपने वशमें कर रखता हूँ, और छोटीसी सन्धिमें होकर गृहपतिके सुरक्षित सौधमें पवनकी भाँति प्रवेश कर जाता हूँ।

ब्रह्मदत्त—हाँ, वह इस प्रकारकी बातें कभी-कभी करता तो है।

सुतसोम—तो कहनेमात्रसे ही वह योगी और वायुकी भाँति महान नहीं हो सकता। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि ऐसे लोग चाहें, तो महायोगियोंकी सिद्धि भी प्राप्त कर सकते हैं। एक बार तुम अपनी अक्लान्त शक्ति सत्कार्यमें लगाकर तो देखो। तुम्हें मालूम होगा कि उसमें कितना रस, कितना सन्तोष और कितना आनन्द है!

ब्रह्मदत्त—सुतसोम, क्या तुम यह कहना चाहते हो कि रस नामक पदार्थ किसी एक प्रकारकी वस्तुके ही भीतर है, और कहीं नहीं? मैं इसे नहीं मानता। ठीक है, मीठे और सलोने रस हैं; परन्तु कटु, तिक्त और कषाय भी रस ही हैं, और किसी मधुरसे कम नहीं। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, उसमें भी मुझे कम रस नहीं मिल रहा है।

सुतसोम—कटु और तिक्तमें तुम्हें यह जो रस मिल रहा है, वह अभ्यासजन्य है—स्वाभाविक और सत्य नहीं। याद है, तुम्हें तक्षशिलाकी वह घटना?

ब्रह्मदत्त—कौनसी?

सुतसोम—विशाल नामक वह ऊँचा-ऊँचा सहाध्यायी कहींसे एक सुन्दर फल तोड़ लाया, और उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की। सबसे आगे बढ़कर तुमने उसके हाथसे उसे छीनकर चखा, तो उसकी कटुताके कारण उसका पहला कवल भी तुम गलेके नीचे न उतार सके, और विशालको मारनेके लिए बुरी तरह झपटे।

ब्रह्मदत्त—(हँसकर) हाँ, याद आ गया।

सुतसोम—फिर अपनी झेंप मिटानेके लिए धीरे-धीरे तुमने उस फलके खानेका अभ्यास भी कर लिया था, और तुम कहा करते थे, यह तो बहुत मीठा है! इस बार तुम मेरे कहनेसे असत्का परित्याग करके सत्को स्वीकार करो। जब अभ्याससे कटु भी मधुर हो जाता है, तो मधुरका कहना ही क्या। मैं कहता हूँ, यह हिंसा-व्यापार तुम्हारे योग्य नहीं है।

ब्रह्मदत्त—बार-बार तुम हिंसाकी निन्दा क्यों करते हो, सुतसोम! हिंसाके सिंहासनपर ही हमारा क्षात्र-धर्म अधिष्ठित है। हमारे हाथमें हिंसाका राजदंड न हो, तो संसार कभीका उच्छिन्न हो जाय। बिना हिंसाके एक क्षण भी हमारा काम नहीं चल सकता। यदि हम हिंसा करना छोड़ दें, तो हम नीच और कापुरुष हो जायँ, और अपनी रक्षाके योग्य भी न रहें।

सुतसोम—यदि क्षात्र-धर्मका मूल हिंसा ही है, तो धिक्कार है उसे! चला जाय वह रसातलको, हमें उससे प्रयोजन नहीं! क्षात्र-धर्मकी इस भाँति प्रशंसा करके तुम उसे हिंस्र पशुकी ही संज्ञा दे रहे हो, इससे उसका गौरव बढ़ नहीं सकता। यह ठीक है, कभी-कभी हमें दुष्टोंका दमन करनेके लिए अपना राजदंड सँभालना पड़ता है, परन्तु तुम हमें यह तो बताओ कि तुमने जो इतने बालक, युवा और वृद्ध पकड़-पकड़कर बन्दी कर रखे हैं, उन्होंने कौनसी दुष्टता की है, और तुम्हारे इस क्षात्र-धर्ममें संसारका कौनसा कल्याण छिपा है?

ब्रह्मदत्त—(कुछ देर चुप रहकर) तो तुम यह चाहते हो कि मैं सब बन्दियोंको मुक्त कर दूँ?

सुतसोम—इतना ही नहीं, तुम्हें यह प्रतिज्ञा भी करनी होगी कि अब तुम इस तरहके व्यापारमें फिर कभी प्रवृत्त न होगे।

ब्रह्मदत्त—(हँसकर) तुम तो ऐसी बातें कर रहे हो, मानो बन्दी तुम नहीं, मैं हूँ। किंकरको सन्देह है कि तुम अपनी रक्षाके लिए कुछ सैनिक साथ लाये होगे, और तुमने उन्हें कहीं छिपा रखा है। उन्हींका पता लेनेके लिए वह गया है। परन्तु मैं जानता हूँ कि तुम

अकेले ही आये हो। फिर भी मुझे तुम्हारा यह कार्य अच्छा नहीं लग रहा है।

सुतसोम—जिस प्रकार लौट आनेका वचन मैंने तुम्हें दिया था, उसी प्रकार लौट आया हूँ। मैंने तो धर्मोचित कार्य ही किया है, तुम्हें अच्छा क्यों नहीं लगा?

ब्रह्मदत्त—तुम अकेले ही यहाँ आ खड़े हुए तो तुम्हारे राजबलका उपयोग ही क्या रहा? इस तरह तो तुमने उन लोगोंको जान-बूझकर मृत्युके मुँहमें निराधार छोड़ दिया है, जिन्हें छोड़ देनेके लिए तुम इतनी देरसे बातें कर रहे हो।

सुतसोम—बड़ी बात, तुम्हें उन निरीहोंके प्रति कुछ दया तो उत्पन्न हुई। परन्तु सैन्यबलकी अपेक्षा मुझे अपनी सद्भावनाका ही अधिक भरोसा है। तुम मुझसे यह नहीं कह सकते कि मैंने तुम्हारे बन्दियोंका कोई विचार नहीं किया। मैंने निश्चय कर लिया है, वलि पहले मेरी होगी, प्राण पहले मेरा जायगा, तब पीछे दूसरोंकी बारी आयगी।

ब्रह्मदत्त—तुम्हारे पीछे ही सही, उनकी बारी आयगी तो, तुम्हें इस बातका विचार भी तो करना चाहिए था?

सुतसोम—मेरे पीछे क्या होगा, इस बातकी चिन्ता मुझे कभी नहीं सताती। मेरा जो काम है, भगवान मेरे जीवनमें ही उसे मेरे द्वारा सम्पन्न करा लेंगे। मेरे अनन्तर उनका कोई काम रुका न रहेगा, मुझे इस बातका पूरा विश्वास है। (ब्रह्मदत्त सन्नाटेमें आता है। कुछ देर उसके प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षामें रहकर सुतसोम उसके कन्धेपर हाथ रखकर कहते हैं) क्यों भाई, क्या मैंने कोई ऐसी बात कह दी, जिसपर तुम्हें विश्वास नहीं होता?

ब्रह्मदत्त—नहीं भाई, अब मैं और अधिक आत्म-प्रवंचना नहीं करूँगा। मैं प्रातःकालसे ही प्रयत्न कर रहा हूँ कि किसी प्रकार तुम्हारे प्रति अपना अविश्वास दृढ़ किये रहूँ; परन्तु कह नहीं सकता, आज मुझे हो क्या गया है। मैं नहीं चाहता था कि मैं तुमसे रत्तीभर भी प्रभावित होऊँ। अपना राजपाट खोकर भी मैं अपनेको आज तक अपराजित ही समझता था; परन्तु तुमने मेरा वह गर्व आज चूर्ण-विचूर्ण कर दिया है।

सुतसोम—सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई ब्रह्मदत्त! गर्वका चूर्ण-विचूर्ण होना ही अच्छा है। इसके लिए किसीको लज्जित होनेका कोई कारण नहीं। जिस प्रकार पत्थरकी मूर्तिके प्रतीकमें देवताको प्रकट होते कोई संकोच नहीं होता, उसी प्रकार यदि सत्य मुझ-जैसे साधारण जनके मुँहसे प्रकट हो जाय, तो तुम्हें उसे ही देखना चाहिए, मुझे नहीं।

ब्रह्मदत्त—परन्तु आज प्रातःकालसे मैं तो निरन्तर तुम्हींको देख रहा हूँ।

सुतसोम—एक बात और है। आज प्रातःकाल आर्य नन्दको दिये हुए वचनको पूरा करनेके लिए मुझे घर जानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। मैंने निस्संकोच होकर इसके लिए अनुग्रहकी याचना की। सम्भव है, उस समय तुम्हें यही भान हुआ हो कि मैं किसी तरह छूटनेका बहाना कर रहा हूँ; परन्तु मैंने इस बातका कुछ विचार नहीं किया। मेरे शिष्टाचारको न समझकर यदि दूसरे उसकी हँसी उड़ावें तो इससे मुझे विचलित न होना चाहिए। मैंने तुम्हारा अनुग्रह शिरोधार्य किया, और उसके कारण मुझे काश्यप बुद्धकी पुनीत गाथाएँ सुननेका दुर्लभ पुण्य प्राप्त हो गया। इसी प्रकार यदि मेरे कथनमें तुम कुछ सार समझो, तो उसे निस्संकोच भावसे ग्रहण करो। मनुष्यका काम एक दूसरेके सहयोगसे ही चलता है।

ब्रह्मदत्त—अच्छा, तुम वे गाथाएँ सुन आये ? तो उन्हें मुझे भी सुनाओ।

सुतसोम—अवश्य ; परन्तु वे हैं बहुत मूल्यवान।

ब्रह्मदत्त—मैं सिंहासनच्युत हूँ तो क्या हुआ, गाथाओंका मूल्य चुका सकनेकी क्षमता मुझमें अब भी है। सुनाओ, मैं उनका पूरा मूल्य दूँगा।

सुतसोम—(भेदक दृष्टिसे देखकर) यदि मैं कहूँ कि उनका मूल्य मेरी बन्धनमुक्ति है तो ?

ब्रह्मदत्त—(हँसकर) परन्तु अब तो मैं समझ गया हूँ कि तुम ऐसा नहीं कहोगे।

सुतसोम—ठीक है, मैं अपने छूटनेके लिए तुमसे न कहूँगा। उन गाथाओंके लिए तुम्हीं धनकी चिन्ता भी न करनी पड़ेगी, क्योंकि धन तो उनके ऊपर निछावर है। हाँ, उनका मूल्य चुकानेके लिए तुम्हें अपने सब बन्दियोंको अभय देकर मुक्त कर देना होगा। सोच-विचारमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं, तुम मुझे वचन दे चुके हो। तुम्हारे बन्दियोंमें गाथाकारका पुत्र भी है, इसलिए उनका मूल्य इसके सिवा और कुछ हो नहीं सकता।

ब्रह्मदत्त—परन्तु यदि मैं अपने बन्दियोंको छोड़े देता हूँ, तो मेरा संकल्पित नर-यज्ञ किस तरह पूरा होगा ?

सुतसोम—तुम इतने मनुष्योंको बन्धनमुक्त कर दोगे, इससे बढ़कर और कौन यज्ञ हो सकता है ? परन्तु फिर भी इसके लिए मैं तुम्हें अपनेको अर्पित कर चुका हूँ। केवल मेरी वलिसे भी तुम्हारा काम चल सकता है। यद्यपि मैं स्वयं अपनेमें कोई विशेषता नहीं पाता हूँ, परन्तु लौकिक दृष्टिसे राजाका मूल्य शताधिक मनुष्य मान लिया जाय, तो माना जा सकता है। क्यों ठीक है न ?

ब्रह्मदत्त—निर्वासित हूँ तो क्या, राजा तो मैं भी हूँ। क्या मेरी अपनी वलिसे यह काम पूरा हो सकता है ? तुम मेरे पृष्ठाचार्य रह चुके हो, इस सम्बन्धमें मैं तुम्हारी दी हुई विधिके अनुसार ही आचरण करूँगा। तुम अपना अन्तिम निर्णय मुझे सुना दो।

सुतसोम—हाँ, तुम अपनेको भी वलि दे सकते हो ; परन्तु इसके लिए आवश्यक नहीं कि तुम अपना सिर काटकर ही देवताको चढ़ाओ, तभी तुम्हारा कार्य पूरा हो।

ब्रह्मदत्त—यह बात मेरी समझमें नहीं आई। बिना सिर चढ़ाये वलि क्या हुई, एक खेल हुआ।

सुतसोम—सुनो ब्रह्मदत्त, वलिका यह अभिप्राय नहीं कि हम अपनी या किसी दूसरेकी हत्या कर डालें। हमारे भीतर जो अहंभाव है, भगवानके चरणोंमें उसीकी वलि देना ही सबसे बड़ी वलि है। यह तो हमसे होता नहीं, करते हैं हम निरीहोंकी हत्या। तुम अपने-आपको देवताके लिए उत्सर्ग करके अपने निजी सुख-दुःखसे परे हो जाओ, और इसी प्रकार जितने अधिक मनुष्योंको बन्धनमुक्त कर सको, करनेकी चेष्टामें लग जाओ। देवताके निकट यही तुम्हारी सबसे बड़ी वलि होगी।

ब्रह्मदत्त—(आनन्दसे उछलकर) तुम्हारी ये बातें सुनानेके लिए ही देवताने तुम्हें पकड़नेकी प्रेरणा मेरे मनमें उत्पन्न की होगी ! अच्छा, अब वे गाथाएँ सुनाओ। मैं सुननेके लिए उत्सुक हूँ।

सुतसोम—तो सुनो—

एक बार ही श्रेष्ठ जनोंका
　　संग करो तो बेड़ा पार ;
नीचोंका बहु बार संग भी
　　नहीं कर सकेगा उद्धार।

सत्पुरुषोंसे मैत्री कीजे,
　　कीजे उनसे प्रेमालाप,
छू न सकेगा तुम्हें दोष फिर
　　होगे तुम निश्चय निष्पाप।

जीर्ण राज-वैभव हो जाता
तनु भी हो जाता है वृद्ध ;
सुजनोंका सद्धर्म धरापर
रहता है चिरकाल समृद्ध ।

दूर व्योम है, दूर धरातल,
और दूर है सागर-पार ;
बहुत दूर है किन्तु कुजनसे
सुजनाचरित सुधर्माचार । *

ब्रह्मदत्त, यह उपदेश किसी ऋषि, श्रावक, या कविका नहीं है। यह स्वयं सर्वज्ञके मुखसे निस्सृत हुआ है, तभी तो स्वभावत: ही यह इतना मधुर है। तुम इसे स्वीकार करो।

ब्रह्मदत्त—(उठकर) आपका अनुशासन सिर-माथे है। आप मुझे अपनी सेवामें ले लीजिए, जिसमें मैं भी सज्जनोंके धर्मका कुछ अभ्यास कर सकूँ। आचार्य, मेरा पंचांग प्रणिपात स्वीकार कीजिए।

(सुतसोमके पैरों पड़ता है)

सुतसोम—(ब्रह्मदत्तको उठाकर छातीसे लगाते हुए) बन्धु, तुम्हें सुबुद्धि प्राप्त हो !

ब्रह्मदत्त—देव, मेरे जीवनकी अमावस्यामें आज सचमुच ही सोमवतीके पर्वका उदय हुआ है। आज मैं कृतार्थ हूँ। तर्क और बातें तो मैंने पहले भी बहुत सुनी थीं, परन्तु आज आपने अपने शुद्धाचरणके अलौकिक प्रभावसे मेरी आँखें खोल दी हैं, और वाराणसी क्या, विश्वके साम्राज्यसे भी बड़ी वस्तु मुझे प्रदान की है। अब आप आज्ञा कीजिए, मैं क्या करूँ ?

सुतसोम—चलो भाई, पहले बन्दियोंको मुक्त करके उनका कष्ट दूर करें।

(किंकरका प्रवेश)

किंकर—(सुतसोमके पैरोंपर गिरकर) भगवन्, पहले इस भागे हुए नीचको बन्दी करके इसे पापमुक्त कीजिए। काश्यप बुद्धकी पवित्र वाणी इसके कानों तक भी पहुँच चुकी है।

सुतसोम—(उठाकर किंकरके सिरपर हाथ रखते हुए) अच्छा, पहले तुम्हीं मुक्त किये गये। सुबुद्धि ग्रहण करके सत्पुरुषोंके धर्मका अनुसरण करो।

किंकर—कृतार्थ हुआ देव !

(कुछ सैनिकोंके साथ यशोधनका प्रवेश)

यशोधन—राजेश्वरकी जय हो !

सुतसोम—(सहास्य) अन्तमें यशोधन, तुमने मेरा पता लगा ही लिया, परन्तु अब तक यदि मेरी बलि चढ़ा दी गई होती तो ?—चिन्तित न हो, अब डरकी कोई बात नहीं। ये महाराज ब्रह्मदत्त सद्धर्ममें दीक्षित हो गये हैं। तुम भी साथ चलो, हम लोग बन्दियोंको मुक्त करने जा रहे हैं।

यशोधन—सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पहले महादेवी और आर्य नन्द तक यह संवाद न पहुँच आऊँ ?

सुतसोम—आनन्द-संवाद बिना वाहकके स्वयं ही यथास्थान पहुँच जाता है। पहले पीड़ितोंका ही दु:ख-मोचन करना चाहिए।

[पटाक्षेप]

बुद्ध-जयन्ती, २५५६
(वैशाखी पूर्णिमा, १६८६)

---

* मूल गाथाएँ—

सकिदेव सुतसोम सब्भि होति समागमो।
सा नं संगति पालेति नासब्भि बहु संगमो ॥
सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ संथवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय सेय्यो होति न पापियो ॥
जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता अथं सरीरंऽपि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥
नभं च दूरे पठवी च दूरे पारं समुद्दस्स तदाहु दूरे।
ततो हवे दूर तरं वदन्ति सतं च धम्मो असतं च राजा ॥

वर्करकी मैं-मैं

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा

'अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते'

आशा है, 'प्रवासी' के उपर्युक्त अमूल्य उपदेशसे, 'जो सच है,' लोग जान जायँगे, तथा काम करनेवाले कितने लोग हैं, इसे भी अच्छी तरह पहचान जायँगे। एक तरहके लोग और भी हैं, उन्हें जान रखना भी बहुत ज़रूरी है। वे वह हैं, जो सिर्फ़ नामके लिए ही काम करते हैं। किसी-न-किसी कामके बहाने अपने नामको पब्लिक नोटिसमें लाना ही जिनकी कर्त्तव्यपरायणताका मुख्य उद्देश्य है, जिस काममें उनके इस उद्देश्यकी सिद्धि नहीं होती—सबसे पहले उन्हींके श्रीनामकी पुकार नहीं मचती—फिर वह काम चाहे जैसा अच्छा क्यों न हो, उसे किसी कामका नहीं समझते ; वह उनकी दृष्टिमें कोरा अकर्तव्य है। उनके नामका 'पारस' जिस कामके साथ है, वह लोहा भी सोना है। उनकी यशश्चन्द्रिकाका संचार जहाँपर है, वह स्याह अँधेरा भी सफ़ेद चाँदनीसे बढ़कर है! संसार-भरके अच्छे कामोंका 'क्रेडिट' वे अपनी ही पाकेटमें डालना चाहते हैं। कोई काम कहींसे भी हो, वह सब उनका किया हुआ, या कम-से-कम कराया हुआ, माना जाना चाहिए। इसीमें सबकी ख़ैर है। कामके बदले उनकी प्रत्येकसे पब्लिक अपील यही होती है—

"दान करें सब लोग सुयश-मधु भूखा हूँ मैं।"

वे पद-पदपर श्रीकृष्णके विभूति योगके इस कथनका अपनेमें समन्वय करते रहते हैं—

"यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं ममतेजोंऽशसम्भवम्॥"

वे आँख मींचकर कुछ-न-कुछ बिना कामा-फुलस्टाप दिये फुर्तीसे किये जानेको ही 'वर्कर' होनेका ज़रूरी चिह्न समझते हैं। यह 'वर्कर' कहलानेकी लै जब हदसे बढ़ जाती है, तब बुरे-भलेकी सब तमीज़ उठा दी जाती है। फिर 'यत्किंचनकारिता'की दशामें जो कुछ किया जाय, वह 'सब ठीक है, ऐसा ही होता है', समझ लिया जाता है। बिलकुल यही दशा होती है—

"यथा हि पंचमीं धारामास्थाय तुरगः पथि।
स्थाणुं श्वभ्रं दरीं चैव वेगान्धो न समीक्षते॥
एवं वर्करलोकैस्तु धावद्भिः कार्यभूमिषु।
निन्दाऽधर्मः कीर्तिनाशो न किंचन समीक्षते॥"

तब घोर उच्छृंखलताजन्य लोकापवाद भी यह कहकर कि—'यह तो काम करनेवालोंके लिए भूषण है, काम करनेवालोंपर लांछन लगा ही करते हैं,' सादर ग्रहण कर लिया जाता है। जब नौबत यहाँ तक पहुँच जाती है, तो फिर खुलेबन्दों खुल खेलते हैं। इस हालतमें इन 'वर्कर' धौरेयोंसे यह आशा रखना कि 'किसीके कहने-सुननेसे ये सोच-समझकर चलेंगे,' दुराशामात्र है। नामके नोटिसकी ख़्वाहिश—'वर्कर' कहलानेकी प्रबल लालसा—उन्हें यह सुननेका मौक़ा नहीं देती कि—'अफ़आले-मुज़िरसे कुछ न करना अच्छा।' काम मुज़िर हो, या मुफ़ीद, उन्हें तो नामसे काम। उनका तो 'मोटो' ही यह बन जाता है—

"हम तालिबे-शोहरत हैं, हमें नंगसे क्या काम ;
बदनाम भी गर होंगे, तो क्या नाम न होगा?"

ऐसे 'वर्कर' महाशयोंकी चाहे जैसी दुर्गति हो, पर किसी तरह नाम ज़रूर निकल जाय, लोग यह ज़रूर समझ जायँ कि यह भी 'पाँचों सवारों'में हैं—किसी गिनतीमें हैं। ऐसे लोगोंकी शानमें प्रतिभाशाली 'अकबर' कविने क्या ही ख़ूब कहा है।

"आनर अगर मिले जो है नामो-नमूदमें,
क्या हर्ज़ ज़िन्दगी हो अगर हाले-ज़िश्तमें।
दोज़ख़के दाख़लेमें नहीं उनको उज्र कुछ ;
फोटो कोई लगा दे जो उनका बहिश्तमें।"

ऐसे 'वर्कर' वस्तुस्थितिका पलक मारते बदल देना अपने बाएँ हाथके इशारेका काम समझने लगते हैं। सिरमें यह सनक समा जाती है कि जब चाहें, हम अपनी घोषणा द्वारा दिनको रात, पापको पुण्य, न-कुछको सब-कुछ, फौरनसे पहले बनाकर, पब्लिकको विश्वास दिला सकते हैं। ईश्वर चाहे इस प्रकार अनायास 'वस्तुस्थिति' न बदल सके, पर वे ज़रूर बदल सकते हैं!

आस्तिक पुरुषोंका विश्वास है कि संसार-चक्रको घुमानेवाला एक ईश्वर ही है, पर ये 'वर्कर' महाशय समझते हैं कि नहीं, हम 'ही' न सही, पर हम 'भी' ज़रूर हैं। यह श्लोक मानो इन्हींके कहा गया है—

"स्वचित्तकल्पितो गर्वः कथमस्य (वर्करस्य) न जायताम्
उत्क्षिप्यटिट्टिभी पादावास्ते भंगभयाद्दिवः।"

"मैं करता हूँ, मैंने किया, मैं ही करूँगा, यह सब ज़रूर मेरा ही है"—यह सब 'वर्कर-सम्प्रदाय'का जप-मन्त्र बन जाता है, और इसका जो परिणाम होता है, वह महात्मा परमहंस रामकृष्णने अपने इस अमूल्य उपदेशमें अच्छी तरह बतला दिया है—

"अहंकारकी बड़ी दुर्दशा होती है। बछड़ा और मेमना (वर्कर=बकरीका बच्चा) 'हम-हम' और 'मैं-मैं' करते हैं। इससे उसे अनेक तरहकी दुर्गति सहनी पड़ती है। माका दूध वह नहीं पी पाता, उससे गायको (और बकरीको) चटवाकर दूसरे दूध दुह लेते हैं। जब बड़ा होता है, तब हल खींचता है, या कसाइयोंके हाथ पड़ता है। मोची उसके चमड़ेसे जूते बनाते हैं, वे पैरोंके नीचे रहते हैं। इसपर भी उसकी दुर्गतिका अन्त नहीं होता। उसकी आँतसे जब ताँत बनती है, और जब ताँतपर मुँगड़ा मारकर धुनियाँ रुई धुनता है, तब वह 'तैं-तैं' करता है, तब कहीं उसकी दुर्गतिका अन्त होता है। मनुष्यके 'मैं' और 'मेरा' इसी ज्ञानके कारण जितनी कुछ दुर्गति है। अहंबुद्धिके चले जाते ही सब जंजाल दूर हो जाता है।"

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि 'वर्कर' लोग अपनी 'मैं-मैं' अहंकार भाव, कीर्तिलिप्सा, नामकी धूम, वस्तुस्थितिको कथनमात्रसे बदल देनेकी सनक इत्यादि-इत्यादि दुर्भावोंको छोड़कर कार्य-क्षेत्रमें प्रवृत्त हुआ करें, तो लोकका उपकार हो, कुछ वास्तविक कार्य हो, फिर उनका आप ही नाम हो। मतलब यह है कि 'नाम-कमाना' आनुषांगिक फल हो, और कार्य करना मुख्य हो।

['पद्म-पराग' द्वितीय भागसे उद्धृत]
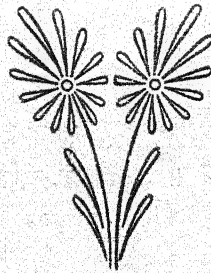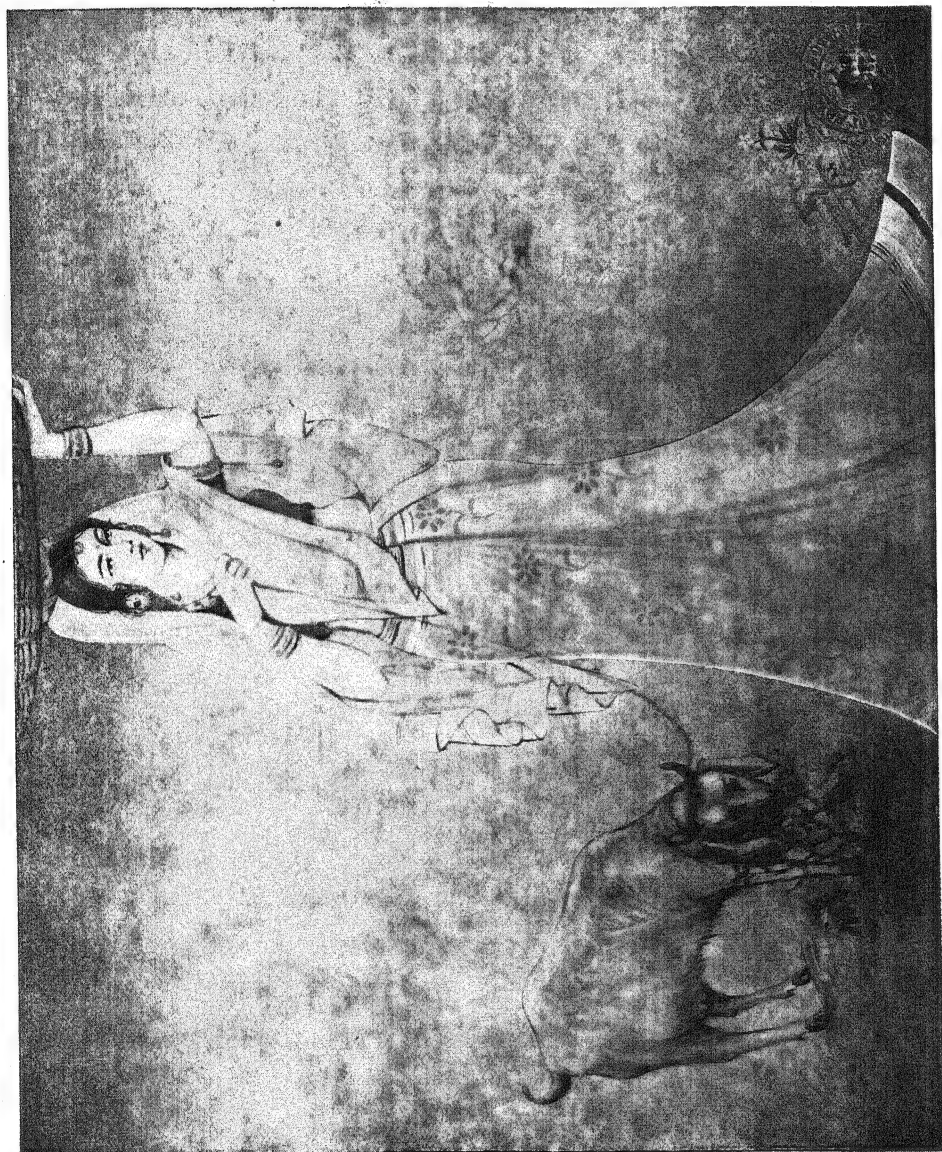
तरकारीवाली

'विशाल-भारत']

[चित्रकार—श्री सिद्धेश्वर मित्र
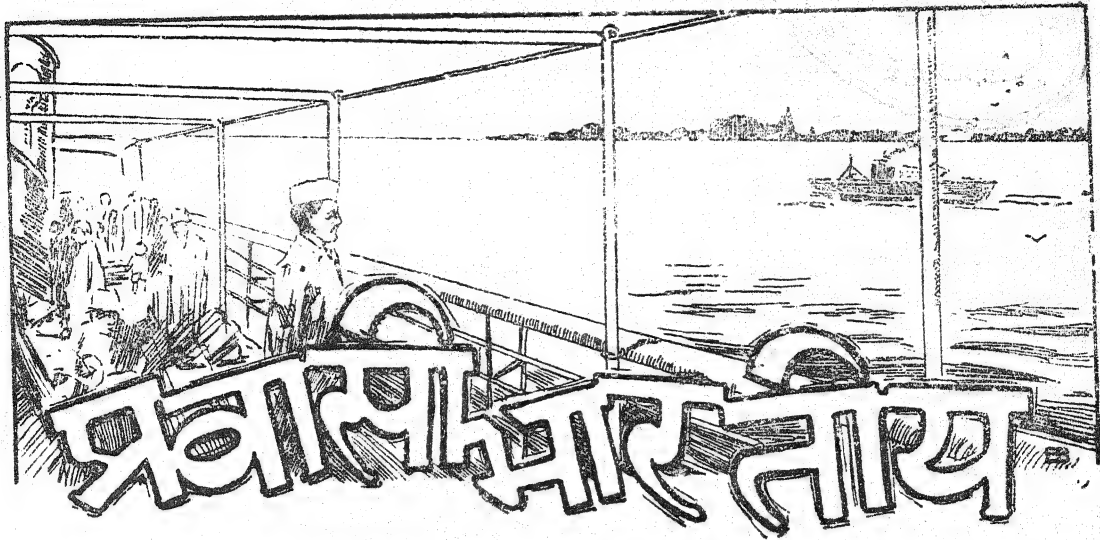
विशाल भारतका निर्माण

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रवासी भारतीयोंकी संख्या बीस-पचीस लाखके लगभग है, और ये लोग सीलोन, मलाया, मारीशस, ब्रिटिश-गायना, दक्षिण और पूर्व अफ्रिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और फिजी इत्यादिमें पाये जाते हैं। इन उपनिवेशोंको हम ग्रेटर इंडिया या विशाल भारतके नामसे पुकार सकते हैं। विशाल भारतका निर्माण करना, जिससे वह आगे चलकर भारतीय संस्कृतिके प्रचारमें भरपूर सहायता दे सके, वास्तवमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिसपर अभी गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया है। दरअसल वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिमें इस प्रकारके प्रश्नोंकी उपेक्षा होना स्वाभाविक ही है। देशके सुयोग्य नेता इस परिणामपर पहुँच चुके हैं कि बिना घरपर स्वाधीनता प्राप्त किये प्रवासी भारतीयोंके कष्टोंको दूर करना तथा विशाल भारतकी नींव सुदृढ़ आधारपर रखना सम्भव नहीं है, इसलिए उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति मुख्यतम कार्यमें लगा दी है, और यह उचित ही है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम लोग अपने बीस-पचीस लाख प्रवासी भाइयोंके प्रश्नोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखें। जब माता स्वयं भयंकर रूपसे अस्वस्थ हो, तो वह अपने बच्चेकी क्या सेवा कर सकती है? उसी प्रकार मातृभूमि भारतमाता पराधीन होनेके कारण अपनी सन्तान विशाल भारतकी ओर विशेष ध्यान नहीं दे सकती। फिर भी मातृभूमिको अपने इन सन्तानोंकी चिन्ता अवश्य होनी चाहिए। देशमें कुछ कार्यकर्ता—दस-बीस ही सही—ऐसे ज़रूर होने चाहिए, जो इन प्रश्नोंका अध्ययन करते रहें, जिससे उपयुक्त समय आनेपर उनके ज्ञानका समुचित उपयोग किया जा सके।

सबसे बड़ी त्रुटि जो हमारे कार्यकर्ताओंमें पाई जाती है, वह है दूरदर्शिता तथा दृढ़ताका अभाव। हम लोग आज काम करके कल ही उसका फल भी भोग लेना चाहते हैं। हमारा मानसिक क्षितिज इतना परिमित है कि हमें दूरकी बात कभी सूझती ही नहीं। क्रियात्मक कल्पनाशक्तिका हममें प्रायः अभाव हो गया है। हम उन लोगोंके पक्षमें नहीं हैं, जो कोरमकोर स्वप्न देखा करते हैं, और जिनकी कार्यकारिणी शक्ति नष्ट हो चुकी है, पर साथ ही हम उन लोगोंके भी विरोधी हैं, जो बिना सोचे-समझे अटरम्-सटरम् काममें लगे रहते हैं—चाहे वह काम अनुपयोगी ही क्यों न हो। गम्भीरता-पूर्वक विचार करके अपने लक्ष्यको निश्चित करनेवाले और फिर निरन्तर उसकी ओर अग्रसर होनेवाले कार्यकर्ता हमारे यहाँ कितने हैं?

आजसे बीस-पचीस वर्ष आगेकी बात सोचिये।

भारतभूमि तब तक सर्वथा स्वाधीन हो चुकी होगी, और तब उसका कर्तव्य होगा कि भारतीय संस्कृतिका सन्देश देश-विदेशों तक पहुँचाये, जिससे संसारके दु:खित जीवोंको कुछ शान्ति मिले। यद्यपि उस समय भारतमें अनेक आदमी ऐसे होंगे, जो भारतीय साम्राज्यवादके पक्षपाती हों, जो आसपासके द्वीपों तथा उपनिवेशोंपर भारतका शासन स्थापित करनेके लिए उत्सुक हों, पर ऐसे आदमियोंकी संख्या अल्प ही होगी, क्योंकि महात्मा गांधीका 'भारत' कभी साम्राज्यवादी नहीं बन सकता। हम लोग, जो साम्राज्यवादके अत्याचारोंसे इतना पीड़ित रहते हैं, क्या अपने अनुभवोंको भूलकर स्वयं उस पथके अनुगामी बन सकते हैं? यद्यपि इस समय यह प्रश्न बड़ी दूरका है, क्योंकि अभी तो हम ही साम्राज्यवादके चंगुलसे नहीं छूट पाये हैं, तथापि यह प्रश्न है विचारणीय। स्वतंत्र होनेपर भारतवर्षकी शक्ति अनन्त हो जायगी, और उस शक्तिका नियन्त्रण करना कोई आसान काम न होगा। आवश्यकता है ऐसे नवयुवक कार्यकर्ताओंकी, जो अपनी मातृभूमिके उज्ज्वल भविष्यमें विश्वास रखते हों, और जो उच्च आदर्शको अपने सामने रखकर बराबर उसकी ओर बढ़ते चले जायँ। कुछ पाठक कह सकते हैं, यह तो हवाई क़िले बनानेकी तरह उपहासास्पद कार्य है। अभी पराधीनता छूटी नहीं, और बातें करते हो पचीस वर्ष आगेकी! पर हवाई-क़िले बनाना कोई बुरी बात नहीं है। अमेरिकन लेखक थ्यूरोने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Walden' में एक वाक्य बड़े मज़ेका लिखा है—

"If you have built castles in the air, your work need not be lost; that is where they should be. Now put the foundation under them."

अर्थात्—"अगर तुमने हवाई-क़िले बनाये हैं, तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुम्हारा कार्य नष्ट हो गया। क़िले तो हवामें बनने ही चाहिए, अब उनकी नींव ज़मीनपर रख दो।" आश्यकता है स्वप्नदर्शी, आदर्शवादी तथा परिश्रमी नवयुवकोंकी, जो नि:स्वार्थ भावसे अपना जीवन रचनात्मक कार्योंमें लगा दें। विशाल भारतका निर्माण भी एक ऐसा ही कार्य है।

आज भी उपनिवेशोंसे भारतवर्षको लाखों रुपये प्रतिवर्षका लाभ होते हैं। गुजरातके बीसियों ग्राम ऐसे हैं, जहाँ पूर्व और दक्षिण-अफ्रिकाके रुपयोंसे बने हुए सैकड़ों घर विद्यमान हैं। यदि आप केनिया, युगाण्डा, टांगानिक्या और जंज़ीबारकी यात्रा करें, तो वहाँ अच्छी-से-अच्छी कोठियाँ आपको भारतीयोंकी दीख पड़ेंगी, और व्यापारका एक अच्छा भाग उनके हाथमें है। यह बात हम लोगोंमें से कितनोंको मालूम हैं कि मारीशसकी आबादीके लगभग तीनचौथाई हिन्दुस्तानी हैं। अकाली आन्दोलनके लिए हज़ारों ही रुपये कनाडाके सिखोंने दिये थे। इस आर्थिक लाभको हम छोड़ भी दें, तो भी नैतिक दृष्टिसे भी प्रवासी भारतीयोंने मातृभूमिका बड़ा हित किया है। सत्याग्रह-रूपी अस्त्रका प्रयोग दक्षिण-अफ्रिकामें ही हुआ था, और वहीं इक्कीस वर्ष रहकर महात्माजीने इस अस्त्रके संचालनमें इतनी कुशलता प्राप्त की थी। दक्षिण-अफ्रिकाके प्रवासी भाइयोंके सत्याग्रह-संग्रामसे मातृभूमिको जो नैतिक लाभ हुआ था, उसका अनुमान कौन लगा सकता है?

आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा न्यूज़ीलैंड इत्यादिने गत महायुद्धमें ब्रिटेनको कितनी सहायता दी थी। आगे चलकर संकटके समय प्रवासी भारतीय भी मातृभूमिकी इसी प्रकार सेवा कर सकते हैं। अभी भी उन्होंने बहुत-कुछ सहायता दी है। 'तिलक-स्वराज्य-फंड' के लिए उन्होंने एक अच्छी रक़म भेजी थी—चालीस हज़ार रुपये तो अकेले दक्षिण-अफ्रिकाके काका रुस्तमजीने ही भेजे थे—और राष्ट्रीय विद्यालयोंको तो उपनिवेशोंसे कुछ-न-कुछ सहायता मिलती ही रहती है।

कल्पना तो कीजिए कि भविष्यमें हमारे ये प्रवासी भाई मातृभूमिके लिए कितने उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। आज भी यदि हमारे साधनसम्पन्न देशवासी विदेश-यात्रा करना चाहें, तो संसारके विभिन्न भागोंमें

उनका स्वागत करनेके लिए भारतीय मौजूद हैं। हिन्दुस्तानमें पढ़े-लिखोंकी भरमार है, और उपनिवेशोंमें कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है। प्रति महीने पाँच-सात चिट्ठियाँ सुशिक्षित नवयुवकोंकी हमारे पास ऐसी आती ही रहती है कि हमें किसी उपनिवेशको भिजवा दीजिए। अनेक कार्यकर्ता हमारे यहाँ ऐसे पड़े हुए हैं, जिन्हें यदि जहाज़का किराया ही मिल जाय, तो वे अपने भाग्यकी आज़माइश करनेके लिए विदेश जानेको उद्यत हो सकते हैं; पर किरायेका इन्तज़ाम कहाँसे किया जाय? ब्रिटिश सरकार प्रतिवर्ष लाखों पौंड व्यय करके अपने ग़रीब साहसी नवयुवकोंको कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि भेजा करती है, और जापान-सरकारका वैदेशिक विभाग भी लाखों ही येन हर साल प्रवासी जापानियोंके लिए ख़र्च किया करता है। यदि हमारा देश आज स्वाधीन होता, तो क्या सौ दो सौ शिक्षित युवकोंको विदेश भेजना कोई मुश्किल बात होती?

भारतकी जनसंख्या इस समय पैंतीस करोड़ है, और यह निरन्तर बढ़ती ही जाती है। सहस्रों वर्षोंसे जुताई होते-होते यहाँकी भूमि कमज़ोर पड़ गई है, और उसमें अच्छी पैदावार करना कठिन हो गया है। उधर उपनिवेशोंमें लाखों एकड़ ज़मीन ख़ाली पड़ी हुई है। हमारी सरकारमें यदि कुछ भी कल्पनाशक्ति होती, तो अब तक लाखों ही भारतीय विदेशोंमें बसे हुए फलते-फूलते नज़र आते।

व्यापारिक दृष्टिसे प्रवासी भारतीयोंका तथा भारतका सम्बन्ध कम महत्त्वका नहीं है। बम्बईके खोजा व्यापारियोंसे पूछिये, कितने लाख रुपये प्रतिवर्ष वे अफ्रिकासे व्यापार करते हुए कमाते हैं। अहमदाबादके सेठ अम्बालाल साराभाई तथा बम्बईके सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासकी कोठियाँ पूर्व-अफ्रिकाके कई प्रदेशोंमें मौजूद हैं। वास्तवमें पूर्व-अफ्रिकाको आप वृहत्तर गुजरात कह सकते हैं। भारतकी बनी हुई चीज़ोंको प्रवासी भारतीयोंमें बेचना तथा उनके द्वारा उत्पन्न वस्तुओंकी खपत यहाँपर करना कोई कठिन बात नहीं।

सांस्कृतिक दृष्टिसे भारत तथा विशाल भारतका सम्बन्ध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। महात्माजीके अहिंसात्मक सिद्धान्तकी उपयोगिता केवल भारत तक ही परिमित नहीं है। यदि इस सिद्धान्तका प्रचार सम्पूर्ण संसारमें हो जाय, तो कितनी ख़ून-ख़राबी रुक सकती है। इस समय भी प्रवासी भारतीय अनेक दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंका संचालन कर रहे हैं। केनियासे 'केनिया डेलीमेल', जंज़ीबारसे 'जंज़ीबार वाइस' और 'जंज़ीबार समाचार', टांगानिक्यासे 'टांगानिक्या हेराल्ड' तथा 'टांगानिक्या ओपीनियन', नेटालसे 'इंडियन ओपीनियन' इत्यादि पत्र निकलते हैं। इनके अतिरिक्त मारीशस तथा फिजी इत्यादिसे भी 'मारीशस मित्र', 'आर्य पत्रिका', 'फिजी-समाचार' तथा 'वृद्धि' इत्यादिका प्रकाशन होता है। इन सबके द्वारा भारतीय विचारोंका थोड़ा-बहुत प्रचार होता ही रहता है, और यदि सुसंगठित ढंगसे प्रयत्न किया जाय, तो ये पत्र हमारे सांस्कृतिक कार्यमें ज़बरदस्त सहायता दे सकते हैं। बक़ौल राजा महेन्द्रप्रताप, ये टापू हमारे लिए भारतीय संस्कृतिके प्रचारार्थ अड्डे बन सकते हैं।

हम लोगोंको, जो हिन्दी-भाषा-भाषी हैं, इस कार्यमें और भी अधिक दिलचस्पी लेनी चाहिए। जिस प्रकार भारतकी राष्ट्र-भाषा हिन्दी बन गई है, उस प्रकार विशाल भारतकी भाषा भी हिन्दी ही बन रही है। फिजी सरकारने तो फिजी-प्रवासी भारतीयोंकी सामान्य भाषाका पद हिन्दीको ही प्रदान किया है, और भविष्यमें वहाँ हिन्दीका अधिकाधिक प्रचार होनेकी आशा है।

जिस दृष्टिसे भी देखिये विशाल भारतका निर्माण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह कार्य हम लोगोंके लिए कोई नवीन भी नहीं है। प्राचीन कालमें भगवान गौतम बुद्धके अनुयायी भिक्षुओंने देश-देशान्तरोंमें भारतीय संस्कृतिका जो प्रचार किया था, उसके अवशिष्ट चिह्न अब भी जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, श्याम, बाली, लम्बक इत्यादि द्वीपोंमें पाये जाते हैं। जावाके बोरोबूदर नामक मन्दिरकी गणना संसारकी आश्चर्यजनक वस्तुओंमें

की जाती है। आजकल तो यात्राके साधन इतने सुलभ हो गये हैं, पर उन दिनों यात्रा करना काफी खतरनाक था। सैकड़ों ही बौद्धभिक्षु हिमालयके हिममंडित पर्वतोंको पारकर चीनमें भारतीय संस्कृतिका प्रचार करनेके लिए गये थे। यह उन्हींके त्याग तथा तपका परिणाम है कि आज दुनियामें सबसे अधिक संख्या बौद्ध लोगोंकी है। भारतीय संस्कृतिमें ऐसे विचित्र गुण मौजूद हैं, जो पीड़ित तथा निराश संसारको आत्मिक सुख और आशाका सन्देश दे सकते हैं। भारतीय रक्तमें अब भी वह साहस विद्यमान है, जो आदर्शकी प्राप्तिके लिए जीवनको संकटमें डालनेके लिए उद्यत हो सकता है। सदियोंकी गुलामीके बाद भारतवर्ष फिर जाग्रत हो रहा है, और उसकी यह जाग्रति केवल अपने लिए ही नहीं, वरन् संसारके लिए कल्याणकारी होगी।

हम लोगोंकी—भारतीय नवयुवकोंकी—जिम्मेवारी बड़ी भारी है। हमें अपने समय, शक्ति तथा साधनोंका उपयोग इस ढंगसे करना चाहिए कि आगे आनेवाली सन्तान हमारे कार्यको गौरवके साथ स्मरण करे। भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियोंके आदमियोंकी रुचि भी भिन्न-भिन्न होगी, इसलिए यह आशा करना कि सब लोग एक ही काममें लग जायँ, मूर्खता होगी। जिसकी रुचि जिस रचनात्मक कार्यमें हो, वह वही काम करे। हमारा कहना केवल यही है कि कुछ नवयुवक विशाल भारतके निर्माण-सम्बन्धी कार्यको अपनाकर अपने जीवनका लक्ष्य बना लें। देशके उन साधनसम्पन्न धनाढ्य पुरुषोंसे भी जिनके हृदयमें भाव है, और जो समय-समयपर राष्ट्रीय उन्नतिके कार्योंमें सहायता दिया करते हैं, हमारी यह अपील है कि वे इस उपेक्षित विषयकी ओर भी ध्यान दें। यदि एक अंग्रेज़ सेसिल रोड्स लाखों पौंड जमा करके पचासों छात्र-वृत्तियाँ ब्रिटेनसे औपनिवेशिक अंगरेज़ोंका सम्बन्ध दृढ़ करनेके लिए दे सकता है, तो क्या हमारे देशके धनाढ्य—सर पुरुषोत्तमदास, श्री अम्बालाल साराभाई, श्री घनश्यामदास बिड़ला, श्री जमनालाल बजाज और बाबू शिवप्रसाद गुप्त इत्यादि महानुभाव—इतना भी प्रबन्ध नहीं कर सकते कि जिससे दो-चार नवयुवक प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंका विधिवत् अध्ययन कर सकें?

बहुत सम्भव है कि जो लोग इस कार्यमें लगे हुए हैं, वे अपने जीवन-कालमें अपने कार्यके परिणामको न देख पायें, पर इससे क्या होता है? बाबा बाग़ लगाते हैं, और नाती उसका आनन्द उठाते हैं। आइये, हम लोग भी विशाल भारत-रूपी उपवनकी नींव रखें। कभी समय आयगा, जब बीसियों ही जहाज़ भारत तथा विशाल भारतके बीच इधर-से-उधर दौड़ते होंगे, जब गर्मियोंकी छुट्टियोंमें भारतीय विद्यार्थी अपने ज्ञानवर्द्धनके लिए जावा, सुमात्रा अथवा पूर्व-अफ्रिका या मलायाकी यात्रा करेंगे, जब भारतके सुशिक्षितोंको अपने व्यक्तित्वके विकासके लिए और अपने भाइयोंकी सेवाके लिए उपनिवेशोंमें पर्याप्त कार्यक्षेत्र मिलेगा। जब स्वाधीन भारतीय कृषकोंकी बस्तियाँ पृथ्वीके प्रत्येक खंडमें पाई जायँगी, जब भारतीय व्यापारी स्वतंत्रतापूर्वक संसारके सभी देशोंमें लाभदायक वस्तुओंका व्यापार करेंगे, और जब भारतके सांस्कृतिक सन्देशवाहक भारतसे विशाल भारतमें और फिर उसके द्वारा सम्पूर्ण संसारमें अपने विचारोंका प्रचार करेंगे।

कभी-न-कभी वह सौभाग्यपूर्ण दिन अवश्य आयगा, और तभी विशाल भारतके निर्माणका स्वप्न सत्य सिद्ध होगा।
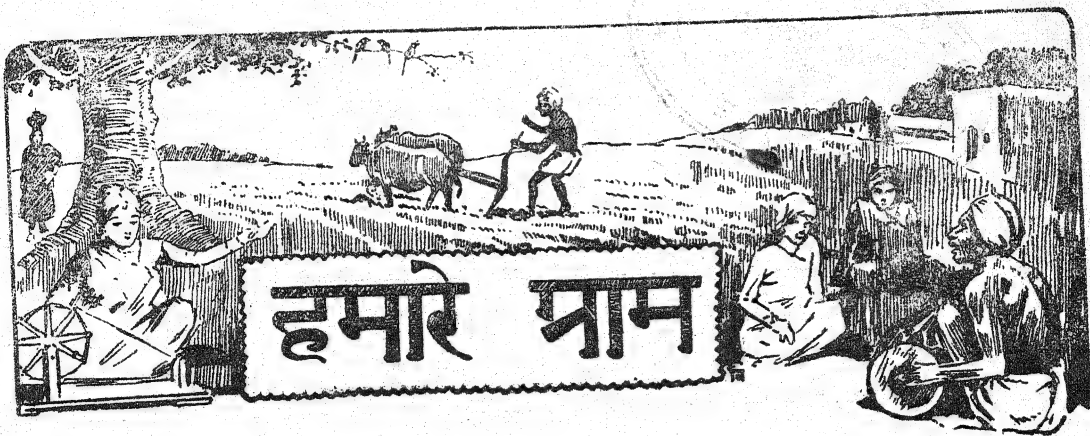
गोभी और करमकल्ला

श्रीराम शर्मा

गोभी—फूलगोभी—को शाक-भाजियोंकी रानी कहते हैं। भला, ऐसा कौन होगा, जिसे गोभी पसन्द न आये।* सम्भव है, कुछ लोग ऐसे हों, जिन्हें गोभी पसन्द न हों; पर गोभीके चाहनेवालोंकी संख्या बहुत होगी, इसलिए गोभी और करमकल्ला (Cabbage) की काश्तपर कुछ लिखना लाभप्रद होगा। गोभी और करमकल्लेकी काश्तपर मैं अपने अनुभूत प्रयोग ही लिखूँगा।

खानेको तो मैंने गोभी बहुत छोटेपनमें खाई थी। स्कूल और कालेजके बोर्डिंग-हाउस-जीवन-सम्बन्धसे खुर्जा और आगरे और 'प्रताप'के कुटुम्बमें रहनेके कारण कानपुरकी मण्डीकी बढ़ियाँ-से-बढ़ियाँ गोभी खाई थी; पर सन् १९२१ से पूर्व मुझे न तो उसकी काश्त करनी आती थी, और न भिन्न-भिन्न प्रकारकी गोभियोंके नाम और उनके तुलनात्मक स्वादका ही पता था। सन् १९२१ में टिहरी (गढ़वाल) राज्यके सुपरिंटेंडेन्ट मियाँ उमरुद्दीन तथा उनके लड़के मुहम्मद अज़ीज़से गोभी पैदा करना मैंने सीखा, और उनकी कृपासे ही मालूम हुआ कि संसारमें बढ़िया और स्वादिष्ट गोभियाँ कौनसी होती हैं, और उनकी काश्त कैसे करनी चाहिए। उसके उपरान्त अपने खेतपर लगाई हुई गोभी और करमकल्ला (बन्दगोभी) पर मैंने कई बार पहला इनाम लिया है, और बढ़िया गोभी करनेमें मैं अपने किसी भी साहित्यक मित्रको हरानेका साहस रखता हूँ। आशा है, मेरे इस लेखसे कुछ प्रतिद्वन्द्वी तैयार होंगे, और मुझे हरानेका दावा करेंगे। यदि दो-चार पढ़े-लिखे लोग भी मेरे लेखानुसार गोभी करेंगे, मुझे हरानेकी चुनौती देंगे, तो मुझे बड़ा सन्तोष होगा।

* घुइयोंसे लोगोंकी कुट्टी हो सकती है। श्रीयुत बाबू प्रेमचन्दजीकी तो है ही। मेरी भी है। घुइयोंके विरुद्ध इस कुट्टीदलमें और भी बहुतसे लोग होंगे। —लेखक

गोभीके भेद

गोभीको हम तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं; अगैती—पहले आनेवाली, बीचमें आनेवाली और पुसही या मावी—पिछाई अन्तमें आनेवाली। इस विभाजनका दूसरा वर्गीकरण यों भी हो सकता है कि गोभी दो प्रकारकी होती है—देशी और विलायती। देशी गोभी (१) अगैती, (२) मध्यवर्ती—बीचमें आनेवाली तथा (३) पिछाई—तीनों प्रकारकी होती हैं; पर विलायती गोभीको अन्तिम फसलके लिए ही बोना चाहिए।

देशी गोभी

अगैती गोभी करनेके लिए ताकि कारकी पितृविसर्जनीय अमावस्या तक (सितम्बरके अन्तिम सप्ताह और अक्टूबरके प्रथम सप्ताह तक) फूलगोभी

खानेको मिल सके, मईके दूसरे सप्ताहसे बीज बोना चाहिए। अगैती फूलगोभीके लिए काशी या पटनाका ही बीज बोना चाहिए। बीजके लिए किसी ख़ास विक्रेतासे ही बीज लेना चाहिए। दो-चार बार ख़राब बीजके कारण अगैती गोभी मैं तैयार ही न कर सका। लम्बे-चौड़े विज्ञापनसे बीज-विक्रेता महाशयके फाँसेमें आ गया, और सारा परिश्रम यों ही गया। अगैती गोभीके विषयमें एक विशेष बात यह है कि बीजकी ख़राबीके अतिरिक्त ग्रीष्मऋतुका प्रलयंकारी ताप गोभीके नन्हें पौदोंको उगते ही झुलसा देता है, या बीजको ही क्यारियोंमें भून देता है, इसलिए बचावके लिए दो बातोंपर ध्यान देना चाहिए—(१) जिन क्यारियोंमें पौदके लिए बीज बोया हो, उन्हें ऊपरसे छा दे, या क्यारियोंके आरपार कुछ मोटी लकड़ियाँ डालकर ऊपरसे छप्परका टुकड़ा या अरहरकी सूखी लगें रख दे। सायंकालको छप्परके टुकड़े या लगोंको उठाकर अलग रख दे, ताकि रातको पौदकी क्यारियाँ खुली रहें, और प्रातःकाल ८ बजे क़रीब क्यारियोंको फिर ढक दे। ऐसा करनेसे पौद तैयार करनेमें बड़ी सफलता मिलती है। (२) अगैती गोभीके बीजोंको कई बार बोना चाहिए, ताकि किसी-न-किसी क्यारीकी पौद तैयार ही हो जाय। १५ मईसे लगाकर १५ जून तक अगैती गोभीके बीज बोने चाहिए।

बीचवाली गोभी

बीचवाली गोभीके बीज, अर्थात् उस गोभीके बीजको जो कार्तिक और अगहनमें (१० अक्टूबरसे १० दिसम्बरके लगभग) आती है, १५ जूनसे १५ जुलाई तक बोना चाहिए। बीचवाली गोभीकी पौदेकी रक्षा पन्द्रह-बीस दिन तक अगैती गोभीकी पौदकी भाँति करना चाहिए, अर्थात् उस समय तक कि बारिश न हो जाय। बारिशके होते ही लूका चलना बन्द हो जाता है, और तब फिर पौदके मारे जानेका कोई भय नहीं रहता। वैसे तो अगैती और बीचवाली गोभी इतनी मज़बूत होती है कि गर्मीको भलीभाँति सह लेती है।

अगैती और बीचमें होनेवाली गोभीको शहरी जगहमें न लगाना चाहिए, नहीं तो बारिशके पानी भरने और फिर धूप पड़नेसे गोभीके पौदोंकी जड़ें उबल जाती हैं, और गोभी मारी जाती है।

अगैती और बीचवाली गोभीको एक रोग भी लग जाता है। छोटे-छोटेसे लगाकर बड़े पौदों तकको सुड़ी लग जाती है। गोभीके पत्तोंके रंगके छोटे-छोटे रेंगनेवाले कीड़े पत्तोंमें लग जाते हैं, और कभी-कभी तो गोभीके पौदेके सिरपर निकलनेवाले पत्तोंपर अपना अड्डा जमाते हैं, और ऐसी क़िलेबन्दी करते हैं कि सरसरी नज़रसे तो वे दिखाई भी नहीं पड़ते। पौदेके कतरे हुए पत्ते इस बातके प्रमाण हैं कि गोभीके पौदेके शत्रुओंने डेरा डाल दिया है। कटे पत्तेके अतिरिक्त उनके छोटे महीन लेंडोंसे भी ज्ञात हो जाता है कि रेंगनेवाले शत्रुका आगमन हो चुका। ये छोटी सुड़ियाँ इतनी खद्दड़ होती हैं कि आकारके अनुपातसे 'विशाल-भारत'-सम्पादककी बिरादरीके कुछ लोगोंको खानेमें मात दे सकती हैं। इन सुड़ियोंकी बढ़वारका भी कुछ ठिकाना नहीं—दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती हैं। आलपीनके सिरेके बराबर दिखाई पड़ती हैं, और बातकी बातमें बढ़कर छोटे बच्चेकी उँगलीके समान हो जाती हैं। और फिर चालाक इतनी होती हैं कि तनिकसी आहट या भयकी आशंकासे पौदेपर से लटक पड़ती हैं। मकड़ीकी भाँति शरीरसे जाला निकालती हैं, और उसीके सहारे लटक पड़ती हैं। वे गोभी करनेवालेके साथ आँखमिचौनी खेलनेको सर्वदा तैयार रहती हैं।

गोभीके पौदोंकी रक्षाकी ख़ातिर इन सुड़ियोंको मार देना चाहिए। पेड़-पेड़को देखकर और छोटी-बड़ी सुड़ियोंके दृढ़ तिनकेसे अलग करके गुट्टपर रखकर मार देना चाहिए। प्रत्येक पेड़की देखभाल उसी अवस्थामें सम्भव है, जब कोई अपने ही खानेके लिए

थोड़े पेड़ लगाये नहीं, तो बीघे दो बीघे गोभीके पेड़ोंको इस प्रकार देखना एक बला मोल लेना है। इसके लिए 'बोर्डो मिक्श्चर' पौदोंके ऊपर छिड़कना चाहिए। और न कुछ बन पड़े, तो लकड़ीकी राख प्रातःकाल पौदोंपर बुरकना चाहिए। जहाँपर हरियालीकी कमी होती है, वहाँपर अन्य फुदकनेवाले कीड़े भी गोभीपर धावा बोलते हैं। अगैती गोभीकी देखभाल बहुत करनी पड़ती हैं, पर यदि श्राद्धके दिनोंमें कोई गोभी तैयार कर सके, तो दाम भी ख़ासे अच्छे मिल सकते हैं। मैं तो अपने खाने-भरके लिए ६०-७० पेड़ अगैती गोभीके करता हूँ।

गोभीके लिए ज़मीन

गोभी बेहद खाद चाहती है। एक छोटी क्यारीमें एक बड़ी डलिया-भरके मरा खाद डालनेसे भी कुछ हानि नहीं। जिन क्यारियोंमें पौद तैयार की जाती है, उनमें उन स्थानोंकी अपेक्षा कम खाद होनी चाहिए, जहाँपर गोभीके पौदे खाँदकर रखते हैं।

बीजका बोना

बीज बोनेके लिए छोटी-छोटी क्यारियाँ तैयार करनी चाहिए, जिनमें मिट्टीके ढेले न हों। आध इंचसे अधिक गहरा बीज न बोना चाहिए। सबसे अच्छा ढंग यह है कि खाद देकर जब क्यारी एकसी हो जाय, तब पवेरवाँ (बीज छिटकाकर) बीज बो देना चाहिए। बीज बहुत घना नहीं बोना चाहिए, नहीं तो पौद पतली और कमज़ोर होगी।

गोभीका बीज तीसरे-चौथे दिन ही उगने लगता है, और यदि पौदकी क्यारियों (Nursery) की ख़ूब देखभाल रखी जाय, उसमें कूड़ा-कर्कट और घास न होने दी जाय और पानी समयपर दिया जाता रहे, तो पौद धरने (transplant) लायक़ एक मासके भीतर ही हो जाती है। जहाँ पौदा तीन-चार इंच बड़ा हो, तीन-चार पत्तियाँ निकल आयँ, उसी समय उसे खाँदकर रख देना चाहिए। गोभीके पौदोंको सायंकाल ही खाँदकर पहलेसे तैयार की हुई ज़मीनमें लगाना चाहिए, खाँदनेसे एक दिन पूर्व क्यारियोंमें हल्का पानी दे देना चाहिए और प्रत्येक पौदको इस प्रकार खाँदना चाहिए कि उसकी जड़ें न खुल जायँ। जड़ोंके साथ मिट्टी ज़रूर आनी चाहिए। प्रत्येक पेड़के साथ मिट्टीका आना आवश्यक इसलिए है कि 'सूख जाते हैं रूख फ़ुर्क़तमें'। मिट्टी साथ आनेसे पेड़को स्थान छोड़ना हड़ता नहीं। पौदेकी जड़के समीप ज़रा खुरपी लगाकर ऊपरको किया कि आधी छटाक मिट्टीके साथ गोभीके पौदेका थामरा निकल आता है।

पौदे लगानेका ढंग

गोभी घरके लिए पैदा की जाती है, या फिर बेचनेके लिए। गोभी चाहे बेचनेके लिए की जाय, या केवल घरके ख़र्चेके लिए, मैं तो इस बातपर ज़ोर दूँगा कि गोभी लगानेके लिए ख़ूब खाद डालकर खेत तैयार करना चाहिए, और फिर झोरे बनाने चाहिए। झोरेमें डेढ़ फ़ीटसे लेकर दो फ़ीटकी दूरीपर पौदेको खाँदकर लगाना चाहिए। झोरेमें जहाँपर पौदा लगाना हो, वहाँ एक फावड़ा गहरा मारकर उसमें एक पसौं खाद डाल देनी चाहिए, और उसीपर पौदा लगा देना चाहिए, और फावड़ेसे किये गये गड्ढेकी मिट्टीसे जहाँ तक भरा जा सके, गड्ढेको भर देना चाहिए। इस प्रकार रखनेमें कोई देर नहीं लगती। गोभीको बहुत घना नहीं रखना चाहिए। घना रखनेसे फूल छोटे आते हैं।

अब रही घरके लिए, अथवा थोड़ी जगहमें, गोभी लगानेकी बात, सो उसके लिए मेरा आग्रह यह है कि झोरे एक-एक गज़की दूरीपर बनाये जायँ, और झोरोंमें दो-दो फ़ीटकी दूरीपर एक-एक फुट गहरा और आधे फुटके व्यासका गड्ढा खोदा जाय, और गड्ढेकी आधी गहराई तक मरी खादसे भर देना चाहिए। शेष गड्ढेको दो-तिहाईको खुदी हुई मिट्टीसे भर देना चाहिए, और खाद और मिट्टीको ख़ूब मिला देना चाहिए। इस प्रकार जब गड्ढे तैयार हो जायँ, तब उनमें क्यारियोंसे पौदे खाँदकर लगा देना चाहिए। स्मरण रहे, पौद लगाते समय

गड्ढोंकी मिट्टी पोली रहे। ठोक-पीटकर मिट्टीको कड़ा नहीं करना चाहिए। इस प्रकारसे लगी हुई गोभीके पौदे गड्ढोंमें, मोरोंकी धरातलसे, नीचे रहेंगे। इससे कुछ हानि नहीं, वरन लाभ ही है; क्योंकि जैसे-जैसे पौदा बढ़ता आवे, वैसे पौदेके चारों ओर नराकर गड्ढेको धीरे-धीरे मिट्टीसे भरते जाना चाहिए। फलस्वरूप गोभीके पौदेके तनेसे भी जड़ें फूटती हैं, और पौदेको खुराक लेनेके नवीन साधन मिलते हैं।

उपर्युक्त बातें केवल पिछाई गोभीके लिए हैं। पिछाई गोभीमें सुड़ियोंकी बीमारी भी नहीं लगती।

पिछाई गोभी देशी भी होती है और पटना और काशीकी पुसही गोभियाँ प्रसिद्ध हैं। पिछाई गोभीको २० सितम्बरसे ७ अक्टूबर तक बोना चाहिए। यों बोनेको तो अख़ीर अक्टूबर तक बोते हैं, पर पंजाब, यू०पी०, बिहार और राजपूतानेमें इन्हीं दिनोंमें बोना चाहिए।

हाँ, पिछाई गोभीके लिए मैंने कई प्रकारकी विलायती गोभियाँ की हैं, और मैं तो उनपर फ़िदा हूँ। अंग्रेज़ियत और विलायतीपनेका घोर विरोधी हूँ; पर इंग्लैण्ड और अमेरिकाकी शाक-भाजीके बीजोंको बहुत पसन्द करता हूँ। सटनकी प्यूरिटी (Sutton's purity और फ़र्स्ट स्नो बाल (Sutton's first snow ball) की मैं प्रशंसा कर नहीं सकता। दूधके फेनके समान तो फूलका रंग होता है, और फूल कड़ा इतना होता है कि एक बार घूँसेके साधारण प्रहारको सह ले। साथ ही अति कोमल और स्वादिष्ट होता है। जल्दी आनेवाली गोभी तीन महीनेमें—अधिक-से-अधिक १०० दिनमें—तैयार हो जाती है, और देरसे आनेवाली लगभग चार महीनेमें। इसलिए पिछाई गोभीको (देशी और विलायतीको) नवम्बरके प्रथम सप्ताहमें खाँदकर रख देना चाहिए। खानेके लिए कोमल फूल ही अच्छा होता है। पौदेको खाँदकर सायंकालको लगाना चाहिए, और उसी समय पानी दे देना चाहिए। नराते ज़रूर रहना चाहिए। नरानेसे घास-पात भी नहीं होने पाता और ज़मीन भी पोली रहती है, जिससे पौदेकी बढ़वारमें सहायता मिलती है।

मेरे ख़यालसे पहाड़ोंपर विलायती गोभी ही बोनी चाहिए, और बोनेका समय होना चाहिए फ़रवरीके अन्तसे एप्रिलके अन्त तक। आधे छटाँक बीजोंमें लगभग दो हज़ार पौदे होते हैं। खाँदकर लगानेके बाद कुछ पौदे मारे जाते हैं। उनके स्थानमें लगानेके लिए कुछ पौदे खड़े रहने देना चाहिए।

गोभी इतनी खाद चाहती है कि खाँदनेके एक मास पश्चात 'नाइट्रेट आफ़ सोडा'की एक चुटकी प्रति पौदेके लिए हितकर होगी। नाइट्रेट आफ़ सोडा या सल्फ़ेट आफ़ अमोनियाको बटकर उतनी ही रेत मिला लेनी चाहिए, और चुटकीभर पौदेकी जड़से तीन-चार अंगुल दूर चारों ओर फैला देना चाहिए। गाँवका नोना भी वही काम करता है।

गोभीके पौदोंकी परवरिश बड़ी सावधानीसे करनी चाहिए। पानी, नराई और गुड़ाईकी असावधानीसे फूलमें ख़राबी आ जायगी। जब फूल आने लगें और बाहर दिखाई पड़ने लगें, तब गोभीके एक पत्तेको मोड़कर उनपर कर देना चाहिए, ताकि सूर्यकी किरणें उनपर न पड़ें। गोभी उस नाज़नीनकी भाँति है, जिसके सौन्दर्यकी छवि सूर्यके देखनेसे फीकी पड़ जाती है।

करमकल्ला या बंदगोभी

जो बात फूलगोभीके लिए है, वही करमकल्ला या बंदगोभीके लिए भी है। हाँ, करमकल्लाकी अगली और बीचकी फ़सलकी कोई दिक्क़त नहीं। हाँ, इसमें कुछ जल्दी आनेवाले होते हैं। आकारसे इसके कई भेद होते हैं; पर दो भेद प्रसिद्ध हैं—(१) चपटे और (२) गोल। करमकल्ला फूलगोभीकी अपेक्षा अधिक मज़बूत होता है। इसको अगस्तसे दिसम्बर तक बो सकते हैं, और पहाड़ोंपर मार्चसे अगस्त तक बीज बोने चाहिए।

करमकल्लेकी क़िस्मोंमें मुझे सटनके दो पसन्द हैं—

सटन्स प्राइड आफ़ इंडिया (Sutton's Pride of India) और एक्लिप्स ड्रमहेड (Sutton's Eclipse Drumhead)। पिस्टनजी पूचाके करमकल्ले भी अद्वितीय होते हैं, कैनेरियन सोलिड ड्रमहेड (Canarian Solid Drumhead) और वर्ल्ड बीटर (World Beater) भी पसन्द हैं। इनपर मैंने कई बार फ़र्स्ट प्राइज़ पाया है।

गाँठगोभी

गाँठगोभी इसी वंशका शाक है, और उसके लगानेकी भी विधि फूलगोभी और करमकल्लेकी-सी है। भेद इतना ही है कि गाँठगोभी दो महीनेमें ही आ जाती है। बढ़नेमें थोड़ा स्थान घेरती है, इसलिए एक फुटपर इसको लगाना चाहिए। फोरोंकी दूरी भी डेढ़ फ़ोटसे अधिक नहीं होनी चाहिए। फोरोंके ऊपर जल्दी होनेवाली मूली भी लगाई जा सकती है।

साहित्यिक सन्निपात

(नं० २)

[गतांकमें हमने 'साहित्यिक सन्निपात' शीर्षक नोट लिखकर हिन्दी-जनताका ध्यान 'वर्तमान-धर्म' नामक एक ऊटपटांग लेखकी ओर आकर्षित किया था। लेखक तथा पत्रका नाम हमने जान-बूझकर छोड़ दिया था, पर 'भारत' सम्पादक श्री नन्ददुलारे वाजपेयी एम० ए० ने उसे प्रकट कर दिया है। लेख सुप्रसिद्ध रहस्यवादी कवि श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'का लिखा हुआ है, और प्रयागके 'भारत'में प्रकाशित हुआ था। हिन्दीके वयोवृद्ध साहित्य-सेवियोंकी सम्मतियाँ अपनी जानकारीके लिए हमने मँगाई थीं, और उनमें से अनेक सज्जनोंने अपनी सम्मति लिख भी भेजी है। उनकी सम्मतिका सारांश यह है कि 'वर्तमान-धर्म' 'विक्षिप्तका बर्राना', 'पागलका प्रलाप' या effusions of a diseased mind (विकृत मस्तिष्कका उद्गार) है। इन वृद्ध साहित्य-सेवियोंको हम वाद-विवादके दंगलमें नहीं घसीटना चाहते, क्योंकि सन्निपाती लोगोंका कुछ ठिकाना नहीं है, न जाने कब किसका अपमान कर बैठें, पर साधारण जनतासे तथा नवयुवक साहित्य-सेवियोंसे हम यह आशा अवश्य करते हैं कि वे अपनी सम्मति स्पष्टतया प्रकट कर दें। जो महानुभाव इस वाद-विवादसे अलग रहना चाहते हैं—चाहे वे वृद्ध हों या युवक—उनपर भी किसी तरहका दबाव डालना हम अत्यन्त अनुचित समझते हैं, पर हमारी सम्मतिमें समाचारपत्रों तथा मासिक पत्रोंका यह कर्तव्य है कि वे इस बीमारी (साहित्यिक सन्निपात) से जनताको सावधान कर दें। आखिर प्लेग और हैज़ा फैलनेपर वे ऐसा करते ही हैं। यदि कोई आदमी कुओंमें हानिकारक पदार्थ डालता फिरे और इस बातकी ख़बर पत्र-सम्पादकोंको लग जावे, तो उनका कर्तव्य होगा कि वे जनताको सूचना दें और सरकारका भी ध्यान इस बेजा हरकतकी ओर आकर्षित करें। यहाँ जब साहित्य-सरोवरमें कंकर-पत्थर फेंके जा रहे हों, समाचारपत्रोंका चुप्पी साध लेना वास्तवमें अनुचित होगा। पर फिर भी किसी पत्रकार या किसी पत्रपर यह दबाव डालना कि वह हमारा साथ दे, हम बिलकुल नामुनासिब समझते हैं। जिसकी राज़ी हो, लिखे, जिसकी राज़ी न हो, न लिखे। लेखकोंकी कठिनाइयोंसे हम भलीभाँति परिचित हैं, इसलिए उनके मौनावलम्बनसे हम बुरा नहीं मानते। कुछ महानुभावोंने लिखा है कि अकेले 'विशाल-भारत' के भरोसे यह

आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता। हम उनसे सहमत नहीं। ढकोसलेकी दीवार बालूपर बनी होती है, और उसे गिरानेके लिए एक हल्कासा धक्का ही काफी है। इसके सिवा साधारण जनताकी सहज बुद्धिपर हमें दृढ़ विश्वास है। एक बार उसे यह समझा देनेकी ज़रूरत है कि सन्निपाती लोग बेलगाम साहित्य-क्षेत्रमें छूटे हुए हैं, वह अपने आप ही इनकी अकल ठिकाने ला देगी।

इस प्रश्नको हम हिन्दी-सम्बन्धी संस्थाओंके भी सम्मुख लानेका निश्चय कर चुके हैं—आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका यह एक मुख्य प्रश्न होगा—और हमें यह दृढ़ विश्वास है कि सन्निपाती लोगोंका असली स्वरूप शीघ्र ही जनताके सम्मुख आ जायगा। साहित्यिक सन्निपातके विषयमें अनेक महानुभावोंने सम्मतियाँ भेजी हैं। उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

—सम्पादक]

× × × ×

प्रमत्त-प्रलाप या साहित्यिक सन्निपात ?

लेखक—अध्यापक रामदास गौड़, एम० ए०

किसी पत्रके 'वर्तमान धर्म' नामके लेखको उद्धृत करके 'विशाल-भारत' के पिछले अंकमें सम्पादक महानुभावने अपने रसज्ञ पाठकोंकी और अन्य साहित्यिकोंकी बौद्धिक परीक्षा लेनेकी ठानी है। कई सामयिक पत्रोंमें शब्दानुसन्धान पहेलियाँ निकल रही हैं। शायद उन्हींके अनुकरणमें 'विशाल-भारत' में इस बार अर्थानुसन्धान-पहेली प्रकाशित हुई है। उस लेखको आदिसे अन्त तक कई बार पढ़ जानेपर भी न तो उसके उद्देश्यका पता लगता है, न विधेयका। यद्यपि विज्ञ सम्पादकने 'साहित्यिक सन्निपात' नामक शीर्षकसे उसका परिचय देते हुए इतना पर्याप्त संकेत कर दिया है कि सन्निपातके रोगी जैसा प्रलाप करते हैं, वैसी ही वस्तु 'वर्तमान धर्म' नामक रचना भी हो सकती है। फिर भी आपने पुरस्कारकी घोषणा करके सम्बुद्धि-चातुर्यकलाको चुनौती दी, और जब अनेक चतुर और विज्ञ रसिकोंने इस गुत्थीको न सुलझा पाया, तो अन्तमें 'विशाल-भारत' के सामने वही पहेली रख दी—

"जब फरिश्तोंसे न उट्ठा बारे इश्क़,
आदमे खाकीके सरपर रख दिया।"

लेख अपने ढंगका निराला है। यद्यपि इसके वाक्य ऊटपटांग और अनमिल हैं, और अर्थ बेजोड़ हैं, तो भी अमीर खुसरोके "अनमिल" और "बेजोड़" से इनका कोई रिश्ता नाता नहीं है। दुर्बोध लेखोंकी बहुत प्राचीन परम्परा है। अथर्ववेदके अनेक मन्त्र, महाभारतके कूट-पद्य, पीछेके नाटककारोंके पागल पात्रोंके प्रलाप, कबीरकी उल्टी बानी, सूरदासके कूटपद एवं अनेक तरहकी पहेलियों तक दुर्बोधताकी परम्परा चली आई है। परन्तु दुर्बोध रचनाएँ किसी न किसी ढंगपर समझमें आ सकती हैं, इनकी भी कुंजी होती है, इनके रहस्योंके भी जाननेवाले हैं। बहुत सम्भव है कि 'वर्तमान धर्म' के रहस्योंका भी किसीको पता हो। ढंगसे तो ऐसा मालूम होता है कि उस लेखके समझनेवाले एक तो लेखक महोदय अवश्य ही होंगे, और दूसरे दो सज्जनोंसे भी यह आशा की जा सकती है कि वे 'वर्तमान धर्म' की व्याख्या पूरी नहीं, तो अधिकांश अवश्य कर सकेंगे। वे हैं जोशीबन्धु—डा० हेमचन्द्र जोशी एवं पं० इलाचन्द्र जोशी। परन्तु ऐसी पहेली, जिसे संसारमें केवल तीन ही चतुर समझ सकें, अत्यन्त दुर्बोध गिनी जायगी—इतनी दुर्बोध कि उसे पहेली नाम देना चित्रकाव्यकी हत्या करनी होगी।

हमारे दुर्भाग्यसे हिन्दी-साहित्यकी इस प्रकारकी यह हत्या पहली नहीं है। अट्ठाईस बरसके लगभग होते हैं कि राय देवीप्रसाद पूर्णको भी 'साहित्य-हत्या' के शीर्षकसे ऐसे काव्य-प्रलापोंकी खबर लेनी पड़ी थी। यह बात भी नहीं है कि अट्ठाईस बरसके बाद फिर आज ऐसी घटना घटी है। इस तरहके दुर्बोध एवं भ्रष्ट लेखोंका लिखना या प्रकाशित होना कभी बन्द नहीं हुआ। केवल उनकी उपेक्षाकी गई है। अश्लील, दुराचार-प्रवर्तक, द्वेषमूलक, साम्प्रदायिक झगड़े फैलानेवाले, गाली-गलौजवाले लेखोंका लिखा जाना वस्तुतः कभी बन्द नहीं हुआ। छापेखाने और डाकखानेके सुभीतेसे जैसे सत्साहित्यका प्रचार सुलभ हो गया, वैसे ही साहित्य-हत्याका मार्ग भी सुगम हो गया। समाचारपत्रोंकी सहायतासे ऐसे असत्साहित्यने न-जाने कितने हृदयोंके बीच मनोमालिन्य उत्पन्न करनेका श्रेय लाभ किया है, न-मालुम कितने सर फूटे हैं और कितने घर जले और बरबाद हुए हैं। दायित्वशून्य लेखक और प्रकाशक इस तरह व्यक्तिद्रोह और

समाजद्रोह फैलाते रहते हैं, और किसी प्रकारके अंकुशके अभावमें वह अपनीसी करनेमें तनिक भी नहीं सकुचाते।

'वर्तमान धर्म' नामक प्रलाप भी साहित्य-हत्याका ही एक उदाहरण है। वह रहस्यवादी गद्य या गद्यकाव्य नहीं है। रहस्यमय गद्य या पद्य परम उत्कृष्ट ध्वनिकाव्य होता है, और ध्वनिकाव्यकी खूबी यही है कि वाच्यार्थके सिवा उसमें ध्वनितार्थ भी हों। इस लेखमें 'कबूतार' प्रभृति शब्दोंका न तो वाच्यार्थ है, और न प्रस्तरोंका वाक्यार्थ। इनका ध्वनितार्थ तो लेखकके सिवा शायद कोई नहीं जानता। दो साहित्य-सेवियोंका विचित्र रीतिसे नाम देनेसे यह अवश्य अनुमान होता है कि लेखक उन्हें ऐसे ढंगसे बनाना चाहता है कि उनके सिवा कोई अन्य पाठक समझ न सके। मोहनदास और बालगंगाधर तिलक यह दो नाम तो यों ही आ गये हैं,—शायद इस गरज़से कि उन दोनों नामोंपर के प्रच्छन्न प्रहारोंपर और अधिक परदा पड़ जाय, विचार करनेवाले इन पूज्य नामोंके धोखेमें आ जायँ।

छापेखानों और अखबारोंका जब ज़माना न था, तब भी निन्द्य साहित्य बनता होगा, परन्तु न तो उसके प्रचारके पर्याप्त साधन थे, और न प्रचाराभावमें वह दीर्घजीवी ही हो सकता था। डाक और समाचारपत्र अल्प-प्राण साहित्यमें भी जीवन फूँक देते हैं, और कुछ कालके लिए वह सारी शरारतें कर गुज़रता है, जिनके लिए पैदा किया गया। परन्तु इतना तो निश्चय है कि असत्साहित्य स्वभावसे ही चिरजीवी नहीं हो सकता। परन्तु उससे होनेवाली हानिसे रक्षा करनेवाला शासनात्मक साधन वर्तमान समाजमें नहीं है। ऐसी दशामें उसके जन्म लेते ही चारों ओरसे उसकी निन्दा होनी चाहिए, उसके रहस्य खोले जाने चाहिए, और उसके दोषोंसे भोले-भाले पाठकोंको अभिज्ञ करना चाहिए। कड़ी आलोचना तथा निर्भीक समीक्षासे उसकी खबर लेनी चाहिए। जो संपादक ऐसे लेखोंको अपने स्तम्भोंमें आश्रय दें, उनकी भी निन्दा होनी उचित है। यों तो साहित्य-सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलन शासनके उपाय कर सकते हैं, पर एक तो अभी इन संस्थाओंमें ऐसा समीचीन संगठन नहीं है, दूसरे हो भी जाय, तो इतने बड़े यन्त्रके संचालनमें भारी प्रयास की और लम्बे समयकी ज़रूरत पड़ेगी। सत्साहित्य-प्रचारक पत्रोंको इसमें पारस्परिक सहकारितासे काम लेना चाहिए। ऐसे लचर लेखोंका बहिष्कार करना चाहिए।

'विशाल-भारत'-सम्पादकने 'वर्तमान धर्म' के लेखकका नाम छिपाते हुए इतना प्रकट कर दिया है कि वह एक सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक है। हिन्दीका कोई सुप्रसिद्ध लेखक यदि स्वभावत: इस तरहका दुर्बोध प्रलाप सदासे लिखता आता होता, तो सम्पादक महोदय नाम छिपाते हुए भी छिपा न सकते। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि या तो उसने जान-बूझकर किसी उद्देश्यसे प्रलाप किया है, अथवा उसकी किसी विशेष प्रमत्त अवस्थाका यह उद्गार है, जिसे प्रकाशमें लानेके बदले संपादक महोदय काफी धूल डालकर ढक देते, तो श्रेयस्कर होता। जिस पत्रमें 'वर्तमान धर्म' छपा था, उसके सम्पादक महोदयका दायित्व भी इस बातमें थोड़ा नहीं है।

× × × ×

श्री मोहनलाल महतो वियोगी (गया)—

"'साहित्यिक सन्निपात' पढ़ा। दैनिक 'प्रताप' में भी छपा है। 'वर्तमान धर्म' लेख किसी विकृत मस्तिष्कका परिणाम है। अर्थहीन वाक्योंका यह ढबा देनेवाला यह समूह घृणाके योग्य है। आप तो 'वर्तमान धर्म'की टीका करनेवाले किसी भी सज्जनको २५) देना चाहते हैं, और मैं तो स्वयं इसके लेखकको चैलेंज देता हूँ कि यदि वे अपने इस चोंचोंके मुरब्बेका अर्थ मुझे समझा दें, तो मैं उनकी करामाती लेखनीपर नक़द १००) न्योछावर कर देनेको प्रस्तुत हूँ। कुछ दिन पहले निरालाजीका इसी कोटिका एक लेख 'माधुरी' में छपा था 'साहित्यका फूल अपने ही डंठलपर'। चार-पाँच बार पढ़कर भी जब मैं खाक पत्थर कुछ भी न समझ सका, तो अपनी ही विद्या-बुद्धिको धिक्कारता हुआ रोशनी बुझाकर सो गया। आज इस 'वर्तमान धर्म'को पढ़कर मैं पुन: उसी मनस्थितिकी भयंकरताका सामना कर रहा हूँ। इस लेखके लेखकने जिस मनस्थितिमें पहुँचकर यह अनर्गल प्रलाप किया है, उसकी कल्पना करना भी वातुलताका लक्षण है। आप लेखकका नाम-धाम प्रकाशित कर दीजिए, और उन्हें भविष्यमें लेख लिखने जैसे कठोर कर्मसे हाथ खींच लेनेके लिए वाध्य कीजिए।"

× × × ×

श्री सूर्यनाथ तकरू, एम० ए० (काशी)—

"मेरी राय है कि इस लेखके लेखक कोई सिद्ध महापुरुष हैं। उनका ज्ञान अद्भुत है, और उनको अजायबघरमें स्थापित कर देना चाहिए। भला, ऐसे विज्ञ व्यक्ति क्या

रोज़-रोज़ पैदा होते हैं ? उनका मस्तिष्क लेनिनके दिमाग़की तरह संरक्षणीय है। अबकी बार यदि इसी गवेषणापूर्ण, विद्वत्तापूर्ण और विचारपूर्ण लेखपर मंगलाप्रसाद-पुरस्कार दिया जाय, तो ठीक होगा। वास्तवमें लेखक महोदय कोई असली कलाकार हैं। यह लेख तो डी० लिट०में कोर्स होने योग्य है। और २५) के पुरस्कारके बारेमें जिस पत्रमें वह छपा है, उसके सम्पादकसे लिखा पढ़ी करिये। अच्छा हो, यदि वे टीका भी कर दें, तो हम मायामूढ़ भी 'वर्तमान धर्म'को समझ लें। चौबेजी, यह तो अद्भुत लेख है। लड्डू, पेड़ा, बर्फी सब मात। क्या आप इन सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखकका नाम और उस पत्रका नाम भी बतानेकी कृपा करेंगे ? ऐसे सन्त साहित्यकारोंका पर्याप्त पूजन-अर्चन होना चाहिए। इस सन्निपातसे हम सब बचे रहें, यही क्या कुछ कम है ?"

× × × ×

श्री महेन्द्र (मन्त्री, नागरी-प्रचारिणी सभा, आगरा) —

" 'वर्तमान धर्म' शीर्षक लेखको मैंने पूरा पढ़नेकी कोशिश की, पर मैं उसे आद्योपान्त न पढ़ सका। प्रयत्न करनेपर भी न पढ़ सका। आखिर कुछ हो भी तो। वह लेख है, या कोरा निरर्थक शब्द-संग्रह। मेरी समझमें नहीं आता कि इस लेखके लेखक सोंठकी मंडी जाना चाहते हैं, या वहाँसे भाग निकले हैं, नहीं तो ऐसा लेख, और कौन लिख सकता है ? मेरी समझमें तो कुछ नहीं आया। आप ही ज़रा समझाइये कि आखिर यह क्या बला है। और ज़रा यह भी बता दीजिए कि इस लेखके प्रकाशित करनेवाले सम्पादक महाशय कौन हैं, ताकि आगामी सम्पादक-सम्मेलनमें उन्हें बधाई देनेका प्रस्ताव रखा जा सके।"

× × × ×

श्री बालकृष्ण राव (प्रयाग)—

"किसी विकृत मस्तिष्ककी यह उपज पठनीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल श्री हेमचन्द्रजी और श्री इलाचन्द्रजी को गाली देनेके विचारसे ही यह लिखा गया था, किन्तु इसमें तो न-जाने क्या अनर्गल प्रलाप है। जिस प्रकार कबीरकी उल्टी वाणियोंके भी अर्थ कबीरपन्थी लोग लगा लेते हैं, उसी प्रकार निरालापन्थी लोग इसका भी अर्थ लगा लेंगे, पर जनसाधारणके लिए यह सन्निपातका प्रलाप ही है।"

× × × ×

श्री चन्द्रदत्त गुप्त (साहित्यरत्न भंडार, आगरा)—

" 'वर्तमान धर्म'की प्रारम्भकी कई पंक्तियाँ मैंने पढ़ डालीं, पर मतलब कुछ भी समझमें नहीं आया। मैंने उन्हें एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और तीसरी बार इच्छा न रहते हुए भी पढ़ डाला, पर सब मेहनत बेकार। यह सोचकर कि अगली पंक्तियाँ पढ़नेसे शायद मतलब समझमें आ जाय, मैं और बढ़ा, पर "जैसे पूरे एक रूपके लिए दिन-रातका जोड़ा एक ही व्योम या शंकरमें पृथ्वीके दो गोलार्द्ध जुड़कर एक अलग-अलग दिन और रातमें प्रसन्न" को पढ़कर बड़ा हैरान हुआ। मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता था, गुत्थी बजाय सुलझनेके उलझती जाती थी। सम्पूर्ण लेख पढ़कर लेखकमें मेरी बड़ी श्रद्धा हो गई है। इतनी ज़बरदस्त vocabulary, पौराणिक ज्ञान, कुमार, मार, बीमार आदि यमकालंकार लानेकी योग्यता तथा नाटकीय भाषाका प्रयोग करनेकी कला—ये सब बातें किसी साधारण लेखकमें एकत्र मिलना अत्यन्त कठिन है। लेखक अवश्य कोई सत्संगी हैं, और मेरा यह अनुमान है कि वैद्यकका उन्होंने गम्भीर अध्ययन भी किया है, इला, पिङ्गला, पित, वमनादि शब्दोंका उचित प्रयोग इसका साक्षी है। ऐसे विद्वान तो दो चार शताब्दियोंमें एकआध ही उत्पन्न होते हैं। बिलोचपुरा कालेज, बरेली-आश्रम, बरहमपुर-विद्यापीठ अथवा राँची-विश्वविद्यालयमें यदि इन्हें आचार्यका पद दे दिया जाय, तो साहित्य-क्षेत्रका बड़ा उपकार हो।"

× × × ×

श्री कालीदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०, श्री कृष्णनन्द गुप्त और श्री रघुनन्दन शर्मा (सम्पादक 'विद्यार्थी') इत्यादि कितने ही लेखकोंने बहुत परिश्रम करके भी लेखको समझ नहीं पाया, और गुप्तजीने इस विषयपर दो विचारपूर्ण लेख भी 'प्रताप'में लिखे हैं, जिनका सारांश हम अगले अंकमें उद्धृत करेंगे।

'वर्तमान धर्म' लेखका अर्थ केवल दो आदमियोंने समझा है ; एक तो 'भारत'के सम्पादक श्री नन्ददुलारे बाजपेयी एम० ए० ने और दूसरे डा० नरोत्तमदास एल० एम० एस०, हैदराबाद (दक्षिण) ने। बाजपेयीजीका लेख ज्यों-का-त्यों हम अन्यत्र उद्धृत करते हैं। उनके

अर्थको भी समझना हमारे-जैसे अल्पबुद्धि आदमियोंका काम नहीं है। उधर डाक्टर साहब दावेके साथ लिखते हैं—"लेख किसी प्राचीन पुस्तकसे उद्धृत किया गया है, जिसके तीन अध्याय थे—भूत धर्म, वर्तमान धर्म और भावी धर्म। भूत धर्म नामक अध्याय अभी नहीं मिल रहा है। डाक्टर भण्डारकर उसकी तलाशमें थे, पर वे स्वर्गवासी हो चुके हैं। भावी धर्म अध्याय यहाँ निज़ामके एक पुस्तकालयमें मिल गया है और उसे आपको सेवामें भेजता हूं। पुस्तकके अध्याय एक दूसरेसे इतने सम्बद्ध हैं कि वर्तमान धर्मका अर्थ बिना भूत और भावी धर्म पढ़े नहीं निकाला जा सकता। मैंने इसकी कुंजी पा ली है। कृपया २५) अपने और १००) वियोगीजीके मनीआर्डर द्वारा भेज दीजिए। रही सन्निपातकी बात, सो आप सम्पादक लोग उसका क्या इलाज कर सकते हैं? यह हम डाक्टरोंका काम है। चूँकि यह रोग फैल रहा है, इसलिए सर्वसाधारणके लाभार्थ इसका नुसख़ा तथा उपचार भेजता हूं। अज़ कुए बिला पूँ तोला ३॥ ज़कूनी सौंठके साथ मय ५ तोला सनाय व चूँ चूँ के बीज और ७॥ तोले पुच्चियाँ लेकर मरीज़के गलेमें गलगुच्चियां यन्त्र द्वारा खिलाइये, पिलाइये, हँसाइये, रुलाइये और दूर भगाइये।

"बाणभट्टके सुश्रुतके अनुसार मर्ज़ें ड्यूटीमें भी ड्यूटीमें खूँटी लगाकर ब्यूटीके साथ भी इसका प्रयोग किया जाता है, जिससे लेखकके पेटका निकले मर्म, और वह सीखे धृति और धर्म। पर मैं समझता हूं कि इस नुसख़ेकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। यदि कोई सज्जन अन्वेषण करके 'भूत धर्म'का पता लगा लें, तो तीनों अध्याय मिलकर इस प्राचीन पुस्तकका उद्धार हो जाय, और यह हिन्दू-विश्वविद्यालयके एम० ए० के कोर्समें नियत हो जाय। मैंने सुना है कि उसी विश्वविद्यालयके एक स्नातकने अपने 'भारत' नामक पत्रमें इसका अर्थ छपाया भी है, पर इधर दक्षिणमें 'भारत' नहीं आता, इसलिए मेरे देखनेमें नहीं आया। मेरा अनुमान है कि भारत-सम्पादकको 'भूत धर्म' नामक अध्याय मिल गया है, क्योंकि बिना उसके वे अर्थ लगा ही नहीं सकते थे। आशा है कि वे इसे प्रकाशित कर देंगे। 'भावी धर्म' आपको सेवामें भेजता हूं।"

× × × ×

भावी धर्म

लेखक—डा० नरोत्तमदास, एल० एम० एस

"महाभारतके बड़े बाबा बुढ़िया पुराण नहीं-नहीं दादी, क्योंकि बुढ़िया पुलिंग, नहीं-नहीं स्त्री स्त्रीलिंग है, इसलिए उसमें लिखा है—एक विरोधी झप्पक ताल, मारा गुलचा फूटा गाल। यह झप्पक ताल ही ऐसा है, न-मालूम कितने तबले इस तालसे फूट गये, फट गये, मिट गये, यहाँ तक खंजरी बनकर पतंगकी तरह आकाशमें उड गये, परन्तु आकाशमें थे त्रिशंकु, जिनके मुँहसे निकली त्रिवेणी, जिसमें नहा-नहाकर सूफी धर्मात्मा बनने की। लगा ज्ञान और अज्ञानका संयोग, तो करने लगे पँवाईका भोग। अस्तु,

बूटी मीमांसामें लिखा है कि—बोम-बोम शंकर, काँटा लगे न कंकर, यारोंका संगकर, खानेका ढंगकर और मूजीको तंगकर। मूजी यानी मूँजसे बना हुआ कौन? मोजा यानी पैंतावा—तभी तो कहा है कि काँटा लगे न कंकर। वाह! क्या सूत्र है—तुमसे तुम ही लखि परौ। इसका दृष्टान्त लीजिए। एक सिंह था, उसकी आँखें, उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। फिर, फिर क्या, फुर्र, एक चिड़ियाने खोंट मारकर किया ट्टुर्र, भुर्र, हुर्र, जिससे हुर्र शब्दकी व्युत्पत्ति हुई।

'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे गोबर बैठ।'

जिन्हका बेटा खोजा यानी हिज़हाईनेस आगाखांके अनुयायीके पास तीन पाई थीं। उसने देखा, बैलने गौरीशंकर उठा रखा है और फेंकना ही चाहता है। शिवजीपर आई दया, तो कहने लगा—गहरे—अरे बैल, गहे रह, यानी छोड़े मत। गोबर यानी गौके वर यानी गौ कौन माता, तिसका वर यानी बाप, यानी तू बाप है, सो बैठ जा—मेरे पास तीन पाइयाँ हैं, यही सृष्टिका मूल रहस्य है।

शंखेश्वरशास्त्रमें कहा गया है कि—मूँसाके लगा घूँसा, तो बन गया साँप। साँपने शिवजीकी शरण ली। मोर महाराज

आकर कूद पड़े। कहाँ ? शंखेश्वरकी खोपड़ीपर, झोपड़ीपर या उनकी लोथड़ीपर, नहीं-नहीं, आरत भारतकी कोठरीपर।

ऐयाशोंके बीमार शंखेश्वरजी शंखके साथ अपनी सुरीली ध्वनि किया करते थे, उसमें भा यानी भ्रष्ट, रत, रत रहते थे, यानी भ्रष्टतासे रत थे, इसलिए शंखेश्वर। इति षष्ठी तत्पु: पुरुष समास:। इसमें अनुप्रास न आया तो क्या, पर व्याकरण: कटकटायते, यानी सांख्यको कटकटाय मुष्टिक प्रहार भया।

कहो बेचारा चूहा किधर गया ? हाँ, सर्पने शरीर हज़म करके आत्मा उगल दी, जो त्रिवेणीके किनारे फिरती रहती है। लोग सुबह-शाम हवा खानेके लिए जाते हैं, तो अक्सर बालूपर पड़ी हुई आत्मा नज़र आती है। आत्मा पुरानी है, इसलिए कुछ दुर्गंध भी आती है।

रुंड-मुंडशास्त्रमें लिखा है कि एक बार मुंडजीके चूहेको बड़ी भूख लगी। खानेको कुछ मिला नहीं। कल्लू पियक्कड़के घरमें घुसकर देखा कि दाल छौंकी गई है। चटपट, झटपट पतीलीमें कूद पड़े। गणेशजी बहुत सम्हले, पर एक न चली। दालमें उन्हें भी गोता लगाना ही पड़ा। लगे चाटने चटनी-सी। अग्निसे ठंडी आत्मा गर्म हुई—तब बड़ी शर्म हुई। महादेवजीने जोशीको दिखाई पत्री। दशा थी संकटा, पर अन्तर भ्रामरीका था। प्रत्यन्तर था उल्काका, तभी तो स्वामी कार्तिकेयने बिन्दु उतारकर मनुष्यकी उम्र १०० वर्ष बनाकर गणेशजीका सर कटवाया था। लोग कहते हैं, यह रहस्य सही है, परन्तु शास्त्रसे यह इसी तरह अब नष्ट हो गया है, जैसे खरहेके सींग बड़ी उम्रपर बड़े होकर पातालमें घुस जाते हैं और आँखें ऊपरको जाकर आकाशमें ब्रह्माके रथपर सारथीका काम करती हैं। नृसिंहावतारमें बंजरडुड्डो रामन्नाने खाया एक गन्ना, तो गन्नावतार हुआ। नाम पड़ा बरबट बोइन सर्वन्ना। सर्वन्ना यानी सर्वनियन्ता, पर नकारसे नहीं सिद्ध हुआ, इससे है-है और नहीं-नहीं, क्योंकि दो नकार मिलकर एक हँकार हुआ करते हैं। देखो, ऋजुव्याकरण, भाग दशम, गात्र २५, जिसमें अपसव्य होकर पिंडक किया लिखी गई है, जिसका विधान मुंडक उपनिषदमें भी आता है—क्रियाकी धातुसे इंग प्रत्ययके साथ योग हुआ, तभी तो योगी लोग धात्री बाय यायों यानी पलाशके माफिक रंगवान, रूपवान, गुणवान हुआ करते हैं।

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे—अग्रे यानी इस सृष्टिके पहले, हिरण्य यानी चमकता हुआ, गर्भे यानी गर्भ। उसी गर्भमें से सब कुछ पैदा हुआ ; परन्तु क्या सत्य है कि हिरन भी उसी गर्भसे हुआ ? कोई कहते हैं हुआ, कोई कहते हैं नहीं हुआ ; पर वास्तवमें हुआ भी और नहीं भी हुआ, क्योंकि अस्ति और नास्ति २०वीं शताब्दिके कोठरीकोषमें मिलते हैं, क्योंकि किसीने सच कहा है कि—

"गंगाधरानाम न्हावं न धोवं
विद्याधरानां पठतं न लिखतम् ;
वृन्दावनीनाम यात्रा न तीर्थम्
सम्पादकानाम समझम् न बूझम्।"

इसलिए सम्पादक-स्मृतिमें कहा गया है कि—

"छाप दे फ़ौरन कि कोई कुछ कहे,
कर न पर्वा गर न खुद समझे उसे।"

अस्तु, विन्ध्यवासिनी और कालीजीमें एक समय भारी शास्त्रार्थ हुआ। कालीजी कहती थीं कि बकरेकी गर्दन इस लिए मारी जाती है कि वे सदैव 'मैं मैं' पुकारा करता है। विन्ध्यवासिनीजी कहती थीं कि नहीं, वह बेचारा 'मैं मैं' नहीं करता, बल्कि 'मय मय'—यानी 'शराब शराब' चिल्लाता है, और मौक़ा लगनेपर ख़ूब चुसकियाँ लगाता है। ऐसे कठिन शास्त्रार्थका फैसला कौन कर सकता था, क्योंकि वाराहपुराणमें भी लिखा है—

"पंचायत और परिसिबो परवर दान दुहान,
इन चारोंसे बचत जे तेही जगत सुजान।"

अस्तु, बहुत खोज-तलाश करनेके बाद शंखेश्वरजीके दर्शन हुए। दोनोंकी शंका निवारण हो गई, जैसे कि अशोक-वाटिकामें मुद्रिका फेंकते समय हनूमानजीने त्रिजटासे कहा कि 'प्रातहि लेइ जो नाम हमारा'—तभी तो त्रिजटाने रावणको समझाया कि जानकीको वापस कर दो, नहीं तो यह जानकी जानकी गाहक बन जायगी। शाणपाणी सलीम चिश्ती 'आईने अकबरी' में कहते हैं कि बाबरने बब्बरी शेरोंको मार मार्जारी बना दिया। एक बार इस मार्जारीने कई मनुष्योंके सिर काट दिये, तभीसे उसका नाम नरकटी पड़ गया, जैसा कि भर्तृहरिशतकमें भी पाठ आया है।

कणादि ऋषि खेतोंमें से कण बीन-बीनकर खाते थे, जैसा कि उनके नामसे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। कहा भी है कि प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्। एक राजाने ऋषिसे पूछा कि महाराज हमारी स्त्री गर्भिणी है। उसका गर्भ क़रीब ३ फ़ीट ५ इंच है। उसके भीतर क्या है ? तो महाराज

शत्राजितका ध्यान कर बोले कि उसके गर्भमें एक हरिणी है, जो कालान्तरमें येनकेन प्रकारेण शकुन्तलाका रूप धारणकर मेनकाको जनेगी। यह भविष्यवाणी होते ही राजा-रानी सदेह वैकुंठको गये। इस कथाको अगर कोई श्रद्धाके सहित सुने, तो बुद्धि शुद्ध होकर टीनके लोटेकी भाँति चमकती रहे।

पद्माकरजी कहते थे कि 'कूरम पे कोल कोलहू पे शेष कुंडली है कुंडली पे फबी फैल सुफन हजारकी।' अथ व्याख्या—कूरम—कछुआ यानी कश्यप ऋषि, उसपर कोल यानी बाराह अवतार, यानी कश्यपजीपर बाराहजीने सवारी गाँठ रखी है, तभी तो इस रहस्यको सब लोग नहीं समझ सकते—यदि समझ लें, तो ज्ञानकपाट खुलकर कबूतरकी तरह कबूतरावतार होकर पहाड़की ऊँची चोटीपर जा विराजें, परन्तु शीत अधिक पड़नेसे कफरूपी स्त्री, पित्तरूपी पिता, वायुरूपी बाबा प्रकोपको प्राप्त हो जानेका भय है। इस हेतु सुषुम्ना जो न हत, न सत, यानी नहीं है हाथ सातकी (छै हाथसे ज्यादा, सात हाथसे कम), उसके द्वारा फुस्फुसमें से होकर जिगरको पार करके दिलमें पहुँचकर प्राणवायुमें मिलकर पहाड़की चोटीपर ज्ञानकांडकी शाखाके नीचे अज्ञेय मन्त्रका जाप करते हुए मानसरोवर तक उड़कर पहुँच सकेंगे।

नरोवा कुंजरोवा करते-करते प्रयागमें सेठजी रोने लगे। सेठानीजी, जिनका नाम कुढ़ैची बाई था, लगीं पूछने कि ऐसा क्या गज़ब हुआ कि आप रो रहे हैं? मुझे भय होता है कि आप ऐसे रो रहे हैं, जैसे कि कोई जब रोता है, जब उसकी स्त्री रांड़ हो जाती है। तो सेठजी बोले—नहीं-नहीं, मेरी छातीसे होकर एक चूहा निकल गया। क्या मेरी छाती भी कोई सड़क आम है—कलको इसपर चींटी-चींटा, बिल्ली, कुत्ता, गदहा, घोड़ा, बैल, ऊँट, हाथी भी निकलने लगेंगे। यहाँ तक तो मैं सहन कर सकूँगा, परन्तु जब इस सड़कपर गड्ढे पड़ जायँगे, तो भारतके कोई हितैषी सम्पादक अपने पत्रमें लिख मारेंगे कि सड़कपर गड्ढे हो रहे हैं—पबलिकको तकलीफ़ है, तो झटसे चुंगीके चेयरमैन साहब कोलटार वा कंकड़से इस सड़कको उस भारी इंजनके द्वारा ठीक करायेंगे कि जिससे मेरा कचूमर निकल जाय। यह सुनकर सेठजीकी भाभी कुढ़ैचीने कहा कि इसकी फ़िक्र क्या है, मेरे भी पार्टीवाले चुंगीमें हैं। मैं इस प्रस्तावको पास न होने दूँगी, भले ही सड़कमें खाई-खन्दक हो जायँ। भाभीकी यह बात सुनकर सेठजीको सान्त्वना हुई, तभीसे यह 'भावी धर्म' हुआ।

अब कहिये, असुर कौन है? अतः भारतके हे सुरासुर, इसलिए मैंने केवल रहस्यवाद अपनाया है। धर्म, धृति या श्रद्धाकी यही शिक्षा है।''

× × × ×

'वर्तमान धर्म'

ले०—'भारत'-संपादक श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए०

अपने पाठकोंके लिए हमने पिछले अंकके इसी स्तम्भमें 'प्रेमचन्दजीका साहित्य' शीर्षक एक छोटीसी लेखमाला आरम्भ की थी, इसलिए इस अंकमें भी वे स्वभावतः उसीकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, परन्तु एक अप्रत्याशित विक्षेप पड़ जानेके कारण हमें इस बार उन्हें निराश करना पड़ रहा है। यह विक्षेप डालनेवाले महाशय एक मासिक पत्रके सम्पादक हैं जिनका सम्बन्ध साहित्यसे कम, अफ्रीकासे अधिक है। इन्होंने अपने पत्रमें 'साहित्यिक सन्निपात' लिखकर हमारा ध्यान आकर्षित करनेकी चेष्टा की है क्योंकि ये साहित्य विषयपर जब कभी लिखते हैं तब वह इतना मनोरंजक होता है कि उसका पाठ किए बिना कार्यके भारमें दबे हुए हम जैसे नीरस साहित्यिकोंकी दिलकी कली खिलती ही नहीं। इसलिए जब कभी सौभाग्यसे इनके ऐसे लेख हमारी दृष्टिमें पड़ जाते हैं तब हम डाक्टर हेमचन्द्र जोशीके तरह उन्हें 'बुद्धिहीन प्रसंग' आदि विशेषण देकर उनका मज़ा किरकिरा नहीं कर देते और न उनकी चर्चा पत्रोंमें करके अपने मनोरंजनकी एक विशेष सामग्री खो डालते हैं। केवल उन अवसरोंपर जब वे ऐसी सामग्री प्रस्तुत करते हैं जो मनोरंजनकी सीमाका उल्लंघन कर हिन्दीके व्यापक हितका सक्रिय विरोध करने लगती है तब हमें विवश होकर अपनी टिप्पणी लिखनी पड़ती है। ऐसे अवसर हमारे सामने नियमित रूपमें नहीं अपवाद रूपमें ही उपस्थित होते हैं परन्तु सम्पादक महोदय इनका भी रेकार्ड रखते हैं और अपने पत्रमें इनके भी 'बुलेटिन' निकालते हैं। इसका आभार हम किन शब्दोंमें प्रकट करें! सम्पादक महाशयने इस बार यह 'साहित्यिक सन्निपात' लिखा है जिसमें आपने आठ-दस महीने पहले 'भारत'में प्रकाशित पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'जीके 'वर्तमान धर्म' शीर्षक एक लेखकी चर्चा छेड़ी है। इस

लेखकी इतने दिनों बाद याद करना कदापि सन्निपात नहीं है, न आपका उसे समझ सकना, न आपके दफ्तरके आदमियोंका एक प्रतिष्ठित विद्वानका लेख सुनकर 'खिल-खिलाकर हँसना'। लेखको समझानेके लिए आपने उसके लेखक अथवा सम्पादकको तीन पैसेका कार्ड न लिखकर जो पचीस रुपएकी घोषणा कर दी यह भी किसी सन्निपातका लक्षण नहीं कहा जा सकता। आपने 'भारत'में प्रकाशित उक्त लेखको 'हिन्दीके अनेक प्रतिष्ठित लेखकों और पत्रकारोंको सुनाया' (ब्राडकास्टिंगके अभावमें आपने एक-एकके घर जाकर लेखको साद्यंत सुनाया होगा) यह केवल आपकी प्रोपेगेण्डा वृत्तिका प्रसाद है कोई सन्निपात नहीं। परन्तु जब कहीं भी परितोष न मिला तब आप अपने लेखका शीर्षक साहित्यिक सन्निपात' रखकर 'हिन्दी-जनता के सम्मुख' उपस्थित हो गए हैं। शायद इसी प्रकार कुछ फायदा हो।

'निरालाजी'का 'वर्तमान धर्म' लेख प्रकाशित करनेके कारण सबसे पहले यह हमारी ही जिम्मेदारी है कि हम उसके सम्बन्धमें उठनेवाली शंकाका समाधान करें। लेखकको यदि कुछ लिखना अभीष्ट होगा तो वह अन्यत्र लिखेगा। सम्पादक महाशयका मासिक पत्र हमें आज ही मिला है। इसलिए 'निरालाजी से हम इस सम्बन्धमें कोई पत्र-व्यवहार नहीं कर सके। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। निरालाजीके 'वर्तमान धर्म'की एक एक पंक्ति बुद्धिग्राह्य है और आवश्यकता हो तो उसपर पूरा भाष्य ही लिखा जा सकता है पर हमारे पास न उतना समय है न हमारे पत्रमें उतना स्थल। अपने पाठकोंसे हम यह इतना ही स्थान बहुत संकोचके साथ मांग सके हैं। वर्तमान धर्म' लेखके साथ एक छोटासा इतिहास लगा हुआ है। मुख्य लेखके लिए यह इतिहास प्रासंगिक नहीं है तथापि उक्त मासिक पत्रके सम्पादक महाशयकी जानकारी सम्भव है इससे बढ़े और तब उनकी ग्राहिका शक्ति भी कुछ विकसित हो। डाक्टर हेमचन्द्र जोशी महोदयने उन्हीं दिनों माधुरीमें एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने हिन्दी-जगत्के प्रति घृणाकी दृष्टि दिखाई थी और छायावादके कवियोंको बहुत कड़े शब्दोंमें याद किया था। आपने हिन्दीके साहित्य-संसारकी उपमा दूसरे दुर्गन्ध देनेवाले पोखरसे की थी और उस पोखरके जीव-जन्तुओंके 'टर्र-टर्र स्वर'का उल्लेख किया था। उस लेखमें जोशीजीका आवेश उनके विवेकको ग्रस बैठा था।

इसका उत्तर देनेकी आवश्यकता थी, पर हिन्दीवाले सो रहे थे। यह बहुत कम लोगोंको मालूम होगा कि निरालाजी हिन्दीके आत्म-सम्मानके सबसे बड़े रक्षक हैं। जहाँ हिन्दीका सवाल आता है वहाँ वे डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका भी मुक़ाबला करनेको तैयार हो जाते हैं डा० हेमचन्द्र तो अपनी ही पंगतके हैं। जब जोशीजीको जवाब देनेके लिए कोई न सनका तब निरालाजीने अपना बल सँभाला। वे चाहते तो जोशीजीको उन्हींके शब्दोंमें जवाब दे देते—ऐसा वे कई बार कर भी चुके थे—पर इस बार उन्हें जोशीजीको यह उत्तर देना था कि उन्होंने एक सांसमें ही छायावाद, मायावाद किरायावाद आदि उगलकर जो व्यंग्य आधुनिक कविताका किया है वह उनकी नासमझी है। उनकी नासमझीको निरालाजीने रहस्यवादकी समझदारी (दार्शनिकता) दिखाकर प्रकट किया और मानों संक्षेपमें यह कहा—'देखो तुम हम लोगोंको मेढ़क कहते हो पर रहस्यवादमें मेढ़क कोई कटु शब्द नहीं। तुम किसीको सुर, किसीको असुर कहते हो। पर यह सुरासुर केवल शब्दोंकी माया है। इसे समझ लोगे तो शब्दोंका प्रयोग करनेमें संयम रखोगे अथवा नहीं रखोगे तो भी हमारा क्या बिगड़ता है! यही वर्तमान धर्म है।'

सम्पूर्ण लेखमें पौराणिक आख्यानोंका संकेतात्मक अर्थ बतलाते हुए अथवा आधुनिक घटनाओंकी रुचिर बुद्धिग्राह्य व्याख्या करते हुए निरालाजीने सर्वत्र यही प्रदर्शित किया है कि सृष्टिके नाना नामरूपोंमें जो एक अजस्र अखंड धारा प्रवाहित है—आत्म धारा—बस उसीको प्राप्त कर लो और दुनियाका तमाशा हँसी-खुशी देखते रहो। कोई गाली देगा कोई स्तुति करेगा, कोई देवता कहेगा कोई राक्षस, पर तुम्हारे लिए ये सब मिथ्या हैं। तुमसे इनसे मतलब ही क्या? यह जान लो कि चूहेकी सवारी करनेवाले भी गणपति हो गए हैं, असुर कन्या शर्मिष्ठाके पुत्र पुरुने अपना यौवन पिताको अर्पण कर दिया, जब कि उसके देवता-भाई किनारा कस गए थे। इसलिए छोटे-बड़े नीच-ऊँचके बाह्यभेदको मायावी मानकर तत्त्वको ग्रहण करो। अन्तर्मुखी आत्ममुखी दृष्टिसे ही कल्याण होगा। वर्तमान समाजमें जो विकट संघर्ष मच रहे हैं, उनका अन्त करनेके लिए यह निर्लेप निरंजन आत्मधर्म ही 'वर्तमान धर्म' बनकर सृष्टिका कल्याण कर सकेगा।

यही निरालाजीके 'वर्तमान धर्म' लेखका सार अर्थ है। अब इसे जानकर सम्पादकजी एक-एक पंक्ति समझनेकी चेष्टा

करें। उनकी दश शंकाओंका समाधान भी, अपने पाठकोंसे क्षमा माँगकर, हम अत्यन्त संक्षेपमें कर दें ताकि उनका मार्ग और सुगम हो जाय।"

[इसके बाद 'भारत'-सम्पादकने हमारे प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं। उत्तरोंके आगे हम प्रश्न भी उद्धृत किये देते हैं, ताकि पाठकोंका मार्ग और भी 'सुगम' हो जाय। प्रश्न हमारे हैं, उत्तर 'भारत'-सम्पादकके।

—सम्पादक 'विशाल-भारत']

प्रश्न—(१) 'एक हुए पहाड़के बच्चे जनाब चूहे, जिनकी आत्मा हुई गणेशजीकी, यानी चूहेकी सवारी करके करी या हाथी महाशय अपने हाथ-पैर चारोंको समेटकर, सूँड़की लपेटमें खाने लगे। बाहरके दाँत हुए दिखाऊ। जिनसे खाने लगे वे रहे भीतर, यानी ज्ञानके दाँत। यह सब भीतरी रूपक इसलिए हुआ कि चूहेकी आत्मा भीतर है।"

चूहेकी आत्माके भीतर होनेका क्या अर्थ है?

उत्तर—(१) चूहेकी आत्माके भीतर होनेका यह अर्थ है कि चूहाशरीर है। शरीरपर गणेशजीकी सवारी है अर्थात् शासन है। गणेशजी आत्मा हैं जो शरीरके आवरणमें अन्तर्हित है। शरीर-भाव जितना ही सूक्ष्म होगा आत्मा उतनी ही परिष्कृत होगी। चूहेका शरीर (संकेत अर्थमें) सूक्ष्म होता ही है।

प्रश्न—"और कार्तिकजी हैं कुमार यानी पृथ्वीमें मार, हमेशा प्यार, ऐयाशीके बीमार, यानी ऐयाशी नहीं करते, सिर्फ बीमार रहते हैं।"

यह क्या 'मारा घोटू फूटा लिलार'का उदाहरण है?

उत्तर—(२) कार्तिकजीका उदाहरण बाह्यरूपमें गणेशजीका विरोधी होता हुआ भी आन्तरिक साम्य दिखाता है। गणेशजीके कद्रूप शरीरसे स्वामि-कार्तिकके सुरूपवान शरीरकी तुलना कीजिए। बड़ा अन्तर है। तथापि दोनों भाई ही हैं। दोनों अद्वैतवादी। सम्पूर्ण क्रियाओंसे निर्लिप्त।

प्रश्न—(३) इस लेखमें श्री इलाचन्द्रजी और श्री हेमचन्द्रजीका नाम आया है। उसका प्रसंग समझाइये।

उत्तर—(३) इलाचन्द्रजी और हेमचन्द्रजीको नसीहत दी गई है कि यदि वे इला पिंगला (वर्णानुसार) गंगा, यमुनाकी भाँति श्वेत श्याम (झगड़ालू अर्थात् द्वैतवादी) बने रहेंगे तो ज्ञान सरिता सरस्वतीके दर्शन उन्हें दुर्लभ हैं।

प्रश्न—(४) नागफाँस याने बालगंगाधर तिलक कैसे हुआ? महात्मा गान्धीजीको इस लेखमें किस प्रसंगसे घसीटा गया है?

उत्तर—(४) नाग-फांस अर्थात् 'काल व्याल कराल भूषण धर' शंकर, जो गंगाधर भी हैं। उसी गंगाधरका बालस्वरूप बालगंगाधर। महात्मा गांधीको तो आप ही घसीटते हैं। निरालाजी तो उन्हें अवतार-संकेत देते हैं।

प्रश्न—(५) "कबूतार कबूतार कवितार कवितार", क्या बला है?"

उत्तर—(५) कबूतार (बंगलामें)=कभी उसका। कवितार (बंगलामें)=कवि उसका। तत्वमसिका संकेत। रवीन्द्रनाथके उत्कर्षका हेतु।

प्रश्न—(६) "अनेकों स्त्रियोंके मियाँ न चियाँ और न रियाँ", मतलब?

उत्तर—(६) अनेकों स्त्रियोंके मियाँ अर्थात् मायापति जो सृष्टिका रहस्य समझ गया है। वह रियाँ चियाँ नहीं अर्थात् साधारण जन नहीं। अत्यन्त सार्थक प्रयोग है।

प्रश्न—(७) "उधर भीतर खाना या सृष्टिमें ज्ञान बाहर बघारना, जैसे दाल भीतर छौंकी जाती है, आवाज़ सब लोग सुनते हैं।" दाल-भातमें मूसलचंदरूपी इस वाक्यका क्या अर्थ हुआ?

उत्तर—(७) इसको आप दाल-भातमें मूसरचन्द कहते हैं! पर इसका अर्थ अल्पबुद्धिके लिए भी स्पष्ट है। आत्मतोष आन्तरिक वस्तु है, उसे भाषाका स्वरूप मिले, मिले न मिले।

प्रश्न—(८) "यह मौत गधा भी जानता है, इसीलिए काँपता है, यानी मानता है", यह गधा कौन है?

उत्तर—(८) यह गधा वह है जो अज्ञानी है। केवल ज्ञानी गधा नहीं है।

(९) "जैसे दिल्लीका भाड़ झोंकना, ज्ञान नहीं ज्ञान है। है है और नहीं-नहीं। कहिये जनाब हम लोग न छायावाद जानते हैं न वमनवाद जानते हैं।" यह क्या दिल्लगी है?

उत्तर—(९) यह दिल्लगी नहीं है। दर्शनकी उच्च उपालब्ध है। 'दिल्लीके भाड़ झोंकने'का अर्थ मुहाविरेबाज़ीमें अज्ञान होता है पर तात्त्विक अर्थमें दिल्लीका भाड़ झोंकनेवाला भी परम ज्ञानी हो सकता है।

प्रश्न—(१०) "माता कहती हैं मेरे दोनों लड़के हैं, दोनों बराबर दोनों बर बर, टर टर, कहो 'मेढ़क' कौन मेढ़क है, हम या तुम?" हिन्दी-जनताको इस सवालका फैसला करना चाहिए।

उत्तर—(१०) हिन्दीके विद्वानोंने इसका निर्णय कर लिया है और अब इस लेखके बाद हिन्दीकी जनता भी कर लेगी। बीसों ही क्या, अभी पचीसों, सैकड़ों प्रश्न सम्पादकजीके दिमागमें उठेंगे। आशा है, वे सब हिन्दीके विद्वानोंका मनोरंजन ही करेंगे!

चयन

संसारकी सबसे प्राचीन मुद्रित पुस्तक

सभ्य संसारमें मुद्रण-कलाके आविष्कारका श्रेय चीनियोंको है। यूरोपमें जब पुस्तक छापनेकी प्रथा आरम्भ हुई, उससे प्राय: एक हज़ार वर्ष पहलेसे चीनी इस कलाको जानते थे।

आजकल संसारमें जितनी छपी हुई पुस्तकें मिली हैं, उनमें सबसे पुरानी पुस्तक चीनी भाषामें सन् ८६८ की छपी हुई 'हीरकसूत्र' है। इस पुस्तकके मिलनेकी कथा भी बड़ी मनोरंजक है। सन् १६०० में एक चीनी धर्म-प्रचारकको तुन-हांग नामक स्थानमें, चीनके कानसू प्रान्तके उत्तर-पश्चिममें, चीनी तुर्किस्तानकी सीमापर, अनेक गुफा-मन्दिर मिले। इन गुफा-मन्दिरोंमें से एकमें उसे एक गुप्त कोठा मिला, जिसमें सहस्रों हस्त-लिखित पुस्तकें बन्द थीं। इन्हीं पुस्तकोंमें एक छपी हुई प्रति 'हीरकसूत्र' की मिली। इस 'हीरकसूत्र' को 'वांग चीह' नामक एक व्यक्तिने अपने स्वर्गीय माता-पिताके स्मारकमें बिना मूल्य वितरणके लिए छपाया था। सन् १६०७ में सर आरेल स्टीनने इस मन्दिरमें निकली हुई हस्त-लिपियोंमें से बहुतसी ब्रिटिश म्यूज़ियमके लिए प्राप्त की थीं, जिनमें यह छपी हुई पुस्तक भी उनके हाथ लगी थी। पुस्तक-भंडारमें छपी हुई केवल यही पुस्तक निकली थी। वांग चीह कौन था, क्या था, इसका कुछ पता नहीं। 'हीरकसूत्र' में भगवान बुद्धके वे उपदेश हैं, जो उन्होंने अपने वृद्ध शिष्य सुभूतिको दिये थे।

पुस्तक सात पन्नोंमें छपी है। छैमें उपदेश हैं, और एकमें चित्र। ये सब एक दूसरेपर इस तरह चिपकाये गये हैं, जिससे एक लपेटनेवाला गोल मुट्ठा बन सके। सब पृष्ठोंकी लम्बाई मिलाकर सोलह फ़ीट है। छपाई ब्लाकोंके द्वारा हुई है। हटाये जानेवाले टाइपका आविष्कार बादमें हुआ।

चीनकी आबहवा ऐसी खराब है कि उसमें पुस्तक आदिका बहुत दिनों तक सुरक्षित रहना सम्भव नहीं, इसीलिए इससे पहलेकी छपी हुई पुस्तकें नहीं मिलतीं। मगर चीनी-तुर्किस्तानकी खुश्क आबहवामें जो चीज़ भी बालूमें गाड़ दी जायगी, या ऐसे ढंगसे बन्द कर दी जायगी कि उसमें हवा न पहुँच सकेगी, वही सुरक्षित रहेगी, इसीलिए यह पुस्तक अभी तक बची रही।

छपाईको देखकर प्रकट है कि इस पुस्तकसे बहुत पहलेसे मुद्रण-कला प्रचलित होगी।

मगर मुद्रण-कलाके सम्बन्धमें चीनियोंका मानव-जातिको सबसे बड़ा दान है कागज़का आविष्कार। कागज़के आविष्कारका समय सन् १०५ कहा जाता है। चीनसे कागज़ बनानेकी तरकीब तुर्किस्तानकी राह यूरोप पहुँची थी।

इस सम्बन्धमें यह बात भी मनोरंजक है कि करेंसी नोटोंका आविष्कार भी चीनियों ही ने किया था। एक हज़ार वर्ष पहले बहुत अधिक छपे हुए नोट प्रचलित हो जानेके कारण चीनमें आर्थिक संकट उपस्थित हो गया था।

मुद्रण-कलाका एक बहुत पुराना उपयोग था खेलनेके ताश छापना, क्योंकि ताशके पत्तोंका हूबहू एकसा होना आवश्यक है। यह बात भी याद रखनी चाहिए कि ताशके पत्तों और खेलोंका आविष्कार भी चीनियोंके दिमाग़की करामात है।

—'चाइना जर्नल'

—

दिलकी दुनिया

दिल भी एक दुनिया है।

इसमें आशाओंके लहलहाते हुए सुन्दर बाग़ हैं, जिसमें सरसब्ज़ पेड़ोंकी छाया-तले हरी-भरी और तर क्यारियाँ दूर-दूर तक फैली हुई नज़र आती हैं, और उनके ऊपर गुलाबके फूलोंने अपनी नर्म और नाज़ुक पंखुड़ियाँ बिछा-बिछाकर उन्हें और भी ख़ूबसूरत और हृदयग्राही बना दिया है।

इसमें निराशाओंके गहरे गर्त्त हैं, जिनमें मौतका-सा अन्धकार और निस्तब्धता फैली रहती है, और जिनमें करोड़ों-अरबों जीवन बलि हो चुके हैं।

इसमें कठिनाइयोंके पहाड़ हैं, जिनकी गगनचुम्बी ऊँचाई देखकर मनुष्यका लहू उसकी रगोंमें जम जाता है। इसमें

प्रेमके झरने हैं, जिनसे त्याग और सहानुभूतिकी धारें फूट-फूटकर निकलती हैं।

इसमें घृणा, ईर्ष्या, झूठ, लालच, घमंड और इन्द्रिय-लोलुपताके नरक हैं। इसमें उचित भाषण, सत्य, सन्तोष, भक्ति, विनम्रता और क्षमाके स्वर्ग हैं।

इसमें प्रसन्नताका वसन्त है; इसमें मुसीबतोंका पतझड़ है; इसमें जीवनका अमृत है; इसमें मृत्युका हलाहल है; इसमें दया और कृपाकी चाँदनी है; इसमें पाषाण-हृदयताका अँधेरा है; इसमें आकांक्षाओंकी बस्तियाँ हैं; इसमें खुशियोंके क़बरिस्तान हैं।

दिल एक दुनिया है—इतनी बड़ी कि मनुष्य उसे सारी उम्र नहीं देख सकता, लेकिन इतनी छोटी कि केवल कुछ बूँदोंमें समाई हुई है।

—सुदर्शन ('चन्दन')

—

वायसरायको कैसा होना चाहिए ?

जिस समय लार्ड कर्ज़नके सिरपर हिन्दुस्तानके वायसराय होनेका सेहरा बँधा था, उस समय तत्कालीन भारत-सचिव लार्ड सैल्सबरीको एक पत्र लिखते हुए स्वर्गीय महारानी विक्टोरियाने बतलाया था कि भारतका वायसराय कैसा होना चाहिए। महारानी विक्टोरियाके पत्रोंके संग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित किये गये हैं। हालमें इस संग्रहकी तीसरी जिल्द प्रकाशित हुई है, जिससे उपर्युक्त पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है—

"भारतके भावी वायसरायको वास्तवमें अपनेको हिला-डुलाकर क्षुद्रहृदय कौंसिलरों और अमले-मुसाहबोंके निरर्थक क़ायदों (redtapism) के बन्धनोंसे मुक्त होना चाहिए। उसे अधिक स्वतंत्र होना चाहिए। भारतवासियोंके वास्तविक मनोभाव कैसे हैं, यह बात उसे स्वयं सुनकर जानना चाहिए, और जानकर जो मुनासिब जान पड़े, वह कार्यवाही करनी चाहिए। उसे हमारे बहुतेरे सिविल और पोलिटिकल एजेन्टोंके झूठी शेखीभरे, अशिष्टतापूर्ण, उद्धत और अपमान-जनक व्यवहारका अनुगमन न करना चाहिए (must not be guided by snobbish and vulgar, over-bearing and offensive behaviour of many of Civil and Political Agents)। यदि हम चाहते हैं कि हम भारतमें सुख और शान्तिसे रहें तथा छोटे-बड़े सभी भारतीय हमें चाहें, हमसे प्रेम करें और हम उनसे सम्मान प्राप्त करें, जैसा कि हमें प्राप्त करना चाहिए, तो वायसरायको उपर्युक्त ढंगसे काम करना चाहिए, न कि यह कि वह लोगोंको पददलित करे और उन्हें लगातार याद दिलाता और महसूस कराता रहे कि वे पराजित जातिके लोग हैं। निस्सन्देह उन्हें यह मालूम होता रहना चाहिए कि हम उनके मालिक हैं, मगर यह बात सहृदयतापूर्वक होनी चाहिए, न कि धृष्टतापूर्वक, जैसा—खेद है—अकसर होता है। क्या मिस्टर कर्ज़न इस बातको महसूस करके ऐसा करेंगे ?"

आज चौथाई शताब्दीसे अधिक गुज़र जानेपर "बहुतेरे सिविल और पोलीटिकल एजेन्टोंके झूठी शेखीभरे, अशिष्टता-पूर्ण, उद्धत और अपमानजनक व्यवहार" में कितनी कमी हुई है, और हालके वायसरायोंने महारानी विक्टोरियाके इस आदर्शका कहाँ तक पालन किया है, यह बात भारतीय राजनीतिज्ञ और सर्वसाधारण भी भलीभाँति जानते हैं।

—

सरकारी पक्षपातका नमूना

हमारे अधिकांश पाठकोंको यह पता न होगा कि सरकारी नौकरियोंमें ऊँची तनख्वाह पानेवाले भारतीयोंकी फी-सदी तादाद कितनी है। नीचे जो आँकड़े उद्धृत किये गये हैं, उनसे मालूम हो जायगा कि ऊँचे ओहदोंपर कितने फी-सदी अंगरेज़ी अधगोरे और भारतीय नियुक्त हैं—

तनख्वाह मासिक	फी-सदी अंगरेज़	फी-सदी भारतीय	फी-सदी ऐंग्लो इंडियन
२००—३००	१२	६४	२४
३००—४००	१६	६२	१९
४००—५००	३६	४६	१५
५००—६००	५८	३१	११
६००—७००	५४	८६	१०
७००—८००	७८	१४	८
८००—९००	७३	२१	६
९००—१०००	९२	३	४

—'कर्मवीर'

—

आतंकवादमें वृद्धि

बंगालमें १९०७ से १९३१ तक जो राजनैतिक हत्याएँ हुए हैं, उनका विवरण बंगाल-सरकारकी पुलिस-रिपोर्टमें, जो अभी प्रकाशित हुई, इस प्रकार मिलता है—

समय	आक्रमणोंकी संख्या	खूनोंकी संख्या
१९०७ मईसे—		
१९१५ मई तक	१४०	२८
१९१५ मईसे		
१९१६ जून तक	३८	२०
१९१६ जूनसे		
१९१६ दिसंबर तक	७	
१९१७	१२	२१
१९१८	११	
१९१९	१	
१९२०	०	
१९२१	०	६
१९२२	१	
१९२३	६	
१९२४	८	
१९२५	३	...
१९२६	१	१
१९२७	१	...
१९२८	३	...
१९२९	४	१
१९३०	२६	१६
१९३१	६७	६
	३४२	१६०

—'अर्जुन'

महात्माका व्रत

आज ये गांधी ! ये तूने दफअतन[१] क्या कर दिया,
क़ैदमें करके तपस्या मोजज़ा[२]-सा कर दिया,
भूकका यों अपने फ़ाक़ोंसे मदावा[३] कर दिया,
था अछूतोंका जो इक उक़दा[४] उसे वा[५] कर दिया।
तेरी इस उक़दाकुशाई[६] पर तुझे सद आफ़रीं[७] !
क़ौमकी इस रहनुमाई[८] पर तुझे सद आफ़रीं !
आह तेरे अह्द[९] पर सारा जहाँ थर्रा गया,
कुल ज़मीं थर्रा गई, कुल आस्माँ थर्रा गया,
तबक़ये ज़ेरीं[१०] पे हर कस[११] बेगुमाँ थर्रा गया,
आलमे बालामें[१२] क़ल्बे-क़ुदसियाँ[१३] थर्रा गया।
अलग़रज़[१४] जब यों सरापाये दो आलम[१५] हिल गया।
तो वहीं भगवानका आसन भी इकदम डुल गया।
ताक़तें कुदरतकी[१६] सब बेदार[१७] यकसर[१८] हो गईं,
दस्तगीरी[१९] को तेरी तैयार यकसर हो गईं,
कुल मुख़ालिफ़ कुव्वतें[२०] बेकार यकसर हो गईं,
मिटनेको खुद मायले ईसार[२१] यकसर हो गईं।
ज़ाहिरो-ग़ायब[२२] हुए तुझसे मुवाफ़िक़ जब बहम[२३]।
चूमे आकर कामयाबीने वहीं तेरे क़दम।

× × ×

मुल्क-भरमें फिर तो उजलत[२४]से लगा होने वो काम,
प्यारके बर्तावसे कर ले अछूतोंको जो राम[२५],
आख़िर अब थोड़ी-बहुत हल हो गई मुश्किल तमाम,
यानी इंसाँका हुआ इंसाँके हाथों एहतराम[२६]।
परतवे-हक़[२७] अपना जलवा[२८] कुछ तो दिखलाने लगा।
कुछ खुदा इंसाँमें इंसाँको नज़र आने लगा।

—इक़बाल वर्मा 'सेहर' ('ज़माना')

---

१ एकाएक, २ जादू, ३ उपचार, ४ रहस्य, ५ खोल देना, ६ रहस्योन्मूलन, ७ सैकड़ों बधाइयाँ, ८ पथ-प्रदर्शन, ९ प्रण, १० पृथिवीका धरातल, ११ प्रत्येक व्यक्ति, १२ आकाश, १३ देवताओंकी आत्मा, १४ मतलब यह कि, १५ दोनों लोक, आदिसे अन्त तक, १६ प्रकृतिकी शक्तियाँ, १७ जाग्रत, १८ एक साथ, १९ सहायता, २० विरोधी शक्तियाँ, २१ स्वयं त्याग स्वीकार करके मिटनेको तैयार हो गईं, २२ प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, २३ जब तेरे अनुकूल हो गये, २४ तेज़ीसे, २५ हिला-मिलाकर आज्ञाकारी बनाना, २६ प्रतिष्ठा, २७ सत्यकी किरणें, २८ ज्योति।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला'

महाराज अनंगपालकी हारके साथ पंजाबने न केवल अपनी राजनैतिक स्वाधीनताको ही खोया, बल्कि मानसिक और आत्मिक स्वतन्त्रताको भी खो दिया। मुस्लिम आक्रमणोंकी आँधीके सामने पंजाबने न केवल बचावके लिए मुस्लिम राजनैतिक प्रभुताको ही स्वीकार किया, पर मुस्लिम संस्कृति और मुस्लिम सभ्यताके आगे आत्म-समर्पण भी कर दिया। यही कारण है कि पंजाबके घर-घरमें आज उर्दूका राज्य है। छोटेसे लेकर बड़े तक उर्दूको अपनी मातृभाषाके रूपमें मानते हैं, और पढ़ते हैं। यदि इस भावको जड़ तक पहुँचनेमें किसी शक्तिने अभी तक बाधा दी है, तो वे पंजाबकी देवियाँ हैं, जो हिन्दीकी किसी-न-किसी तरह रक्षा कर रही हैं। सिखोंके आगमनके साथ इस मानसिक दासताके विरुद्ध आवाज़ उठाई गई, और गुरुमुखीकी उत्पत्ति हुई। पर गुरुमुखी जहाँ दसवीं शताब्दीके पराजय और आत्म-समर्पणकी भावनाके विरुद्ध प्रतिरोधकी भावना उत्पन्न कर रही थी, वहाँ वह धार्मिक रंगमें रँगी जानेके कारण जनसाधारणकी भाषा न हो सकी। आज पंजाबमें यदि हिन्दीका सितारा चमकता नज़र आता है, तो इसका कारण आर्यसमाज और इसके महान नेता ऋषि श्रद्धानन्दकी तपस्या, त्याग और प्रचारका फल है। आज देवियोंकी साधना और पुण्यव्रत फल लाता हुआ नज़र आता है। सरकारसे किसी प्रकारकी सहायता न मिलनेपर भी और हिन्दू नेताओंकी क्रियात्मक सहानुभूतिके अभावमें भी कुछ सच्चे राष्ट्रवादी उदार नवयुवकोंके प्रयत्नसे हिन्दी पंजाबके घरोंमें अपने खोये स्थानको प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रही है। आज लाहौरके बाज़ारमें यदि सबसे अधिक किसी भाषाकी पुस्तकें, कोर्स-बुक छोड़कर, बिक रही हैं, तो हिन्दीकी। इसको देखकर कहा जा सकता है कि पंजाबमें हिन्दीका भविष्य बहुत उज्ज्वल और गौरवमय है।

पंजाबमें हिन्दीके प्रति प्रेम बढ़ रहा है, पर उच्चकोटिके साहित्यके प्रकाशकोंका वहाँ सर्वथा अभाव ही है। वर्तमान प्रकाशक या तो धार्मिक पुस्तकें छापनेमें लगे हैं, या कोर्स-बुक प्रकाशित करनेमें। किसीका ध्यान हिन्दी-साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेकी ओर नहीं है। कुछ साल पहले एक-दो ग्रन्थमालाओंका प्रकाशन आरम्भ हुआ था, पर उसमें एक-दो पुस्तकें प्रकाशित होकर रह गईं। 'सिखोंका उत्थान और पतन'का पहला भाग ही छपकर रह गया, फिर उस ग्रन्थमालाका नाम भी नहीं सुनाई दिया। १९२५ में पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके मन्त्री पं० भीमसेन विद्यालंकारने 'नवयुग-ग्रन्थमाला'का आरम्भ किया था, पर 'वीर मराठे'से आगे वे भी न बढ़ सके। 'हिन्दी-भवन' बहुत सराहनीय उद्योग कर रहा है, और कई पुस्तकें भी उसने उच्चकोटिकी प्रकाशित की हैं, पर वह प्रयत्न किसी क्रमबद्ध और ग्रन्थमालाके रूपमें नहीं है। इस दिशामें पंजाबसे प्रथम-प्रथम उद्योग श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारने ही किया है। आपने पंजाबसे न केवल एक ग्रन्थमाला ही निकाली है, पर हिन्दीमें एक ऐसे अभावकी पूर्ति करनेका बीड़ा उठाया है, जिसकी ओर हिन्दी-जगतकी रुचि तो थी, पर प्रकाशकोंका ध्यान उधर अभी तक नहीं गया था। आपने अपने महान उद्देश्यके समान ही ग्रन्थमालाका नाम भी आदर्शरूपमें 'विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला' रखा है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार गुरुकुलके एक योग्य स्नातक हैं। गुरुकुलने हिन्दी-साहित्यकी वाटिकाकी रक्षा और श्रीवृद्धिके लिए जो माली हिन्दी-जगतको अर्पित किये हैं, उनमें श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारका स्थान काफ़ी ऊँचा है। आपको स्नातक हुए अभी सात साल भी पूरे नहीं हुए हैं, पर इसी अल्पकालमें आप 'हिन्दी-जगत' को अपनी चुनी हुई कहानियोंके दो अनूठे संग्रह 'चन्द्रकला' और 'भयका राज्य' समर्पित कर चुके हैं। आपको कहानियोंके भविष्यपर अगाध और अटूट विश्वास है। आप कहानीको केवल मनुष्य-चरित्रोंके चित्रण और मनुष्यके अन्तरतम प्रदेशके गूढ़ मनोभावोंको प्रकाशित करनेका ही साधन नहीं मानते, बल्कि आपका यह विश्वास है कि संसारकी हरएक समस्या, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, चाहे वह किसी प्रकारकी हो, वह कहानीकी कला द्वारा शब्द-चित्रोंमें प्रकट की जा सकती है। आप रशियन कहानी लेखकोंपर और विशेषकर तुर्गनेवपर मुग्ध हैं।

आपकी कहानियाँ भारतकी सामाजिक, राजनैतिक, ग्राम्य जीवन आदि समस्याओंके आधारपर नहीं हैं, बल्कि

विशुद्ध कलाके आदर्शपर, कलाके विकासके लिए, मनुष्य स्वभाव और उसके मनोभावोंको यथार्थरूपमें चित्रणके लिए लिखी गई हैं। पंजाबी भाइयोंमें जो जीवन, स्फूर्ति और सजीवता है, वह आपकी कहानियोंमें वर्तमान है। आपकी भाषा सजीव और अनुप्राणित करनेवाली है। कल्पनाकी उड़ानके समान भाषा अभी कवित्वमयी नहीं है, पर यह आपके हृदयका, या स्वभावका नहीं, उमरकी कमीका दोष है। हिन्दी-जगत आपपर नाज़ कर सकता है और वस्तुतः हिन्दी-जगतके लिए आप गौरव हैं।

'विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला' के सम्पादक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारका कुछ परिचय हमने इसलिए दिया है कि पाठकोंको ग्रन्थमालाका उद्देश्य और कार्य समझनेमें कुछ सरलता हो। 'विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला' का आयोजन नामके अनुसार ही विराट और महान है। इस ग्रन्थमालाके कार्य कई भागोंमें बँटा हुआ है—कहानी, कविता, उपन्यास, इतिहास, प्राचीन साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि। इस ग्रन्थमालामें केवल हरएक विभागमें संसारके चुने हुए प्रसिद्ध लेखकोंके प्रमाणिक ग्रन्थोंका केवल अनुवाद ही न होगा, बल्कि मौलिक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जायँगे। पर मौलिक ग्रन्थ साधारण दर्जेके नहीं, बल्कि अपने विषयके उच्चकोटिके और प्रमाणिक तथा स्टेन्डर्ड ग्रन्थ होंगे। फिलहाल ग्रन्थमालाकी ओरसे कहानी विभागमें, प्राचीन साहित्य और कविता भागमें ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। 'ग्रन्थमाला' के संचालकोंका प्रयत्न है कि एक साथ दस पुस्तकोंका एक सेट जनताके सामने उपस्थित किया जाया करे। ग्रन्थमालाका पहला सेट प्रकाशित हो गया है। इन दस पुस्तकोंमें छ कहानी विभागकी हैं। इन छमें भी एक 'भयका राज्य' मौलिक है, और उसके लेखक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार हैं। शेष पाँचमें प्रथम है 'संसारकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ', जिसमें संसारके कहानी साहित्यकी चुनी हुई १६ कहानियोंका अनुवाद है। दूसरी है 'विवाहकी समस्या'। यह थामस हार्डीकी कुछ चुनी हुई कहानियोंका संग्रह है। तीसरी है 'चरागाह', जो रूसके महान आदर्श कलाकार तुर्गनेवकी तीन कहानियोंका अनुवाद है। चौथी है 'पाप'। यह भी रूसके अमर लेखक चेखोवकी कुछ कहानियोंका संग्रह है। इन सबके अनुवादक ग्रन्थमालाके सम्पादक श्री चन्द्रगुप्तजी हैं। पाँचवीं है 'वसीयतनामा'। यह है फ्रान्सके ख्यातनामा क्रान्तिकारी लेखक मोपाँसाँकी तीन चुनी हुई कहानियोंका संग्रह। इसका अनुवाद इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान गुरुकुल-कांगड़ीके प्रोफेसर पं० सत्यकेतु विद्यालंकारने किया है। अनुवादकी भाषा सरल, प्रवाहमयी और परिमार्जित है। अनुवादमें इस बातका यथेष्टरूपसे ध्यान रखा गया है कि लेखकके भाव पूरे और स्पष्टरूपमें पाठकोंके सामने आ सकें। भावोंको अच्छी तरह दिखानेके लिए आवश्यकतानुसार अनुवादकोंने अपनी प्रतिभासे काम लेकर हल्का और गहरा रंग डालकर मूल लेखकके भावोंको और अधिक उज्ज्वल बना दिया है। अभी तक हिन्दीका भंडार बंगलाकी कहानियों और उपन्यासोंसे भरा जाता था। इससे हमारी दृष्टि भारतके समाजके बाहर देखनेकी आदी बिलकुल न थी। इस ग्रन्थमालाने इस संकीर्ण दीवारको तोड़ दिया है, और हमारे विचारोंके मानसिक क्षितिजको भी विस्तृत कर दिया है, और हमारे विचारकी परिधि बढ़ा दी है। इससे हिन्दी-साहित्यकी कहानियोंका आदर्श ऊँचा होगा, और हमारे मौलिक लेखक उसे और भी उच्च बनानेकी कोशिश करेंगे, पर सबसे बढ़कर जनताका मन अधिक विकसित, समर्थ और परिपक्व होगा तथा चिरकालसे जिन रूढ़ियों और परंपरामें हम पल रहे थे, उनपर चोट होते देखकर हम अपने आदर्शकी दुनियासे बाहर आवेंगे। ग्रन्थमालाके संचालकने कहानियोंका और लेखकोंका चुनाव बड़ी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शितासे किया है। यह नवीन आलोक हमारी अँधेरी कोठरियोंको तब तक तो अवश्य प्रकाशित करेगा, जब तक हम अपने दिये नहीं जला लेते। संग्रहमें मूल लेखकोंकी संक्षिप्त जीवनी और आलोचना होनेसे सोने और सुगन्धका मेल हो गया है।

प्राचीन साहित्यमें महाकवि दिङ्नागकी 'कुन्दमाला' हिन्दीमें प्रकाशित की गई है। इसके अनुवादक गुरुकुलके उपाध्याय पं० वागीश्वर विद्यालंकार हैं। पुस्तकके आरम्भमें आपने एक विद्वत्तापूर्ण और खोजभरी भूमिका भी लिखी है, जिससे कविवर दिङ्नागका महत्त्व भवभूति और कालिदासके सामने कितना है, दिङ्नागका संस्कृत-साहित्यमें कौनसा स्थान है, और उनकी प्रतिभा कितनी उज्ज्वल है, इत्यादि बातें पाठकोंको स्पष्ट हो जाती हैं।

कविता-विभागमें 'अन्तर्वेदना' एक अधखिली कलिकाका अस्फुट और करुण गान है। इसकी लेखिका श्रीमती

पुरुषार्थवती इस दुनियाको सूनी करके चली गई हैं। सहृदय पाठक इन कविताओंमें एक भावुकहृदयकी भावनाओंको, ऊँची कल्पनाको तथा सरस भावोंको पायगे। आर्यजगतमें अपनी छोटीसी उमरमें ही इस देवीने एक अच्छा स्थान अपने लिए बना लिया था।

'सरस' पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायकी कविताओंका संग्रह है। 'आधुनिक पद्यावली' का सम्पादन श्री कालिदास कपूरने किया है। इसमें आधुनिक हिन्दी-कविता-साहित्यकी चुनी कविताएँ संग्रहीत हैं। इस ग्रन्थमालाका पता है—मैकलीगन रोड, लाहौर।

—

'भारतीय ग्रन्थमाला'—भारतीय ग्रन्थमाला (वृन्दावन) हिन्दीमें उपयोगी साहित्य उत्पन्न करनेवाली संस्थाओंमेंसे एक है। यह श्री भगवानदासजी केलाकी साहित्यिक तपस्याका फल है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दीमें अर्थशास्त्र तथा राजनीति-शास्त्र-सम्बन्धी साहित्यका निर्माण कर सकी। श्री केलाजी अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्रके एक अच्छे विद्वान हैं, और विद्यार्थी-अवस्थासे ही उन्होंने अपने जीवनका ध्येय हिन्दीमें उपयोगी साहित्य निर्माण करनेका बना लिया था। अपने लक्ष्य तक पहुँचनेके लिए उन्होंने भारतीय ग्रन्थमाला चलाई, और अर्थशास्त्र तथा राजनीति-सम्बन्धी पुस्तकें स्वयं लिखकर प्रकाशित कीं। ग्रन्थमालाके पन्द्रह वर्षोंके जीवनकालमें १८ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इनमें 'भारतीय शासन', 'भारतीय राष्ट्र-निर्माण', 'भावना', 'भारतीय जाग्रति', 'विश्व-वेदना', 'भारतीय राजस्व', 'निर्वाचन-नियम', 'ब्रिटिश साम्राज्य', 'शासन', 'श्रद्धाञ्जली' और 'अर्थशास्त्र-शब्दावली' विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रश्न हो सकता है कि किसी ग्रन्थमालाके लिए इतना थोड़ा कार्य अधिक प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता, किन्तु जब पाठकोंको ज्ञात होगा कि इन पुस्तकोंको प्रकाशित करनेके लिए कोई प्रकाशक तैयार ही नहीं हुआ, तब केलाजीको स्वयं प्रकाशक बननेपर बाध्य होना पड़ा, तो वे केलाजीके सत्साहसकी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। केलाजी कोई सम्पत्तिवान नहीं हैं, जैसी कठिन आर्थिक परिस्थितिमें रहकर उन्होंने यह प्रशंसनीय कार्य किया, उसको उनके निकटस्थ मित्रोंके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मेरा तो अनुमान है कि हिन्दीका भविष्य ऐसे ही साहित्यिक तपस्वियोंके त्यागके कारण उज्ज्वल बनेगा। ग्रन्थमालाकी पुस्तकें कुछ बिक जाती हैं, यही क्या कम है, क्योंकि अर्थशास्त्र तथा राजनीति जैसे विषयोंका अध्ययन करनेकी हिन्दी-पाठकोंमें रुचि उत्पन्न ही नहीं हुई। फिर भी ग्रन्थमालाके संचालक अदम्य उत्साहसे कार्य कर रहे हैं। हमें यह जानकर दुःख हुआ कि बहुतसी पुस्तकें ग्रन्थमाला इस कारण नहीं छपा सकती कि ग्रन्थमालाकी आर्थिक दशा ठीक नहीं है। ग्रन्थमाला शीघ्र ही 'कौटिल्यके आर्थिक विचार' शीर्षक ग्रन्थ प्रकाशित करेगी।

ऐसी संस्थाओंके प्रति हम हिन्दी-पाठकोंका भी कुछ कर्तव्य है। यदि हम चाहते हैं कि हिन्दीमें उपयोगी साहित्यका निर्माण हो, तो हमें इस साहित्यको अपनाना चाहिए।

—

'जागरण'—सम्पादक, श्री प्रेमचन्द; वार्षिक मूल्य ३॥); एक अंकका ⁓); पता, सरस्वती प्रेस, बनारस।

गत वर्ष हमने अपने नवीन साहित्यिक पत्र 'जागरण'का सहर्ष स्वागत किया था। परन्तु तबसे, पुराने आर्य द्विजोंकी भाँति, इसका भी एक दूसरा जन्म हो चुका है। पुराने 'जागरण' की एकदम कायापलट हो गई। आरम्भमें 'जागरण' श्री शिवपूजनसहायके सम्पादकत्वमें पाक्षिक रूपमें निकला था। अब पिछले कई माससे वह हिन्दीके सुप्रसिद्ध उपन्यास और कहानी-लेखक श्री प्रेमचन्दजीके सम्पादकत्वमें निकल रहा है। अब वह पाक्षिकके स्थानमें साप्ताहिक हो गया है, साथ ही आकार और कलेवरमें भी बहुत उन्नतिशाली परिवर्तन हुआ है।

हिन्दीमें एक साहित्यिककी कमीको 'जागरण' पूरा करता है। यद्यपि उसमें मुख्य-मुख्य समाचारोंका सार भी संक्षिप्तरूपसे रहता है, मगर हम उसे एक प्रकारसे शुद्ध साहित्यिक पत्र कह सकते हैं। इस नवीन 'जागरण'के अब तक प्राय: १२ अंक निकल चुके। प्रत्येक अंकमें 'विशाल-भारत'के दुगुने आकारके २८, ३० पृष्ठ होते हैं। कवर पृष्ठ सचित्र होता है। अभी तक जितने अंक प्रकाशित हुए हैं, उनमें एक भी ऐसा नहीं है, जिसमें पाठकको यथेष्ट, पुष्टिकारक, ज्ञानवर्धक मानसिक भोजन प्राप्त न हो। सम्पादकीय, कहानियाँ, निबन्ध, कविताएँ, आलोचना, हास्य और व्यंग लेख आदि सभी मनोरंजक, उच्चकोटिके और पठनीय होते हैं। लेखोंमें विचित्रता भी काफ़ी रहती है।

राष्ट्रीय विचारोंके पाठकोंको यह जानकर हार्दिक हर्ष होगा कि 'जागरण' के सम्पादक महोदय साम्प्रदायिकताकी व्याधिसे एकदम मुक्त हैं। वे हिन्दू-मुस्लिम एकताके पक्षपाती हैं। इस विषयमें उनके विचार श्री सुन्दरलालजीकी तरह दृढ़ हैं, और वे इस सम्बन्धमें बिना किसीकी परवा किये हुए खरी बात कहते हैं।

साहित्य-समीक्षा, रंगमंच, मधु-संचय और महिला-जगत आदि स्थायी स्तम्भोंसे 'जागरण'में प्रकाशित होनेवाले मैटरका वैचित्र्य प्रकट होता है। 'जागरण'की छपाई और सजावट भी औसतमें अन्य सभी पत्रोंसे सुन्दर और आकर्षक है, जिसका सम्पूर्ण श्रेय उसके सहकारी सम्पादक श्री प्रवासीलाल वर्माको है। हम 'जागरण'के इस नवीन रूपका हृदयसे स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि हिन्दी-जनता उसका यथोचित सम्मान करेगी। 'जागरण'की आर्थिक चिन्तासे मुक्त हो जानेपर ही श्री प्रेमचन्दजी मातृभाषाके भण्डारको अपनी मौलिक कृतियोंसे भर सकते हैं। वे हमारे सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक हैं, और उनकी कई रचनाएँ तो विश्व-साहित्यकी सर्वोत्तम रचनाओंके टक्करकी हैं। अतएव परमार्थ तथा स्वार्थ दोनोंकी ही दृष्टिसे श्री प्रेमचन्दजीके उद्योगमें सहायता देना हिन्दी जनताका कर्तव्य है।

'विश्वमित्र' (मासिक)—हिन्दीके सफल पत्रकार श्री मूलचन्द अग्रवालने 'विश्वमित्र'के दैनिक तथा साप्ताहिक संस्करणोंके साथ डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट तथा श्री इलाचन्द्र जोशीके सम्पादकत्वमें उसका मासिक संस्करण भी निकालना आरम्भ किया है, और उनके इस प्रयत्नपर हम हार्दिक बधाई देते हैं। यद्यपि अनेक छोटे-मोटे मासिक पत्र हमारे यहाँ निकलते हैं, तथापि उच्चकोटिके मासिक पत्रोंके लिए हिन्दीमें अब भी काफी स्थान है, और 'विश्वमित्र' की गणना निस्सन्देह सर्वोच्च श्रेणीके मासिक पत्रोंमें की जानी चाहिए। गेटअप, लेख-संग्रह तथा विषय-वैचित्र्यकी दृष्टिसे 'विश्वमित्र'का स्थान बहुत ऊँचा है, और पृष्ठ-संख्या तो सभी हिन्दी मासिक पत्रोंसे अधिक है। प्रथम अंक हमारे सामने है। इसमें कविवर अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रद्धेय पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, कविवर मैथिलीशरण गुप्त, श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री सत्यदेव विद्यालंकार, श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, श्री काशीनाथ त्रिवेदी इत्यादि अनेक प्रसिद्ध लेखकों तथा कवियोंके लेख तथा कविताएँ हैं। स्वयं सम्पादक महोदयोंके भी कई मनोरंजक लेख हैं। दो रंगीन चित्र भी हैं। लेखोंके चयनमें भिन्न-भिन्न रुचियोंके आदमियोंका खयाल रखा गया है। यात्रा-विषयसे रुचि रखनेवालोंको श्री हेमचन्द्रजीकी यूरोप-यात्रा, युवक-आन्दोलनके प्रेमियोंको चीनके नवयुवकोंका जागरण, जासूसी कहानी पसन्द करनेवालोंको भयंकर जासूस अन्नामारीके चरित्र, समाज-सुधार-प्रेमियोंको श्री चतुरसेनजी शास्त्रीका 'हमारी वेश्या बहनें' शीर्षक लेख और फिल्मोंके विषयमें जाननेकी इच्छा करनेवालोंको डा० धनीराम प्रेमके फिल्म-स्टूडियोके अनुभव बहुत पसन्द आवेंगे। हमें जो लेख सबसे अधिक रुचा, वह है 'बाबा गुरुदत्तसिंहके अज्ञातवासकी कहानी'। श्री सत्यदेव विद्यालंकारने इसे लिखकर निस्सन्देह बड़ा उपयोगी कार्य किया है। आजसे कई वर्ष पूर्व हमने सत्याग्रह-आश्रममें सिंधके सुप्रसिद्ध नेता स्वामी गोविन्दानन्दजीकी ज़बानी यह सच्ची कहानी सुनी थी, और उस समय हमारे मनमें यह उत्कंठा उत्पन्न हुई थी कि यदि अवसर मिले, तो हम बाबा गुरुदत्तसिंहका जीवन-चरित लिखें। अब हम उत्कंठापूर्वक इस पुस्तककी प्रतीक्षा करेंगे। पत्रमें कितने ही ज्ञानप्रद तथा मनोरंजक विभाग हैं—यथा महिला-संसार, चयनिका, चित्रमय जगत, प्रबोध-चन्द्रोदय, साहित्य-वार्ता, पुस्तक-परिचय, व्यंग चित्रावली, विज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीय इत्यादि।

ऐसा उच्चकोटिका पत्र निकालनेपर हम संचालक तथा सम्पादक महोदयका हार्दिक अभिवादन करते हैं, और जनतासे अनुरोध करते हैं कि वह अधिकाधिक संख्यामें मासिक 'विश्वमित्र' की ग्राहक बने। वार्षिक मूल्य देशके लिए ६) और विदेशके लिए १२ शिलिंग है। एक अंकका मूल्य आठ आने है। पता—मासिक विश्वमित्र, १४।१ शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

सम्पादकीय विचार

तीसरी जेबी गोलमेज़ कानफरेंस

पहली-दूसरी गोलमेज़ कानफरेंसोंके राज-संस्करण समाप्त हो चुके। अब एक तीसरा संक्षिप्त जेबी संस्करण होनेवाला है। मगर यह संस्करण जनसाधारणके लिए नहीं है, उसका तमाम काम पर्देके पीछे होगा।

पहली दोनों गोलमेज़ कानफरेंसें भी—गोलमेज़ कानफरेंसके सच्चे अर्थमें—वास्तवमें गोलमेज़ कानफरेंसें नहीं थीं। गोलमेज़ कानफरेंसका असली अर्थ है—"राजनैतिक दलोंकी ऐसी कानफरेंस, जिसमें प्रत्येक दलको समान अधिकार हो, और जिसमें यह बात निश्चय कर ली गई हो कि हम लोग अपने झगड़े या प्रश्नको अधिक-से-अधिक "दे-ले" की भावनाके साथ आपसमें सद्भावसे हल कर लेंगे।" पहली बात तो यह है कि पहली और दूसरी कानफरेंसोंमें ब्रिटिश और भारतीय राजनैतिक पक्षोंको समान अधिकार नहीं थे। यदि भारतीयोंको कुछ अधिकार रहे भी हों, तो उन्हें इस तीसरी कानफरेंसमें ब्रिटिश पक्षवालोंने पूरा हथिया लिया। भारतीय पक्षको अधिकार होना तो दूरकी बात है, जो लोग भारतीय प्रतिनिधि कहे जाते थे, वे भी ब्रिटिश गवर्नमेंटके नामज़द किये हुए थे। चाहिए तो यह था कि वे भारतीयोंके निर्वाचित किये हुए होते, या कम-से-कम भारतीय व्यवस्थापिकाओंके निर्वाचित सदस्य ही होते। दूसरे, कानफरेंसकी बैठक भारत और इंग्लैण्डके बीचमें किसी निष्पक्ष देशमें होती, और इंग्लैण्ड और भारत उसका आधा-आधा खर्च बरदाश्त करते। अगर यह प्रस्ताव अनुपयुक्त समझा जाता, तो कम-से-कम कानफरेंसकी दूसरी बैठक हिन्दुस्तानमें होती, क्योंकि पहली इंग्लैण्डमें हुई थी। प्रतिनिधि-मंडलके सदस्योंको देखते हुए यह तीसरी कानफरेंस तो और भी असन्तोषजनक है। सरकारी तौरपर यह बात स्वीकार की गई है कि कांग्रेस भारतकी सबसे महान्, सबसे सुसंगठित और सबसे शक्तिशाली, साम्प्रदायिकताहीन, राजनैतिक संस्था है। वह भारतके राजनैतिक विचारवाले स्त्री-पुरुषोंकी सबसे बड़ी संख्याकी प्रतिनिधि है। मगर वह जान-बूझकर कानफरेंससे एकदम अलग रखी गई है। कांग्रेसके बाद, साम्प्रदायिकतारहित राजनैतिक संस्थाओंमें दूसरा नम्बर इंडियन नेशनल लिबरल फेडरेशनका है, यद्यपि वह कांग्रेससे बहुत अधिक छोटा और पीछे है। मगर उसकी भी प्रायः उपेक्षा की गई है, क्योंकि प्रधान और क्रियाशील लिबरल जैसे मि० सी० वाई० चिन्तामणि, सर चिम्मनलाल सीतलवाड, राइट आनरेबिल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री आदि, जो पिछली कानफरेंसोंमें गये थे, इस बार निकाल बाहर किये गये हैं। दूसरी कानफरेंसमें राष्ट्रवादी मुसलमानोंके प्रतिनिधि स्वर्गीय सर अलीइमाम थे, यद्यपि उन्होंने अपनी इच्छासे या मजबूरीसे बराबर अपना मुँह बन्द ही रखा था, मगर इस बार राष्ट्रीय मुसलमानोंका कोई भी प्रतिनिधि नहीं है। मिस्टर जिन्ना हिन्दू-मुस्लिम समझौतेकी बात करते हैं, लिहाज़ा उन्हें भी शामिल नहीं किया गया, और इसके लिए यह उज्र पेश किया गया कि वे कुछ दिनोंसे विलायतमें रहनेके कारण भारतके सम्पर्कमें नहीं हैं, मानो स्थायीरूपसे विलायतमें रहनेवाले आग़ाख़ाँका हमारे देशसे बहुत बड़ा सम्पर्क है! इस बार जितने मुसलमान गये हैं, वे सब पृथक निर्वाचनके पक्षमें और साम्प्रदायिकताके घोर पक्षपाती 'फ़ज़्ले हुसेन मार्का' मुसलमान हैं।

दोनों पिछली कानफरेंसोंमें हिन्दुओंको उनकी संख्या, उनकी राष्ट्रीय भावना, उनके रोज़गार, उद्यम, संस्कृति आदिके अनुपातमें प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। इस बार उनका प्रतिनिधित्व और भी

असन्तोषजनक है। पिछली दोनों कानफ्रेंसोंमें प्रान्तोंको उनकी आबादी, शिक्षा, भारत-सरकारको दी जानेवाली रक़म आदि बातोंके अनुपातमें प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। इस बार तो इस दृष्टिसे वह और भी असन्तोषजनक है।

इस तीसरी कानफरेंसकी कोई बैठक खुल्लमखुल्ला न होगी, और न उसका कार्यक्रम ही—जिसे ब्रिटिश सरकारने पहलेसे ही निश्चित कर रखा है—प्रकाशित किया जायगा! इसका कारण यह बताया जाता है कि इससे भारतको शीघ्र ही नया शासन-विधान मिल सके। चूँकि ब्रिटिश सरकार अपनी मनमानी करना चाहती है, इसलिए सबसे जल्द और सबसे कम खर्च तरीक़ा तो यह है कि इस सुस्त तथा खर्चीले ढंग और कानफरेंस तथा कमेटियोंके आडम्बरके बिना ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंकी पसन्दका शासन-विधान हिन्दोस्तानको दे दिया जाय।

ब्लैकपूलमें अनुदार दलवालोंकी कानफरेंसमें मि० चर्चिलके साथियोंकी स्पीचों और लार्ड रीडिंगकी अमेरिकाकी प्रोपैगैंडा यात्रासे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि हवाका रुख़ किधर है।

मगर इतनी सब बातें होते हुए भी भारतके कुछ समझदार और सुविज्ञ राजनीतिज्ञ—जैसे सर तेजबहादुर सप्रू और मि० एन० सी० केलकर आदि—इस तीसरी कानफरेंसमें शामिल होनेके लिए लन्दनको रवाना हो गये हैं। इनमें से कुछ शायद अपने मनमें यह सच्चा विश्वास लेकर गये होंगे कि वे इंगलैंडमें भारतके अधिकारोंको ऐसे ही न जाने देंगे, या वे ब्रिटिश केबिनेटके सदस्योंपर भारतके हितके लिए कुछ प्रभाव डाल सकेंगे। मगर हम उनकी इस बातसे सहमत नहीं हैं, और न हमें यह विश्वास है कि वे साम्राज्यवादी ब्रिटिशोंकी पूर्व-निश्चित योजनामें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सकेंगे।

—

गोरे और काले सैनिकोंमें सदाचार

भारत-सरकारके पब्लिक हेल्थ कमिश्नरकी सन् १९२६ की वार्षिक रिपोर्टके दूसरे भागके २४ पृष्ठपर गोरे और भारतीय फौजी सिपाहियोंके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें लिखते हुए बताया गया है—

"गोरे सिपाहियोंमें ३५३० आदमी दुराचार-सम्बन्धी बीमारियों (venereal diseases) के लिए अस्पतालमें भर्ती किये गये। अनुपातमें यह संख्या १००० पीछे ६२·१ पड़ती है।

दुराचार सम्बन्धी बीमारियोंसे बचनेके लिए भारतमें गोरे सैनिकोंको विशेष शिक्षा दी जाती है; बीमारियोंको रोकनेवाली पुड़ियाँ बाँटी जाती हैं; उनके लिए इस प्रकारकी बीमारियोंके क्लीनिक हैं, और चर्म रोगोंके विशेषज्ञ हैं। रोग निवारणकी इन समस्त चेष्टाओंके होते हुए भी गोरोंमें १००० पीछे ६२·१ आदमी दुराचारकी बीमारियोंमें ग्रस्त हैं।

रहे भारतीय सैनिक, सो उनके सम्बन्धमें उसी २८ पृष्ठपर लिखा है—

"इन सिपाहियोंमें २१२२ आदमी दुराचार सम्बन्धी बीमारियोंके लिए अस्पतालमें भर्ती किये गये। अनुपातमें यह संख्या हजार पीछे १५·७ पड़ती है।

इस प्रकार गोरे सैनिकोंमें दुराचार-सम्बन्धी बीमारियाँ काले सैनिकोंकी अपेक्षा चौगुनी अधिक हैं, हालाँकि गोरोंको इन बीमारियोंको बचानेके लिए सारे उपाय किये जाते हैं।"

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

वायसरायके सम्बन्धमें महारानी विक्टोरियाकी राय

भारतके मौजूदा वायसराय लार्ड विलिंग्डनने भारतके सर्वश्रेष्ठ नेता महात्मा गांधीसे भेंट करनेसे जो इनकार किया था, उसे सभी भारतवासी जानते हैं। वायसरायको कैसा होना चाहिए, इस विषयमें स्वर्गीय महारानी विक्टोरियाका क्या मत था, यह उनके एक पत्रसे प्रकट होता है। यह पत्र 'विशाल-भारत' के इसी अंकमें पृष्ठ ७१९ पर प्रकाशित किया जाता है।

—

बीकानेरका काला क़ानून

देशी राज्योंके विषयमें 'विशाल-भारत' अपनी राय स्पष्टतया अनेक बार प्रकट कर चुका है। जो शासन-प्रणाली वहाँ प्रचलित है 'विशाल-भारत' उसका घोर विरोधी है। जहाँ एक आदमीकी इच्छा द्वारा ही जनताके भाग्यका निपटारा किया जा सके, वहाँ रहनेके लिए बाध्य होना वास्तवमें सबसे बड़ा दुर्भाग्य है, और आज भी देशी राज्योंके लाखों ही निवासी ऐसे हैं, जो ब्रिटिश भारतके शासनको अपने राज्योंकी निरंकुश शासन-प्रणालीसे कहीं अधिक अच्छा समझते हैं। यहाँ तब भी अपेक्षाकृत थोड़ीसी स्वाधीनता है, पर देशी राज्योंमें तो सोलह आना दासत्वका बोलबाला है। हमारे राजा-महाराजा भले ही बाहर स्पीचें झाड़कर उज्ज्वल कीर्ति कमाते रहें, पर घरपर उनके काले कारनामोंकी कालिमा उनके दम्भ तथा आडम्बरकी पोल खोलकर जनताके सम्मुख रख देती है। अब वह ज़माना सदाके लिए लद गया, जब बीकानेरकी धाराप्रवाह और अलवरकी लच्छेदार अंगरेज़ी स्पीचोंसे जनता खुश हो सके। जनताकी आँखें अब खुल गई हैं, और वह कोरमकोर शब्दोंसे सन्तुष्ट नहीं हो सकती। पर राजा-महाराजा लोग अभी तक अपने मदमें मस्त हैं। बजाय इसके कि वे प्रेमपूर्वक जनताके प्रतिनिधियोंको अपनावें, वे आतंक जमाकर उसपर शासन करना चाहते हैं! जब रूसी ज़ार तथा जर्मन क़ैसरका ही आतंक नहीं रहा, तब भला इन छोटे-मोटे हिज़ हाईनेसोंका आतंक कब तक ठहर सकता है? उपर्युक्त विचार हमारे मनमें तब उठे, जब 'बीकानेरका काला क़ानून' हमारे देखनेमें आया। उसे पढ़कर हमें दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। उसकी दफाएँ ब्रिटिश सरकारके आर्डिनेंसकी तरहकी हैं। न तो बीकानेर राज्यसे कोई जनताके पक्षका समर्थक पत्र निकलता है, और न वहाँ कोई सार्वजनिक आन्दोलन ही चल रहा है, फिर ये क़ानून क्यों बनाया गया? बात दरअसल यह है कि देशी राज्योंके शासनमें अनेक त्रुटियाँ हैं, और जनता धीरे-धीरे उनको जानने लगी है। ब्रिटिश भारतकी जनताके आन्दोलनकी लहरें रियासतोंके किनारेपर जाकर टकराती हैं, और हमारे अदूरदर्शी देशी नरेश इन लहरोंको रोकनेका निष्फल प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे असन्तोष घटनेके बजाय उलटा और बढ़ेगा। जब देशी राज्योंके निवासी देखेंगे कि जिस आर्डिनेंस राज्यके विरुद्ध ब्रिटिश भारतके लाखों ही आदमी लड़ रहे हैं, वह देशी राज्योंमें भी जारी हो रहा है, तो स्वभावतः उनकी सहानुभूति ब्रिटिश भारतके आन्दोलकोंके साथ और भी दृढ़ हो जायगी। इस दृष्टिसे हम तो बीकानेरके काले क़ानूनका सहर्ष स्वागत करते हैं। फोड़ेके फूट निकलनेपर उसका इलाज आसान हो जाता है, उसी प्रकार निरंकुश शासकोंकी कार्रवाइयोंके खुल्लमखुल्ला जनताके सामने आनेका अन्तिम परिणाम अच्छा ही होगा।

देशी राज्योंकी प्रजाका इस समय कर्तव्य है कि वह प्रत्येक राज्यके विषयमें छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ निकाले, जिनमें यह बात स्पष्टतया दिखलाई गई हो कि रियासतकी कुल आमदनी कितनी है, और उसका कितना हिस्सा जनताके लाभार्थ ख़र्च किया जाता है। स्कूलों, अस्पतालों, पुस्तकालयों इत्यादिके लिए राज्य क्या व्यय करता है। जनताको अपने कष्टोंके निवारणार्थ वैध आन्दोलनके लिए क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं, और महाराज साहब अपने ऊपर क्या ख़र्च करते हैं, इत्यादि। इन पुस्तिकाओंमें कोई भी बात अत्युक्तिके साथ न लिखी जाय। अंक और प्रमाण देकर प्रत्येक बातका समर्थन किया जाय। देशी राज्योंकी जनताका पक्ष इतना प्रबल है कि वह अत्युक्तिसे उलटा कमज़ोर हो जायगा। जो बात लिखी जाय, वह नपे-तुले शब्दोंमें और सावधानीके साथ। देशी राज्य-प्रजा-परिषदका कर्तव्य है कि वह अपनी देख-रेखमें इस प्रकारकी पुस्तिकाएँ निकाले। पर जब तक देशी राज्य-प्रजा-परिषद इस कामको हाथमें नहीं लेती, तब तक भिन्न-भिन्न राज्योंकी प्रजाको ही यह काम अपने हाथमें ले लेना चाहिए। हम उन आदमियोंसे सहमत नहीं हैं कि ब्रिटिश भारतके आन्दोलनके साथ देशी

राज्योंके आन्दोलनको पुँछल्लेकी तरह बाँध देना चाहते हैं। यहाँकी स्थिति नाज़ुक है, इसलिए देशी राज्योंके काले कारनामोंकी पोल मत खोलो, क्योंकि इसके राजा-महाराजा भी हमारे विरोधी बन जावेंगे, यह तर्क हमें तो उचित जँचता नहीं। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि देशी राजे-महाराजे आगे चलकर भारतकी सच्ची स्वाधीनताके मार्गमें प्रबल बाधक सिद्ध होंगे, और उनकी सहूलियतका ख़याल करनेकी हमें आवश्यकता नहीं। हम लोग भले ही इस समय क्रियात्मक रूपसे देशी राज्योंकी प्रजाकी सहायता न कर सकें, पर वहाँके जो लोग आन्दोलन कर रहे हैं, उनपर नियन्त्रण करना हमारी समझमें अनुचित तथा हानिकारक ही होगा।

—

'भारत'-सम्पादककी शिष्टता

शिष्ट समाजका यह नियम है कि मृत्युके बाद अपने शत्रुकी भी निन्दा नहीं की जाती, पर 'भारत'के सुशिक्षित सम्पादक श्री नन्ददुलारे वाजपेयी एम० ए० इस नियमको पालन करनेमें असमर्थ सिद्ध हुए हैं। पं० पद्मसिंहजीके जीवनकालमें उन्होंने अपनी शिष्टताका परिचय कई बार दिया था। उस समय कई सज्जनोंने हमसे अनुरोध भी किया था कि हम 'भारत' के अनुचित अक्षेपोंका उत्तर दें, क्योंकि सम्पादक महोदय हमारे ऊपर भी आठ-दस बार कटाक्ष कर चुके थे, पर हमने उनकी उपेक्षा करना ही उचित समझा। सोचा था कि अनुभवहीनताके कारण उन्होंने ऐसा किया है, पर सम्पादक महोदयकी यह प्रवृत्ति बढ़ती जाती है, इसलिए इच्छा न होनेपर भी हमें यह नोट लिखना पड़ा है।

पूज्य द्विवेदीजीने सम्भवत: अपनी किसी चिट्ठीमें जो प्रकाशनार्थ नहीं लिखी गई थी, यह ज़िक्र कर दिया था कि पं० पद्मसिंहजी अंगरेज़ी नहीं जानते। बस, 'भारत'-सम्पादकने इस बातको पकड़ लिया, और लगे उसको बार-बार दुहराने! किस पत्रके उत्तरमें द्विवेदीजीने यह बात लिखी थी, और उनका उससे क्या अभिप्राय था, इस बातका ज़िक्र करना 'भारत'-सम्पादकने उचित नहीं समझा। उन्हें तो पं० पद्मसिंहजीकी निन्दासे अभिप्राय था। पूज्य द्विवेदीजी साहित्य-क्षेत्रसे रिटायर हो चुके हैं, अपना साहित्यिक हिसाब-किताब साफ़ कर चुके हैं, और वे नया खाता खोलना नहीं चाहते। अपने जीवनका सर्वोत्तम भाग अपनी शक्ति और जो कुछ कमाया, वह भी सब कुछ हिन्दी-जगतको अर्पित कर वे विश्राम ले रहे हैं। वाद-विवादमें उनकी रुचि नहीं है, उससे वे घृणा करते हैं। द्विवेदीजीका यह गुण है कि आवश्यक पत्रोंका उत्तर वे तुरन्त दे देते हैं। उनकी इस शिष्टताका दुरुपयोग करना और उन्हें वाद-विवादमें घर घसीटना अनुचित है, अन्याय है। पर 'भारत'-सम्पादकको उचित-अनुचितसे क्या मतलब? बार-बार लिखना शुरू किया कि द्विवेदीजी कहते हैं कि पं० पद्मसिंहजी अंगरेज़ी नहीं जानते। उस समय कई सज्जनोंने मुझसे कहा कि आप द्विवेदीजीसे पूछिये तो सही कि यह पत्र उन्होंने किस सिलसिलेमें लिखा था, और क्या उसका उपयोग उसी ढंगसे करनेके लिए उन्होंने 'भारत'-सम्पादकको इजाज़त दे दी थी, जिस ढंगसे एक निजी चिट्ठीका प्रयोग वे कर रहे थे। पर मैंने द्विवेदीजीको कष्ट देना अनुचित समझा। इसी समय 'विद्यार्थी'-कार्यालयके किसी कर्मचारीने द्विवेदीजीको पत्र लिखा। उसका ज़िक्र करते हुए द्विवेदीजीने श्री रघुनन्दन शर्माको लिखा था—

"× × × पं० पद्मसिंहजीसे मेरा प्रणाम कहिए। आपके प्रेसके किसी कर्मचारीने उनके विषयमें किसी लेखकी बाबत मुझसे कुछ पूछा था। मैंने जवाब नहीं दिया। ज़रूरत न थी। उस दिन देवीदत्त शुक्लसे सब बातें कह दी थीं। शर्माजीको चाहिए, किसीकी बातपर विश्वास न करें। मेरी श्रद्धा और प्रेम उनपर जैसा था, वैसा ही है। किसीकी शरारतसे वह कम नहीं हो सकता।

निवेदक—
म० प्र० द्विवेदी।"

जब पं० पद्मसिंहजीका स्वर्गवास हुआ, तो 'भारत'-सम्पादकने "पं० पद्मसिंह शर्माका देहावसान" शीर्षक एक टिप्पणी १० अप्रैलके 'भारत' में लिखी। उसमें आपने लिखा था—"पं० पद्मसिंह शर्मा आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। उनकी प्रतिष्ठा उनके महत्त्वसे भी अधिक थी। हिन्दीमें ऋषि दुर्वासाकी भाँति उनका सम्मान होता था····" यह पढ़कर हमें कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। "जाकी रही भावना जैसी" वाला हिसाब है। अब रहा यह प्रश्न कि पद्मसिंहजीकी प्रतिष्ठा उनके महत्त्वसे अधिक थी या कम, सो इसका फैसला सुविज्ञ समालोचक ही कर सकते हैं। 'भारत' के उपर्युक्त कटाक्षसे कितने ही प्रतिष्ठित हिन्दी-लेखकोंको कष्ट पहुँचा था, और उस समय भी कई सज्जनोंने हमें लिखा था कि हम कुछ लिखें, पर तब भी हमने मौन धारण करना ही उचित समझा। जब 'विशाल-भारत' का 'पद्मसिंह-अंक' निकला, तो उस समय हमने कितने ही लेखकोंसे प्रार्थना की कि स्वर्गीय शर्माजीकी लेखशैलीके विषयमें वे निष्पक्ष होकर लिखें। उसकी कड़ीसे कड़ी आलोचना छापनेके लिए हम तैयार थे। इसी आशयकी चिट्ठियाँ भी हमने अध्यापक पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़को लिखी थीं। खेद है कि वे लोग समयाभावके कारण अपने लेख न भेज सके। यदि 'भारत'-सम्पादक पक्षपातका चश्मा उतारकर देखते, तो उन्हें पता लगता कि पं० पद्मसिंहजीके अनन्य भक्त होते हुए भी हमने उस अंकमें 'शर्माजीके पत्र' नामक लेखमें उनकी लेखशैलीकी तीव्र आलोचना की थी। अन्य सज्जनोंने उस अवसरपर यदि निमन्त्रण देनेपर भी शर्माजीके विषयमें नहीं लिखा, तो इसमें हमारा क्या अपराध था? 'भारत'-संपादकने लिखा था—

"सब लेखोंमें उनकी सरलता, सीधे-स्वभाव, अध्ययनशील अभिरुचि, आदिका उल्लेख किया गया है। यह बाह्य साक्ष्य (External evidence) हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी पुस्तकोंके अध्ययनसे उनके साहित्यिक उत्कर्ष और स्वभावपर क्या प्रकाश पड़ता है, इसपर किसीने चर्चा नहीं की। शर्माजी हिन्दीके अपने युगके सबसे कटु आलोचक थे, उनके सतसई-संहारके शब्द शब्दमें इसका प्रमाण है। तो क्या शर्माजीने सतसई-संहारकी सम्पूर्ण कटुता अपने नित्यप्रतिके जीवनसे निकाल फेंकी थी? पाठकगण इससे क्या निष्कर्ष निकालें? आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्यामसुन्दरदाससे शर्माजीका कैसा व्यवहार रहा? पं० रामचन्द्र शुक्लसे उनका सम्बन्ध कितना प्रिय था? इसपर कुछ भी नहीं लिखा गया।"

इससे यह ध्वनि स्पष्टतया निकलती है कि स्वर्गीय शर्माजीका द्विवेदीजी, बाबू श्यामसुन्दरदासजी और शुक्लजीसे कटुतायुक्त सम्बन्ध था। 'भारत' के शिष्ट सम्पादकने यह भी न सोचा कि इस प्रकारकी अनुचित बातें लिखकर वे पूज्य द्विवेदीजीके हृदयको कितना दुःख पहुँचा सकते हैं। द्विवेदीजीके घोरसे घोर शत्रु भी उनपर यह अपराध नहीं लगा सकते कि वे कोई असत्य बात लिखेंगे। जब उन्होंने अपनी 'सुहृद्वर' शीर्षक कवितामें लिख दिया था—

"संस्मृत्य तेऽद्य सरसं च कथाकलापं
सत्यं वदामि हृदयं शतधा प्रयाति।
आर्तस्य निर्गृतधृतेर्मम शोकशान्त्यै
त्वत्सन्निधौ गमनमेव विनिश्चिनोमि॥"

तो किसी समझदार सहृदय पाठकको इस एक श्लोकमें ही द्विवेदीजी तथा शर्माजीके प्रेमपूर्ण सम्बन्धका पर्याप्त परिचय मिल सकता था। इससे अधिक कोई अपने मित्रके लिए क्या लिखेगा? पर 'भारत'-सम्पादकको तो स्वर्गीय पं० पद्मसिंहपर धूल फेंकनी थी। अब ज़रा सुन लीजिए, इससे पूज्य द्विवेदीजीको कितनी मार्मिक वेदना हुई है। उन्होंने श्री रघुनन्दन शर्माको अपने १-९-३२ के पत्रमें लिखा है—

दौलतपुर (रायबरेली)
१-९-३२

"आयुष्मान् भव,

अपनी २८ ता० की चिट्ठीमें आपने अलकाब-आदाब तो बड़े ही ठाठसे लिखा। याद रहे, आपमें मेरा वात्सल्यभाव है।

मेरा और मेरे मित्रका सम्बन्ध कैसा था, यह आप नहीं जानते। ज्वालापुरके गुरुकुलमें मैं महीनों उनका अतिथि था, अकेला ही नहीं, सपत्नीक। उनका अभिनन्दन मैं अपना अभिनन्दन समझता रहा हूँ और उनका उपहास, अपना ही उपहास। स्मृति-अंकके आरम्भमें मेरे सच्चे हार्दिक उद्गार आपने देखे ही होंगे। मैं आपका निर्दिष्ट लेख नहीं पढ़ना चाहता—

'न केवलं यो महतोऽपभाषते
श्रृणोति तस्मादपि यः सपापभाक्।'

इस उम्रमें मेरा एकमात्र रिश्तेदार, स्वामी या नियन्ता परमात्मा ही है, और कोई नहीं। यदिच्छसि तत्कुरु। मैं किसीको कुछ न लिखूँगा।

शुभेच्छु—
म० प्र० द्विवेदी"

'भारत'-सम्पादकको चाहिए कि इस पत्रको ज़रा ग़ौरसे पढ़ें।

अध्यापक पं० रामचन्द्र शुक्लके प्रति भी पं० पद्मसिंहजी सम्मानका भाव रखते थे। अपनी 'गद्यगौरव' नामक पुस्तकमें उन्होंने शुक्लजीका परिचय निम्न-लिखित शब्दोंमें दिया है—

"श्रीमान् पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल हिन्दीके विद्वान् लेखकोंमें प्रमुख हैं। आप जिस विषयपर लिखते हैं, खूब सोच-विचारकर गम्भीरतासे लिखते हैं। आपकी विवेचना युक्ति-युक्त दार्शनिक रंग लिए हुए होती है। आपके निबन्धोंसे अध्ययनशीलता और बहुश्रुतताका परिचय मिलता है। जायसी, तुलसी और सूरदासपर आपके आलोचनात्मक निबन्ध बड़े पाण्डित्य-पूर्ण हैं। आप गम्भीरशैलीके लेखक हैं, इस कारण भाषा सर्वसाधारणके लिए कुछ क्लिष्ट हो जाती है, पर वह होती है खूब गठी हुई और विषयके विचारसे सर्वथा उपयुक्त। आपका लिखा हुआ 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' अपने विषयका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। पद्य भी आप अच्छा लिखते हैं। Light of Asia का पद्यानुवाद 'बुद्ध-चरित' आप ही की रचना है। और भी कई पुस्तकें आपने लिखी हैं।"

इसके अतिरिक्त उन्होंने कलकत्ता-सम्मेलनके अवसर अपने ७-४-३१ के पत्रमें हमें लिखा था कि पं० रामचन्द्रजी शुक्लको सम्मेलनका सभापति बनाया जाना चाहिए था। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि रत्नाकरजी पं० पद्मसिंहजीके घनिष्ठ मित्रोंमें से थे, फिर भी वे रत्नाकरजीकी अपेक्षा शुक्लजीका अधिक हक़ समझते थे। शुक्लजी भी पं० पद्मसिंहजीकी विद्वत्ता तथा सहृदयताके क़ायल रहे हैं।

शुक्लजीने अपने ३-७-३२ के कृपापत्रमें मुझे लिखा था—

"श्रीयुत पद्मसिंहजी ऐसे प्रकांड साहित्य-मर्मज्ञके सम्बन्धमें आपने मेरा स्मरण किया, यह मेरे लिए सम्मानकी बात है। श्रीयुत पद्मसिंहजीके अकाल स्वर्गवाससे जो चोट हिन्दी-साहित्य-प्रेमियोंको पहुँची है, वह बहुत कड़ी है। मेरा उनका दो ही एक बारका साक्षात्कार है, पर उनकी मधुर स्मृति मुझे बराबर रही है।"

यदि कभी शुक्लजी तथा शर्माजीमें पारस्परिक मतभेद हुआ हो, तो हमें उसका पता नहीं। आशा है, शुक्लजी इसपर प्रकाश डालेंगे।

आचार्य श्यामसुन्दरदासजीके प्रति उनके जो भाव थे, वे निम्न-लिखित शब्दोंसे प्रकट हैं।

"श्रीयुत राय-साहब बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए०, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें हिन्दीके सबसे बड़े स्तम्भ हैं—हिन्दी-विभागके विधाता (अध्यक्ष) हैं। काशीकी 'नागरी-प्रचारिणी सभा'के संस्थापकोंमें आप मुख्य हैं। सभाको इस उन्नत दशामें पहुँचानेका

सर्वाधिक श्रेय आप ही के अध्यवसाय और प्रबन्धपटुताको है। आपके सम्पादकत्वमें सभा द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। सभाके पुस्तक-प्रकाशन-विभागके स्थायी सम्पादक आप ही हैं। 'साहित्यालोचन', 'हिन्दी भाषा और साहित्य', 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' इत्यादि कई पुस्तकें आपने लिखी हैं। कालेज-स्कूलोंके कोर्समें आपकी सम्पादित और लिखित अनेक पुस्तकें प्रचलित हैं। रामचरित-मानसकी टीका भी आपने लिखी है। इस प्रकार इन्होंने हिन्दी-साहित्यकी सराहनीय सेवा की है और कर रहे हैं।

"आपकी भाषा गुड्डल होती है—उसमें भाषापन कम और कृत्रिमता अधिक रहती है—मालूम होता है, कहींसे कुछ अनुवाद-सा करके लिख रहे हैं और भाव-प्रकाशनके लिए उचित शब्द नहीं मिल रहे, गढ़-गढ़कर शब्दोंकी शिला रख रहे हैं। राय-साहबकी भाषा मन्दगतिसे ठोकर खाती हुई—लँगड़ाती हुई-सी—चलती है। उसमें प्रवाहका, शब्द-शौष्ठव, माधुर्य और मौलिकताका अभावसा प्रतीत होता है।

"हिन्दीमें अनुस्वार-विषयक परसवर्ण-विधानके आप परम विरोधी हैं। सर्वत्र बिन्दु ही से काम चलाना ठीक समझते हैं। अपने लेखोंमें और अपनी सम्पादित पुस्तकोंमें इस नियमका आप बड़ी सतर्कतासे पालन करते हैं। यथा—अपने नामके 'सुन्दर' शब्दमें 'न् द' मिलाकर (न्द) कभी न लिखेंगे। 'सु' पर बिन्दु लगाकर 'सुंदर' लिखेंगे।

"आपकी शैलीकी यही विशेषरूपसे एक उल्लेख्य विशेषता है। जो हो, हिन्दीवालोंमें आपका दम बहुत ग़नीमत है। आपके प्रयत्नसे हिन्दीका पर्याप्त प्रचार तो हुआ है।"

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि श्री श्यामसुन्दर दासजीने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' में श्री पद्मसिंहजीकी लेखशैलीके विषयमें निम्न-लिखित वाक्य लिखे थे—

"....शर्माजीकी समालोचनाशैली, बड़ी ही व्यंग्यमयी हो गई है और उसमें कवियोंकी प्रशंसामें वाह-वाह कहनेका उर्दू ढंग पकड़ा गया है। यदि शर्माजी कुछ अधिक गम्भीरता और शिष्टता साथ लिए रहते तो अच्छा होता। कदाचित् उनकी उछलती, कूदती, फुदकती हुई भाषाशैलीके लिए यह सम्भव न था।"

श्री श्यामसुन्दर दास और श्री पद्मसिंह शर्माकी लेखशैलीमें कितना अन्तर है, और उनकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं, इस प्रश्नसे हमारा यहाँ कोई सरोकार नहीं। भाषाशास्त्री ही इसका निर्णय कर सकते हैं। हम इस अप्रिय प्रसंगको छेड़ना नहीं चाहते थे, पर साहित्यिक शिष्टताकी रक्षाके लिए हमें ये पंक्तियाँ लिखनी पड़ती हैं।

—

सम्मेलनका सभापति कौन हो ?

ग्वालियरमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन शीघ्र ही होनेवाला है। उसके सभापति-पदके लिए सम्मतियाँ मँगाई जा रही हैं। कई सज्जनोंके नाम लिए गये हैं। हमारी सम्मतिमें शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे अध्यापक पं० रामचन्द्र शुक्ल इस पदके सर्वथा योग्य हैं। साहित्य-सम्मेलन उनको निर्वाचित कर अपना ही सम्मान करेगा। अनेक अधिवेशनोंमें सभापतिके निर्वाचनमें राजनैतिक, आर्थिक तथा अन्य असाहित्यिक बातें प्रभाव डालती रही हैं, पर अब समय आ गया है, जब कि इस प्रश्नपर शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे ही विचार किया जाना चाहिए। शुक्लजीका जीवन पूर्णरूपेण साहित्यिक है, और उनमें अपनी सम्मति बिना किसी संकोचके प्रकट करनेका साहस भी है। उनकी साहित्य-सेवा भी किसी बड़े-से-बड़े साहित्य-सेवीसे कम नहीं, और ऐसे अवसरपर जब कि साहित्यिक जगतमें धींगाधींगी मची हुई है, उनके समान चिन्ताशील तथा गम्भीर पथप्रदर्शककी आवश्यकता है।

—

भारतीय नौ व्यापार

भारतके जहाज-मालिकोंकी ओरसे एक डेप्युटेशन अभी हालमें श्रीमान वायसराय महोदयसे मिला था। इस डेप्युटेशनके प्रधान थे श्रीयुक्त बालचन्द हीराचन्द, जो सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके डाइरेक्टरोंमें से हैं। आपने अपने वक्तव्यमें वायसरायका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट किया है कि इस देशके सामुद्रिक उपकूल व्यापार (Coastal trade) पर विदेशी जहाज़ी कम्पनियोंका आधिपत्य तो है ही, किन्तु इस आधिपत्यके होते हुए भी वे अनुचित प्रतियोगितासे भारतीय जहाज़ी कम्पनियोंको क्षतिग्रस्त करनेकी चेष्टा करती हैं। ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी (British India Steam Navigation Company) अपने भाड़ेमें अत्यधिक कमी करके देशी कम्पनियोंको कुचल डालनेकी सदैव कोशिश करती रहती है। इस कम्पनीने अभी हालमें रंगूनसे चटगाँव तकका भाड़ा १४) रु०से घटाकर ४) रु० कर दिया है, जिससे बंगाल बर्मा स्टीम नेवीगेशन कम्पनी उसका मुक़ाबला न कर सके। जब-जब देशी जहाज़ी कम्पनियाँ स्थापित हुई हैं, तब-तब इन विदेशी कम्पनियोंने इसी प्रकार भाड़ेमें कमी करके (Rate war) इन कम्पनियोंको कुचल डाला है, और फिर इसके बाद अपना भाड़ा पहलेके समान ही नहीं कर दिया है, बल्कि उसमें वृद्धि भी कर दी है। विदेशी कम्पनियाँ सिर्फ भाड़ेमें ही कमी नहीं करतीं, बल्कि मुसाफिरोंको और भी अनेक प्रकारका प्रलोभन दिया करती हैं। इस अनुचित प्रतियोगिताको रोकनेके लिए भारत-सरकारका ध्यान कई बार इस अन्यायकी ओर आकृष्ट किया जा चुका है। व्यवस्थापिका परिषद्के गत अधिवेशनमें इस आशयका एक प्रस्ताव भी स्वीकृत हो चुका है, किन्तु सरकारी सदस्यने उस प्रस्तावपर जो रुख दिखलाया था, उससे यह स्पष्ट हो जाता था कि सरकार इस सम्बन्धमें कोई कार्रवाई नहीं करना चाहती। आश्चर्यकी बात तो यह है कि भारतीय नौ-व्यापारके लिए सरकारकी ओरसे सहानुभूति प्रदर्शित करनेमें कभी कोई कसर नहीं की जाती, किन्तु वास्तविक कार्य करनेके लिए कहा जाता है, तो सरकार बग़लें झाँकने लगती है!

—

सौ वर्ष पहले भारतका नौ-व्यापार

आजकल भारतके नौ-व्यापारमें भारतीयोंका कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं है, मगर केवल ९५ वर्ष पहले नौ-व्यापारमें भारतीयोंका कितना बड़ा हाथ था, यह श्री योगेशचन्द्र बागाल-लिखित 'रुस्तमजी कावासजी' नामक पारसी व्यापारीकी जीवनीसे प्रकट होती है। श्री बागाल महाशय लिखते हैं—

"सन् १८३७ में रुस्तमजीने कलकत्तेमें जहाज़ बनानेके लिए एक डाकिंग कम्पनी खोली थी। उन्होंने खिदरपुर और सलकिया डाक छै लाख रुपयेमें ख़रीदकर वहाँ जहाज़का कारख़ाना खोला। रुस्तमजी कम्पनी तथा कार टैगोर कम्पनीके अनेक जहाज़ यहीं बनाये गये थे। "रुस्तमजी कावासजी" नामके एक अत्यन्त सुन्दर और तेज़ जहाज़को धनजी भाई रुस्तमजी नामक एक पारसी इंजीनियरने कलकत्तेमें बनाया था। रुस्तमजी कावासजीके पास चालीस जहाज़ोंका बेड़ा था। यह जहाज़ कलकत्ते और मद्रास, लंका, बम्बई, सिंगापूर चीन और आस्ट्रेलियाके बीच व्यापारी माल ढोया करते थे। उनके जहाज़ तत्कालीन अन्य जहाज़ोंकी अपेक्षा कितने उच्चकोटिके थे, यह बात १९ दिसम्बर १८३९ के 'फ्रेंड-आफ़ इंडिया' नामक एक ऐंग्लो-इंडियन पत्रसे विदित होती है। 'फ्रेंड-आफ़-इंडिया' लिखता है—

"रुस्तमजी कावासजी जहाज़ने अपनी जहाज़रानीकी इतनी शोहरत हासिल कर ली है, जितनी कि क्लिपर जहाज़ोंको भी नहीं मिली। वह सिंगापुरसे चलकर सिर्फ ग्यारह दिनमें मकाओ पहुँच गया।"

रुस्तमजीके जहाज़ सिर्फ माल ही नहीं ढोते थे, वे डाक भी ले जाते थे। वे इतने अच्छे बने थे कि सन् १८३९ में ब्रिटिश गवर्नमेंटने सुदूर पूर्वमें युद्धके हेतु उन्हें भाड़ेपर लिया था। कावासजीका गोलकुंडा

नामक जहाज़ चीनकी लड़ाईमें नष्ट हो गया था। जब स्वेज़का रास्ता मालूम हो गया, तब रुस्तमजीने कुछ और साझीदारोंके साथ एक नई कम्पनी खोली, जिसका उद्देश स्टीमरोंके द्वारा स्वेज़को माल और डाक ले जाना था; मगर उसी समय ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपनी संरक्षकतामें पी० ऐंड ओ० कम्पनी खोलकर अपना आधिपत्य जमा लिया, इसलिए रुस्तमजी कावासजीको अपनी कम्पनी बन्द कर देनी पड़ी। तबसे आज तक डाक ले जानेका ठेका—भारतीयोंके प्रतिवाद करनेपर भी—इसी पी० ऐंड ओ० कम्पनीके हाथमें है।

चीनीका व्यवसाय

यह सन्तोषकी बात है कि भारतमें चीनीके व्यवसायकी वृद्धि बड़ी तेज़ीसे हो रही है। सन् १९२१के मार्चमें भारत-सरकारने विदेशी चीनीपर प्रति हण्डरवेट सात रुपये चार आनेके हिसाबसे ड्यूटी लगाई थी। इसके बाद उसी साल ३० सितम्बरके Supplimentary budgete) में अन्य विदेशी वस्तुओंके समान चीनीपर भी सैकड़े २५ सरचार्ज ड्यूटी (Surcharge duty) लगाई गई। इस प्रकार कुल मिलाकर इस समय ९ रु० प्रति हण्डरवेट ड्यूटी विदेशी चीनीपर लगती है। इस ड्यूटीसे भारतके स्वदेशी व्यवसायको पूर्ण संरक्षण और प्रोत्साहन मिला है, और गत एक वर्षके अन्दर ही देशमें कितनी ही मिलें स्थापित हो चुकी हैं, जो इस सालकी फसलसे ही काम शुरू करने लग जायँगी। यह अनुमान किया जाता है कि इस सालसे लेकर आगामी साल तक लगभग २५ फैक्टरियोंमें चीनी तैयार करनेका काम होने लगेगा। अभी हालमें शुगर मिल्सके व्यवसाइयों और बी० एन० डब्लू० रेलवेके एजेंटकी एक कानफरेंस गोरखपुरमें हुई थी, जिसमें रेलवे कम्पनीसे यह अनुरोध किया गया था कि वह ईख ढोनेकी मालगाड़ियोंके भाड़ेमें कमी करे, जिससे चीनी तैयार करनेमें कम खर्च पड़े और देशी चीनी विदेशी चीनीका मुक़ाबला सफलतापूर्वक कर सके। चीनीकी अधिकांश मिलें बिहार और संयुक्तप्रान्तमें स्थापित हैं, क्योंकि उत्तर भारतके इन्हीं दो प्रान्तोंमें ईखकी पैदावार अधिक होती है। इन दो प्रान्तोंमें बी० एन० डब्लू० रेलवे कम्पनीकी प्रधानता है। अतएव उक्त कम्पनीसे भाड़ेमें कमी करनेका अनुरोध किया गया है, जिसे कम्पनीने स्वीकार भी कर लिया है। इस कानफरेंसमें चीनीके व्यवसाइयोंने यह भी निश्चय किया है कि फैक्टरियोंके लिए ५ आने फी मनके हिसाबसे ईख ख़रीदनेसे चीनी तैयार करनेमें कम खर्च पड़ेगा। चीनीके व्यवसाइयोंको अब एक बातकी ओर विशेषरूपसे ध्यान देना चाहिए। भविष्यमें जो मिलें स्थापित हों, वे यथासम्भव ऐसे स्थानमें हों, जहाँ ईखकी खेती पासमें होती हो, और ईख ढोनेमें जो रेल भाड़ा देना पड़ता है, उसमें बचत हो। इस ख़र्चसे बच जानेपर वे और भी सस्तेदरमें चीनी तैयार कर सकते हैं। इसके सिवा ईख जितनी ताज़ी होगी, उतना ही उससे अधिक रस निकलेगा। भीषण प्रतियोगिताके इस ज़मानेमें वही व्यवसाय बाज़ी मार सकता है, जो माल तैयार करनेमें किफ़ायतशारीसे काम ले, और wastage (बर्बादी) से बचनेकी कोशिश करे। इसमें सन्देह नहीं कि चीनीके व्यवसायका भविष्य उज्ज्वल दीख पड़ता है, और यदि यही अवस्था बनी रही, तो निकट-भविष्यमें ही यह देश चीनीके सम्बन्धमें स्वावलम्बी बन जायगा।

ओटावा-कानफरेंस

ओटावा-सम्मेलनमें इंग्लैंड तथा ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य देशोंके साथ भारतका जो व्यापारिक समझौता हुआ है, उससे हमारे पाठक अपरिचित न होंगे। उसी समझौतेको अब क़ानूनका रूप देनेके लिए भारत-सरकार उसे व्यवस्थापिका परिषदमें उपस्थित करने जा रही है। जिस समय तक 'विशाल-भारत'का यह अंक पाठकोंके

हाथमें पहुँचेगा, उस समय तक इस समझौतेको परिषदकी स्वीकृति मिल जायगी। यद्यपि इस सम्बन्धमें कई सदस्योंने संशोधन उपस्थित करनेकी सूचना दी है, किन्तु इस समय परिषदका जैसा संगठन है, उसे देखते हुए यह अवश्यम्भावी-सा जान पड़ता है कि सरकार सरकारी और ग़ैर-सरकारी नामजद सदस्योंके बलपर इसे सहज ही स्वीकृत करा लेगी। इस समझौतेसे भारतको लाभ हुआ है या हानि, इस सम्बन्धमें हम गतांकमें प्रकाश डाल चुके हैं। इधर एक बार फिर देशकी विभिन्न व्यापारिक संस्थाओंने सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए यह अनुरोध किया है कि वह इस काममें जल्दबाज़ी न करे, और इसे तब तकके लिए स्थगित रखे, जब भावी शासन-सुधारकी व्यवस्थापिका-परिषदमें जनताके प्रतिनिधियों द्वारा इसपर सम्यक् रूपसे विचार न हो सके। क्योंकि जिन सज्जनोंने भारतकी ओरसे इस समझौतेपर हस्ताक्षर किये हैं, वे भारतके सच्चे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते, और न भारतवासी उन्हें अपना प्रतिनिधि मानते ही हैं। जिस समय पार्लामेन्टमें इस ओटावा-सम्मेलनके समझौतेपर वाद-विवाद हो रहा था, एक सदस्यने इस बातपर सन्तोष प्रकट किया कि भारतके प्रतिनिधियोंने इसे स्वीकार कर लिया है। किन्तु भारत-सरकार द्वारा चुने गये प्रतिनिधि ही यदि भारतके वास्तविक प्रतिनिधि समझे जायँ, तो भारतकी स्वीकृति भले ही समझी जा सकती है। इन प्रतिनिधियोंकी स्वीकृतिमें सम्पूर्ण भारतकी स्वीकृति मान लेना सत्यका अपमान करना है। ओटावा-सम्मेलनके प्रतिनिधियोंने अपने कार्यके औचित्यके सम्बन्धमें जो वक्तव्य निकाला है, उसे ध्यानपूर्वक पढ़नेसे यही धारणा उत्पन्न होती है कि इस समझौतेसे भारतको जो प्रत्यक्ष हानि होगी, उसपर तो बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है, और आनुमानिक लाभको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दिया गया है। देशकी ऐसी एक भी व्यापारिक संस्था नहीं, जिसने इस समझौतेका विरोध न किया हो। इस समझौतेका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा हमारी आर्थिक स्वतन्त्रतामें बाधा पड़ती है, और इंग्लैंडके ऊपर हमारी परवशता घटनेके बजाय और बढ़ जाती है। इस समझौतेसे देशके औद्योगिक विकासमें भी बाधा पड़ सकती है। क्योंकि स्वदेशी उद्योग-धन्धोंके संरक्षणके लिए इसे किसी देशके मालको प्रेफ़रेंस (Preference) देनेकी नहीं, बल्कि उनके विरुद्ध अधिक-से-अधिक Protective duty (संरक्षणात्मक कर) लगानेकी ज़रूरत है। किन्तु अपनी आर्थिक परवशताके कारण आज हमें वही काम करना पड़ रहा है, जिससे हमारी औद्योगिक उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध हो और हमारा देश बराबर कच्चा माल विदेशोंमें भेजता रहे। इसमें सन्देह नहीं कि भारत सरकार इस समझौतेको ज़बरदस्ती भारतके गले मढ़कर भारतके साथ घोर अन्याय कर रही है, और जभी भारतको मौक़ा मिलेगा, वह इस अन्यायका प्रतिकार किये बिना नहीं रह सकता।

—

मैंचेस्टरके नये हथकंडे

मैंचेस्टरके वस्त्र-व्यवसाइयोंने लंकाशायरका माल भारतमें बेचनेके लिए एक नया उपाय ढूँढ़ निकाला है। यह उपाय है भारतमें एक बहुत बड़ी कम्पनी स्थापित करना, जिसका मूलधन एक करोड़ पौंड होगा। यह कम्पनी भारतमें सीधे माल बेचा करेगी। जिस प्रकार जापानी व्यवसायी खुदरा (Retail) माल भारतमें बेचा करते हैं, उसी तरह यह कम्पनी भी दलालोंके द्वारा नहीं बल्कि सीधे अपना माल बेचनेकी कोशिश करेगी। विलायतके वस्त्र-व्यवसाइयोंकी इस योजनाको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए नवानगरके महाराजाने—जो इस समय लंदनमें ही हैं—विशेषरूपसे प्रोत्साहन प्रदान किया है। इस योजनाकी सफलतामें हमें पूर्ण सन्देह है। खुद मैंचेस्टरके व्यवसाइयोंमें ही एक दल ऐसा है, जो इस प्रस्तावकी उपयोगितामें सन्देह करता है। भारतमें विदेशी वस्त्रकी बिक्री जिस प्रकार दिन-दिन

घटती जा रही है, उसे देखते हुए ब्रिटिश वस्त्र-व्यवसाइयोंका हताश होकर, चाहे किसी भी योजनाको लेकर, उसपर अपनी आशाओंका भवन निर्माण करना, स्वाभाविक ही जान पड़ता है, किन्तु उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत अपने वस्त्र-व्यवसायको अपनी आवश्यकताओंके अनुकूल सुदृढ़ बनानेके लिए अब कृतसंकल्प हो चुका है। नवानगरके महाराज, या अन्य किसी भी राजे-महाराजे, या महान् व्यक्तिमें यह क्षमता नहीं है कि वह भारतवासियोंको उनकी इच्छाके विरुद्ध विदेशी वस्त्र ख़रीदनेके लिए उत्प्रेरित कर सके। स्वदेशी भावना जिस रूपमें भारतमें जाग्रत हो रही है, उसे देखते हुए यह विश्वास हुए बिना नहीं रहता कि भारत अपनी वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्ति निकट-भविष्यमें स्वयं ही कर लेगा। अब रही बात यह कि इस समय भारतमें जो जापानी माल बिक रहा है, उसके स्थानमें विलायती माल बिके ; सो इस सम्बन्धमें पहली बात तो यह है कि विलायती मालकी अपेक्षा जापानी माल सस्ता होता है, और दूसरी बात है अंगरेज़ोंके प्रति भारतीयोंका मनोभाव। ब्रिटेन और भारतके बीच राजनीतिक कारणोंसे जिस प्रकार मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा है, उसमें यह सम्भव नहीं है कि भारतीयोंकी प्रवृत्ति विलायती माल ख़रीदनेकी ओर हो। भारतकी राजनीतिक आकांक्षाओंको कुचलकर ब्रिटेन भारतको अपना मित्र नहीं बना सकता, और न उसे विलायती वस्त्र ख़रीदनेके लिए विवश ही कर सकता है। यह काम तो तभी हो सकता है, जब दोनों देशोंमें विश्वास एवं सद्भाव हो।

—

सर अलीइमामकी मृत्यु

सर अलीइमामकी मृत्युसे भारतकी राष्ट्रीयताको काफ़ी हानि हुई है। इमाम साहब उन इनेगिने मुस्लिम नेताओंमें से थे, जिनमें साम्प्रदायिकता न थी। वे भारतके बहुत बड़े और योग्य बैरिस्टरोंमें से थे। मगर उनकी प्रसिद्धि उनकी वकालतकी वजहसे इतनी न थी, जितनी उनकी देशभक्ति तथा देश-सेवाके कारण थी। मार्ले-मिन्टो-रिफ़ार्मके बाद वायसरायकी कार्यकारिणी सभामें पहले सदस्य सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह (लार्डसिंह) हुए थे, और उनके बाद इस स्थानपर सर अलीइमामकी नियुक्ति हुई थी। इमाम साहबने राष्ट्रीयताके आदर्शको दृष्टिमें रखते हुए अपने पदके कर्तव्योंका पालन अच्छी तरह किया था। इमाम साहब बिहारके रहनेवाले थे, और उनके क़ानूनी सदस्य रहते समय ही बिहार-उड़ीसाको पृथक् प्रान्त होनेका सौभाग्य मिला था। इमाम साहब कुछ दिन तक हैदराबाद रियासतके प्रधान मन्त्री भी रहे थे, और हमें विश्वसनीय रूपसे यह ज्ञात हुआ है कि उनके शासन कालमें रियासती धाँधलबाज़ीमें कमी हुई थी, और रियासतके इन्तज़ाममें बहुत कुछ सुधार भी हुए थे। नेहरू-रिपोर्टके तैयार करनेमें भी इमाम साहब स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरूके सहायक थे। वे उदार विचार रखते थे। पिछली राउण्डटेबिल कानफ़्रेंसमें भी वे गये थे, मगर खेद है कि किन्हीं कारणवश उन्होंने उसमें प्रमुख भाग नहीं लिया, इसीलिए वहाँपर साम्प्रदायिकताके मतवाले मुसलमानोंका ही बोलबाला रहा। सर अली इमामकी मृत्युसे भारतको आमतौरपर, और बिहारको ख़ासतौरपर, गहरा धक्का पहुँचा है। इमाम साहबके परिवारके साथ हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

—

हिन्दू-मुसलमानोंकी सांस्कृतिक एकता

देशमें राष्ट्रीयताकी लहर एक बार फिर ज़ोरके साथ आना चाहती है, हिन्दू-मुसलमानों, सिखों और ईसाइयोंके मेलकी बातचीत चल रही है। यद्यपि अब तक समझौता नहीं हो पाया है, तथापि उसके हो जानेकी आशा अवश्य है। यदि अभी समझौता न भी हुआ, तब भी आगे चलकर साल-दो-सालमें हो ही जायगा। अब रहा यह प्रश्न कि यह राजनैतिक समझौता

स्थायी होगा या नहीं, सो इस विषयमें दृढ़तापूर्वक कुछ भी कहना कठिन है। लखनऊ-समझौता जिस प्रकार टूट गया, उसी प्रकार यह भी खंड-खंड हो सकता है। राजनैतिक परिस्थितियोंके आधारपर क़ायम ये समझौते उन परिस्थितियोंके बदलनेपर बदल सकते हैं। यद्यपि ये मेल करानेमें बहुत कुछ सहायता दे सकते हैं, तथापि हम उन्हें स्थायी मेलका मुख्य साधन माननेको तैयार नहीं। भारतके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके स्थायी मेलके दो तरीक़े हैं; एक तो यह कि देशके सामने कोई आर्थिक प्रोग्राम रखा जाय—हमारा अभिप्राय साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचारसे है—और दूसरा यह है कि भिन्न-भिन्न जातियोंकी सांस्कृतिक एकताके लिए प्रयत्न किया जाय। ग़रीब किसानों और मज़दूरोंके—चाहे वे हिन्दू हों, या मुसलमान, अथवा ईसाई—हित एक ही हैं, और जिस दिन कांग्रेस उन हितोंको आधार बनाकर लड़ाई लड़ेगी, उस दिन वह सच्ची एकताकी नींव रखेगी। रही सांस्कृतिक एकताकी बात, सो इस विषयकी ओर साधारण जनताका और हमारे नेताओंका भी ध्यान बहुत ही कम गया है। जिस तरह आज हमारे देशके कितने ही धनाढ्य अछूतोद्धारके लिए लाखों रुपये ख़र्च करनेके लिए उद्यत हैं, उसी प्रकार कुछ आदमियोंको हिन्दू-मुसलिम-ईसाई-एकताके लिए एक कमेटी बनानी चाहिए, और उसके लिए भी एक कार्यक्रम तय कर लेना चाहिए। एक दूसरेके विषयमें इतनी अधिक अज्ञानता हमारे देशमें फैली हुई है कि उसके दूर करनेमें बीसियों वर्ष लग जायँगे। कितने शिक्षित हिन्दू ऐसे हैं, जो हज़रत मुहम्मदके जीवन तथा इस्लामकी ख़ूबियोंसे परिचित हों? मुसलमानोंने भारतीय संस्कृतिके लिए क्या किया, इस बातका पता कितने पढ़े लिखोंको है? मुसलमान बादशाहोंसे हिन्दी-कविताको कितना प्रोत्साहन मिला, यह बात कितने शिक्षकों तथा विद्यार्थियोंको ज्ञात है? सैकड़ों वर्ष साथ रहते हुए हो गये, इसी भूमिके अन्न-जलसे पल रहे हैं, एक दूसरेके नज़दीक रह रहे हैं, पर एक दूसरेकी संस्कृतिसे अपरिचित हैं! भला, इससे अधिक नासमझीकी बात और क्या हो सकती है? जब लाखों ही रुपये पोलिटिकल कामोंमें ख़र्च किये जाते हैं, तो क्या दस-बीस हज़ार इस सांस्कृतिक कामके लिए ख़र्च नहीं किये जा सकते? कौंसिल और एसेम्बलीके निर्वाचनोंमें लाखों रुपये व्यय किये जाते हैं। अगर इतने रुपये हिन्दू-मुसलमानोंकी सांस्कृतिक एकताके लिए ख़र्च होते, तो देशका कितना स्थायी हित होता। कौन्सिलोंकी मेम्बरीके लिए हम लोग न्याय और अन्यायका आश्रय लेंगे, वोटरोंको रिश्वत देंगे, ग़रीब पत्रकारोंको ख़रीदकर उनका पतन करेंगे, पर ठोस कामोंके लिए हमारे पास पैसा नहीं है। हम किसी व्यक्तिविशेषकी निन्दा नहीं कर रहे, हमारा अभिप्राय देशके उन सभी राजनैतिक कार्यकर्ताओंसे है, जो कौन्सिलकी मेम्बरीको सर्वोच्च स्थान देते रहे हैं। सुना है कि पिछली बार राउण्डटेबिल कानफ्रेंसके अवसरपर सिर्फ एक सीटके झगड़ेकी वजहसे सारा मामला गड़बड़ हो गया। क्या किसी ग्रामके किसान या मज़दूरके लिए यह प्रश्न कोई महत्वका है कि एक सीट पंजाबमें सिखोंको कम मिल रही है या ज़्यादा? जब तक हम लोगोंकी विचार-पद्धति दिल्लीकी पार्लमेंट रोडपर चक्कर काटती रहेगी, तब तक हम कदापि हिन्दू-मुसलमानोंकी सच्ची एकताकी नींव न रख सकेंगे। इस विषयमें बड़े-बड़े कार्य, जिनमें मुख्यतया रुपयेकी आवश्यकता होती है, केवल वही कर सकते हैं, जो साधन-सम्पन्न हैं। पर जब तक उनका ध्यान इस ओर नहीं जाता, तब तक हमीं लोगोंको कुछ-न-कुछ काम करते रहना चाहिए। उदाहरणार्थ, इस समय हमारे पास तीन पामफ्लैटका मसाला तैयार है—(१) सर यदुनाथ सरकारका 'भारतीय संस्कृतिके लिए मुसलमानोंका कार्य', (२) सैयद अमीर अली मीरका 'हिन्दीके मुसलमान कवि' और (३) श्री मंगलदेव शर्माका 'हज़रत मुहम्मदकी शिक्षा'। इन तीनों पामफ्लैटोंकी एक-एक हज़ार प्रति छपानेमें पच्चीस-पच्चीस रुपये लगेंगे। हमारा अनुमान है कि 'विशाल-भारत'के पाठकोंमें कुछ

लोग ऐसे अवश्य होंगे, जो एक-एक पामफ्लैट अपने नामसे छपावें।

दूसरा काम जो हम लोग कर सकते हैं, वह यह है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके जो सज्जन राष्ट्रीय विचारोंके हैं, और जिनके मनमें साम्प्रदायिकताको जड़-मूलसे नष्ट कर डालनेकी लगन लगी हुई है, उनको आपसमें मिलाने तथा विचार-परिवर्तनका अवसर देनेका प्रयत्न करें। हमारा ख़याल है कि इन लोगोंके आपसमें मिलनेसे वे बाधाएँ, जो इस समय सांस्कृतिक मेलके कार्यमें प्रतीत होती हैं, कुछ-न-कुछ तो दूर हो जायँगी। और कुछ न होगा, तो मार्गकी कठिनाइयाँ तो स्पष्ट हो ही जायँगी, और यह लाभ कौन कम है ?

अभी उस दिन हमें भागलपुरके प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्रीयुत ज़हुरुलहुसैन हाशमी साहबसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप १०-१२ वर्षसे राष्ट्रीय कार्यमें लगे हुए हैं, और आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीके मेम्बर भी हैं। तीन बार जेल भी जा चुके हैं। उनसे बातचीत करनेपर पता लगा कि मुसलमानोंमें राष्ट्रीय कार्यकर्ताओंको कितनी कठिनाइयोंका मुक़ाबला करना पड़ता है। उधर तो उन्हें सम्प्रदायवादी मुसलिम दुरदुराते हैं, और इधर अनेक हिन्दू लोग भी उनपर अविश्वास करते हैं! हमारे एक नवयुवक मित्र हैं। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने दुर्भाग्यसे हिन्दी लिखना सीख लिया है, और ऐसी जानदार और बामुहावरा भाषा लिखते हैं कि बहुतसे उनकी उम्रके हिन्दू नवयुवक दस वर्ष प्रयत्न करनेपर भी न लिख सकेंगे। उनके मनमें पत्रकार बननेकी धुन सवार हुई, यह और भी दुर्भाग्यकी बात थी। बमुश्किलतमाम एक दैनिक पत्रमें रातको तारोंका अनुवाद करनेका काम मिला। अपने अल्प वेतनमें से उन्हें अठारह रुपए मकानके किरायेमें ख़र्च कर देने पड़ते थे। हिन्दुओंके मकानोंमें १२) पर बहुतसे ख़ाली कमरे पड़े हुए थे, पर उन्हें वहाँ कौन रहने देता ? मुसलमानोंके कार्टरसमें, जहाँ न उनका कोई साथी-संगी था, और न समान शील व्यसनवाला, उनके वेतनका तिहाई हिस्सा केवल भाड़ेमें ही ख़र्च हो जाता था। रात-दिन परिश्रम करते-करते उन्होंने क्या कमाया ? पचपन रुपये और तीन कौड़ी, यानी पचपन रुपए महीने और तीन कौड़ीका स्वास्थ्य। आख़िर तंग आकर वे इस कामको छोड़ बैठे। हम लोग हिन्दू-मुसलिम एकतापर सैकड़ों लेख लिख डालेंगे, मुसलमानोंको इस बातका उपदेश देंगे कि आप लोग उर्दू भी देवनागरी लिपिमें लिखा करें, और मुसलमानोंकी साम्प्रदायिकताको भी कोसेंगे, पर यदि कोई मुसलिम नवयुवक इन उपदेशोंके अनुसार काम करना प्रारम्भ कर देगा, तो उसे अपनाना हम लोग जानते ही नहीं! जब हिन्दी-पत्रोंमें कोई काम न मिला, तो हमारे नवयुवक मित्रने एक मुसलिम पत्रमें कार्यके लिए प्रार्थनापत्र दिया। वहाँ काम मिलना क़रीब-क़रीब तय भी हो गया था कि किसीने मालिकसे कह दिया कि यह लड़का तो कांग्रेसके विचारोंका है। बस, मिला-मिलाया काम छूट गया! यदि हमारे ये मित्र अपने विचारोंको बेचनेका निश्चय कर लेते, तो किसी भी साम्प्रदायिक मुसलिम पत्रमें उन्हें अच्छी जगह मिल जाती, पर उन्होंने यही बेहतर समझा कि अभी पत्रकारका काम छोड़कर दूसरा कोई काम किया जाय।

यह घटना हमने इसलिए लिखी है कि जिससे पाठकोंको उन कठिनाइयोंका अनुमान हो जाय, जो साम्प्रदायिकताको दूरकर सांस्कृतिक मेलके लिए प्रयत्न करनेवालोंके मार्गमें आती हैं। पर इन कठिनाइयोंसे हमें निराश न होना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंमें भी अब बीसियों ही नवयुवक ऐसे उत्पन्न हो गये हैं, जो साम्प्रदायिकताको धता बताते हैं, धर्मान्धताके जानी दुश्मन हैं, जो राष्ट्रीयताके मन्दिरके पुजारी हैं, और उसीकी बलिवेदीपर अपनी क़ुरबानी करनेके लिए सदा तैयार हैं। यही भारत माताके उज्ज्वल भविष्यकी आशाके आधार हैं।

—

प्रान्तीयता और उसके दूर करनेके उपाय

प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता और जातीय विद्वेष (Provincalism communalism and racialism)—ये तीनों ही दुर्गुण राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयताके सच्चे शत्रु हैं, और इनको दूर करना हम सबका कर्तव्य है। इस समय चूँकि देशकी शक्तियाँ स्वाधीनताके संग्राममें लगी हुई हैं, प्रान्तीयताका कुछ कालके लिए दब जाना स्वाभाविक ही है, पर हमें आशंका है कि प्रान्तोंमें स्वराज्य होते ही एक बार प्रान्तीयता फिर अपना सिर उठायगी। हमारी यह आशंका सुप्रसिद्ध देशभक्त श्री प्रफुल्लचन्द्र रायके आत्म-चरितको पढ़कर और भी दृढ़ हो गई है। बंगालका धन किस प्रकार अन्य प्रान्तके निवासियों द्वारा चूँसा जा रहा है, और बंगाली लोग किस तरह अपने अर्थोत्पादक साधनोंसे वंचित किये जा रहे हैं, इसका बड़ा ही सजीव चित्र लेखक महोदयने खींचा है। उनके कथनमें सत्यका बहुत कुछ अंश है, और उनकी दी हुई कितनी ही बातें अकाट्य हैं, तथा उनका उत्तर नहीं दिया जा सकता।

मारवाड़ियोंके विषयमें जो बातें सर पी० सी० रायने लिखी हैं, उनमें भी बहुत सच हो सकती हैं, पर जो बात हमें नापसन्द आई और जिसपर हमारा ऐतराज़ है, वह है उनकी लेखनशैली। मारवाड़ियोंको उत्तेजक ढंगपर यह बात याद दिलानेकी आवश्यकता न थी कि वे अथवा उनके बाप-दादे लोटा, कम्बल और छाता लेकर ही बंगालमें आये थे, और न यह बतलानेकी आवश्यकता थी कि बम्बईमें 'तमे तो मारवाड़ी थेइ गेया' निन्दात्मक बात समझी जाती है। कहीं-कहीं तो भाव इस ढंगसे प्रकट किये गये हैं कि उनसे अन्य प्रान्तोंके निवासियोंके हृदयको धक्का लग सकता है। एक जगह आपने लिखा है—

"Every rupee earned in Bengal by a non-Bengali is derived form the snatching away of its equivalent amount of bread from the mouths of the unhappy children of the soil."

अर्थात्—"बंगालमें जितने रुपये अबंगाली लोग कमाते हैं, उतने ही रुपयोंकी रोटी मानो वे इस भूमिके अभागे बच्चोंके मुँहसे छीन लेते हैं।"

हमारा ख़याल है कि इस प्रकारके विचारोंसे प्रान्तीयताके बढ़नेका अन्देशा है। इसका एक दुष्परिणाम और भी हो सकता है, वह यह कि अन्य प्रान्तोंमें, जहाँ-जहाँ बंगाली रहते हैं, उनकी स्थितिपर इस प्रकारके विचारोंका बुरा असर पड़े। प्रत्येक निष्पक्ष आदमीको यह बात माननी पड़ेगी कि यदि भारतवर्षमें कोई ऐसा प्रान्त है, जहाँ प्रान्तीयता बहुत ही कम पाई जाती है, तो वह संयुक्तप्रान्त है। संयुक्तप्रान्तके निवासियोंके लिए प्रान्तीयताकी भाषामें विचार करना अब तक लगभग असम्भव रहा है। जहाँ अन्य प्रान्तवाले अपनेको पंजाबी, गुजराती या बंगाली कहते हैं, वहाँ संयुक्तप्रान्त-वालोंका कोई निजी नाम ही नहीं है। संयुक्तप्रान्तकी शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंमें उच्च पदोंपर कितने ही बंगाली पाये जाते हैं, और इसे हम अपने प्रान्तके लिए परम सौभाग्यकी बात समझते हैं। स्वयं हमारे छोटेसे नगरके हाई स्कूलमें हेडमास्टर बंगाली हैं, और भी कई अध्यापक बंगाली हैं, और रह चुके हैं। अगर कलको कोई युक्तप्रान्तीय नेता कहने लगे—"दिल्ली, अलीगढ़, आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद और बनारस यूनीवर्सिटियोंके हज़ारों ग्रेजुएटोंके होते हुए भी क्यों एक बंगालीको हेडमास्टर बनाया गया? युक्तप्रान्तमें काम करनेवाला प्रत्येक अयुक्तप्रान्तीय जितने रुपए कमाता है, उतने ही रुपयोंकी रोटी वह युक्तप्रान्तीय बच्चोंके मुँहसे छीनता है।" तो उसकी इस बातका हम ज़ोरोंके साथ विरोध ही करेंगे। हमारी समझमें योग्यता ही केवलमात्र कसौटी है। यदि हमें कोई योग्य बंगाली, या पंजाबी, या मदरासी शिक्षक मिलता है, तो हम क्यों न रखें? हम यह बात मानते हैं कि स्वयं युक्तप्रान्तमें ऐसे सैकड़ों ही शिक्षक मिल सकते हैं, जो योग्यतापूर्वक किसी भी संस्थाका संचालन कर सकें, पर तो भी राष्ट्रीयताकी

दृष्टिसे यही उत्तमतर है कि हम लोग प्रान्तीयताके ख़यालको ही चुनावके वक्त दिमाग़से निकाल दें।

सर पी० सी० रायको इस बातकी शिकायत है कि अन्य प्रान्तोंके निवासी बंगालका धन चूस-चूसकर मोटे हो रहे हैं, और उनके लिखनेसे यह प्रतीत होता है कि यदि इनके स्थानमें इसी प्रान्तके आदमी होते, तो उन्हें इतनी आपत्ति न होती। मर्ज़का जो इलाज उन्होंने बतलाया है, वह जड़से इस बीमारीको दूर नहीं कर सकता। निर्धनोंका धन चूसनेवाला चाहे मारवाड़ी हो या बंगाली, पंजाबी हो या युक्तप्रान्तीय, निन्दनीय है। देशमें इस तरहकी स्थिति उत्पन्न कर देनी चाहिए, जिससे कोई भी पूँजीपति ग़रीब किसानों तथा मज़दूरोंके परिश्रमसे और उनको पीड़ित करके मोटा न हो सके, और यह कार्य साम्यवादके सिद्धान्तोंके प्रचार द्वारा ही हो सकता है। प्रिंस क्रोपाटकिनने, जिनकी गणना संसारके उच्चकोटिके वैज्ञानिकोंमें की जाती थी, इसी विचारसे प्रेरित होकर अपनी प्रयोगशालाको छोड़कर साम्यवादका प्रचार किया था। सर पी० सी० रायके हृदयमें भी ग़रीबोंके प्रति अत्यन्त प्रेम है, और वे भी उन्हीं भावनाओंसे प्रेरित होकर देशका कार्य कर रहे हैं—निस्वार्थतामें तो उनका नम्बर महात्माजीके बाद शायद दूसरा ही होगा—और भारतीय नवयुवकोंके हृदयमें उनके प्रति अत्यन्त सम्मान भी है, पर जहाँ प्रिंस क्रोपाटकिनकी निगाह सारे संसारके अत्याचार पीड़ितोंपर थी, वहाँ सर पी०सी० रायने एक प्रान्त विशेषके प्रश्नोंपर इतना अधिक ज़ोर दिया है कि उससे पाठकोंको उनकी दृष्टिके संकुचित होनेकी आशंका हो सकती है।

इस अवसरपर बंगालके अन्य प्रान्तवासियोंकी सेवामें भी हम कुछ निवेदन कर देना चाहते हैं। सर पी०सी० रायकी बातोंसे वे हर्गिज़ चिढ़ें नहीं। वे किसी स्वार्थसे प्रेरित होकर ये बातें नहीं लिख रहे। उनके उद्गार एक पीड़ित और कोमल हृदयके उद्गार हैं। उनकी इस बातका खण्डन कैसे हो सकता है कि अन्य प्रान्तोंके धनाढ्य लोग बंगालमें अपने दानका बहुत ही कम अंश देते हैं? मिसालके तौरपर उन्होंने लिखा है कि श्री बिड़लाजीने अपने जन्मस्थान पिलानीके कालेजको जहाँ १२ लाख रुपये दिये हैं, वहाँ कलकत्ता-विश्वविद्यालयको कुल जमा २६ हज़ार। बिड़लाजीने बंगाल प्रान्तके लिए क्या दान दिया है इसका हिसाब तो हमें ज्ञात नहीं—शायद राय महोदयको भी ज्ञात न होगा—पर यदि अंकोंमें इतना अधिक अन्तर है, तो वास्तवमें अत्यन्त खेदकी बात है।

हमारी समझमें इस समय इस बातकी आवश्यकता है कि सर पी०सी० रायने जो बातें अपनी अंगरेज़ी पुस्तकमें लिखी हैं, उनका हिन्दी तथा गुजराती और उर्दूमें अनुवाद कराया जाय। जो त्रुटियाँ बंगालके अबंगाली निवासियोंमें उन्होंने बतलाई हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिए, और साथ ही अन्य प्रान्तके निवासियों द्वारा बंगालकी यदि कुछ सेवा हुई हो, तो उसका भी वृत्तान्त जनताको बतलाना चाहिए। प्रन्तीयताको रोकनेका यही उपाय है। पर यदि हम ईंटका जवाब पत्थरसे देने लगें, तो प्रान्तीयता घटनेके बजाय उलटी बढ़ेगी ही। सर पी०सी० रायने बंगालके अबंगाली निवासियोंको सोचने और समझनेके लिए काफ़ी उत्तेजना अपनी पुस्तकमें दी है और हमें नम्रतापूर्वक उनकी बातोंपर विचार करना चाहिए।

—

भारतके आदिम-निवासी

भारत-सेवक-समितिके सदस्योंमें एक-से-एक अच्छे कार्यकर्ता हैं, पर श्री अमृतलाल ठक्करके मुक़ाबलेके आदमी समितिमें तो क्या, उससे बाहर भी बहुत कम मिलेंगे। भीलोंके उद्धारके लिए जिस लगन और परिश्रमके साथ आपने कार्य किया है, वह वास्तवमें अत्यन्त प्रशंसनीय है। उनके हितोंकी आपको बराबर चिन्ता रहती है। अभी आपने 'सर्वेंट आफ़ इंडिया' में एक लेख लिखकर जनताका ध्यान एक आवश्यक प्रश्नकी ओर आकर्षित किया है, वह है शासन-सम्बन्धी

संस्थाओंमें आदिम-निवासियोंका प्रतिनिधित्व। समाचारपत्रोंके कितने पाठकोंको यह बात ज्ञात होगी कि समस्त भारतमें इन आदिम-निवासियोंकी संख्या पौने दो करोड़से कम नहीं है ?

भारतकी राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें इनके विषयमें अभी तक एक भी ग्रन्थ नहीं निकला है। समाचारपत्रों तथा मासिक पत्रोंमें भी इनके विषयमें बहुत कम लेख निकलते हैं। 'विशाल-भारत' के इसी अंकमें श्री कालिकाप्रसाद मोहिलेका कोलोंके बारेमें एक लेख अन्यत्र प्रकाशित हो रहा है। फ्रेंचाइज़ कमेटीने इनके हितोंकी रक्षाके लिए प्रान्तीय कौन्सिलोंमें अलग चुनाव द्वारा इनके प्रतिनिधि भिजवानेकी सिफ़ारिश की है। अछूतोंके लिए सम्मिलित या अलग चुनावका झगड़ा बड़ी मुश्किलसे अभी तय हुआ है, तब तक यह नया झगड़ा और उठ खड़े होनेकी आशंका हो गई है। साम्प्रदायिकता एक विषैली सर्पिणीके समान है, और इसका तो उठते ही मुँह कुचल देना चाहिए। हम लोगोंका कर्तव्य है कि इन आदिम-निवासियोंके विषयमें अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करें, और उनके उद्धारके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करें। 'विशाल-भारत'के जो पाठक इन लोगोंको जानते हों, उनसे हमारा अनुरोध है कि इनके विषयमें सर्वसाधारणको अधिकाधिक परिचित करावें। वैसे भी अपने देशकी भिन्न-भिन्न जातियोंके विषयमें थोड़ी-बहुत जानकारी रखना हम लोगोंका कर्तव्य है, पर अब तो यह हमारे लिए अनिवार्य है। जैसा कार्य श्री अमृतलालजी ठक्कर गुजरातमें कर रहे हैं, वैसा ही बिहार, उड़ीसा, आसाम, मध्यप्रदेश और मध्यभारत इत्यादिमें अन्य कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, यदि इन प्रान्तोंके कुछ कार्यकर्ता ठक्करजीके अधीन रहकर इस प्रश्नका अध्ययन करें, और आदिम-निवासियोंकी सेवाके कार्यमें उनसे दीक्षा लें।

—

विज्ञापनोंमें अश्लीलता

आजकल देशके समाचारपत्रोंमें अश्लील विज्ञापनोंका दौरदौरा बेतरह बढ़ रहा है। अश्लीलताकी इस वृद्धिको देखकर कलकत्तेके पत्रकार ऐसोसियेशनने इसे रोकनेके लिए उपाय ढूँढनेके उद्देशसे एक सब-कमेटी भी क़ायम की है। खेदकी बात है कि हिन्दी-पत्रोंमें भी इस प्रकारके विज्ञापनोंकी कमी नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कलकत्तेके अधिवेशनमें श्री रामदेव चोखानीने एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, जिसे सम्मेलनने स्वीकार भी कर लिया था। इस प्रस्तावमें हिन्दी-पत्र-संचालकोंसे प्रार्थना की गई थी कि वे अपने पत्रोंमें गंदे विज्ञापन न दें, मगर हम देखते हैं कि इस प्रस्तावका कोई असर नहीं पड़ा। गंदे विज्ञापन ज्यों-के-त्यों जारी ही नहीं हैं, बल्कि वे बाढ़पर हैं। यह देखकर और भी खेद होता है कि विज्ञापनबाज़ अपनी चीज़ोंको बेचनेकी लालसामें हिन्दुओंके देवी-देवताओंका अपमान तक करनेमें नहीं चूकते। एक हिन्दी-सहयोगीके एक विज्ञापनदाताने एक अत्यन्त गन्दी चीज़का नाम 'मीरा' रखा है। यह उसी तरहकी बदमाशी है, जैसे शराबकी बोतलपर महात्मा गांधीका चित्र चिपकाकर बेचना। अछूतोंको मन्दिरों और देवालयोंमें न घुसने देनेका प्रयत्न करनेवाले वर्णाश्रमी सनातनधर्मी अपने देवताओं और सन्तोंकी इस अपमानसे रक्षा करनेमें अपनी शक्ति लगावें, तो कहीं अच्छा हो।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
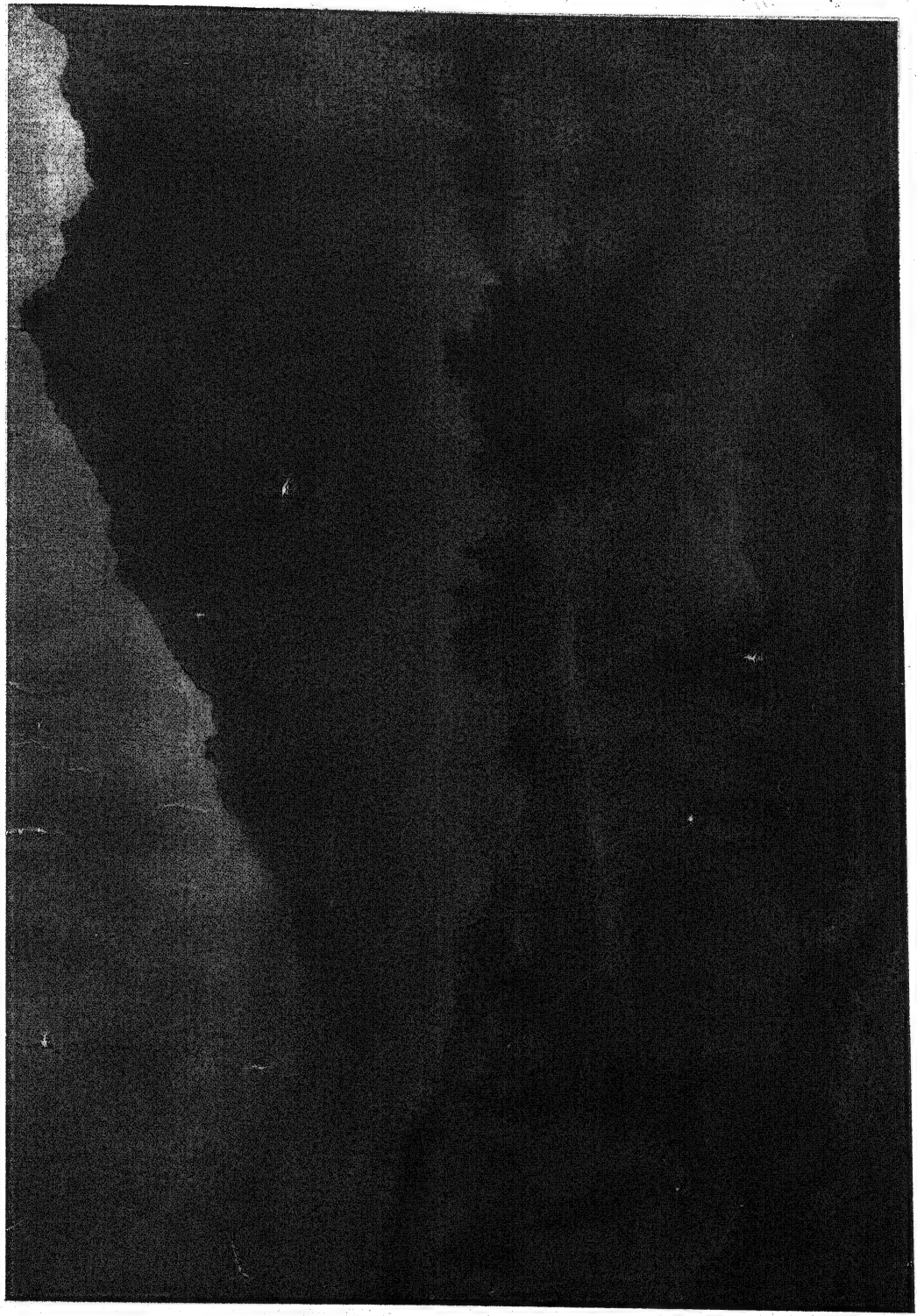
प्राकृतिक दृश्य

[चित्रकार—श्री देवीप्रसाद रायचौधरी

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

पौष १९८९ : : दिसम्बर १९३२

भाग १०, अंक ६. पूर्ण-अंक ६०.

धार्मिक सहिष्णुता

मौलाना अबुलकलाम आज़ादका प्रशंसनीय प्रयत्न

बनारसीदास चतुर्वेदी

भयंकर ग्रीष्मऋतुके बाद जब वर्षाका आगमन होता है, तो गर्मीसे तड़पनेवाले जीवोंके जानमें जान आ जाती है। हमारे इस अभागे देशमें पिछले बीस-पचीस वर्षसे साम्प्रदायिकताकी लू चल रही है। जनताके हृदयके कोमल भावरूपी पुष्प झुलस गये हैं, और पारस्परिक विद्वेषकी आँधीने लोगोंको अन्धा कर दिया है। कोहाट, मुलतान, मलाबार, आरा, कटारपुर, कलकत्ता और बम्बई इत्यादिके दंगोंका अग्नि-ताण्डव भी हमें जाग्रत नहीं कर सका ; पर अब बुरे दिन बीतते हुए नज़र आ रहे हैं। राष्ट्रीयताके मेघ सद्भावोंकी शीतल-मन्द समीरके साथ एकताकी हर्षोत्पादक बूँदें ला रहे हैं, और यह आशा बँध रही है कि कुछ वर्षोंमें यह भूमि फिर शस्यश्यामला हो जायगी। धन्य हैं वे महानुभाव, जो उस दिनके लिए तन-मन-धनसे प्रयत्न कर रहे हैं, और उनमें मौलाना अबुलकलाम आज़ादका नाम अग्रगण्य है।

मौ० अबुलकलाम आज़ाद कोई मामूली आदमी नहीं हैं। वे बड़े ज़बरदस्त विद्वान हैं, और उनकी विद्वत्ताकी धाक केवल हिन्दुस्तानमें ही नहीं, बल्कि बाहरके मुसलिम देशोंमें भी जमी हुई है। अरबीके धुरंधर ज्ञाता उनके आगे सिर नवाते हैं, और वे लोग भी, जो राजनैतिक मामलोंमें उनसे मतभेद रखते हैं, इस बातसे इंकार नहीं कर सकते कि अरबी भाषा तथा कुरानके विषयमें मौलाना साहबका ज्ञान अद्वितीय है। चूँकि वे हिन्दुओं और मुसलमानोंकी इस पारस्परिक सहिष्णुताके आन्दोलनके मुख्य प्रवर्तकोंमें से हैं, इसलिए उनके विषयमें दो-चार बातें यहाँपर लिखना अप्रासंगिक न होगा।

मौलाना साहबका जन्म मक्केमें हुआ था। उनके पिता मौलाना खैरुद्दीन साहब अपनी पत्नीके साथ हज करनेके लिए मक्का गये थे, और वहींपर उन्हें यह पुत्र लाभ हुआ। चार वर्ष तक वे इस्लामी देशोंमें भ्रमण करते रहे, और जब वहाँसे लौटने लगे, तो वे अपने लड़केको मिस्रके सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय जामेअज़हरमें छोड़ते आये। बीस वर्षकी उम्र तक आज़ाद साहबने यहींपर शिक्षा पाई, और तत्पश्चात् हिन्दुस्तानको लौटे। उर्दूका ज्ञान उन्होंने यहाँ आकर प्राप्त किया।

मौलाना आज़ाद साहब आरम्भसे ही राष्ट्रीय विचारोंके आदमी रहे हैं, इसीलिए उन्हें कई बार सरकारका मेहमान भी बनना पड़ा है। पहले उन्होंने 'अलहिलाल' नामक एक पत्र निकाला था, जिसकी देशभक्तिपूर्ण नीति सरकारकी आँखोंमें खटकती थी। इसी कारण युद्धके दिनोंमें सरकारने उन्हें राँचीमें नज़रबन्द कर दिया था। मौलाना साहब नेक रास्तेपर चलनेवाले एक रंगके आदमी हैं। अगर उनकी जगहपर कोई दूसरा होता, तो अपने शिष्य-समुदायसे लाखों रुपया भेंटमें वसूल कर लेता, अथवा साम्प्रदायिकताके रंगमें रँगकर धनवान हो जाता, पर मौलाना साहब अपने विचारोंके बड़े पक्के हैं। उनकी राष्ट्रीयता कोई दिखावटी वस्तु नहीं है, और न वह कोई बिक्रीकी चीज़ है। वह तो उनके जीवनका एक अंग है। भारतीय जनताने उनके इसी गुणपर मुग्ध होकर उन्हें दिल्लीकी स्पेशल कांग्रेसका सभापति बनाया था।

साम्प्रदायिक संकीर्णता और धार्मिक असहिष्णुताके आप कट्टर दुश्मन हैं। अभी उस दिन एक सुप्रसिद्ध हिन्दू नेताने हमसे कहा—"मौलाना आज़ाद साहब तो Communalism (साम्प्रदायिकता) से इतने ऊँचे उठ गये हैं कि हम उन्हें मुसलमान नहीं कह सकते।" मुसलमान नेता प्रायः इतने अधिक साम्प्रदायिक हो गये हैं कि साम्प्रदायिकता और इस्लाम लगभग पर्यायवाची शब्द बन गये हैं, पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, तो दरअसल मौलाना आज़ाद साहब और उन्हींकी तरहके आदमी ही सच्चे मुसलमान हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कुरानके विषयमें उनकी बात सबसे अधिक प्रमाण मानी जाती है। जब वे इस विषयपर कुछ बोलते हैं, तो दूसरे विद्वानोंको श्रद्धापूर्वक चुप हो जाना पड़ता है। आपकी इस विद्वत्तापर मुग्ध होकर ही मिस्रके मुसलिम विद्वानोंने आपको 'अबुल कलाम' 'कलामका पिता' की उपाधि दी थी। अभी हालमें मौलाना साहबने कुरानकी एक विस्तृत टीका लिखी है, जो तीन भागोंमें प्रकाशित होगी। इनमें से पहला खण्ड, जो लगभग ५०० पृष्ठोंका है, छप चुका है। भारतीय मुसलिम जगतमें इस पुस्तकका बड़ा सम्मान हुआ है, और मिस्र तथा टर्कीमें भी इसका अच्छा स्वागत हुआ है। मौलाना साहबने जो कुछ लिखा है, उसका प्रमाण भी वे साथ-साथ उपस्थित करते गये हैं। अपने बीसियों वर्षके गम्भीर अध्ययनके बाद मौलाना साहबने कुरानकी शिक्षाओंका जो सार निकाला है, उसे उन्होंने अपनी टीकाके एक अध्यायमें लिख दिया है। कुरानके विषयमें चूँकि केवल हिन्दू-समाजमें ही नहीं, बल्कि मुसलिम तथा ईसाई समाजमें भी बहुत ग़लतफहमी फैली हुई है, इसलिए उनके विचारोंको हम यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

कुरान और उसके विरोधियोंमें लड़ाईके कारण

"अब थोड़ी देरके लिए उस झगड़ेकी ओर ध्यान दीजिए, जो कुरान और उसके विरोधियोंमें उत्पन्न हो गया था। ये विरोधी कौन थे? ये पूर्व धर्मोंके अनुयायी थे, जिनमें से कुछके पास धर्म-ग्रन्थ था, और कुछके पास नहीं।

अच्छा, लड़ाईका कारण क्या था? क्या यह था कि कुरानने प्रवर्तकों एवं पथ-प्रदर्शकोंको झुठलाया था, या उनके पवित्र धर्म-ग्रन्थोंसे इंकार किया था, और इसलिए वे उसका विरोध करनेपर कटिबद्ध हो गये थे?

क्या यह कारण था कि उसने दावा किया था कि ईश्वरीय सत्य मेरे ही हिस्से पड़ा है, और समस्त धर्मानुयायियोंको उचित है कि वे अपने-अपने धर्मोंके उपदेशोंसे अलग हो जायँ ?

या फिर कुराननने धर्मके नामपर कोई ऐसी बात उपस्थित कर दी थी, जो धर्मानुयायियोंके लिए बिलकुल नई थी, और इस कारण इसे माननेमें उन्हें स्वभावतः आपत्ति थी ?

कुरानके पृष्ठ जनताके सम्मुख हैं, और उसके अवतरणका इतिहास भी दुनियाके सामने है। ये दोनों हमें बतलाते हैं कि उक्त समस्त बातोंमें से कोई बात भी न थी, और न हो ही सकती थी। कुराननने उन सारे पथ-प्रदर्शकोंको ही प्रमाण नहीं माना, जिनके नामलेवा उसके सामने थे, बल्कि साफ शब्दोंमें कह दिया कि मुझसे पहले जितने भी रसूल और धर्म-प्रवर्तक आ चुके हैं, मैं सबको प्रमाण मानता हूँ, और उनमें से किसी एकके इंकारको भी ईश्वरीय सत्यका इंकार समझता हूँ। उसने किसी धर्मावलम्बीसे यह नहीं चाहा कि वह अपने धार्मिक उपदेशोंको अस्वीकार कर दे, बल्कि जब कभी चाहा, तो यही कि सब अपने-अपने धर्मोंकी वास्तविक शिक्षाको चरितार्थ करें, क्योंकि समस्त धर्मोंकी वास्तविक शिक्षा एक ही है। न तो उसने कोई नवीन सिद्धान्त उपस्थित किया, और न कोई नवीन कार्य-पद्धति ही बतलाई। उसने सदा उन्हीं बातोंपर ज़ोर दिया, जो संसारके समस्त धर्मोंकी सबसे ज्यादा जानी-बूझी हुई बातें रही हैं—यानी एक जगदीश्वरकी उपासना और सदाचरणका जीवन। उसने जब कभी लोगोंको अपनी ओर आकर्षित किया है, तो यही कहा है कि अपने-अपने धर्मोंकी वास्तविक शिक्षाकी पुनरावृत्ति कर लो, तुम्हारा ऐसा करना ही मुझे क़बूल कर लेना है।

प्रश्न यह है कि जब कुरानके उपदेशोंका यह हाल था, तो फिर आखिर उसमें और उसके विरोधियोंमें लड़ाईका कारण क्या था ? एक व्यक्ति, जो किसीको बुरा नहीं कहता, सबको मानता एवं सबकी इज़्ज़त करता है, और हमेशा उन्हीं बातोंका उपदेश करता है, जो सर्वमान्य हैं, उससे कोई लड़े तो क्यों लड़े ? और क्यों लोगोंको उसका साथ देना नामंज़ूर हो ?

कहा जा सकता है कि मक्केके कुरैशोंका* विरोध इस आधारपर था कि कुराननने मूर्ति-पूजासे इंकार कर दिया था, और वे मूर्ति-पूजाकी पद्धतिमें विश्वास रखते थे। निस्सन्देह लड़ाईका कारण एक यह भी था, लेकिन सिर्फ़ यही कारण नहीं हो सकता। प्रश्न यह होता है कि यहूदियोंने क्यों विरोध किया, जो मूर्ति-पूजासे बिलकुल परे थे ? ईसाई क्यों विरोधी हो गये, जिन्होंने कभी मूर्ति-पूजाके हिमायतका दावा नहीं किया ?

असल बात यह है कि इन धर्मोंके अनुयायियोंका विरोध इसलिए नहीं था कि वह उन्हें झुठलाता क्यों है, बल्कि इसलिए था कि वह उन्हें झुठलाता क्यों नहीं ? हर धर्मका अनुयायी यही चाहता था कि कुरान केवल उसीको सच्चा कहे, बाक़ी सबको झुठलाये, और चूँकि वह सबका समानरूपसे समर्थन करता था, इसलिए कोई उससे प्रसन्न नहीं हो सकता था। यहूदी इस बातसे तो बहुत प्रसन्न थे कि कुरान हज़रत मूसाको प्रमाण मानता है, लेकिन वह सिर्फ़ इतना ही नहीं करता था, वह हज़रत मसीहको भी प्रमाण मानता था, और यहीं आकर उसके और यहूदियोंके बीच विरोध खड़ा हो जाता था। ईसाइयोंको इसपर क्या आपत्ति हो सकती थी कि हज़रत मसीह और हज़रत मरियमकी सचाईकी घोषणा की जाय, लेकिन कुरान सिर्फ़ इतना ही नहीं कहता था, वह यह भी कहता था कि मुक्तिका दारोमदार कर्मोंपर है, न कि ईसाके प्रायश्चित्त और बपतिस्मापर, और मुक्तिके नियमकी यह व्यापकता ईसाई सम्प्रदायके लिए असह्य थी।

इसी प्रकार मक्काके कुरैशोंके लिए इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात और कोई नहीं हो सकती थी कि

* 'कुरैश' मक्केमें रहनेवाला एक वंश, जिसमें पैग़म्बर-इस्लाम पैदा हुए।

हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईलका महत्त्व स्वीकार किया जाय, लेकिन जब वे देखते थे कि कुरान जिस तरह इन दोनोंका महत्त्व स्वीकार करता है, उसी तरह यहूदियों तथा ईसाइयोंके पैग़म्बरोंको भी स्वीकार करता है, तो उनके जातिगत और साम्प्रदायिक अभिमानको बड़ी ठेस लगती थी। वे कहते थे कि ऐसे व्यक्ति हज़रत इब्राहीम और इस्माईलके अनुयायी कैसे हो सकते हैं, जो उनके महत्त्व और सचाईकी पंक्तिमें दूसरोंको भी बैठा देते हैं ?

सारांश यह कि कुरानके तीन सिद्धान्त ऐसे थे, जो उनमें तथा और धर्मोंके अनुयायियोंके बीच विरोधके कारण हो गये :—

(१) कुरान धार्मिक दलबन्दीके भावोंका विरोधी था, और धर्मका ऐक्य घोषित करता था। अगर धर्मोंके अनुयायी यह मान लेते, तो उन्हें यह मानना पड़ता कि धर्मकी सचाई किसी एक गरोहके हिस्सेमें नहीं आई है, सबको समानरूपसे मिली है। परन्तु यही मानना यहूदियोंकी साम्प्रदायिकताके लिए घातक था।

(२) कुरान कहता था—मुक्ति और कल्याणका दारोमदार कर्मोंपर है, वंश, जाति, सम्प्रदाय, अथवा बाह्य रीति-रिवाजोंपर नहीं। अगर इस तथ्यको वे मान लेते, तो मुक्तिका द्वार बिना पक्षपातके मानवमात्रके लिए खुल जाता और किसी एक सम्प्रदायकी ठेकेदारी बाक़ी नहीं रहती, लेकिन इस बातके लिए उनमें से कोई तैयार न था।

(३) कुरान कहता था, वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना है। ईश्वरोपासना यह है कि एक परमात्माकी अनन्य उपासना की जाय, लेकिन दुनियाके समस्त सम्प्रदायोंने किसी-न-किसी रूपमें बहुदेववाद और मूर्ति-पूजाके ढंग स्वीकार कर लिये थे। उनको इससे इंकार नहीं था कि वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना ही है, और वह ईश्वर एक ही है, लेकिन अपनी रूढ़ियों एवं प्रथाओंसे अलग हो जाना उन्हें बेतरह खलता था।

विवरणोंका सार

उपर्युक्त विवरणोंका सार इस प्रकार दिया जा सकता है :—

(१) कुरानके अवतरणके समय संसारका धार्मिक विचार वंशों, कुटुम्बों और परिवारोंके बाह्य रहन-सहनकी तरह धर्मोंमें भी दलबन्दी कर लेने तक ही सीमित था। प्रत्येक दलका आदमी यही समझता था कि धार्मिक सत्य सिर्फ़ मेरे हिस्से पड़ा है। जो व्यक्ति इस धार्मिक परिधिके अंदर है, वह मुक्त है; जो बाहर है, वह मुक्तिसे वंचित है।

(२) प्रत्येक दल धर्मकी वास्तविकता एवं तथ्य केवल उसके बाह्य कर्मों एवं रीतियोंमें ही समझता था। ज्यों ही कोई व्यक्ति उन्हें अंगीकार कर लेता, त्यों ही यह विश्वास कर लिया जाता कि मुक्ति एवं कल्याण उसे प्राप्त हो गया—जैसे, उपासनाकी विधि और रूप, क़ुरबानियोंके रीति-रिवाज, किसी विशेष प्रकारका भोजन करना या न करना, किसी विशेष वेश-भूषाको स्वीकार करना या न करना।

(३) चूँकि ये रीति-रिवाज प्रत्येक गरोहमें भिन्न-भिन्न थे, इसलिए प्रत्येक गरोहका अनुयायी यही विश्वास करता था कि दूसरे गरोहमें सचाई नहीं है, क्योंकि उसके कर्म एवं रीति-रिवाज वैसे नहीं हैं, जैसे स्वयं उसने स्वीकार कर रखे हैं।

(४) प्रत्येक सम्प्रदायका दावा सिर्फ़ यही नहीं था कि वह सच्चा है, बल्कि यह भी था कि दूसरा झूठा है। परिणाम यह हुआ था कि हर सम्प्रदाय अपनी सचाईकी घोषणा करके ही सन्तोष नहीं करता था, बल्कि दूसरोंके विरुद्ध पक्षपात एवं घृणाका प्रचार करना भी आवश्यक समझता था। इस परिस्थितिने मनुष्योंको चिरस्थायी लड़ाई एवं झगड़ोंमें फँसा रखा था। ईश्वरके नामपर प्रत्येक गरोह दूसरे गरोहसे घृणा करता और उसका ख़ून बहाना उचित समझता था।

(५) लेकिन कुरानने मनुष्यमात्रके सम्मुख धर्मके विश्वव्यापी सत्यका सिद्धान्त उपस्थित किया :—

(क) उसने सिर्फ़ यही नहीं बतलाया कि प्रत्येक धर्ममें सचाई है, बल्कि यह भी साफ़-साफ़ कह दिया कि सभी धर्म सच्चे हैं। उसने कहा कि धर्म परमात्माका एक ऐसा अनुग्रह है, जो सबको समानरूपसे प्राप्त है, इसलिए सम्भव नहीं कि कोई एक जाति एवं सम्प्रदाय ही इसका दावा करे, दूसरोंका इसमें कोई हिस्सा न हो।

(ख) उसने कहा—परमात्माके समस्त प्राकृतिक नियमोंकी तरह मनुष्यका आध्यात्मिक नियम भी एक ही है, और सबके लिए है, अतः धर्मानुयायियोंकी सबसे बड़ी भूल यह है कि उन्होंने ईश्वरीय धर्मकी एकताको भूलकर अलग-अलग गरोह बना लिये हैं, और हर गरोह दूसरे गरोहसे लड़ रहा है।

(ग) कुरानने बतलाया कि ईश्वरीय धर्म इसलिए था कि मनुष्यमात्रके धार्मिक भेद-प्रभेद दूर हों, इसलिए न था कि विरोध एवं लड़ाईका कारण बन जाय, अतः इससे बढ़कर गुमराही और क्या हो सकती है कि जो वस्तु विभिन्नता दूर करने आई थी, वही मतभेदकी जड़ बना ली गई?

(घ) उसने बतलाया कि धर्म एक चीज़ है, और विधि एवं साधन दूसरी। धर्म एक ही है, और एक प्रकारसे सबको दिया गया है। अलबत्ता विधि और साधनमें भेद हुआ है, और यह अनिवार्य था, क्योंकि हर युग और हर जातिकी अवस्था एक-सी नहीं थी। यह आवश्यक था कि जैसी जिसकी अवस्था हो, उसीके अनुसार विधि और व्यवस्था बताई जाय। अतः विधि एवं साधनके भेदसे धार्मिक तत्त्वमें विभिन्नता नहीं आ सकती। तुमने धर्मके तत्त्वको भुला दिया है, सिर्फ़ विधि और साधनोंको लेकर एक दूसरेको झुठला रहे हो।

(च) उसने बतलाया कि तुम्हारी धार्मिक दल-बन्दियाँ और उनके वाह्य रीति-रिवाज मानवी मुक्ति और कल्याणके साधक नहीं हो सकते। ये गरोह-बन्दियाँ तुम्हारी बनाई हुई हैं, वस्तुतः ईश्वर-निर्मित धर्म तो एक ही है, और वह सच्चा धर्म क्या है? वह बताता है—एक ईश्वरकी उपासना और सदाचरणका जीवन। जो व्यक्ति ईमान और सदाचरणका जीवन व्यतीत करेगा, उसके लिए मुक्ति है, चाहे वह तुम्हारी गरोहबन्दीमें शामिल हो, या न हो।

मौलाना अबुलकलाम आजाद

(छ) उसने साफ़-साफ़ शब्दोंमें घोषित कर दिया कि उपदेशोंका उद्देश्य इसके सिवा कुछ नहीं कि सभी धर्म सर्वसम्मत और सर्वस्वीकृत सत्यपर एकत्र हो जायँ। वह कहता है कि सभी धर्म सच्चे हैं, लेकिन धर्मानुयायी सचाईके रास्तेसे भटक गये हैं। अगर वे अपनी भूली हुई सचाई नये सिरेसे अख्त्यार कर लें, तो मेरा काम पूरा हो गया, और मुझे क़बूल कर लिया। सभी धर्मोंकी यही सर्वसम्मत एवं सर्वस्वीकृत सचाई है, जिसे वह 'अद्दीन' और 'अल-इस्लाम' के नामसे पुकारते हैं।

(ज) कुरान कहता है, ईश्वरीय धर्म इसलिए नहीं है कि एक व्यक्ति दूसरेसे घृणा करे, बल्कि इसलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरेसे प्रेम करे, और सब एक ही

परमात्माके भक्ति-सूत्रमें आबद्ध हो जायँ। वह कहता है, जब सबका पालनकर्ता एक है, जब सबका लक्ष्य उसीकी भक्ति है, जब प्रत्येक व्यक्तिके लिए वही होना है, जैसा कि उसका कर्म है, तो फिर ईश्वर और धर्मके नामपर ये विरोध और लड़ाइयाँ क्यों ?

(६) संसारिक धर्मोंका पारस्परिक विरोध सिर्फ़ विरोध तक ही परिमित नहीं रहा, बल्कि पारस्परिक घृणा और द्वेषका भी साधन बन गया है। प्रश्न यह है कि विद्वेष दूर कैसे हो ? यह तो हो नहीं सकता कि सब धर्मोंके अनुयायी अपने दावेमें सच्चे मान लिये जायँ, क्योंकि प्रत्येक धर्मका अनुयायी सिर्फ यही दावा नहीं करता कि मैं सच्चा हूँ, बल्कि यह भी दावा करता है कि दूसरे झूठे हैं। अतः अगर उनके दावे मान लिये जायँ, तो मान लेना पड़ेगा कि हर धर्म एक ही समयमें सच्चा भी है, और झूठा भी। यह भी नहीं हो सकता है कि सबको झूठा क़रार दिया जाय, क्योंकि अगर सब धर्म झूठे हैं, तो धार्मिक सत्य है कहाँ ? अतः कोई तरीक़ा झगड़ा मिटानेका हो सकता है, तो वह वही है, जिसका उपदेश लेकर कुरान प्रकट हुआ है। सारे धर्म सच्चे हैं, क्योंकि वास्तविक धर्म एक ही है, और वह सबको दिया गया है, लेकिन समस्त धर्मावलम्बी धार्मिक सत्यसे अलग हो गये हैं, क्योंकि उन्होंने धर्मकी वास्तविकता और ऐक्य नष्ट कर दिया है, और अपनी गुमराहीसे अलग-अलग टोलियाँ बना ली हैं। अगर इस गुमराहीसे लोग अलग हो जायँ, और अपने-अपने धर्मके तत्त्वको अपना लें, तो धार्मिक झगड़े स्वयं मिट जायँगे। प्रत्येक गरोह देख लेगा कि उसका मार्ग भी वास्तवमें वही है, जो और गरोहोंका है। कुरान कहता है कि सभी धर्मोंका यही सर्वसम्मत और सर्वस्वीकृत सत्य 'अद्दीन' है, यानी मनुष्यमात्रके लिए वास्तविक धर्म और इसीको वह 'अल-इस्लाम' के नामसे पुकारता है।

(७) मनुष्यमात्रके पारस्परिक प्रेम और ऐक्यके जितने भी सम्बन्ध हो सकते थे, सब मनुष्योंके ही हाथों टूट चुके। सबकी नसल एक थी, परन्तु हज़ारों हो गईं। सबकी जाति एक थी, परन्तु असंख्य जातियाँ बन गईं ; सबका जन्मस्थान एक ही था, पर वे अलग देशोंमें बट गये। सबका दरजा एक था, लेकिन अमीर और गरीब, कुलीन तथा अकुलीन और ऊँच और नीच बहुतसी श्रेणियाँ बना ली गईं। ऐसी अवस्थामें वह कौनसा सम्बन्ध है, जो इन सब विभिन्नताओं और विषमताओंको मिटाकर मनुष्यमात्रको एक ही पंक्तिमें खड़ा कर सकता है ? कुरान कहता है कि वह सम्बन्ध ईश्वर-भक्तिका सम्बन्ध है, जो मनुष्यत्वके बिछुड़े हुए परिवारको फिरसे एकत्र कर दे सकता है। यह विश्वास कि हम सबका पालनकर्ता एक ही है, और हम सबके सिर उसी एक ही चौखटपर झुके हुए हैं, ऐक्य और प्रेमका ऐसा भाव उत्पन्न कर देता है कि मनुष्य-निर्मित प्रभेदोंका उसपर विजयी होना सर्वथा असम्भव है।"

सूरे अलहमकी पाँचवीं आयत हिदायत (आदेश)के विषयमें मौलाना अबुलकलाम आज़ादने जो कुछ लिखा है, उपर्युक्त लेख उसीका अनुवाद है। अनुवादक हैं बिहारके सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्रीयुत ज़हुरुलहुसेन हाशमी। उन्होंने हज़ारीबाग़-जेलमें यह कार्य प्रारम्भ कर दिया था, और कई अध्याय कर भी लिये। वे अब पुस्तकाकार छप रहे हैं। हिन्दी-पुस्तककी भूमिका देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजीने लिखी है। भूमिकामें वे लिखते हैं—

"मेरा विश्वास है कि इसे पढ़कर हिन्दी-भाषी इस्लामके महत्व और उदारताको समझ सकेंगे, और सारी गलतफ़हमियाँ, जो फैली हुई हैं, दूर हो सकेंगी। भारतवर्षमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या बहुत जटिल दीख पड़ती है। इसके बहुतेरे कारण हैं—ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक। दोनों जातियाँ एक दूसरेके धर्म-सम्बन्धी विचारोंको सन्देहकी दृष्टिसे देखती हैं, और सामाजिक तथ धार्मिक रीतियोंके कारण स्थान-स्थानपर असहिष्णुताका प्रदर्शन करती हैं, जिसका रूप कभी-कभी भयंकर और अमानुषिक हो जाया करता है।

इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि दोनों

जातियोंको इसका सुअवसर और प्रोत्साहन दिया जाय कि एक दूसरेके धर्म-सम्बन्धी विचारोंकी जानकारी प्राप्त करें। अविद्या और अज्ञान बहुत अनर्थोंका कारण हुआ करते हैं, और आज भारतवर्षकी जटिल समस्याके हल करनेका एक साधन इस अविद्या और अज्ञानका दूर करना है। यह इस प्रकारकी पुस्तकोंके प्रकाशन और प्रचारसे दूर हो सकता है, जैसी मौलाना अबुलकलाम आज़ाद साहबने लिखी है। हिन्दुओंमें इस प्रकारका प्रयत्न एक दूसरे विद्वान डाक्टर भगवानदासजीकी लेखनी द्वारा हो रहा है।

सच पूछिये तो सभी धर्मोंके सर्वोच्च सिद्धान्त थोड़े ही हैं, और वे एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं। सारे झगड़े आचार-व्यवहार, रीति-नीति और रस्म-रिवाजमें भेदके कारण ही होते हैं। जैसा मौलाना साहबने दिखलाया है, इनमें भेद होना अनिवार्य है, क्योंकि देश-कालकी विभिन्नतासे और अन्यान्य जातियोंके बीच प्रचारित होनेसे सभी बातोंमें समानता होना असम्भव था। जब ईश्वरके संसारमें दो मनुष्य, अथवा दो कोई चीज़ें, ठीक एक दूसरेके समान नहीं हैं, और इस वैचित्र्यमें भी सुन्दरता और शक्ति झलकती है, तो धर्मोंके सभी आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज एक समान कैसे हो सकते हैं? पर हमारी भूल यह है कि हम इन वाह्याडम्बरोंको धर्मका मुख्य अंग समझ बैठते हैं, और इनके कारण एक दूसरेका सिर तोड़ और पेट चीरकर ईश्वरके उन नियमोंका गला घोंटते हैं, जो सबोंके लिए समानरूपसे मान्य हैं।

आर्य-धर्म, जो आज हिन्दू-धर्मके नामसे ही अधिक प्रचलित है, उन्हीं सिद्धान्तोंको अनादि कालसे मानता और प्रचारित करता है, जिनकी इस्लामने १३५० वर्ष पूर्वमें फिर भी प्रचारित किया। मौलाना आज़ाद साहबने प्रतिपादित किया है कि इस्लाममें दो ही मुख्य सिद्धान्त है—एक ईश्वरमें अटल विश्वास, और दूसरा सदाचारका जीवन। आर्य-ग्रन्थोंसे अनेक इसी आशयके प्रमाण उद्धृत किये जा सकते हैं। जो इस विषयका विशेषरूपसे अध्ययन करना चाहेंगे, उनको इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। यहाँपर कुछ उद्धरण दिये जाते हैं, जो पाठकोंको दोनों धर्मोंके इस विषयमें सामंजस्यको प्रमाणित कर देंगे—

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूल माचारं जगृहुः परम्॥

इस प्रकार मुनियोंने आचारसे धर्म प्राप्त देखकर धर्म मूल आचारको ग्रहण किया है।

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधोदशकं धर्म लक्षणम्॥

मनु ६।९२

धैर्म, क्षमा, दम (अर्थात् मनको रोकना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाहर-भीतरसे शुद्धि), इन्द्रिय-निग्रह, धी विद्या (ब्रह्म-विद्या), सत्य और अक्रोध— ये दस धर्मके लक्षण हैं।

अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्णेयऽब्रवीन्मनुः॥

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, पवित्रता और इन्द्रिय-निग्रह—यह चारों वर्णोंका संक्षिप्त धर्म मनुने कहा है।

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणामनसावाचा स धर्मं वद जाजले॥

महाभारत-शांतिपर्व २६१।९

हे जाजले, उसीने धर्मको जाना, जो कर्मसे, मनसे और वाणीसे सबका हित करनेमें लगा हुआ है, और जो सबोंका नित्य स्नेही है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें तो बहुत ही श्लोक मिलेंगे, जो इस विषयको प्रतिपादित करते हैं। यहाँ केवल बारहवें अध्यायकी ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है, और उसीमेंसे कुछ वाक्य दिये जाते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनो बुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥"

× × ×

अनुवादक महोदय श्रीयुत हाशमी साहबसे हमने इस विषयपर बातचीत की। उन्होंने हमसे जो कुछ कहा उसका सारांश यह है :—

(१) हिन्दू-मुस्लिम एकता सिर्फ़ राजनीतिक पैक्टों द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। वास्तविक कारण, जिसने आपसके प्रेमकी राहमें रोड़े बिछा दिये हैं, धार्मिक संकीर्णता और मज़हबी पक्षपात हैं। जब तक यह दूर नहीं होंगे और धार्मिक शिक्षाके द्वारा लोग एक दूसरेसे प्रेम न दरसायँगे, राजनीतिक उपदेश कुछ लाभदायक नहीं।

(२) इस लक्ष्यको प्राप्त करनेका सिर्फ़ एक ही उपाय है, और वह यह है कि इस तरहकी मजहबी खोज और तहक़ीकात कसरतके साथ देशमें प्रकाशित और प्रचारित की जाय, जैसा मौलाना अबुलकलाम साहबने किया है। साथ ही कोशिश की जाय कि मुसलमान हिन्दू-धर्मको उसके असली रूपमें देख सकें, और हिन्दू इस्लामकी वास्तविक शिक्षासे जानकारी प्राप्त कर सकें। जब दोनों गराह एक दूसरेके धर्मकी पूर्णरूपसे समझने लगें, तो आशा है कि पारस्परिक द्वेष-भाव तथा वैमनस्य अनायास ही दूर हो जायँ।

(३) हिन्दुस्तानमें अंगरेज़ोंके आनेके पहले मुसलमानोंने धार्मिक और साहित्यिक सेवा की—जैसे, अबूरैहान, बेरूनी, मअशर फलकी शहरिस्तानी, सुल्तान फिरोज़शाह, जैनुल आबदीन, अकबर, दाराशिकोह रहीम। मुसलमान बादशाहोंने फारसी भाषामें हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ और हिन्दू-साहित्यकी किताबें अनुवाद कराईं। इसी तरह हिन्दुओंमें भी इस्लामी धर्म और साहित्यके जाननेवाले पैदा हुए, और उन्होंने इस्लामपर बहुतसी किताबें लिखीं, जो आज तक मौजूद हैं। इस्लाम और हिन्दू-धर्मके इसी पारस्परिक प्रेम और मेल-जोलका परिणाम था, जिसने कबीर और गुरु नानककी शिक्षाओंका रूप धारण किया।

(४) एक हज़ार वर्ष तक हिन्दू-मुसलमानका चोली-दामनका साथ रहा। पीपल, गाय, ढोल आदिके पीछे कभी हिन्दू-मुसलमानोंमें लड़ाई नहीं हुई, और न कोई ऐसी किताबें मिलती हैं, जिसमें एक दूसरेके धर्मपर हमले किये गये हैं।

(५) एक संस्था ऐसी स्थापित की जाय, जिसमें इस विचारके लोग एक जगह इकट्ठे होकर सांस्कृतिक एकताके प्रश्नपर विचार और उसके लिए उचित उपायोंका निर्णय कर सकें।

इसमें सन्देह नहीं कि मौलवी हाशमी साहबके उपर्युक्त विचार बिलकुल ठीक हैं, और सामयिक भी हैं। उन्होंने मौ० अबुलकलाम आज़ादकी पुस्तकका अनुवाद प्रारम्भ करके प्रशंसनीय कार्य किया है। आशा है कि हिन्दी-जनता इसे अपनावेगी।* धार्मिक सहिष्णुताके विचारोंको फैलानेमें इससे बड़ी सहायता मिलेगी, और देशके साधनसम्पन्न शुभचिन्तकोंका कर्तव्य है कि सैकड़ोंकी संख्यामें ख़रीदकर साधारण जनतामें उसे बाँटें।

* पता—मौ० जहूरुलहुसेन हाशमी, बैतुल अमन, कहलगाँव (Colgong), भागलपुर।

नोबेल-पुरस्कार और गाल्सवर्दी

श्री धर्मवीर, एम० ए०

चालीस बरससे ऊपरकी बात है, स्वीडनके एक इंजिनियर डाक्टर अल्फ्रेड नोबेल, जो केमिस्ट भी थे, इस खोजमें लगे हुए थे कि किसी प्रकार खानों और पहाड़ोंके उड़ानेकी कोई तरकीब निकल आये, क्योंकि खानोंसे विभिन्न पदार्थ निकालनेमें और पहाड़ी इलाक़ोंमें सड़कें बनानेके वास्ते पहाड़ काटनेमें न केवल बहुतसा रुपया मुफ़्तमें खर्च होता था, प्रत्युत मानव-श्रम भी। कई वर्ष इस धुनमें लगे रहनेपर डाक्टर नोबेलने डिनामाइटका आविष्कार किया। पहाड़के किसी बड़े सूराख़में रखकर डिनामाइटमें आग लगा देनेसे बड़े-से-बड़ा पहाड़ भी हिल जाता है, और उसमें दरारें पड़ जाती हैं, तब उसे काटना आसान हो जाता है। डिनामाइटकी ज़रूरत संसारके विभिन्न राष्ट्रोंको थी—विशेषकर उनको, जिनके देशोंमें खानें बहुत थीं, या जिन्हें पहाड़ी प्रदेशोंमें सड़कें बनानी थीं। डा० नोबेलके आविष्कारसे लोगोंने बहुत फ़ायदा उठाया। इससे डा० नोबेलको भी बहुत आर्थिक लाभ हुआ।

सन् १८९६ में जब डा० नोबेलकी मृत्यु हुई, तब अपनी सम्पत्तिका एक बड़ा भाग वे एक ट्रस्टको वक्फ़ कर गये। अब उस धनकी सहायतासे प्रतिवर्ष आठ-आठ हज़ार पौंडके पाँच पुरस्कार उन पाँच सज्जनोंको मिलते हैं, जिन्होंने वर्ष-भरमें मानव-हितके लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया है। वे पाँच विभाग, जिनमें ये पुरस्कार दिये जाते हैं, ये हैं—भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, शरीर-विज्ञान या औषधि-विज्ञान, साहित्य और शान्ति-वृद्धि।

× × ×

गत वर्ष भौतिक विज्ञानका पुरस्कार भारतके आदरणीय सपूत सर सी० वी० रमनको मिला था, और साहित्यका पुरस्कार अमेरिकाके उपन्यासकार मिस्टर सिन्क्लेयर लेविसको। इस वर्ष रसायनशास्त्रका पुरस्कार अमेरिकाके प्रसिद्ध रसायनज्ञ डा० इरविंग लैंगमूरको प्राप्त हुआ है। इनकी आयु इस समय ५१ वर्षकी है। गत तेंतीस वर्षसे ये रासायनिक अन्वेषण कर रहे हैं। भौतिक विज्ञानका पुरस्कार इस साल किसीको भी नहीं दिया गया। सम्भवतः कोई भी मनुष्य इसका अधिकारी नहीं समझा गया। साहित्यका पुरस्कार, जो एक लाख बहत्तर हज़ार क्रोन*का है, इस वर्ष अंगरेज़ उपन्यासकार तथा नाटककार मि० जॉन गाल्सवर्दीको मिला है। इससे पूर्व साहित्यका यह पुरस्कार अंगरेज़ कवि रूड्यार्ड किपलिंगको सन् १९०७ में और नाटककार बर्नार्ड शाको सन् १९२५ में मिला था। यहाँ हम गाल्सवर्दीके सम्बन्धमें कुछ बातें देते हैं।

× × ×

गाल्सवर्दी सन् १८६७ में पैदा हुए थे। वे पहले हैरोके पब्लिक स्कूल और बादमें ऑक्सफ़ोर्डके न्यू कालेजमें शिक्षा ग्रहण करते रहे। २३ वर्षकी आयुमें बैरिस्टर हो गये, परन्तु बजाय क़ानूनके इन्होंने अपना जीवन साहित्यको अर्पण कर दिया। पहले-पहल इन्होंने सन् १८९८में एक उपन्यास लिखा। परन्तु जिस उपन्याससे इन्होंने साहित्यिक संसारको अपनी तरफ़ आकर्षित किया है, वह है 'फ़ॉरसाइट सागा' (Forsyte Saga)। इसके तीन भाग हैं। इसमें उपन्यासकारने इंग्लैंडकी मध्यश्रेणीका सामाजिक चित्र खींचा है। इनके बादके उपन्यास 'सफ़ेद बन्दर' (The White Monkey), 'सफ़ेद चम्मच' (The White Spoon) और 'हंस-गीत' (The Swan Song) हैं। कहानियाँ भी इन्होंने बहुतसी लिखी हैं।

* डेनमार्क, नारवे और स्वीडनका चाँदीका सिक्का, जिसका मूल्य एक शिलिंग डेढ़ पेंसके बराबर है।

जोसेफ़ कॉनरेडने, जो स्वयं एक सफल उपन्यासकार हैं, एक बार कहा था—"गाल्सवर्दीकी आँखें जहाँपर बाहरकी दुनियाको अच्छी तरह देखती हैं, वहाँपर वे मानव-हृदयके अन्दरकी दुनियाकी उससे कहीं बढ़कर खोज करती हैं।" यही कारण है कि गाल्सवर्दीकी कृतियोंको पढ़नेसे जहाँपर घड़ी दो घड़ीका मनोरंजन होता है, वहाँपर कुछ ऐसा प्रसाद भी मिलता है, जिसका प्रभाव मनुष्यके हृदयपर सदाके लिए बना रहता है।

एक विशेषता गाल्सवर्दीमें और भी है। कई अन्य उपन्यासकार मानवी भावोंका चित्र खींचते समय खुद भी उन भावोंके बहावमें बह जाते हैं। यह बात गाल्सवर्दीमें नहीं है। गाल्सवर्दीकी एक अन्य बात भी उल्लेखनीय है। जिस प्राणीको—चाहे वह जानवर हो या मनुष्य, अछूत हो या चोर—जनसाधारण प्रायः घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, दुतकारते हैं और ठोकरें लगाते हैं, गाल्सवर्दी उसका अध्ययन एक विद्यार्थीके समान करते हैं। इसका परिणाम हार्दिक सहानुभूति होती है। दूसरी तरफ़ संसारमें जो मनुष्य दूसरोंको तंग करते हैं, चिढ़ाते और खिजाते हैं, गाल्सवर्दी उनके साथ घृणा करते हैं।

× × ×

हम यहाँपर उनकी एक-आध रचनाओंका विश्लेषण करते हैं, और देखते हैं कि उनके अन्तस्तलमें क्या भाव काम करते हैं।

'प्रथम और अन्तिम' (The First and the Last) गाल्सवर्दीकी एक लघु उपन्यास या कहानी है। कहानी छोटी नहीं, लम्बी है। कीथ और लॉरेंस दो भाई हैं। कीथ बैरिस्टर है, बल्कि बादशाहका कौंसल (King's Counsel) है। उसकी धर्मपत्नी मर चुकी है। लॉरेंस पूरा-पूरा शराबी है। कुछ काम नहीं करता। भाईसे रुपया लेकर आवारागर्दीमें उड़ा देता है। एक दिन शामको कीथ कोर्टसे वापस आकर अपनी बैठकमें अँगीठीके सामने बैठा हुआ था कि दरवाज़ेपर उसके भाईने आवाज़ दी। कीथने उसे अपने पास बुलाया। पूछनेपर लॉरेंसने बताया कि वह एक आदमीकी हत्या कर आया है। इसपर कीथने डरकर कहा कि तब तुम मेरे पास क्यों आये हो (कीथको भय है कि लॉरेंसके पकड़े जानेपर अगर दुनियाको यह पता लग गया कि लॉरेंस मेरा भाई है, तो मेरी इज्ज़त ख़ाकमें मिल जायगी) ? लॉरेंसने जवाब दिया—'यह पूछनेके लिए कि अब मैं क्या करूँ ?' इसपर कीथने लॉरेंससे वकीलोंवाली जिरह शुरू कर दी। लॉरेंसने बताया कि बारो स्ट्रीटमें एक सुन्दर युवती रहती है। पिताके मर जानेपर वालेन नामक एक अमेरिकन बदमाशने उसको अपने पास रख लिया। कुछ समयके बाद वह कहीं चला गया। उस युवतीको एक दूसरे आदमीने रख लिया। दो सालके बाद वालेन वापस आया, और उसे फिर अपने पास ले आया। वह निर्दय उसे मार-मारकर लाल-पीला कर दिया करता था। एक दिन वालेनने उसे फिर छोड़ दिया। अब हर कोई उसके पास आने-जाने लगा। कल रात जब मैं उसके पास गया, तब वालेन भी वहाँ आ पहुँचा। मुझे देखकर वालेनने मेरे माथेपर चोट की। मैंने उसका गला पकड़कर दबाया, परन्तु जब छोड़ा, तो वह मर चुका था! इससे मुझे बहुत दुःख हुआ, क्योंकि मैं उसे मारना नहीं चाहता था। तब उसे अपनी पीठपर उठाकर मैं पचास गज़ परे गलीकी मोड़पर फेंक आया। उस वक्त तीन बजे थे। न उस घरमें रहनेवाले किसी दूसरे आदमीने मुझे देखा, न गलीमें ही किसीने। सुबह सात बजे मैं अपनी बैठक फ़िट्ज़राय स्ट्रीटमें चला गया। कल जब मैं युवतीके यहाँ गया था, तब मुझे किसीने नहीं देखा, और आज सवेरे जब मैं वहाँसे निकला, तब भी मुझे किसीने नहीं देखा। क्योंकि मैं वहाँ कभी-कभी जाया करता हूँ, इसलिए मुझे उस गलीमें कोई पहचानता भी नहीं। मेरे पास युवतीकी कोई चिट्ठी या चित्र नहीं है।

जिरहके द्वारा सब बातें मालूम करके कीथने लॉरेंससे कहा कि अब तुम सीधे अपनी बैठकको जाओ। इस

समय मैं एक भोजमें जा रहा हूँ। कल सुबह तुम्हारे पास आऊँगा, लेकिन मेरे आने तक तुम वहीं रहना; एक मिनटके लिए भी कहीं बाहर न निकलना। लारेंससे कीथने युवतीके मकानकी चाबियाँ ले लीं।

घरको जाते हुए लारेंसने सोचा कि देखो, कितना अन्धेर हो गया। मेरे हाथसे कभी मक्खी भी न मरी थी, और आज इस मनुष्यकी हत्या हो गई है! फिर ख़याल आया कि अगर पुलिसने मुझे पकड़ लिया, तो कोई बात नहीं। घरपर जाकर वह कोट पहन लूँगा, जिसके एक कोनेमें मैंने ज़हरकी गोलियाँ सी रखी हैं। रास्तेमें उसने केमिस्टकी दूकानसे नींद आनेकी दवा ब्रोमाईड पी, और घरपर पहुँचकर सो गया।

उस रात कीथ जब भोजके स्थानसे बाहर निकला, तब ग्यारह बज चुके थे। लारेंसका ध्यान होते ही उसके मनमें आया कि मैं क्यों इस मुसीबतमें फँस रहा हूँ। इसका उत्तर उसके स्वार्थने दिया—इसमें मेरे नामका भी तो प्रश्न है। वहाँसे चलकर उसने वह जगह देखी, जहाँ लारेंसने वालेनकी लाश फेंकी थी। तब वह उस युवतीके घर गया। जब युवतीको विश्वास हो गया कि कीथ लारेंसका भाई है, तब उसने कीथके सभी प्रश्नोंका उत्तर दिया। युवतीका नाम वांडा है। वालेनने ही पहले लारेंसपर आक्रमण किया। वांडा लारेंससे बहुत प्रेम करती है, उसे जिस किसी भी तरह हो सके, बचाना चाहती है। इसी कारण उसने वालेनकी दी हुई सभी चीज़ें आगमें डाल दी हैं।

इसपर कीथने उसे बताया कि अब तुम दोनोंके बचनेका तरीक़ा एक यही है कि तुम एक-दूसरेसे मिलो मत; न वह तुम्हारे पास आये, और न तुम उसके पास जाओ। यह कहकर कीथ अपने मकानको वापस चला गया।

अगले दिन सवेरे कीथने फ़ैसला किया कि लारेंसको कल उस जहाज़में सवार कर देना चाहिए, जो अर्जनटाइन (दक्षिण-अमेरिका) को जा रहा है। वह यहाँ न रहेगा, तो पुलिस उसका पता कैसे लगा सकेगी? लेकिन जब भोजनके पश्चात कीथने उस दिनका अख़बार खोला, तो मालूम हुआ कि उस हत्याके सम्बन्धमें एक आदमी पकड़ भी लिया गया। उसने ख़याल किया कि अब लारेंस हवालातमें होगा। जल्दी-जल्दी वह लारेंसकी बैठकपर पहुँचा। पता लगा कि लारेंस अभी सोया पड़ा है। अब तो उसके दिलकी धड़कन बन्द हुई। उसने विचार किया कि यह गिरफ्तारी बहुत अच्छी बात हुई है! इससे पुलिसवाले दूसरी ही तरफ़ लगे रहेंगे। लारेंसको इस बीच विदेश भेज दूँगा। युवतीको भी उसके पीछे ही।

कीथने लारेंसको बताया कि रातको मैं वांडाके यहाँ गया था। अब मैं समझता हूँ कि उसपर विश्वास किया जा सकता है कि वह तुम्हारे विषयमें किसीको कुछ नहीं बतायेगी। भाई, अब तुम्हारे लिए रास्ता एक ही है, तुम कल यहाँसे दक्षिण-अमेरिका चले जाओ। अगले जहाज़में वह भी तुम्हारे पीछे आ जायगी। जहाज़का किराया और एक सालका ख़र्च मैं तुम्हें अभी लाये देता हूँ, लेकिन शर्त यह है कि यह सब ऐसी सफ़ाई से हो कि तुम कहाँपर हो, यह किसीको पता न लग पाये। लारेंसने इसका कुछ उत्तर न दिया, सिर्फ़ एक आह भर दी। कीथने कहा—"अरे, तुम सोचते क्या हो? तुम्हारी क़िस्मत भी अच्छी है। पुलिसने एक आदमी भी पकड़ लिया है।"

लारेंसने यह बात सुनी, तो भौचक रह गया। उसने कहा—"यह तो मैंने सोचा ही न था। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

मामला बिगड़ते देखकर कीथ बोला—"क्यों, इसमें है ही क्या? पुलिसवाले ऐसा करते ही हैं। वह निर्दोष है। आज उन्होंने उसे पकड़ा है, कल छोड़ देंगे। फिर तुम्हें इसकी फ़िक्र ही क्यों हो? मैं जो यहाँ बैठा हूँ। उठो, यह लो कुछ रुपया और जाओ सामान ख़रीदो। मैं यहाँसे बैंक जाता हूँ, और फिर कचहरी जाऊँगा। शामको पाँच और छैके दर्मियान मैं यहाँ आऊँगा। अरे, अपने-

आपके सिवा तुम्हें इसमें मेरा भी तो ख़याल रखना है।"

यह कहकर कीथ चला गया। लारेंस सोचने लगा कि हत्या तो मैं करूँ और पकड़ा जाय एक निर्दोष! यह कैसे हो सकता है! इस प्रकार बहुत देर विचार करनेके पश्चात वह उठा और कचहरीको चल दिया। गिरफ़्तारशुदा आदमीको कोर्टके सामने पेश किया गया। कुल दस-बारह मिनट तक कार्रवाई हुई, और फिर उसका रिमांड ले लिया गया। वहाँसे लारेंस वांडाके घर गया। वहाँपर खाया-पिया और फिर पाँच बजे अपनी बैठकपर पहुँचा। कीथ और लारेंस दोनों इकट्ठे ही बैठकमें दाख़िल हुए। कीथने कहा—"लो, ये रहे रुपये। उस जहाज़पर जगह भी है। जाओ, जल्दी जाओ, ताकि वह कहीं दाख़िला बन्द न कर दे। (नोटोंको मेज़पर रखते हुए) देखो लारेंस, मैंने पुलिसका बयान पढ़ा है। उसमें कुछ भी नहीं है, और फिर अगर वह भिखमंगा हवालातसे बाहर रहा, तो क्या, और अगर अन्दर रहा, तो क्या? उलटे अन्दर उसे आराम रहेगा—रहनेको जगह मिलेगी, खानेको रोटी। पकड़ो, आदमीकी तरह इनको पकड़ो, और वहाँ जाकर नई ज़िन्दगी बनाओ।"

लारेंसने हँसकर जवाब दिया—"कीथ, मेहरबानी करो, और इन नोटोंको अपनी जेबमें डालो; वरना ये अभी आगमें जाते हैं। बाक़ी रही तुम्हारी इज्ज़त। तुम यहाँसे चले जाओ। मुझे अभी अपने मानका कुछ ख़याल है। अगर मैं यहाँसे भाग गया, तो मेरा मान उड़ जायगा। मुझे अपना मान इस ज़िन्दगीसे ज़्यादा प्यारा है।"

ऐसी बातें सुनकर कीथ वहाँसे चला गया।

छै हफ्ते तक मुक़दमा चलता रहा। इस बीचमें लारेंस वांडाके घरपर आ गया। क्रिस्मसके दिन उन्होंने बहुत सुखपूर्वक बिताये। लारेंस अपने बड़े भाईसे न कभी मिलने गया, न उसने कोई पत्र ही लिखा।

जनवरीके अन्तमें मुक़दमेका फ़ैसला हुआ। गिरफ़्तारशुदा आदमीके लिए फाँसीकी सज़ाका हुक्म हुआ। कीथने यह बात अगले दिन दोपहरको अख़बारमें पढ़ी। उसी शामको वह वांडाके यहाँ पहुँचा। लारेंस घरपर नहीं था। वांडाको उसने बताया कि गिरफ्तार हुए आदमीको उन्होंने फाँसीका हुक्म दिया है, लेकिन वे उसे फाँसी नहीं देंगे। अब वांडाको चाहिए कि वह लारेंसको अकेले बाहर न जाने दे (ताकि वह अपने आपको पुलिसके हवाले न कर दे)। जब लारेंस लौटा, तब उसके हाथमें बहुतसे फूल थे। कीथने लारेंससे भी वही बात कही—"उसको उन्होंने सज़ाका हुक्म तो सुना दिया है, परन्तु वे उसे यह सज़ा दे नहीं सकते, यह निश्चित है। अभी तक मैंने उनका सारा फ़ैसला पढ़ा नहीं, इसलिए मुझे फ़ुर्सत होने दो; देखो, तब क्या होता है।"

अन्तमें कीथने लारेंससे यह इक़रार लिया—"जब तक कल सवेरे यहाँ तुम नहीं आओगे, तब तक मैं घरसे बाहर नहीं निकलूँगा।"

तब कीथ वहाँसे अपने क्लबको चला गया। जब ग्यारह बजे, तब उसे झपकी-सी आ गई। क्लबसे उठकर वह घरको रवाना होने लगा कि इतनेमें उसे लारेंसका ख़याल आया, कहीं वह इस समय पुलिसमें न जा रहा हो। कीथ बारो स्ट्रीटको चल दिया। वांडाका दरवाज़ा खटखटाया, लेकिन अन्दरसे कोई जवाब न मिला। तब उसने ख़ुद ही दरवाज़ा खोला और अन्दर चला गया। देखा, मोमबत्तियाँ जल रही हैं, आग जल रही है, गद्देले इधर-उधर पड़े हुए हैं और उनपर फूल बिखरे हुए हैं। मेज़पर भोजनका अवशेष पड़ा था, बोतलें पड़ी हुई थीं। पर्देके परे भी बत्ती जल रही थी। कीथको निश्चय हो गया कि वांडा और लारेंस दोनों सो गये हैं। उसने चौखटको खटखटाया, और आवाज़ें भी दीं—"लारेंस! लारेंस!" लेकिन कोई जवाब न मिला। चारपाईके पास जाकर कीथने देखा कि छाती-से-छाती लगाकर दोनों सोये पड़े हैं।

भाईको कंधेसे पकड़कर कीथने ज़ोरसे हिलाया, लेकिन वह तो ठंडा पड़ा था ! वांडाको हाथ लगाया। वह भी सर्द थी। काँपते हुए हाथोंसे कीथने वहाँसे एक लिफ़ाफ़ा उठाया। उसपर लिखा हुआ था—"कृपया इसे पुलिसको दे दीजिए। —लारेंस।"

लिफ़ाफ़ेको जेबमें डालकर कीथ अपने घरको दौड़ा। अपने कमरेमें पहुँचकर उसने कुछ व्हिस्की अपने मुँहमें उँडेली, और जेबसे लिफ़ाफ़ा निकाला। पढ़ने लगा—

"मैं लारेंस, जो अपने हाथों ही मर रहा हूँ, ये बातें सच्चे दिलसे स्वीकार करता हूँ। नवम्बर २७ तारीख़को मैंने वालेनकी हत्या की।" अन्तमें ये शब्द थे—"हम मरना नहीं चाहते थे, परन्तु एक दूसरेसे बिछुड़ भी नहीं सकते थे। न मैं यही सहन कर सकता था कि एक निर्दोष मनुष्यको मेरे बदले फाँसी दे दी जाय। मुझे और कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। मैं प्रार्थना करता हूँ कि हमारा पोस्ट-मार्टम न किया जाय। जो चीज़ हमने खाई है, उसका कुछ हिस्सा ड्रेसिंग टेबिलपर पड़ा हुआ है। कृपया हम दोनोंको एक ही स्थानमें दफनाइये।

२८ जनवरी, १० बजे रात　　—लारेंस।"

पाँच मिनट तक कीथ इस काग़ज़को देखता रहा। उसने पत्र दोबारा पढ़ा। तब वह काग़ज़ उसके हाथसे छूट गया। उसे एक दूसरा ही ख़याल आया—'इस काग़ज़में एक और आदमीकी जान है।' वह फिर सोचने लगा। ख़याल आया—'लेकिन इसके साथ मेरा मान भी तो सम्बद्ध है।' तत्क्षण कीथने पाँवके पास पड़े काग़ज़को उठाया, और अँगीठीमें डाल दिया। आग जल रही थी। ज्वाला उठी, और वह काग़ज़ 'कर-कर' करता हुआ स्वाहा हो गया !

लारेंस-जैसे बदमाश शराबीको दुनियाके लोग प्रायः घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, दुतकारते हैं, ठुकराते हैं। इसी प्रकार कीथ-जैसे प्रतिष्ठित सज्जनको दुनिया इज्ज़तकी निगाहसे देखती है, परन्तु यहाँ हम क्या पाते हैं ? शायद आरम्भमें पाठक लारेंससे सहानुभूति न करे, कीथसे करे, परन्तु अन्तमें तो यह हो नहीं सकता कि मामला बिलकुल उलट न जाय। यदि इस समय पाठकके सामने लारेंस और कीथ दोनोंकी मूर्तियाँ आ उपस्थित हों, तो वह पहलीके सामने नतमस्तक हो जायगा, और दूसरीको एक बार उत्सुकतावश देखकर मुँह फेर लेगा।

× × ×

कहानियों और उपन्यासोंके अतिरिक्त गाल्सवर्दी नाटक भी लिखते हैं। इनके नाटकोंका आधार प्रायः नैतिक, या सामाजिक हुआ करता है। इनमें से कुछ ये हैं—'चाँदीका डब्बा' (Silver Box, १९०६), 'ख़ुशी' (Joy, १९०७), 'संग्राम' (Strife, १९०९) 'न्याय' (Justice, १९१०), 'कबूतर' (Pigeon, १९१२), 'सबसे बड़ा लड़का' (Eldest Son, १९१२) और 'जंगल' (Forest, १९२४)।

अन्य नाटककारों और नाटककार गाल्सवर्दीमें फ़र्क़ यह है कि इनके सम्भाषणकी शैली स्वाभाविक है। बर्नार्ड शाके नाटकोंकी भाषा इनके नाटकोंके मुक़ाबले बहुत ज़्यादा बोलचालकी हुआ करती है। सम्भवतः यही कारण है कि जितना मज़ा शाके नाटकोंको पढ़नेमें आता है, उतना इनके नाटकोंको पढ़नेमें नहीं। १९२६ में गाल्सवर्दीने एक दूसरी लाइनमें भी पाँव धरा। इस साल इन्होंने 'इन एस्केप' नामका नाटक लिखा, जिसके द्वारा यह सिद्ध किया कि सनसनी और मनोरंजनमें नाटक सिनेमाके फ़िल्मको मात कर सकता है।

गाल्सवर्दी उसी प्रकृतिवादी दल (School of Naturalists) के सदस्य हैं, जिसका अनुगमन शा करते हैं। इस स्कूलका अग्रगामी फ्रांसका प्रसिद्ध उपन्यासकार ज़ोला (Emile Zola) था। नार्वेका प्रसिद्ध नाटककार इब्सन (Henrick Ibsen) भी इसी स्कूलका अनुगामी था। इब्सनने नाटकों द्वारा सामाजिक और नैतिक समस्याओंको संसारके सामने रखा। बर्नार्ड शा और गाल्सवर्दीने भी इब्सनके साधनको समाज-सुधारका तरीक़ा बनाया। समाजकी ख़राबियों,

कुरीतियों और ठगियोंका नाटकोंमें खाका खींचा। यहाँ हम उनके दो-तीन नाटकोंका स्थूल विश्लेषण करते हैं।

'सिल्वर बाक्स'में जैक और जॉन्स दो व्यक्ति एक दिन संध्या समय चोरीके कारण पकड़े जाते हैं। जैक अमीर आदमीका लड़का है, जॉन्स आवारागर्द है। चोरीका मामला कचहरीमें आता है। जॉन्स बतौर चोर पेश किया जाता है, और जैक बतौर गवाह। जॉन्सको तो क़ैदकी सज़ा होती है, जिसके कारण उसका परिवार नष्ट होने लगता है, परन्तु जैकको जज सिर्फ़ डाँटकर ही छोड़ देता है। यहाँ गाल्सवर्दीने एक-से दो जुर्म बताये हैं, जिनको समाजकी विभिन्न श्रेणियोंके दो प्रतिनिधि करते हैं, परन्तु जुर्म एक-से होनेपर भी न्यायाधीश उन्हें सज़ा एक-सी नहीं देता।

'स्ट्राइफ़' सामाजिक ट्रेजिडी है। इसमें पूँजिपतियों और मज़दूरोंका संग्राम है। मज़दूर हड़ताल कर देते हैं। मज़दूरोंका प्रतिनिधि राबर्ट्स उनके लिए अपना सर्वस्व तक त्याग देनेको तैयार है। कम्पनीका प्रेसिडेंट भी अपना पक्ष कमज़ोर नहीं होने देता। फलस्वरूप हड़ताल जारी रहती है। इस बीचमें आर्थिक कठिनाइयाँ दोनों पक्षोंपर अपना ज़ोर डालती हैं। जहाँपर मज़दूर भूखे मरने लगते हैं, वहाँपर कम्पनीके मालिकोंको बहुत ज्यादा घाटा उठाना पड़ता है। दोनोंमें से किसीको भी कुछ लाभ नहीं होता। हाँ, नुक़सान बहुत ज्यादा होता है।

'जस्टिस'में नाटकका नायक फ़ाल्डर बड़ी सख्त मुसीबतमें फँसा हुआ है, और कोई चारा न देखकर वह एक जाली चेक बनाता है। क़ानून उसे पकड़ लेता है। यद्यपि वह बुरा आदमी नहीं है, तो भी न्यायाधीश निर्बल अपराधी और बुरे अपराधीमें कोई भेद नहीं करते, और फ़ाल्डरको क़ैदकी सज़ा दे देते हैं। परन्तु जब वह क़ैद काटकर बाहर निकलता है, तब आर्थिक कठिनाइयाँ उसे पहलेसे भी ज्यादा आ घेरती हैं। इनसे बचनेके लिए वह फिर पुराना तरीक़ा अख्त्यार करता है। क़ानून उसे दोबारा आ दबाता है। इसपर वह आत्म-हत्या कर लेता है।

जिन लोगोंने यूरोपीय नाटकोंका कुछ भी अध्ययन किया है। वे जानते हैं कि बहुतसे यूरोपीय नाटककार आजकल नियतिवाद (Determinism) के सिद्धान्तको मानते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि उनकी इच्छापर बाहरकी विभिन्न शक्तियाँ अपना प्रभाव डालती हैं, और फलस्वरूप वह कर्म करता है। गाल्सवर्दीके जिन तीन नाटकोंके विषयमें ऊपर कुछ शब्द लिखे गये हैं, वे सब इसी नियतिवादपर आश्रित हैं। जहाँपर ये नाटक समाज और व्यक्तिके पारस्परिक सम्बन्धके गिर्द घूमते हैं, वहाँपर इनसे यह भी पता लगता है कि परम्परा (Heredity) और देश-काल (Environments) मनुष्यपर कितना असर डालते हैं।

परन्तु यहाँ प्रश्न होता है—जब गाल्सवर्दी नियतिवाद (Determinism) को मानते हैं, तब वे अपने नाटकों द्वारा सिद्ध क्या करना चाहते हैं? इसका उत्तर प्रश्नमें ही निहित है। वे वही कुछ सिद्ध करना चाहते हैं, जो कुछ नाटकोंमें दिखाते हैं। क्या हम अपने दैनिक जीवनमें जैक और जॉन्स, मज़दूर और मालिकों, या फ़ाल्डर-जैसे केस हर रोज़ नहीं देखते? गाल्सवर्दीका कथन है कि यही जीवन है। हमारा सामाजिक संस्थान दूषित है, वह त्रुटिपूर्ण है। इन त्रुटियोंके कारण स्वयं समाज और व्यक्तियोंपर घात-प्रतिघात होते हैं, और इनका फल ये सजीव दुःखान्त नाटक देखनेमें आते हैं।

परन्तु एक बात हम गाल्सवर्दीके विषयमें कभी नहीं भूल सकते। यद्यपि वे समझते हैं कि वर्तमान सामाजिक संस्थानमें वे कोई परिवर्तन नहीं ला सकते, तो भी अपने चरित्रोंके साथ मूक सहानुभूति प्रकट करना वे कभी नहीं भूलते। इसी कारण कहा गया है कि गाल्सवर्दी वर्तमान मानवतावादके सच्चे प्रतिनिधि हैं।

मेघदूत

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[१]

मिलनके प्रथम दिन बाँसुरीने क्या कहा था ?

उसने कहा था—"वही आदमी मेरे पास आया है, जो दूरका था।"

और कहा था—"पकड़ लेनेपर भी जिसे पकड़ा नहीं जा सकता, उसे पकड़ा है; पा लेनेपर भी जो समस्त प्राप्तियोंके परे है, उसे पा लिया।"

उसके बाद, फिर रोज बाँसुरी बजती क्यों नहीं ?

क्योंकि, आधी बात भूल जो गया हूँ। सिर्फ याद रहा—वह पासमें है, परन्तु वह दूर भी है, इस बातका खयाल ही न रहा।

प्रेमके जिस आधेमें मिलन है, उसीको देखता हूँ; जिस आधेमें विरह है, उसपर निगाह ही नहीं जाती; इसीसे दूरका चिर-तृप्तिहीन देखना अब देखनेमें नहीं आता—पासके परदेने ओट कर ली है।

दो आदमियोंके बीचमें जो असीम आकाश है, वहाँ सब चुप हैं, वहाँ बातें नहीं होतीं। उस गहरी चुप्पीको बाँसुरीकी तानसे भर दिया जाता है। अनन्त आकाशकी सँध न मिलती तो बाँसुरी बजती ही नहीं।

हमारा वह बीचका आकाश आँधीसे छा गया है, रोजके काम-काज और बातचीतसे, रोजके भय, चिन्ता और कृपणतासे भर गया है।

[२]

किसी-किसी दिन चाँदनी रातमें बयार चलती है, तब बिछौनेपर जागकर बैठे रहनेमें हृदय व्यथित हो उठता है; तब याद आती है कि उस पासके आदमीको तो खो ही दिया।

यह विरह मिटे किस तरह—मेरे अन्तरके साथ उसके अन्तरका विरह ?

दिनके अन्तमें काम-काजसे छुट्टी पाकर जिसके साथ बातें करता हूँ, वह कौन है ? वह तो संसारके हजारों आदमियोंमें से एक है, उसे तो मैंने जान लिया है, पहचान लिया है; वह तो समाप्त हो चुकी।

पर, उसके भीतर कहाँ है मेरी वह कभी न समाप्त होनेवाली एक, मेरी वह एकमात्र ? उसे फिरसे नई तरहसे कहाँ किस तटहीन कामनाके किनारे ढूँढ़ निकालूँ ?

उसके साथ फिर एक बार किस समयकी सँधमें से बात करूँ—वनमल्लिकाकी सुगन्धमें किस कर्महीन निबिड़ संध्याके अन्धकारमें ?

[३]

इतनेमें नव-वर्षा छाया-उत्तरीय उड़ाती हुई पूर्व दिगन्तमें आ पहुँची। उज्जयिनीके कविकी याद उठ आई। सोचा, प्रियाके पास दूत भेजूँ।

मेरे गान, उड़ चल,—पास रहनेके इस सुदूर दुर्गम निर्वासनको पार कर जा।

किन्तु तब तो गानको जाना पड़ेगा—काल-स्रोतके प्रतिकूल चलकर बाँसुरीके उसी व्यथा-भरे प्रथम मिलनके दिनमें; वहीं, जहाँ विश्वकी चिर-वर्षा और चिर-वसन्तकी सम्पूर्ण गन्ध और सम्पूर्ण क्रन्दन इकट्ठा होकर रह गया है, केतकीवनके दीर्घनिःश्वासमें और शालमंजरीके उतावले आत्म-निवेदनमें।

निर्जन पुष्करिणीके किनारेवाले उस नारियल-वनके मर्मर-मुखरित वर्षाकी बातको ही मेरी बात बनाकर प्रियाके कानों तक पहुँचा दे, जहाँ वह अपने बिखरे बालोंको सम्हालकर, उनमें गाँठ देकर, कमरसे आँचल बाँधे अपने सांसारिक कामोंमें व्यस्त है।

[४]

बहुत दूरका असीम आकाश आज वनराजिसे नील पृथिवीके सिरहानेके पास झुक पड़ा। कान-ही-कानमें बोला—"मैं तुम्हारा ही हूँ।"

पृथिवीने कहा—"सो कैसे होगा ? तुम तो असीम हो, मैं जो छोटी हूँ ।"

आकाशने कहा—"मैंने तो चारों ओर अपने मेघोंकी सीमा खींच दी है ।"

पृथिवी बोली—"तुम्हारे पास तो नक्षत्रोंकी बहुत सम्पद है, मेरे तो प्रकाशकी सम्पद नहीं है ।"

आकाशने कहा—"आज मैं अपने चन्द्र-सूर्य-तारा सब खो आया हूँ, आज मेरी एकमात्र तुम ही हो ।"

पृथिवी बोली—"मेरा आँसुओंसे भरा हृदय हवाके हर झोकेसे चंचल हो काँपने लगता है, तुम तो अविचलित हो ।"

आकाश कहने लगा—"मेरे आँसू भी आज चंचल हो गये हैं, देख नहीं रही हो ? मेरा हृदय आज श्यामल हो गया है, तुम्हारे इस श्यामल हृदयकी तरह ।"

यह कहकर उसने आकाश-पृथिवीके बीचके चिर-विरहको आँसुओंके गानसे भर दिया ।

[५]

उस आकाश-पृथिवीके विवाह-मंत्र-गुंजनको लेकर नववर्षा उतर आये न, हमारे विच्छेदपर । प्रियामें जो कुछ अनिर्वचनीय हो, वह सहसा-बज-उठे वीणाके तारकी तरह चौंक पड़े । वह अपने माथेकी माँगपर, दूर वनान्तके रंगकी तरह, अपना नीला आँचल ढक ले । उसकी काली आँखोंकी चितवनसे मेघमल्लारके सारे मीड़ व्यथित हो उठें । सार्थक हो बकुलमाला—उसकी वेणीके तह-तहमें लिपटकर ।

जब झींगुरोंकी झंकारसे वेणुवनका अँधेरा थरथर काँप रहा हो, जब वर्षाकी हवासे दीपशिखा काँपते-काँपते बुझ चुके, तब वह अपने बहुत ही पासके उस संसारको छोड़कर चली न आवे—भींजी घासकी सुगन्धसे भरे बनपथसे, मेरे एकान्त निर्जन हृदयकी निशीथ रात्रिमें ।

—धन्यकुमार जैन

हिम-कण

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

विटपोंपर, सुमनोंके दलपर,
ललित लताओंके अंचलपर,
हरी दूबपर, हरियालीपर,
खेतोंकी डाली-डालीपर,
बिछे हुए हैं मोती गोल ;
श्वेत-श्वेत हिम-कण अनमोल ।१।

साथ पवनके झूल-झूलकर,
इठलाते थे फूल-फूलकर,
ध्यान न था यह कभी भूलकर,
मित्र बनेंगे शत्रु शूलकर,
रविने कर क्रीड़ा-कल्लोल ;
बिनसाये हिम-कण अनमोल ।२।

सिखलाया हिम-कणने मरकर,
है यह सब जग मिथ्या नश्वर,
तन, धन, जन, जीवन-वैभवपर,
भूल यहाँ मत जाना रे नर !
है क्षणभंगुर जीवन-दोल ;
'शंकर' लो शिक्षा अनमोल ।३।

बैरमका पतन

अध्यापक लक्ष्मणनारायण भारद्वाज

भारतीय इतिहासके जिन पात्रोंने अपने जीवनमें 'आँखके अन्धे नाम नैनसुख' वाली लोकोक्तिको चरितार्थ किया है, उनमें मुग़ल-राज्यके संस्थापक बाबरका पुत्र हुमायूँ भी एक है। होनेको उसका नाम हुमायूँ था, जिसका अर्थ है 'भाग्यवान', परन्तु इतिहासमें उसके समान भाग्यहीन थोड़े ही व्यक्ति सिद्ध हुए हैं। वह जीवन-पर्यन्त इधर-से-उधर लुढ़कता रहा, और अन्तमें मरा भी लुढ़ककर ही। अपने पुस्तकालयकी सीढ़ियोंसे एक दिन जब वह नीचे उतर रहा था, तो बीच ही में उसको नमाज़की अज़ाँ सुनाई दी। वह भी नमाज़के लिए वहीं बैठना चाहता था कि उसकी लाठी संगमरमरकी चिकनी सीढ़ीपर से रपट गई, जिसके कारण वह लुढ़कता हुआ सिरके बल नीचे आ गिरा। उसे असाधारण चोट आई। दवा-दारू भी बहुत की गई, परन्तु—

'मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।'

उसका अन्तिम समय आ पहुँचा, और २४ जनवरी सन् १५५६ को उसकी मृत्यु हो गई।

हुमायूँके संसार-त्यागके समय साम्राज्यकी अवस्था बड़ी शोचनीय थी। तख़्तपर बैठनेके बाद उस अभागेका कोई दिन शान्तिपूर्वक गुज़रा हो—यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। पन्द्रह वर्ष तो बेचारेको देश त्यागकर विदेशमें व्यतीत करने पड़े थे। बाबरने भी साम्राज्यको शैशवावस्था ही में छोड़ा था। सारांश यह कि पिता और पुत्र दोनोंमें से किसीको भी इतना अवसर न मिला कि साम्राज्यको शक्तिका दुग्धपान कराया जाता, और शत्रुओंका नाश करके शान्तिकी पुष्टिकारक घुट्टी दी जाती। यदि पिता समयके कारण ऐसा न कर सका, तो पुत्रमें उस दूरदर्शिता और नैतिक पटुताका सर्वथा अभाव था, जिसके द्वारा वह ऐसा करनेमें समर्थ होता। इसके अतिरिक्त एक बात और भी थी। शेरशाहके निर्बल उत्तराधिकारियोंके प्रमाद और उनकी अकर्मण्यताने उत्साही और कर्मशील व्यक्तियोंको स्वतन्त्र राज्य स्थापित करनेका सुयोग प्रदान किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे। केन्द्रीय सत्ता निर्बल हो चुकी थी, और दिल्लीका स्वामी भारतका सम्राट् कहलानेका अधिकार खो चुका था।

ऐसी विषम परिस्थितिमें एक परम चतुर शासक—सच्चे नाख़ुदाकी आवश्यकता थी, जो साम्राज्य-रूपी पोतको सुचारु-रूपसे खेकर ठीक तरहसे तटपर लगाता, परन्तु हुमायूँका उत्तराधिकारी अकबर इस समय निरा बालक था। उसे शासन-सम्बन्धी कामोंका कुछ भी अनुभव न था। इधर अकबरकी बाल्यावस्था और हुमायूँकी अचानक मृत्यु सुनकर मुग़ल-साम्राज्यके शत्रुओंकी बाछें खिल गईं। वे मुग़लोंको भारत-भूमिसे निकालकर अपनी खोई हुई स्वतन्त्रताको पुनः प्राप्त करनेके मन्सूबे बाँधने लगे। यह देखकर मुग़ल-साम्राज्यके शुभ-चिन्तकोंको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें विश्वास होने लगा कि मुग़लोंको शीघ्र ही भारतवर्ष त्यागना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें, जब कि मुग़ल-साम्राज्यकी नैया मझधारमें थी, और चारों दिशाओंसे उसे डुबा देनेवाले प्रबल तूफ़ानोंकी आशंका की जा रही थी, ख़ानख़ाना बैरमख़ां एक कुशल और अनुभवी नाविकके रूपमें उपस्थित हुआ। उसने मुग़लोंके टूटे हुए दिलोंमें आशाका संचार किया। उन्हें ढाढ़स बँधाया, और विश्वास दिलाया कि अधिक चिन्ता करनेकी बात नहीं, परमात्मा सब भला करेगे। हुमायूँकी मृत्युके समय वह और अकबर दोनों ही दिल्लीसे अलग पंजाबमें थे। बैरमने वहीं कलानूर नामक स्थानपर १४ फरवरी सन् १५५६ को अकबरका राज्याभिषेक कर उसे हुमायूँके स्थानमें मुग़ल-राज्यका बादशाह और

अपनेको वकीले-सल्तनत (प्रधान मन्त्री) घोषित कर दिया। जिस दिन अकबरका राज्याभिषेक हुआ, उस दिन उसकी अवस्था १३ वर्ष २ महीने २१ दिनकी थी।

बैरम इस परिवारका बहुत पुराना सेवक था। वह अपने समयका रण-कुशल योद्धा होनेके अलावा योग्य और अनुभवी शासक भी था। उसने अपने स्वामी हुमायूँके खोटे दिनोंमें भी उसके साथ रहकर अपनी दृढ़ स्वामिभक्तिका परिचय दिया था। उसकी इस आदर्श स्वामिभक्तिकी शेरशाह सूर तकने मुक्तकंठसे प्रशंसा की थी। अतः उसकी सेवाओं और योग्यताका विचार करते हुए वह सर्वथा इस पदके योग्य ही था। इस पदकी प्राप्ति उसकी लम्बी सेवाओंका उपहारमात्र थी। वह अल्प-वयस्क अकबरका संरक्षक था। उसे बादशाहतके सारे अधिकार प्राप्त थे। वह चाहे जो कर सकता था—स्याह या सफ़ेद। संरक्षक होनेके थोड़े ही दिनों बाद पानीपतके द्वितीय युद्धमें उसे तत्कालीन प्रसिद्ध उत्साही योद्धा हेमूका सामना करना पड़ा। दोनों सेनापतियोंमें से एकके दुर्भाग्य तथा दूसरेके सौभाग्यसे इस युद्धमें हेमूकी आँखमें तीर लगा, और उसके लगते ही ज्यों ही वह बेहोश होकर हवा*के हौदेमें गिरा, त्यों ही उसकी सेना भाग खड़ी हुई। विजयश्री बैरमके हाथ लगी। उसकी तलवारके एक ही वारने हेमूका सिर धड़से अलग कर दिया। इस विजयसे बैरमकी प्रतिष्ठामें और भी चार चाँद लग गये। लोग उसके इशारेपर नाचने लगे। दरबारमें क्या छोटा और क्या बड़ा—कोई भी काम बिना उसकी आज्ञाके न हो पाता था। अकबर नामका बादशाह था, परन्तु वास्तवमें बादशाह बैरम ही था। उन दिनों उसका सितारा बुलन्दीपर था—उसका भाग्य-भानु खूब तेज़ीसे चमक रहा था।

परन्तु Excess of power leads to abuse—अधिक शक्ति पाकर मनुष्य उसका दुरुपयोग करने लगता है—यह बात ठीक है। अधिकारका मद ऐसा बुरा है कि इसकी लहरमें मनुष्यको औचित्य अथवा अनौचित्यका ज्ञान नहीं रहता। वह अपने-आपको भूल जाता है, समयके परिवर्तनशील स्वभावको भूल जाता है, और प्रकृतिके सदैव किसी वस्तुको एकसी अवस्थामें न रहने देनेवाले अटल सिद्धान्तको भुला देता है। बैरमको भी अधिकारका नशा था, और उच्च पदका गर्व था। शनैः-शनैः उसकी प्रकृति बदलने लगी। उसके स्वभावमें परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। उसके हृदयमें अन्य कर्मचारियोंके प्रति सन्देहजनक विचारोंका जन्म हुआ। वह अपने विषयमें आवश्यकतासे अधिक सतर्क रहने लगा। साधारण-से-साधारण—तुच्छ-से-तुच्छ—घटनामें उसे अपने विरुद्ध साज़िशकी बू आने लगी। प्रत्येक बातको वह समझता था कि यह मेरा पतन लानेके लिए ही की जा रही है। निदान व्यर्थ ही अनेकोंको उसने अपना कल्पित शत्रु बना लिया। ऐसे लोगोंके साथ उसने प्रतिकारकी नीतिका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। अपने निजी नौकर-चाकरोंमें से अनेकोंको उसने ख़ान और सुल्तानकी उपाधियोंसे विभूषित किया, और शाही महलके पुराने नौकरोंके साथ किसी प्रकारकी सहानुभूतिका प्रदर्शन भी न किया गया। अपने पिट्ठुओंमें से लगभग पचीसको पंजहज़ारी मन्सबका पद प्रदानकर इस पदके उचित अधिकारियोंके साथ अन्याय किया गया। यहीं तक नहीं, शाही महलके नौकरोंको साधारण अपराधपर भी बड़ा कठोर दंड दिया जाता था, और अपने निजी नौकरोंके बड़े-से-बड़े अपराधोंपर ख़ानख़ानाकी नज़र भी न पड़ती थी। एक शाही हाथीने उसके हाथीसे लड़कर उसे लँगड़ा कर दिया। इसी अपराधपर बेचारे निरपराध महावतको प्राणदंड मिला। बैरमने ऐसी जितनी बातें कीं, वे सब उसी मादक द्रव्यके मदमें—उसकी बेहोशीमें—की थीं, जिसका नाम है अधिकार। उसे यह पता न था कि जिस नीतिके प्रयोग द्वारा वह अपने पतनको रोकना सम्भव समझता है, वह निर्मूल है, और उल्टा उसके वेगको बढ़ाती है; जिस अग्निसे वह अपने-आपको बचाना चाहता है, उसमें आहुतिका काम देकर उसको

* हेमूके हाथीका नाम हवा था।

अधिक प्रज्ज्वलित करती है। वह यह न जानता था कि जिस ज्वालामुखीपर वह बैठा है, वह न-मालूम कब भड़क उठे और बात-की-बातमें उसे भस्म कर दे। उसे यह न सूझा कि जिसके ऊपर उसे इतना गर्व है—जिसके बल-भरोसे वह सब कुछ कर रहा है—वह सब अस्थायी है। अन्य कर्मचारियोंके विरोधका एक हल्कासा झोंका—अपने-आपको जिसका वह कृपापात्र समझे हुए है, उसके मनकी एक मौज—ईर्ष्या और डाहकी कमानसे निकला हुआ एक तीर, उसके जीवनको क्षणभरमें उलट-पलट करके इधर-से-उधर कर सकता है—

"न इतराइये देर लगती है क्या
ज़मानेको करवट बदलते हुए।"

कुछ दिनों तक उपर्युक्त सारी बातें चलती रहीं। नौकर-चाकर, दरबारी लोग और अन्य राज्य-कर्मचारीगण सब आये दिन ऐसी ही घटनाओंको देखते गये। भावी सम्राट् अकबरकी भी आँखें उधरसे बिलकुल बन्द न थीं। इसका परिणाम भी वही हुआ, जो प्रायः हुआ करता है। समयने इतिहासके साथ मिलकर उसे अपनी इस उक्तिके चरितार्थ करनेमें सहायता दी कि—History repeats itself—इतिहास अपनी पुनरावृत्ति किया करता है। यद्यपि अभी तक बैरमका ही बोलबाला था, परन्तु लोगोंका, नौकर-चाकरोंका और उसकी करतूतोंसे असन्तुष्ट राज्य-कर्मचारियोंका उसके प्रति असन्तोष दिन-दिन बढ़ता ही गया। जिस प्रकार वर्षाऋतुमें इधर-उधरसे आ-आकर गड्ढों और जलाशयोंमें जल इकट्ठा हो जाता है, उसी प्रकार बैरमके शत्रुओंकी संख्या बढ़ती गई। कोई यदि उसके व्यवहारसे असन्तुष्ट था, तो किसीके हृदयमें उसके उच्च पदके विरुद्ध स्वाभाविक ईर्ष्या थी, जो मानव-हृदयकी प्राकृतिक दुर्बलता है। कुछ व्यक्ति उसकी इस असाधारण उन्नतिको ही अपनी या अपने इष्ट जनोंकी उन्नति न होनेका कारण समझे हुए थे, और इसीलिए उसके पदके अभिलाषी थे। उनकी धारणा थी कि बैरमके लिए भाग्यका द्वार बन्द होते ही हमारे या हमारे सम्बन्धियोंके लिए सौभाग्यका द्वार खुल जायगा, उसके अलग होते ही उनका भाग्य चमक उठेगा। इस प्रकारकी इच्छासे ही प्रेरित होकर बैरमके पतनकी दुआ माँगनेवाली—उसको भाग्य-प्रासादसे मुँहके बल गिरा देनेके अवसरकी ताकमें रहनेवाली—अकबरकी धर्ममाता—उनकी धाय—माहम अनगह थी। उसे अकबर बहुत मानता था। ऐसा कहनेमें तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी कि यदि देशमें बैरमका राज्य था, तो महलके भीतर माहम अनगहका सिक्का चलता था। दोनों परस्पर प्रतिद्वन्द्वी थे। अनगह अपने औरस पुत्र आदमख़ाँके वास्ते मार्ग साफ करनेके लिए बैरमको अपने रास्तेसे हटाना चाहती थी। वह अकबरके कानोंमें बैरमके विरुद्ध विष उगलती रहती थी। अकबर भी अवस्थामें ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था—ज्यों-ज्यों उसकी बुद्धि भी ऐसी बातोंके समझनेमें समर्थ होती जाती थी, त्यों-त्यों वह अपने हृदयसे बैरमके प्रति रहनेवाली श्रद्धा, प्रेम और आदरको निकालता जाता था। पीछे इसीने उसके हृदयमें बैरमके प्रति असन्तोषका रूप धारण कर लिया। इसके अतिरिक्त एक और भी बात थी। बैरम अकबरको भी अपनी आज्ञामें रखना चाहता था। इस स्थानपर बैरमको मनोविज्ञानका ज्ञान न था। अकबरकी आयुमें उत्तरोत्तर वृद्धिके साथ-साथ उसकी स्वेच्छाचारिता—स्वातंत्र्यप्रियताकी भावनाकी भी वृद्धि होती जा रही थी। 'मैं सम्राट् हूँ'—यह विचार धीरे-धीरे उसके हृदयमें घर कर रहा था। उसे बात-बातमें बैरमका मुँह ताकना अच्छा न मालूम होता था। साथ ही शीघ्र स्वयं सम्राट् बननेकी उत्कण्ठा जाग्रत हो चुकी थी। असन्तोष और वैमनस्यके कारण इतने ही न थे। अकबरको बैरमके उस गुप्त इरादेका भी पता लग चुका था, जिसके द्वारा बैरम अकबरके स्थानमें उसके चचेरे भाई—कामरानके बेटे अबुलक़ासिमको तख़्तपर बिठाकर अपने पदको जीवन-पर्यन्त सुरक्षित बनाये रखना चाहता था। यह बात

ऐसी थी, जो अकबरको ही नहीं, उसकी-सी स्थितिमें होनेवाले किसी भी व्यक्तिको सह्य नहीं हो सकती। इन सब कारणोंसे बैरमके विरुद्ध जो आग इतने दिनोंसे सुलगाई जा रही थी और जो अभी तक भट्टीके भीतर ही भीतर घुमड़ रही थी, उसको प्रज्वलित करनेकी तैयारी होने लगी। बैरमके पतनके उपाय सोचे जाने लगे, और शीघ्र-से-शीघ्र उनको क्रियात्मक रूप देनेका निश्चय किया गया।

बैरमके विरुद्ध होनेवाले इस अभिनयके मुख्य पात्र थे—हमीदा बानूबेगम, माहम अनगह, उसका पुत्र आदमख़ाँ और दिल्लीका सूबेदार सबाबुद्दीन। इस सारे कार्यक्रमका निर्णय बियाना नामक स्थानपर किया गया, क्योंकि राजधानीमें ऐसा करनेसे बैरमको इसका पता लग जानेकी आशंका थी, अतः शिकारके बहाने सारी टोली आगरेसे अलग बियाना नामक स्थानपर चली गई। बैरमको अभी तक ज़रा भी सन्देह न था। वह समझता था कि सदैवकी भाँति इस बार भी अकबर सैर-सपाटे और आखेट-मृगयाके लिए गया है, पर उसे यह तनिक भी मालूम न था कि अबके इस शिकारमें उसीको शिकार बनाये जानेका निश्चय किया जानेवाला है—

"याँ दिलमें ख़याल और है वाँ मद्दे नज़र और ;
है हाल तबीअतका इधर और उधर और।"

बियानामें निश्चय किया गया कि अभिनय आगरेमें न खेला जाकर दिल्लीमें खेला जाय। आगरे पहुँचकर अकबर अपनी माँको—जो रोगशय्यापर पड़ी बतलाई जाय—देखनेके बहाने दिल्लीको प्रस्थान करे, और अपने साथ अबुलक़ासिमको भी लेता जाय। दिल्ली पहुँचने पर अकबरका क्या कर्तव्य होगा, यह भी ठीक-ठाक कर दिया गया। सारा निश्चय करनेपर पार्टी आगरेको लौटी।

यवनिका उठी। अभिनय प्रारम्भ हुआ। निर्णयके अनुसार सन् १५६० की १९ मार्चको अकबर अबुलक़ासिमको साथ लेकर पुनः आखेटके ही बहाने दिल्लीकी ओर रवाना हुआ। अलीगढ़ ज़िलेमें सिकन्दराराऊ नामक स्थानपर माहमके छोटे पुत्र मुहम्मद बक़ी बक़लानीको इस भेदका पता चल गया, अतः अकबरने वहाँ ठहरना उचित न समझा। बुलन्दशहर ज़िलेके अन्तर्गत ख़ुर्जा नामक स्थानपर उसने पड़ाव डाला। यहींपर उसे उसकी माताके रोगग्रस्त होनेका समाचार दिया गया। वहाँसे वह सीधा दिल्लीकी ओर चल पड़ा, और २७ मार्चको दिल्ली पहुँच गया।

दिल्ली पहुँचकर अकबरने राज्यके समस्त कर्मचारियोंके नाम एक फ़र्मान निकाला, जिसमें उसने उन्हें अपना मन्तव्य बतलाया था, और उन्हें आज्ञा दी थी कि वे सब दिल्ली आकर उसे अपना सम्राट् स्वीकार करें। अपने उस्ताद अबुललतीफ़के हाथ ख़ानख़ानाको भी उसने निम्न-लिखित सन्देश भेजा—

"मुझे आपकी सचाई और ईमानदारीपर पूर्ण विश्वास था, अतएव राज्यके सब आवश्यक कार्य मैंने आपको सौंप रखे थे, परन्तु अब मैंने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें लेनेका निश्चय कर लिया है। अब आप तीर्थ-यात्राके लिए मक्का चले जायँ। बहुत दिनोंसे आप उसकी इच्छा भी प्रकट करते आये हैं। हिन्दोस्तानके परगनोंमें से एक काफ़ी लम्बी-चौड़ी जागीर आपके लिए दे दी जायगी। इसकी आय आपके एजेन्ट आपको भेजते रहा करेंगे।"

बैरम अकबरके इस सन्देशको सुनकर सन्न-सा रह गया। इस समय अकबर और बैरम दोनोंके बीच कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ। बैरमने अपने पत्रमें पिछले कर्मोंके लिए क्षमा-याचना करते हुए अकबरको लिखा कि एक बार मुझे फिर अपनी स्वामिभक्ति और सम्राट्के प्रति प्रेम प्रदर्शन करनेका अवसर दिया जाय। बैरमने दिल्ली आकर स्वयं सम्राट्से मिलकर मनमुटावको मिटानेकी—मामलोंको तै करनेकी—प्रार्थना की, परन्तु अब निश्चय करना अकबरके हाथमें था, बैरमके नहीं। अकबरने ख़ानख़ानाके पत्रके उत्तर-स्वरूप उसे एक पत्र फ़ारसीमें लिखा, जिसका सारांश हिन्दीमें इस प्रकार है—

"ख़ान बाबा ! मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। आपको ज्ञात है कि अभी कुछ दिन पूर्व मैं कुछ कारणोंसे दिल्ली चला आया था, और तबसे यहीं ठहरा हुआ हूँ। यह सुनकर कि आप यहाँ आकर मुझसे भेंट करना चाहते हैं, मैंने तारसून मुहम्मदको भेज दिया था, क्योंकि मैं नहीं समझ सकता कि आपके विरुद्ध मेरी बहुतसी शिकायतोंके होते हुए भी, और उन कष्टोंका ध्यान रखते हुए जो आपके द्वारा मुझे मिले, आप मेरे पास कैसे आ सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप वहीं रहकर राज्यके कामकी देखभाल करते रहें। यदि मेरी उपस्थिति आवश्यक हो, तो मैं स्वयं आगरे इस शर्तपर आ सकता हूँ कि आप आगरा छोड़कर ग्वालियर चले जायँ और बुलवानेपर मेरे पास आवें। आपकी तसल्लीके लिए मैंने लिख दिया था कि आपत्तियाँ चाहे कितनी ही क्यों न हों, वे पिता-पुत्रके सम्बन्धको नहीं तोड़ सकतीं। आप मेरे ख़ान बाबा थे, और मेरा और आपका यही सम्बन्ध सदैव रहा। आपके द्वारा अनेक कष्ट मिलनेपर भी मैं आपको बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। मैं सदैव आपको प्रेम करता था, और आपके साथ दयालुताका व्यवहार रखता था। मैं आपको ख़ान बाबा समझता था, और इसी नामसे आपको पुकारा भी करता था। मेरा विचार है कि मेरी और आपकी भेंट निकट-भविष्यमें सम्भव न हो सकेगी। आपके लिए सबसे उत्तम यही है कि आप पवित्र स्थानोंके दर्शनोंके लिए चले जायँ। इसकी आपने आज्ञा भी माँगी थी और उस सामानको लेनेके लिए जो आपके पास तैयार था, परन्तु आप सरहिन्द और लाहौरमें छोड़ आये थे, आप किसी आदमीको भेज दें।"

इस पत्रको पढ़कर बैरमको विश्वास हो गया कि अब प्रयत्न करना व्यर्थ है। अकबरके निश्चयमें परिवर्तन नहीं हो सकता। अब किसी प्रकारकी अभ्यर्थनासे काम न चलेगा—

"यों वफ़ा उठ गई ज़मानेसे,
गोया कभी किसीमें थी ही नहीं।"

बेचारेने लाचार होकर भाग्यके आगे सिर नवाया। उसने अधिकारके सारे चिह्न अकबरके पास भेज दिये, और स्वयं मक्केकी ओर चल दिया। जब वह बियानाकी ओर मुड़ा, तो उसके शत्रुओंको सन्देह हुआ कि कहीं ख़ानख़ानाके विचारोंमें परिवर्तन न हो जाय, वह विद्रोह न कर बैठे। अतः शीघ्र-से-शीघ्र उसे भारतकी सीमासे बाहर कर देनेके विचारसे पीर मुहम्मद नामके व्यक्तिको कुछ सेना देकर इस कामके लिए भेजा गया। पीर मुहम्मद ख़ानख़ानाकी मातहतीमें रह चुका था। बैरम इस अपमानको सहन न कर सका। अब उसने खुल्लमखुल्ला विद्रोह करनेका निश्चय कर लिया। उसने मक्का जानेका इरादा त्याग दिया, और विद्रोह द्वारा अपने भाग्यकी अन्तिम परीक्षाका निर्णय करके पंजाबकी ओर मुड़ गया—

"तैयार थे नमाज़को हम सुनके ज़िक्रे हूर,
जलवा बुतोंका देखकर तबिअत बदल गई।"

बैरमके खुल्लमखुल्ला विद्रोही होनेका समाचार पाकर अकबरने उसका दमन करनेके लिए अपने सेनाध्यक्षोंकी अध्यक्षतामें सेना भेजी, और पीछेसे स्वयं भी एक भारी सेना लेकर ख़ानख़ानाके दमनको निकला। बैरमका विजय पाना कठिन था—'काम दुश्वार वह निकला, जिसे आसाँ समझा।' बादशाही सेनाके मुक़ाबलेमें उसकी हार हुई। शाही सेनासे परास्त होकर वह शिवालिककी घाटियोंकी ओर भाग गया। सम्राट् स्वयं उसे ढूँढ़कर पकड़ लानेके लिए निकला। बैरमने भी अन्तमें निराश होकर आत्म-समर्पण कर दिया। समयका फेर है। एक दिन जिस ख़ानख़ानाके आगे सारा दरबार थर्राता था, जिसकी आज्ञा उल्लंघन करनेका बड़े-बड़ोंको साहस तक न था, वही बैरम अकबरके सामने क़ैदीकी हैसियतमें हाज़िर किया गया—

"कभी यह दिल तमाशागाह था ऐशो-मसर्रतका;
अब इसमें हसरतो-शौक़ो-तमन्ना सैर करते हैं।"

जिस समय वह राजद्रोहके अपराधमें बन्दीकी अवस्थामें गिरफ्तारकर अकबरके सामने लाया गया,

उसकी उस समयकी दशा देखकर अकबरकी भावुकता जाग उठी। उसकी पिछली सेवाओंका दृश्य उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा! वह मनुष्य था, और उसके अन्दर मनुष्यताके भाव कूट-कूटकर भरे हुए थे। आजसे चार वर्ष पूर्व उसके सामने उसका यही बन्दी एक दूसरे व्यक्ति—हेमू—को बन्दी बनाकर लाया था। उस दिन भी अकबरने उसपर हाथ छोड़नेसे इनकार करके अपने हृदयकी दयालुताका परिचय दिया था। आज भी बिलकुल वैसा ही दृश्य उपस्थित था। यदि वह चाहता, तो तलवारके एक ही हाथसे बैरमका सिर भी उसी प्रकार उड़ा सकता था, जैसे बैरमने हेमूका उड़ा दिया था। वह भी उसी अपराध—राजद्रोह—का अपराधी था। यदि आज बैरम अकबर होता और अकबर बैरम, तो निस्सन्देह क्षणभरमें अकबरका सिर धड़से अलग कर दिया गया होता, पर अकबर जैसे नामका अकबर था, वैसे ही दिलका भी अकबर था। उसने आदरपूर्वक बैरमको दरबारमें बुलवाया। दरबारी लोग और राज्यके कर्मचारीगण उसका स्वागत करनेके लिए द्वार तक आये। बैरम नंगे सिर, नंगे पाँव, गलेमें दुपट्टा लपेटे हुए अकबरके सामने हाज़िर हुआ, और भूमिपर दंडवत् लेट गया। उस वक्त, उसकी सूरत देखकर, कालचक्र अपनी मूक भाषामें यह शेर पढ़ रहा था—

"आख़िर एक दिन ए गुलेतर देख मुर्झाना पड़ा ;
इस क़दर भी अपने आपेसे कोई बाहर न हो।"

अकबरने अपने राजसिंहासनसे उठकर बैरमको उठाया, और उसे प्रधान मन्त्रीके आसनपर बिठाकर कहा—"यदि बैरमख़ाँको फ़ौजी जीवन पसन्द है, तो कालपी और चन्देरीका शासन उन्हें दिया जाता है। यदि वे दरबारमें रहना चाहें, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, और यदि वे मक्के जाना पसन्द करें, तो उनके साथ उनके रक्षार्थ यथोचित गार्डका भी प्रबन्ध कर दिया जायगा।" बैरमने अन्तिम प्रस्तावको ही स्वीकार किया। वह जानता था कि अब फिर शासनका काम लेना कोरी मूर्खता है। ठीक यही है कि मक्केकी यात्राकी जाय—

"जीना ज़िल्लतमें अगर हो तो है मरना अच्छा।"

जिस समय उपर्युक्त बातें अकबरने बैरमसे कही थीं, यह उस अभिनयका अन्तिम दृश्य था, जो उसके पतनके लिए रचा गया था। अभिनय सफल रहा। बैरमका पतन हो चुका था। कविकी यह उक्ति चरितार्थ हुई—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

फ़कीरकी दशाको राजाकी दशामें और राजाको फ़कीरके वेशमें परिवर्तित कर देना कालचक्रका साधारण कार्य है। बैरम मक्केके लिए रवाना हुआ। अभागेके जब दिन फिरे, तो उसे वह भी नसीब न हो सका! उसका पतन दयनीय था—मृत्यु उससे भी अधिक शोचनीय! जब वह गुजरातमें पाटन नामक स्थानपर पहुँचा, तो एक अफ़ग़ान द्वारा उसका बध कर दिया गया। इस अफ़ग़ानका पिता बैरम द्वारा संचालित एक युद्धमें मुग़लों द्वारा मारा गया था। बुरे दिन आनेपर अफ़ग़ानने भी अपनी पुरानी शत्रुता निकाल ली।

इस प्रकार बैरमके शासन और उसके जीवन—दोनोंका ही अन्त एक दुख-भरी, परन्तु साथ-ही-साथ शिक्षाप्रद, कहानी है—

"पसे मर्ग मेरे मज़ार पै जो दिआ किसीने जला दिया ;
उसे आहे दामने-बादने सरेशामसे ही बुझा दिया।"

बुद्ध-धर्म क्या है ?

त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

हरएक धर्ममें कुछ ख़ास बातें ऐसी हैं, जिनको माननेवाला उस धर्मका अनुयायी कहा जाता है। यदि प्रश्न किया जाय कि कम-से-कम किन बातोंको माननेवाला बौद्ध कहा जा सकता है, तो इसका उत्तर है, जो चार सिद्धान्तों—तीन अस्वीकारात्मक और एक स्वीकारात्मक—को मानता है, वह बौद्ध है। वे चार बातें ये हैं--

(१) ईश्वरको नहीं मानना ; अन्यथा 'मनुष्य स्वयं अपना मालिक है'—इस सिद्धान्तका विरोध होगा।

(२) आत्माको नित्य नहीं मानना ; अन्यथा नित्य एकरस माननेपर उसकी परिशुद्धि और मुक्तिके लिए गुंजाइश नहीं रहेगी।

(३) किसी ग्रन्थको स्वतःप्रमाण नहीं मानना ; अन्यथा बुद्धिकी प्रामाणिकता जाती रहती है।

(४) जीवन-प्रवाहको इसी शरीर तक परिमित न मानना ; अन्यथा जीवन और उसकी विचित्रताएँ कार्यकारण नियमसे उत्पन्न न होकर, बल्कि सिर्फ आकस्मिक घटनाएँ रह जायँगी।

बौद्ध होनेके लिए इन चार बातोंका मानना आवश्यक है। इन चार बातोंको मानना क्यों ज़रूरी है, इसपर हम यहाँ अलग विचार करते हैं।

ईश्वरको न मानना

ईश्वरवादी कहते हैं—"चूँकि हरएक कार्यका कारण होता है, इसलिए संसारका भी कोई कारण होना चाहिए, और वह कारण ईश्वर है ; लेकिन प्रश्न किया जा सकता है—ईश्वर किस प्रकारका कारण है ? क्या उपादान-कारण, जैसे घड़ेका कारण मिट्टी ; कुंडलका सुवर्ण ? यदि ईश्वर जगतका उपादान-कारण है, तो जगत ईश्वरका रूपान्तर है। फिर संसारमें जो भी बुराई-भलाई, सुख-दुःख, दया-क्रूरता देखी जाती है, वह सभी ईश्वरसे और ईश्वरमें है। ईश्वर सुखमयकी अपेक्षा दुःखमय अधिक है, क्योंकि दुनियामें दुःखका पलड़ा भारी है। ईश्वर दयालुकी अपेक्षा क्रूर अधिक है, क्योंकि दुनियामें चारों तरफ़ क्रूरताका राज्य है। यदि वनस्पतिको जीवधारी न भी माना जाय, तो भी सूक्ष्मवीक्षणसे द्रष्टव्य कीटाणुओंसे लेकर कीड़े-मकोड़े, पक्षी, मछली, साँप, छिपकली, गीदड़, भेड़िया, सिंह-व्याघ्र, सभ्य-असभ्य मनुष्य—सभी एक-दूसरेके जीवनके ग्राहक हैं। ध्यानसे देखनेपर दृश्य-अदृश्य सारा ही जगत एक रोमांचकारी युद्धक्षेत्र है, जिसमें निर्बल प्राणी सबलोंके ग्रास बन रहे हैं। पुनर्जन्म न माननेवाले धर्मोंको तो इसे बिना आनाकानीके स्वीकार करना पड़ेगा। पुनर्जन्मवादी कह सकते हैं कि सभी मुसीबतें पूर्वके कर्मोंका फल हैं, लेकिन यह भी ठीक नहीं है। अच्छे-बुरे कर्मोंकी जवाबदेही जानकारको ही हो सकती है। पागल या नशेमें बेहोश या अबोध बालकको दूसरेकी हत्याका दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इससे इनकार किसको हो सकता है कि मनुष्यके अतिरिक्त दूसरे प्राणी—जो अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके जाननेकी समझ नहीं रखते, और जिनका जीवन दूसरोंके हत्यापर ही निर्भर है—अपने कर्मोंके जिम्मेवार नहीं हो सकते ? मनुष्योंमें भी बालक, पागल आदि अलग कर देनेपर दायित्व रखनेवालोंकी संख्या बहुत कम रह जायगी। यदि दुनियामें जवाबदेह आदमियोंकी संख्या डेढ़ अरब मान ली जाय, तो फल भोगनेवाले इतने कहाँसे आयेंगे, जिनकी संख्या अपार है। डेढ़ अरबसे अधिक तो कछुये ही होंगे, जो आदमीसे अधिक दीर्घजीवी हैं, और कीटाणुओं तथा हाथी ह्वेल आदि जैसे विशालकाय जन्तुओंके बारेमें कहना ही क्या ?

उपादान-कारण है, तो निर्विकार कैसे हो सकता है ? यदि ईश्वरको निमित्त-कारण माना जाय, अर्थात् वह जगतको वैसा ही बनाता है, जैसे कुम्हार घड़ेको, सुनार

कुंडलको, तो प्रश्न होगा, क्या वह बिना किसी उपादान-कारणके जगतको बनाता है, या उपादान-कारणसे ? यदि बिना उपादान-कारणके, तो अभावसे भावकी उत्पत्ति माननी होगी, और कार्य-कारणका सिद्धान्त ही गिर जायगा, तब फिर जगतको देखकर उसके कारण ईश्वरके माननेकी ज़रूरत क्या ? यदि इन्द्रजालकी तरह उसने जगतको बिना कारण मायामय उत्पन्न किया है, तो प्रत्यक्षके मायामय होनेपर ईश्वरके होनेका अनुमान ही किस सामग्रीके बलपर होगा ? यदि उपादान-कारणसे बनता है, तो कुम्हारकी भाँति जगतसे अलग रहकर बनाता है, या उसमें व्याप्त होकर ? अलग रहनेपर वह सर्वव्यापक नहीं रहेगा, और सृष्टि करनेके लिए उसे दूसरे सहायकों और साधनोंपर निर्भर होना पड़ेगा। विद्युत्कणोंसे भी सूक्ष्म नवकणों (Neutrous) तक पहुँचने और उनके मिश्रणसे क्रमशः स्थूलतर चीज़ोंके बनानेके लिए वह कौनसा हथियार, सुनारकी सँड़ासीकी तरह, प्रयोग करेगा ? और फिर सर्वशक्तिमान कैसे रहेगा ? यदि उसे उपादान-कारणमें सर्वव्यापक मान लिया जाय, तो भी उपादान-कारणके बिना उत्पादन-करनेमें अक्षम होनेपर सर्वशक्तिमान नहीं। ऐसी अवस्थामें अपवित्रता, क्रूरता आदि बुराइयोंका स्रोत होनेका भी वह दोषी होगा।

इस प्रकार न वह उपादान-कारण हो सकता है, न निमित्त-कारण। जगतका कोई आदिकारण होना ही चाहिए, यह कोई ज़रूरी नहीं। यदि 'उसका कारण कौन, उसका कारण कौन ?'—पूछनेपर जगतकी किसी सूक्ष्मतम वस्तु या उसकी विशेष शक्तिपर नहीं रुक जाने दिया जाय, तो ईश्वर तक ही क्यों रुका जाय ? क्यों न ईश्वरका भी कोई दूसरा कारण माना जाय ? इस प्रकार ईश्वरका आदिकरण मानना युक्तियुक्त नहीं।

कर्ताधर्ता ईश्वर होनेपर मनुष्य उसके हाथकी कठपुतली है, फिर वह किसी अच्छे-बुरे कामके लिए जवाबदेह नहीं हो सकता। फिर दुनियामें उसका सताया जाना क्या ईश्वरकी हृदयहीनताका द्योतक नहीं है ?

ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह मानना भी ठीक नहीं। यदि सृष्टि अनादि है, तो उसको किसी कर्ताकी ज़रूरत नहीं, क्योंकि कर्ता होनेके लिए उसे कार्यसे पहले उपस्थित रहना चाहिए। यदि सृष्टि सादि है, तो करोड़ दो करोड़, खरब दो खरब वर्ष नहीं, अचिन्त्य अनन्त वर्षोंसे लेकर सृष्टि उत्पन्न होनेके समय तक उस क्रियारहित ईश्वरके होनेका प्रमाण क्या ? क्रिया ही तो उसके अस्तित्वमें प्रमाण हो सकती है ?

ईश्वरके माननेपर, जैसा कि पहले कहा, मनुष्यको उसके अधीन मानना पड़ेगा। तब मनुष्य आप ही अपना स्वामी है ; जैसा चाहे, अपनेको बना सकता है, यह नहीं माना जा सकता। फिर मनुष्यको शुद्धि और मुक्तिके लिए प्रयत्न करनेकी गुंजाइश कहाँ ? फिर तो धर्मोंके बताये रास्ते और धर्म भी निष्फल। ईश्वरके न माननेपर, मनुष्य जो कुछ वर्तमानमें है, वह अपने ही कियेसे ; और जो भविष्यमें होगा, वह भी अपनी ही करनीसे। मनुष्यके काम करनेकी स्वतन्त्रता होने ही पर धर्मके बताये रास्तों और धर्मकी सार्थकता हो सकती है। ईश्वरवादियों द्वारा सहस्राब्दियोंसे धर्मके लिए अशान्ति और ख़ूनकी धाराएँ बहाई जा रही हैं, फिर भी ईश्वर क्यों नहीं निपटारा करता। इससे भी ईश्वर मनुष्यकी मानसिक सृष्टि है।

आत्माको नित्य न मानना

यदि आत्माको नित्य माना जाय, तो जैसा वह अनन्तकाल पूर्व था—अरबों वर्ष पूर्व था—वैसा ही वह आज है, वैसा ही अरब वर्ष बाद रहेगा, और वैसा ही अनन्तकाल बाद भी रहेगा। ऐसे कूटस्थ एकरस आत्मामें यदि बुराई है, तो अनादिकालसे है, और अनन्तकाल तक रहेगी ; फिर उसकी शुद्धिका प्रयत्न निष्फल है। यदि उसमें भलाई है, तो वह सर्वदा ही से, फिर धर्म-कर्म किस कमीकी पूर्तिके लिए ? एकरस माननेपर आत्मा यदि बद्ध है, तो अनादिकालसे है, और

अनन्तकाल तक रहेगा, फिर मुक्तिका प्रयत्न निष्फल। मुक्त है, तो सर्वदा मुक्त होनेपर उसे धर्मके बताये विधि-निषेधोंकी आवश्यकता ही क्या ? इस विषयपर अन्यत्र विस्तारपूर्वक कह चुके हैं, इसलिए यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है।

किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण न मानना

स्वतः प्रमाण होनेका दावा करनेवाला सिर्फ एक ग्रन्थ नहीं है। सभी धर्मवाले अपने-अपने ग्रन्थको स्वतः प्रमाण मानते और मनवानेकी कोशिश करते हैं। ब्राह्मण वेदको स्वतः प्रमाण मानते हैं, जिसकी बहुतसी बातें अन्य धर्मवालोंकी पुस्तकों एवं विज्ञानकी कितनी ही प्रयोग द्वारा सिद्ध बातोंके विरुद्ध पड़ती हैं। फिर ऐसा ग्रन्थ स्वतः प्रमाण कैसे माना जा सकता है ? यदि कहो कि वेद विज्ञानके प्रयोग-सिद्ध सिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं, तो सवाल होगा—यह कैसे मालूम ? इसकी सिद्धिके लिए अन्तमें बुद्धिका ही आश्रय लेना पड़ेगा। फिर क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि वेदकी प्रामाणिकता भी बुद्धिपर निर्भर है ? फिर तो वेदकी अपेक्षा बुद्धि ही स्वतः प्रमाण हुई। जो बात यहाँ वेदके बारेमें कही गई, वही बाइबिल, अंजील, कुरान आदि स्वतः प्रमाण मानी जानेवाली पुस्तकोंके बारेमें भी समझना चाहिए। वस्तुतः जब ईश्वर ही नहीं, तो ईश्वरकी पुस्तक ही नहीं।

पुस्तकोंके स्वतः प्रमाण माननेसे दुनियामें कितने ही भयंकर अत्याचार हुए हैं। गेलेलियोकी वह दुर्गति न होती, यदि बाइबिलको स्वतः प्रमाण नहीं माना जाता। और भी कितने ही वैज्ञानिकोंको जानसे हाथ न धोना पड़ता, यदि बाइबिलको स्वतः प्रमाण न माना जाता। यवन तत्त्ववेत्ताओंके सहस्राब्दियोंके परिश्रम ग्रन्थरूपमें जिस सिकन्दरियाके पुस्तकालयमें सुरक्षित थे, उनको जलाकर खाक न किया गया होता, यदि मुसलमान विजेता कुरानको स्वतः प्रमाण न मानते। किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण मानना असहिष्णुताका कारण होता है; इसने दुनियामें हज़ारों वर्षोंसे मनुष्य-जातिको धर्मान्धता, मिथ्या विश्वास और मानसिक दासताके गढ़ेमें ही नहीं गिरा रखा है, बल्कि इसने ज्ञानके प्रसारमें रुकावट पैदा करनेके साथ ख़ूनसे भी धरतीको रँगनेमें मदद दी है। ईसाई धर्मयुद्ध क्या थे, बाइबिल और कुरानके स्वतः प्रमाण होनेके झगड़ेके परिणाम।

किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण मानना, उसमें वर्णित विषयोंपर सन्देह न कर आगेकी जिज्ञासाको रोक देना है। जिज्ञासा ही दुनियाके बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कारोंके करनेमें कारण हुई है। यदि गेलेलियो बाइबिलके कहे अनुसार पृथिवीको चिपटी मान लेता, तो उसे पृथिवीके गोल होनेके प्रमाणोंका भान न होता। यदि केप्लर बाइबिलके सूर्यभ्रमणको निर्भ्रान्त मान लेता, तो पृथिवीके घूमनेके अपने तीन नियमोंका कहाँसे आविष्कार करता ? वस्तुतः ग्रन्थके स्वतः प्रमाण माननेपर न्युटन गुरुत्वाकर्षणका पता न लगा सकता, और न आइन्स्टाइन उसके संशोधक सापेक्षताके महान सिद्धान्तका आविष्कार कर सकता। वस्तुतः संसारमें विद्या, सभ्यता आदि सम्बन्धी जितनी भी प्रगति हुई है, वह ग्रन्थोंके स्वतः प्रमाणके इनकारसे हुई है। व्यवहारमें कौन मनुष्य अपने धर्म-ग्रन्थकी स्वतः प्रामाणिकता मानता है ? ग्रन्थ अपने-अपने समयकी रूढ़ियों, अन्ध-विश्वासों और अज्ञताओंसे जकड़े होते हैं। वह अपने समयके धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवहारोंके परिपोषक होते हैं। सहस्राब्दियों बाद वह बातें मरी हुई रहती हैं, तो भी वह मरे मुर्देको गले मढ़ना चाहते हैं। सेन्टपालके समय स्त्रियोंका सिर ढकना उस समयके फैशनके अनुसार अच्छा समझा जाता हो, किन्तु उस लिखावटके कारण आज स्त्रियोंको गिरजेमें और न्यायालयमें कसम खाते वक्त टोपी लगानेपर मजबूर क्यों किया जाय, जब कि दूसरी जगह समाज उसकी आवश्यकता नहीं समझता ?

ग्रन्थके स्वतः प्रमाण होनेके लिए उसके कर्ताको

सर्वज्ञ मानना पड़ेगा —सर्वज्ञ भी सभी देश, सभी काल, सभी वस्तुके सम्बन्धमें। फिर यदि कोई सर्वज्ञ हमारे पैदा होनेसे हज़ार वर्ष पूर्व हमारे द्वारा किये जानेवाले अच्छे-बुरे सभी कर्मोंको जानता था, तब तो हम आज वैसा करनेपर मजबूर हैं, अन्यथा उसकी सर्वज्ञता झूठ हो जायगी। फिर मनुष्य ऐसे सर्वज्ञके हाथकी क्या कठपुतलीमात्र नहीं है ? फिर कठपुतलीको अपने लिए अच्छा-बुरा काम चुनने और करनेका क्या अधिकार ? और तब ऐसे धर्म, उसके ग्रन्थ और उसमें कही गई शिक्षाओंका प्रयोजन क्या ?

परिशुद्ध और मुक्त बननेके लिए कर्म करनेमें मनुष्यका स्वतन्त्र होना ज़रूरी है। कर्म करनेकी स्वतन्त्रताके लिए बुद्धिका स्वतन्त्र होना ज़रूरी है। बुद्धि-स्वातंत्र्यके लिए किसी ग्रन्थकी परतन्त्रताका न होना आवश्यक है। वस्तुतः किसी ग्रन्थकी प्रामाणिकता उसके बुद्धिपूर्वक होनेपर निर्भर है, न कि बुद्धिकी प्रामाणिकता ग्रन्थपर।

उक्त तीन अस्वीकारात्मक बातें हैं, जिन्हें बुद्ध-धर्म मानता है।

जीवन-प्रवाहको इस शरीरके पूर्व और पश्चात भी मानना

बच्चेकी उत्पत्तिके साथ उसके जीवनका आरम्भ होता है। बच्चा क्या है ? शरीर और मनका समुदाय। शरीर भी कोई एक इकाई नहीं है, बल्कि एक कालमें भी असंख्य अणुओंका समुदाय। यह अणु हर क्षण बदल रहे हैं, और उनकी जगह उनके समान दूसरे अणु आ रहे हैं। इस प्रकार क्षण-क्षण शरीरमें परिवर्तन हो रहा है। वर्षों बाद वस्तुतः वही शरीर नहीं रहता, किन्तु परिवर्तन सदृश परमाणुओं द्वारा होता है, इसलिए हम कहते हैं—यह वही है। जो बात यहाँ शरीरकी है, वही मनपर भी लागू होती है, फ़र्क यही है कि मन सूक्ष्म है, उसका परिवर्तन भी सूक्ष्म है, और पूर्वापर रूपोंका भेद भी सूक्ष्म है, इसलिए उस भेदका समझना दुष्कर है। आत्मा और मन एक ही हैं, और आत्मा क्षण-क्षण बदल रही है, यह हम दूसरी जगह कह आये हैं, इसलिए यहाँ उसपर विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं।

शरीर और मन (आत्मा) दोनों बदल रहे हैं। किसी क्षणके बालकके जीवनको ले लीजिए, वह अपने पूर्वके जीवनांशके प्रभावसे प्रभावित मिलेगा। क ख सीखनेसे लेकर बीचकी श्रेणियोंमें होता हुआ जब वह एम० ए० पास हो जाता है, उसके मनकी सभी परवर्ती अवस्था उसकी पूर्ववर्ती अवस्थाका परिणाम है। वहाँ हम किसी बिचली एक कड़ीको छोड़ नहीं सकते। बिना मैट्रिकसे गुज़रे कैसे कोई एफ़० ए० में पहुँच सकता है ? इस प्रकार कार्य-कारण-शृंखला जन्मसे मरण तक अटूट दिखाई पड़ती है। प्रश्न है, जब जीवन इतने लम्बे समय तक कार्य-कारण-सम्बन्धपर अवलम्बित मालूम होता है और वहाँ कोई स्थिति आकस्मिक नहीं मिलती, तो जीवनके आरम्भमें उसमें कार्य-कारण-नियमको अस्वीकारकर क्या हम उसे आकस्मिक नहीं मान रहे हैं ? आकस्मिकता कोई वाद नहीं है, क्योंकि उसमें कार्य-कारणके नियमोंसे ही इनकार कर देना होता है, जिसके बिना कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती। यदि कहें—माता-पिताका शरीर जैसे अपने अनुरूप पुत्रके शरीरको जन्म देता है, वैसे ही उनका मन तदनुरूप पुत्रके मनको जन्म देता है, तो कुछ हद तक ठीक होनेपर भी यह बात सर्वांशमें ठीक नहीं जँचती। यदि ऐसा होता, तो मन्दबुद्धि माता-पिताओंको प्रतिभाशाली पुत्र, ऐसे ही प्रतिभाशाली माता-पिताओंको मन्दबुद्धि पुत्र न उत्पन्न होते। यह तो आम कहावत है, पंडितकी सन्तान मूर्ख होती है। ये दिक़्क़तें हट जाती हैं, यदि हम जीवन-प्रवाहको इस शरीरके पहलेसे मान लें। फिर तो हम कह सकते हैं, हरएक पूर्व जीवन परवर्ती जीवनका निर्माण करता है। जिस प्रकार खानसे निकला लोहा, पिघलाकर बना कच्चा लोहा और अनेकों बार ठंडा और गरम करके बना फौलाद तीनों ही लोहे हैं, तो भी उनमें संस्कारकी मात्रा जैसी कम-ज्यादा है, उसीके अनुसार हम उन्हें कम-अधिक संस्कृत

पाते हैं। प्रतिभाशाली बालककी बुद्धि फौलादकी तरह पहलेके चिर-अभ्याससे सुसंस्कृत है। मानसिक अभ्यासका यद्यपि स्मृतिके रूपमें सर्वथा उपस्थित रहना अत्यावश्यक नहीं है, परन्तु तदनुसार न्यूनाधिक संस्कृत होना तो बहुत ज़रूरी है। इस जन्ममें भी कालेज छोड़नेके बाद, कुछ ही वर्षोंमें पाठ्य-पुस्तकोंके रटे हुए बहुतसे नियम, सूत्र भूल जाते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सारे अध्ययनका परिश्रम व्यर्थ जाता है। ताजे घड़ेमें कुछ दिन रखकर निकाल लिए गये घीकी भाँति, भूल जानेपर भी जो विद्याध्ययन-संस्कार मनके भीतर समा गया रहता है, वही शिक्षाका फल है। कालेज छोड़े वर्षों हो जाने, एवं पढ़ी बातोंको भूल जानेपर भी, जैसे मनुष्यकी मानसिक संस्कृति उसके पूर्वके विद्याभ्यासको प्रमाणित करती है; उसी प्रकार शैशवमें झलकनेवाली प्रतिभाको क्यों न पूर्वके अभ्यासका परिणाम माना जाय? वस्तुतः आनुवंशिकता और वातावरण मानसिक शक्तिके जितने अंशके कारण नहीं है—और ऐसे अंश काफी हैं (मेधाविता-मन्दबुद्धिता, सौम्यता-नृशंसता आदि कितने ही अपैतृक गुण मनुष्यमें अकसर दिखाई पड़ते हैं)—उनका कारण इससे पूर्वके जीवन-प्रवाहमें ढूँढ़ना पड़ेगा। एक तरुण बड़ी तपस्यासे अध्ययनकर जिस समय उत्तम श्रेणीमें एम०ए० पास करता है, उसी समय अपने परिश्रमका पारितोषिक पाये विना उसका यह जीवन समाप्त हो जाता है; उसके इस परिश्रमको शरीरके साथ विनष्ट हो गया माननेकी अपेक्षा क्या यह अच्छा नहीं है कि उसे प्रतिभाशाली शिशुके साथ जोड़ दिया जाय? अपंडित माता-पिताके असाधारण गणितज्ञ, संगीतज्ञ शिशु देखे गये हैं। उक्त क्रमसे विचारनेपर हमें मालूम होता है कि हमारा इस शरीरका जीवन-प्रवाह एक सुदीर्घ जीवन-प्रवाहका छोटासा बीचका अंश है, जिसका पूर्वकालीन प्रवाह चिरकालसे आ रहा है, और परकालीन भी चिरकाल तक रहेगा। चिरकाल ही हम कह सकते हैं, क्योंकि अनन्तकाल कहनेपर अनन्तकालसे संचित राशिमें कुछ वर्षोंका संचित संस्कार कोई विशेष प्रभाव नहीं रख सकता, जैसे खारे समुद्रमें एक छोटीसी मिश्रीकी डली। जीवनमें हम प्रभाव होता देखते हैं, और व्यक्ति और समाज बेहतर बननेकी इच्छा रखकर तभी प्रयत्न कर सकते हैं, यदि जीवनकी संस्कृतिको अनन्तकालके प्रयत्नका नहीं, बल्कि एक परिमित कालके प्रयत्नका परिणाम मान लें। वस्तुत अनन्तकाल और अकाल दोनों ही भिन्न-भिन्न मानसिक संस्कृतियोंके भेदको आकस्मिक बना देते हैं। जीवन-प्रवाह इस शरीरसे पूर्वसे आ रहा है, और पीछे भी रहेगा, तो भी अनादि और अनन्त नहीं है। इसका आरम्भ तृष्णा या स्वार्थपरतासे है, और तृष्णाके क्षयके साथ इसका क्षय हो जाता है।

जीवन-प्रवाहको इस शरीरसे पूर्व और पश्चात् काल भी माननेपर हम निकम्मे-से-निकम्मे आदमीको भी बेहतर बननेकी आशा दिला सकते हैं। किसी ऊँचे आदर्शके लिए, लोक, समाज या दूसरे व्यक्तिके उत्कर्षके लिए, तभी अपने इस जीवनका उत्सर्ग तक कर देनेवाले पुरुषोंकी पर्याप्त संख्या मिल सकती है। तभी मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके दायित्वको पूरी तरह समझकर दूसरेके अपकारसे अपनेको रोकनेके लिए तैयार हो सकता है। समाजके हितके लिए व्यक्तियोंका आत्म-बलिदानके लिए तैयार रहना एवं समाजके अपकार करनेसे व्यक्तियोंका आत्म-निग्रह ये दोनों बातें लोकको बेहतर बनानेके लिए अनिवार्यतया आवश्यक हैं। लोकोन्नति वस्तुतः इन्हीं दो बातोंपर निर्भर है। इसी शरीरको आदिम और अन्तिम मान लेनेपर उन दोनों बातोंके लिए आदमीको प्रेरक वस्तुका अत्यन्ताभाव यदि नहीं, तो इतना अभाव ज़रूर हो जायगा, जिससे ऊपर बढ़नेकी गति रुक जायगी, और फलतः पीछेकी ओर गिरावट आरम्भ हो जायगी।

बुद्धकी शिक्षा और दर्शन इन चार सिद्धान्तोंपर अवलम्बित है। पहले तीनों सिद्धान्त बौद्धधर्मको

दुनियाके अन्य धर्मोंसे पृथक करते हैं। ये तीनों सिद्धान्त जड़वाद और बुद्ध-धर्ममें समान हैं, किन्तु चौथी बात, अर्थात् जीवन-प्रवाहको इसी शरीर तक परिसीमित न मानना, इसे जड़वादसे पृथक करता है, और साथ ही व्यक्तिके लिए भविष्यको आशामय बनानेका यही एकमात्र उपाय है, जिसके बिना किसी आदर्शवादका कार्यरूपमें परिणत होना नितान्त दुष्कर है।

चारों सिद्धान्तोंमें पहले तीन बड़ी परतन्त्राओंसे मनुष्यको मुक्त कराते हैं। चौथा आशामय भविष्यका सन्देश देता है और शील-सदाचारके लिए नींव बनता है। चारोंका जिसमें एकत्र सम्मेलन है, वही बुद्ध-धर्म है।

विधवा

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', बी० ए०

जीवनके इस शून्य सदनमें—
जलता है यौवन-प्रदीप, हँसते तारे एकान्त गगनमें ;
जीवनके इस शून्य सदनमें।

पल्लव रहा शुष्क तरुपर हिल,
मरुमें फूल चमकता झिलमिल,
ऊषाकी मुसकान नहीं, यह संध्या विहँस रही उपवनमें ;
जीवनके इस शून्य सदनमें।

उजड़े घर, निर्जन खँडहरमें,
कंचन थाल लिए निज करमें,
रूप-आरती सजा खड़ी किस सुन्दरके स्वागत-चिन्तनमें ;
जीवनके इस शून्य सदनमें।

सूखी-सी सरिताके तटपर,
देवि! खड़ी सूने पनघटपर,
अपने प्रियदर्शन अतीतकी कविता बाँच रही हो मनमें ;
जीवनके इस शून्य सदनमें।

नवयौवनकी चिता बनाकर
आशा-कलियोंको स्वाहाकर
भग्न-मनोरथकी समाधिपर तपस्विनी बैठी निर्जनमें ;
जीवनके इस शून्य सदनमें।
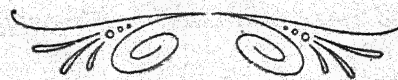
बपतिस्मा

श्री मंगलदेव शर्मा

"सिपहिया !"

"हाँ, सरकार !"

"शिकोहाबादसे मालगाड़ीकी खबर हुई है, लूपमें ले लो।"

"और सवारी-गाड़ी, सरकार ?"

"वह मेनपर आयगी। मालगाड़ीसे दो वैगन यहाँ कटेंगे। पैसिंजर ट्रेनके निकल जानेके बाद माल गुड्स-प्लेटफार्मपर चली जायगी।"

"बहुत अच्छा।"

मक्खनपुर रेलवे-स्टेशनके खलासी सिपहियाने डाउन-वार्ड सिगनलको डाउन कर दिया। बयालीस नम्बर गुड्स-ट्रेन भकभक करती हुई लूप प्लेटफार्मपर आकर चुपकेसे खड़ी हो गई।

"टन् टन् !"—स्टेशनकी घड़ीमें पाँच बजे। पन्द्रह मिनट बीते और अपसाइडकी घंटी बजी।

मक्खनपुरके असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर पं० रघुवीरनारायण दीक्षितने अपने सामनेके रजिस्टरको सरकाते हुए उठकर लाइन क्लीयरका जवाब दिया।

सिपहिया सामने आकर खड़ा हुआ।

"सवारी-गाड़ीकी खबर कर दो और टिकटकी खिड़की खोल दो।"

सिपहियाने घंटेका काम देनेवाले रेलकी पटरीके टुकड़ेको खनखना दिया। साथ ही मुसाफ़िरोंको चेतावनी दी—"टिकट ले लो, गाड़ी आ रही है।"

चौदह नम्बर डाउन पैसिंजर हिसहिसाती हुई खटसे मेन प्लेटफार्मपर आकर लग गई।

मि० दीक्षित स्टेशन-मास्टरकी ड्यूटी भी कर रहे थे। उन्होंने दिन-भरकी आमदनीसे भरी हुई चमड़ेकी थैलीको उठाया और गार्डके डिब्बेकी ओर लपकते हुए उनके पास बैठे गप्पें मारनेवाले मालगाड़ीके गार्डसे कहा—'आप ज़रा और आराम कीजिए मि० बॉन्ड, पैसिंजरको निकालकर मैं आपको भी टोकेन (रवन्ना) देता हूँ।"

ऐलिस बॉन्डने अपने हाथके सिगरेटको एक और फका, और मेज़परसे पैर समेटकर—"मैं भी ट्रेनकी सैर कर रहा हूँ", कहते हुए प्लेटफार्मपर आकर टहलने लगा।

मि० दीक्षित गार्डवानकी ओर तेज़ीसे जा रहे थे।

'हलो मि० दीक्षित !"

मि० दीक्षितका ध्यान एक सेकेंड क्लास डिब्बेकी ओर खिंचा, और एक हल्कीसी मुसकान उनके चेहरेपर खेल गई।

'मैं अभी-अभी आया, नोरा !"

बॉन्ड ज़रा दूरीपर अल्हड़-सा बना खड़ा था। मिस नोराको देखते चुस्तीके साथ उसके डिब्बेके सामने आ गया, और कुछ दूरीपर खड़ा होकर उसे घूरने लगा।

मि० दीक्षितने थैली गार्डको सौंपी, उससे हस्ताक्षर लिये, और फौरन वापस हुए।

"कहाँको जा रही हो नोरा ?"

"कानपुरको। कलकत्तेके बिशप शिमला जा रहे हैं। एक दिनके लिए वे कानपुर उतरेंगे, वहीं उनसे हम, कई मिशनोंकी सेवक-सेविकाएँ भेंट करेंगी।"

"उतरो न, तुम्हारी चची तुम्हें कई बार याद कर चुकी हैं।"

"धन्यवाद, लौटती बार देखा जायगा।"

"अच्छा, इस गाड़ीसे उतर पड़ो, आठ नम्बरसे चली जाना।"

"मैं अवश्य आपकी आज्ञाका पालन करती। चचीसे मिलनेको मेरा जी भी बहुत कर रहा है, लेकिन मुझे जल्द पहुँचना ही चाहिए; क्योंकि वहाँ तैयारियाँ भी तो करनी हैं।"

गार्डने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी।

"गुड बाइ।"

"गुड बाइ।"

"डिक्रशिट् बाबू !"—ऐलिस बॉन्डने अंगरेज़ीमें कहा—"आपकी और इस लड़कीकी क्या जान-पहचान ?"

"यही सवाल"—दीक्षितजीने उत्तर दिया—"मि० बॉन्ड, मैं आपसे दुहराता हूँ।"

बॉन्ड हँस पड़ा।

"नहीं बॉन्ड, मैं तुमसे मज़ाक नहीं कर रहा।"

"क्या आप सचमुच गम्भीरतापूर्वक बातें कर रहे हैं ?"

"तुम जानते हो मि० बॉन्ड, मैं यूरोपियन स्टाफ़से बहुत कम दोस्ती पलता हूँ।"

"ओह ! ठीक, लेकिन क्या आप मेरे सवालका जवाब देनेकी कृपा करेंगे ?"

"आपको आखिर इतनी फिक्र इस लड़कीके बारेमें क्यों ?"—दीक्षितजीने मुसकराहटके साथ पूछा—"आपको पता है, आपकी ट्रेन लेट हो रही है ?"

बॉन्डने पतलूनकी जेबसे सिगरेटकी डिब्बी निकाली, और 'कोई चिन्ता नहीं' कहकर, सिगरेट सुलगाकर, पीने लगा। उसकी उत्सुकता प्रबल हो रही थी।

दीक्षितजी और भी कड़े पड़े।

"सिपहिया !"

"हुज़ूर !"

"मालगाड़ीका टोकेन ले जाओ।"

सिपहिया इंजनकी ओर बढ़ा।

बॉन्डकी उत्सुकता और भी बढ़ी। वह अधीर होकर बोला—"बाबू, आपका कृतज्ञ होऊँगा, यदि आप मेरे प्रश्नका उत्तर देंगे।"

"मि० बॉन्ड, जैसे तुम्हें कोई दर्द हो रहा हो।"—दीक्षितजीने हँसकर कहा।

"सचमुच मुझे बड़ी पीड़ा है।"—बॉन्ड बोला।

"तो मैं इस लड़कीको इसके बचपनसे भलीभाँति जानता हूँ। तुम्हारी जानकारीके लिए यह भी बता दूँ कि इसने मेरे घरके बहुत टुकड़े खाये हैं।"

"अच्छा, मि० डिक्शिट,"—बॉन्डने खिलकर पूछा—"तुम्हारा इसपर प्रभाव भी होगा ?"

"क्यों नहीं।"

बॉन्डका जैसे बुखार उतर गया। अन्य दिनोंकी अपेक्षा आज अधिक तपाकसे उसने दीक्षितजीसे हाथ मिलाया, और अपने डिब्बेकी ओर लपक गया। जब उसका आखिरी डिब्बा दीक्षितजीके आफ़िसके सामने होकर गुज़रा, तो दरवाज़ेपर खड़े होकर दीक्षितजीकी ओर ऐसे प्रेमसे दूर तक रूमाल हिलाया, मानो वह उनका अनन्य मित्र हो और उनसे चिर-मिलनके बाद बिछुड़ रहा हो।

[२]

"चाची !"

"कौन ? रजिया ?"

"हाँ, चाची, रोटा मिलेगी ?"

"अरी तू अभीसे आ गई। बाबूजीने अभी भोजन नहीं किया है ; बैठ दरवाज़ेपर।"

बारह बजे दीक्षित बाबू अपनी ड्यूटी खतम करके अपने कार्टरको आये। रजिया टोकरी लिए दरवाज़ेपर बैठी थी।

"तुझे बड़ी सिदौसी भूख लगती है री ?"

बालिका रजियाने मुसकराते हुए लजाकर अपना सिर अपने घुटनोंमें छिपा लिया।

दीक्षितजी अन्दर पहुँचे। नहा-धोकर भोजनपर बैठे। पत्नी भोजन परोस रही थीं।

"आजके पूए तो बड़े स्वादिष्ट बने हैं।"

प्रशंसासे पुलकित होकर धर्मपत्नीने कहा—"वह तो खमीर अच्छा नहीं उठा था, वरना पुए तो बनते।"

"काफ़ी करारे हैं।"

"मेरे मनके-से तो नहीं बन पाये।"

"दो-चार रजियाको भी देना।"

"मैं तो देती नहीं। जूठन सूठन ले जायगी। ऐसी कौन मेरी पुरोहितानी लगती है।"

"तुम तो उसकी चाची हो।"

"मैं भंगिनकी लड़कीको ज्यादा मुँह नहीं लगती। तुम्हीं उसको प्यार करो।"

"अच्छा",—दीक्षितजीने कहा—"जो रजियाको न जानता हो, वह कह सकता है कि रजिया भंगिनकी लड़की है। रजिया हमारे कार्टरोंके किसी लड़के-लड़कीसे उतरती हुई है, तुम्हीं बताओ ?"

"सो तो वह रौंड़ हम लोगोंके बच्चोंसे भी अधिक गोरी-चिट्टी और लौन-छबि (रूप-लावण्य) में अच्छी है।"

"तो फिर ?"

"है तो भंगिन !"

"इसलिए वह तुम्हारे हाथके चार पुए भी नहीं खा सकती !"

"मज़ाक़ तो मुझे आता नहीं। आप भोजन कीजिए।

वह कमबख्त तो मुझे स्वयं भी प्यारी लगती है, इसलिए मैं उसे अपने आप ही खाने-पीनेकी चीज़ और कपड़े लत्ते दे निकलती हूँ ; तुम्हारे कहनेकी क्या ज़रूरत है !"

"मैं यहां तो आपसे निवेदन कर रहा हूँ, सरकार !"

दीक्षितजीकी धर्मपत्नी झेंपकर चुप हो रहीं।

एक दिन दीक्षितजी बरामदेमें लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। स्टेशन-मास्टर, ठाकुर बाबू भी पास ही कुरसीपर बैठे थे। रजिया ठाकुर बाबूके गोरुओंके थानको झाड़-बुहार रही थी। उष्णताके तापसे उसका उज्ज्वल मुखमंडल रक्तवर्ण हो रहा था। वह अपने अंचलसे अपने मुखके स्वेदकणोंको पोंछती जा रही थी। रजियाकी निरीह आकृति इस समय तप्त कांचनकी भाँति दीप्त हो रही थी।

"रजिया !"—ठाकुर बाबूने प्रेमपूर्वक पुकारा।

रजिया सहम गई।

"ठाकुर बाबू, रजिया आपको भी प्यारी लगती है ?" दीक्षितजी बोले।

"मेरी तो स्त्री भी उसे बहुत प्यार करती है। वह रजियाके शील-सौन्दर्यपर ऐसी मुग्ध है कि लोकाचरणको भूलकर कहा करती है कि रजिया तो किसी ऊँची जातिके घरमें जाने योग्य है।"

"तो ठकुरानी बड़ी भोली हैं।"—दीक्षितजीने हँसकर कहा—"समाजकी वर्तमान गति-विधिको देखते हुए तो ऐसी कल्पनाएँ अभी निरे शेखचिल्लीके स्वप्न हैं।"

"जी हाँ, और इसी गति-विधिके पर्देमें कठोरतम वास्तविकतासे भी परे घटनाएँ नित्य घटती रहती हैं सो !"—ठाकुर बाबूने ओजस्वितापूर्वक कहा—"उनके लिए समाजकी गति-विधि कौन-से पातालमें समा जाती है।"

"अजी, हमारा समाज तो अगाध सागर है, न-जाने इसके गर्भमें कितनी विषमताएँ—कितने रत्न और राक्षस, कितने विष और विभूतियाँ—भरी पड़ी हैं।"

"यह तो ऐसा हलाहल-निधि है, जिसकी एक-एक बूँद घातक है—मारक है !"

"होगी भी यार ठाकुर बाबू"—दीक्षितजीने अँगड़ाई तोड़कर, हुक्केसे चिलम उतारते हुए, कहा—"लो देखो, तम्बाकू क्या तावपर आ रही है ; तुम्हें भी इन व्यर्थकी बातोंका मैनिया-सा हो गया है—'क़ाज़ीजी क्यों दुबले, शहरके अन्देशे' !"

"मज़ाक़ नहीं दीक्षित बाबू,"—ठाकुर बाबूने हुक्केका कश खींचते हुए तावसे उत्तर दिया—"हम लोग महापतित हैं ; हमारा समाज तो समुद्रके तलातलमें डुबो देनेके क़ाबिल है। जबसे मैंने······"

दीक्षितजी बीचमें बाधा देकर मुसकराते हुए—"अजी ठाकुर साहब, ग़रीब समाजने ऐसी आपकी कौनसी गाय मार डाली है !"

"आप सुनिये तो पंडितजी, हर बातको आप दिल्लगीमें डाल देते हैं ; जिस दिनसे मैंने रजियाकी पैदाइशके रहस्यको सुना है, मेरे चित्तकी व्यथा और भी बढ़ गई है।"

"वह क्या ?"—दीक्षितजीने उत्सुकतासे पूछा—"रजियाकी बातोंमें तो हमें भी रुचि है।"

"तो सुनिये महाराज,"—ठाकुर बाबूने रोषपूर्ण नेत्रोंको फाड़कर, मुँह बनाते हुए, कहा—"यह भंगिनीकी लड़की रजिया रामनगरके ठाकुर दलजीतसिंहसे पैदा है। इसकी माँ ज़रा गोरी-पीली है ; उनके यहाँ तबेला झाड़ा करती थी।

"यही ठाकुर दलजीतसिंह,"—दीक्षितजीने हुक्केकी निगालीको एक ओर करते हुए विस्मयसे कहा—"यही अपने परिचित ?"

"जी, जनाब ! यही ठाकुर दलजीतसिंह, जिनकी हम लोग रोज़ स्टेशनपर इतनी आवभगत करते हैं और जिनके यहाँ अपने लोग बीसियों दावतें खाये बैठे हैं।"

"वे दो बेड़नियोंको तो ज़रूर रखे हुए हैं, लेकिन आपने इस रहस्यका खूब पता लगाया।"

"बिलकुल पक्की बात है ; आप दलजीतसिंह और रजियाकी आकृतियोंमें साम्य नहीं देखते ?"

दीक्षितजीने निस्तेजतापूर्वक कहा—"सवाल तो मेरे हृदयमें भी उठता था कि कहाँ काला-कलूटा सँवलिया और कहाँ राजकुमारियों-जैसी लावण्यमयी रजिया !"

[३]

बहुत दिन बाद दीक्षितजी और ठाकुर साहब ड्यूटीपर आफ़िसमें बैठे थे कि स्टेशनके भंगी सँवलियाने आकर सलाम किया। वह द्वारके बाहर दस क़दम दूर ही रुककर खड़ा हो गया।

"कैसे आये सँवलिया चौधरी,"—दीक्षितजीने पूछा—

"हम तुम्हारी तरक्कीकी अर्ज़ीको तो उस दिन बड़े साहबको दे आये ?"

"सो तो हजूर आपकी परवस्ती है, परि आजु तो हूँ और काम ते आयो हो।"—सँवलियाने दीनतासे उत्तर दिया।

"सो कहो।"

"सिरकार, बु पादड़ी फिरि कल्हि मेरे गाममें आयो हो......"

"का कहतो ?"

"जेई कहतो हजूर, कि रजियाकूँ लिवाइ जांगो, बाइ पढ़ांगो, लिखांगो, सऊरु सिखांगो, खबांगो, पहरांगो।"

"तेरे गाँवके सब भंगी ईसाई हो गये ?"—ठाकुर बाबूने पूछा।

"हाँ ठाकुर सा', सिब भंगी और चमारनुने बत्तीसमा (बपतिस्मा) ले लयौ।"

"और तू का बातको भंगिनुको चौधरी है रे, उल्लूकी पूँछ ?"—दीक्षितजीने झिड़ककर कहा।

"हजूर, मैंने वे व्हौतु समझए, परि बिन्नें एक नहीं मानीं। बा पादड़ीकी बातें हीं ऐसी मलूक हीं ; हूँ का करूँ सा'।"

"अबे चल गधा कहींका,"—ठाकुर बाबूने बिगड़कर कहा—"तूने हमें भी खबर न दी। (दीक्षितजीकी ओर देखकर) अजी, इसने उस पादरीसे रिश्वत खाई होगी।"

सँवलिया सिटपिटा गया। गिड़गिड़ाकर बोला—"नहीं सिरकार, मोइ को रिसबति देतु है ; मैंने बिरादरी बारे व्हौतु समझाए।"

"अबे, यही तो रिशवत है कि पादरी तेरी लड़कीको लिए जा रहा है।"—ठाकुर बाबू गुस्सेसे बोले—'तू भी साले ईसाई हो गया है, हमें मालूम पड़ गया।"

"हजूर",—सँवलिया हाथ जोड़कर बोला—"हूँ गंगाजीकी किसम खातूँ, जो मैंने बत्तीसमा लयो होइ। जि देखि लेउ मेरी चुटिया।"

"तो रजिया कूँ दिब्बाइ दयो होइगो ?"—दीक्षितजीने पूछा।

"सिरकार, बु तौ अबै मुद्दति तें गाम कूँ नांइ गई। यँई इटेसनि पै तुम्हारे कौरा खाइबे कत्ति ऐ।"

"तो तेरी मन्शा क्या है ?"—ठाकुर बाबूने डाटकर सँवलियासे सवाल किया—'तू रजियाको पादरीके साथ भेजना चाहता है ?"

"ठाकुर सा', हूँ तो...परि घर बारेनु की राइ है कि मलूक बात ऐ छौरिया पढ़ि लिखि जाइगी।"

"तो फिर हम लोगोंसे क्यों पूछने आया है ? जा, अपना काम कर।"—ठाकुर बाबूने लताड़ दी।

सँवलिया दाँत निकालकर बोला—"हजूर, मैंने तो बत्तीसमा लयौ नांइ ; हूँ तो जाई इटेसनि पै परो रहूँगो, तुम्हारे टूँक खातु रहूँगो।"

बाबू लोग चुप रहे। सँवलियाने सलाम किया, और अपने क्वार्टरमें जा बैठा।

[४]

टन् ! टन् !

"पंजाब-मेलकी खबरि हैका, बड़े बाबू ?"

"हाँ।"

"थ्रू जाइगो का ?"

"नहीं, क्रास है।"

"आज हमारे याँ क्रासु होइगो ?"

"हाँ, हाँ, जल्दी डाउन करो।"

"लूप, बड़े बाबू ?"

"नहीं, पंजाब मेल मेनपर आयगा।"

"और आठ लम्बर, बड़े बाबू ?"

"वह लूपपर जायगी मुसाफ़िरोंको कह दो।"

हवासे बातें करता हुआ पंजाब-मेल जसवन्तनगर स्टेशनके मेन प्लेटफ़ार्म पर आकर ऐसे खड़ा हो गया, जैसे किसी शराबीके, नशेके उतारमें, पैर लड़खड़ा उठे हों।

लूप प्लैटफ़ार्मपर यात्रीगण अपनी गाड़ीकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई प्लैटफार्मके किनारे खड़ा होकर, पश्चिमकी ओर गृद्ध दृष्टि फेंकता हुआ, गाड़ीकी खोज ले रहा था, तो कोई साइडिंगमें खड़ी मालगाड़ीकी हलचलसे चौंककर अपनी गाड़ीके आ जानेका भान कर रहा था। अधिकांश देहाती मेलकी रैस्टुराँ कारके सामने खड़े, उसमें बैठे भोजन करते हुए यूरोपियनों और भारतीयोंका 'तमाशा' देख रहे थे। प्लेटफार्मपर कहीं कोई ग्रामीण
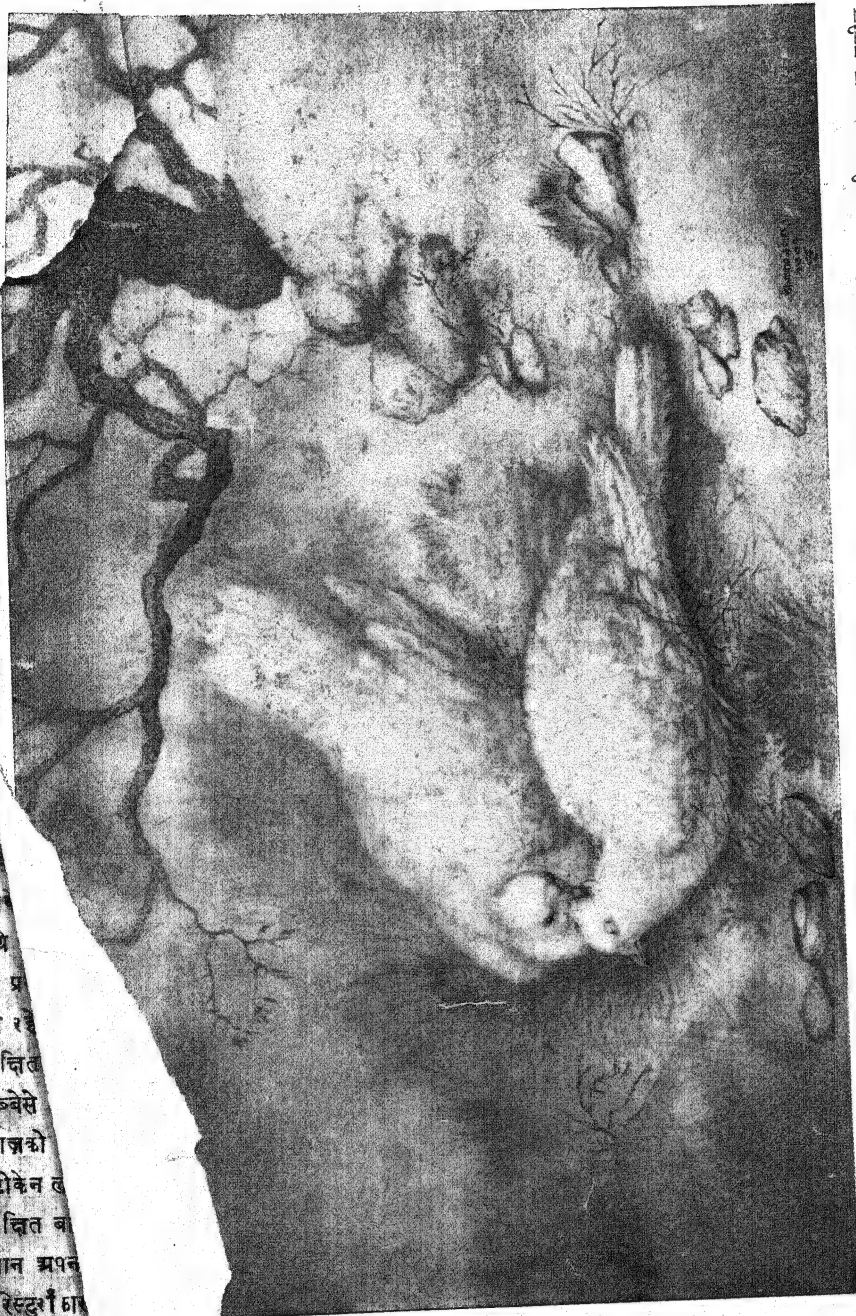
[चित्रकार—श्री सारदाचरण उकील

पट्ट पाँखैं भख काँकरैं, सुघर परेई संग ;
सुखी परेवा जगतमें, एकै तुही बिहंग।—बिहारी

'विशाल-भारत']

लत्ता जलाकर चिलमके लिए आग जला रहा था, तो बहुतसे बीड़ीके धुएँसे अपने दिमागको गर्म कर रहे थे। कुछ खोन्चेवालोंसे खाने-पीनेका सौदा-सुलुफ खरीद रहे थे।

ठीक समयपर आठ नम्बर ऐक्सप्रेस स्टेशनपर पहुँचा। स्टेशन-मास्टर मि० दीक्षित पैरमें जयपुरकी कारीगरीका मखमली जूता, तहबन्द और हाफ़-शर्ट पहने, नंगे सिर गार्डकी ओर चले। गाड़ीके वक्त या खाली स्टेशनपर उन्होंने अपनी वर्दीकी कभी परवा न की। वे बड़े दबंग आदमी थे। लम्बे-तड़ंगे जवान, गठीला गोरा बदन, चौड़ी छाती, उन्नत ललाट, ओजस्वी मुखमुद्रा जो देखता, उनके रोबमें आ जाता। फिर अपने काममें एक। उनके अंगरेज़ी भाषणसे यूरोपियन स्टाफ़के कर्मचारी तक घबराते थे। लेखमें उनके तर्क और युक्तिसे बड़े-बड़े अफ़सर चक्कर खाते थे। दूर-दूरके स्टेशन-मास्टर और असिस्टेंट उनसे, अपने मामलोंमें, सलाह लेने और मसविदा बनवाने आया करते थे। सज्जन ऐसे थे कि स्टेशन-स्टाफ़ और आसपासके बस्ती-देहातवाले उनसे बौसाते थे। इस सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पोशाकमें भी अफ़सर लोग उनका समुचित आदर करते थे।

मि० दीक्षितने गार्डसे बातें कीं और वापस हुए। पंजाबमेलके टोकेनकी उन्हें फ़िक्र थी। उन्होंने खलासीको हुक्म दिया और मेन प्लैटफार्मपर जानेके लिए आठ नम्बरके एक डिब्बेसे होकर वे लाइनमें उस ओर जा उतरे और पंजाब-मेलके एक चौपहियेसे निकलकर झटसे प्लेटफार्मपर पहुँच गये। वे रेस्टुरौकारके सामने खड़े टोकेनवाले खलासीकी प्रतीक्षा करते हुए अपने अफ़सरकी ओर संकेतात्मक हाथ हिला रहे थे।

"दीक्षित बाबू!"—किसीने उन्हें आवाज़ दी। आवाज़ पासके डिब्बेसे ही आई थी।

आवाज़को अनसुनीकर उन्होंने खलासीको पुकारा। खलासी टोकेन लाकर उनके पास आ खड़ा हुआ।

"दीक्षित बाबू!"—फिर किसी स्त्रीकी आवाज़ने हठात् उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

वे रेस्टुरौंकारकी एक खिड़कीकी ओर बढ़े। एक यूरोपियन जैसी रूपवती गोरी युवती, अप-टु-डेट यूरोपियन फ़ैशनमें, मुसकाती-इठलाती उनसे हाथ मिलानेके लिए बाहर निकली। उसने तपाकके साथ दीक्षितजीसे हाथ मिलाते हुए फ़र्राटेदार अंगरेज़ीमें पूछा—"आपने मुझे पहचाना, पंडितजी?"

"मुझे खेद है, लेडी, आपकी बाबत मुझे स्मरण नहीं आता।"—दीक्षितजीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"आप ऐसे भूल गये?"—महिलाने हँसकर कहा।

'मनुष्य भूलोंका पुतला है।" दोनों हँस पड़े।

"आपको रजियाका स्मरण है?"

"रजिया, मक्खनपुर स्टेशनवाली? जी हाँ, खूब! क्या हुआ उसका? वह अच्छी तरहसे तो है? आप उससे परिचित हैं?"

"जी हाँ, मैं उससे पूर्णतया परिचित हूँ।"

"वह क्या करती है? कहाँ है?"

"वह आपके सामने खड़ी है, आपसे बातें कर रही है।"—महिलाने अदाके साथ मुसकराकर जवाब दिया।

दीक्षितजी अवाक् थे। उन्होंने सिरसे पैर तक एक बार उसे देखा, फिर उस युवतीके मुखमंडलपर दृष्टि लड़ाई, जैसे उसे पहचाननेका प्रयत्न कर रहे हों।

"अब भी आपको सन्देह है?"—युवतीने खिलकर कहा।

"हाँ, मैंने अब तुम्हें पहचाना।"—दीक्षितजी प्रसन्नतासे उछल पड़े—"ओह! मेरी प्यारी रजिया, तुममें इतना बड़ा परिवर्तन? मैं तो तुम्हें कोई ऐंग्लो-इंडियन महिला समझ रहा था।"

युवती कहकहा मारकर हँस पड़ी।

गार्डने सीटी दी, और उसका जवाब पंजाब-मेलके इंजनने दिया। युवतीने दीक्षितजीसे मिलनेको अपना हाथ बढ़ाया, तो उन्होंने ज़ोरसे उसका हाथ पकड़कर कहा—"आज तो न जाने दूँगा, रजिया! मेरे सौभाग्यसे तुम इतने दिनों बाद आज अनायास मिली हो।"

"मैं तो खुद आप लोगोंसे मिलना चाहती थी। दिल्लीसे लौटकर अवश्य उतरूँगी। वहाँ हम लोगोंकी 'गर्ल गाइड्स रैली' है। चाची तो अच्छी तरहसे हैं? और रमेश? सावित्री?"

पंजाब-मेलने प्लैटफ़ार्म छोड़ा। दीक्षितजी 'सब कुशल है, लौटते वक्त ज़रूर उतरना'—कहते हुए अपना हाथ हिला रहे थे। उधर उनकी रजिया मुसकराती हुई अपना रेशमी रूमाल तेज़ हवामें फरफरा रही थी।

[५]

आज रजिया दिल्लीसे वापस आयगी। कल उसका तार आ चुका है। मि० दीक्षितने रजियाको ठहरनेका प्रबन्ध क़स्बेके रईस लाला जगदीशप्रसादकी बागवाली कोठीमें किया है। उसके आतिथ्य-सत्कारके लिए वे इटावेसे खाने-पीने और चाय-पानीका सामान खरीद लाये हैं। टूंडलेसे केलनरका एक खानसामा बुलाया है। तमाम क़स्बेमें शोर हो गया है—बड़े बाबूके यहाँ दिल्लीसे मेम सा'ब आ रही हैं।

शामकी गाड़ीसे रजिया आई। स्टेशनपर दीक्षितजी और उनके स्टाफ़ने उसका स्वागत किया। मोटर द्वारा वह कोठी पहुँचा दी गई।

प्रात:काल 'छोटी हाज़िरी'के बाद 'रजिया', दीक्षितजी और उनकी धर्मपत्नी कोठीमें बातें कर रहे थे। रमेश और सावित्री रजियाके दाएँ-बाएँ बैठे थे। दीक्षितजीके छोटे बच्चे रजियाके लाये हुए खिलौनोंसे बाहर सब्ज़ेमें खेल रहे थे। गोदके बालकको रजिया अपनी गोदमें लिए खिला रही थी।

"तो मैं तुम्हें अब किस नामसे सम्बोधित करूँ?"—दीक्षितजीने रजियासे हँसकर पूछा।

"उसी सदैवके नामसे, जिससे आप मुझे बचपनमें प्यारसे बुलाया करते थे।"—रजिया बोली।

"मेरे लिए तो तुम्हारा वही नाम अधिक प्रिय है, लेकिन अब तुम मिस साहिबा हो, मेम साहिबा हो।"

"नहीं पंडितजी,"—रजियाने तनकर कहा—"मैं अब भी आपकी वही रजिया हूँ।"

"मुझे तो तुम्हें रजिया कहनेमें अब डर लगता है।"—दीक्षितजीकी धर्मपत्नीने मुसकराकर कहा।

"नहीं चाची, आपको अपनी रजियासे किसी प्रकार भी डरनेकी आवश्यकता नहीं।"—रजियाने खिलखिलाकर उत्तर दिया।

"रमेश भाई, तुम कैसे सहमे हुए बैठे हो?"—रजियाने उसकी पीठपर हाथ फेरा।

"मक्खनपुरवाली रजिया तो न-जाने कहाँ होगी, तुम तो टूंडलेके साहब लोगोंकी कोई हो।"—रमेशने सिर नीचा करके कहा।

सब लोग क़हक़हा मारकर हँस पड़े।

"सावित्री, तू इन्हें पहचानती है?"—दीक्षितजीने पूछा।

"रजियाको तो पादरी लिवा ले गया था, वह जाने कहाँकी कहाँ गई।"—सावित्रीने स्वाभाविक सरलतासे कहा—"यह तो बड़े साहबकी बहन हैं, बाबूजी!"

फिर ज़ोरका ठहाका लगा।

"अच्छा तो रजिया, तुम इसे बता दो कि तुम वही रजिया हो।"—दीक्षितजीने बनावटी गम्भीरतासे कहा।

"झूठी बात, मैं तो कभी न मानूँ।"—सावित्री मुसकराई।

रजिया कुरसीपर उछल पड़ी। देर तक सब लोग हँसते रहे।

वातावरण शान्त होनेपर दीक्षितजीने सौम्यतापूर्वक रजियासे प्रश्न किया—"मक्खनपुरसे तुम कहाँ चली गई थी?"

"पादरी बुद्धासिंह लिवा ले गये थे।"

"यह तो मालूम है—आगे क्या हुआ?"

"वे मुझे मथुरा-मिशनमें ले गये थे।"

"गाँवका कोई और बालक भी गया था? चमारोंने भी कोई लड़की-लड़का भेजा था?"

"ईसाई तो भंगी-चमार सभी हो गये थे, लेकिन लड़का-लड़की और किसीने नहीं भेजा। पादरी साहबने गुक्खा चमार और गोधना भंगीसे भी कहा था, लेकिन वे इसके लिए राज़ी न हुए। पादरी साहब कक्कूके पीछे बहुत पड़ रहे थे, उन्होंने मुझे उनके साथ भेज दिया।"

"मथुरामें तुम पढ़ती रहीं?"

"मथुरामें मैं पाँच साल रही। आठवें दर्जे तक अंगरेज़ीकी तालीम मैंने वहीं खत्म की। मैं पढ़नेमें तेज़ थी। मथुरा-मिशनके इनचार्ज रेवरेण्ड फादर स्टब्सने मेरी सिफ़ारिश लाहौरके बिशपको कर दी। मैं वहाँ जाकर सेन्टपाल-चर्चके कोचिंग क्लासमें भर्ती हो गई। दो सालमें मैंने सीनियर केम्ब्रिज आनरके साथ पास किया। परीक्षा पास करनेके बाद चर्चके फादर हेमिल्टनने मुझसे पूछा कि मैं किस पेशेमें जाना पसन्द करूँगी—डाक्टरी, अध्यापकी, नर्सिंग, आफ़िसका काम, या चर्चकी सेवा? उन्होंने मुझसे यह भी पूछा कि मैं विवाह करना पसन्द करूँगी? मैंने विवाहके लिए तो उस वक्त इनकार कर दिया। मेरी इच्छा थी कि मैं आपकी द्वारा मिशनकी सेवा करूँ। हमारा मिशन अमेरिकन है, अतएव फादरने मेरी रुचि देखकर और मेरी प्रतिभासे प्रसन्न होकर

मुझे अमेरिका भेज दिया। फिलडेलफियाके मिशनरी ट्रेनिंग कालेजसे मैंने अध्यापकीमें डिप्लोमा परीक्षा पास की। साल-भर बाद मैं वहाँसे लौट आई। आते ही मिशनने मेरी नियुक्ति कर दी। मैं लखनऊके मिशन गर्ल्स हाईस्कूलकी प्रिन्सिपल बना दी गई। तबसे मैं इसी पदपर काम कर रही हूँ। स्काउटिंगमें मेरी आरम्भसे ही रुचि रही है। अमेरिकामें भी मैंने इसमें दिलचस्पी ली। मेरे स्कूलमें इसका बड़ा ज़ोर है। मैं प्रान्तीय गर्ल गाइड्स ऐसोसिशनकी अध्यक्षा हूँ। इसी हैसियतसे मुझे यूरोपियन और ऐंग्लो-इंडियन लड़कियोंकी रैलीमें दिल्ली जाना पड़ा था।"

"तुमने उर्दू-हिन्दी भी पढ़ी ?"—दीक्षितजीने पूछा।

"अवश्य, उसका पढ़ना तो हम लोगोंके यहाँ ज़रूरी है।"

"खेल कौन-कौनसे खेलती हो ? नाचती भी हो ?"

"व्यायामकी ओर मिशनवाले बहुत ध्यान देते हैं। टेनिस तो मामूली बात है। साइक्लिंग भी लगभग सभी लड़की-लड़के सीखते हैं। मैंने तैरना भी सीखा है। यहाँ तो टेनिस ही खेलती हूँ। अमेरिकामें क्रिकेट, हाकी, वाली-बाल खेलती थी। स्केटिंग और बोटिंग भी करती थी। नाचना भी मैंने लाहौर और अमेरिकामें सीखा।

दीक्षितजीकी धर्मपत्नी इस समय अवाक् हुई रजियाका मुँह ताक रही थी। दीक्षितजीने नीरवता भंग करनेके लिए उन्हें टोका—"देखा, तुमने अपनी रजियाका ठाट ? बोलो, अब तक क्या समझीं ? अब ज़रा इससे इसका नाम तो पूछ लो ?"

"हाँ, रजिया, तुम्हारा सब चोला तो बदल गया, अब नाम अपना तुमने क्या रखा है, सो तो बताओ।"

"कुछ नहीं चाची, मैं अब भी आपकी वही रजिया हूँ।"

"तुम्हारा क्रिश्चियन नाम जाननेकी उत्सुकता तो मुझे भी है।"—दीक्षितजी बोले।

"पादरी बुद्धासिंहने तो मुझे रजिया नामसे ही रजिस्टरमें लिखा था, लेकिन पीछे फादर स्टब्सने कक्कूका नाम पूछकर मेरा नाम नोरा सेम्युअल रख दिया है।"

"ख़ूब, मिस नोरा, शाबाश !"—दीक्षितजीने सान्त्वना और सन्तोषकी साँस ली।

"अच्छा नोरा, तुम एक बात और बताओ ? तुम्हारा विचार विवाह करनेका है ?"

नोरा किंचित् शरमाकर—"हाँ, सोचती तो हूँ।"

"किसी देशी ईसाईके साथ ?"

"अगर वह किसी विदेशी यूनिवर्सिटीका ग्रेजुएट और प्रतिष्ठित परिस्थितिमें हो।"

"नहीं तो फिर ?"

"किसी पदस्थ यूरोपियनके साथ।"

"ऐंग्लो-इंडियनके साथक्यों नहीं ?"

"यूरोपियनोंके मुक़ाबलेमें यह लोग स्वभावके क्रूर होते हैं।"

"यूरोपियन तुम्हारे साथ शादी करना पसन्द करेगा ?"

"ऐंग्लो-इंडियनोंके साथ तो यह लोग खुशीसे शादी करते हैं !"

"और देशी ईसाइयोंके साथ ?"

"कोई-कोई—परिस्थितिसे विवश होकर।"

"लेकिन तुम तो देशी ईसाई न हो ?"

"जी नहीं,"—नोराने एक मदभरी भावभंगीसे कहा—"मेरी गणना तो ऐंग्लो-इंडियनोंमें है। आप स्वयं देख सकते हैं।"

"सचमुच नोरा",—दीक्षितजी भकचकाकर बोले—"रूप-रंगमें तो तुम किसी भी ऐंग्लो-इंडियन महिलाको मात दे सकती हो। विद्या और स्नेह-सौजन्य तुम्हारे पास है ही। ऐंग्लो-इंडियनोंमें तो बड़े-बड़े उलटे तवे-जैसे मुश्की खच्चर भरे हुए हैं।"—दीक्षितजीके बच्चे और उनकी पत्नी गूँगेकी भाँति नोराका मुँह ताक रहे थे।

घर लौटते समय दीक्षितजीने अपनी पत्नीसे कहा—"सुनती हो, कल रजियाको अपने घरपर भोजन करानेका विचार है ?"

कोई उत्तर न मिला।

"चुप क्यों रह गईं ?"

"खिला देना।"

"अनमनी बात न कहो ; साफ़ बताओ।"

"अच्छी बात है,"—धर्मपत्नीजी कुछ सोचकर बोलीं—"बरामदेमें पत्तलपर अलगसे परोसकर जिमा देंगे।"

"बुरा मानेगी।"

"मेज़-कुरसी लगवा देना, रहीमा जमादार परस देगा।"

"नहीं जी, मेज़-कुरसी तो लगानी ही होगी, मेज़को सजाना भी पड़ेगा, और क्या हर्ज है, हमीं परस देंगे।"

"ठीक-ठीक, मैं समझती हूँ, इसमें हमारा क्या बिगड़ेगा ;

एक मेमको हमारे घरमें भोजन करनेसे हमारा गौरव लोगोंकी दृष्टिमें बढ़ेगा ही। और कलको उसने किसी बड़े हाकिमसे ब्याह कर लिया, तो हमारे लिए और भी अच्छा है।"

दीक्षितजी मन-ही-मन मुसकराकर रह गये।

[६]

घनन्-घनन्—स्टेशन-टेलीफ़ोनकी घंटी बजी।

"हू यू, प्लीज़ ?—कन्ट्रोल आफ़िस ?"

"नहीं, बॉन्ड।"

"कौन बॉन्ड ?"

"और आप कौन हैं, जनाब ?"

"स्टेशन मास्टर जसवन्तनगर।"

"मि० डिकृशिट ?"

"हाँ, साहब।"

"मैं ऐलिस बॉन्ड, गार्ड, ई० आई० आर०।"

"हाँ, मुझे याद आया, क्षमा कीजिए, कहिये ?"

"कल आठ नम्बरसे मैं आपसे मुलाक़ात करने आ रहा हूँ।"

"आपका स्वागत है, आइये।"

दीक्षितजी अपने क्वार्टरके सामनेवाले बग़ीचेमें गोल चक्करपर पड़ी हुई एक आराम-कुरसीपर लेटे हुए 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पढ़ रहे थे कि नौकरने लाकर एक कार्ड उनके हाथमें दिया। यह कार्ड बॉन्डका था।

बॉन्डने आते ही टोपी उतारकर दीक्षितजीको सलाम किया और गहककर हाथ मिलाया। उसके नौकरने खिलौने, मिठाई और फलोंके दो टोकरे दीक्षितजीकी कुरसीकी बग़लसे रख दिये।

"यह क्यों मि० बॉन्ड ?"—दीक्षितजीने टोकरोंकी ओर संकेत किया।"

"बच्चोंका उपहार—हमारा क्रिसमिस आ रहा है जो।" बॉन्डने नम्रतासे कहा।

"ठीक। धन्यवाद। मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?"

"धन्यवाद, मैं तो आपको बड़ेदिनके उत्सवका निमन्त्रण देने आया हूँ।"—बॉन्डने कार्यक्रमसहित निमन्त्रणपत्र दीक्षितजीके हाथमें देते हुए कहा—"फ़ैन्सी ड्रेस बाल और ड्रामाके दिनों आप अवश्य पधारें।"

"धन्यवाद, आप लोगोंके बॉलडान्स तो मैं कई बार देख चुका हूँ; उनमें मेरी अधिक रुचि नहीं। यदि समय मिला, तो ड्रामा देखने आऊँगा।"

"फ़ैन्सी ड्रेस बालके दिन भी कृपया आइये; वह तो देखनेका एक विशेष प्रमोद है; मैंने नोराको भी निमन्त्रण भिजवाया है। वह आयगी।"

"कौन नोरा ?"—दीक्षितजीने आश्चर्यसे पूछा।

"वही, आपकी,"—बॉन्डने मुसकराकर उत्तर दिया—"जो पिछले दिनों आपके यहाँ आई थी।

"आप उससे परिचित हैं, मि० बॉन्ड ?"

"भलीभाँति मैं उसे जानता हूँ।"

"वह आपसे भी भलीभाँति परिचित होगी ?"

"मेरे हृदयमें, मि० डिकृशिट, उसके प्रति अत्यन्त प्रेम और आदरका भाव है, लेकिन"—बॉन्डने गरदन नीचीकर सिर खुजलाते हुए कहा—"वह मेरे प्रति उदासीनता-सी दिखाया करती है।"

"आप उससे प्रेम करते हैं ?"—दीक्षितजीने कृत्रिम सौम्यभावसे पूछा।

"मैं उसे हृदयसे प्यार करता हूँ, लेकिन······"—बॉन्ड विह्वल हो उठा।

"लेकिन क्या ?"—दीक्षितजीने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें पूछा।

"लेकिन···लेकिन"—बॉन्डने सिगरेटको फेंककर उन्मादके साथ कहा—"वह मेरी ओर नहीं देखती, नहीं देखती!"

"आपने उसके हृदयके भावको परखा, वह क्या चाहती है ?"

"वह मुझसे घृणा करती है।"—दोनों हाथोंको कुरसीके बाजुओंपर पटककर—"वह मेरे साथ विवाहके प्रस्तावको तिरस्कारपूर्वक ठुकरा देती है। वह किसी यूरोपियन पतिकी फ़िराक़में है।"

"आप भी तो यूरोपियन हैं ?"

"जी नहीं, मैं ऐंग्लो-इंडियन हूँ।"

"तो आप नोराके पीछे क्यों पड़े हैं ? आपको तो यूरोपियन लड़कियाँ भी मिल सकती हैं।"

"मिल ज़रूर सकती हैं लेकिन उनके उच्छृंखल स्वभाव और निरंकुश आचरणोंसे मुझे घृणा है।"

दीक्षितजीने विस्मयकी हँसी हँसकर पूछा—"और नोरा?"

"वह ऐंग्लो-इंडियन समाजका एक रत्न है।"—बॉन्डने आँखोंमें प्रसन्नताका भाव झलकाकर उत्तर दिया।

"तो आपकी इच्छा नोराका पाणिग्रहण करनेकी है?"

"यह मेरे जीवनकी अन्यतम महत्वाकांक्षा है। मि० डिकूशिट, क्या आप मेरी कुछ सहायता करेंगे? मुझे मालूम हुआ है, उस लड़कीपर आपका बहुत प्रभाव है? नोराके बापसे आपकी बड़ी मित्रता थी?"

"बेशक"—दीक्षितजीने कहकहा मारकर कहा—"उसके बापकी और मेरी बड़ी गाढ़ी मित्रता थी। मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, आपकी सहायता करूँगा, लेकिन कृपया अपना वंश-परिचय तो दीजिए, ताकि मैं नोराको समझा सकूँ।

बॉन्ड कलीकी भाँति खिल गया। अपनी रामकहानी सुनाने लगा—

"मेरे पिता, एडविन बॉन्ड, लन्दनकी गिलेन्डर्स आरबुथनट कम्पनीकी कलकत्ता-शाखाके मैनेजर थे। १२००) माहवार उन्हें वेतन मिलता था। कलकत्तेके व्यापारी-समाजमें उनका बड़ा मान था। हम पाँच भाई थे और तीन बहनें। भाइयोंमें मैं सबसे छोटा हूँ। हमारा बड़ा भाई मिडिलटेम्पिलका बेरिस्टर था। इंग्लैंडसे उसने शादी की, और केलिफ़ोर्निया जाकर प्रेक्टिस करने लगा। वह वहीं बस गया था। पीछे उसकी मृत्यु हो गई। उससे छोटा भाई फ्रांटियर कमांडमें मेजर हैं। तीसरा आई०एम०एस० चिंगलपटमें सिविलसर्जन है। चौथा एन०डब्ल्यू० रेलवेमें फ़र्स्टग्रेड स्टेशन-मास्टर है। मैं दुर्भाग्यसे कुछ पढ़-लिख नहीं सका।

"तीनों बहनोंमें दो मुझसे बड़ी हैं। बड़ी एक अमेरिकन व्यापारीके साथ विवाह करके मिसर चली गई, और आजकल क़ाहिरामें है। उसका पति वहाँ रुईका प्रमुख व्यापारी है। छोटी पूनामें फ़ोर्थ गोरखा-पलटनके केप्टेन बुलकी पत्नी है। तीसरी अभी कुँवारी है, उसने शादी नहीं की। वह हाइटवे लेडलाकी रंगून-शाखामें नौकर है।"

"आपके पितामह क्या थे?"

"इसे पूछकर क्या कीजिएगा? यह एक नीरस कहानी है।"

"नोरा मुझसे यह सभी बातें पूछ सकती है; वह बड़ी विलक्षण बुद्धिकी लड़की है।"

"मुझे यह सब बतानेमें भी आपत्ति नहीं। हम लोग वास्तवमें बंगाली ब्राह्मण हैं। मेरे पितामह अनाथनाथ वन्द्योपाध्याय राजशाही ज़िलेके स्वर्णपुर गाँवके रहनेवाले बड़े भारी ज़मींदार थे। पचास हज़ार रुपये सालानासे अधिक उनकी आमदनी थी। वे बड़े कुशल व्यवसायी भी थे। जूटकी उनकी दो मिलें कलकत्तेमें थीं। कलकत्तेमें शुरू-शुरूमें जिन विदेशियोंने आकर व्यवसाय-कम्पनियाँ स्थापित कीं, उन सबसे उनका परिचय था। प्रायः सभी कम्पनियोंमें उनके शेयर भी थे। उन्हें एक सौदेके झगड़ेके सम्बन्धमें इंग्लैंड जाना पड़ा। वहाँसे एक व्यापार-कुशल अंगरेज़ सपरिवार उनके साथ चला आया। पितामहने उसे अपना सहकारी मुक़र्रर कर लिया, और गाँवमें ही उसके रहनेके लिए एक बंगला बनवा दिया। इस अंगरेज़की युवती ज्येष्ठ कन्यासे इनका प्रेम हो गया, जो होते-होते परिणयमें परिणत हुआ। उसके सहवाससे पितामह पूरे यूरोपियन बन गये। नाम बदलकर ए० बॉन्ड रख लिया। यही लड़की हमारी दादी थी। शौक़ीन और खर्चीले पितामहको लेकर कई बार इंग्लैंड गई। इससे पितामहको तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। इन तीनमें से एक मेरे पिता थे। मेरे पिताका बड़ा भाई इंग्लैंडमें ही पैदा हुआ था। वह बड़ा होकर वहीं चला गया। ज़मींदारीपर बहुत क़र्ज़ हो गया; मिलें वग़ैरह सब बिक गईं। पितामहकी मृत्यु हो गई। दादी चाचा और बुआको लेकर इंग्लैंड चली गई। मेरे पिता कलकत्तेमें ही रहकर पढ़े और बढ़े। पितामहकी हिन्दू पत्नीसे पहले ही सन्तानें थीं, उनके वंशज अब भी हैं।

[७]

दो वर्ष बाद। दीक्षितजी एक दिन पंजाब-मेलको निकालकर जैसे ही अपने आफ़िससे उठने लगे कि तारकी डेमी खटकी। असिस्टेंटने संवादको ग्रहण करना आरम्भ किया। खड़े होते-होते दीक्षितजी बोले—"क्या है निगम बाबू?

"कोई आपका मेसेज (संवाद) मालूम पड़ता है, बड़े बाबू।"

दीक्षितजी दो मिनट खड़े रहे।

निगमने मैसेज पूरा करके दीक्षितजीके सामने रखा—"पचीस जनवरीको हैदराबाद-छावनीमें मेरी शादी कैप्टेन वाल्टनके साथ होगी। अवश्य आइये। —नोरा।"

दीक्षितजी स्तम्भित रह गये।

उन्होंने छुट्टीके लिए दरखास्त की, लेकिन मंजूर न हुई।

२७ जनवरीको नगरके रईस, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, लाला जगदीशप्रसादने अपने 'पायनियर'की कापीको दीक्षितजीके पास भेजा। 'पायनियर'के एक समाचारपर लाल पेन्सिलका निशान था। दीक्षितजीका ध्यान उसीकी ओर पहले गया। जैसे-जैसे पढ़ते जाते थे, उनका चेहरा हर्षपूर्ण आश्चर्यसे खिलता जाता था। 'पायनियर'में छपा था—"२५ जनवरीके तीसरे पहर लखनऊके मिशन गर्ल्स हाई स्कूलकी प्रिन्सिपल मिस नोरा सेम्युएलका विवाह हैदराबाद-ब्रिग्रेडकी हैम्पशनशाइर-रेजिमेन्ट नं० ७ के कैप्टेन वाल्टनके साथ स्थानीय ईपिस्कोपल चर्चमें सम्पन्न हुआ। संस्कार रेवरेण्ड फ़ादर डेवीज़ने कराया। वधूको समर्पित करनेकी क्रिया लाहोरके सेन्टपाल-चर्चके फ़ादर हेमिल्टनने सम्पन्न की। हैदराबाद-रेजिमेंटके ब्रिग्रेडियर जनरल केनेडीकी कन्याओंने—मिस डोरोथी और मिस विक्टोरियाने—नोराकी सहेलियोंकी रस्म पूरी की। विवाहके समय वधू हलके गुलाबी रंगकी ज़मीनपर ऊनी और फ़िरोज़ी रंगके सुहावने बेलबूटोंकी छींटदार कीमती साटनका गाउन पहने थी। उसके तराशे हुए घुँघराले सुनहले बालोंमें रत्नजटित क्लिप लगे हुए थे। गलेमें मोतियोंका हार था। वर अपनी सादी खाकी पोशाकमें था। दर्शकोंमें ब्रिगेडके सभी देशी और यूरोपियन अफ़सरान, रेज़िडेन्टके परसनल असिस्टेंट, निज़ामके प्रधान मन्त्रीके प्राइवेट सेक्रेटरी और छावनीके प्रतिष्ठित यूरोपियन नागरिक स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। दर्शकोंमें से अनेकोंने वधूको पुष्प-गुच्छ समर्पित किये।

गिरजाघरसे दम्पतिने फ़ौजी शानके साथ प्रस्थान किया। प्रार्थना-भवनके विशाल हालके बाहरी प्रवेश-द्वारसे अन्तिम फ़ाटक तक हैम्पशनशाइरके सिपाहियोंने गार्ड आफ आनर बना रखा था—दम्पतिने नंगी तलवारोंके सायेमें प्रस्थान किया। जिस समय वर-वधू मोटरसे रवाना होने लगे, तो रेजिमेंटके बैन्डने परिणय-गमनकी आनन्ददायिनी सुरीली तान छेड़ी।

जोड़ा कल शामकी गाड़ीसे प्रणय-कल्लोलके लिए आगरेको रवाना हो जायगा।"

दीक्षितजीने जब यह संवाद अपने घर जाकर सुनाया, तो श्रीमती दीक्षित मुँहमें अँगुली डालकर हक्की-बक्की-सी रह गईं।

कुसुम-क्रन्दन

प्रो० विश्वनाथप्रसाद, एम० ए०

मधुकर-गुंजन सुना, सुना मर्मर स्वर वर उपवनका ;
सुना सुभग संगीत मंजु मंथर-गति मलय-पवनका।
सुना न था, पर चूस-चूस लेंगे अलि रस जीवनका ;
लूट-लूट लेगा समीर संचित सौरभ यौवनका।

थी कैसी मति-भ्रान्ति, हन्त! अब यह छवि कहाँ छिपाऊँ?
हे करतार! कहो कैसे फिर मैं कलिका बन जाऊँ?

सर एडविन आर्नाल्ड

श्री मथुरादत्त त्रिवेदी

'एशियाकी ज्योति'—सुप्रसिद्ध पुस्तक 'लाइट ऑफ एशिया'—के लेखकके पिता तथा प्रपितामहको अपने जन्म-नगर ग्रेमस्एण्डसे बड़ा प्रेम था। डेढ़-दो सौ वर्ष पहले यहाँपर राजमार्गके निम्न-भागमें एक क़िला था, जिसपर स्पेनिश तथा डच आक्रमणकारियोंका सामना करनेके हेतु तोपें चढ़ी थीं। बादमें यह क़िला सर एडविन आर्नाल्डके पिताके अधिकारमें आ गया, और उनकी इच्छासे नागरिकोंके हितार्थ वह एक उद्यानमें परिणत कर दिया गया।

पहले ग्रेमसएण्डका नक़शा तथा यहाँके लोगोंका व्यवसाय कुछ और ही था। नगर नदीके तटपर होनेसे व्यापारका प्रमुख द्वार था। एडविनके पिता रॉबर्ट कोल आर्नाल्डको टेम्स नदीके ऊपर सर्वप्रथम वाष्पसे चलनेवाले स्टीमर ले जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने मछली पकड़नेके व्यवसायकी, जो तत्कालीन ग्रेमस्एण्डके नागरिकोंकी जीविकाका मुख्य जरिया था, बहुत कुछ उन्नति की थी।

'एशियाकी ज्योति' (लाइट ऑफ एशिया) के लेखक सर एडविन आर्नाल्ड इन्हीं रॉबर्ट कोल आर्नाल्डके द्वितीय पुत्र थे। एडविनके बड़े भाईका नाम जार्ज आर्नाल्ड था। उन्होंने अपने पिताके घर तथा प्यारे नगरको छोड़ना उचित न समझा। एक बार नहीं, प्रत्युतः कई बार वे ग्रेमस्एण्डके मेयर चुने गये। रॉबर्ट आर्नाल्डके तृतीय पुत्र सर आर्थर आर्नाल्ड थे, जिन्हें लन्दन काउन्टी कौंसिलके सभापति होनेका सम्मान मिला था, और वे अपने समयके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ भी थे। चौथे और सबसे छोटे भाई ए० आर्नाल्ड हैं, जो अब तक जीवित हैं, और कौबहैममें रहते हैं।

सर एडविन आर्नाल्डका जन्म आजसे ठीक सौ वर्ष पहले सन् १८३२ की १०वीं जूनको हुआ था। इस वर्षके जून मासमें दुनियाके कतिपय स्थानोंमें 'लाइट आफ एशिया' के लेखककी जन्म-शताब्दी मनाई गई। विलायत तथा बौद्ध जगतके अखबारोंने उनके जीवनपर प्रकाश डालनेवाले लेख लिखे। आश्चर्य है कि हिन्दी-जगतके पत्रोंने इस ओर ध्यान न दिया! अंगरेज़ीके सामयिक पत्रोंमें भी, केवल 'सोशल रिफार्मर' को छोड़कर, मैंने उनपर कोई लेख नहीं देखा। सर एडविन आर्नाल्डने तीन शादियाँ की थीं। पहली तथा द्वितीय बार उन्होंने अंगरेज़ रमणियोंसे सम्बन्ध जोड़ा था, और जब वे दोनों न रहीं, तो उन्होंने एक जापानी महिलाका पाणिग्रहण किया। उनकी जापानी विधवा अब भी इंग्लैण्डमें मौजूद हैं।

दुःख है कि भारतीय विश्वविद्यालयोंमें, यहाँ तक कि काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयोंमें भी, 'लाइट आफ एशिया' नहीं पढ़ाई जाती! मेरी तो यह धारणा है कि मिल्टनकी 'पैरेडाइज लास्ट'की अपेक्षा आर्नाल्डकी 'लाइट आफ एशिया'को पढ़ानेमें भारतीय विद्यार्थियोंको अधिक लाभ है। भारतीय सौष्ठव, भारतीय कला, भारतीय धर्म और सबसे अधिक विशाल भारतके निर्माता तथा एशियाखंडके गुरुदेव महात्मा बुद्धकी गुण-गरिमापर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकके नामसे भी भारतीय विद्यार्थी अपरिचित रहें, इससे अधिक लज्जाकी और दूसरी बात क्या हो सकती है?

मेरे मित्र श्री मोहन जोशीको सौभाग्यसे फ़ैज़ाबाद जेलमें यह पुस्तक पढ़नेको मिल गई। चूँकि 'बी' दर्जेके क़ैदियोंसे जेलमें मशक़्क़तका काम नहीं लिया जाता, इसलिए उनमें से बहुतेरोंने, जोशीको 'लाइट आफ एशिया' श्रद्धासे पढ़ते देखकर, स्वयं भी उसे पढ़नेका निश्चय किया। जोशीजीका कहना है कि यह पुस्तक इतने हाथोंमें गई और इतने साथी क़ैदियोंने पढ़ी कि मज़बूत चमड़ेकी जिल्दसे सुरक्षित होनेपर भी वह पन्ने-पन्ने फट गई। जुलाई मासमें जेलसे लौटकर जब जोशीजी 'लाइट आफ एशिया' का महत्व मुझे समझाया करते थे, उन्हीं दिनों सर एडविनकी पहली स्त्रीके द्वितीय पुत्र श्री सी० आर्नाल्डके अल्मोड़े आनेकी सूचना मुझे मिली। 'अंधेको क्या चाहिए, दो आँख'। मैं फौरन आर्नाल्ड साहबके पुत्रसे मिला। वे मुझसे ऐसे प्रेमसे मिले, जैसे कोई अपने आत्मीयसे मिलता है।

श्री सी० आर्नाल्ड रंग-रूपमें अंगरेज़, भाव-विचारोंमें भारतीय तथा धर्म और विश्वासमें हिन्दू हैं। उनकी पहली दो स्त्रियाँ जाती रहीं। उनकी तीसरी मौजूदा स्त्री एक

मुसलमान महिला हैं। इस स्त्रीसे उनके एक छोटा लड़का—जिसे आप बड़े गर्वसे 'लाइट आफ एशिया' का पौत्र कहते हैं—तथा एक लड़की है। वृद्धावस्थामें उन्हें अपने लड़केसे, जो वास्तवमें बहुत प्यारा और सुन्दर है, बड़ा मोह है। उनके मनमें सभी भारतीय बच्चोंके प्रति अत्यधिक प्रेम है। हमारे छोटे-छोटे बच्चोंको, जिन्हें एक साधारण अंगरेज़ घृणाकी दृष्टिसे देखता है, वे सहज प्रेमसे गोदमें लेकर प्यार करते हैं। उनका रहन-सहन भी भारतीय किसानोंके रहन-सहनके ढंगपर बहुत सादा और अनुकरणीय है।

उनका कहना है कि उनकी माता अमेरिकाके सुप्रसिद्ध चैनिंग वंशकी लड़की थीं। सन् १९०४ तक वे प्राय: अपने पिताके साथ ही रहे। इसी सन्‌में उनके पूज्य पिताका उनकी ही गोदमें देहान्त हुआ। उनके पिताने उन्हें आई०सी०एस०की परीक्षामें बिठानेका निश्चय किया था, परन्तु चूँकि उनके शिक्षकोंने उन्हें इस योग्य नहीं ठहराया और वृद्धावस्थामें उनका अपने पिताके साथ रहना ज़रूरी हो गया, इसलिए थोड़ा-बहुत अखबारनबीसी और कुछ-कुछ पुस्तक लिखनेका ढंग अपने पितासे सीख उन्हें सन्तोष करना पड़ा। वे सन् १९१४ में भारत आये। उन्होंने बर्मामें अखबारनबीसी की, भारतमें आकर स्कूली विद्यार्थियोंके लिए पुस्तकें लिखीं और रजवाड़ोंमें रहकर राजपुत्रोंको शिक्षा दी। अब भी उनकी गुजर ऐसे ही कामोंसे है। गरीबोंके झोपड़ोंसे लेकर अमीरोंके महलों तकका अध्ययन उन्होंने अब भलीभाँति कर लिया है। उनका पुनर्जन्मपर विश्वास है, और वे यह मानते हैं कि उनके पिता पहले जन्ममें भारतीय थे।

मैंने उनसे उनके पिताकी जीवनीपर 'नोटस्' माँगे। उनका कहना है—"बौद्ध ग्रन्थोंके तथा इतिहासके जगत-प्रसिद्ध अंगरेज़ लेखक राइ डेविड्सने मेरे पितासे उनके 'संस्मरण' माँगे थे। चूँकि मेरे पिता चाहते थे कि कोई उनकी जीवनी न लिखे, क्योंकि उनका विचार था कि नाशवान जगतमें नाशवान शरीरकी व्याख्या छोड़ जानेसे कोई विशेष लाभ नहीं, इसलिए वह राइ डेविड्सको अनुगृहीत न कर सके। चूँकि मेरे पिता मेरी गोदमें मरे हैं, इसलिए उनकी इच्छाके विरुद्ध आपको लिखकर कुछ नहीं दे सकता।" सर आर्नाल्डके छै लड़के और एक लड़की थी। उनमें से श्री सी० आर्नाल्डने मुझे जयन्तीके अवसरपर प्रकाशित अपने भाइयोंके दो लेख मँगाकर दिये। साथ ही यह भी कह दिया—"मैं नहीं जानता कि मेरे भाइयोंको पिताजीकी इच्छाका ज्ञान था, या नहीं, अथवा उनके ऊपर इतना दबाव पड़ा कि जयन्तीके समय लेख देना ज़रूरी हो गया।" श्रीयुत एमर्सन आर्नाल्ड, एम०डी०, एम०आर०सी०पी०, का लेख 'बुद्धिज़्म इन इंग्लैंड' पत्रके जुलाई-अगस्त सन् १९३२के अंकमें प्रकाशित हुआ है। प्रसिद्ध अमेरिकन कविकी इच्छापर इस लेखकको बचपनमें 'एमर्सन अर्नाल्ड' का नाम दिया गया था। दूसरा लेख श्रीयुत एल० आर्नाल्डका १६ जून सन् १९३२ के 'कैन्ट मैसेंजर'में प्रकाशित हुआ है। इसलिए इस लेखके लिखनेमें मुझे उनके तीन लड़कोंसे सहायता मिली है। आगे मैं सर्वत्र अन्य दो भाइयोंका हवाला न दूँगा। हाँ, जहाँ कहीं अपने परिचित मित्र सी० आर्नाल्डका कथन लिखूँगा, वहाँ उनका नाम दे दूँगा।

कहा जाता है कि सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें जब इंग्लैंडमें प्लेगका दौरा हुआ था, उसमें आर्नाल्ड-कुटुम्ब बिखर गया। श्री सी० आर्नाल्डका कहना है कि प्रसिद्ध लेखक मैथ्यू आर्नाल्डके घरानेका उनके घरानेसे कोई सम्बन्ध नहीं। हाँ, उनके कुटुम्बियोंकी मैथ्यू आर्नाल्डसे घनी मित्रता थी।

सर एडविन आर्नाल्डका जन्म ग्रेमसएण्डमें सड़कके किनारे एक मकानमें हुआ था। यद्यपि वे अधिक समय अपने नगरमें न रह सके, तथापि उनका प्रेम अपने जन्म-स्थानसे सदा बना रहा। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा 'बक्सले हीथ' स्कूलमें हुई थी। इस स्कूलका संरक्षक एक अनुभवी बूढ़ा नाविक था, जो अपनी रुचि और पेशेके अनुसार गणितकी पढ़ाईपर विशेष ज़ोर देता था। विद्यार्थी आर्नाल्डका प्रेम साहित्यसे था। कविता-कलीका अंकुर भी यहींसे उनके चित्तमें प्रस्फुटित हो गया था। चौदह वर्षकी उम्रमें वे रोचेस्टेर कैथेड्रल ग्रामर स्कूलमें भर्ती हुए, और सन् १८५० में किंग्स कालेज लन्दनसे यूनिवर्सिटी कालेज आक्सफोर्डमें प्रवेश किया। ग्रामर स्कूलमें उनकी मेहनत, योग्यता तथा उन्नति देखकर विद्यार्थी दंग रह जाते थे। स्कूलके इनामोंको तो उन्होंने ऐसा हथिया लिया था कि विद्यार्थी उन्हें भष्मासुर आर्नाल्ड या आल एबसार्बिंग आर्नाल्डके नामसे पुकारते थे। 'बक्सले हीथ' स्कूलका यह कठोर नियम था कि प्रत्येक विद्यार्थी अपने सामने परोसे गये खानेको, चाहे वह उसे रुचे या न रुचे, चट कर जाय।

यह बात पेट्रसे ही सम्भव थी। आर्नाल्डने अपने एक साथीसे साजिश की कि वह उसका शेष खाना खा दिया करे, और बदलेमें एडविन उसके लिए ग्रीक तथा लैटिन भाषाका घरके लिए दिया हुआ काम कर दिया करे। उसके लिए 'होरेस' तथा 'वरजिल' के कवितामय वायुमंडलमें उड़ान लेना उतना कठिन नहीं था, जितना सूअरके गोस्तको गटक जाना, उबाले आलू हजम करना अथवा सख्त रोटी उड़ा जाना। इस साजिशका भंडाफोड़ बहुत दिनों बाद हुआ।

आक्सफोर्डके लिए कविके हृदयमें अतुलनीय प्रेम और श्रद्धा थी। होती क्यों नहीं! डीन स्टेनली-सा अध्यापक तथा डीन फरार, जेस, ब्लैक जैसे सहपाठी विरले भाग्यवानोंको ही मिलते हैं। उसकी कवित्वशक्तिकी धाक अंगरेज़ी संसारमें तबसे जमी, जब उसने 'बेल्शजारस् फीस्ट' नामक कविता रचकर आक्सफोर्डमें न्यूडिगेट-पारितोषिक प्राप्त किया। शेलडोनियन नामक हालमें सुशोभित विद्वानों, सुयोग्य अध्यापकों, ग्रेजुएट तथा अन्डर ग्रेजुएटोंके सामने स्वनिर्मित कविता पढ़नेके लिए उससे कहा गया। ऐसा करना होनहार कविके लिए अग्नि-परीक्षाके समान था। पहले-पहल उसकी ज़बान ही न खुली—घिग्घी-सी बँध गई। इसपर लड़कोंने इतना ऊधम मचाया कि यदि दूसरा लड़का होता, तो कविता पढ़ना तो दरकिनार, हॉलमें दर्शक-रूपमें भी एक मिनट न ठहरता। आर्नाल्ड कुछ देरके लिए निस्तब्ध खड़ा हो गया, फिर धीरे-धीरे दृढ़, परन्तु धीमी आवाज़में पढ़ना शुरू किया, और अन्तमें कविताको ऐसे सुस्पष्ट ढंगसे पढ़ सुनाया कि श्रोताओंका मन चुम्बककी भाँति खिंचकर कविताके भाव और स्वरमें लीन हो गया। श्रोताओंमें इंग्लैंडके भावी प्रधान मन्त्री लार्ड बीकनफील्ड भी थे। उन्होंने कविता-पाठ बन्द होते ही, झट आगे बढ़कर, आर्नाल्डसे हाथ मिलाया, और कहा—"भविष्यमें जब आप और मैं एक दूसरेको अभिवादन करेंगे, तब आप 'परनेशस'की ऊँचाईपर खड़े होंगे, और मैं सिनेट-हाउसमें हूँगा।"

सर आर्नाल्डने सन् १८५४ में बरमिंघमके किंग एडवर्ड स्कूलमें अध्यापन-कार्य स्वीकार कर लिया। दूसरे ही वर्ष केथेरिन एलीज़ावेथ बिडुल्फ नामक युवतीसे उनका विवाह हो गया। श्रीमती आर्नाल्ड पश्चिमी प्रान्तके एक सुप्रसिद्ध घरानेकी कन्या थीं, और बराबर सर आर्नाल्डको उत्साहदायिनी सिद्ध हुईं। सन् १८५६ में अध्यापकीसे इस्तीफा देकर उन्होंने अपने देशकी सैर की, और दो-एक काव्य-पुस्तकें लिखीं। हाथ-लगे विषयपर लेख लिखना अच्छी पुस्तकें लिखनेके लिए हाथ माँजनेके तुल्य है। यदि धैर्यका अभाव हो, अथवा निरन्तर परिश्रम न किया जाय, तो ऐसे साहित्यके लिखने तथा प्रकाशित करनेसे कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। कुछ दिन बाद सर आर्नाल्डको पूनाके डेकन संस्कृत कालेजके प्रिंसिपलकी जगह खाली होनेका समाचार मिला। उन्होंने बड़ी उत्सुकतासे यह पद पानेके लिए दरख्वास्त भेज दी। वे सन् १८५७ में इस पदकी शोभा बढ़ानेके लिए भारत आये। यहाँ आते ही सहसा उनको बोध हुआ कि भारत ही मेरा आध्यात्मिक घर है। वे अपनी स्त्रीकी बीमारीके कारण यहाँ अधिक नहीं ठहर सके। पाँच वर्षके भीतर ही उन्हें अपनी स्त्रीके स्वास्थ्य-रक्षा-हेतु भारत छोड़ना ज़रूरी हो गया। इतने थोड़े समयमें ही उन्होंने भारतीय वातावरण और भारतीय जीवनको इतना अपना लिया, जितना दूसरे अंगरेज़ शायद सारी उम्र भारतमें बिताकर भी नहीं कर सकते। भारतको उन्होंने अपनाया ही नहीं, प्रत्युत भारतीयपन उनकी रग-रगमें समा गया, और वे पूरे भारतीय हो गये। मेरे मित्र सी० आर्नाल्डका कहना है कि उनके पिता पहले जन्ममें निश्चय ही भारतीय थे। भारत आते और यहाँसे विदा होते समय सर आर्नाल्डके अन्तःकरणमें इस बातका आभास भी नहीं पाया जाता था कि इस यात्राका प्रतिफल उन्हें संसारमें अमर बनानेका हेतु सिद्ध होगा।

पाठकोंको याद रखना चाहिए कि सिपाही-विद्रोहके कारण यह वर्ष बड़ी गड़बड़ीका था। भारतीय अंगरेज़ोंसे घृणा करते थे, और उनका उनपर अविश्वास था। मार-काटके पीछे सारेके सारे अंगरेज़ भारतीयोंसे जल-भुन गये थे। इस अशान्तिसे आर्नाल्ड साहबका अन्तःकरण गम्भीर समुद्रकी तरह कभी मर्यादाके बाहर न हुआ। भारतमें रहते समय यहाँकी जलवायु और यहाँके दीनहीन किसानोंके सरल जीवनने उनके हृदयपटलपर अपनी छाप अंकित कर दी थी। चूँकि उनके सरल हृदयमें नवीनताका संचार शीघ्र होता था, इसलिए उन्होंने अपनी सारी चिट्ठियोंमें, जो उनके पुत्रोंके पास अभी सुरक्षित रखी हैं, भारतीय संध्याकालका, यहाँके निर्मल आकाशकी ज्योत्स्नामयी रात्रियोंका, यहाँके नगरोंकी अलौकिक सजीवताका, रहस्यमय प्राचीन मन्दिरोंकी स्वर्गीय शान्तिका और सबसे अधिक उस धार्मिक

विश्वासका तथा उन ऐतिहासिक धर्मोंका जो भारतके सहज विश्वासी जनोंकी भावनाओंका दुग्ध पानकर सबल हुए हैं, सदा कवितामय वर्णन लिखा है। उन्होंने पुरातन भारतीय जीवनरूपी सुधा-सागरमें ख़ूब गोते लगाये थे, और भारतीय भाषाओंका मनन तथा परिशीलन भी किया था। सन् १८६१ में विलायत पहुँचते ही उन्होंने एक ग्रन्थमाला, जिसका सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वल रत्न 'दि लाइट आफ एशिया' नामकी पुस्तक थी, लिखना आरम्भ कर दिया। श्रीमती एनी बेसेन्टका मत है कि बिना ईश्वरीय प्रेरणाके हाड़-मांसके मनुष्यसे ऐसी पुस्तकका लिखा जाना संभव नहीं। महात्मा गांधीने भी एडविन आर्नाल्डके भगवद्गीताके अंगरेज़ी अनुवादको सारे मौजूदा अंगरेज़ी तर्जुमोंमें अच्छा बतलाया है।

वे अंगरेज़ जो भारतमें रह चुके हैं और जिन्होंने भारतीय जीवनका अध्ययन किया है, आर्नाल्ड साहबके सरल, सरस, सहज तथा सोलहों आने सत्य भारतीय जीवनका वर्णन पढ़कर दाँतों-तले अंगुली दबाते हैं। भारतीय हिन्दू पंडित तथा तत्त्ववेत्ता कहते हैं कि 'लाइट आफ एशिया' पढ़कर यह विश्वास नहीं होता कि इस पुस्तकका लेखक एक अंगरेज़ है। 'लाइट आफ एशिया'की कवितावलीके स्वरशब्द इतने प्रकृतिसिद्ध तथा कोमल हैं और अन्तरदृष्टि तथा निदर्शनशक्ति इतनी पूर्ण और मर्मभेदी है कि पुस्तकके अध्ययन तथा मननके समय पढ़नेवाला सहसा एक स्वर्गीय स्वप्न-जगतमें विहार करने लगता है। वास्तविक बात यही है कि आर्नाल्डके सिवा कोई दूसरा अंगरेज़ लेखक भारतीय जीवनका ऐसा अच्छा चित्र खींचनेमें समर्थ न हो सका, जैसा चित्र 'लाइट आफ एशिया'में चित्रित हुआ है।

सर आर्नाल्डके पुत्र एमर्सन आर्नाल्डका कहना है—"आज दिन वे लोग जो मेरी तरह थियासफी तथा पूर्व-देशोंके रहस्यमय धर्ममें दृढ़ विश्वास रखते हैं, इस अपूर्व व्यापारको देखकर दंग हैं। मेरे पिता यद्यपि अपने पूर्वजोंकी तरह देशभक्त और सोलहों आने ब्रिटिश नागरिक थे, तथापि अपने विचारों, अपने रंग-ढंग, अपनी प्रवृत्तियों और अपने बाह्य आचरणमें वे आधे पूर्वीय थे। यहाँ तक कि उनकी सूरतमें थोड़ी-बहुत एशियावासियोंकी-सी झलक थी। मेरा विश्वास है कि उनके भारतीय प्रवासने पूर्वजन्मकी आत्म-ज्ञान-स्मृतियोंको पुनर्जीवित कर दिया था। पूर्वीय जीवन तथा तत्त्वज्ञानका अल्पकालमें आश्चर्यजनक ज्ञान प्राप्त करने तथा उनकी अन्तर्दृष्टिको उस ओर आकर्षित करनेका कारण सिवा इसके कि वे पूर्वजन्ममें कुछ वर्षों तक एशियाखंडमें रहे, और दूसरा हो ही क्या सकता है?"

परिस्थितिने सर एडविन आर्नाल्डको मजबूर किया कि वे पश्चिमके धुँधले आकाशके नीचे निरन्तर ४० वर्ष तक लन्दनके 'डेली टेलिग्राफ'के दफ्तरमें काम करें। भारत छोड़नेके बाद भी इन ४० वर्षोंमें उनको भारतका बराबर ध्यान रहा। अपनी अल्पकालिक छुट्टियोंके समयको भी वे सदा पूर्वीय देशोंकी भाषा, धर्म तथा तत्त्वज्ञानके अध्ययनमें लगाते थे। उनके लिए इसका सदुपयोग यही था।

किसी ड्राइंग-मास्टरने उनके हाथमें पेंसिल, रबर और ब्रुश देकर उन्हें चित्रकलाकी शिक्षा नहीं दी थी, फिर भी वे, इच्छा होते ही, साज-सामान लेकर बैठ जाते थे, और आश्चर्यजनक निपुणता और शीघ्रतासे तैलचित्र, साधारण रंगीन चित्र, नक्शे और पाण्डुलेख तैयार कर देते थे। कलाविदोंका कहना है कि उनके चित्र उत्कृष्ट कलाके नमूने होते थे। वे बिना विशेष अध्ययन या तैयारीके आनन-फाननमें भावपूर्ण गद्य तथा चित्ताकर्षक कविता लिख देते थे, और बिना रूप-रंग बाँधे उत्तम कोटिके चित्र बना देते थे।

मनोयोग द्वारा चित्तवृत्तिको किसी खास वस्तु या विषयपर केन्द्रित करनेकी उनमें अद्भुत क्षमता थी। वे इतने गुल-गपाड़ेमें भी लिख लेते थे, जितना दूसरे साधारण लेखकोंको पागल बना दे। एसेक्समें अपने घरके उस कमरेमें जहाँ छोटे-छोटे बच्चे हल्ला-गुल्ला करते, रोते-पीटते और उछल-कूद मचाते रहते थे, उन्होंने 'लाइट आफ एशिया' का मुख्य भाग लिखा था। इस किताबका शेष भाग तथा अन्य बहुतेरी पुस्तकें उन्होंने 'डेली टेलीग्राफ' के कार्यालयको जाते समय ट्यूब-रेलपर कागज़के छोटे-छोटे टुकड़ोंपर लिखी थीं। वे कहा करते थे—"मेरा विश्वास है कि मैं एक बढ़े देगके भीतर बैठकर, जब ठठेरा बाहर कीलें ठोककर उसे जोड़ता रहे, लेख लिख सकता हूँ।" रेलवे प्लेटफार्म, गाड़ीके डिब्बों तथा कलहप्रिय बालकोंके बीच बैठकर, जहाँ किसी विषयपर सोचना सम्भव नहीं, वे 'मुक्तक' छन्द लिखते थे, और कागज़पर छँटे-छँटाये शब्दोंको इस तरह बखेर देते थे, जैसे कोई दानशील अपनी जेबसे मुट्ठी-दो-मुट्ठी चाँदी बखेर रहा हो।

सर आर्नाल्डने समयका दुरुपयोग कभी नहीं किया। अपनी बैठककी दीवारपर अक्षरोंका चार्ट टाँगकर उन्होंने देवनागरी लिपिको सीखा था। वे अपने बच्चोंको सदा उपदेश दिया करते थे कि समयको व्यर्थ न जाने दो। रेलवे प्लेटफार्म तथा गाड़ीके डिब्बोंमें—जहाँ यात्री या तो खुर्राटें लेते हैं, या पाइप पीते तथा गपशप लड़ाया करते हैं—वे ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि भाषाओंका अनुशीलन या अध्ययन किया करते थे। उनकी धारणाशक्ति अद्भुत थी। पढ़ते-पढ़ते आप तत्त्वकी बातोंको याद कर लेते और निरर्थक पंक्तियोंके ऊपरसे साफ़ निकल जाते थे। बचपनमें पढ़ी हुई कविताओंको बुढ़ापेमें बालकोंके मनोविनोदार्थ वे दुहराया करते थे। उनके मिजाजमें आशावादिता तथा प्रसन्नताकी झलक थी। वे नवयुवकोंसे बहुधा कहा करते थे—"अपने मनको सदा उस धूपघड़ीके तुल्य बनाओ, जो केवल दिनके उज्ज्वल आकाशके समयको बतलाया करती है।" तात्पर्य यह कि सदा जीवनके शुभ अवसरकी ही बातें ध्यानमें रखनेका उद्योग करो, न कि दुर्दिनोंके अन्धकारके नामपर रो-रोकर अपना उत्साह भंग करनेकी चेष्टा करो।

सर आर्नाल्डने दुनियाकी बहुतेरी भाषाओंकी सुप्रसिद्ध पुस्तकोंका अध्ययन किया। वे एक सजीव विश्वकोष थे। उनसे बातें करनेमें स्थायी आनन्द प्राप्त होता था। वे धाराप्रवाह दोषरहित अंगरेज़ीमें भाषण देते थे। मिठास-भरी बोली जादूका असर रखती थी। उनमें पांडित्याभिमान नामको भी न था। उनका चरित्र बच्चोंकी तरह आनन्दमय और निर्मल था। वे विनोदप्रिय भी खूब थे। उच्चकोटिके साहित्य तथा तत्त्वज्ञानकी चर्चा करते-करते वे मित्रोंसे बाल-विनोद भी करने लगते थे।

सर एडविनके लड़कोंका कहना है कि उनका स्वभाव बहुत प्रेममय था। वे स्वीकार करते हैं कि उनके पिताका चरित्र मानव-स्वभावकी बहुतेरी कमज़ोरियोंसे बिलकुल मुक्त नहीं था, फिर भी उन्होंने अपने पिताको कभी द्वेषपूर्ण, अप्रिय, कर्णकटु तथा ओछे शब्दोंका प्रयोग करते हुए नहीं पाया। उनके स्वभावमें तीक्ष्णता अथवा कटुताका तथा शब्दोंमें कर्कशताका एकदम अभाव था। उनके व्यवहार या वाणीने शायद ही कभी किसीका मन खट्टा किया हो। वे पशुओंपर दया करते थे, और नित्यप्रति अपने बच्चोंको बचपनसे ही सिखलाया करते थे कि दूसरे प्राणियोंके साथ छोटे भाइयोंका-सा बर्ताव करना चाहिए! सर एडविन आर्नाल्डके धार्मिक विचार उदार तथा सर्वग्राह्य थे। उन्होंने किसी विशेष धर्मको नहीं अपनाया। शायद इसी कारण थियासोफिस्ट लोग, जो 'लाइट आफ एशिया'को अपनी बाइबिल कहते हैं, उन्हें अपने धर्मका अनुयायी समझने लगे हैं। आज जैसे उनके लड़के सारे धर्मोंका आदर करते हुए किसी एक विशेष धर्मकी ओर झुकाव रखते हैं—जैसे मि० सी० आर्नाल्ड कहते हैं कि उनका आन्तरिक झुकाव हिन्दू-धर्मकी ओर है—उसी तरह सर एडविन आर्नाल्डका विशेष झुकाव बौद्धधर्मकी ओर था। बौद्धधर्मके माधुर्य और शील-सदाचारके वे क़ायल थे। 'लाइट आफ एशिया'में उल्लिखित बौद्धधर्मपर ताना देते हुए गवर्नमेंट आफ इंडियाके सर्वे-विभागके एक उच्च अधिकारीने सर्वेकी रिपोर्टमें तिब्बत-प्रवेशके मार्ग-अन्वेषक रायबहादुर ठा० किशनसिंह और ठा० नयनसिंह, सी० आ० ई०, की डायरीका अनुवाद प्रकाशित करते समय भूमिकामें लिखा है कि आर्नाल्डके बौद्धधर्मके तिब्बतवासियोंके चरित्रमें लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। हो या न हो, पर सर आर्नाल्ड विशुद्ध बौद्धधर्मके मुरीद थे, न कि तिब्बतके गुण-ग्राहक! अपनी आयुके पिछले वर्षोंमें वे जापानियोंके हाथ बिक गये थे। वे इस सौन्दर्यमय प्रदेशके लोगोंके शील-स्वभावकी प्रशंसा किया करते थे। सम्भव हो, इसी कारण उन्होंने बुढ़ापेमें एक जापानी रमणीसे शादी की हो। मेरे 'मित्र' सी० आर्नाल्ड अपनी (जापानी) विमाताके गुण और स्वभावकी प्रशंसा तो करते हैं, पर साथ ही यह भी कहते हैं—"मैं अपनी विमातासे इंग्लैण्डमें बहुत शिकायत किया करता था कि तुम्हारे देश-भाई जापानियोंमें वे गुण नहीं हैं, जिनका वर्णन पूज्य पिताजी किया करते थे। यह शिकायत दिन-प्रतिदिन प्रत्यक्ष होती भी जाती है।"

सर एडविनके लड़कोंका कहना है—"शीलता तो हमारे पिताजीके चरित्रकी कुंजी थी। पिताजीका चरित्र शीतल-मन्द-सुगंधित वायुके तुल्य था। वे प्राणीमात्रको सद्भावसे देखते थे।" उनके पुत्रोंको इस बातका भी अभिमान है कि चूँकि वे बहुत दिनों तक अपने पिताके साथ रहे, इसलिए उन्हें अपने पिताकी आत्माकी मिठास तथा उज्ज्वलतासे बार-बार आशीर्वाद मिला है।

श्री एमसन आर्नाल्ड कहते हैं कि सुप्रसिद्ध होरेसके

समान मेरे पिता भी 'लाइट आफ एशिया' को दिखाकर कह सकते थे—'Monumentum acre perennis'—यह चिरस्थायी स्तम्भ संसारमें मेरा स्मारक रहेगा, मेरे इस दावेको कोई व्यक्ति झूठा न कहेगा। सचमुच 'दि लाइट आफ एशिया' लिखकर सर आर्नाल्ड दुनियामें सौन्दर्य तथा विद्वताका एक ऐसा रत्न छोड़ गये हैं, जिसकी कान्ति कभी फीकी न पड़ेगी। इस पुस्तकके अंगरेज़ी साहित्यमें स्थान पानेका कारण केवल इसकी साहित्यिक सुन्दरता तथा प्रवीणता ही नहीं है, प्रत्युत अधिकांशमें उनकी वह निपुणता तथा काव्य-कुशलता है, जिसके द्वारा उन्होंने अति उत्तम भाषामें उन अनादि सनातन सचाइयोंको, जो सभी धर्मोंमें पाई जाती हैं और सबसे अधिक प्रत्यक्ष तथा महत्वशाली रूपसे महात्मा बुद्धके चिरस्थायी उपदेशोंमें दृष्टिगोचर होती हैं, कविताका आकार दे दिया।

कविवरके पुत्र श्री एमर्सन आर्नाल्ड कहते हैं कि यदि प्रत्येक व्यक्ति सोचे, तो उसे विदित हो जायगा कि यदि पाश्चात्य जगतके लोग नामधारी ईसाई न होकर बौद्धधर्ममें दीक्षित होते, तो सम्भव था, इस भूमंडलमें विश्वव्यापी युद्ध ही न होता। दुनियामें महात्मा बुद्धदेवके पवित्र जीवन तथा स्वर्गीय उपदेशोंका सच्चा चित्र जैसा 'लाइट आफ ऐशिया' में अंकित हुआ है, उपर्युक्त उद्देश्यके सिद्धि-हेतु अवश्यमेव एक चिरस्थायी चीज़ गिनी जायगी।

'लाइट आफ एशिया' के लेखक एक बार ढलती उम्रमें पुन: भारत आये थे। इस बार वे लंका भी गये। वहाँ उनका बड़ा आदर हुआ। यहाँकी बौद्ध जनताने कैन्डीमें बड़े विधानके साथ उन्हें बौद्ध भिक्षुओंके पीले वस्त्र तथा भिक्षा-पात्र देकर बौद्ध जगतका एक धर्माचार्य स्वीकार किया था। यह सब एक तरहसे 'लाइट आफ एशिया' लिखनेका पुरस्कार था।

सर एडविन दुनिया-भरकी अनेक परिषदोंके सदस्य थे। वे एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगालके भी मेम्बर थे। भौगोलिक अन्वेषण-कार्यसे विशेष प्रेम होनेसे वे रायल ज्योग्रेफिकल सोसाइटीके भी सदस्य थे। दुनियाके नक्शेमें दो-चार नाम उनके नामसे ही नामांकित हैं। स्यामके राजाने उन्हें 'आडर आफ़ व्हाइट ऐलीफैन्ट' की उपाधि और फारसके शाहने 'आडर आफ सन और लायन' की उपाधिसे सम्मानित किया था। स्याममें सफेद हाथीके तथा फ़ारसमें शेर और सूर्यके वर्गके भीतर भाग्यशाली जनोंका ही नाम होता है। टर्कीके सुल्तान तथा जापानके सम्राट् मिकाडोने भी उन्हें बड़ी पदवी देनेमें अपना गौरव समझा था। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे भी उनको पहले 'सितारे हिन्द' और पीछे 'सर' की उपाधियाँ दी गई थीं। ब्रिटिश नागरिक होनेके कारण वे सर एडविन आर्नाल्डके नामसे पुकारे जाते हैं।

टेनीसनके मरनेपर राजकवि—पोएट लॉरिएट—के पदके लिए इंग्लैण्डमें उनका नाम बड़े ज़ोरसे आगे रखा गया था, परन्तु एक तो यह पद अनेक अस्वभाविक बन्धनोंसे जकड़ा हुआ था, दूसरे जिन लोगोंपर राजकवि चुननेका भार था, उनमें इतनी सहिष्णुता नहीं थी कि वे सर एडविन-जैसे उदार और स्वतन्त्र धार्मिक विचारवाले व्यक्तिको यह पद प्रदान करते, इसीलिए उन्हें यह पद नहीं मिला।

सर आर्नाल्डने प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'लंडन डेली टाइम्स' की ४० वर्ष तक सेवा की थी। इस नाते उन्हें सम्पादक प्रवर या देश-नेताके नामसे पुकारा जाना चाहिए था, पर वे अपने देश तथा दुनिया-भरके शिक्षित समुदायमें कविवरके नामसे ही पुकारे जाते थे। वैसे तो उन्होंने मरते दम तक काम किया, और उन्हें आमोद-प्रमोदके लिए अवकाश ही नहीं मिला, तथापि कार्यशील जीवनके बीचमें जब कभी भी अवसर मिला, तब उसे उन्होंने भारत, जापान, अमेरिका, ईजिप्ट, स्पेन तथा भूमध्यसागरपर के दूसरे देशोंके पर्यटनमें लगाया।

श्री एमर्सनका कहना है—"लगभग १७ मार्च १९०४को वे बीमार पड़े, और शनै:-शनै: उनकी शक्ति इस प्रकार क्षीण होती गई कि सात दिन बाद ता० २४ मार्चको उन्हें निर्वाण प्राप्त हो गया। उन्होंने अपने मुक्ति-दिवसके प्रात:काल कहा—'मैं सोचता हूँ कि मैं दुनिया छोड़ रहा हूँ।' पिताजीने इच्छा प्रकट की थी कि उनके शवका दाह-संस्कार हो, अत: पूज्य पिताजीकी चिताको आग देनेका पवित्र काम मुझे ही सौंपा गया। देखते-ही-देखते समस्त बन्धुओंका वह परिचित प्रिय शरीर, अक्षय साहस तथा उद्योगशीलताकी वह मूर्ति और प्राणीमात्रको विश्वास एवं प्रेमसे देखनेवाली वह देह बातों-ही-बातोंमें राखका ढेर हो गई—

Rise from this life, lift upon pinions bold
Hearts free and great as his ;
The Eagle seeks no shadow, nor the wise
Greater or lesser Bliss."

कौटिल्य-कालके कुछ अधिकारी

श्री वृन्दावनदास, बी० ए०, एल-एल० बी०

कौटिल्य-कालमें शासनके प्रत्येक विभागका एक विभागाध्यक्ष होता था। कौटिल्य-शासन-पद्धतिको भलीभाँति समझनेके लिए तत्कालीन राजकीय अधिकारियोंके नाम और उनके कार्योंका ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। इन अधिकारियोंको उनकी श्रेणियोंमें विभक्त करना बड़ा कठिन है। यह पता चलना कठिन है कि कौन पदाधिकारी किससे बड़ा या छोटा है। कौटिलीय अर्थशास्त्रमें जो राजकीय कर्मचारियोंके वेतन और भत्ते आदिका उल्लेख है, उसीसे राज्याधिकारियोंकी श्रेणीका थोड़ा-बहुत दिग्दर्शन हो सकता है।

सबसे अधिक वेतन अथवा भत्ता राजमहिषी, युवराज, राजकीय ऋत्विज, प्रधान मन्त्री, पुरोहित, सेनापति तथा राजमाताको मिलता था। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रथम श्रेणीके राजपुरुष एवं अधिकारी थे। इनसे कम वेतन पानेवाले दौवारिक, अन्तर्वंशिक, प्रशास्तृ, समाहर्तृ और सन्निधातृ दूसरी श्रेणीमें रखे जा सकते हैं। यों तो कौटिल्य-कालके अनेकों अधिकारी एवं विभागाध्यक्ष थे, परन्तु उनमें से मुख्य एवं प्रधान अधिकारियोंके ही अध्ययनसे तत्कालीन शासन-प्रणालीका अच्छा ज्ञान हो जाता है।

सन्निधातृ

सन्निधातृ एक उत्तरदायी अधिकारी था। अपने कार्यके अतिरिक्त उसको निम्न-लिखित विभागोंके अध्यक्षोंका निरीक्षण भी करना पड़ता था—(१) कोषाध्यक्ष, (२) पण्याध्यक्ष, (३) कोष्ठागाराध्यक्ष, (४) कुप्याध्यक्ष, (५) आयुधागाराध्यक्ष और (६) बन्धनागाराध्यक्ष। इन विभागोंके लिए उपयोगमें आये हुए गृह—जैसे, कोष्ठागार, पण्यगृह, कुप्य, आयुधागार, बन्धनागार—आदिका निरीक्षण भी सन्निधातृको करना पड़ता था। महामन्त्र-स्थान तथा धर्मस्थीय (न्यायालय) भी सन्निधातृ द्वारा निर्माण कराये जाते थे।

राज्यके एक कोनेपर सन्निधातृ एक विशाल भवन अभियुक्तों द्वारा बनवाता था, जिसमें आपत्ति-कालके लिए यथेष्ट धन संग्रह करके रखा जा सके। इस विशाल गृहको अभियुक्तों द्वारा निर्माण करानेका कदाचित् यह आशय होगा कि भवन-निर्माण-समाप्तिके बाद अभियुक्तोंको बध करा दिया जाय। इस प्रकार भवनका भेद किसीको मालूम न होता था। अभियुक्त भी वही होते होंगे, जो मृत्यु-दंडकी आज्ञा पाये हुए हों। सन्निधातृ एक अत्यधिक प्रतिष्ठित एवं विद्वान पुरुष होता था। उसकी योग्यताका पता इस श्लोकसे लगता है—

> "बाह्यमाभ्यन्तरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि।
> यथा पृष्टो न सज्येत व्ययशेषं च दर्शयेत्॥"
>
> (२ अधि० ५ अध्या० २४ प्रक०)

अर्थात् सन्निधातृको बाहरी और भीतरी आय-व्ययका सौ वर्षका हिसाब भी जिह्वापर होना चाहिए।

समाहर्तृ

समाहर्तृका पद आधुनिक कलक्टरसे समता रखता था। समाहर्तृ दुर्गों, राष्ट्रों, खानों, वनों, पशुओं और पथोंसे राज्य-कर संग्रह करता था। कंटक-शोधन नामी न्यायालयमें तीन अमात्य न्यायाधीश होकर बैठते थे। समाहर्तृ भी उनमें से एक न्यायाधीश होता था। अध्यक्षोंके कार्योंका निरीक्षण एवं अपराधी सिद्ध हुए अध्यक्षोंको दंड देनेका कार्य समाहर्तृ द्वारा नियुक्त अमात्य किया करते थे। इस कार्यसे समाहर्तृके दायित्वका पता चलता है।

समाहर्तृके नीचे निम्नांकित अधिकारी कार्य करते थे—(१) गोप—जो समाहर्तृके आदेशानुसार पाँच या दस ग्रामोंके आय-व्ययका हिसाब रखता था; (२) स्थानिक—राज्यके चतुर्भागका हिसाब रखता था; (३) गृहपतिक—यह क्षेत्रों, गृहों और परिवारोंकी संख्या

एवं गणना-सम्बन्धी लेखोंकी प्रामाणिकता एवं शुद्धताका निर्णय करनेके लिए नियुक्त किया जाता था।

दूत-विभाग भी समाहर्तृके नीचे रहता था। वणिकोंके वेषमें दूत राजकीय वस्तुओंका मूल्य मालूम करते थे। कृषकों और चोरोंके वेषमें भी दूत बड़ा उपयोगी कार्य किया करते थे।

बुद्धिमान समाहर्तृ राजकीय कर संग्रह करनेमें व्यय घटाकर आयकी वृद्धि करते थे—

"एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत्।
ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञस्साधयेच्च विपर्ययम्॥"

(कौ० अर्थ० अधि० २ अध्या० ६ प्रक० २४)

शुल्काध्यक्ष

शुल्काध्यक्षका कार्य आयात-निर्यातपर राजकीय कर संग्रह करनेका था। इसके विभागका नाम 'दुर्गम' था। राजकीय कर 'दुर्गं, राष्ट्रं, खनिं सेतुं, वनं, व्रजं, वणिक्पथं'* पर संग्रह किया जाता था। इन शब्दोंकी व्याख्या कौटिलीय अर्थशास्त्रके अधिकरण २, अध्याय ६, प्रकरण २४ में बड़ी स्पष्टतयासे की गई है।† शुल्कके कठिन नियम बने हुए थे—जैसे, जिन वस्तुओंपर शुल्काध्यक्षकी मुद्रा न लगी होगी, उनके स्वामीको उनपर दुगुना शुल्क देना होगा। जाली मुहर लगानेपर अठगुना शुल्क देना पड़ता था। जो व्यक्ति अपने लाभार्थ मुद्राको तोड़ता अथवा उखाड़ता था, उसको वटिका-स्थानमें, जो एक प्रकारका जेल होता था, ठहरना पड़ता था।

विशेष उत्सवों, यथा विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन-संस्कार, देवोपासना, हवन, यज्ञादिके उपयोगमें लानेके हेतु आई हुई वस्तुओंपर शुल्क नहीं लिया जाता था।

गणिकाध्यक्ष

गणिकाध्यक्षके संक्षेपत: निम्न-लिखित कार्य थे—

(१) राजा तथा उसके स्वजनोंके लिए स्त्री-भृत्योंकी नियुक्ति।

(२) स्त्री-भृत्योंका नियुक्त एवं पदच्युत करना गणिकाध्यक्षके ही अधीन था।

(३) पाकागार, कोष्ठागार आदिक विभागोंमें जिन स्त्री-सेविकाओंकी आवश्यकता होती थी, उनकी नियुक्ति गणिकाध्यक्ष ही करता था।

(४) स्त्री-भृत्योंको एक विभागसे दूसरे विभागमें स्थानान्तर करना।

(५) उनके समस्त कलहोंकी (अ) उनके और उनके सम्बन्धियोंके बीच (ब) उनके तथा उनके प्रेमियोंके बीच उपशान्ति गणिकाध्यक्ष द्वारा ही की जाती थी।

(६) गणिकाओंको नाचने, गाने तथा राजदरबारोंके योग्य बनानेवाले विभागका निरीक्षण करना।

(७) उन नाचने तथा गानेवालियोंसे जो राज-दरबारमें नौकर न थीं, वह राज्य-कर संग्रह करता था।

(८) बाहरी शक्तियों एवं राष्ट्रोंका भेद लानेके लिए गणिकाएँ नियुक्त करना।

गणिकाध्यक्षका अन्तर्वंशिकसे भी सम्बन्ध था, परन्तु इससे यह ज्ञात नहीं होता कि कौन किसके अधीन था।

प्रशास्त्र

यह उस विभागका अध्यक्ष था, जिसमें राजकीय लेखोंका संग्रह करता था। सरकारी विज्ञप्तियाँ इसी विभाग द्वारा जनतामें प्रकाशित होती थीं। अत्यन्त

---

* कौटिल्य अर्थ० २ अधि, ६ अध्याय, २४ प्रकरण।

† शुल्कं दण्ड: पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राऽध्यक्ष: सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारं सौवर्णिक: पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारबाहिरिकादेयं च दुर्गम्।

सीता भागो बलि: करो वणिक् नदीपालस्तरो नाव: पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जुश्च राष्ट्रम्।

सुवर्ण रजत वज्र मणि मुक्ता प्रवाल शंख लोह लवण भूमिप्रस्तररस धातव: खनि:॥

पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापास्सेतु। पशुमृगद्रव्य हस्तिवन परिग्रहो वनम्। गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रज:।

स्थलपथो वारिपथश्च वणिकपथ:। इत्यायशरीरम्।

कौटिल्य अर्थ० अधिकरण २, अध्याय ६, प्रकरण।

विश्वसनीय पदाधिकारी होनेके कारण प्रशास्तृको द्वितीय श्रेणीमें रखा गया ।

दौवारिक और अन्तर्वंशिक

दौवारिक प्रतिदिन प्रातःकाल मन्त्रियों और राजकीय सम्बन्धियोंके साथ अन्तःपुरमें राजाके पास जाता और उसका स्वागत करता था। इसको प्रशास्तृ, समाहर्तृ और सन्निधातृके समान वेतन मिलता था। अवसर पड़नेपर दौवारिक राजाके निजी अधिकारोंका भी प्रयोग करता था।

दौवारिकान्तर्वंशिकमुखाश्च यथोक्तं राजप्रणिधिं अनुवर्तयेत् ।

अन्तर्वंशिक अन्तःपुरका अध्यक्ष था। यह राजाके गृहस्थके शासनसे सम्बन्ध रखता था, इसी कारण वेतनमें इसको दूसरी श्रेणीमें रखा गया।

राजाकी रक्षा करना इसका मुख्य कर्तव्य था। यह अपने कार्यमें रक्षकोंसे सहायता प्राप्त करता था। इन रक्षकोंकी नियुक्तिमें विशेष ध्यान रखा जाता था। जो लोग राजासे विशेष प्रेम रखते थे वे ही रक्षक नियुक्त किये जाते थे। अन्तःपुरके रक्षकोंमें कुछ स्त्री-रक्षिकाएँ भी होती थीं, जो धनुष-बाणसे सुसज्जित रहती थीं।

पण्याध्यक्ष

यह पद आधुनिक 'कॉमर्स मेम्बर'के तुल्य था। इसके नीचे दो अध्यक्ष और थे—(१) पौटवाध्यक्ष (२) मानाध्यक्ष। इन दोनों अध्यक्षोंके विभागोंका निरीक्षण भी पण्याध्यक्षको करना पड़ता था। यह उन सब वस्तुओंका मूल्य निर्धारित करता था, जो अनेकों राजकीय विभागोंमें तैयार की जाती थीं और जनतामें बेची जाती थीं। मूल्य निर्धारित करना बड़ा कठिन कार्य होता था, चूँकि इसमें वस्तुकी उपज और उसके संग्रह आदिका अधिक ध्यान रखना होता था।

आकराध्यक्ष

आकराध्यक्षका कोषाध्यक्षसे घनिष्ट सम्बन्ध था। कौटिल्यका मत है कि खानसे ही कोषकी उत्पत्ति है, और कोषसे सेनाका संचालन होता है, और सेना द्वारा समस्त संसार वशवर्ती किया जाता है। खनिजोंसे धातु निकालना, मोतियों एवं बहुमूल्य प्रस्तरादिका पृथ्वी एवं समुद्री खानोंसे निकालकर संग्रह करना आदि आकराध्यक्षके कार्य थे। इन धातुओंको बर्तन आदिमें परिवर्तित करनेका कार्य दूसरे विभागोंका था। जैसे—

लोहाध्यक्ष

यह निम्न-श्रेणीकी धातुओंका अध्यक्ष था। यह ताँबा, सीसा, टीन, वैकृन्तक, पीतल, काँसा आदि धातुओंसे अनेकों वस्तुएँ बनवाता था।

लक्षणाध्यक्ष

यह सिक्के बनानेवाले विभागका अध्यक्ष था। प्रत्येक प्रकारके सिक्के यह बनवाता था।

सुवर्णाध्यक्ष

यह उस विभागका अध्यक्ष था, जिसमें सुवर्णके पात्र एवं आभूषण तैयार किये जाते थे, और सोनेके सिक्के बनानेवाले विभागके अध्यक्ष सौवर्णिकका भी निरीक्षक था। इसके विभागका नाम 'अक्षशाला' था।

खन्यध्यक्ष

यह बहुमूल्य प्रस्तर, शंख, मुक्ता और क्षार आदिको सुसंस्कृत करके विक्रयके योग्य बनवाता था।

लवणाध्यक्ष

यह शुद्ध किये हुए नमकको विक्रय करता था तथा बाहरसे आये हुए नमकपर सरकारी लगान वसूल करता था।

कुप्याध्यक्ष

इसका कार्य वनोंमें उत्पन्न हुए काष्ठादिका संग्रह करना तथा उसी काष्ठादिकी वनोंमें ही अनेकों वस्तुएँ बनवानेका था। यह चर्म-सम्बन्धी वस्तुओंके विभागका भी अधिकारी था।

आयुधागाराध्यक्ष

नियत समयपर, नियत वेतनपर, अनुभवी कर्मचारियों द्वारा अनेकों अस्त्र-शस्त्र, आयुध और लड़ाईकी वस्तुओंके निर्माण करानेका कार्य इसको सुपुर्द था। दुर्गोंकी

रक्षा एवं बैरियोंके बड़े-बड़े नगरोंके विनाशकारी यन्त्रोंका निर्माण भी इसीके विभागमें होता था। इसका कार्य निम्न-लिखित श्लोकने स्पष्ट हो जाता है—

"इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्देयम्।
क्षयव्ययौ च जानीयात् कुप्यानामायुधेश्वरः ॥"

सूत्राध्यक्ष

सरकारी कार्योंके लिए सूत्र, वर्म, वस्त्रादिक तैयार करनेवाले विभागका अध्यक्ष था।

सीताध्यक्ष

खाद्य अनाजोंकी उत्पत्ति जो सरकारी भूमिमें होती थी, उनका निरीक्षण करता था। सीताध्यक्षको कौटिल्यने 'कृषितन्त्रगुल्मवृक्षायुर्वेदज्ञ' लिखा है। इसका विभाग आधुनिक ऐग्रीकल्चर विभागके सदृश था।

सुराध्यक्ष

यह सुराकी तैयारी करनेवाले विभागका अध्यक्ष था तथा साधारण व्यक्तियोंकी मद्यशालाओंका निरीक्षण भी करता था। प्राइवेट मद्यशालाओंसे राज्यकर वसूल करके राजकीय कोषमें पहुँचाता था।

नावाध्यक्ष

इसका कार्यक्षेत्र बड़ा दायित्त्वपूर्ण था। राजकीय नावों और जहाज़ोंका निरीक्षण करता था। समुद्री किनारोंके ग्राम-निवासियोंको क्लृप्त नामी कर देना पड़ता था। यह कर नावाध्यक्ष ही संग्रह करता था। जो लोग शंख, मुक्ता आदि खोजनेके लिए राजकीय नावोंका प्रयोग करते थे, उनको 'नौकहाटक' शीर्षक कर देना पड़ता था। राजकीय पोतोंपर बैठनेवाले यात्रियोंसे 'यात्रा-वेतन' लिया जाता था। इनके अतिरिक्त समुद्र, झील और नदियोंपर अनेकों कर वसूल किये जाते थे। नावाध्यक्ष उपर्युक्त करोंके संग्रह करनेवाली मेशीनरीका एकान्त निरीक्षक था।

गोऽध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष

यह दोनों अधिकारी विवीताध्यक्षके अधीनस्थ थे। अश्वाध्यक्षका सेना-विभागसे घनिष्ट सम्बन्ध था। युद्ध-कालमें अश्व इसके विभागसे ही लिए जाते थे। अश्वोंको सांग्रामिक कार्योंके लिए उपयुक्त बनानेवाले विभागका अश्वाध्यक्ष निरीक्षण करता था।

हस्त्यध्यक्ष

हस्त्यध्यक्षका भी अश्वाध्यक्षके सदृश सेना-विभागसे घनिष्ट सम्बन्ध था। युद्धके लिए इसके विभागसे ही हाथी लिए जाते थे। हाथियोंको समर-भूमिके उपयुक्त बनानेवाले विभागका हस्त्यध्यक्ष निरीक्षक था। राजा तथा उसके स्वजनोंकी आवश्यकताओंके अनुसार उनको घोड़े और हाथी देना भी अश्वाध्यक्ष तथा हस्त्यध्यक्षका कर्तव्य था।

रथाध्यक्ष

रथाध्यक्षको उपर्युक्त तीनों अध्यक्षोंकी तरह सेना-विभागसे सम्बन्ध रखना पड़ता था। रथ ही उस कालमें समृद्धिशाली और मध्यस्थितिके मनुष्योंका मुख्य वाहन अथवा यान था। रथ हिन्दू-सेनाका एक अंग था। भारतमें बहुतसे युद्धोंका परिणाम रथाध्यक्षके चातुर्य एवं रथोंकी सुदृढ़तापर अवलम्बित होता था। बहुतसे राज्योंका भाग्य रथाध्यक्षकी दक्षतापर निश्चित हो चुका है। रथाध्यक्ष भिन्न-भिन्न प्रकारके रथ निर्माण कराता था। उनमें देवरथ, पुष्परथ, सांग्रामिक, पारियाणिक और परपुराभियानिक प्रधान रथ थे।

पत्यध्यक्ष

यह पैदल सेनाका अध्यक्ष था। सेनाकी कमज़ोरी दूर करके उसकी शक्तिकी वृद्धि करता था। वह मित्र और शत्रु राष्ट्रोंकी सेनाओंपर भी दृष्टि रखता था, और अपनी स्थितिकी उनकी स्थितिसे तुलना करके कमीको पूरा करनेके लिए अपने स्वामीसे कहता था। अधीनस्थ सेनाको नियमसे ड्रिल कराना पत्यध्यक्षका प्रधान कर्तव्य था। सैनिकोंको भिन्न-भिन्न युद्धोंकी विद्याका ज्ञान करानेवाले विभागका पत्यध्यक्ष निरीक्षक होता था।

सेनापति

सेनापति सेनाके चारों भागोंकी व्यवस्थाका निरीक्षण करता था, अर्थात् घुड़सवार, हस्तिदल, रथ और पैदल— इन चारों विभागोंके अध्यक्ष अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष,

रथाध्यक्ष और पत्यध्यक्षके कार्योंपर दृष्टि रखता था। ऊपर लिखा जा चुका है कि ये चारों अध्यक्ष सेना-विभागसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। यद्यपि यह प्रत्यक्षतः नहीं लिखा है कि ये चारों अध्यक्ष सेनापतिके आधिपत्यमें थे, तथापि चूँकि ये लोग सेना-विभागकी आवश्यकताओंकी पूर्ति किया करते थे, और समय-समयपर प्रधान सेनापतिकी आज्ञाका पालन करते थे, इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यावहारिक रूपमें ये सेनापतिके अधीन थे। उपर्युक्त कार्योंके अतिरिक्त सेनापति निम्न-लिखित कार्य और करता था—

(१) युद्धके लिए उपयुक्त स्थान निश्चय करना।
(२) आक्रमण एवं युद्धारम्भका समय निश्चित करना।
(३) शत्रु-सेनाकी आवश्यक सूचना रखना।
(४) शत्रु-दलमें वैमनस्य करा देना।
(५) शत्रु-सेनाको तोड़ देना।
(६) निर्बल दलोंको नष्ट कर देना।
(७) शत्रुके क़िलोंको तोपदम करना।
(८) अपनी सेनाकी मज़बूतीका ध्यान रखना।
(९) शत्रुके विविध प्रकारके प्रहारोंको रोकना।

प्रतिदिन ४॥ बजेसे ६ बजे तक सेनापति राजासे सेनाके विषयमें वार्तालाप करता था।

नागरक

नगरका प्रधान अफ़सर नागरक होता था। लोक-परिगणना (मर्दुमशुमारी) विषयक कार्यके लिए नगरको चार भागोंमें विभाजित किया जाता था। प्रत्येक भागमें एक अफ़सर, जिसका नाम स्थानिक था, रहता था। स्थानिकके अधीनस्थ बहुतसे 'गोप' रहते थे, जो प्रत्येक गृहसे विशेष पृष्टव्य बातें पूछते थे। विशेष ज्ञातव्य विषय थे—(१) जाति, (२) गोत्र, (३) स्त्री-पुरुषोंके नाम और व्यवसाय तथा (४) उनका आय-व्यय।

नागरकको अग्निकांड न होने पावे, इसका विशेष ध्यान रखना पड़ता था। गरमियोंमें दिनके उष्णतम भागोंमें मकानके अन्दर आग जलाना मना था। गृहके निवासियोंको अग्निको बुझानेके लिए निम्न-लिखित वस्तुओंसे सुसज्जित रहना पड़ता था—(१) पाँच पानीकी बाल्टियाँ, (२) जलकुम्भ,* (३) काष्ठकी जलकी नली जो मकानके द्वारपर रखी रहती थी, (४) नसैनी, (५) कुल्हाड़ी, (६) रस्से और (७) कोष्ठागार आदिसे वस्तुएँ हटानेके लिए चमड़ेके टोकरे। गृहस्वामियोंको रात्रिको मकानके दरवाज़ेके सहारे सोना पड़ता था, जिससे समय पड़नेपर उनको फौरन जगाया जा सके। बड़ी-बड़ी सड़कोंपर सहस्रों जलकुम्भ भरे रहते थे। अग्नि बुझानेमें सहायता न करना जुर्म समझा जाता था। अग्निसे इतना भयभीत होनेका कारण यह था कि इमारतोंमें उन दिनों लकड़ी ख़ूब इस्तेमाल की जाती थी।

नगरकी शान्ति और व्यवस्थाका चार्ज भी नागरकको ही था।

स्वास्थ्य और सफ़ाईका भी इसी अधिकारीको ध्यान रखना पड़ता था।

इस लेखमें प्रमुख अधिकारियोंका संक्षिप्त वर्णन लिखा गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्यका नाम राजनीतिज्ञोंकी नामावलीमें क्यों अग्रगण्य समझा जाता है। उसका अर्थशास्त्र वस्तुतः शासन-सम्बन्धी ज्ञानका भांडार है।

* हिन्दुओंके यहाँ विवाहादि तथा अन्य शुभ अवसरोंपर द्वारके दोनों ओर पानी भरे कलश या घड़े रखे जाते हैं, जिन्हें लोग मंगल-चिह्न समझते हैं। शायद इनकी व्युत्पत्ति कौटिल्य-कालीन इसी नियमसे होगी।

—सम्पादक

जीवन

श्री बालकृष्ण राव

(१)

विकसाकर कमलोंको है,
रवि-रम्य-रूप छिप जाता ;
उकसाकर कुमुदावलिको,
है रजनीकर छिप जाता।
मुरझाने लगती कल ही,
है कली आज जो खिलती ;
पलमें जागृति-जलनिधिसे,
सरिता स्वप्नोंकी मिलती।

(२)

यह ज्योति नहीं, ज्वालाकी
है मनोमोहिनी माया ;
रजनी रविकी अनुगामिनि,
तम है प्रकाशकी छाया।
क्षणभंगुरता ही जीवन
की है सच्ची परिभाषा ;
अनुभूति निराशा है यदि,
जीवन-विभूति है आशा।

(३)

स्मृति-सौख्य-स्वर्ग पानेका,
विस्मृति है पन्थ दिखाती ;
जगका जगना सपना है,
निद्रा यह हमें सिखाती।
अति कुशल कल्पना कविकी,
भावोंके नभमें उड़ती ;
फिर प्रेम-पवन प्रेरित हो,
जीवन बन मनसे जुड़ती।

(४)

प्रतिमाएँ पुण्य-प्रणयकी,
मन-मन्दिर मंडित करतीं ;
वर देना दूर, पुजारी
की शक्ति-याचना हरतीं।
मधुपोंको सिखलाता है,
रे मन ! जो गुंजन करना ;
सुमनोंको वही सिखाता,
अव्यक्त व्यथासे मरना।

(५)

"मधु पाकर मधुमय होंगे,"
मधुकर कहते मन मारे ;
"मधुमय हो मधु पाओगे,"
कह रहे कुसुमगण सारे।

× × ×

मिलनेका मार्ग मिलेगा,
विच्छेद सहन करनेमें ;
जलनेमें शीतलताका,
पथ जीवनका मरनेमें।

———

नज़र पड़ गई थी !

श्री सत्यकाम विद्यालंकार

कुसुमकी बैठकमें नैनीतालके सुन्दर सरोवरका एक बड़ा चित्र लगा हुआ था। इस चित्रको वह लगातार दो वर्षोंसे देखती आ रही थी। जबसे उसका विवाह हुआ है, यह चित्र उससे भी पहलेसे इस बैठकमें लगा हुआ है। कुसुमको चित्रकलाका शौक़ था। विवाहसे पूर्व उसने अनेक चित्र बनाये भी थे, मगर उसने उनका कभी संग्रह नहीं किया था। विवाहके बाद नये वातावरणमें उसे चित्रकलाकी तरफ़ ध्यान देनेका अवकाश ही नहीं मिला। अब इतने अरसेके बाद उसके जीमें आया कि वह भी एक सुन्दर-सा चित्र तैयार करे। नैनीतालके इसी चित्रके आधारपर उसके दिलमें एक भाव आया, और उसने एक चित्र तैयार करना शुरू कर दिया।

कुसुम चाहती थी कि अपना यह चित्र वह बिलकुल चुपचाप और ऐसे ढंगसे तैयार कर ले कि उसके पतिको यक़ीन ही न आये कि वह चित्र उसीका बनाया हुआ है। वह अपने पतिको चकित कर देना चाहती थी, इसीलिए जब उसके पति दफ़्तर चले जाते, तो वह उसे तैयार करने बैठती और उनके लौटनेसे पहले ही उसे छिपाकर रख लेती।

विवाहके बाद दम्पतिपर मानो स्नेहकी एक बाढ़-सी आ जाती है। दोनों उसमें शराबोर होकर और सब कुछ भूल जाते हैं, मगर यह दशा बहुत दिनों तक नहीं रहती। कुसुमके साथ भी यही हाल हुआ था। स्नेहकी बाढ़ उसके पति तथा उसपर से होकर निकल गई थी, और अब, विवाहके चौबीस महीनों बाद, उसके पतिके लिए संसारमें केवल कुसुम-ही-कुसुम नहीं रही। कुसुमके साथ-ही-साथ उसे और चीज़ें भी दिखाई देने लगीं—अपने दोस्त, अपना आफ़िस, अपना कारोबार। कुसुमको भी अब अपने 'प्राणबाबू'से फ़ुर्सत मिलने लगी, और यही कारण था कि उसका ध्यान चित्रकलाकी तरफ़ आकृष्ट हुआ।

आख़िर पूरे पाँच सप्ताहकी मेहनतके बाद कुसुमका चित्र तैयार हो गया, और उसका हृदय आज ही अपने प्राणप्रियको यह चित्र दिखानेके लिए अधीर हो उठा मगर प्राणबाबूके दफ़्तरसे लौटकर आनेमें अभी पूरे तीन घंटे शेष थे। कुसुमके लिए ये तीन घंटे तीन युग हो गये थे। मानो दुनिया चलते-चलते ठहर गई हो।

वह चाहती यह थी कि अब आँख मींचे और पूरे ४ बजे खोले। उसने आँखें बन्द भी कीं, मगर आँखें बन्द करते ही उसका मस्तिष्क इतनी ज़ोरसे चक्कर खाने लगा कि वह चौंककर उठ बैठी—अभी आँख मींचे सिर्फ़ आध घंटा ही बीता था!

जैसे-तैसे तीन घंटे गुज़र ही गये। कुसुम अब प्रतिक्षण प्राणबाबूके पधारनेकी इन्तजारमें थी। हवासे पत्ता भी खड़के तो वह चौंककर उठ बैठती। एक बार सचमुच ही उसे किसी मनुष्यके आनेकी आहट सुनाई दी। दरवाज़ा भी खुलता-सा नज़र आया। कुसुम दरवाज़ेकी ओर लपकी, मगर देखा तो वह साहब प्राणबाबूके एक अन्तरंग मित्र थे। उन्हें देखते ही कुसुमका चेहरा फीका पड़ गया।

उन्होंने पूछा—"क्या अभी तक नहीं आये ?"

"हाँजी, अभी तो नहीं आये।"—कुसुमने जवाब दिया।

मित्रने बड़े रंजसे कहा—"मुझे ज़रूरी काम था।"

कुसुमको उनके मित्रके मुखपर दुःखकी रेखा देखकर कुछ सन्तोष हुआ, कुछ सहानुभूति भी हुई। दुःखमें समदुःखी ही प्रिय मालूम होते हैं।

इतनेमें वे भी आ गये। कुसुमने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। मुँह धोनेको ठंडा पानी

दिया और खानेको फलोंकी तश्तरी सामने रखी। तीनों मेज़के तीन ओर बैठ गये। कुसुमने सोचा—"यह अच्छा अवसर है।"

तसवीरकी बात कुसुमके कंठ तक आ-आकर कई बार लौट गई। इस बार उसने कह डालनेका ही निश्चय किया, मगर, अफ़सोस, प्राणबाबूके मित्र बीचमें ही बोल उठे—"प्राणबाबू, आज तो बड़ी गरमी रही, मारे गरमीके दम निकल गया।"

कुसुम खिझ गई। दिल-ही-दिलमें उसने कहा—"निकल ही जाता, तो अच्छा था। मैं खुलकर बात तो कर सकती।"

इसके बाद कुसुमको कोई उपयुक्त अवसर हाथ न लगा। दोनों मित्र बड़ी देर तक बेसिर-पैरकी हाँकते रहे। नाश्तेके बाद कुसुम किसी-न-किसी बहाने बाबू साहबके पीछे-पीछे रही, अनेक बार वह तसवीरकी बात कंठ तक लाई भी, मगर बाबू साहब अब टेनिस-क्लबमें जानेकी तैयारीमें मशगूल थे। उन्हें इस वक्त सिवा टेनिस और टेनिस-बॉलके कुछ सूझ ही नहीं रहा था। पैन्ट कसते ही वे रैकेट हाथमें घुमाते हुए दरवाज़ेकी तरफ़ लपके। कुसुम दौड़कर दरवाज़ेपर पहुँची और बोली—"मुझे एक बात कहनी है, एक क्षण ठहरो।"

प्राणबाबू—"मैं अभी आया—बस, आध घंटेमें।" कहते हुए मित्रके साथ क़दम-से-क़दम मिलाते हुए टेनिस-ग्राउण्डकी ओर बढ़ चले। कुसुम दिल मसोसकर रह गई।

खेलकर आये, तो बाबू साहब पलंगपर चित्त लेट गये। शरीरपर पसीनेके परनाले चल रहे थे। मुँहसे गरमीकी 'हाय' 'हाय' निकल रही थी। ऐसी दुर्दशामें कुसुम अपनी तसवीरको दिखलाकर उसका अपमान नहीं करना चाहती थी। उसने सोचा—"नहा-धो लें, तब कहूँगी।"

नहा-धोकर प्राणबाबू गुसलखानेसे सीधे रसोईघर पहुँच गये। वहाँ खा पीकर बैठकमें पहुँचे। बैठक सजी हुई थी। दीयेकी हल्की-सी रोशनी बैठकमें जान डाल रही थी। प्राणबाबू सोफ़ेपर जा पड़े।

कुसुम ऐसे ही अवसरकी तलाशमें थी। तसवीर आँचलमें छिपाये वह धीरे-धीरे प्राणबाबूके पार्श्वमें जा बैठी, मगर बात कैसे छिड़े? वह एकदम तसवीर भी सामने नहीं कर देना चाहती थी। न-मालूम प्राणबाबू किस मनोवस्थामें बैठे हों। अतः तसवीर दिखलानेसे पूर्व उसके अनुकूल वातावरण बना लेना आवश्यक था।

प्राणबाबूकी समाधि तोड़नेके लिए कुसुमने वे सब कौशल किये, जो शायद मेनकाने ऋषि विश्वामित्रकी समाधि भंग करनेके लिए किये होंगे। विश्वामित्रकी तरह प्राणबाबूकी भी समाधि भंग तो हो गई, मगर कुसुमका काम न बना। प्रस्तावना अभी पूर्ण भी न हुई थी कि किसी बातपर मतभेद खड़ा हो गया। बात ही बातमें तकरार हो गई। कुसुमकी आँखोंसे सावन-भादोंकी धाराएँ चल पड़ीं। बाबू साहब भी डेढ़ बालिश्तका मुँह लटकाये लम्बे पड़ गये। कुसुमको बादमें अनुभव हुआ कि वह अनुकूल वातावरण बनानेकी कोशिश ही न करती, तो अच्छा था।

दूसरे दिन प्राणबाबू जब दफ़्तरके लिए जाने लगे, तो कुसुमने दरवाज़ा रोक लिया।

"क्यों, क्या बात है?"—कहते हुए प्राणबाबूने कुसुमके गुस्सीले गालोंपर प्यारकी एक चपत जड़ दी।

कुसुमने कहा—"बात क्या है? बस, आज दफ़्तर न जा सकोगे।"

"किसलिए?"

"मेरी मर्ज़ी।"

"फिर भी; मर्ज़ीका कारण?"

"कारण कोई ख़ास नहीं।"

"ख़ास नहीं, आम ही सही; कोई तो होगा ही।"

"हाँ, मगर तुम अन्दर चलो, तो बतलाऊँ।"

"और दफ़्तर……"

"दफ़्तर भी चले जाना। पाँच मिनटमें दफ़्तर

नहीं उठा जाता। मैंने तुम्हें पहले भी कभी रोका है ?"

प्राणबाबूने इतने उत्कट हठका विरोध करना ठीक न समझा। बोले—"अच्छा, चलो, अन्दर ही सही।"

आगे-आगे कुसुम भागी गई, परन्तु न-जाने क्या बात हुई कि कुसुमका उत्साह अलमारी तक पहुँचते ही निर्जीव-सा हो गया। उसने अलमारीकी एक-एक चीज़को दस-दस बार उलट-पलटकर देख लिया, मगर वहाँ चित्र क्या, चित्रका निशान तक भी न था। एक बार तो कुसुम पसीना-पसीना हो गई, मगर एकाएक उसे याद आई, और वह दौड़ी-दौड़ी शयनगृहमें पहुँची। वहाँ तकियेके नीचे चित्र रह गया था।

चित्रको जल्दीसे उठाकर वह प्राणबाबूके दिखलानेके लिए बैठककी ओर चली। इस समय उसका रोम-रोम हर्षित हो उठा था। ज़मीनपर क़दम नहीं पड़ता था। उड़ती हुई बैठकमें पहुँची।

मगर हाय! वह कहाँ गये? प्राणबाबू मौक़ा देखकर चम्पत हो गये थे। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि छोटीसी बातको ले बैठना, इन औरतोंका स्वभाव होता है।

कुसुम भागी हुई दरवाज़ेपर पहुँची, मगर वहाँ कौन था? दरवाज़ा निश्चिन्ततासे खुला पड़ा था। कुसुमने किवाड़में से सड़ककी तरफ़ झाँककर देखा, वहाँ भी नज़र नहीं आये। सड़क सुनसान पड़ी थी। दूर, आस्मानपर एक चील अपने पर फैलाये उड़ रही थी। पूर्व दिशामें बादलका एक सफ़ेद टुकड़ा पर्वतके शिखरपर ऐसा थमा हुआ था, मानो किसीने उसे वहाँ बाँध दिया हो। पथराई-सी आँखोंसे देर तक वह उसी ओर देखती रही। शून्य आकाशकी तरह आज उसका हृदय भी शून्य था।

घायल दिलको हाथोंमें थामे कुसुम जब बैठकमें लौटी, तो उसके आँसुओंका बाँध टूट चुका था। आखिर एकान्त ही में वह बच्चोंकी तरह फूट पड़ी।

जिस वेदनासे कुसुमकी आत्मा रो उठी थी, वह साधारण न थी। कुसुमने प्रथम बार आज यह अनुभव किया कि उसके जीवन-धन उसे प्यार नहीं करते। कुसुम केवल उनका प्यार पानेके लिए ही जी रही थी, और सौभाग्यसे उसे यह सच्चा अभिमान था कि उसने अपने पतिका हृदय जीत रखा है। आज उसका वह चिरपालित अभिमान इस ज़रासी घटनाने तोड़ दिया, इसीलिए वह फूट-फूटकर रोने लगी।

परन्तु इस सम्पूर्ण दुर्घटनाका उत्तरदायित्व तो उस अभागे चित्रपर ही था न, जिसे उसने बड़ी उमंगोंसे तैयार किया था, और जिसे दिखलाकर वह अपने प्राण-प्यारेके मुँहपर प्यार-भरी मुसकराहटकी कल्पना करके कई बार हर्षकी कँपकँपी भी अनुभव कर चुकी थी, मगर परिस्थितियोंने उसके कोमल हृदयके उन सब मधुर मंसूबोंको इतनी निर्दयतासे कुचल डाला कि उसे मार्मिक वेदना अनुभव हुई। कुसुमको अनुभव होने लगा, मानो किसी निर्दयीने उसके हृदयकी मणि निकाल ली हो, अथवा क्रूर आँधीने उसकी क़िस्मतका दिया बुझा दीया हो।

अपने कुचले हुए मान और तिरस्कारसे ठुकराये हुए प्यारको लेकर अब वह किस तरह अपने पतिके सम्मुख जा सकेगी? आत्म-ग्लानिके मारे उसके प्राण स्वयं घुटे जा रहे थे। ज़मीन जगह देती, तो उसमें समा जानेमें उसे इस समय ज़रा भी संकोच न होता।

चित्र सामने ही पड़ा था। कुसुमने उसे क्रोधसे उठाया और ज़मीनपर दे पटका। बादमें उसे पैरों-तले अच्छी तरह रौंद डाला। जब इतनेपर भी शान्ति न हुई, तो उसकी धज्जियाँ उड़ा दीं। कुसुम यदि उसे इससे भी अधिक कठोर दंड दे सकती, तो देती। चित्रपर उसके दिलमें जो तीव्र क्रोध उठा था, वह शान्त ही न होता था। इस चित्रने उसे इतनी देर तक ठगा था—उसीने उसका तिरस्कार करवाया था—ये दोनों अपराध क्या इतने भीषण नहीं थे कि उसे मृत्यु-दंड न दिया जाता? बेचारे चित्रकी क़िस्मत!

जिन हाथोंने उसे बनाया था, उन्हींने बिगाड़ दिया। कमरेके फ़र्शपर इस तरह चीथड़े होकर पड़े हुए वह अपने और अपने निर्माता—दोनोंके भाग्योंपर रो रहा था।

रोते-रोते शाम हो गई। ४ बज गये। प्राणबाबूने धड़कते हुए दिलसे घरमें प्रवेश किया। कुसुम द्वारपर खड़ी होकर रोज़ इसी समय उनके आनेकी राह देखा करती थी। आज द्वार सूना देखकर उनका माथा ठनका। ज़रूर कोई बात है!

अन्दर आये तो देखा कि एक विचित्र सन्नाटा छाया है। सब चीज़ें यथास्थान रखी हैं, मगर सब बेजान हैं। घरकी शोभा, घरकी चेतनता, घरकी आत्मा रूठी पड़ी थी, घर निर्जीव क्यों न मालूम देता?

प्राणबाबू बैठकमें पहुँचे, तो देखा कुसुम अपनेमें सिमटी-सी हुई दरीपर पड़ी थी, मानो नदीका प्रवाह चढ़कर उतर गया हो। बाबू साहब नीचे झुके, और पासमें ही बैठ गये।

जैसे ओससे नहाई हुई कोई चम्पाकी अधखिली कली टूटकर नीचे आ गिरी हो, कुसुम भी उसी तरह निर्जीव-सी पड़ी थी। बाबू साहब कभी उसकी सुकुमारताका ख़याल करते, कभी अपनी निष्ठुरताका। अपने अपराधकी साक्षी उनका हृदय स्वयं दे रहा था, फिर भी वह कुसुमके मुखसे ही अपना अभियोग सुनकर उससे दंडित होना चाहते थे। कुसुमके कंधेपर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा—"क्यों कुसुम, इस तरह क्यों पड़ी हो?"

"कुछ भी नहीं, यूँ ही पड़ी हूँ।"—कुसुमने भरे हुए गलेसे उत्तर दिया।

"फिर भी कुसुम, यों ही का क्या मतलब? तुम पहले तो इस तरह कभी नहीं रूठी? देखो प्यारी, तुम्हारा सब तकिया गीला हो गया। मालूम होता है, घंटों रोई हो? बतलाओ, क्या बात है?"—प्राणबाबूने बड़ी कोमलतासे कहा।

कुसुमने सोच रखा था कि अब वे आयेंगे, तो कभी बोलूँगी भी नहीं। वे हज़ार कहें, मैं एक न कहूँगी। मगर प्राणबाबूके शब्दोंमें इतनी गहराई थी कि कुसुमका वह दृढ़ निश्चय एकदम टूट गया। अपने ही आँसुओंमें डूबी हुई आँखोंको थोड़ासा उठाकर वह बोली—"बात, पहले तो कोई है ही नहीं। यों ही दिलमें आया और रो पड़ी। अगर कोई बात हो, तो भी आपको क्या? मैं ख़ुद निबट लूँगी।"

प्राणबाबू इस उपालम्भका अर्थ समझ गये। 'आपको क्या'—इन शब्दोंमें कितना व्यंग था। बाबू साहब बोले—"मुझको नहीं, तो किसको होगा? मैं क्या तुम्हें प्यार नहीं करता?"

इस प्रश्नका उत्तर आज तक किसी प्रेमीने शब्दोंमें नहीं दिया। फिर भी प्रत्येक प्रेमी अपने प्रणयीसे इसे अनादिकालसे पूछता आया है। कुसुमके तो यह दिलका प्रश्न था। बाबू साहबने स्वयं पूछ लिया, तो कुसुम इसका उत्तर देनेसे क्यों पीछे हटती। उसने कहा—"आप प्यार करते होते, तो मुझे इस तरह तड़पते हुए छोड़कर न चले जाते। आप प्यार नहीं करते, यही तो बात है। आप करें भी क्यों? मैं अभागी न रूपवतियोंमें हूँ, न ऊँचे घरकी हूँ। इसमें आपका भी क्या दोष?"

प्राणबाबू इस चोटको न सम्हाल सके। कुसुमने उनके मर्मपर आघात किया था। दिलकी चोटको सम्हालते हुए वे बोले—"कुसुम, ऐसा न कहो। तुम रूपवती भी हो और ऊँचे घरकी भी। तुम जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ—ख़ूब अच्छी तरह जानती हो। मैं यदि तुम्हें प्यार नहीं करता, तो किसीको नहीं करता। शेष रही जानेकी बात! सो दफ़्तरका समय था, चला गया। मुझे इस तरह जाना नहीं चाहिए था, यह मैं अब अनुभव करता हूँ। इसका मुझे दुःख है—हार्दिक दुःख है।"

मानिनियोंकी मानलीला प्रियतमकी क्षमायाचनाके आगे एक क्षण भी नहीं ठहर सकती। प्रियतम हृदयमें

स्थान दे, तो वे चरणोंमें रहती हैं। प्रियतम आँखोंमें बसाये, तो वे क़दमोंपर झुकती हैं।

कुसुमकी भी मानलीला समाप्त हो गई। सुलहकी ख़ुशीमें उस दिन दोनों सिनेमा देखने चले गये। कहना नहीं होगा कि सिनेमा-हॉलमें चित्रपट देखनेकी अपेक्षा वे दोनों आपसमें बहुत धीरे-धीरे बातचीत ही अधिक करते रहे, मगर अबकी इस मान-मनौवलके सम्बन्धमें उन दोनोंमें इस समय कोई बात नहीं हुई।

सोनेसे पहले प्राणबाबूने कुसुमके घुँघराले केश-कलापको उँगलियोंसे सहलाते हुए पूछा—"प्यारी! तुम इतनी-सी बातसे इतना नाराज़ क्यों हो गई थी?"

कुसुमने अपनी दोनों बड़ी-बड़ी आँखोंको प्राणबाबूकी तरफ़ फेरते हुए कहा—"और मैं कर ही क्या सकती थी?"

"क्यों? तुम भी जब कभी मैं तुम्हें बुलाता, तो इसका बदला ले लेती!"—प्राणबाबूने तपाकसे उत्तर दिया।

कुसुमने कहा—"यही तो हमसे नहीं होता। विधाताने दिल ही ऐसा दे दिया है, इसीका तो रोना है!"

प्राणबाबू कुछ क्षणोंके लिए चुप हो गये। कुसुमके प्राण अधीर हो उठे। उसने बड़ी आतुरतासे कहा—"क्यों! रूठ गये क्या?"

प्राणबाबूने कहा—"नहीं, मैं क्यों रूठूँगा? हाँ, उस समय तुम मुझे दफ़्तर जानेसे क्यों रोक रही थी?"

कुसुमके सामने अपनी महीने-भरकी मेहनतसे बनाया हुआ वह चित्र घूम गया, उसके हृदयको बड़ी ठेस पहुँची। तो भी ज़बरदस्ती मुसकराकर उसने कहा—"मैं नहीं बताऊँगी! उस वक्त तो मुझे रुलाकर चले गये। अब बातें बनाते हो!"

प्राणने बहुत तरहसे प्रयत्न किया कि वह कुसुमके मुँहसे उस अनुरोधका कारण जान लें, मगर वह बतानेको तैयार ही नहीं हुई। वास्तवमें उसे अपने रोषपर कुछ लज्जा-सी अनुभव होने लगी थी। सोचती थी, ये सुनेंगे, तो क्या कहेंगे! ज़रासी बातपर नाराज़ होकर अपनी महीने-भरकी मेहनत बरबाद कर दी। कुसुमके लिए अब उस चित्रका इसके अतिरिक्त और कोई उपयोग क्या रह गया था कि उसकी बात न बताकर वह अपने प्राणप्यारेकी उत्सुकताको और भी अधिक बढ़ाये।

अन्तमें हार मानकर प्राणबाबूने एक नई बात छेड़ दी। उन्होंने पूछा—"अच्छा, तुम एक चित्र तैयार कर रही थी न? वह पूरा हुआ या नहीं?"

कुसुमका दिल ज़ोर-ज़ोरसे धड़कने लगा। वह चकित हो गई कि इन्हें चित्रकी बात कैसे मालूम हो गई। तो भी उसने अनजान-सी बनकर कहा—"कौनसा चित्र?"

"वही, जिसे तुम तैयार कर रही थीं!"

"कहीं सपना तो नहीं देख रहे? मैं कौनसा चित्र तैयार कर रही थी?"

"वाह, तुम्हें बनाना ख़ूब आता है। जैसे मैंने उसे देखा ही न हो!"

"तुमने कौनसा चित्र देखा है?"

"वही, जिसमें एक बड़ी झीलपर एक छोटीसी नाव तैर रही है, और उसपर बैठकर तुम डाँड़ चला रही हो!"

"मैं?"

"हाँ, अगर तुम नहीं तो तुम्हारी तसवीर!"

"तुमने यह चित्र कहाँ देखा?"

"तुम्हारे कपड़ोंके बक्समें।"

कुसुम चुप हो गई। उसका दिल अब भी बड़े वेगसे गति कर रहा था। सहसा उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने अपनेको सम्हालनेका प्रयत्न किया, परन्तु सम्हाल न सकी। प्राणबाबू उठकर बैठ गये; उन्होंने कुसुमको अपने और भी निकट खींचकर बड़े प्यारसे कहा—"क्यों! चुप क्यों हो गई?"

कुसुम अब भी चुप थी। तो फिर उसकी वह

सम्पूर्ण उत्सुकता, सम्पूर्ण धड़कन और सम्पूर्ण व्यथा क्या यों ही बिलकुल अकारथ थी ! एक विचित्र-सी अनुभूतिने उसके शरीर-भरको रोमांचित-सा कर दिया।

प्राणबाबूने समझा कि शायद कुसुम इस बातसे नाराज़ हो गई है। उन्होंने कैफ़ियत देनी शुरू की—"परसों जब मैं आफिस जाने लगा, तो मैंने देखा कि मेरे कोटमें कोई रूमाल नहीं है। जल्दीमें मुझे अपने सूटकेसमें भी कोई रूमाल नहीं मिला। तुम उस समय स्नानागारमें थीं, इसलिए मैंने तुम्हारे कपड़ोंका बक्स खोलकर एक रूमाल निकाल लिया। तभी मैंने वह चित्र देखा था।"

कुसुमका उद्वेग अब कुछ-कुछ मिटता जा रहा था। प्राणबाबूने कुसुमको बिलकुल निकट खींचकर पुनः पूछा—"वह चित्र समाप्त हुआ या नहीं ?"

कुसुमने कहा—"मैंने उसे फाड़ दिया !"

प्राणबाबूने चौंककर कहा—"क्यों ?"

कुसुमने अपने पतिकी छातीपर अपना सिर रखकर कहा—"क्योंकि उसपर तुम्हारी नज़र पड़ गई थी !"

कवीन्द्रके साथ ईरानको

श्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय

२२ वीं एप्रिलको दो दल बनाकर हम लोग शीराज़से रवाना हुए। इस बार साथमें कुछ लोग भी चले, क्योंकि एक ही बारमें यहाँसे इस्फ़हान जाना मुश्किल है। रास्तेके इन्तज़ामके लिए एक सरकारी अफ़सर साहब भी चले। मैं उन्हींकी गाड़ीपर सवार हुआ। इन अफ़सर साहबकी नीली आँखें, कच्चे जूट-से बाल और लाल लम्बा मुख मुझे अपने एक आयरिश मित्र मि० टीमथी ब्रीनका स्मरण कराते थे। यह बात भी याद पड़ी कि आयरिशोंमें यह किम्वदन्ती प्रचलित है कि उनके पुरखे, बहुत समय पहले, ईरान नामक देशके पहाड़ोंपर बसते थे। उसी ईरानसे ही उनके देशका नाम 'एरिन' पड़ा था। यह भी सुन रखा था कि आयरलैण्डकी आदि भाषा गेलिकमें अनेक ऐसे शब्द हैं, जो अब तक ईरानमें प्रचलित हैं। इन सब किम्वदन्तियोंके सत्यासत्यका निर्णय तो भाषातत्त्वके विशारद ही करेंगे।

शहरके बाहर निकलकर हम लोग थोड़ी देरके लिए खड़े हुए, और वहाँ शहरके अनेक गण्यमान्य सज्जनोंसे विदा ली। इस बार हम लोगोंका दल काफ़ी बड़ा था। तेहरानसे दो प्रतिष्ठित सज्जन कविकी अभ्यर्थनाके लिए आये थे, इनमें से एक थे अरहाब कैखुशरू शाहरुख (ये महाशय ईरानी मजलिस—पार्लमेंट—के सुपरिन्टेन्डेन्ट और वर्तमान शाहके अत्यन्त विश्वस्त कर्मचारी हैं और पारसी धर्मके अनुयायी हैं), जिनके साथ उनके छोटे बेटे शाह बैरम भी थे, और दूसरे थे श्री फ़ुरघी। ये तीनों साहब तथा बम्बईके पारसियोंको ईरानमें कारबार करनेकी सुविधा देनेकी जाँचके लिए जो पारसी आये थे, उनमें से एक महाशय मिस्टर मसानी और बढ़ गये। हमारा पुराना दल तो था ही।

पिछले पाँच वर्षोंमें इस देशकी सड़कों और रास्तोंमें बहुत उन्नति हुई है। चार-पाँच हज़ार मील लम्बी सड़कें बन गई हैं। चौकी-पहरेकी बदौलत आमद-रफ़्तमें ख़तरा भी कम रह गया है; फिर भी अब तक विदेशियोंके लिए यहाँ सफ़र करना—ख़ासकर इस हिस्सेमें—टेढ़ी खीर है। रास्ते प्रायः सभी कच्चे हैं,

और उनपर गाड़ी टूट-फूट जानेपर सहायता मिलनी भी मुश्किल है। इसके अलावा मामूली आदमियोंके लिए खाने-पीने और सोनेका इन्तज़ाम सिवा सराय या

पार्सिपोलिस—सामनेका साधारण दृश्य। पीछेके पहाड़में समाधि-गुफाएँ हैं

चट्टियोंके और कहीं सम्भव नहीं है, और इन सरायों और चट्टियोंका बन्दोबस्त अब तक भी मध्ययुगके समान

पार्सिपोलिस—पीछेके पहाड़से दृश्य

है। हम लोगोंका सब इन्तज़ाम करनेके लिए तेहरानके इन दोनों सज्जनोंको, हमारे कर्णधार आक़ा केहानको, स्थानीय राजकर्मचारियों तथा श्रीयुत ईरानीके साथी मि० मेहरबान नामक एक पारसी युवकको (जो पहले इस देशमें नौ वर्ष तक रह चुके थे) प्राणान्त परिश्रम करना पड़ा। इसलिए स्त्रियों और दलके नेताओंके लिए तो मोटे ढंगसे अच्छा प्रबन्ध हो जाता था, लेकिन छुटभइयोंकी हालत न पूछिये।

शीराज़ छोड़कर हमारी गाड़ियोंने इस्फ़हानकी तरफ़का रुख़ किया। इस बार हम लोग ईरानकी ऐतिहासिक भूमिपर होकर ही जा रहे थे। एक

ज़मानेमें यह स्थान संसारकी अन्यतम सभ्यताका केन्द्र था। खेद है कि मौजूदा ईरान आज अपने उस प्राचीन गौरवके महत्व और उसके विस्तारसे बिलकुल बेख़बर है। जो कुछ वह जानता है, वह केवल महाकवि फिरदौसीके 'शाहनामे' से ही जानता है, जिसका आधेसे ज्यादा हिस्सा कल्पना और किम्बदन्तियोंका संग्रहमात्र है। यूरोपियन साहित्यसे अनभिज्ञ ईरानीके निकट कुरुश कम्बुजकी समाधि और राजमहल 'मशद मुर्गाब' के नामसे, पार्सिपोलिस 'तख़्त-ए ज़मशेद' के नामसे और दरायबहुष (डेरियस) का समाधि-स्थल तथा शाशनियोंकी पहाड़पर खुदी हुई चित्रावली 'नक़्श-ए रुस्तम' के नामसे प्रसिद्ध हैं। भी बेख़बर हैं। फिर भी नये शाह और उनके तमाम सभासदोंके कानों तक प्राचीन ईरानकी जगत-विख्यात सभ्यताकी बातें अच्छी तरह पहुँच चुकी हैं।

बाईं ओरसे—फरुखी, शाह बैरम, शाह रुख़, हर्ज़फेल्ड और अरबाब कैख़ुशरो

रज़ाशाहकी 'पहलवी' उपाधि ही प्राचीन आर्य-फारसके प्रति उनकी श्रद्धा और भक्तिका परिचय देती है। इनकी
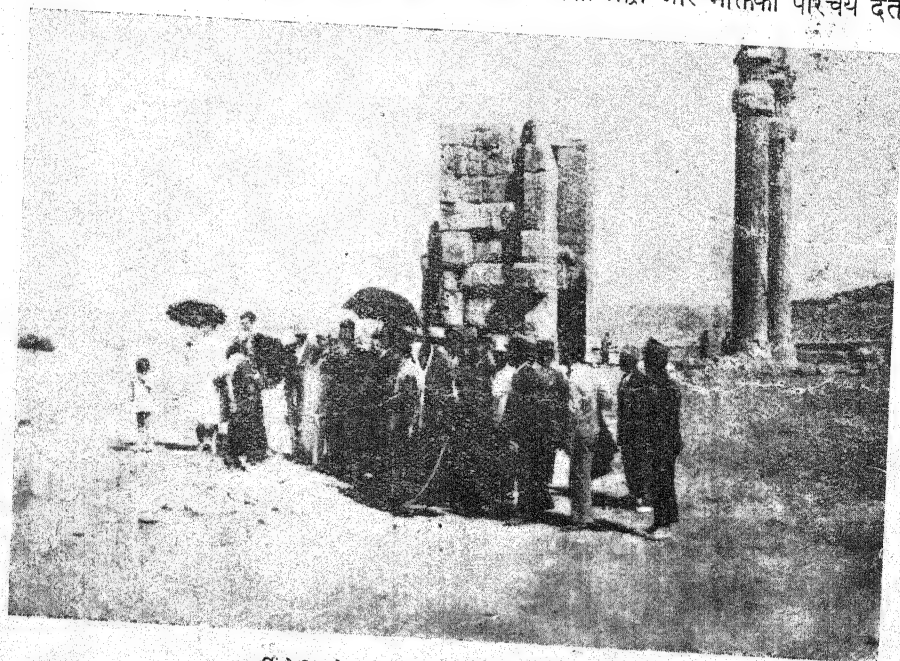
पार्सिपोलिसमें नान्दी-तोरणके पास रवीन्द्रनाथ

उदयपुरके राजपूत जिस प्रकार हल्दीघाटीके सम्बन्धमें बेख़बर हैं, ईरानके जनसाधारण उसी प्रकार हख़ामनिष्य, पार्थव और शाशानीय राज्य वंशोंके कीर्ति-चिह्नोंके संबंधमें

देखादेखी शिक्षित ईरानियोंने भी 'आर्य-ईरान' और 'आर्य-इस्लाम-धर्म' आदिके सम्बन्धमें गौरवपूर्ण बातें करनी शुरू कर दी हैं। इसके साथ ही 'सेमेटिक

इस्लाम'के सम्बन्धमें एक प्रकारके छिपे हुए विद्वेषके भाव भी दीख पड़ते हैं। इसका पहला चिह्न यह है कि अरब और मैसोपोटामियामें स्थित मुस्लिम तीर्थोंकी यात्राका विरोध किया जा रहा है, और मुल्लाओंकी क्षमता कम करनेकी व्यवस्था हो रही है। शिक्षित ईरानियोंका मत है कि पवित्र इस्लाम धर्मका पूर्ण विकास ईरानी दार्शनिकों और ईरानी आर्य-सभ्यताके अनुयायी महापुरुषों (इमामों) के द्वारा ही हुआ है। इन सब इमामोंमें अधिकांशके समाधि-स्थान इसी देश ही में है, इसलिए उनका कहना है कि तीर्थ-यात्राके लिए अथवा धर्मकी शिक्षा-दीक्षाके लिए ईरानियोंका दूसरे मुल्कोंमें जाना देशका पैसा विदेशको देनामात्र है। फारसी लिपिमें अनेक अरबी अक्षर घुस आये थे। अब धीरे-धीरे उन्हें भी निकाल बाहर करनेका प्रयत्न हो रहा है। उदाहरणके लिए अभी तक तेहरान शब्द 'तो' अक्षरसे लिखा जाता था, जो अरबी अक्षर था, मगर अब वह 'ते' से लिखा जाने लगा है।

नये ईरानके इन भावोंके साथ-साथ आर्य-भारतके प्रति आत्मीयताके कुछ-कुछ लक्षण भी दिखलाई पड़ते हैं। इसीका नतीजा यह है कि ईरानी पारसियोंके प्रति अन्याय और अविचार बन्द हो रहा है, और भारत माताके आश्रयमें रहनेवाले पारसियोंके प्रति भी कुछ खिंचाव दिखाई पड़ता है। विदेशी लोग कहते हैं कि भारतके पारसियोंसे वाणिज्य-व्यवसाय-सम्बन्धी तथा धनी पारसियोंसे आर्थिक सहायता प्राप्त करने लिए ही यह आकर्षण है, मगर इसमें सन्देह नहीं, कुछ आन्तरिक आकर्षण भी है।

× × ×

ईरानकी आर्य-सभ्यताकी बात इससे पहले लेखोंमें लिखी जा चुकी है। आर्य-सभ्यताका मूल क्या है, अर्थात् आर्योंने अपनी यह सभ्यता किस देशमें प्राप्त की थी, वह कहाँ और कैसे विकसित हुई, यह प्रश्न अभी
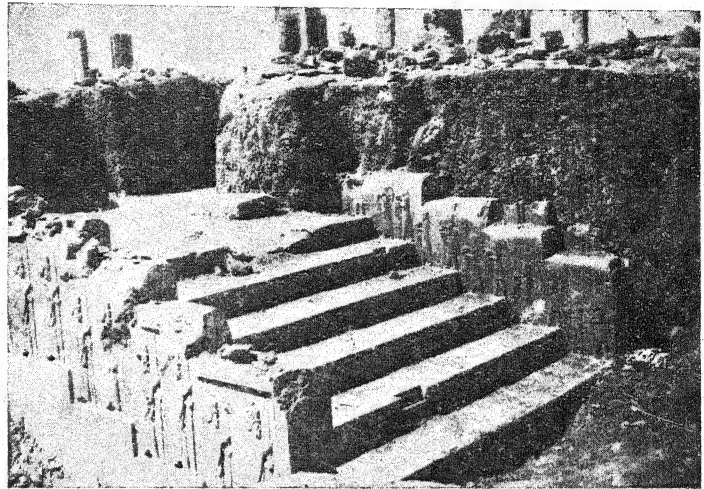
पार्सिपोलिस—दरायवहुषके प्रासादके पासकी सीढ़ियाँ

तक पूरी तरहसे हल नहीं हो सका। फिर भी यह बात ठीक मालूम पड़ती है कि उनकी सभ्यताका विकास एशिया महाद्वीपकी भूमिपर ही हुआ है। जो हो, इतिहाससे हमें पता लगता है कि ईसासे ६०६ वर्ष पूर्व बाबुल देशके राजा नबू-पाल-ऊधुर और मीडिया या माद देशके राजा हुवख्शत्र—इन दो आदमियोंने असुर देशको पराजित और निनेवाको ध्वंस किया था। माद देशके राजा हुवख्शत्र ईरान देशके उत्तरमें आर्य माद-जातिके अधिपति थे। प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्व-विशारद द मार्गनका मत है कि माद-जातिने ईसासे २००० वर्ष पूर्वके लगभग उत्तर ईरानमें प्रवेश किया था। इसके बाद असुर देशके इतिहासमें सन् ११०० ई० पू०, टिगलथ पिलेसर, सन् ८४४ ई० पू० द्वितीय शल्मानेसर, सन् ८१० ई० पू० तृतीय आदाद निरारी, सन् ७४४ ई० पू० चतुर्थ टिगलथ पिलेसर, सन् ७२२ ई० पू० द्वितीय सारगन आदि-आदि असुर राजाओंकी माद-जातिके विरुद्ध चढ़ाइयोंकी कथा मिलती है। परन्तु माद-जातिका अभ्युत्थान तथा उनका राजस्थापन इसी हुवख्शत्रके
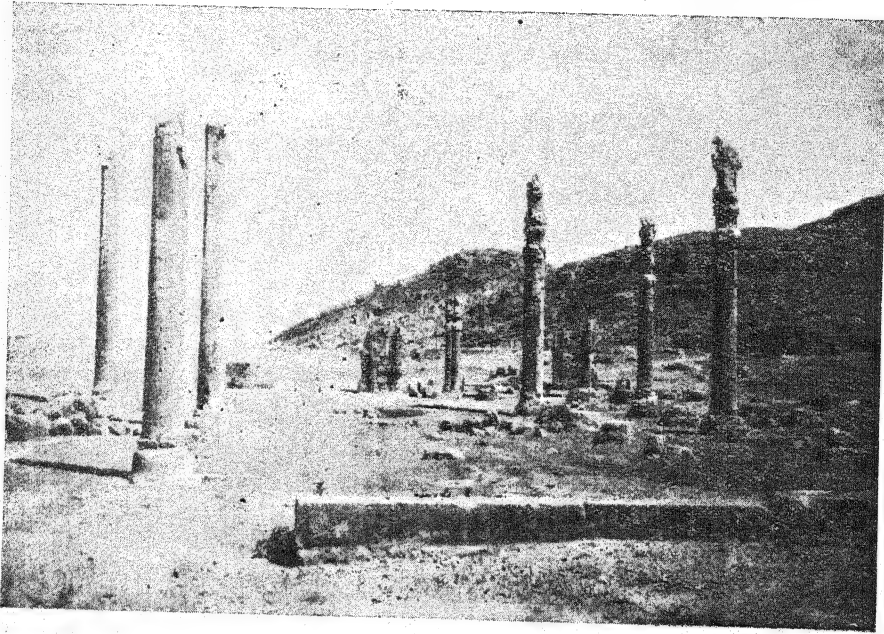
पार्सिपोलिस—सौखम्भा-महलका अवशिष्ट भाग

समयमें ही हुआ था। उनकी मृत्युके बाद (सन् ५८४ ई० पू०) इनके पुत्र इष्टबेगु अपने राज्यको क़ायम न रख सके।

पराजित करके ईरानपर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। इसी हखामनिष्य वंशके शासनकालमें ईरानने जगतव्यापी गौरव प्राप्त किया था। इसी वंशके
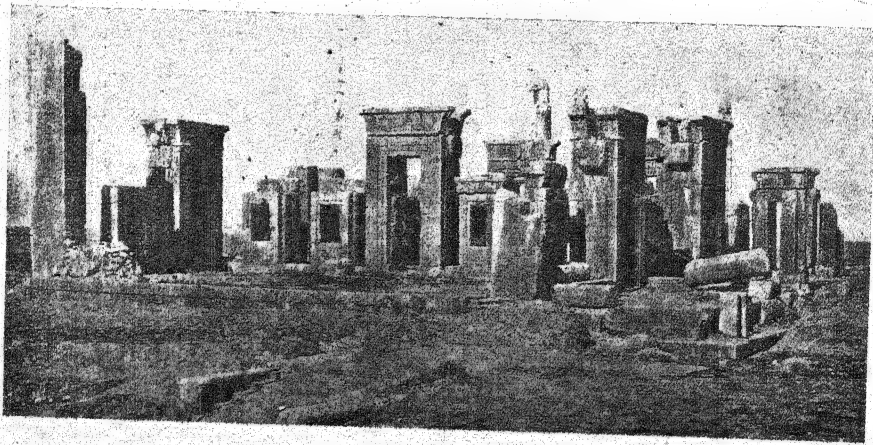
पार्सिपोलिस—दरायबहुषका प्रासाद

इस बीचमें ईरान अन्तर्गत आनशान देशके हखामनिष्यवंशीय आर्य राजगण प्रबल हो उठे थे। इस वंशके पाँचवें राजा (महान) कुरुशने इष्टबेगुको

कम्बुज, कुरुश (Cyrus), दरायबहुष, खषयर्ष (Xerxes), अर्तखोहयर्ष (Artaxeraxes) इत्यादि प्रबल प्रतापी राजाओंके राजत्वकालमें फ़ारसकी

आर्य-जातिने तथा फारस देशने प्राचीन सभ्य जगत्‌में शीर्षस्थान पाया था।

पार्सिपोलिसके प्रस्तर-चित्रोंमें आलंकारिक सजावट

ग्रीक विजेता सिकन्दरकी चढ़ाईमें हखामनिष्य राजकुलका पतन हुआ, उसके बाद यूनानी सेलिऊकिडोंका राजत्व हुआ, उसके बाद पार्थव वंशका उत्थान-पतन, पार्थव वंशके ध्वंसकारी आर्य शाशानीय राजकुलका विकास, उसका चरम उत्कर्ष प्राप्त करना और विराट साम्राज्य स्थापित करना—संक्षेपमें प्राचीन फारसके गौरवके इतिहासकी कथा इतनी ही है। इस्लामकी तलवारके सामने शाशानीय वंशका पतन हुआ, और वहींसे ईरानके इतिहासका वह अध्याय खतम हो गया।

× × ×

मर्वदस्त उपत्यकामें अनेकों प्राचीन ध्वंसावशेष हैं। बहुत दिनोंसे यहाँ ध्वंस-कार्य और आधुनिक कालमें पुनरुद्धारके नामपर लूट-पाट चल रही थी—जो नये क़ानूनके अनुसार व्यवस्थापक-सभाके अधिकांश असभ्य और अशिक्षित चापलूसोंकी बदौलत अब हमारे देशमें भी ख़ूब अच्छी तरह चलेगी। परन्तु अब जान पड़ता है कि ईरानमें सत्यकी कुछ वास्तविक खोज (और थोड़ी-बहुत लूट) अवश्य होगी, क्योंकि हर्ज़फेल्ड नामक एक प्रसिद्ध जर्मन पुरातत्त्व-विशारदने एक अमेरिकन विश्वविद्यालयसे आर्थिक सहायता प्राप्त करके कुछ दिनसे यहाँ खोजका काम करना आरम्भ किया है।

यहाँके प्रधान ध्वंसावशेष हखामनिष्य-राजकुलकी राजधानी 'पार्सिपोलिस'में है। पार्सिपोलिसका ठीक नाम अब तक ज्ञात नहीं हो सका है। पाँच सौ गज़ लम्बे, तीन सौ गज़ चौड़े और चालीस फ़ीट ऊँचे एक विशाल पत्थरके चबूतरेपर

पार्सिपोलिस—दरायबहुषके प्रासादके भीतरका दृश्य

राजप्रासादका प्रधान अंश स्थापित था। चढ़नेके लिए चौड़ी सीढ़ियाँ थीं, और उनके बाद राजा खषयर्षका

तोरण है। तोरणके गात्रमें एक बहुत बड़ी नान्दी (साँड़) की मूर्ति है, जो असुर और बाबुल देशोंकी इसी प्रकारकी मूर्तियोंकी भाँति है। तोरणके दूसरी ओर
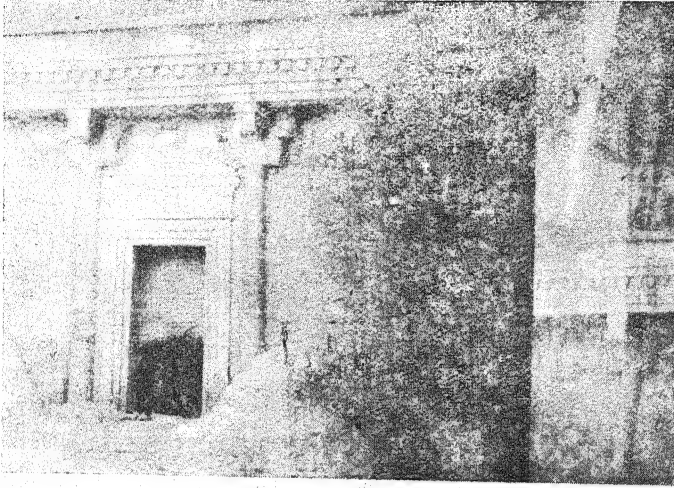
पार्सिपोलिस—अर्त्तखोह्यर्षकी गुफा-समाधिका द्वार

पर्वतमालाकी तरफ़ मुख किये हुए और भी दो साँड़ोंकी मूर्तियोंके भग्नावशेष पड़े हैं। यही खर्षयर्षके महलका तोरण है, क्योंकि यहाँपर तीन भाषाओंमें कीलक लिपिमें उनका नाम अंकित हैं—

"हम खषयर्ष महाराज, महाराजाधिराज, बहु (प्रकार) जनाकीर्ण देशोंके राजा, इस विशाल धरणीके अधिपति, हखामनिष्य नृपति दरायबहुषके पुत्रः। (हम) नृपति खषयर्ष कहते हैं कि अहुरमज़दाके प्रसादसे हम सब देशोंके (प्रतिनिधियोंके) लिए यह स्तम्भावली (colonnade) स्थापित करते हैं ; इसके अतिरिक्त फ़ारस देशमें और भी अनेक सुन्दर कीर्ति (चिह्न) हैं, जो हमारे और हमारे पिताके बनवाये हुए हैं। जो कुछ भी सुन्दर कार्य है, वह सब हमने अहुरमज़दाके प्रसादसे किया है।"

इसके अलावा पार्सिपोलिसमें तथा इस देशके अन्य अनेक स्थानोंमें इसी प्रकारके शिलालेख हैं। उन सबके भाव और भाषा आर्य-भाव परिपूर्ण है। अपने पिछले लेखमें बतला चुका हूँ कि ईरानी लोग आर्य-भारतीय, आर्योंके आत्मीय तथा एक ही प्रकारकी भाषा बोलनेवाले हैं। उदाहरण-स्वरूप बेह्सतूनके दरायबहुषके प्रसिद्ध अनुशासनसे ऊपर कुछ उद्धृत किया गया है। शब्दोंके रूपान्तर और संज्ञाओंके साधारण प्रभेद ध्यानमें रखकर देखनेसे भाषा और भावका सादृश आसानीसे देखा जा सकता है—

"अदम दरायबहुष खषायथिय बज़्रक (,) खषायथिय खषायथियानाम (,) खषायथिय पार्सई (,) खषायथिय दह्युनाम् (,) विशतास्पह्यापुत्र (,) अर्षामह्या नपा (,) हखामनिषिय (।)

"थाती दरायबहुष खषायथिय (;) मना पिता विश्तास्प (;) विश्तास्पह्या पिता अर्षाम (;) अर्षामह्या पिता अरियारम्न (;) अरियारम्नह्या पिता चिश्पिश् (;) चिश्पाइश पिता हखामनिष् (।)

"खाती दरायबहुष खषायथिय (;) अवह्यरादी वयम् हखमनिषिया अह्यामह (;) हचा परुवियत आमाता अमही (;) हचा परुवियत ह्या अमाखम तेउमा खषाय-थिया आह (।)

*"आहम धारयवसुः * *क्षायत्यः (क्षिति शब्दके मूल क्षि धातुसे जात=राजा ; प्राचीन पारसी खषायथियसे पहलवी और मध्य-युगकी पारसीमें षाहि, जिससे आधुनिक फ़ारसीका शाह) वर्हकः (वृहन्, वृहत्) *क्षायत्य *क्षायआनाम *क्षायत्यः पर्शौ (=पर्शु या पारस्यदेशमें) *क्षायत्यः दस्युनाम् (दस्युके अर्थमें देश) विष्टाश्वस्य पुत्र, *ऋषमेस्य नपात् (=नप्ता) *सखामनिष्यः। शंसति धारयवसुः *क्षायत्यः मम पिता विष्टाश्वः ; विष्टाश्वस्य पिता ऋषमः ऋषामस्य पिता आर्यरम्न ; आर्यरम्नस्य पिता चिष्पिः ; चिष्पेः पिता सखामनिः। शंसति धारयवसु *क्षायत्यः अस्य राधि (अस्मात् कारणात्) वयं अथमानिष्या शस्यामहे सचा पूर्वत्यः *आमाता (=जाता)

* श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय कृत संस्कृत-रूपान्तर।

अस्मासि (स्मः) सचा अस्माकम तोमा (वंशः) ख्शायत्य आस। "मैं दरायबहुष बृहत् (महान)

पार्सिपोलिस—खश्यर्षके प्रासादके भीतर छत्रपति सम्राट्का चित्र

राज राजाधिराज, पर्शु (या पारस्य) राज, प्रदेश राज, विश्तास्पके पुत्र, हखामनिष्य अर्ष्यामके पौत्र।"

अर्थात्—"वदति नृपति दरायबहुष ; हमारे पिता विश्तास्प ; विश्तास्पके पिता अर्षाम ; अर्षामके पिता अरियारम्न ; अरियारम्नके पिता चिश्पिश् ; चिश्पिश्के पिता हखामनिष।"

"वदति नृपति दरायबहुष ; इसी कारण हम हखामनिष्य नामसे ख्यात हैं, प्राचीनकालसे ही हमारी उत्पत्ति है, प्राचीनकालसे ही हमारा वंश राजपदपर (अभिषिक्त) है।"

यही दरायबहुषके वंशका परिचय है। यह परिचय विसेतून (वेहिस्टन) पहाड़पर इस महाराजा-

पार्सिपालिस—राजा और एक सिंह-रूपी दानवका युद्ध

धिराजके तीन भाषाओंमें कीलक लिपिमें लिखित अनुशासनके आरम्भमें ही है।

दरायबहुषके विराट साम्राज्यके पूर्वकी ओर गान्धार (कोई-कोई कहते हैं कि सिन्धु-प्रदेशका मक्रान भी), शक स्थानसे हारावती (हिरात), शत्तगौस (सैट्टो गौडिया), सुगुड (सोग्दोडियाना), बाखत्रिस (बैक्ट्रिया),

खुरास्मिया हरइव (एरिया), जरंक (ड्रांगियाना), पार्थव (पार्थिया), बर्कान (हिर्कानिया), माद (मीडिया), उव्वज (सुसियाना), बाबिरुष (बैबिलन), असुर (असीरिया), अरबाय (अरब देश, सीरिया और पैलेस्टइन), मुद्राय (ईजिप्ट), यऊना (यूनान, ग्रीक उपनिवेशसहित), स्पार्दा, आमन (आर्मीनिया), कटपटुक (कापाडोसिया) तक फैला हुआ था।

इस सम्राटकी विजयवाहिनीने ग्रीसके अधिकांश भागको जीत लिया था, और डैन्यूबसे रूसकी वाल्गा नदीके तट तक विजय-यात्रा की थी। जिस मैराथनके युद्धकी कथाको पाश्चात्य इतिहास-लेखक इतने दिनोंसे हम लोगोंकी धूम-धाम और ग्रीकों यानी यूरोपियनोंकी श्रेष्ठताका दृष्टान्त बतलाते आये हैं, अब प्रमाण मिल रहे हैं कि वह दरायबहुषके एक प्रादेशिक शासन-विभागकी, उत्तर-देशस्थित बर्बर देशके विरुद्ध एक क्षुद्र चढ़ाईका एक खंड युद्धमात्र था! उस समय ग्रीसका ऐश्वर्य या प्रसिद्धि इतनी नहीं थी कि दरायबहुष उसपर आक्रमण करनेकी इच्छा करते।

पार्सिपोलिस—शक-सैनिक (बर्लिन म्यूजियम)

पार्सिपोलिस तथा उसके पास नक्श-ए-रुस्तमकी पर्वतमालापर दरायबहुषकी कीर्तिके अनेक स्मृति-चिह्न हैं।

पार्सिपोलिस—खषयर्षका नान्दी-तोरण

पार्सिपोलिसमें उनके राजप्रासादके भग्नावशेष, शिलालेख और जान पड़ता है कि मूर्ति भी अब तक मौजूद हैं। नक़्श-ए-रुस्तमके सिरेपर एक पहाड़ी गुफामें उनका समाधि-मन्दिर अब तक ईरानके अतीत गौरवकी याद दिलाता है।

यहाँ और कई हखामनिष्य सम्राटोंके स्मृति-चिह्न हैं। खषयर्ष (Xerxes) और अर्तख्शहयर्ष—इन दोनोंके राजप्रासाद और कम-से-कम एककी गुहा-समाधि अब तक विराज रही है। बर्बर डाकुओंके सरदार सिकन्दरकी सेनाने शराब पी, उन्मत्त होकर पहले तो पार्सिपोलिसके अमूल्य पुस्तकालयमें आग लगाई, बादमें अपनी असभ्य तांडवलीला शुरू करके सारे पार्सिपोलिसको ध्वंस कर डाला।
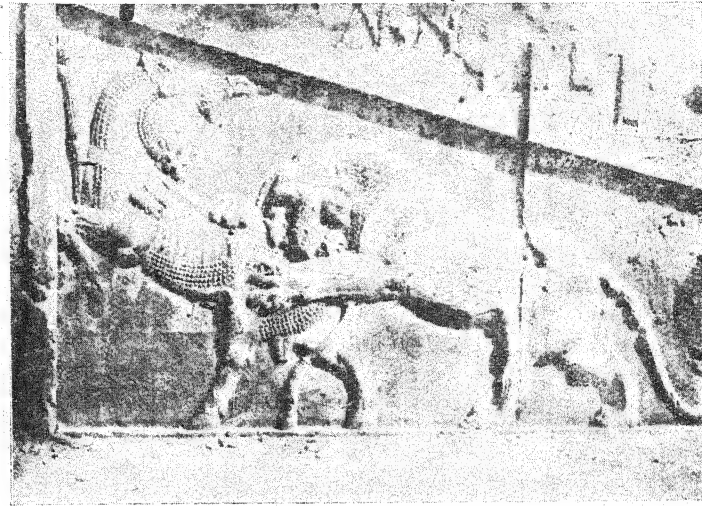
पार्सिपोलिस—खषयर्षके प्रासादके चबूतरेकी दीवारपर खुदे हुए सिंह और बैलके युद्धका चित्र

सिकन्दरके बहुतसे दुष्कर्मोंको यूरोपियन लोग इतने दिनोंसे एक गौरवका विषय कहते आये हैं। अब दिनोंदिन यह साबित होता जाता है कि वास्तवमें कौन असभ्य, खूँख्वार और बर्बर था, तथा कौन जगतका गौरव और सभ्यताका आदर्श था।

पार्सिपोलिसके विशाल चबूतरेपर चढ़नेके लिए एक सौ छै सीढ़ियाँ थीं, जिसके दोनों ओर योद्धाओं,
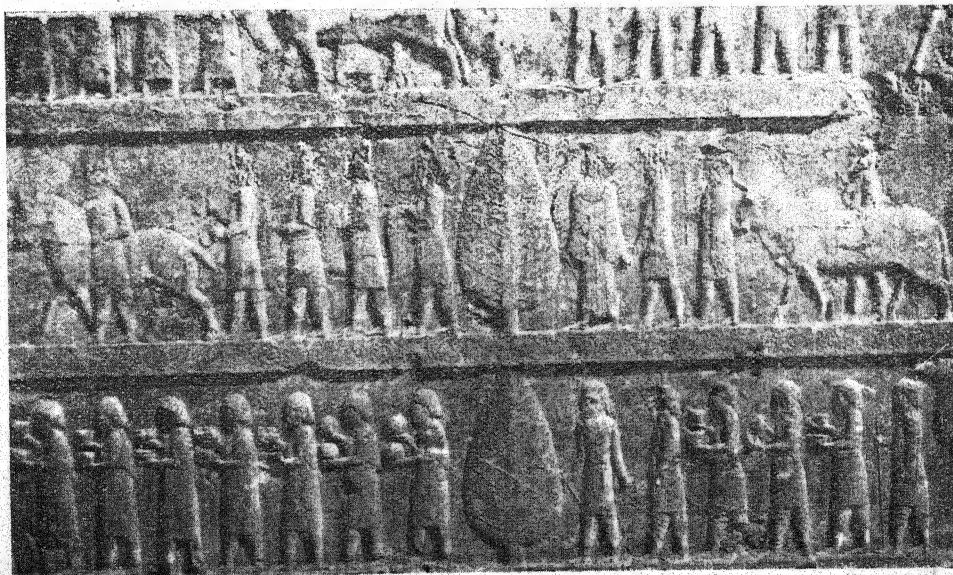
खषयर्षके चबूतरेकी दीवार। प्रजाका उपहारके साथ जुलूस

मुसाहबों और अनुचरोंकी मूर्तियाँ खुदी हुई थीं— चढ़नेवालोंको जान पड़ता होगा कि सीढ़ी-सीढ़ीपर वे भी उनके साथमें चढ़ती चलीं जाती हैं। सीढ़ियोंके शीर्षपर खषयर्षका विराट नान्दी तोरण था। उसके बाद खषयर्षका बहत्तर स्तम्भोंवाला (प्रत्येक स्तम्भ ८० फ़ीटसे अधिक ऊँचा !) सभामंडप था, जिसके बाद दरायवहुषका महल (जो अपेक्षाकृत छोटा था), फिर

प्रजाशक्ति ही सिंहासनकी नींव है, इसका रूपक-चित्र

खषयर्ष और अर्तखोहयर्षके दो विराट महल थे। इन सबके पीछे, उत्तर-पूर्वमें और भी दस फ़ीट ऊँचे चबूतरेपर एक सौ खम्भोंवाला हाल था (शायद दरायवहुषका होगा)। खषयर्षके बहत्तर खम्भोंवाले प्रासादके केवल नौ-दस खम्भे अभी खड़े हैं, किन्तु हालमें हर्ज़फेल्ड साहबकी देख-रेखमें टूटे-फूटे टुकड़ोंको जोड़कर एक-एक करके अनेक खम्भे खड़े किये जा रहे हैं। हर्ज़फेल्ड साहब कहते हैं कि उन्हें आशा है कि इस प्रकार प्रायः सभी खम्भे खड़े हो जायँगे। इस सभागृहके प्रधान चबूतरेसे प्रायः दोमंज़िलेकी ऊँचाईपर
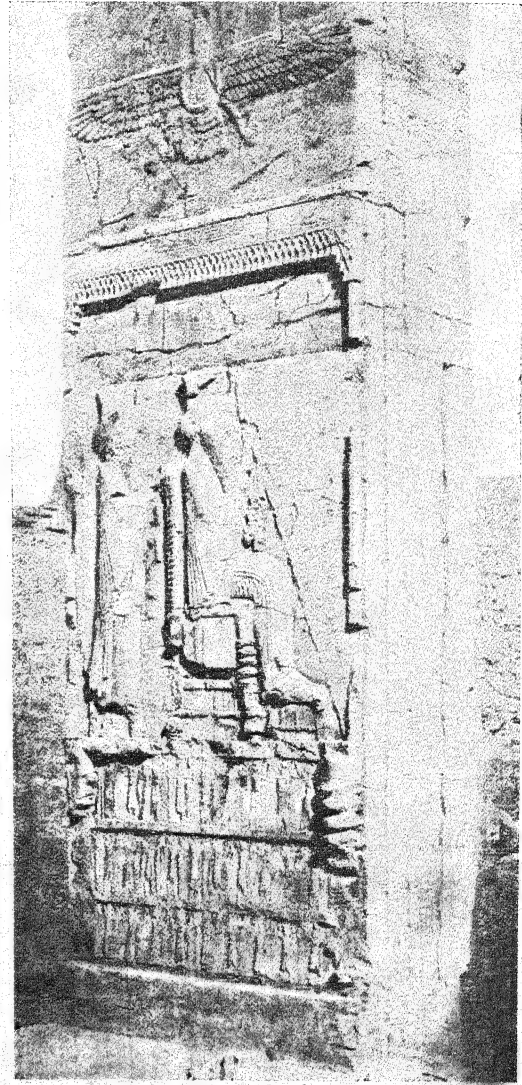
सम्राट् दरायवहुष

एक दूसरा चबूतरा स्थापित है। इस दूसरे चबूतरेकी दीवारकी बड़ी-बड़ी पत्थरकी शिलाओंमें सुन्दर चित्रोंकी तीन कतारें खुदी हुई हैं। बाईं क़तारमें सम्राटके

रक्षक, सेना, सामन्त, रथ और घुड़सवारोंका जुलूस गाजे-बाजेके साथ चित्रित है। दाहनी ओर साम्राज्यके अधीन भिन्न-भिन्न देशोंके लोग कर और उपहार लिए

खषयर्षके प्रासादके चबूतरेकी दीवार। प्रजाके उपहारके साथ जुलूस

जुलूस बनाये निकल रहे हैं। हर्ज़फेल्डने बड़े यत्नसे गिरे हुए पत्थरोंको अपनी-अपनी जगह स्थापित करके चित्रावलीको फिरसे पूरा किया है। सिर्फ़ कुछ पत्थरोंकी, जो सन् १८३० में यहाँसे उठकर ब्रिटिश म्यूज़ियममें चले गये थे, जगह खाली रह गई है। इस प्रासादकी मिट्टी खोदकर पत्थरके टुकड़ोंको बाहर निकालनेमें बराबर राख निकलती रही है, और अब तक निकलती है। दीवारमें और खम्भोंके पत्थरोंपर भी, जो प्रधानत: साधारण संगमरमरके हैं, आगके यथेष्ट चिह्न दीख पड़ते हैं। हर्ज़फेल्डसे पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि

खषयर्षके प्रासादके चबूतरेकी दीवारका दूसरा अंश। प्रजाका जुलूस

पार्सिपोलिसके तमाम महलोंको सिकन्दरने बरबाद किया था, इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं। उसने उन्हें पहले आग लगाकर जलाया, फिर तोड़-फोड़कर ध्वंस किया।

प्रासादकी लम्बाई-चौड़ाई पचास गज़ है। डा० हर्ज़फेल्डकी रायमें सम्पूर्ण राजमहलोंमें नक्काशीदार लकड़ीकी छत और कच्ची ईंटोंकी दीवारें थीं। दरायबहुषके राजमहलके अनेकों दरवाज़े और पीछेके सौ खम्भोंवाले हॉलके खंडहर अभी मौजूद हैं। सिंहासनकी वेदी और मंचकी दीवारके पत्थरोंपर अगणित सुन्दर चित्र खुदे हुए हैं। एक चित्रमें सम्राट सिंहासनपर आरूढ़ हैं, नीचे उनकी प्रजा खड़ी है, और ऊपर भगवान अहुरमज़दाकी मूर्ति है। यह चित्र सबसे सुन्दर है।

हखामनिष्योंकी मूर्ति और भवन-निर्माण-कलाका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पार्सिपोलिसमें ही है। कटे हुए पत्थरके अतिदीर्घ बैल या घोड़ेके शीर्षवाले स्तम्भ, सुन्दर प्रस्तर चित्र, विशाल हॉल, तोरण, सिंहासन, वेदी आदि वस्तुएँ ईरानियोंकी सभ्यताकी श्रेष्ठताके निदर्शन-स्वरूप अब तक मौजूद हैं। इस साम्राज्यके अस्तित्वके समय नक्काशीदार लकड़ीकी छत, रंग-बिरंगे वस्त्रावरण,

प्रासादके रक्षकों, अनुचरों, प्रजा और सामंतों आदिकी उज्ज्वल वेश-भूषा आदिसे इस स्थानकी शोभा कैसी होगी, यह बात तो अब कल्पनासे भी परे है।

हखामनिष्य-युगके पैदल सैनिक

पार्सिपोलिसमें कीलक-लिपिमें अनुशासन-पत्र

बहुतोंका मत है कि उस समयके ईरानियोंकी ललित-कलाका प्रभाव हमारे देशके मौर्य तथा उसके परवर्ती कालके कला-शिल्पपर बहुत अधिक है। इस मतके पक्षमें बहुतसी युक्तियाँ दी जाती हैं, विशेषकर स्तम्भोंके शीर्षपर बैल, घोड़े आदिकी मूर्तियों और कमलके रूपमें स्तम्भोंकी गठन तथा आकृति आदिमें यह प्रभाव दीख पड़ता है। अनेक विशेषज्ञोंने इस विषयमें जो मत प्रकट किये हैं, उन्हें ललित-कलाका प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। मेरे स्थूल नेत्रोंमें थोड़ी बहुत बातोंमें समता दीख पड़ी, पर थोड़ी देरकी परीक्षामें ही इस मतके विपरीत अनेक बातें भी मेरे मनमें उत्पन्न हुईं। कह नहीं सकता कि उनका मूल्य क्या है। वे बातें ये हैं—

(१) ईरानकी इन सब मूर्तियोंमें मौर्य-युगकी चमत्कारपूर्ण पॉलिस (वज्रलेप ?) का अभाव है। (२) ईरानी प्रस्तर-चित्रोंमें अलंकारोंका विशेष अभाव है, इसके विपरीत हमारे यहाँ उनका बाहुल्य है। जो अलंकार हैं भी, उनके उपकरण इस देशके समान नहीं हैं। (३) इन प्रस्तर-चित्रोंकी रचना और संस्थान-नैपुण्य (असुर और ग्रीक फ्रीजके समान) हमारे देशकी
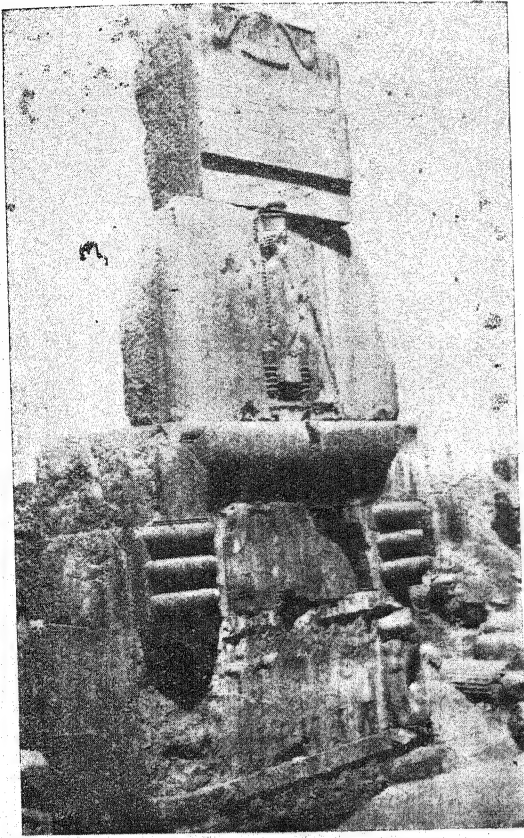
सौखम्भा-महल। सिंहासनपर आसीन सम्राट्। ऊपर अहुरमजदाकी मूर्ति, जिसका ऊपरी भाग टूट गया है

अपेक्षा उत्कृष्ट है, किन्तु हमारे यहाँके शिल्पकी भाँति गहरी खुदाई (High relief), या महीन कारीगरी उसमें नहीं है। (४) यद्यपि यहाँके प्रस्तर-चित्र भारतीय मूर्तियोंकी अपेक्षा किसी-किसी अंशमें श्रेष्ठ हैं, फिर भी स्तम्भके जितने भी शीर्ष हैं, उनमें किसीका भी गठन-नैपुण्य, सौन्दर्य, या कारीगरी सारनाथके स्तम्भके सिंह-शीर्षकी बराबरी भी कर सकेगी, इसमें सन्देह है। (५) सबसे बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि ईरानी चित्रोंमें नारी-मूर्तियोंका एकदम अभाव है। हर्ज़फेल्डने मुझसे कहा कि यह बड़े आश्चर्यकी बात है, और शायद इसका प्रमाण है कि उस समय भी यहाँ पर्दा था। इसके विपरीत हमारे देशके खुदाईके चित्रोंका प्रधान अंग ही नारी-मूर्ति है। दूसरी ओर भारतीय प्रस्तर-चित्रोंमें योद्धाओंका इतना बाहुल्य नहीं है, यद्यपि उस समय भारतमें योद्धाओंका विशेष अभाव नहीं था। क्या यह बौद्धोंकी अहिंसाका प्रभाव तो नहीं था ? (६) ईरानी चित्रोंकी सभी मूर्तियोंमें मनुष्योंका एक पार्श्व ही (Profile view) दिखलाया गया है। भारतीय रचनाओंमें पूर्ण मुखवाले चित्र अधिक हैं।

फिर भी यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि स्तम्भ-पादों तथा स्तम्भ-शीर्षोंमें एक ही विचित्र परिकल्पना होनेमें निश्चय ही कोई-न-कोई कार्य-कारण सम्बन्ध था, परन्तु प्रस्तर-चित्रोंमें दोनों देशोंकी रचना-पद्धति, उपकरण, गठन-कारीगरी और कौशल आदिमें विशेष पार्थक्य भी था, यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती।

पाश्चात्य पंडितोंकी रायमें भास्कर-विद्यामें ईरान असुर देशका शिष्य था, यद्यपि उसने अपनी आर्य-सभ्यताके बलपर उसमें बहुत कुछ उन्नति की थी। असुर देशके विराट नरसिंह अथवा नान्दीकी मूर्तिके प्रचंड रूढ़-भाव ईरानियोंके हाथसे दूर हो गये, तथा

शाशानीय प्रस्तर-चित्रोंकी रचना-पद्धतिका निदर्शन
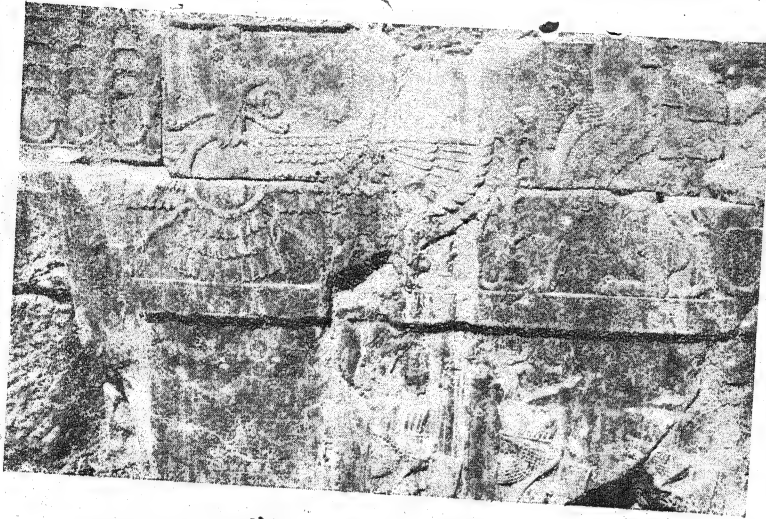
पार्सिपोलिस—अहुरमजदाका चित्र

पार्सिपोलिसमें श्री हर्ज़फ़ेल्ड हम लोगोंका इन्तज़ार कर रहे थे। यह विख्यात पुरातत्त्व-विशारद और बहुभाषाविद, नाना स्थानोंमें अनेकों आविष्कार करके अब पार्सिपोलिसमें खुदाई और पुनर्गठन इत्यादि कर रहे हैं। ये बराबर साल-भर यहीं रहते हैं। साथमें एक अन्य जर्मन युवक हैं। इन लोगोंकी भेंट भी सौभाग्यकी बात थी।

उनमें एक सौम्य और सुन्दर रूपान्तर हो गया। असुर-मूर्तियोंमें पौरुष, शक्ति और उद्दाम गतिका प्रकाश बहुत अधिक है, ईरानमें आकर इन मूर्तियोंमें एक स्थिर संयत-भाव आया, जिससे ललित-कलाके आदर्शमें निस्सन्देह उन्नति हुई।

पहली बात यह सुनी कि पार्सिपोलिसके समीप कई पहाड़ी गुफाओंमें अनेक प्राचीन समाधियाँ मिली हैं। वे सब उस समयके साधारण जरथुष्ट्री धनिकोंकी (यानी राजा-रजवाड़ोंकी नहीं) हैं। इन्हें देखकर हर्ज़फ़ेल्ड साहब समझते हैं कि उस समय ईरानमें, भारतके पारसियोंकी
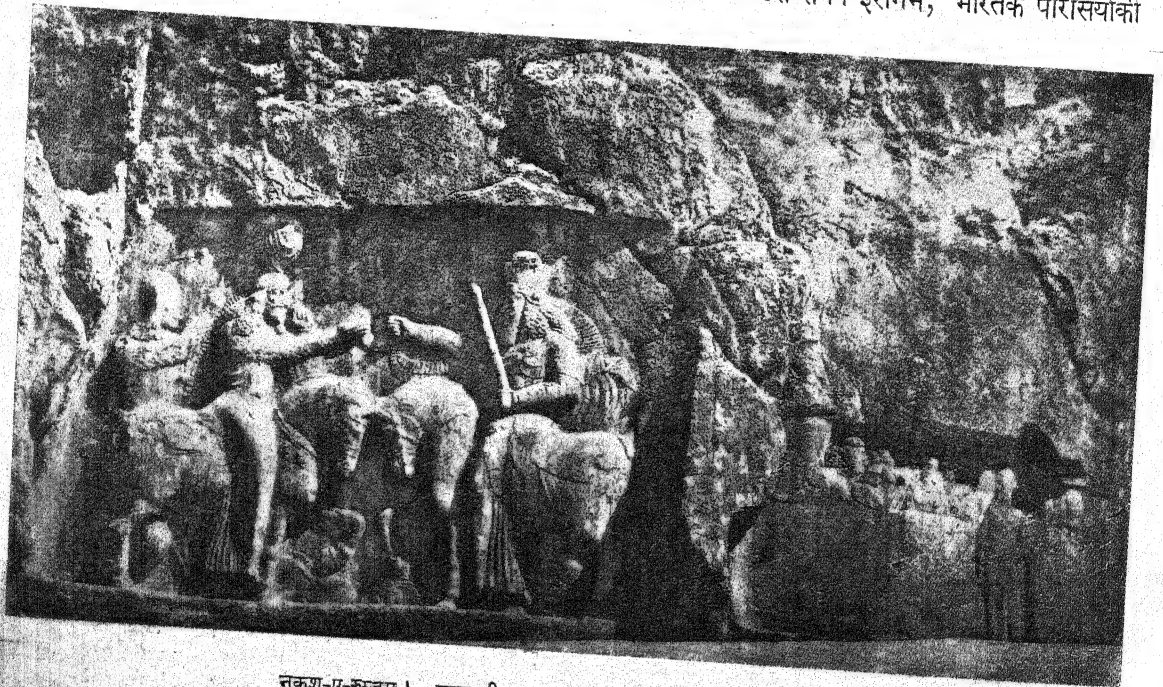
नक्श-ए-रुस्तम। शाशानीय राजकुलके आदिपुरुष और अहुरमजदा

नक्श-ए-रुस्तम। विजयी सम्राट् शापुरके सामने पराजित रोम-सम्राट् वैलेरियन, एन्टियोखका सिरियाडिस

तरह, जानवरों द्वारा शव खाये जानेकी प्रथा ही केवलमात्र अन्तिम संस्कार नहीं था। इस सम्बन्धमें बातें करते हुए उन्होंने कहा कि यदि भारतवर्षसे कोई विशेषज्ञ यहाँ आये, तो बहुत अच्छा हो। मैंने यह नहीं समझा कि यह बात उन्होंने मेरे पारसी सहयात्रीको लक्ष्य करके कही थी, इसलिए मैंने अपने एक नृतत्त्व-विशारद बन्धुका नाम लेकर कहा कि उन्हें ख़बर देनेसे वे निश्चय ही आवेंगे। हर्ज़फेल्ड इस बातपर कुछ विरक्त-से होकर बोले कि उन्हें किसी पुरातत्त्व-विशारदकी सहायताकी ज़रूरत नहीं है। मैंने समझा, एक ही व्यवसायवालोंके प्रति पंडितोंमें भी द्रोह है, अतः मैंने कहा कि मेरे बन्धु पुरातत्त्वविद नहीं हैं, नृतत्त्वविद हैं।

थोड़ी देरमें कवि आ पहुँचे। हर्ज़फेल्ड स्वागतके लिए लपके। सब देखनेमें घूमना बहुत पड़ता, जिससे कवि थक जाते, इसलिए उन्हें दो-चार द्रष्टव्य चीज़ें दिखलाकर अर्तखोहयर्षके पुनर्गठित पुस्तकालयमें ले जाया गया। वहाँ बैठकर हर्ज़फेल्डने पार्सिपोलिसके समीपमें प्रस्तर-युगके लुप्तप्राय: अवशेषोंसे निकले हुए मिट्टीके कई टूटे घड़े दिखलाये। एक घड़ेकी मरम्मत करके उसे संपूर्ण किया गया है। उसपर जो नक्काशी है, वह सर आरेल स्टाइन द्वारा खोजे हुए पामीर, हिन्दूकुश और बलोचिस्तानकी ओरके पूर्व ऐतिहासिक कालके मिट्टीके घड़ोंके समान है। सुना कि इन सब नये आविष्कारोंको देखनेके लिए सर आरेल स्टाइन दो-चार दिनके भीतर ही वहाँ आनेवाले हैं।

हर्ज़फेल्ड कविके साथ बातचीत करने लगे। पार्सिपोलिसमें नारी-मूर्तियोंके अभावके प्रसंगमें उन्होंने ईरानमें स्त्रियोंको बन्धनमें रखनेकी प्रथाके सम्बन्धमें एक
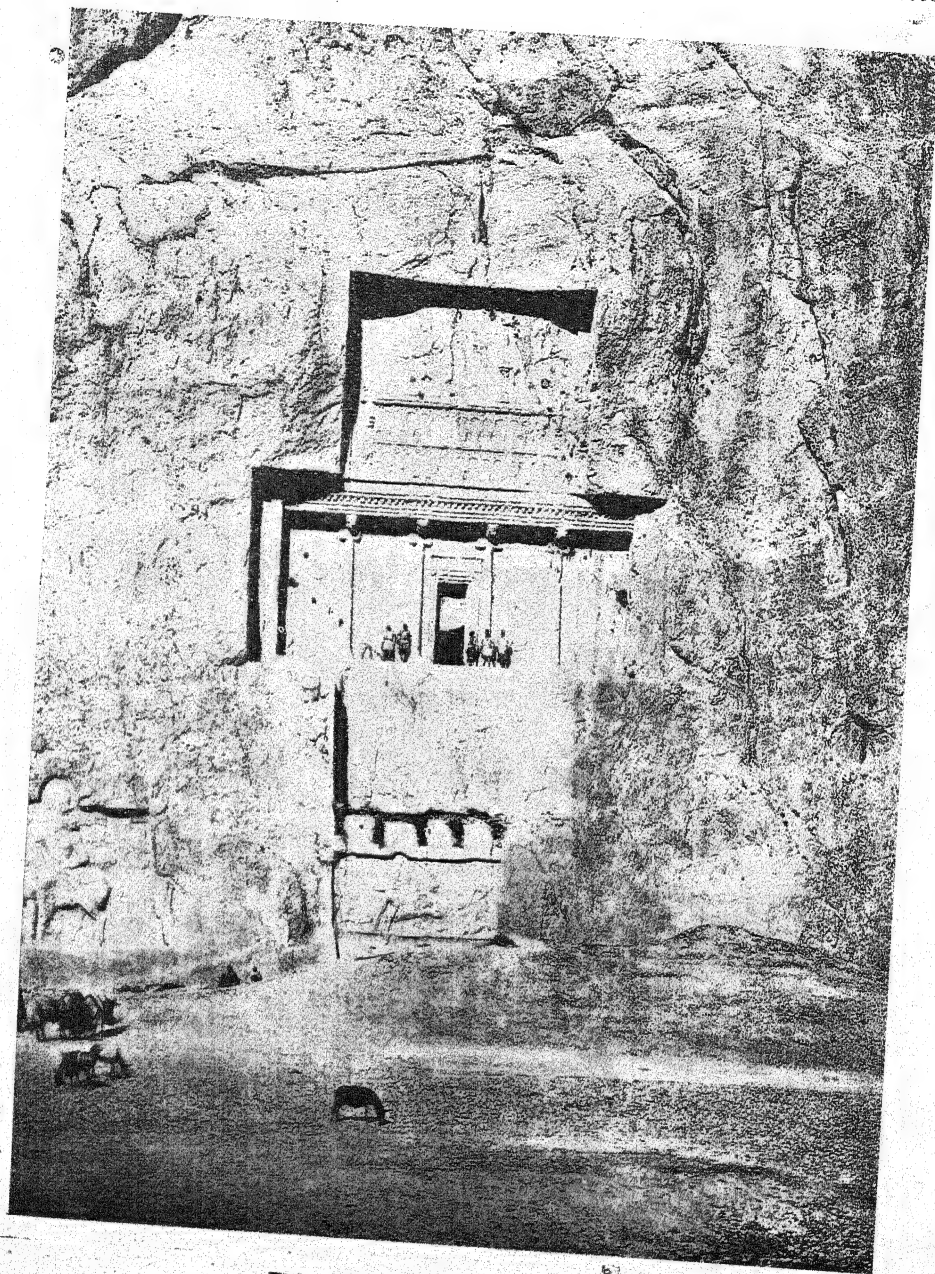
नक्श-ए-रुस्तम । दरायबहुषकी समाधि

पार्थव राजकुमारकी कथा बतलाई। वह राजकुमार रोमवालोंसे सनद लेनेके लिए रोम गया था। जरथुष्ट्रियोंके मतानुसार समुद्र-यात्रा करना निषिद्ध था, इसलिए वह अपनी स्त्रीके साथ स्थल-पथसे गया था। राजकुमारकी स्त्री सारे रास्ते-भर मुँहपर झुंड काढ़े घोड़ेपर सवार गई थी। *

* शायद यह सन् ६६ में रोम-सम्राट् नीरो द्वारा दी हुई पार्थव राजपुत्र टिरितेटिसको आर्मीनियाके राज्याभिषेककी सनदकी कथा है।

हमारे सब साथी-संगी इस कथाको सुनने लगे। इतनेमें श्रीयुत ईरानी भी पूर्वपुरुषोंके लिए पारसी मतके अनुसार प्रार्थना करके लौट आये। मैं मौक़ा देखकर मेंहरबान भाई (श्री ईरानीके सहायक) को साथ ले घूमनेको निकल पड़ा। एक ओर दूरपर पहाड़में क्रासके आकारकी चार समाधि गुफाएँ दीख पड़ती थीं। हमने कहा कि यद्यपि समय केवल एक घंटेसे कुछ ही अधिक है, फिर भी, जैसे हो, इन समाधियोंको तो अवश्य ही देखना चाहिए।

किसी तरह दौड़ा-दौड़ दो समाधियाँ देखीं, बाक़ी नहीं देख सके। जो समाधियाँ देखीं, उनमें दूरवाली दरायत्रहुषकी और दूसरी अर्त्तखोहयर्षकी थी। समाधिके द्वारपर राजाकी मूर्ति एक हाथमें धनुष लिए और दूसरेसे ऊपर बने हुए अहुरमज़दाको प्रणाम करती दीख पड़ती है। सामने पत्थरकी वेदीमें अग्नि प्रज्ज्वलित है।

जिस पहाड़की गुफाओंमें ये समाधियाँ हैं, उसी पहाड़के गात्रपर शाशानीय राजाओंकी कीर्तिके चित्र भी खुदे हैं, उन्हें अच्छी तरह देख न सके। विजयी शापुरकी सुन्दर घोड़ेपर सवार मूर्तिके सामने पराजित रोम-सम्राट् वैलेरियन घुटनेके बल बैठा प्राण-भिक्षा माँग रहा है। पासमें एन्टियोखका विताड़ित सीरियाडिस है।

इस चित्रावलीका और इसीसे इस स्थानका नाम नक़्श-ए-रुस्तम है। यहाँके बाशिन्दे इस विराट अश्वारोही मूर्तिमें अपनी कथा-कहानियोंके अजेय वीर रुस्तमकी प्रतिमूर्ति देखते हैं। रुस्तमके काल्पनिक युद्ध, विजय और पराक्रमकी कथा देशके प्रत्येक व्यक्तिके मुखपर है; किन्तु शापुरकी महापराक्रान्त रोम-विजयकी कथा प्रायः कोई भी नहीं जानता।

सम्भव है कि ईरानके इस नवीन जीवनमें कोई नया फ़िरदौसी सुललित छन्दोंमें असली शाहनामेकी रचना करके प्राचीन फ़ारसकी यश-गाथाका नवीन फ़ारसमें प्रचार करे। यदि छन्द अच्छे हुए, तो उसका प्रचार निस्सन्देह ही होगा, क्योंकि इस देशके स्त्री-पुरुष—सब-के-सब—काव्य-प्रेमी हैं। शीराज़के गवर्नरकी बैठकमें मैंने एक सज्जनसे पूछा था कि इस समय शीराज़में विशेष प्रसिद्ध कवि कितने हैं? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा था कि ईरानीमात्र—ख़ास करके फ़ार्स-प्रान्तके लोग, यहाँ तक कि निरक्षर भी—कवि हैं! मैंने ख़ुद भी यह बात देखी कि गली-कूचे, चौराहे, या बैठकोंमें, जहाँ कहीं भी, यदि कोई व्यक्ति कोई अच्छी कविता पढ़ देता, तो उसके चारों ओरके शिक्षित, अशिक्षित, बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ—सभी रसग्राही श्रोतागण सिर हिला-हिलाकर उस कविताको दोहरानेकी चेष्टा करते थे।

प्रतिज्ञा

आदा नेग्री
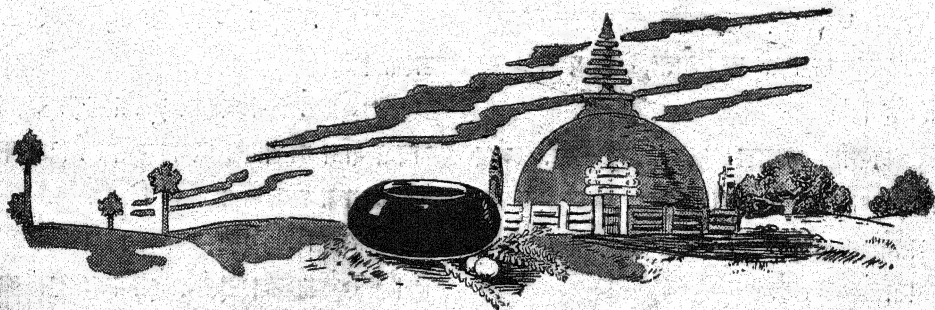
रंग-फ़ैक्टरीके पिछवाड़े, चीथड़ोंके ढेरपर, वे दोनों बैठे थे। फ्रेज़ियाकी आँखोंमें गहरी उदासी थी। मार्क्सके चेहरेपर दृढ़ निश्चयके चिह्न थे।

फ्रेज़ियाने दसवीं बार फिर पूछा—"क्या तुम सचमुच चले जाओगे?"

मार्क्सने भी दसवीं बार जवाब दिया—"जहाज़ शुक्रवारको यहाँसे रवाना होता है।"

फ्रेज़ियाकी आँखें भावी वियोगके विचारसे डबडबाने लगीं। मार्क्सने सान्त्वना देते हुए कहा—"मेरे साथ ग्यारह आदमी और हैं। इस फ़ैक्टरीके भी तीन-चार मज़दूर हैं। परन्तु यह न समझना कि मैं अमेरिकामें भी ऐसा ही कुली बनकर रहनेके लिए जा रहा हूँ। मैंने कुछ शिक्षा प्राप्त की है। रात्रि-पाठशालामें तीन वर्ष पढ़ा हूँ। यद्यपि मुझे अंगरेज़ी नहीं आती, परन्तु मैं शीघ्र ही सीख लूँगा—सिर्फ़ शुरू करनेकी देरी है। फिर तुम विश्वास रखो। अख़बारोंमें रोज़ निकलता है, किस तरह अमुक-अमुक व्यक्तिने अपने परिश्रमसे अतुल सम्पत्ति एकत्रित की। कोई पहले बूटोंकी दूकानमें नौकर था, कोई अख़बार बेचता था, और कोई किसी बैंकमें क्लार्क था। मैं धनी होना चाहता हूँ, और मैं तब तक चैनसे न बैठूँगा, जब तक लखपती न हो जाऊँगा। तुम विश्वास रखो—मनुष्य केवल जन्मसे ही लखपती नहीं होता, वह प्रयत्नसे भी बन जाता है।"

उसने अपनी आवाज़ कुछ धीमी की, और फ़ैक्टरीके मालिकके बँगलेकी ओर मुँह किया, जहाँसे चीनीके बर्तनोंकी आवाज़ आ रही थी, मानो छोटी हाज़रीका वक्त हो गया हो।

"तुम समझती हो कि यह जन्मसे ऐसा धनी है? नहीं। इसने अपने परिश्रमसे सब कमाया है। एक-एक पैसा जोड़कर यह लखपती बना है, और एक-एक इंच ज़मीन मोल लेकर इसने इतनी बड़ी फ़ैक्टरी खड़ी की है। आज जब यह गुज़रता है, तो हम खड़े होकर इसे सलाम करते हैं। शनिवारके दिन जब यह हमें वेतन बाँटता है, तो हम इसे नम्रतापूर्वक धन्यवाद देते हैं। फ्रेज़िया, विश्वास करो, पन्द्रह-बीस वर्ष बाद जब मैं वापस लौटूँगा, तो इससे बराबरीसे मिलूँगा, और पूछूँगा—क्यों भाई, फ़ैक्टरी बेचनेका विचार है?"

उसकी इन सब बातोंमें केवल पन्द्रह-बीस वर्षवाली बात ही फ्रेज़ियाकी समझमें आई। इतनी लम्बी अवधि सुनकर उसका दिल दहल उठा। उसने मानो भयको रोकनेके लिए अपने कोमल हाथोंको बढ़ाकर मार्क्सके कठोर हाथोंपर रख दिया। मार्क्सने भी उन्हें प्रेमसे दबा लिया, फिर कहने लगा—"साम्यवादी! कमेटियाँ! मज़दूर-दल! यूनियन्स! इन सबसे क्या लाभ है? बहुत करेंगे, हफ्तेमें एक-आध शिलिंग बढ़ जायगा। उससे क्या होता है? सारी उम्र वही ग़रीबी, वही पराधीनता! इसीलिए मैं तो अब अपने ही बाजुओंके सहारे अपना महल बनाऊँगा। अपनी शक्तिकी बाज़ी लगाकर—साधनोंकी चिन्ता किये बिना—धन एकत्रित करूँगा, और लखपती बनूँगा।"

"जब तुम चले जाओगे, मैं क्या करूँगी?"

"तुम! मुझे प्यार करना, और मेरी प्रतीक्षा करना।"

"ओह! मैं चाहती हूँ कि तुम ग़रीब ही रहते! अथवा शीघ्र ही वापस आकर मुझसे विवाह करते। इतने वर्षोंका क्या ठिकाना? कौन जिये! कौन मरे!"

"भोली! ऐसा न कहो। ज़िन्दगी बड़ी लम्बी है। रहनेका मज़ा इसीमें है कि आदमी आज़ाद होकर रहे। तुम समझती हो?"

उसने क्या समझा? ख़ाक भी नहीं। असहायाकी भाँति वह दीन-भावसे उसके मुँहकी ओर देखती रही।

मार्क्सने उसके होठोंका एक मृदु चुम्बन लिया, और दृढ़ बाहुपाशमें उसे कस लिया।

"तुम इन चीथड़ोंको देखती हो? कितने मैले हैं? कितने बदबूदार हैं? परन्तु जब इन्हें फ़ैक्टरीमें धोया जायगा, मशीनके नीचे दाबकर निकाला जायगा और अनेक रंगोंमें डुबोया जायगा, तो वे ऐसे ही सुन्दर प्रतीत होंगे, जैसे सामने सूखते हुए कपड़े।

"फ्रेज़िया! धनकी भी यही हालत है। जब हम उसे पा लेते हैं, तो कोई नहीं पूछता कि हम पहले क्या थे? कैसे थे? इत्यादि।

"फ्रेज़िया! तुम मेरी प्रतीक्षा करोगी?"

"हाँ।"—उसने गीली आँखोंसे कहा।

इतनेमें चिमनीने सीटी दी। फ़ैक्टरीके दरवाज़े खुले। सब मज़दूर भाग-भागकर अपनी-अपनी जगह तैनात होने लगे। फ्रेज़िया भी उठी। मार्क्सने एक बार और चुम्बन लिया, और क्षणभर बाद दोनों मशीनके समान अपने-अपने काममें लग गये।

× × × ×

अनेक दिन, रात, सप्ताह, महीने और वर्ष गुज़र गये। फ़ैक्टरीकी चिमनी प्रतिदिन नियमपूर्वक सीटी बजाती। मज़दूर आते और काम करते। शामको इंजनकी धायँ-धायँ बन्द हो जाती। रह जाता केवल चिमनीका काला बना धुआँ। सामनेके पहाड़ और जंगलने भी कितनी ही बार चोला बदला। कभी इतनी धूप पड़ती कि पत्थर भी पिघल उठते। कभी वर्षा आती और कई दिनों तक नग्न प्रकृतिके स्नानका दृश्य दिखाई देता। फिर शरद्-हेमन्त अपने हिम-पातसे सारे भू-प्रदेशको नवीन शुभ्र-वसन पहना देते।

इस परिवर्तनशील संसारमें मनुष्योंमें भी परिवर्तन हुआ। फ्रेज़िया भी दीर्घ-प्रतीक्षाकी धूपसे मुरझाने लगी। उसके मुखके दोनों किनारोंपर हलकी झुर्रियाँ दिखाई देती थीं। उसके बाल भी सफ़ेद होने लगे थे। अब उसने अपनी आयुके चालीसवें वर्षमें पैर रखा था। इस लम्बी अवधिमें अनेक युवकोंने उससे विवाह करनेका प्रयत्न किया, परन्तु फ्रेज़ियाको वर्षों पूर्व की हुई अपनी प्रतिज्ञा स्मरण थी। मार्क्सने पहले कुछ वर्षों तक चिट्ठी-पत्री लिखी। फिर चुप हो गया। लोग अमेरिकासे आते और मार्क्सके समाचार सुनाते। वे कहते कि मार्क्स वहाँ ख़ूब परिश्रमसे धन इकट्ठा कर रहा है। उसका रहन-सहन अमेरिकनों जैसा हो गया है। कुछ फ्रेज़ियाकी हँसी भी उड़ाते, परन्तु वह अपने सरल स्वभावसे अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ थी। मेले आदिके मौक़ोंपर जब दूसरी स्त्रियाँ श्रृंगार करतीं और अपने-अपने प्रेमियोंके साथ बाँह-में-बाँह डाले घूमती-फिरतीं, फ्रेज़िया बेचारी अपने सुदूर प्रवासी प्रेमीकी कल्पनासे अपनेको सन्तुष्ट करती। लगभग बीस वर्ष गुज़र गये। लोगोंने समझा फ्रेज़िया अब विधवा-जैसी ही रहेगी।

परन्तु थोड़े दिनोंके बाद, ग्रामवासियोंकी आशाके विरुद्ध, मार्क्स वहाँ आ पहुँचा। सायंकालका समय था। अभी सूर्य भगवानकी अन्तिम किरणें विलीन नहीं हुई थीं। दक्षिणसे गाड़ी आई, और मार्क्स स्टेशनपर उतरा। अमेरिकनोंके समान उसकी दाढ़ी-मूँछ साफ़ थी, और बाल पीछेकी ओर मुड़े थे। उसके चेहरेपर दृढ़ निश्चयके चिह्न अब झुर्रियोंमें परिवर्तित हो गये थे। आँखोंके नीचेकी काली रेखा गत बीस वर्षोंकी कठिन तपस्याकी कहानी स्पष्ट शब्दोंमें सुना रही थी। वह अप-टू-डेट फैशनका कोट-पतलून पहने हुए था। स्टेशनसे चलकर वह एक होटलके सामने पहुँचा। वहाँ दरवाज़ेपर एक बुढ़िया खड़ी थी। उसने मार्क्सको गौरसे देखा, मानो पहचाननेका प्रयत्न कर रही हो; परन्तु 'स्मृति' समयकी गहरी तहोंके नीचे छिपी थी—ऊपर न आई। बुढ़िया अन्दर चली गई। मार्क्स भी ग्रामकी ओर बढ़ा। फ़ैक्टरियोंसे सैकड़ों मज़दूर अपने-अपने घरोंको जा रहे थे। बूढ़ोंमें से किसीने उसे नहीं पहचाना। जवानोंको वह स्वयं ही न जानता था। बीस वर्ष मनुष्यके जीवनमें महान परिवर्तन ला देते हैं। मार्क्स भी इसका अपवाद न था।

मार्क्स पहले न्यूयार्क गया। वहाँसे शिकागो, और फिर कैनाडा। शुरू-शुरूमें वह एक कारख़ानेमें मज़दूर हुआ, फिर दूकानपर क्लार्क। बादमें अपनी योग्यतासे मालिकका कृपापात्र बनकर दो आनेकी पत्ती प्राप्त की। दो आनेसे चार आने—छै आने—आठ आने। मार्क्सने भरसक परिश्रम किया। एक-एक पाई जमा की। कभी फ़िज़ूलख़र्ची नहीं की; कभी सिनेमा-थियेटर नहीं गया; कभी शराब नहीं पी; कभी स्त्रियोंकी संगति नहीं की। उसके सामने उसकी प्रतिज्ञा ध्रुव-नक्षत्रके समान हर वक्त खड़ी रहती। वह अमीर होना चाहता था। वह लखपती बनकर अपने ग्रामको लौटेगा, और चिर-प्रतीक्षासे कृशित यक्ष-पत्नीके समान सुन्दरी फ्रेज़ियाको रिझायेगा, और·······

आज जब वह लौटा, तो उसके हृदयमें एक विचार था—वह किस तरह अपने धनका सदुपयोग करे? यदि वह एक फ़ैक्टरी खोले—और यदि सम्भव हो, तो वही पुरानी फ़ैक्टरी, जिसमें किसी समय वह स्वयं मज़दूरी करता था, मोल ले ले, उसमें पैसा लगाये, मज़दूर बढ़ाये, और किस तरह उसे सारे ग्राममें सर्वोत्तम फ़ैक्टरी बना दे।

उस फ़ैक्टरीका बूढ़ा मालिक 'पीट्रो ओडो', जिसके कोई सन्तान न थी, सम्भव है, फ़ैक्टरी बेचना चाहे। उसने प्रयत्न करनेकी ठानी।

× × ×

इतवारके दिन मार्क्स फ़ैक्टरी-मालिकके कमरेमें बैठा हुआ सौदा कर रहा था। दोनों अनुभवी थे। दोनोंने परिश्रमसे धन कमाया था, इसलिए उन्हें पैसेकी क़द्र थी। दोनों कम-से-कम देकर अधिक-से-अधिक वसूल करना चाहते थे। आख़िर कई घंटोंकी कशमकशके बाद सौदा तय हुआ। मार्क्स कल सवेरे आनेका वादाकर बाहर निकला। विधिवशात् फ़ैक्टरीके दरवाज़ेपर फ्रेज़िया खड़ी थी। शायद उसने मार्क्सको पहचान लिया था, और अन्दर जाते देखकर प्रतीक्षामें बाहर खड़ी हो गई थी। उसे देखते ही मार्क्सको वही भान हुआ, जो बहुत दिनोंसे खोई वस्तु पानेपर होता है। फ्रेज़िया उसके लिए वैसी ही थी, जैसे आँखें मनुष्यके मुखपर। फ्रेज़िया भी मार्क्सके अस्तित्वका एक अंग थी।

दोनोंने एक दूसरेका मूक स्वागत किया। गलीमें कोई न था। मज़दूर आज घरोंमें छुट्टी मना रहे थे।

"क्यों, कैसे रहीं?"—मार्क्सने पूछा।

"हाँ, अब मैं अकेली हूँ। मेरी माता गुज़र गई। तुम पहलेसे दुबले दिखाई देते हो, मार्क्स!"

उसने इतना भी नहीं पूछा कि तुमने चिट्ठी लिखना क्यों बन्द कर दिया, न उसने उसे बीस वर्ष पूर्वकी प्रतिज्ञाका स्मरण ही दिलाया, और न धन ही के विषयमें कुछ पूछा कि उसके पास हज़ारों हैं, या लाखों।

ये सब बातें उसकी दृष्टिमें आवश्यक न थीं। वह उसे अपना चुकी थी, और उसके हृदयमें संसारकी कोई भी घटना रत्तीभर भी अन्तर न डाल सकती थी। यद्यपि बीस वर्ष गुज़र गये थे, फिर भी उसे मार्क्सका जाना, मानो कल ही हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता था। दोनोंके मुखोंपर झुर्रियाँ आ गई थीं। दोनोंके सिर बुढ़ापेकी ठंडकसे सफ़ेद हो रहे थे, परन्तु दोनोंके हृदयमें वही पहलेकी-सी गरमी थी। उन्हें यह सब परिवर्तन स्वप्नके समान मायारूप प्रतीत होता था। उनके लिए वही प्रथम प्रणय ही केवलमात्र सत्यता थी।

मार्क्सने कुछ न पूछा, केवल फ्रेज़ियाकी चमकती हुई दोनों आँखोंको देखा। उसे फ़ैक्टरीके पिछवाड़ेवाला दिन स्मरण हो आया। उसका मृदु चुम्बन तथा·······मार्क्सने अपनी संगिनीको अधिक समीप खींचकर बाहुपाशमें जकड़ लिया, और कहा—"फ्रेज़िया, फ़ैक्टरीका सौदा हो गया। अब हम दोनों विवाह करेंगे।"

अनुवादिका—श्रीमती शान्तादेवी ज्ञानी

भाव और शब्द

श्रीयुत रत्नाकर, आयुर्वेदशिरोमणि

शब्दोंके द्वारा ही भावोंका प्रकाश होता है। हमारे अन्दर अच्छे या बुरे, ऊँचे अथवा नीचे, कैसे भी भाव हों, दूसरे व्यक्तिको शब्दोंके बिना उनका बोध नहीं हो सकता। अथवा यों कहिये कि अप्रकाशित भाव शब्दोंसे प्रकाशित होते हैं। अमुक व्यक्ति सद्भाववाला है, या दुर्भाव-वाला, इसके परिचायक शब्द ही होते हैं। महापुरुषोंके हृद्गत ऊँचे सन्देश और गायकोंकी अन्तर्विश्वकी गानमयी सुन्दरता शब्दों द्वारा ही प्रकाशित होती है। शब्दोंमें भावोंके प्रकाशनका यही सामर्थ्य 'शब्दशक्ति' है। यदि शब्दोंमें इन भावोंके प्रकाशनकी शक्ति न हो, तो प्राणियोंका विचार-विनिमय नहीं हो सकता, और न समाजका कोई व्यवहार ही चल सकता है।

शब्दशक्तिका उपर्युक्त उपयोग न केवल मनुष्योंको ही, बल्कि पशु-पक्षियों और कीट-पतंगों तकको भी करना पड़ता है, और उससे ही उनका व्यवहार चलता है। गाय, भैंस आदि पशु कसाईखानेमें जैसा शब्द करते हैं, और अपने बच्चोंको देखकर जैसा शब्द करते हैं, उन दोनोंमें बड़ा अन्तर होता है। उन शब्दोंकी शक्ति न केवल पशुओंको ही ज्ञात होती है, बल्कि अभ्याससे बहुधा हमें भी मालूम हो जाती है, और हम समझ जाते हैं कि वे एकसे भय करते हैं, और दूसरेसे प्यार। पक्षी भी उसी प्रकार अपने शत्रु सर्प, बिल्ली, अथवा इसी प्रकारके दूसरे जन्तुओंको देखकर और अपने बच्चोंको अथवा पालनेवालेको देखकर जैसे-जैसे शब्द उच्चारण करते हैं, उनका मोटा-मोटा भेद सभी जानते हैं। कीट-पतंगोंकी भी यही दशा है। फलतः यह स्पष्ट है कि शब्दोंमें एक ऐसी शक्ति है, जो भावोंको प्रकाशित किया करती है, अतएव भाव-प्रकाशनके लिए शब्दोंका उपयोग होता है।

बहुधा ऐसा भी होता है कि एक व्यक्ति दूसरेका मुख और आँखें देखकर बिना शब्द-प्रयोगके ही, यह जान जाता है कि दूसरेके हृदयमें प्यार है या क्रोध, ईर्ष्या है अथवा उदासीनता। अनेक बार क्लासमें मास्टरकी त्योरी चढ़ी देखकर ही लड़के जान जाते हैं कि वह क्रोधमें भरा है। बहुत क्या, बिल्ली और कुत्ते भी पूँछ हिलाकर बता देते हैं कि वे मालिकको प्यार करते हैं। वहाँ शब्दके बिना भी भावोंका प्रकाश होता है। भावोंके इस स्वप्रकाश-सामर्थ्यका नाम ही भावशक्ति है। शब्दशक्ति और भावशक्तिमें एक भेद है। भावशक्तिको ग्रहण करनेके लिए बोद्धा (ज्ञान करनेवाला) में एक खास प्रतिभाकी आवश्यकता होती है, जो सबमें नहीं होती, इसीलिए भावशक्तिसे सबका व्यवहार चल नहीं सकता। शब्दशक्ति भावनाओंकी ऐसी व्याख्या कर देती है कि फिर उसे हर कोई समझ सकता है। फलतः भावशक्ति विचार-विनिमयकी उतनी अच्छी और सर्वोपयोगी साधन नहीं हो सकती, जितनी शब्दशक्ति। गायकके भ्रू-विलासको देखकर एक अशिक्षित गँवारिन उसके मनोभावको समझकर उतनी आह्लादित नहीं होती, जितनी एक शिक्षित और चतुर कामिनी। इसीलिए प्राणियोंमें शब्दशक्तिका जितना उपयोग है, उतना भावशक्तिका नहीं।

शब्दशक्ति और भावशक्ति भी एक तरहकी नहीं होती। उनके भी अनेक भेद होते हैं। शब्दशक्तिके प्रधान तीन भेद हैं—(१) अभिधा, (२) लक्षणा और (३) व्यंजना। उसी प्रकार भावशक्तिके भी तीन भेद किये जा सकते हैं—(१) इंगित, (२) आकार और (३) चेष्टा।

शब्दकी लम्बी व्याख्या लिखनेके पूर्व भावशक्तिको देखिये—(१) इंगितका अर्थ है इशारा, अर्थात् इशारेके द्वारा भावशक्ति बोधको उत्पन्न करती है। मान लीजिए, हमसे किसीने पूछा—'क्या दूध पियोगे?' हमने हाथ हिला दिया। अब दूसरा व्यक्ति हमारे इस इशारेसे हमारे निषेधात्मक भावको समझ जाता है, यद्यपि वहाँ शब्द-प्रयोग नहीं होता।

(२) आकारका अर्थ है चेहरा-मोरा। दूसरेकी रसीली आँखोंको, आरक्त कपोलोंकी कान्तिको, देखकर कौन नहीं जान लेता कि उसके हृदयमें अनुराग है?

(३) चेष्टा अर्थात् आचरण। कोई व्यक्ति आपसे चाहे शब्दों द्वारा कुछ न कहे, किन्तु दस या बीस दिन उसके आचरण देखकर आप समझ सकते हैं कि वह आपसे प्रेम करता है या द्वेष, साधु है या असाधु। भावशक्तिका यही विश्लेषण है।

भाव ही शब्दोंके जन्मदाता होते हैं, इसीलिए जिन प्राणियोंमें भाव जितने ही कम हैं, शब्द भी उन्हें उतने ही कम रखने पड़ते हैं। जब भावशक्ति अपने द्वारा बोध

उत्पन्न करानेमें थक जाती है, तब वह शब्दशक्तिका सहारा लेती है। शब्दशक्तिके आश्रयके लिए शब्दोंकी योजना अनिवार्य है, और उसके लिए शब्दोंका आविष्कार करना पड़ता है। फलतः भाव पहले और शब्द पीछे उत्पन्न होते हैं। अतएव जिस अर्थका बोध करानेकी इच्छासे जो शब्द आविष्कृत होता है, उसमें वही इच्छा शक्तिस्वरूपा होकर छिपी रहती है। फलतः हमारी इच्छा ही शब्दमें शक्तिरूपिणी होती है, किन्तु भावोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। उनमें एक नैसर्गिक शक्ति होती है, जो हमारी इच्छा न होनेपर भी—कभी-कभी तो उन्हें दबानेकी इच्छा रहनेपर भी—बोध उत्पन्न करा ही देती है। हम कितना ही बनते हैं, किन्तु प्रेमपात्रके सामने पहुँचते ही हमारी भावशक्ति आँखोंमें होकर चिल्ला उठती है कि इस दिलमें प्रेम है, अनुराग है। हम छिपाना चाहें भी, परन्तु तमतमाते हुए गालों और फड़कते हुए होठों द्वारा हमारी भावना पुकार ही उठती है कि हममें क्रोध है, अतएव कहना ही पड़ेगा कि भावशक्ति नैसर्गिक है, और शब्दशक्ति प्राणिवर्गकी रचना।

पदके साथ पदार्थका सम्बन्ध शब्दशक्ति है, और भावनाओंके साथ मानव-प्रकृतिका सम्बन्ध भावशक्ति है। पदके साथ पदार्थका सम्बन्ध हमारी इच्छासे और भावनाओंसे मानव प्रकृतिका सम्बन्ध ईश्वरेच्छासे होता है। फलतः शब्दशक्ति इच्छाको और भावशक्ति ईश्वरेच्छाको कहना चाहिए। मनुष्यकी इच्छा परिवर्तित होती रहती है, इसीलिए शब्दोंकी शक्तियोंमें भी अनेक बार परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ, कुशल, गवेषणा, मण्डप, आदि अनेक शब्दोंको लिया जा सकता है। ब्राह्मण-कालमें यज्ञयागोंका प्राधान्य था। उस समय यज्ञके लिए कुशाओं (एक प्रकारकी घास) की आवश्यकता होती थी। फलतः उन्हें जंगलसे काटनेके लिए एक व्यक्ति भेजा जाता था। कुशा लानेमें जिसका हाथ उसकी नुकीली और तेज़ पत्तियोंसे चिर जाता था, उसकी लाई हुई कुशाएँ यज्ञके लिए बहुत पवित्र न समझी जाती थीं, किन्तु जो व्यक्ति कुशाएँ चतुरतासे, बिना क्षत-विक्षत हुए, ले आता, वस्तुतः वही कुशा लानेवाला (कुशल) समझा जाता था, और वे ही कुशाएँ यज्ञोपयोगी समझी जाती थीं। क्षत-विक्षत हुए बिना कुशाएँ लानेमें बड़े चातुर्यकी आवश्यकता होती थी, इसलिए कुशा लानेवाले (कुशल) को निश्चित चतुर समझकर चतुरके लिए 'कुशल' शब्दका प्रयोग ही हमारी इच्छाओंके परिवर्तनके साथ परिवर्तित हो गया। कुशाएँ लानेवालेके लिए प्रयुक्त किया जानेवाला 'कुशल' शब्द चतुरके लिए प्रयुक्त होने लगा।

उसी प्रकार 'गवेषणा' शब्दका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है 'गौवोंकी खोज करना'। तपस्वी लोग वनमें गौएँ पाला करते थे, और सन्ध्याके समय, या यज्ञके लिए, वनमें इधर-उधर चरती हुई गौओंको खोजा करते थे, इसलिए उस कालमें गौओंकी खोजको 'गवेषणा' कहते थे, परन्तु वह शब्द अब केवल 'खोज' मात्रका बोध कराने लगा है।

'मण्डप' शब्द भी इसी प्रकारका है। याज्ञिक लोग यज्ञ करते समय एक प्रकारका सिद्ध किया हुआ माँड मिलकर पिया करते थे। मिलकर बहुतसे आदमियोंके माँड़ पीनेके लिए एक लम्बा-चौड़ा शामियाना या तम्बू बनाया जाता था, जिसमें माँड़ पीनेके कारण उसे 'मण्डप' कहते थे, परन्तु अब प्रत्येक विस्तृत शामियानेको ही मण्डप कहा जाने लगा है। यह शब्द-प्रयोगका परिवर्तन ही शब्दशक्तिके परिवर्तनका परिचायक है। इसी प्रकार 'प्रवीण', 'उदार' आदि शब्दोंका इतिहास भी इसी बातका पुष्ट प्रमाण है। इस प्रकार परिवर्तनसे स्वार्थको त्यागकर अन्यार्थमें प्रयुक्त होनेवाले शब्दोंको शब्दशास्त्रियोंने 'रूढ़ शब्द' नाम दिया है, क्योंकि वे व्युत्पत्तिलभ्य स्वार्थको छोड़कर प्रयोक्ताओंके इच्छानुसार किसी अर्थविशेषमें रूढ़ हो जाते हैं। ऐसे स्थलोंपर अर्थ प्रधान और शब्द गौण हो जाते हैं। यह सारा परिवर्तन क्रमशः वक्ताओंके इच्छा-परिवर्तनमात्रसे हो जाता है। फलतः वक्ताओंके इच्छा-परिवर्तनसे शब्दशक्तिका परिवर्तन होता ही रहता है।

परन्तु हमेशा प्रत्येक बातके लिए पहलेसे बने हुए ही शब्द नहीं रहते। अनेक बार वक्ता स्वेच्छानुसार उन्हें बना लेता है, फिर वे ही शब्द उस अर्थमें व्यक्त होने लगते हैं। आराम करनेके कमरेमें यदि हमारी रोटीका चौका बन जाय, और वहाँ भोजन पकने लगे, तो वही कमरा फिर 'विश्राम-गृह' नहीं, किन्तु 'भोजनशाला' कहा जाने लगता है, और 'भोजनशाला' पदमें यह शक्ति हो जाती है कि वह उसी भोजनोपयोगी कमरेको प्रकट करे। इसी प्रकार 'पाठशाला, धर्मशाला, पाचक, नाविक' आदि शब्द हैं। इस प्रकारके शब्द प्रधानतया गुणोंके अनुगामी होते हैं, इसीलिए जिसमें जो गुण देखा, उसी गुणके अनुसार

वक्ता शब्दकी रचना करके उसे पुकारने लगता है, और वह शब्द उस अर्थको बोध करानेकी शक्तिवाला ही हो जाता है। ऐसे शब्दोंको शब्दशास्त्री 'यौगिक शब्द' नाम देते हैं, क्योंकि वे 'योग' अर्थात किसी गुणविशिष्ट पदार्थके बोध करानेवाले पदावयवोंके मेलसे तैयार होते हैं।

अनेक बार एक ही शब्द प्रयोग-भेदसे वक्ताके इच्छानुसार दो अर्थोंका—जो परस्पर बिलकुल भिन्न होते हैं—बोध कराता है—जैसे, हरि शब्द भगवान विष्णुका भी बोधक है और सिंह तथा बन्दरका भी। इसी प्रकार अर्जुन शब्द व्यक्तिविशेष तथा वृक्षविशेषका भी बोध कराता है। मधु शब्दका अर्थ शहद है और वसन्त भी। उद्भिदका अर्थ है एक 'याग' और दूसरा वृक्ष-वनस्पति आदि। दो अर्थोंमें एक ही शब्द तुल्यशक्ति रखता है, और प्रकरणानुसार हमें दोनों अर्थोंका ही बोध होता है। कभी-कभी प्रकरणके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे साधन हैं, जो ऐसे शब्दोंके अर्थबोधके नियामक होते हैं। जैसे—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ (प्रयोजन), लिंग, शब्दान्तरका सामीप्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति (स्त्री-पुलिंगादि भेद) तथा स्वर (उदान्तादि)।* शब्दशास्त्रवेत्ताओंने ऐसे शब्दोंको 'यौगिक रूढ़' नाम दिया है, क्योंकि वे यौगिक अर्थका भी बोध कराते हैं, और रूढ़ अर्थका भी।

अब एक प्रकारके शब्द और रहते हैं, उनकी रचना यौगिक अर्थको ध्यानमें रखकर होती है, परन्तु वे प्रयोग सातत्यसे किसी अर्थमें रूढ़ हो जाते हैं, इसीलिए शब्दशास्त्रमें उन्हें 'योगरूढ़' कहा जाता है—जैसे, नीरधि, पंकज, सौध, सागर आदि। नीर अर्थात जलको धारण करे, वह नीरधि है। जिसका अर्थ होता है समुद्र। समुद्र जलको धारण अवश्य करता है, इसलिए उसे नीरधि कहना यौगिक दृष्टिसे ठीक ही है, परन्तु बादल, तालाब, घड़ा और लोटा-गिलास भी तो जलको धारण करते हैं, उन्हें भी नीरधि क्यों नहीं कहा जाता? यदि कोई लोटेको या बादलको नीरधि कहने लगे, तो उस दशामें यौगिक दृष्टिसे उचित प्रयोग होनेपर भी शब्दबोधमें लोटे या बादलका ज्ञान नहीं होता। फलतः शब्द-ज्ञानमें यौगिक ज्ञानसे रूढ़िज्ञान प्रबल हो जाता है, क्योंकि शब्दके अनेक अर्थ रहनेपर भी रूढ़ अर्थको बोध करानेके लिए वक्ताकी इच्छा विशेष आग्रहवती होती है, इसीलिए रूढ़यर्थ प्रधान और शेष अर्थ अत्यन्त गौण रह जाते हैं। यही कारण है कि 'नीरधि' कहनेसे 'समुद्र' रूप अर्थ प्रधान और शेष अत्यन्त गौण होते हैं। तभी 'क्षीरनीरधि' आदि प्रयोग सार्थक हो सकते हैं।

उपर्युक्त 'नीरधि' पदका 'समुद्र' रूप अर्थ विशेष अर्थ है, और बादल, तालाब या घड़ा आदि सामान्य। कभी-कभी वक्ताकी इच्छाके अत्यन्त आग्रहवती होनेपर विशेष अर्थ, जो प्रधान होता है, सामान्य अर्थात् दुर्बल अर्थसे—बादल, तालाब, या घड़ा आदि अर्थोंसे—दबा लिया जाता है, और तब नीरधिके अर्थ बादल, तालाब या घड़ा आदि भी हो जाते हैं।—जैसे, इस गाँवमें यह छोटासा कुआँ ही नीरधि है। ऐसी जगह नीरधिका अभिप्राय जलाशय रूप अर्थ बोध करा देनामात्र है, समुद्र नहीं, परन्तु ऐसे प्रयोग बहुत कम होते हैं। वस्तुतः योगरूढ़ शब्दोंमें रूढ्यर्थ ही प्रधान रहता है, क्योंकि वक्ताओंकी इच्छाका आग्रह उसी ओर विशेष झुका रहता है, इसीलिए संस्कृत-साहित्यमें शब्दशास्त्रियोंका यह सिद्धान्त है कि केवल यौगिकार्थ ज्ञानमें रूढ़िज्ञान प्रतिबन्धक होता है।* हाँ, एक बात है कि रूढ्यर्थके बोधमें शेष अर्थोंको यथायोग्य गौणरूपेण अवकाश रहता है। पंकज, सौध, सागर आदि शब्दोंका भी यही हाल है।

अब हमने ऊपरके समस्त विवेचनसे यह जान लिया कि शब्द चार प्रकारके होते हैं—(१) रूढ़, (२) यौगिक, (३) यौगिक रूढ़ और (४) योगरूढ़। अभी यद्यपि इनके अवान्तर और भी भेद-प्रभेद हो सकते हैं, परन्तु हम लेखकी कलेवर-वृद्धि एवं प्रकरणकी जटिलताका ध्यान रखकर उन्हें छोड़ देते हैं।

उपर्युक्त चारों प्रकारके शब्द सदैव एक-से नहीं रहते। वे घटते-बढ़ते रहते हैं। उनमें यथासमय परिवर्तन, परिवर्धन एवं संशोधन होते ही रहते हैं। इन सबका दारोमदार केवल प्रयोक्ताओंके मनोभावोंके परिवर्तन, परिवर्धन एवं संशोधनसे ही है। बहुधा ऐसा होता है कि एक भाषा-भाषियोंके शब्द-कोषमें अनेक शब्द घट बढ़ जाते हैं, या दूसरी भाषाओंके

---

* संयोगोविप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः॥
सामर्थ्यमौचितीदेशः कालोव्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृति हेतवः॥ —हरिकारिका।

* रूढिज्ञानस्य केवल यौगिकार्थज्ञाने प्रतिबन्धकत्वात् इति प्राञ्चः।
—न्या० सि० मुक्तावली शब्दखं०

शब्द आकर मिल जाते हैं। इसका कारण यही है कि जिन लोगोंमें जो भाव नहीं होते, उनके प्रकट करनेके लिए उन्हें शब्दोंकी आवश्यकता भी नहीं होती, परन्तु दूसरोंसे नवीन मनोभाव जब उन्हें प्राप्त होते हैं, तो अपनी भाषामें उन्हें प्रकट करनेके लिए वे लोग या तो नये ही शब्द रचते हैं, या उसी भाषाके शब्दोंको ज्यों-का-त्यों ले लेते हैं। बोलचालमें आते-आते वे शब्द दूसरी भाषाके शब्दोंमें इतने मिल जाते हैं कि फिर वे उसी भाषाके शक्तिमान पदोंकी पंक्तिमें बैठने लायक़ बन जाते हैं। मकान, मिज़ाज, मालिक आदि शब्द यद्यपि विदेशी भाषाके हैं, परन्तु वे अब प्रयोग-बाहुल्यसे हमारी भावनाओंमें इतने रम गये हैं कि उन्हें हिन्दीके ही शब्द स्वीकार करना पड़ता है। नोट, कोट, नम्बर, निब आदि शब्दोंका भी यही हाल है, परन्तु ऐसे शब्द दूसरी भाषामें जाकर रूढ़ शब्दोंकी कोटिमें रखने योग्य हो जाते हैं, क्योंकि दूसरी भाषामें उनका यौगिक अर्थ कुछ नहीं हो सकता। चाहे उनकी जन्मभूमिमें भले ही उनका यौगिक अर्थ रहा हो, परन्तु हम उन्हें यौगिक शब्दोंकी भाँति नहीं, रूढ़ शब्दोंकी भाँति ही काममें लाते हैं।

अंगरेज़ीका एक शब्द Capital है, जिसका अर्थ आजकल होता है 'राजधानी'। परन्तु ऐसा अर्थ क्यों होता है? इस विवेचनाके लिए सर्वसाधारणको कभी चिन्ता नहीं होती। जहाँ राजधानीका बोध कराना पड़ा, वहाँ कैपिटल (Capital) का प्रयोग कर दिया, चाहे उसका यौगिकार्थ राजा या तत्सम्बन्धी किसी कार्यसे सम्बन्ध रखता भी है या नहीं, इसकी चिन्ता नहीं होती, क्योंकि वह राजधानीके अर्थमें अब रूढ़ हो गया है। वस्तुतः राजासे उसका सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। प्राचीन रोम देशमें Capital नामकी एक पहाड़ी थी, जिसके ऊपर जुपिटर (Jupiter) नामक देवताके नामसे एक मन्दिर बना था। जुपिटर बहुत पूज्य और न्यायकारी देवता माना जाता था। फलतः पूज्यत्व और न्यायकारित्व रूप दोनों गुणोंको ही ध्यानमें रखकर राजाके रहनेके स्थानको Capital नाम मिल गया, अर्थात् वह राजधानी अर्थमें रूढ़ हो गया। अब हमें Capital कहते समय रोममें उसकी उत्पत्तिका इतिहास ध्यानमें नहीं आता, किन्तु रूढ्यर्थ ही ध्यानमें रहता है। फलतः शब्दका जो यौगिकार्थ उसकी जन्मभूमिमें होता है, दूसरी भाषामें जाकर उसमें हेर-फेर हो जाता है, और वह शब्द प्रायः रूढ्यर्थवाची बन जाता है।

अनेक लोग प्रायः प्रत्येक शब्दको यौगिक दृष्टिसे ही देखनेका यत्न करते हैं। उनका अभिप्राय यही होता है कि अर्थके साथ शब्दका कुछ-न-कुछ यौगिक सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए। निरुक्तशास्त्री भी इसी सम्प्रदायके हैं। 'भू' शब्द रूढ़ है, परन्तु निरुक्तशास्त्रीको इसमें भी क्योंके लिए अवकाश प्रतीत होता है, और उसे तब सन्तोष होता है, जब वह 'भू'को केवल रूढ़ शब्दकी दृष्टिसे नहीं, किन्तु 'भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूः' की यौगिक दृष्टिसे देख लेता है। निरुक्तशास्त्री दस-बीस शब्दोंको नहीं कि साहित्यके सभी शब्दोंको इसी दृष्टिसे देखना चाहते हैं। चाहे शब्दोंको कभी-कभी उलटना पड़े, उनमें अक्षर घटाने-बढ़ाने भले ही पड़ें, पर उनमें अर्थके साथ शब्दका कुछ-न-कुछ यौगिक सम्बन्ध अवश्य निकलना चाहिए। वह अपने शिष्योंको यही सिखाना चाहता है कि 'वृक्ष'को केवल रूढ़ शब्दकी दृष्टिसे न देखो, किन्तु 'वृत्वाक्षां' तिष्ठतीतिकी दृष्टिसे देखना चाहिए। इस प्रकार निरुक्तशास्त्रियोंने शब्दोंकी तीन प्रकारकी व्यवस्था की है—१ प्रत्यक्ष वृति, २ परोक्षवृत्ति और ३ अतिपरोक्षवृत्ति।

जिन शब्दोंका रूप बहुत स्पष्ट है, वे प्रत्यक्षवृति होते हैं। जिनका रूप कुछ अस्पष्ट होता है, वे परोक्षवृति हैं। जो नितान्त अस्पष्ट होते हैं, वे 'अतिपरोक्षवृत्ति' वाले हैं, निरुक्तशास्त्रमें उनकी निरुक्ति अवश्य होनी चाहिए। उसका क्रम यही है कि अतिपरोक्षवृतिको परोक्षमें और परोक्षको प्रत्यक्षमें ले आना चाहिए—जैसे, अतिपरोक्षवृति है 'निघण्टु'; परोक्षवृति है 'निगन्तु'; प्रत्यक्षवृति है 'निगमयितारः'। परन्तु शब्दशास्त्रियोंके मतमें तो निरुक्तिमात्रसे ही शब्दोंको यौगिक नहीं कहा जा सकता। उनका तो रूढ़ शब्द वह है, जो अवयवशक्तिकी अपेक्षा नहीं रखता। अर्थात् बुद्धिमें इतना सन्निकृष्ट है कि अवयवोंकी छानबीनके बिना ही शब्दबोधको पैदा कर देता है। 'गच्छतीति गौः' अवश्य है, पर उसकी वैसी अवयवीय व्याख्या कौन करता है, जैसी 'भोजनशाला' और पाचक, याजक आदिकी होती है। निरुक्तशास्त्र शब्दोंकी निरुक्ति द्वारा समाजके उस भावको खोलता है, जिससे प्रेरित होकर उस शब्दकी रचना हुई थी।

इस विषयमें अधिक फिर कभी लिखा जायगा।
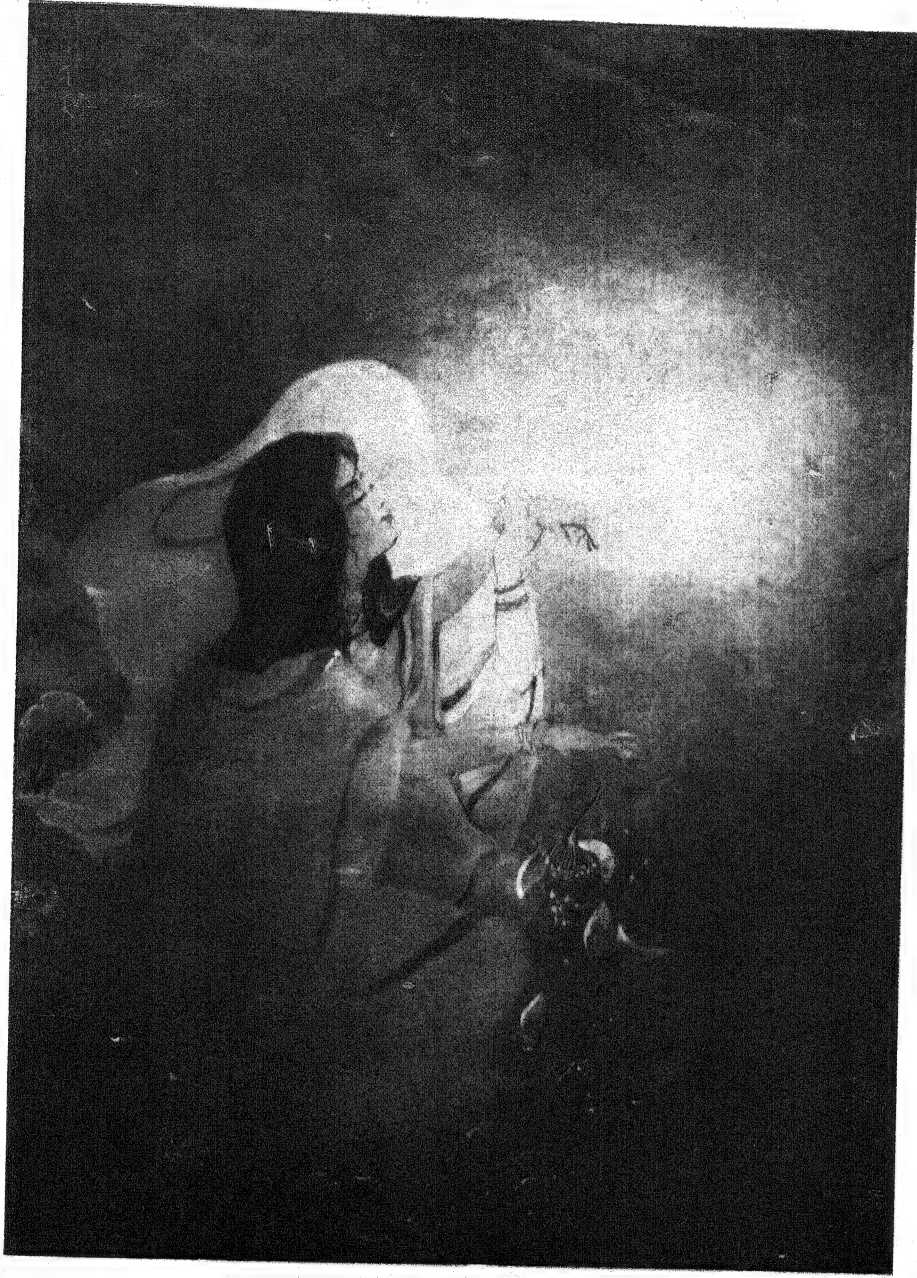
अन्त

'विशाल-भारत'] [चित्रकार—श्री समरेन्द्रनाथ गुप्त

साहित्य-सेवी और साहित्य-चर्चा

स्व० पं० किशोरीलालजी गोस्वामीके संस्मरण

स्वर्गीय गोस्वामीजीके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे तीन बार प्राप्त हुआ था। पहली बार तो सन् १९१७ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके इन्दौरवाले अधिवेशनके पूर्व, दूसरी बार वृन्दावनके सम्मेलनपर और तीसरी बार काशीमें, आजसे चार-पाँच वर्ष पूर्व। इन तीन अवसरोंपर मैंने उन्हें भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें देखा। इन्दौर-सम्मेलनके साहित्य विभागके मन्त्रीकी हैसियतसे मैं उनकी सेवामें लेखके लिए प्रार्थना करने वृन्दावन पहुँचा था। ऊपरके विस्तृत कमरेमें वे बैठे हुए थे। चारों ओर किताबोंके ढेर लगे हुए थे। कहीं कुछ छपे-छपाये फार्म रखे हुए थे, कहीं वी० पी० पार्सल डाकखाने जानेके लिए तैयार थे, प्रेससे प्रूफ दिखानेके लिए आ रहे थे, गोस्वामीजीके सुपुत्र छबीलेलालजीकी कहानियोंकी किताब छप रही थीं ; गरज़ यह कि काम बड़े ज़ोरोंके साथ चल रहा था। उस समय तक श्री छबीलेलालजीके सिरपर हुब्बलवतनीका जिन सवार नहीं हुआ था, और वे शुद्ध साहित्यिक जीव थे। गोस्वामीजी उस समय साधनसम्पन्न थे, और उनकी बातचीतमें उत्साह था। अपने पिछले ४० वर्षके अनुभवकी उन्होंने कितनी ही बात सुनाईं ; ग्रियर्सन साहबसे उनका जो पत्र-व्यवहार तथा परिचय हुआ था, उसका ज़िक्र किया, और अपनी एक छोटीसी पुस्तक उस समयकी छपी हुई दिखलाई, जब हमारा जन्म भी नहीं हुआ था। गोस्वामीजीकी किसी पुस्तकका अनुवाद मराठीमें हुआ था। उसका भी उन्होंने ज़िक्र किया। उन दिनों भी गोस्वामीजीको इस बातकी कुछ शिकायत थी कि हिन्दी-संस्थाएँ उनके साथ यथोचित व्यवहार नहीं करतीं। साहित्यिक प्रदर्शिनियोंपर वे बराबर अपनी किताबें भेजा करते थे, पर वे कहींसे वापस नहीं आती थीं! अपने साहित्यिकोंका सम्मान करना तो हिन्दीवाले जानते ही नहीं, इस बातका भी गोस्वामीने प्रसंगवश ज़िक्र किया था। गोस्वामीजीके यहाँसे मैं प्रभावित होकर लौटा। हृदयमें इच्छा हुई कि यदि मैं भी इसी तरहका लेखक होता, तो कैसा अच्छा होता।

वृन्दावन-सम्मेलनके अवसरपर गोस्वामीजी काशीसे पधारे थे। कवि-सम्मेलनमें उन्होंने बड़े उत्साहसे भाग लिया था, और उनके सुपुत्र श्री छबीलेलालजीने इधर-उधर घूम-घूमकर सम्मेलनकी सफलताके लिए प्रयत्न किया था। गोस्वामीजीमें पुराने उत्साहकी झलक बाक़ी थी, यद्यपि छबीलेलालजीकी लीडरी उन्हें बहुत महँगी पड़ी थी। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'ने 'प्रताप'में एक बार मज़ेदार रसिया छपवाया था, जिसका प्रारम्भ इस प्रकार होता था—

"हुब्बलवतनी कौ मरोरा छोरा लै डारेगौ तोहि
हुब्बलवतनीकौ मरोरा।"

श्री छबीलेलालजीने अपने पिताजीके प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यको नितान्त उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा था। आवश्यकता इस बातकी थी कि प्रेसकी उन्नति करके उनके ग्रन्थ नये आकार-प्रकारसे छपाये जाते, और उनकी बिक्रीका उचित प्रबन्ध होता, पर छबीलेलालजी व्याख्यानबाज़ीमें लगे हुए थे। परिणाम यह हुआ कि बाज़ारमें छबीलेलालजीका मोल बढ़ गया, लेकिन उनके पिताजीकी पुस्तकोंका मोल घट गया। इधर जनताकी रुचिमें भी परिवर्तन हो रहा था। इन सब परिस्थितियोंने मिलकर श्री गोस्वामीजीकी आर्थिक स्थितिपर ज़बरदस्त प्रभाव डाला था, फिर भी उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सब कुछ सहन किया था, और उनकी ज़िन्दादिलीमें किसी तरहका अन्तर नहीं पड़ा था।

काशीमें पिछली बार जब मैंने उनके दर्शन किये, उस समय उनमें स्फूर्ति बहुत कम रह गई थी। बढ़ती हुई उम्रका तकाज़ा था, गार्हस्थिक परेशानियाँ थीं, साथ ही यह पछतावा भी था कि छबीलेलालजीने साहित्य-सेवासे सर्वथा मुँह मोड़ लिया था। बड़े खेदपूर्वक उन्होंने कहा भी—"छबीलेलाल अच्छी कहानियाँ लिखने लग गया था; आजकलके अनेक गल्प-लेखकोंसे पहले उसने लिखना शुरू किया था, पर उसने राजनैतिक झंझटोंमें पड़कर सारा साहित्यिक काम चौपट कर दिया।"

इस समय गोस्वामीजीकी बातोंसे यह खेदजनक ध्वनि और भी स्पष्टतया निकलती थी कि हिन्दी-जनताने उनका यथोचित सम्मान नहीं किया। उनसे 'जूनियर' आदमी सम्मानित हो चुके थे, और उनका किसीने नाम भी नहीं लिया था, पर गोस्वामीजी मौजी आदमी थे, शिकायतके निरुत्साहप्रद वायुमंडलमें अधिक देर साँस लेना उन्हें नापसन्द था, और उनकी ज़िन्दादिलीकी पुरानी स्पिरिट अब भी बाक़ी थी। उन्होंने शृंगाररसकी कई कविताएँ सुनाईं, जिनमें एकका नाम था—'बारेकी नार' या 'बालककी वनिता'। कवित्तका प्रारम्भ इस प्रकार होता था—

"निज बालम बारे निहारि अली
मन मेरो हमेस पिया सो रहे।"

चारों चरणोंके अन्तमें "पिया सो रहे" भिन्न-भिन्न अर्थोंमें आया था। शृङ्गाररसके बाद आपने अपनी लिखी उर्दूकी कुछ ग़ज़ल सुनाईं—

"हो जवाँमर्द न डर करके छिपो अन्दर यों,
बढ़के दो हाथ चला डालो न खंजर बाहर।

जो जवाँमर्द हैं, मरनेसे नहीं डरते वह;
आबरू रखते हैं दुश्मनसे निबटकर बाहर।

जिनको जोरूके न लँहगेमें जगह मिलती थी;
वह भी मुरदार बने आज हैं लीडर बाहर।

देखते घरमें तमाशा हैं लड़ानेवाले;
लड़ रहे शौक़से हैं खास बिरादर बाहर।

हिन्दकी आबरू तुमसे न रहेगी यारो!
घरमें बैठे हुए फेंका करो पत्थर बाहर।"

तत्पश्चात् अपना एक पद सुनाया—

"श्री हरि अपनी ओर निहारहु।
कामी कुटिल पातकी दुर्जन जानि न मोहि बिसारहु।
कोटि-कोटि खल जैसे तारे तैसेहि मोहि उबारहु;
रसिक किसोरी सरनागत लखि अब करुणाकरि तारहु।"

इसके बाद गोस्वामीजी अपनी एक पुरानी नोट-बुक ले आये, और उसमें से कितने ही मनोरंजक कवित्त और किस्से सुनने लगे। उन्होंने बतलाया कि एक बार हिन्दी और उर्दूके विषयमें स्वामी दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्री राधाचरण गोस्वामी, श्री प्रतापनारायण मिश्र और पं० बालकृष्ण भट्टने एक-एक पद्य कहा था। पद्य मुझे पसन्द आये, और मैंने उसी वक्त उन्हें अपनी नोट-बुकमें दर्ज कर लिये। आप भी सुन लीजिए—

"बभूवतुस्ते व्रजभूमिरः सुते
स्वजन्म बीजेन विभिन्न मार्गे
तयोस्तु हिन्दीकुलकामिनी बरा
कनिष्ठिकोर्दू कथिता विलासिनी।"

—स्वामी दयानन्द

*

"सब गुन लै हिन्दी भई, ब्रजभाषाके कोष;
तापर जो उरदू भई, सो गुनरहित सदोष।"

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

*

"हुई सैकड़ों ब्रजभाषाकी यद्यपि बिटियाँ ललित ललाम;
पर उन सबमें हिन्दी और उर्दूही ने पाया नाम।"

—बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

*

"द्वे सुते व्रजभाषाया हिन्दी चोर्दूबभूवतुः ;
आद्या बाराङ्गना चान्त्या ख्याता बाराङ्गना भुवि ।"

—राधाचरण गोस्वामी

*

"है बड़ी हिन्दी व उर्दू उसकी छोटी बहन है,
आई व्रजभाषासे दोनों यह बड़ोंकी कहन है।"

—प्रतापनारायण मिश्र

*

"दुइ बिटियाँ व्रजभाषाकी हैं, हिन्दी-उर्दू सुन्दर नार ।
जेठी महलनमें है पैठी लौहरी बैठी, जाइ बजार ।"

—बालकृष्ण भट्ट

× × ×

कई घंटे तक गोस्वामीजीके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मनमें इच्छा भी हुई कि कई दिन उनकी सेवामें बिताकर पुरानी बातोंके नोट ले लूँ, पर अपनी दीर्घ-सूत्रतावश वैसा न कर सका। इस अवसरपर मुझे यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि गोस्वामीजीके काशीवाले घरसे मैं उस प्रकारके उत्साहके भाव लेकर नहीं लौटा, जिस प्रकारके भाव सन् १९१७ में उनके वृन्दावनवाले कार्यालयसे लेकर लौटा था। इसके कई कारण हो सकते हैं। सम्भवत: मेरी मनोवृत्तिमें ही परिवर्तन हो गया था, अथवा संकटग्रस्त होनेके कारण उनके व्यक्तित्वमें ही प्रभावोत्पादक शक्तिकी कमी हो गई थी। व्यक्तित्वको निरन्तर प्रभावोत्पादक बनाये रखनेके लिए तप और त्याग, निश्चिन्त अवकाश तथा आर्थिक सुविधाकी नितान्त आवश्यकता होती है, और सम्भवत: विकट परिस्थितियोंने गोस्वामीजीके लिए उतना अवसर ही न छोड़ा था कि वे अपने व्यक्तित्वको विशेष आकर्षक बनाये रखते। आर्थिक संकट व्यक्तित्वका कितना बड़ा विघातक है, इसका अनुमान भुक्तभोगी ही कर सकते हैं, पर किसी भी हालतमें वे उस उपेक्षाके योग्य न थे, जो उनकी ओर प्रदर्शि[illegible]ी गई थी। मरनेके कुछ घंटे पहले उन्होंने श्री छबीलेलालजीसे कहा था—

"तुम्हें इस बातपर आश्चर्य और दु:ख है कि मेरी बीमारीमें काशीका कोई भी हिन्दी-साहित्य-सेवी देखने-सुनने नहीं आया, पर मैं इसे ईश्वरका अनुग्रह समझता हूँ, और चाहता हूं कि मेरे अन्त समय तक कोई भी आनेकी कृपा न करे। 'निर्वात् निष्कम्पमिव प्रदीपम्' के समान मैंने आजीवन आँधी-तूफानोंको देखा। जो कुछ कहा-सुना गया, उसे शान्तिसे सहन किया, और अब अन्तिम समय भी उस शान्तिमें विघ्न न हो, यही चाहता हूँ। जगदीश्वर यहाँके साहित्य-सेवियोंकी मति ठीक रखे, और वे मुझपर अनुग्रह प्रकाश करनेकी उदारता न करें।"

" 'आज' में बीमारीकी सूचना छपनेपर मुझे आशा थी कि कुछ लोग अवश्य आयेंगे।"—छबीलेलालजीने कहा।

"तुमने न कभी संसारको पहचाना और न पहचान ही सकोगे! इस चर्चाको बन्द करो। इस समय केवल गीताके कृष्णकी चर्चा रखो।"—गोस्वामीजीने कहा।

गोस्वामीजीने अपने समयमें मातृभाषाके लिए जो कार्य किया था, वह वास्तवमें महत्त्वपूर्ण था, और यद्यपि समयकी गति उन्हें पीछे छोड़ गई थी, तथापि वे अपने ढंगके निराले आदमी थे, और उनकी सेवाओंको भूल जाना घोर कृतघ्नताकी बात होगी।

—

हमारी सबसे बड़ी कमी

हिन्दी-साहित्य-समाजकी सबसे बड़ी कमी क्या है? यह प्रश्न वास्तवमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अच्छे-अच्छे लेखकों तथा कवियोंकी कमी हमारे यहाँ नहीं है। धनवान प्रकाशक भी बहुतसे पाये जाते हैं। अनेक छोटी-मोटी संस्थाएँ भी हैं, जो अपने ढंगपर उपयोगी काम कर रही हैं। लगनके साथ काम करनेवालोंको रुपया भी मिल जाता है। तो आखिर कमी किस चीज़की है? कमी है दरअसल ऐसे व्यक्तित्वकी, जो सर्वथा साहित्यमय हो, शक्तिशाली हो, दलबन्दीके दल-दलसे अपनेको पूर्णतया बचा सके, और

जिसके जीवनका उद्देश्य ही साहित्य-क्षेत्रको प्रकाशमय बना देना हो। हमारे साहित्यमें छोटे-बड़े दीपक, लालटेन और कन्दीलोंकी कमी नहीं है, पर डाइनैमो (बिजलीका केन्द्रीय यन्त्र), जहाँसे प्रकाश चारों ओरको फैलाया जाता है, एक भी नहीं है। उदाहरणके लिए हम कह सकते हैं कि जिस कार्यको द्विवेदीजी करते थे, और जिसे आगे चलकर श्रद्धेय गणेशजी तथा स्वर्गीय पद्मसिंहजीने अपने ऊपर उठा लिया था, उसे आजकल कोई नहीं कर रहा।

'क' महाशय अच्छे प्रबन्धक हैं। संस्थाका संचालन खूब कर लेते हैं। रुपये भी जमा करना जानते हैं। काम भी बहुत किया है, पर दलबन्दीमें अत्यन्त विश्वास रखते हैं। परिणाम यह हुआ है कि उनके व्यक्तित्वका बहुत कुछ ह्रास हो गया है, और वे किसी निष्पक्ष नवयुवकको प्रोत्साहित नहीं कर सकते।

'ख' महानुभाव अच्छे कवि हैं। नौकरी करके शानदार कोठी बनवा ली है! बात त्याग और तपकी करते हैं, पर किसी निर्धन साहित्यिकको कभी एक पैसा भी देनेका अपराध आपसे नहीं बन पड़ा। अपने लड़कोंके लिए मकान छोड़ जायँगे, और जनताके लिए स्वार्थपरताका दृष्टान्त।

'ग' महाशय विख्यात लेखक हैं। साहित्यसे रुपया भी खूब कमाया है, और कीर्ति भी। दूरदर्शिताका अभाव है, और व्यापारिकताने सहृदयताको बेतरह दबा दिया है। निकटसे देखनेवाले स्वार्थत्यागी नवयुवकको उनसे निराशा ही मिलेगी।

'घ' महोदय पूरे घाघ हैं। रुपयेपर उनकी निगाह वैसी ही रहती है, जैसी बगलेकी मछलीपर! उनके शब्द-कोषमें आदर्शवादका अर्थ है मूर्खता, और सफलताका अर्थ है रुपये कमाना।

'छ' महानुभावमें त्याग भी है, तप भी है, योग्यता भी है और दूसरोंको अनुप्राणित करनेकी शक्ति भी, पर साहित्यको छोड़कर राजनीतिका पल्ला पकड़ लिया है, अतएव साहित्यिक समाज उनकी प्रतिभासे पूरा लाभ नहीं उठा पाता।

'ज' का दिमाग आसमानपर है, और पैर ज़मीनपर नहीं! क्या लिखते हैं, कुछ समझमें नहीं आता। बाप-दादोंकी अर्जित सम्पदाके द्वारा हिन्दी-साहित्यमें कूड़ा-करकट भर रहे हैं। नवयुवकोंको ग़लत रास्तेपर ले जा सकते हैं।

'झ' पढ़े-लिखे खाक-धूल नहीं, पर कहते हैं कि हमने जर्मन, फ्रेंच, फ़ारसी, उर्दू आदि सभी भाषाएँ पढ़ डाली हैं। लिखते हैं—"अमुक यूरोपियन भाषाका सर्वश्रेष्ठ नवीन ग्रन्थ हमारी टेबिलपर सामने रखा हुआ है।" मैथ्यू आर्नेल्ड, रोमाँरोलाँ, बर्नार्ड शा और बर्ट्रेण्ड रसलके नाम सुना-सुनाकर कोरमकोर हिन्दी पढ़ोंपर रोब गाँठते रहते हैं। एक दिनमें १३१/३ (तेरह सही बाहर बटे सत्रह) स्टैण्डार्ड किताबें पढ़ लेते हैं।

'ट' उपाधिधारी हैं। अंगरेज़ीमें जो कच्चा साहित्यिक भोजन खाया है, उसे हज़म नहीं कर सके। पत्रोंमें वमन कर देते हैं, जिससे पाठकोंको अरुचिकी बीमारी पैदा होनेका डर रहता है।

इन दृष्टान्तोंका उल्लेख हमने किसी व्यक्तिविशेषकी निन्दा करनेके उद्देश्यसे नहीं किया। यदि अपनी डाढ़ीमें तिनका खोजनेवाले महाशय इनमें से किसीको अपने ऊपर फिट कर लें, तो इसमें हमारा कोई अपराध न होगा।

एक ओर तो यह टाइप हैं, जिन्हें हम चलते-फिरते नित्यप्रति देख सकते हैं, और दूसरी ओर उन आदर्शवादी नवयुवकोंका दल है, जो साहित्य-भवनके निर्माणमें परिश्रम करनेके लिए उद्यत हैं, पर जिन्हें कोई आदर्श नहीं मिल रहा। इस परिस्थितिको देखकर हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि हमारे यहाँ सबसे बड़ी कमी व्यक्तित्वकी है। यदि हम लोग अपने-अपने व्यक्तित्वोंका उचित दिशामें विकास करते रहें तथा उच्चादर्शोंका चिन्तन करते रहें, तो कभी-न-कभी हमारे साहित्यमें भी असाधारण व्यक्तित्वके आदमी उत्पन्न हो जायँगे। विचारोंमें बड़ी ज़बरदस्त शक्ति है, और विचारोंके द्वारा हम अपने आदर्शोंको अपनी ओर खींचकर उन्हें मूर्तिमान बना सकते हैं।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

सैयद अहमद अदीब पेशावरी

प्रोफेसर मुहम्मद इस्हाक़, एम० ए०

इस गये-गुज़रे ज़मानेमें भी हिन्दोस्तानने कुछ ऐसे सपूतोंको जन्म दिया है, जिन्होंने अपनी योग्यता, विद्वत्ता और कारगुज़ारियोंसे विदेशोंमें जाकर भी अपनी मातृभूमिका नाम उज्ज्वल किया है। स्वर्गीय अहमद अदीब पेशावरी भी हिन्दोस्तानके ऐसे ही सपूतोंमें थे, जिन्ह पदा करके कोई भी मुल्क नाज़ कर सकता है। मगर अफसोस है कि हमारे हिन्दोस्तानके बड़े-बड़े विद्वान और बड़े-बड़े मुसलमान आलिम तक उनके नामसे भी वाक़िफ नहीं हैं!

सैयद अहमद अदीब पेशावरीका जन्म सन् १२५० और १२६० हिजरीके बीचमें (सन् १८२८ से १८३८ ई० के बीचमें) हिन्दोस्तानकी उत्तरी-पश्चिमी सरहदपर पेशावर और अफ़ग़ानिस्तानके बीच—खैबरके क़रीब क़रीब—किसी जगह हुआ था। No man's land (मानवहीन देश) के नामसे पुकारे जानेवाले खौफ़नाक वीरान पहाड़ी इलाक़ेमें और ऐसे लोगोंमें, जिनकी सारी ज़िन्दगी, हमारे हिन्दू भाइयोंके कथनानुसार, शक्तिकी पूजामें ही बीतती है, जो क़लमकी जगह बन्दूक़से काम लेते हैं, और संसारके इतिहासमें अपना वृत्तान्त ख़ूनसे लिखा करते हैं, जन्म लेकर सैयद अहमद अदीब पेशावरीने फारसी साहित्य और फारसके विद्वानोंमें वह सम्मानका पद प्राप्त किया था, जिसके लिए मौजूदा फारसके बड़े-से-बड़े विद्वान भी अपना जीवन निछावर करनेको तैयार होंगे।

अफसोस है कि अदीब साहबके प्रारम्भिक जीवनका पूरा हाल मालूम न हो सका, और शायद अब उसका पता लगना भी मुमकिन नहीं; मगर हाँ, यह बात निस्सन्देह रूपसे कही जा सकती है कि अदीब साहबको लड़कपनसे ही विद्या अध्ययनकी लगन थी, और जिन्दगी भर रही। इसी लगनमें उन्होंने अपने वतनको खैरबाद कहा, और पश्चिमकी राह ली। पहले उन्होंने ग़ज़नी पहुँचकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। ग़ज़नीमें जितना ज्ञान प्राप्त होना सम्भव था, उतना प्राप्त किया; मगर सिर्फ़ उससे उनकी तबीयत न भरी, इसलिए तीस वर्षकी उम्रमें वे हज़रत इमामरज़ाके पवित्र तीर्थ-स्नान मशद मुक़द्दसको रवाना हुए। वहाँ भी जो कुछ इल्मकी दौलत मिल सकी, उसे वसूल करके सन् १२७० हिजरीमें सब्ज़वार पहुचे। सब्ज़वार एक छोटा हराभरा ख़ूबसूरत मुक़ाम है। वहाँ आख़ुन्द मुल्ला मुहम्मद पिसरे मरहूम हाजी मुल्ला हादी सब्ज़वारीसे, जो उस समय ईरानके सबसे बड़े दार्शिनिक थे, दर्शनशास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की। गुरुकी मृत्युपर वे सन् १३०० हिजरीमें फारसकी राजधानी तेहरान पहुचे, और वहीं बस गये। जिस ईरानने उन्हें विद्या-दान दिया था, उसे उन्होंने पूज्य मातृभूमिके रूपमें ग्रहण कर लिया, और ईरानके पुत्र—दत्तक पुत्र—होनेका गर्व करने लगे; मगर इतना सब होनेपर भी वे कभी अपनी असलियतको नहीं भूले, और मरते दम तक अपनेको फ़ख़्रके साथ 'पेशावरी' लिखते रहे।

हज़रत अदीब कितने ऊँचे दर्जेके विद्वान थे, इसका अन्दाज़ा इस बातसे लगता है कि अरबी, फारसी, मन्तक़ (तर्कशास्त्र), मआनी (Rhetoric), कलाम (शास्त्रार्थ), हिकमत इलाही (धर्मतत्त्व), तारीख़ (इतिहास), लुग़त (भाषा-विज्ञान) और रियाज़ियात (गणित) में उनकी योग्यता देखकर बड़े-बड़े विद्वान भी दाँतों-तले उँगली दबाते थे। इतने विभिन्न विषयोंमें इतनी योग्यता प्राप्त करना सचमुचमें आश्चर्यजनक बात है। उनकी स्मरणशक्ति इतनी तेज़ थी कि मजलिसोंमें अरबी या फारसीके किसी अज्ञात शायरका कोई स्फुट शेर भी पढ़कर यदि कोई यह पूछ बैठता कि यह किस शायरका शेर है, तो बड़े-से-बड़े आलिम

भी उधेड़-बुनमें पड़ जाते थे; मगर हज़रत अदीब बिना किसी पशोपेशके न सिर्फ शायरका नाम, समय और उसकी ज़िन्दगीके हालात ही बयान कर देते थे, बल्कि उस शेरसे आगे-पीछेके शेर—यहाँ तक कि पूरी ग़ज़ल या कसीदेको—ज़बानी सुना जाते थे! उनके ज्ञान और उनके दिमाग़को देखकर यही कहना पड़ता था कि वे एक जीते-जागते—चलते-फिरते—विश्वकोष थे।

हज़रत अदीबने शादी नहीं की, और उम्र-भर ब्रह्मचारी रहे। उनका सारा समय और सारी शक्तियाँ केवल साहित्य-सेवामें ही खर्च होती थीं। वे जाड़ोंमें तेहरान रहा करते थे, और गर्मियाँ तेहरानसे चन्द मील दूर तजरीश नामक जगहमें—जहाँ गर्मियोंमें ईरानके शाह तथा अन्य उच्च अधिकारी रहते हैं—बिताया करते थे।

हज़रत अदीबका स्वभाव बहुत सीधा-सादा और एकान्त-प्रिय था। वे अकसर अपने कमरेमें तनहा बन्द रहकर फिक्रे सुखनमें, या किसी और इल्मी मसलेमें, मशगूल रहा करते थे। उन्हें न तो पैसेकी फिक्र थी, और न नाम या शोहरतकी। ईरानके वज़ीर मआ'रफ (शिक्षा-मन्त्री) उन्हें अपने घरमें ही रखते थे। उनमें ज्ञान, विद्या और योग्यताका ऐसा तेज था कि बड़े बड़े आलिम उनके सामने जाते हुए थर्राते थे! फारसीके मशहूर आलिम मिर्ज़ा मुहम्मद कज़वीनी, जिन्होंने मि० ब्राउनके साथ फारसीकी अनेकों प्राचीन पुस्तकें सम्पादित करके प्रकाशित की हैं, और आजकल पेरिसमें हैं, हज़रत अदीबके बारेमें लिखते हुए फरमाते हैं—

"मैंने जिन उस्तादोंकी सोहबतसे सबसे ज़्यादा फायदा उठाया है, उनमें सबसे बड़े आक़ाय-आक़ा सैयद अहमद अदीब पेशावरी हैं। तजरीशमें एक ही मकानमें रहते वक्त मुझे कभी-कभी कुछ मिनटोंके लिए उनकी खिदमतमें रहनेका मौक़ा मिल जाता था। उनके रूबरू जानेकी मेरी हिम्मत न पड़ती थी, इसलिए मैं उनके कमरेमें जानेके बहाने ढूँढ़ा करता था। मैं डरते-सहमते उनकी खिदमतमें कोई सवाल अर्ज़ करता, तो मुझे फौरन ही उसका साफ़ और पूरा जवाब मिल जाता था। उनका दिमाग़ मालूमात और इल्मोंका खज़ाना था। मैं अगर कोई अरबी या फारसी शेर पूछ बैठता, तो वे बिला पशोपेशके उस शेरसे पहले और बादके अशआर, उसके मानी, शायरका नाम, हाल और तारीख वग़ैरह सब कुछ बता जाते थे। उनका यह हाफ़िज़ा सिर्फ हालके शायरोंपर ही खत्म नहीं था, बल्कि इसलामके पहलेके—ज़माना जाहलियतके—शायरों तकके बारेमें उनकी यही हालत थी। जब वे बात करते थे, तो मालूम होता था कि इल्मका दरिया बह रहा है।"

जब मैं सन् १९३०में अपनी किताब* के सिलसिलेमें ईरान गया था, तब मेरे दिलमें उनके दर्शनकी बड़ी इच्छा थी, मगर अफसोस कि मेरे तेहरान पहुँचनेके दस-बारह दिनके अन्दर ही वे इस दुनियासे कूच कर गये! तेहरानके नज़दीक़ रैके वीरानेसे कुछ आगे इमामज़ादा अब्दुल्ला† में वे दफ़न किये गये।

उनकी मौतपर शोक प्रकट करनेके लिए जो मीटिंग हुई थी, उसमें मैं भी शामिल हुआ था। उस मीटिंगमें वज़ीर मआरिफके अलावा ईरानके बड़े-से-बड़े आलिम—जैसे, मलिकुश्शोअरा बहार, बदीउज्ज़मान खुरासानी वग़ैरह-वग़ैरह—मौजूद थे। मीटिंगमें हज़रत अदीब मरहूमकी क़ाबलियत, लियाक़त, सचाई और सिफतोंका जो बयान किया गया था, और उनके लिए ईरानियोंने जो मुहब्बत और रंज ज़ाहिर

---

* लेखकने "सुख़नवराने ईरान दर अस्र हाज़िर" (वर्तमान कालके ईरानी साहित्य-सेवी) नामक एक सचित्र पुस्तक तीन भागोंमें लिखी है, जिसका पहला भाग शीघ्र ही प्रकाशित होगा। यह लेख उसी अप्रकाशित पुस्तकसे लिया गया है। —सम्पादक

† हज़रत अलीके वंशधरोंमें जो इमाम या इमामजादे हुए हैं, लोग उन्हें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। हरएक ईरानीकी यह इच्छा होती है कि इमामजादेकी क़ब्रके क़रीब अपनी क़ब्र बनवाये। इसलिए हरएक इमामजादेकी क़ब्रके गिर्द सैकड़ों क़ब्रें हो जाती हैं। इसीसे बहुतसे कबरिस्तान उन्हीं इमामोंके नामसे प्रसिद्ध हो जाते हैं। —लेखक

किया था, उसे सुनकर मेरे दिलकी अजीब हालत हो गई। रह-रहकर इस बातका अफसोस होता था कि मैं इतने बड़े आलिमके दर्शन न कर सका; मगर साथ ही यह फ़ख्र भी होता था कि मादरे हिन्द अब तक ऐसे सपूत पैदा करती है, जिनपर ग़ैर-मुल्कवाले भी नाज़ करते हैं! मैं छै महीने ईरानमें रहा। वहाँके पढ़े-लिखे लोगों और लिटरेरी आदमियोंसे बराबर मिलता जुलता रहा। मैंने बहुतोंसे हज़रत अदीबके बारेमें बातचीत की, पर मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिला, जिसने उनकी तारीफ़के सिवा, उनकी शानके खिलाफ़ एक हर्फ़ भी कहा हो।

हज़रत अदीबने विभिन्न विषयोंपर बहुतसी किताबें लिखी हैं, और 'तारीख बेहक़ी'का सम्पादन किया है। उनके दीवानमें २०,००० अशआर हैं। अफसोस है कि उनका दीवान अभी तक छप नहीं सका। मिर्ज़ा मुहम्मद कज़वीनीने पेरिसमें शाहज़ादा नुसरतुद्दौला फीरोज़ मिर्ज़ाके पास उनका हाथका लिखा दीवान देखा था। उनकी शायरीके कुछ नमूने यहाँ पेश किये जाते हैं—

ग़ज़ल

"सहर बिबूये नसीमत बिमुज़दा जान सेपुरम,
अगर अमान देहद इम शब फ़िराक़ ता सहरम। १
चो बुग्ज़री, क़दमी बर दोचश्मे मन बिगुज़ार,
क़यास कुन कि मनत दर शुमारे खाके दरम। २
गिरिफ़्त अरसए आलम जमाले तलअते दूस्त,
बिहर कुजा कि रवम उन जमाल मी निगरम। ३
बिरग़्मे फ़लसफ़ियान बिश्नौ इन दक़ीक़ह ज़मन,
कि ग़ायबी तो व हरगिज़ न रफ़्ती अज़ नज़रम। ४
बेदान सिफ़त कि बेमौज अन्दरून रवद करती,
हमीं रवद तने ज़ारम दर आबे चश्मे तरम। ५
चुनन नहुफ़्तम दर सीनह दाग़े लाला रुख़त,
कि शुद चो गुन्चह लबालब ज़े ख़ूने दिल जिगरम। ६"

अर्थात्—१. प्रातःकाल तेरी वायुकी सुगन्धि जब खुशखबरी लेकर आयेगी, तो मैं अपनी जान उसके हवाले कर दूँगा, बशर्ते कि आजकी रात विरहने मुझे सुबह तक जीवित रहने दिया। अर्थात् दोनों तरहसे मृत्यु अनिवार्य है!

२. जब तू निकले, तो मेरी दोनों आँखोंपर पैर रख। तू अपने मनमें यह समझ ले कि मैं तेरे दरवाज़ेकी धूल हूँ।

३. समस्त विस्तृत संसारने मेरे प्रेमी (ईश्वर) के मुखका सौन्दर्य ग्रहण कर रखा है। जहाँ कहीं मैं जाता हूँ, मेरी दृष्टिके सामने वही सौन्दर्य दीख पड़ता है।

४. दार्शनिकोंके मतके विरुद्ध यह रहस्यकी बात मुझसे सुन कि तू अदृश्य है, किन्तु फिर भी तू मेरी दृष्टिसे कभी ओझल नहीं होता!

५. जिस प्रकार पानीकी लहरके भीतर नाव जाती है, उसी प्रकार मेरा कृश शरीर मेरी बहती हुई आँखोंके पानीमें जाता है।

६. तेरे कपोलरूपी लाला पुष्पके दागको मैंने अपनी छातीमें इस प्रकार छिपाया है कि मेरा जिगर गुन्चेकी तरह दिलके खूनसे लबरेज़ हो गया है।

बैत

"जहानगो हमह आतिशो दूद बाश,
तु दर आतिशस सन्दलो ऊद बाश।"

यह संसार दुखोंकी ज्वालासे परिपूर्ण है, इसलिए अदीब साहब फ़रमाते हैं कि यदि सारा-का-सारा जगत आग और धूआँ हो, तो तू उसमें चन्दन और अगरकी बत्तीके समान रह—यानी जलकर भी खुशबू दे! उर्दूके एक कवि अख़गर मुरादाबादीने भी इसी भावसे मिलता-जुलता कहा है—

"'अख़गर'से नहीं ऊदसे खुश खुल्की सीख,
जो तुझको जलाये उसे खुशबू आये।"

अर्थात्—अख़गर (चिनगारी) से नहीं, बल्कि अगरकी बत्तीसे शीलकी शिक्षा ले—यानी जो तुझे जलाये, उसे तू खुशबू दे।

'दफ़्तरे दुनिया' नामक कवितामें अदीब साहबने नीतिकी बातें कही हैं। उसके कुछ नमूने मुलाहज़ा कीजिए—

"सुखुन अज़ सुखनगोय दाना बेहअस्त,
सुखन हाय नादाँ सु तूशी देहअस्त । १
कसी कू ज़े दानिश बरद तोश ई,
जहाँनीस्त बिनशिस्तह दर गोश ई । २
निको कार अन्दर जहान मुक़बिलस्त,
कि बदकार पै वस्त: लरज़ान दिलस्त । ३
यकी दफ्तरस इन जहान ए पिसर,
न बिश्ते दर आन नामहा सर बसर । ४
बनेकी नवीस अन्दर आन नामे ख़ीश,
कि ता बहरे आबो ज़े अय्याम ख़ीश । ५"

अर्थात्—१. बात अक्लमन्द बात करनेवालेकी बेहतर है। नादानकी बात रंज पैदा करनेवाली होती है।

२. जो आदमी बुद्धिका भंडार प्राप्त कर लेता है, वह स्वयं एक कोनेमें बैठा हुआ संसार है।

३. नेक काम करनेवाला संसारमें वांछनीय है। बुरे काम करनेवालेका दिल हमेशा लरज़ता रहता है।

४. ऐ बेटे, यह दुनिया नामोंसे भरा हुआ एक दफ्तर है।

५. तू अपने दिनों (जीवन) से फ़ायदा उठाकर इस दफ्तरमें नेकीके साथ अपना नाम लिख जा।

सन् १९२५ में ईरानमें डाक्टर अफशारके सम्पादकत्वमें 'आयन्दा' (भविष्य) नामका एक ऊँचे दर्जेका मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। यह पत्र १९२७ तक चलकर बन्द हो गया। इस पत्रके प्रथम अंकके लिए सम्पादकने हज़रत अदीबसे कुछ लिख देनेके लिए प्रार्थना की थी। हज़रत अदीबने चार शेर लिख दिये थे, जो 'आयन्दा'के प्रथम अंकके प्रथम पृष्ठपर आशीर्वादके रूपमें छपे थे। वे यह हैं—

"ज़माना हर नफ़सी बाज़ेई नुमायद नौ,
मकुन बिरोज़ गुज़श्तह क़यास आयन्दह ! १
न बुद हर अन्चे गुज़श्त अज़ ज़माना दर खुरेहन्द
मगर कुनीम अज़िन पस सेपास आयन्दह । २
ज़ै दौरे कासे न खुस्तीनह अम फ़ुज़ूद खुमार,
मगर निशात बेयाबम ज़े कासे आयन्दह । ३
गुज़श्त उम्रे तो चुन तौसने गुसस्तह अनान
बिहूश बाश व निगहदार पास आयन्दह । ४"

अर्थात्—१. ज़माना हर साँसमें एक नया खेल दिखलाता है, इसलिए बीते हुए दिन (भूतकाल) से 'आयन्दा' (भविष्य) का अनुमान मत करो।

२. जो ज़माना गुज़र चुका, वह प्रशंसाके योग्य न था। अबसे हमें आयन्दाका ध्यान रखना चाहिए।

३. शराबके नशेमें तीन अवस्थाएँ हुआ करती हैं। पहली अवस्थामें नशेका लुत्फ़ आता है, शरीरमें स्फूर्ति मालूम होती है। दूसरीमें बेहोशी होती है। तीसरी अवस्था खुमारकी होती है, जिसमें नशेका उतार होता है, तबीयत गिर जाती है, और एक प्रकारकी जड़ता और ग्लानि-सी बोध होती है। इन्हीं तीनों अवस्थाओंका रूपक बाँधते हुए, ईरानकी गिरी हुई हालतको लक्ष्य करके हज़रत अदीब फरमाते हैं कि दौरके पहले ही प्यालेमें मैं खुमारसे भर गया—यानी एकदम तीसरी पतित अवस्थाको पहुँच गया। अब ऐसा करो कि आयन्दाके प्यालेसे हम नशेका लुत्फ़ (स्फूर्ति) उठा सकें।

४. तेरी पिछली उम्र एक बेलगाम घोड़ेकी तरह गुज़र गई। होशमें आ और आयन्दाका लिहाज़ रख।

पिछले यूरोपियन महायुद्धमें अंगरेज़ और रूसी वग़ैरह मिलकर जर्मन और आस्ट्रियनोंसे लड़े थे, मगर उसका दुष्परिणाम बेचारे ईरानको भुगतना पड़ा। वही मसल हुई कि घोड़े-घोड़े लड़ें, और मोचीका ज़ीन टूटे! अंगरेज़ोंने जर्मनोंके खतरेका बहाना बताकर दक्षिणी ईरानपर कब्ज़ा कर लिया। ईरानके कुछ कपूतोंने इस मामलेमें विदेशियोंको मदद दी। इसपर हज़रत अदीबके देशप्रेम और राष्ट्रीयताके भावोंको गहरी ठेस लगी, और उन्होंने 'कैसरनामा' नामकी एक कविता लिखकर देशद्रोहियों खूब फटकारा। चूँकि ईरानपर अंगरेज़ोंने दस्तदराज़ी की थी, इसलिए इस

कवितामें अंगरेज़ोंकी इस ज़्यादतीकी भी खूब खबर ली गई थी। इस कविताके कुछ शेर सुनिये—

क़ैसरनामा

तो ऐ परवरीदह बिख़ूने दिलम,
ये गूनह ज़े मेहरे तो दिल बिगसलम। १
नदरी ज़े बुन हीच पासे मरा,
फरामूश करदी सेपासे मरा। २
दर आगूश नाज़द वे परवरदहअम,
तू शमये तराज़द बर आवरदहअम
बिहंगामे पूजिश बिगाहे सुजूद,
पयम्बर मरा क़िबलये तो नमूद। ४
कि चुन पीश यज़दाने नेआयश कुनी,
सुये मन बेबायद गेरायश कुनी। ५
रवान रा बिदूज़ख़ अज़ आन सूख़्ती,
कि इन रस्म हाग न आमूख़्ती। ६
सुख़न बिश्नओ बर मेयावर ग़रीब,
कि नव बद गुनहगार तर अज़ तो हीव। ७
कुजा दीव उनमान किश परवरीद,
ज़े पिस्ताने ऊ शहद शीरिन मकीद। ८
चो यक मर्दे बीगानह याज़ीद दस्त,
बुरीद आन सरे माम बिनशस्तह पस्त। ९
कुजा दीव उन ज़िश्त कारी कुनद,
कि बर मर्दे बीगानह यारी कुनद। १०
मनम पूर ईरान बर मान खीश,
मरा ग़ैरत आयद ज़े अन्दाज़ह बीश। ११

ईरान माता अपने पुत्रोंको सम्बोधित करके कहती है—

१. (हे पुत्र!) तुझे मैंने अपने दिलके खूनसे पाला-पोसा है इसलिए मैं तेरी मुहब्बतसे अपने दिलको किस तरह फिरा लूँ।

२. (परन्तु खेद है) कि तुझे मेरा बिलकुल ध्यान नहीं है। तू मेरे सम्मान तकको भूल गया है।

३. मैंने तुझे अपनी गोदमें किस नज़ासे पाला है, तुझे शमाकी तरह सँवारा है (ताकि तू चारों तरफ़ मेरा मुँह उजाला करे)।

सैयद अहमद अदीब पेशावरी

४-५. सिजदे और प्रार्थनाके समय पैग़म्बरने मुझे क़िबला करार दिया है। और कहा है कि जब तू खुदाके सामने प्रार्थना करे, तो मेरी तरफ़ भी मायल हो।

कहनेका मतलब यह है कि हज़रत मुहम्मदने वतन-परस्ती (देश-भक्ति) को ईमानका एक अंग बना दिया है। कहा है—"हुब्बुल वतने मिनलईमान।" उनकी देश-भक्ति

तो इतनी बढ़ी हुई थी कि उन्होंने सारे संसारके मुसलमानोंको अपने वतन—मक्के शरीफ़—की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़नेका हुक्म दिया था ! हरएक सच्चे मुसलमानको पैग़म्बरके इस वतन-परस्तीसे सबक़ सीखना चाहिए।

६. तूने अपनी जानको दोज़खमें इसलिए जलाया कि तू इन भेदोंको नहीं समझा—यानी आज जो तेरी दुर्दशा हो रही इसका कारण यही है कि तू वतनकी परस्तिश नहीं करता।

७. मेरी बात सुन, गुर्रा मत, क्योंकि शैतान भी तुझसे ज़्यादा बदकार नहीं है ;

८. क्योंकि जिस माने शैतानको पाला-पोसा है, जिसने उसे अपने स्तनोंसे मधुर दूध पिलाया है ;

९. शैतानकी वह मा यदि पस्त हालतमें बैठी हो और कोई गैर आदमी उस मापर हाथ चलाये ;

१०. तो शैतान भी ऐसा बुरा काम करनेवाले ग़ैर शख़्सके साथ दोस्ती न करेगा। (मगर तू ऐसा कर रहा है, इसलिए तू शैतानसे ज़्यादा बदकार है !)

११ फिर हज़रत अदब खुद अपने बारेमें कहते हैं—'मैं ईरानका बेटा हूँ और मुझे अपनी माकी इस हालतपर बेहद शर्म आती है।"

यह एक सच्चे वतन-परस्तके हृदयसे निकले हुए उद्गार हैं।

आर्यकन्या-महाविद्यालय बड़ोदा

गत सात वर्षोंमें आर्यकुमार-महासभा बड़ोदाने जो कार्य किया है, उसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। अल्पसंख्यक नवयुवकों द्वारा स्थापित यह सभा, जिसके पास आरम्भमें न तो एक पाई खर्चके लिए थी, और न कुछ सम्पत्ति ही थी, आज आठ संस्थाओंका संचालन सफलतापूर्वक कर रही है, और उसकी ज़मीन, मकानादिकी सम्पत्ति तीन लाख रुपयेसे ऊपर है। कारेलीबाग़ बड़ोदामें स्थित यह सभा आज गुजरातकी हिन्दू जनताके गौरवका स्थान है। अपनी संस्थाओंपर इस सभा द्वारा आजकल ८०,०००) रुपया वार्षिक खर्च हो रहा है। आर्यकुमार-महासभा द्वारा स्थापित प्रत्येक संस्था अपने-अपने क्षेत्रमें इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उन सबका विस्तृत वर्णन बड़ा उपयोगी तथा शिक्षाप्रद होगा। इसके द्वारा परिचालित आर्यकुमार-आश्रम बड़ोदा, गुरुकुल सोनगढ़ (काठियावाड़) अबला-आश्रम बड़ोदा, भील-आश्रम अमृतपुरा, छै अछूत पाठशालाएँ आर्यकुमार-प्रेस बड़ोदा तथा 'प्रचारक', 'हिन्दू पत्रिका' और 'सुधारक' मासिक पत्रिकाएँ—सभी अपने-अपने क्षेत्रमें विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। आज यहाँ इस सभा द्वारा संचालित केवल एक संस्थाका परिचय पाठकोंको दिया जाता है।

आजसे सात वर्ष पहले आर्यकन्या-महाविद्यालय बड़ोदाके निकट एक छोटे ग्राममें स्थापित हुआ था। इसका विकास तथा लोकप्रियता बढ़ती देखकर संचालकगण उसे गत तीन वर्षसे कारेलीबाग़ बड़ोदामें उठा लाये। आजकल आर्यकन्या-विद्यालय और उसका विशाल भवन बड़ोदा आनेवाले यात्रियोंके लिए एक आकर्षणकी वस्तु हैं।

आर्यकन्या-महाविद्यालय केवल शिक्षा देनेकी ही संस्था नहीं है, वरन् वह प्राचीन गुरुकुल शिक्षालयोंके आदर्शपर संचालित एक महिला-छात्रालय है। सात वर्षकी आयुमें यहाँ प्रवेश पानेवाली कन्याओंको सोलह वर्षकी आयु तक संस्थामें रहना पड़ता है। जिन कन्याओंका वाग्दान हो चुका है, या जो विवाहिता हैं, वे संस्थामें प्रविष्ट नहीं हो सकतीं। कुल शिक्षा क्रम तेरह वर्षका है—दस वर्ष स्कूलका और तीन वर्ष कालेजका। प्रत्येक कन्यासे ३०) प्रवेश शुल्क और १४) मासिक शुल्क लिया जाता है। संस्था प्रत्येक कन्याके
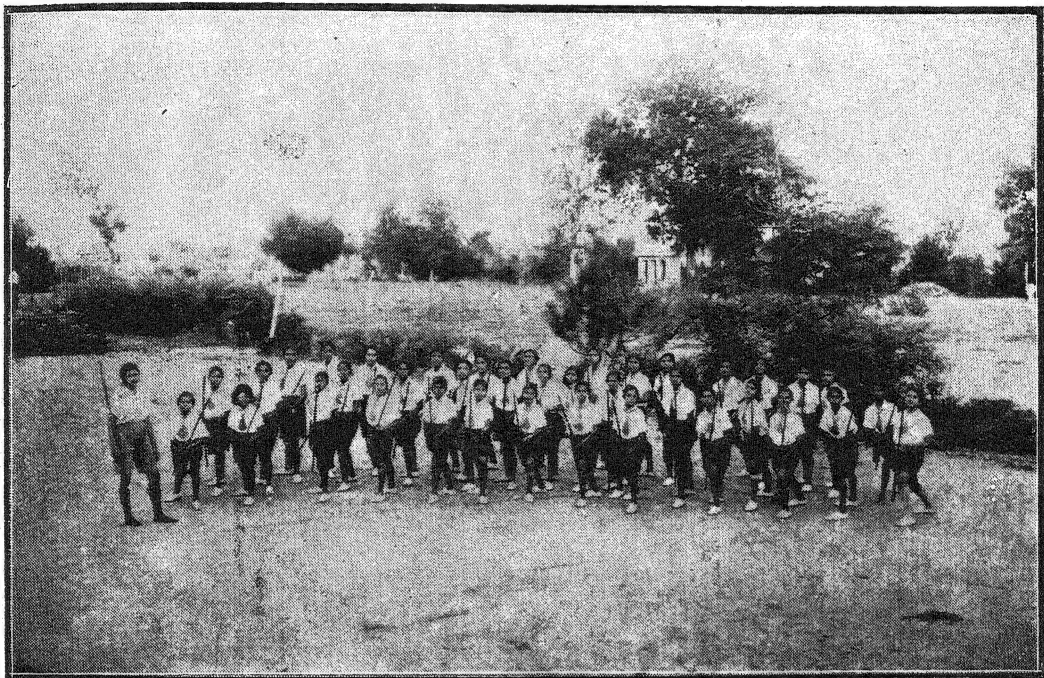
छात्राएँ लाठीका व्यायाम कर रही हैं

ऊपर २५) मासिक व्यय करती है। १४) केवल भोजन-वस्त्रका ही होता है। इस प्रकार शिक्षण बिलकुल निःशुल्क दिया जाता है। केवल मासिक १४) लेकर संस्था लड़कियोंको पुस्तकें, छपाई, खेल तथा संगीतका सामान आदि सब मुफ्त देती है। महाविद्यालय किसी यूनिवर्सिटीसे सम्बन्धित नहीं है। इसका शिक्षाक्रम स्वतन्त्र है। शिक्षाका माध्यम गुजराती है, परन्तु हिन्दी एक अनिवार्य विषय है। इसके अतिरिक्त संस्कृत और अंगरेज़ी भी दशम श्रेणी तक अनिवार्य विषयोंमें हैं। गृह-विज्ञान, भूगोल, गणित, इतिहास, चित्रकला, संगीत आदि सब विषयोंका पाठ्यक्रममें समावेश किया गया है।

आर्यसमाजके सिद्धान्तोंके अनुसार धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। बालिकाएँ राष्ट्र-प्रेमी, स्वधर्म-प्रेमी तथा संस्कृति-प्रेमी बनें, यही इस संस्थाका उद्देश है।

राष्ट्रीय पर्वों तथा जातीय त्योहारोंको विशेषरूपसे मनाया जाता है। बालिकाका स्थान समाजमें माताका है, वह राष्ट्रकी भावी जननी है, शिक्षामें यह बात सदा ध्यानमें रखी जाती है। कालेज कोर्समें आयुर्वेदका व्यावहारिक ज्ञान देनेका आयोजन संस्था करना चाहती है। इस प्रकार यह संस्था प्राचीन आर्य संस्कृतिकी नींवपर समस्त उपयोगी शिक्षा दे रही है। संगीतमें देशी वाद्योंका उपयोग किया जाता है। प्रारम्भमें ताल और स्वरकी पहचान करानेके बाद ही हारमोनियमका उपयोग होता है।

इस संस्थाकी अनेकों विशेषताओंमें सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है इसका व्यायाम। प्रत्येक बालिकाको नियमित रूपसे देशी व्यायाम करना होता है। इसके फलस्वरूप बालिकाओंका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। प्रायः सभी बालिकाएँ आसन, प्राणायाम, लाठी, लेजिम, छुरा, पट्टा, भाला आदिमें प्रवीणता प्राप्त कर लेती हैं। इनके अतिरिक्त अनेक देशी खेल कूदोंका भी उपयोग होता है। व्यायामसे बालिकाओंमें स्फूर्ति तथा निर्भयताके भाव उत्पन्न होते हैं। हालमें इन बालिकाओंके एक दलने कलकत्तेमें जो खेल दिखाये, उन्हें जनताने बहुत पसन्द किया। प्रत्येक स्थानमें इन खेलोंको देखनेके लिए अपार भीड़ एकत्रित होती रही।

गृह-कार्योंकी शिक्षा आश्रममें व्यावहारिक रूपमें दी जाती है। आश्रमका संचालन प्रायः कन्याएँ ही करती हैं। कन्याओंकी एक प्रबन्धकारिणी सभा है, जो आन्तरिक

छात्राओंका संगीत-क्लास

सिलाईका क्लास
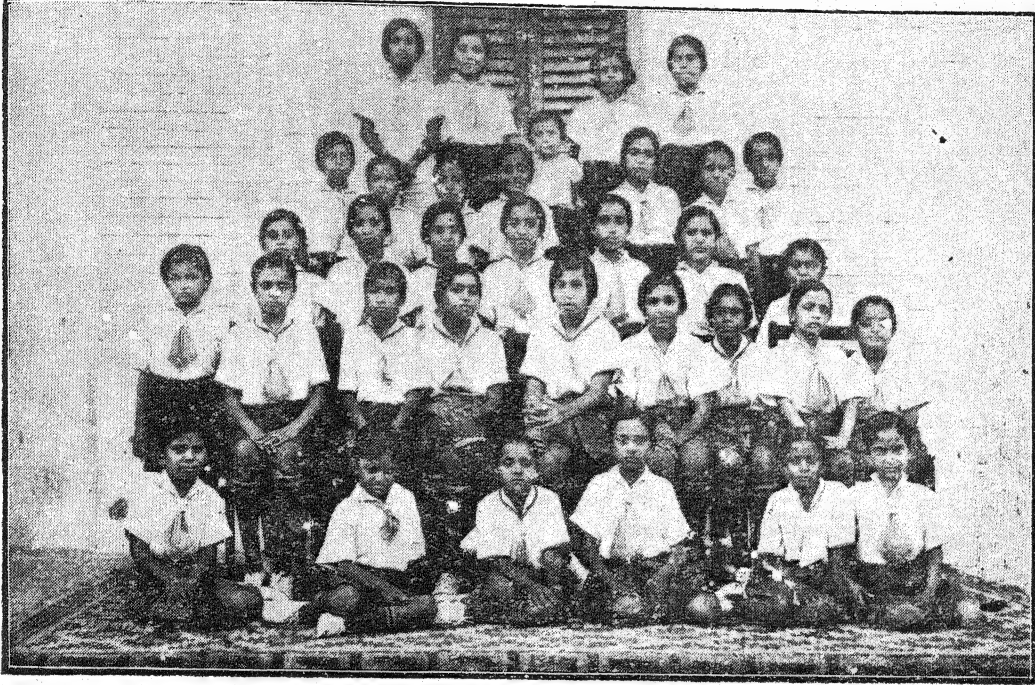
विद्यालयमें अफ्रिका-प्रवासी छात्राएँ

स्वच्छता, कार्यका बाँटना, भोजनमें प्रति सप्ताह क्या-क्या बनना चाहिए तथा छोटे छोटे पारस्परिक झगड़े आदिका निर्णय करती है। प्रत्येक बड़ी कन्यापर एक छोटी कन्याको सँभालनेका भार होता है। रोगियोंकी सेवा भी कन्याएँ ही करती हैं। प्रति रविवार और पर्वके दिन कन्याएँ रसोई बनाती हैं। वे अपने कपड़े स्वयं धोती हैं। अपना थाली-लोटा आदि भी स्वयं माँजती हैं। कमरोंमें झाड़ू भी लगाती हैं। थोड़ा बहुत बागवानीका काम भी करती हैं। सीना-पिरोना, बेल-बूटे काढ़ना तथा दस्तकारीका कार्य भी सिखाया जाता है। आश्रम-विभाग देवियोंके अधीन है। विद्यालय विभागमें देवियाँ तथा पुरुष दोनों शिक्षक हैं। आजकल स्टाफमें २५ अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ हैं। विद्यालयमें परीक्षाओंका अस्वाभाविकपन दूर कर दिया गया है। लड़कियोंको शारीरिक दंड नहीं दिया जाता। संस्थाका संचालन कौटुम्बिक भावना अथवा कुल-पद्धतिपर किया जाता है।

इस समय संस्थामें १६० कन्याएँ हैं, जिनमें ४० कन्याएँ प्रवासी भारतीयोंकी भी हैं। संस्थाकी लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ रही है। इस समय तो यह दशा है कि नवीन कन्याओंको भरती करनेका स्थान भी नहीं रहा है। कन्याएँ प्राय: सभी प्रान्तोंकी हैं, पर अधिक संख्या गुजरात, कच्छ और काठियावाड़की ही है।

इसके वर्तमान कुलपति आर्यसमाजके रत्न मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी हैं। आचार्य कविरत्न पं० मेधाव्रतजी हैं। संस्थाके पोषक सेठ नारायणलालजी पित्ती तथा मन्त्री और मुख्याधिष्ठाता श्री आनन्दप्रियजी हैं। इन्हीं लोगोंकी लगन और परिश्रमसे आर्यकन्या-महाविद्यालय आज एक गौरवपूर्ण संस्था बन सकी है।

संस्थाके संचालक इसे भविष्यमें एक महान महिला-विद्यापीठ बनाना चाहते हैं, इसी ध्येयको लक्ष्यमें रखकर कार्य हो रहा है। महाविद्यालयकी लोकप्रियता देखते हुए यह अवश्य प्रकट होता है कि शीघ्र ही यह संस्था एक विशाल आर्यमहिला-विद्यापीठके रूपमें परिवर्तित हो जायगी। कलकत्तेके अनेक धनी-मानियोंने विद्यालयकी बालिकाओंके कार्य देखकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। क्या ये सज्जन धनसे थोड़ी-बहुत सहायता प्रदानकर संस्थाको अग्रसर करनेमें हाथ बँटायेंगे ?

श्री श्यामसुन्दरजीकी कविताएँ

बनारसीदास चतुर्वेदी

बात पन्द्रह-सोलह वर्ष पहलेकी है। खंडवेकी 'प्रभा' उन दिनों निकलती थी। एक नवयुवक कविने उसमें अपनी 'नव वर्ष' नामक कविता भेजी। कविता छप गई, और साथ ही उसमें कुछ 'आवश्यक परिवर्द्धित अंश' भी सम्पादकने अपनी ओरसे लिख दिये। इससे लेखकको बड़ा प्रोत्साहन मिला, और उनकी रुचि इस ओर और भी अग्रसर हुई। श्री श्यामसुन्दरजी कहते हैं—"मुझे जो दो-चार पंक्तियाँ लिखना आ गया है, उसका मुख्य श्रेय श्री माखनलाल चतुर्वेदीको है, और चतुर्वेदीजीको अभी तक यह बात ज्ञात भी नहीं है!"

नव वर्षका स्वागत करते हुए श्री श्यामसुन्दरजीने लिखा था—

"कुटजादि कदम्ब रसालके ऊपर,
बैठ सदा मन मुग्ध किये;
मनरंजन मंजुल वंजुल कुंजके
पुंजमें बैठ प्रमोद दिये।
शुचि कोकिल कूकती काकलीसे
कल-शब्दसे कोमल कंठ लिये;
रस-धार प्रवाहकी माधुरी होती,
अहो! नव वर्ष तुम्हारे लिये।

× × ×

पर हाय! हमारी दशाको लखो
हम आज हैं जैसेके तैसे बने!
करते मुँहसे हम स्वागत हैं
पग-हाथ नहीं, नहीं कर्म बने।
जड़ भूलते हैं जड़ता, लखके
वह नींद जो ली सुखसे हमने;
हम आज भली व बुरी हों पुरा—
तन चालके जालमें हाय! सने।"

श्री माखनलालजीने जो पद्य इसमें जोड़ दिये थे, उनमें दो यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

"दुखका यह अन्धड़ आ रहा है,
सुख-स्वप्न भी हैं हम भूल चुके;
गति देख हमारी, कठोरतासे सब,
छातीमें शूलसे हूल चुके।
वह धीरज धीरज छोड़ती है,
हम नाशके भूलने भूल चुके;
जग जीवन दौड़में दौड़ता है,
हम तो शठता ही में फूल चुके।

× × ×

इतना ही नहीं, वह यूरपमें
हाय निर्दय अस्त्र प्रहार रहा;
थमती न कृपाण ज़रा भी अहो! लखो!
यों दलके दल मार रहा।
कई वीर हुए बलि, तो भी उसे अभी
शान्तिकी घोषणा आती नहीं;
कटते हैं करोड़ों कठोरतासे
सह लें सब पत्थर छाती नहीं।"

तबसे श्यामसुन्दरजीने कविता करनेमें काफ़ी उन्नति कर ली है। श्यामसुन्दरजीके पूर्व पुरुष बनारसके रहनेवाले थे। उनके पिता स्वर्गीय लक्ष्मणदासजी काशीके सुप्रसिद्ध खत्री लाला काश्मीरीमल मेहरेके वंशधर थे और रोज़गारके सिलसिलेमें कलकत्ते आकर बस गये थे। श्री श्यामसुन्दरजीका जन्म कलकत्तेमें ही हुआ था, और वे यहीं रहते हैं, इसलिए हम उन्हें अब कलकतिया कह सकते हैं। स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माने उनके अप्रकाशित कविता-संग्रहकी भूमिकामें लिखा है—

"श्रीयुत कविवर श्यामसुन्दर खत्री बड़े साधु-स्वभाव, विनयी और आत्म-प्रशंसासे बचनेवाले—बल्कि कहना चाहिए, छिपनेवाले कवि हैं। कविताको आपने आत्म-प्रशंसाका साधन नहीं बनाया। जब समय मिलता है, तो कविता लिखते हैं, और बहुत अच्छी

सोच-समझकर, लिखते हैं ; कोई सुनना चाहता है, तो सुनाते हैं। दाद लेनेके लिए ख्वाहमख्वाह किसीके सिर नहीं होते, खम ठोंककर अखाड़ेमें नहीं कूदते, कवित्वके आवेशमें आत्म-मर्यादासे विचलित नहीं होते, दलबन्दीकी प्रतिस्पर्द्धामें नहीं पड़ते। कविताका आपने 'काव्यज्ञशिक्षया' अभ्यास किया है—ईश्वरप्रदत्त कवित्वशक्तिको अभ्यास द्वारा विकसित करनेमें तत्पर रहते हैं, स्वाध्यायशील हैं, कविताकी घाटियोंसे वाक़िफ़ हैं। 'जो कुछ जिस रंगमें कह देंगे, वही कविता हो जायगी'—इस सिद्धान्तको माननेवाले 'स्वयंसिद्ध' कविराज नहीं हैं। कविताके गुण-दोषका अच्छा ज्ञान रखते हैं, न कविताकी प्राचीन प्रणालीके विरोधी 'क्रान्तिकारी' हैं और न नवीनतासे मुँह मोड़नेवाले कोरे प्राचीनतावादी ; दोनोंमें लिखते हैं, और ख़ूब लिखते हैं। हिन्दू-संस्कृतिके उपासक हैं, और उसके प्रत्येक अंगपर कुछ-न-कुछ लिखा है, और बहुत अच्छा लिखा है। हिन्दू-त्योहारोंपर, महापुरुषोंके संस्मरणमें, जो कविताएँ आपने समय-समयपर लिखी हैं, वे बड़ी हृदयग्राही और उपदेशप्रद हैं। ऋतुओंके वर्णनमें प्राकृत सौन्दर्यपर भी आपने बहुतसी सुन्दर रचना की है। देशभक्ति और समाज-सुधारपर आपकी जो कविताएँ हैं, वह भी पठनीय हैं। समस्या-पूर्तिकी कलामें भी प्रवीण हैं। खड़ी बोली और ब्रजभाषाका निर्वाह अपनी-अपनी जगह निर्दोष रूपसे हुआ है ; पद्य पिंगलके काँटेमें तुले हुए हैं ; भाषा साफ़ है ; रचनामें माधुर्य और प्रसाद है। यह होते हुए भी आप उसका संग्रह प्रकाशित करनेमें उतावले नहीं हैं ; संग्रहका मसाला काफ़ी है, और प्रकाशित करनेके योग्य है।

"मैंने इनकी बहुतसी कविताएँ पढ़ी हैं, और सुनी हैं, और समझदार श्रोताओंको उनकी प्रशंसा करते सुना है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि श्यामसुन्दरजीकी सुन्दर कविताओंका संग्रह प्रकाशित किया जाय। मेरा विश्वास है कि साहित्य-समाजमें उसका प्रचार होगा। कविता-पारखी उसे आदरसे अपनायँगे, क्योंकि श्यामसुन्दरजी कवि हैं, और उनकी रचनामें कवित्त्व है।"

श्रीयुत श्यामसुन्दर खत्री

इसमें सन्देह नहीं कि श्री श्यामसुन्दरजीकी कितनी ही कविताएँ बड़ी सुन्दर हैं, और कई तो ऐसी हैं, जो वर्तमान हिन्दी-कवियोंकी अच्छी-से-अच्छी रचनाओंसे टक्कर ले सकती हैं। हमें जो पसन्द आईं, उनके नाम ये हैं—'पतिता', 'तिरस्कृता', 'क्रान्ति', 'आह्वान', 'वसन्त-गरिमा', 'साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा', 'बलि-वेदीपर', 'मुसकान' और 'क्या देखा ?'

इन कविताओंके कुछ अंश सुन लीजिए—

आह्वान

"सोई विश्व-हृदयतंत्रीकी तान मधुर मतवाली
भव-मानस-सर चंचल करनेवाली मुग्ध मराली
जीवन-मरुकी रसमय सरिता मूक प्राणकी भाषा
मर्मस्थल-निकुंजकी कोकिल, अन्तस्तलकी स्वाँसा

आओ, इन प्यासी आँखोंकी तृष्णा अमिट बुझाओ ;
मेरे भव्य मनोमन्दिरमें, आओ कविते ! आओ।

भाव-राशिकी रूप-राशिके अभिनव साँचे ढाली
नव-रसमय यौवन-तरंगकी लेकर छटा निराली
मंजु अलंकारोंसे सजकर जगमग-जगमग करती
कोमल कलित ललित छंदोंके नूपुर पहन थिरकती
गजगामिनि ! अनुपम शोभाकी दिव्य प्रभा दरसाओ ;
छम-छम करती हृदय-कुंजमें, आओ कविते ! आओ ।

शत-सहस्र वृश्चिक-दंशनकी जो नित पीड़ा सहते
शतशः छिद्र हुए हैं जिनमें आहें भरते-भरते
खाते हैं जो गम रो-रोकर, घूँट लहूके पीते
गिनते हुए मौतकी घड़ियाँ तड़प-तड़पकर जीते
ऐसे ताप-दग्ध प्राणोंकी करुण कहानी गाओ ;
आँसू बनकर मुझे रुलाने, आओ कविते ! आओ ।

उठे प्रबल विद्रोह-बवंडर साहस-घन घहराएँ
सत्य-धर्मकी बलि-वेदीपर, उष्ण रुधिर बरसाएँ
अघ-शासनपर वज्रपातकर, क्रान्ति-दामिनी दमके
पशु-प्रवृत्ति विप्लव-प्लावित हो, नवजीवन-घन चमके
उथल-पुथल मच जाय सृष्टिमें वह मल्लार सुनाओ ;
दशों दिशाएँ कम्पित करती, आओ कविते ! आओ ।"

श्री श्यामसुन्दरजीकी 'क्रान्ति' शीर्षक कविता तो अत्युत्तम है । उसे सम्पूर्ण उद्धृत करनेका मोह हम संवरण नहीं कर सकते—

"सन्तप्त हृदयकी आहोंकी, मैं कालानल ज्वाला कराल
दुःखित-पीड़ित-दृग-अश्रुजात, विक्षुब्ध-वक्ष सागर विशाल
सद्यः नवीनताकी तरंग, विस्मय-कर परिवर्तन-प्रवाह
निर्बलकी अन्तर्निहित शक्ति, उद्भ्रान्त पथिककी सत्य राह
मैं यौवनकी प्रज्ज्वलित कान्ति, मर्मस्थलकी दुःसह अशान्ति
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

अन्याय स्वार्थसे हो अन्धी, सुविवेक न्यायको मार लात
जिस ठौर नाचती है पशुता, इतरा-इतराकर नग्नगात
वेदना-व्यथासे तड़प-तड़प, करती मनुष्यता अश्रुपात
उस ठौर दूरसे लगा घात, सहसा करती हूँ वज्रपात
मैं दण्डनीयको बीन-बीन, दण्डित करनेमें हूँ प्रवीण
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

निर्मम निष्ठुर हो अनायास, करती अनगिनती प्राण-नाश
अति उष्ण रुधिरसे लाल-लाल, मिटती है मेरी अमिट प्यास
लोथोंके पर्वतपर चढ़कर, होता मेरा सोल्लास लास
पापीके मुँहसे त्राहि-त्राहि, सुनकर करती हूँ अट्टहास
पाखण्ड क्षमा मेरे समक्ष, भक्षण कर लेती हूँ विपक्ष
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

सुन सकती हूँ मैं किसकी न, मानती मैं न वादा-विवाद
अपवाद नियम मेरे समस्त, सिद्धान्त एक उन्मादवाद
कर देती हूँ मैं उथल-पुथल, जिस थल पड़ते मम युग्म पाद
संसार काँपता है सत्रास सुनकर मेरा भीषण निनाद
उद्दण्ड दुष्कृतोंका घमण्ड, कर देती हूँ मैं खण्ड-खण्ड
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

अघटन-घटना-पटुता मेरी, करती नित साधन है असाध्य
मेरे सम्मुख दुर्धर्ष शक्ति, झुकनेको होती सतत बाध्य
जल-थल-अम्बर मेरा निवास, सर्वत्र प्रगति मेरी अबाध
आराध्य धर्मका परित्राण, है साध दुःख-मोचन अगाध
चढ़ता जग उन्नतिके शिखण्ड, मेरी सत्ताके बल अखण्ड
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

मैं करती कभी न रक्तपात, करती न कभी उत्पात व्यर्थ
रहती हूँ तब तक शान्त मौन, जब तक न अत्ति करता अनर्थ
जब तक चलता है वश मेरा, रखती अपनेको दाब-दाब
हो विवश अन्तमें पशुताका, पशुतासे मैं देती जवाब
जननी यद्यपि मेरी अशान्ति, तनया मेरी सुखपूर्ण शान्ति
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

बन करके यदुवंशावतंस, अड़ गई कौरवोंके विरुद्ध
प्रकटी बन कभी प्रबुद्ध बुद्ध, शंकर बन छेड़ा धर्म-युद्ध
कर देती हूँ जगको निहाल, होकर ईसाका उर विशाल
लेनिन हो रचती साम्यवाद, करती कमाल बनकर कमाल
कर सत्य अहिंसामें प्रतीति, गान्धी बन सिरजी नव्य नीति
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति ।

चर-अचर जगतमें विविध रूप, मेरे कौतुक होते प्रकाण्ड
करती हूँ सतत नियन्त्रित मैं, वैषम्य-जनित बहु क्रूर-काण्ड
अप्रिय मेरे प्राचीन क्षीण, चाहती नित्य मैं चिर नवीन
सब राग विश्वके सो जाते, बजती मेरी जब क्षुद्र बीन

कर छिन्न जाल तमका अखण्ड, प्रकटित होती ज्यों मारतण्ड
मैं हूँ प्रचंड उन्मत्त क्रान्ति।"

'पतिता'का जैसा भावपूर्ण चित्र श्री श्यामसुन्दरजीने खींचा है, वैसा हमें किसी वर्तमान हिन्दी-कविकी रचनाओंमें नहीं मिला—

"आह ! निर्दोष सौंदर्यकी यह कली,
अर्चना-योग्य जो देवतोंके रही ;
आज पाँवों-तले दानवोंके पड़ी,
हेय होकर विवश ठोकरें खा रही।
स्वर्ण-संयोग पाता कहीं यह रतन,
फैलती चौगुनी चारु इसकी प्रभा ;
कीचके संगसे मोल इसका घटा,
कान्ति कमनीय मिट्टी हुई जा रही।
भाव-मन्दाकिनीके लिए सर्वथा,
जो पतित-पावनी भूमि उपयुक्त थी,
आज उसमें नरक-ज्वाल-मालामयी,
वासनाधार उमड़ी चली आ रही।
मत्ततापूर्ण उद्दाम यौवन-छटा,
रूप-लावण्य-माधुर्यकी यह घटा ;
शान्तिकी अटवियाँ भस्म करती हुई,
पापकी आग है आज बरसा रही।
जो सरलतामयी चारु चितवन विमल,
प्रेमकी ज्योतिसे जगमगाती कभी ;
रंगमें घोर निर्लज्जताके रँगी,
कामके विष-बुझे बाण बरसा रही।
स्वर्ग-संगीत-चंचल मनोहर अधर,
जो सुधा-माधुरी-सिक्त होते कभी ;
आज उनमें सुरा-रागकी लालिमा,
तप्त अंगार-सी चित्त झुलसा रही।
जो मराली न चुगती कभी भूलकर
मंजु मुक्तावलीके सिवा और कुछ ;
तोड़ मर्याद पापी उदरके लिए,
आज कीड़े-मकोड़े वही खा रही।
जिस विमल व्योममें उच्च आदर्शकी,
चाँदनी ज्ञान-आलोक विस्तारती ;
है अँधेरा वहाँ अन्ध-आवेशका,
घोर वीभत्सताकी घटा छा रही।
जिस मनो-मुग्धकर मानसरमें कभी,
खेलती हंसकी मंडली मोदसे ;
आज उसमें अधम ऊधमी जन्तुओं—
की धमा-चौकड़ी गन्दगी ला रही।
जो मनोवृत्ति हो पुण्यकी पुत्तली,
स्वर्ण-संसारकी सृष्टि करती कभी ;
फाँसनेके लिए पंछियोंको नये,
व्याधिनी-सी कपट-जाल फैला रही।
वस्तु महनीय जो है अलौकिक परम
स्वर्ग-सम्पत्ति भी मोल जिसका नहीं ;
आज बाज़ार उसका लगाया गया,
बेधड़क कौड़ियोंमें लुटी जा रही।
विश्वकी दृष्टिसे दूर होकर जिसे,
डूब मरना कुएँमें कहीं श्रेय था ;
कामियोंकी कुटिल दृष्टिका केन्द्र बन,
मुस्कुराती हुई हाय ! इठला रही।"

'तिरस्कृता' के कितने ही पद्य बड़े अच्छे बन पड़े हैं—

"कितनी आशासे प्रियतम !
उपहार हृदयका लेकर
आई थी अर्पण करने
तव मंजुल पद-पद्मोंपर।
अनुराग - राग - अनुरंजित
यह पूर्ण प्रणयका प्याला
निष्ठुर तूने ठुकराकर
क्यों चूर-चूर कर डाला !
क्या किया हाय जीवनधन !
तूने यह क्या कर डाला !
मेरे नन्दन - काननमें
भर दी दावानल-ज्वाला।

कर टूक-टूक हे निर्दय !
जीवन-वीणाको मेरी
सर्वस्व छीन प्राणोंका
पल-भरमें आँखें फेरीं।

मेरे सुखकी नौकाको
तूने मँझधार डुबाया
प्रासाद कामनाओंका
तूने पल-भरमें ढाया।

जागृति निद्रा मूर्च्छामें
तन्द्रामें स्वप्न-निलयमें
जो छवि धुकधुकी-सरीखी
करती है वास हृदयमें।

जो दृष्टि दीन नयनोंकी
जो प्राण-वायु जीवनकी
जो स्वाँसा उर अन्तरकी
जो शक्ति जर्जरित तनकी।

कैसे भूलूँ उस छविको
कैसे यह तपन बुझाऊँ ?
कोई वह कला बता दे
कैसे मन वशमें लाऊँ ?

विस्मृति-तटपर चढ़नेको
जितना ही पैर बढ़ाती
उसकी स्मृतिकी दलदलमें
उतनी ही धँसती जाती।

इस अमिट व्यथाको लेकर
किस ओर कहाँ मैं जाऊँ ?
टूटी जीवन-वीणापर
वह कौन राग जो गाऊँ ?

मैं क्या हूँ किसे बताऊँ ?
जीती-जागती व्यथा हूँ !
पत्थर भी जो पिघला दे
मैं ऐसी करुण कथा हूँ !

शत-शर-विद्धा हरिणी हूँ,
मदकल-दलिता कदली हूँ,
जड़से उच्छिन्न लता हूँ,
मैं कुचली हुई कली हूँ।

मृत-देह कामनाकी हूँ,
अर्थी हूँ अभिलाषाकी,
मैं चिता लालसाकी हूँ,
मैं हूँ समाधि आशाकी।

× × ×

क्या ज्ञात तुझे है कबसे
उरमें तव प्रेम समाया ?
इस हृदय-राज्यपर कबसे
तूने अधिकार जमाया ?

मैंने भी भेद न पाया
बहुतेरा सोच थकी हूँ
पर तेरी ठोकर खाकर
अब इतना समझ सकी हूँ।

मेरी ही भावुकताने
अज्ञात भावसे उरपर
अंकित कर दी थी क्रमशः
इक छाया-चित्र मनोहर।

सम्पूर्ण वृत्तियाँ मनकी
उस प्रिय छविकी छिप-छिपकर
पूजा करती थीं निशि-दिन
भावोंकी अंजलि भर-भर।

क्या भूल कभी सकती हूँ
वह रात प्रथम दर्शनकी,
हो गई सिद्ध थी जिससे
सार्थकता इस जीवनकी।

ज्योत्स्ना-विजड़ित रजनी थी
बैठी थी मैं उपवनमें,
तुमको लख सहसा सम्मुख
विद्युत लहराई तनमें।

तव मुखड़ा चिर परिचित-सा
तब मुझको ज्ञात हुआ था
चिरवांछित खोई निधि-सा
मुझको प्रतिभात हुआ था।

जिसको मन खोज रहा था
जिसकी जपता था माला
प्रत्यक्ष उसे लखकर क्यों
होता न निपट मतवाला।

उरकी प्रतिमामें तुममें
बस इतना अन्तर पाया
वह छाया थी, तुम काया
तुम सत्य और वह माया।

× × ×

मैं यही चाहती थी बस
आँखें असंख्य हो जाएँ
देखती रहें तुमको ही
हरदम बिन पलक गिराए।

मैं भावराशि बन करके
तव हियमें आसन पाऊँ,
मुसकान मनोहर होकर
अधरोंमें मैं छा जाऊँ।

सुस्निग्ध रश्मियोंमें मैं
ज्योत्स्ना बन तुम्हें झुलाऊँ,
स्वप्नोंकी लड़ी पिरोकर
निद्रा बन तुम्हें सुलाऊँ।

× × ×

ज्यों किरणें पृथक न विधुसे
ज्यों तेज न विलग तपनसे
ज्यों प्रभा न भिन्न अनलसे
ज्यों सुरभि न अलग सुमनसे।

तव हृदय-प्राण-मनमें मैं
प्रियतम! इस भाँति समाऊँ
अस्तित्व-भिन्नता खोकर
तुममें विलीन हो जाऊँ।

पर हाय! स्वप्न यह मेरा
टूटा पलमध्य अचानक,
आ गया सामने मेरे
वह निर्मम सत्य भयानक।

तुम थे भूखे यौवनके,
थे रूप-पण्यके ग्राहक,
तुम कीट वासनाके थे,
दुर्वृत्त अनंग-उपासक।

निष्ठुर! निर्ममता-पूरित
तुमने जो शब्द कहे हैं,
अब तक उरमें, कानोंमें
बरछीसी भोंक रहे हैं।

"मधु-गन्ध लुब्ध मधुकर हूँ,
है मेरा जीवन मधुमय,
नित नूतन कुसुम निचयसे
करता हूँ मैं मधु संचय।

निस्सीम वासनाओंका
जिसमें लहराता सागर
वह हृदय एक कलिकापर
कैसे कर दूँ न्योछावर!"

इसके बाद और भी कितनी ही सुन्दर पंक्तियाँ हैं, पर स्थानाभावसे हम उन्हें यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते, यद्यपि हम जानते हैं कि इस सुन्दर कविताको अधूरी ही उद्धृत करनेसे हम पाठकोंका रस भंग करनेके अपराधी होंगे। 'बलि वेदीपर' तथा 'पं० पद्मसिंह शर्मा' शीर्षक कविताएँ 'विशाल-भारत' में पाठक पढ़ ही चुके हैं।

इन कविताओंको पढ़कर कोई भी निष्पक्ष पाठक स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजीकी इस बातसे सहमत हुए बिना न रहेगा कि श्री श्यामसुन्दरजी कवि हैं, बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि हिन्दीके अनेक विज्ञापित कवियोंकी अपेक्षा वे कहीं अच्छे कवि हैं। खेद इस बातका है कि अब तक हिन्दी जनताने उन्हें नहीं पहचाना। इसका मुख्य कारण यह है कि श्री श्यामसुन्दरजी

अत्यन्त संकोचशील व्यक्ति हैं। विज्ञापनकी दुनियासे कोसों दूर भागते हैं। जनताके सामने आनेसे वे उतना ही डरते हैं, जितनी कोई लज्जाशीला कुल-वधू बाज़ारमें जानेसे। परिणाम यह हुआ है कि बहुत कम व्यक्ति उन्हें जान पाये हैं। यह पं० पद्मसिंहजी जैसे पारखीका ही काम था कि उनकी कविताओंको प्रारम्भसे अन्त तक पढ़ा, और साथ ही उनकी भूमिका भी लिख दी—

"छिपी प्रतिभा रहे, पर जान लेना काम था उनका ;
रतनको धूलमें पहचान लेना काम था उनका।"

पर यह सुन्दर संग्रह अभी जहाँ-का-तहाँ पड़ा है। हिन्दीका दुर्भाग्य है कि जिन्हें कविता करनी चाहिए, उन्हें अपने समयका सर्वोत्तम भाग क्लार्कीमें बिताना पड़ता है, और जिन्हें खुरपी लेकर घास खोदनी चाहिए, वे कविता-क्षेत्रको चरे जा रहे हैं! जिस कविताने पं० पद्मसिंहजीका ध्यान श्यामसुन्दरजीकी ओर आकर्षित किया, वह अमर शहीद यतीन्द्रके विषयमें लिखी गई थी। पं० पद्मसिंहजीने अनेकों सज्जनोंसे इसकी प्रशंसा की, और थी भी वह प्रशंसनीय।

धन्य यतीन !

"योगियोंमें योगी थे, तपस्वी थे तपस्वियोंमें,
देश-भक्ति-पथके प्रदर्शक नवीन थे ;
बन्दीकी अवस्थामें भी जीवन-विमुक्त-से थे,
रञ्च न कठोर राज-सत्ताके अधीन थे।
खेलते थे कालसे खिलौना-सा समझ उसे,
निर्भय निशंक और भीरुता-विहीन थे ;
आत्मतत्त्व-लीन थे, जितेन्द्रिय-प्रवीण थे औ'
दीन-हीन भारतके गौरव 'यतीन' थे।

× × ×

प्रबल पराक्रमी निठुर पशु-बलपर
विजय महान आत्म-बल कैसे पाता है ;
सच्ची देश-भक्तिकी लगन क्या है और कैसे
मातृ-बलिवेदीपर सीस दिया जाता है।
आतमाको नित्य मान, जीवनको तुच्छ जान,
एक भारतीय कैसे प्रणको निभाता है ;
आये, देखे, सीखे, कोई अमर यतीनसे कि
मरकर नर कैसे अमर कहाता है।"

अन्तमें हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि यह लेख 'विशाल-भारत'के पाठकोंसे श्री श्यामसुन्दरजीका परिचय करानेके लिए लिखा गया है, उनकी कविताओंकी आलोचना करनेके लिए नहीं। यह काम तो कोई कविता-मर्मज्ञ अधिकारी लेखक ही कर सकता है। क्या ही अच्छा हो, यदि श्यामसुन्दरजीकी कविताओंका संग्रह प्रकाशित हो जाय।